॥ श्रीः ॥

काशी-संस्कृत-ग्रन्थमाला
१६०

॥ श्रीः ॥

# योगरत्नाकरः

'विद्योतिनी' हिन्दी टीका सहितः

टीकाकार
आयुर्वेदाचार्य
वैद्य श्री लक्ष्मीपति शास्त्री

सम्पादक
भिषग्रत्न श्री ब्रह्मशङ्कर शास्त्री



चौखम्बा संस्कृत सीरिज आफिस, बनारस-१

वि० सं० २०११ ] [ ई० १९५५

प्रकाशक—
जयकृष्णदास हरिदास गुप्त,
चौखम्बा-संस्कृत-सीरिज-आफिस,
पो० बाक्स नं० ८, बनारस



The Chowkhamba Sanskrit Series Office.
P O. Box 8, Banaras.
1955
सम्पूर्णग्रन्थस्य मूल्य १८)

# प्राक्कथनम्

कायचिकित्सा विषयक उपलब्ध संग्रहग्रन्थों में योगरत्नाकर सर्वोत्कृष्ट रचना है। चिकित्सक के लिये ज्ञातव्य सभी आवश्यक विषयों का संग्रह इसमें किया गया है। पादचतुष्टय ( भिषक्, भैषज, परिचारक और रोगी ) का विधियुक्त वर्णन करने के उपरान्त रोगिपरीक्षा के व्यावहारिक सूत्र स्पष्ट रूप में अभिव्यक्त किये गये हैं। नाड़ी, मूत्र, मल, शब्द, स्पर्श, रूप-नेत्र, मुख-जिह्वा एवं दूत परीक्षा तथा त्रिदोष विभाग का वर्णन संश्लिष्ट शैली में किया गया है। रोग विनिश्चय का व्यावहारिक रूप जिस प्रकार इस ग्रन्थ में स्पष्ट किया गया है, वैसा किसी दूसरे ग्रन्थ में नहीं है। दिनचर्या-रात्रिचर्या-ऋतुचर्या, धान्य-फल-शाक-मांस-मिष्टान्न-जल-दुग्ध-दधि-तक्र-घृतादि-वर्ग एवं दैनिक उपयोग के अन्य आहार घटकों तथा त्रिफला-त्रिकटु-चतुर्जात आदि प्रमुख औषधगणों का वर्णन भी संगृहीत है। वैद्यक परिभाषा, पञ्चविध कषाय कल्पना, अवलेह, स्नेहपाक, आसवारिष्ट, धातूपधातुओं का शोधन-मारण-सत्त्व पातन आदि रसायन विषय भी उपयोगिता की कसौटी पर कसे होने के कारण ग्रन्थकार की सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि से ओझल नहीं हो सके—उनका भी सिद्ध क्रिया-क्रम निर्दिष्ट है। वमन-विरेचनादि पञ्चकर्म सम्बन्धी सभी ज्ञातव्य विषय एवं आयुर्वेदोक्त क्रम से सभी रोगों का निदान एवं विस्तृत चिकित्सा का वर्णन तो योगरत्नाकरकार की अपनी विशेषता है। इसमें वर्णित चिकित्सा क्रम बहुत ही व्यावहारिक एवं दृष्ट फल हैं, दूसरे ग्रन्थों के समान सभी प्रकार के दृष्ट-श्रुत योगों का 'पीन कलेवर' संग्रह मात्र नहीं हैं। संक्षेप में केवल योगरत्नाकर का विधिवत् अध्ययन करके मनस्वी व्यक्ति यशस्वी चिकित्सक बन सकता है।

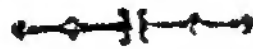
इतने उपयोगी ग्रन्थ का प्रणेता कितना निस्पृह एवं उत्सर्गशील था कि ग्रन्थ में कहीं भूल कर भी आत्मविषयक कुछ उल्लेख नहीं आने पाया है। प्रारम्भ में शक्ति एवं पुत्र गुरु हर-हरि-ब्रह्म-त्रिदेवों तथा गुरु की वन्दना और अन्त में 'यावच्चन्द्र दिवाकर' सद्वैद्यों द्वारा योगरत्नाकर के अध्ययन की कामना—बस यही उस महान् तपस्वी का आत्मनिवेदन है। ग्रन्थ में भावप्रकाश के उद्धरण होने से आचार्य भावमिश्र से परवर्ती होने का तथा दाक्षिणात्य जनपद से ही सभी हस्त लिखित प्रतियों की उपलब्धि एवं वहीं विशेष प्रचार होने से विद्वान्

अनुसन्धान कर्त्ताओं को केवल काल एवं स्थान का कुछ अनुमान हो सका है। भला जिस महापुरुष ने इतने विशाल ग्रन्थ में अपना नामोल्लेख तक नहीं किया—जानकर ही नहीं किया—उसका परिचयानुसन्धान धृष्टता नहीं तो और क्या है ? उस परम माहेश्वर महात्मा का सच्चा परिचय उसके ग्रन्थ का अधिक से अधिक अनुशीलन और प्रसार है। यद्यपि इस ग्रन्थ की भाषा बहुत ही सरल एवं सुबोध है, किन्तु वर्तमान समय में देववाणी के अध्येता कम होते जा रहे हैं, अतएव श्रम एवं सुविधा की खोज में ऐसे ग्रन्थ रत्नों का अध्ययन कम होता जा रहा है। इसी दृष्टि से ग्रन्थ का अधिक से अधिक प्रसार करने के लिए चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय के स्वत्वाधिकारी परम भागवत बाबू जयकृष्णदास-हरिदास गुप्त ने 'विद्योतिनी' हिन्दी भाषा टीका का प्रकाशन किया है। भाषा टीका में यथाशक्ति ग्रन्थ की मौलिकता सुरक्षित रखते हुए बिना किसी लाग-लपेट या विमर्श के केवल भाषान्तर मात्र सरल हिन्दी में किया गया है, जिससे पाठकों को बिना 'प्रक्षेप' के ग्रन्थ कर्त्ता के मूल विषय का रसास्वादन हो सके। यदि भाषा टीका के आकर्षण से पाठकों के मानस में मूल ग्रन्थ के अध्ययन एवं मनन की अभिरुचि जाग्रत हो जाय तो प्रकाशकों का श्रम सार्थक हो जायगा—क्योंकि रस राज की विकरण शक्ति उसकी छाया में नहीं हो सकती—और तब 'तावत्सद्भिरस पठन्तु परितः श्रीयोगरत्नाकरम्' यह निस्पृह तपस्वी की एकमात्र स्पृहा भी स्पृहणीय न रहेगी। 'साधु समाज भनिति सनमानू' की आशा में :—

विनीत—

ब्रह्मशङ्कर मिश्र

# विषयानुक्रमणिका



—o—


प्राप्तिस्थानम्—

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,

बनारस—१

॥ श्री ॥

# योगरत्नाकरः

## [ उत्तरार्द्धम् ]

### अथ शूलनिदानं व्याख्यास्यामः ।

शूलोत्पत्तिः हारीते—

अनङ्गनाशाय हरत्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजस्य ।
तमापतन्तं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ १ ॥
स विष्णुहुङ्कारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितः स शूलः ।
स पञ्चभूतानुगतं शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥ २ ॥

शूल की उत्पत्ति—कामदेव के नाश के लिये मकरध्वज पर कोप कर के छोड़े हुए शिव जी के त्रिशूल को आता हुआ सहसा देख कर भय से पीड़ित होकर विष्णु के शरीर में वह ( मकरध्वज ) प्रविष्ट हो गया। इस पर विष्णु ने हुंकार किया जिस हुंकार से मूर्च्छित होकर वह ( त्रिशूल ) भूमि पर गिर पड़ा और वही शूल नाम से प्रसिद्ध हुआ। वह पांचभौतिक शरीर को दूषता है। यही शूल की प्राथमिक उत्पत्ति है ॥ १-२ ॥

शङ्कुरोपणवत्तीव्रा यस्या रुक् सम्प्रजायते । त्रिशूलसम्भवं येन शूलमाहुः पुराविदः ॥ ३ ॥

जिसमें शूल गड़ाने के समान अकस्मात् पीड़ा हो अथवा छेदने के समान घाव हो उसे त्रिशूल से उत्पन्न शूल रोग पुरातत्त्व विशारदों ने कहा है ॥ ३ ॥

शङ्कुस्फोटनवच्चास्य यस्मात्तीव्रा च वेदना । शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छूलमिहोच्यते ॥४॥

इस रोग में शङ्कु स्थान को फोड़ने के समान तीव्र पीड़ा होती है इसलिये इसे 'शूल' कहते हैं ॥ ४ ॥

तस्य संख्यामाह—

पृथग्दोषैः समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् । सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

शूल का निदान—वातादिक पृथक् २ दोषों से, त्रिदोष से आम से और दो-दो दोषों के एकत्र कोप से ( द्वन्द्वज दोष से ) शूलरोग आठ प्रकार का होता है। इन सब प्रकार के शूलों में प्रायः वायु की ही प्रधानता रहती है ॥ १ ॥

वातिकशूलस्य कारण लक्षण चाह—

व्यायामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।
कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥ १ ॥
कषायतिक्तातिविरूढजान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् ।
विट्शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाष्यात् ॥ २ ॥
वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे ।
जीर्णे प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोपं समुपैति गाढम् ॥ ३ ॥

वातज शूल—अधिक व्यायाम, अधिक यान ( घोड़े-हाथी आदि की सवारी ) और अति मैथुन करने से अधिक जागने से, अधिक शीतल जल पीने से, मटर, मूंग, अरहर, कोदो और अति रूक्ष पदार्थ का सेवन, अध्यशन ( भोजन कर चुकने पर पुनः भोजन ) करने से, आघात

लगने से, अधिक कषाय तिक्त तथा अति रूक्ष (कठिन) अन्नादि पदार्थ, विरुद्ध (प्रकृति विरुद्ध, संयोग विरुद्ध तथा ऋतु (समय) विरुद्ध) पदार्थ, वल्लूर (सूखे हुए मांस) तथा सूखे हुए शाकादि के सेवन से, मल, शुक्र, मूत्र तथा वात के वेग का अवरोध करने से, अधिक शोक, उपवास तथा अधिक हँसने और बोलने से बढ़ा हुआ (कुपित) वायु हृदय, पार्श्व, पीठ, त्रिकदेश और मूत्राशय में शूल उत्पन्न कर देता है। यह शूल जीर्ण में (भोजन के पचने पर) प्रदोष काल में (संध्या में), वर्षा ऋतु में तथा शीतकाल में अधिक तीव्र होता है ॥ २ ३ ॥

मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विड्वातसंस्तम्भनतोदभेदैः ।
संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ४ ॥

बार २ शूल शमन होता है और बार २ शूल का वेग बढ़ जाता है और मल तथा अधोवायु का अवरोध और सूई चुभाने (भेदने) के समान पीड़ा ये सब लक्षण होते हैं। तथा यह (वातज) शूल स्वेद कर्म, अभ्यङ्ग (तैलमर्दनादि) तथा स्निग्ध एवं उष्ण पदार्थों के भोजन करने से शान्त होता है। ये उपरोक्त निदान तथा लक्षण वातज शूल के हैं ॥ ४ ॥

पैत्तिकस्य कारणं लक्षणं चाह—

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः ।
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ १ ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याऽऽशु करोति शूलम् ।
तृष्णामोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां स्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ॥ २ ॥

पित्तज शूल—अधिक क्षार युक्त पदार्थ, अति तीक्ष्ण-उष्ण और दाहकारक पदार्थ, तैल, सेम तिल की खली, कुलथी का यूष, अति कटु अम्ल, कांजी, सुरा आदि के भक्षण से अधिक क्रोध करने से, अग्नि सेवन, अधिक परिश्रम तथा धूप सेवन से, अधिक मैथुन करने और भोजन के विदग्ध होने से, पित्त दोष कुपित हो कर शूल रोग को उत्पन्न कर देता है, जिससे तृषा, मोह, दाह और नाभिस्थान में पीड़ा, स्वेद, मूर्च्छा, भ्रम और शोष होता है ॥ १-२ ॥

मध्यन्दिने कुप्यति चार्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च ।
शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि भोजनैश्च ॥ ३ ॥

इस शूल का कोप मध्याह्न, अर्धरात्र, ग्रीष्म और शरद ऋतु में अधिक होता है। यह (पित्तज) शूल शीतकाल में, शीत उपचारों से और स्वादु (मधुर) तथा शीतल पदार्थों के भोजन से शान्त होता है ॥ १-३ ॥

श्लैष्मिकस्य कारणं लक्षणं चाह—

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कुलीभिः ।
अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च श्लेष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ १ ॥

कफज शूल—आनूपदेश के जीवों के मांस, जलज (मत्स्यादि) जीवों के मांस, फटे-फटे दूध का खोवा, दूध के विकार दही आदि के अधिक सेवन, मांस-ईख, पिट्ठी आदि, खिचड़ी, तिल, पूरी आदि के अधिक सेवन तथा अन्यान्य इसी भाँति के कफ वर्धक कारणों से कफ कुपित होकर शूल उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

हृल्लासकासमदनारुचिसम्प्रसेकैरामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ।
भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं सूर्योदयेऽथ शिशिरे कुसुमागमे च ॥ २ ॥

इस (कफज) शूल में हृल्लास (उबकाई), कास, शिथिलता, अरुचि, लालास्राव, आमाशय में आर्द्रता कोष्ठ तथा सिर में गुरुता आदि लक्षण होते हैं। यह शूल सदा भोजन करने पर, सूर्योदय के समय, शिशिर ऋतु तथा वसन्त ऋतु में अधिक पीड़ा करनेवाला होता है। अर्थात् ये निदान तथा लक्षण कफज शूल के हैं ॥ २ ॥

सान्निपातिकमाह—सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्भिषक् सर्वभवं हि शूलम् ।
सुकष्टमेनं विषवज्रतुल्यं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १ ॥

सन्निपातज शूल—जिस शूल में सब दोषों के सभी प्रकार के लक्षण उपस्थित हों उसे वैद्य

सन्निपातज शूल जाने। यह शूल विष तथा वज्र के समान बड़ा घातक है। इसे सिद्ध वैद्य त्याग करते हैं। क्योंकि यह असाध्य है ॥ १ ॥

आमजमाह—आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यकानाहकफप्रसेकैः।
कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

आमज शूल—जिस शूल में आटोप (पेट में गुड़गुड़ाहट) उबकाई, वमन, शरीर की गुरुता, शरीर पर भीगे वस्त्र के समान भार होना, आनाह, मुख से कफ का स्राव होना, ये सब लक्षण हों तथा कफज शूल के लक्षणों के समान लक्षणों से युक्त हो उसे आमज शूल कहते हैं ॥ १ ॥

द्विदोषजमाह—

द्विदोषलक्षणैरेभिर्विज्ञेयं द्विदोषजम्। बस्तौ हृत्कण्ठपार्श्वेषु स शूलः कफवातिकः ॥ १ ॥

द्विदोषज शूल—जिस शूल में दो-दो दोषों के सम्मिलित लक्षण हों उसे द्वन्द्वज और जिस शूल में मूत्राशय, हृदय कण्ठ और पार्श्वदेश इन स्थानों में शूल होवे उसे वात-कफज शूल जानना चाहिये ॥ १ ॥

कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये च स शूलः कफपैत्तिकः। दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपैत्तिकः ॥ २ ॥

जिस शूल में कुक्षिस्थान, हृदय और नाभि के मध्य में शूल होवे उसे कफ-पैत्तिक जानना चाहिये। जिस शूल में घोर दाह तथा ज्वर हो उसे वात पैत्तिक जानना चाहिये ॥ २ ॥

तन्त्रान्तरे—वातात्मकं बस्तिगतं वदन्ति पित्तात्मकं चापि वदन्ति नाभ्याम्।
हृत्पार्श्वकुक्षौ कफसन्निविष्टं सर्वेषु देशेषु च सन्निपातात् ॥ १ ॥

तन्त्रान्तर से द्विदोषज, त्रिदोषज शूल—जो शूल मूत्राशय में हो वह वातज कहा जाता है, जो नाभिस्थान में हो वह पित्तज कहा जाता है तथा जो हृदय-पार्श्व देश तथा कोख में हो वह कफज कहा जाता है तथा जो सम्पूर्ण स्थानों में हो वह सन्निपातज कहा जाता है ॥ १ ॥

साध्यासाध्यमाह—

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः। सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥

साध्यासाध्यता—एक दोष से उत्पन्न हुआ शूल साध्य होता है, दो दोषों से उत्पन्न हुआ कष्टसाध्य और सब दोषों से उत्पन्न हुआ शूल तथा अनेक उपद्रवों से युक्त शूल अत्यन्त कठिन तथा असाध्य होता है ॥ १ ॥

उपद्रवानाह—

वेदनातितृषा मूर्च्छा आनाहो गौरवारुची। भ्रमो ज्वरः कृशत्वं च बलहानिस्तथैव च ॥
कासः श्वासश्च हिक्का च शूलस्योपद्रवाः स्मृताः ॥ १ ॥

शूल के उपद्रव—शूल रोग में यदि अतिपीड़ा, तृषा, मूर्च्छा, आनाह, गुरुता अरुचि, भ्रम, ज्वर कृशता, बल की हानि, कास, श्वास और हिक्का हो तो इन्हें उपद्रव जानना चाहिये।

## अथ सामान्यतः शूलचिकित्सा।

वमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः। क्षारश्चूर्णाश्च गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥

सामान्यतः शूल चिकित्सा—शूल रोग की शान्ति के लिये वमन कर्म, लङ्घन कर्म स्वेदन कर्म, पाचन, फलवर्ति, क्षार चूर्ण और क्षार गुटिका आदि का प्रयोग उत्तम होता है ॥ १ ॥

## अथ वातशूलचिकित्सामाह—

ज्ञात्वा तु वातजं शूलं स्नेहस्वेदैरुपाचरेत्। पायसैः कृशरापिण्डैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करैः ॥ १ ॥
आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत्। तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ २ ॥

वातशूल चिकित्सा—वातजशूल जान कर उसके लिये स्नेहन कर्म और स्वेदन कर्म करना चाहिये और खीर, खिचड़ी और स्निग्ध (स्नेह युक्त) मांस रस आदि पिलाना चाहिये। यह वात आशुकारी (शीघ्रता करने वाला) है इसलिये इसे शीघ्रता से जीतना चाहिये (शमन करना चाहिये) इस वातज शूल से युक्त रोगी के लिये स्वेद कर्म सुखकर है ॥ १-२ ॥

तिलकल्कस्वेदः—

तुषवारिविनिष्पिष्टतिलकल्कोष्णपोटली। भ्रामिता जठरस्योर्ध्वं मुहुः शूलं विनाशयेत् ॥ १ ॥

तिलकल्क स्वेद—कांजी के साथ तिल को पीस कर कल्क बना कर पोटली में बांध कर गरम कर उदर के ऊपर बार २ घुमाने से शूल को ( वातिक शूल को ) नष्ट करता है ॥ १ ॥

लेपसेकौ—

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनं काञ्जिकान्वितम् । बिल्वैरण्डतिलैर्वाऽपि पिष्टैरम्लेन पोटली ॥ १ ॥

लेप और सेक—मैन फल को कांजी के साथ पीस कर लेप बना कर नाभि स्थान पर लेप करने से अथवा बेल की छाल, एरण्डमूल की छाल और तिल इनको समान लेकर कांजी के साथ पीस कर पोटली में बांध कर सेक करने से वातिक शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

कुलत्थादियूष—वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः ।

ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ १ ॥

कुलत्थादि यूष—सेन्धा नमक, सोंठि और अनार दाना इनके चूर्णों से युक्त कुलथी के यूष में स्नेह ( घृत मिलाकर पिलाने से वातिक शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

बलादिक्वाथ—

बलापुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः । क्वाथः सहिङ्गुलवणः पीतो वातरुजं जयेत् ॥ १ ॥

बलादि क्वाथ—खरेटी, पुनर्नवा एरण्डमूल, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी और गोखरू समभाग लेकर क्वाथ कर इसमें शुद्ध हींग और सेन्धा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वातज शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

अथवा नागरादि—

नागरैरण्डयोः क्वाथः क्वाथ इन्द्रयवस्य वा । हिङ्गुसौवर्चलोपेतो वातशूलनिवारणः ॥ १ ॥

नागरादि क्वाथ—सोंठि और एरण्डमूल अथवा इन्द्रजौ का क्वाथ बना कर इसमें ( दोनों क्वाथों में ) शुद्ध हींग और सौवर्चल नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वातज शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

वचाद्विचूर्णम्—वचाभसौवर्चलनागराणां सरामठानां सममागिकानाम् ।

चूर्णं कदुष्णेन जलेन पीतं समीरशूलं विनिहन्ति सद्यः ॥ १ ॥

वचादि चूर्ण—वच, सौवर्चल नमक, सोंठि और शुद्ध हींग इन द्रव्यों को समभाग लेकर चूर्ण कर थोड़े गरम जल के अनुपान से पान करने से वातज शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

राजिकादिलेप—

राजिकाशिग्रुकल्कं च गोतक्रेण च पेषितम् । तेन लेपेन हन्त्याशु शूलं वातसमुद्भवम् ॥ १ ॥

राजिकादि लेप—राई और सहिजन की छाल को गाय के तक्र के साथ पीसकर कल्क बना कर उदर पर लेप करने से शीघ्र वात से उत्पन्न शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादिलेप—

हिङ्गु तैलं सलवणं गोमूत्रेण विपाचितम् । नाभिस्थाने प्रदातव्यं यस्य शूलं सवेदनम् ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादि लेप—हींग, तिल का तेल और सेन्धा नमक इनको गोमूत्र में मिलाकर पकाकर जिसे बड़ी पीड़ा के साथ वातिकशूल हो उसके नाभिस्थान पर लेप करना चाहिये । इससे वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

शूलेनाटोपे—

तैलमैरण्डजं वाऽपि यवमूलस्य वारिणा । पीतं निहन्ति साटोपं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ॥ १ ॥

शूल और आटोप में चिकित्सा—एरण्ड का तैल दशमूल के क्वाथ में मिश्रित कर अथवा शुद्ध हींग और सौवर्चल नमक के चूर्ण को दशमूल के क्वाथ में मिश्रित कर पान करने से आटोप सहित वातिकशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

## अथ पित्तशूलचिकित्सामाह ।

वामयेत्पित्तशूलार्तं पयोऽक्षेद्रसादिभिः । पश्चाद्विरेचयेत्सम्यक्पित्तगुल्मविरेचनैः ॥ १ ॥

पित्तशूल चिकित्सा—प्रथम पित्तजशूल के रोगी को परवर के पत्र और ईख के रस आदि से ( आदि पद से अन्य वामकयोग से ) वमन कराना चाहिये । पश्चात् पित्तज गुल्म में कहे हुए विरेचक योगों के द्वारा भलीभांति विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

शतावर्यादिक्वाथ—शतावरी समधुयष्टिका पाठ्याकुशगोक्षुरैः।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम्। पित्तशूलास्रदाहघ्नं हिक्काज्वरवमिच्छिदम्॥१॥

शतावर्यादि क्वाथ—शतावरी, मुलेठी, पाढ़, कुश, गोखरू सम भाग लेकर क्वाथ बनाकर शीतल कर उसमें गुड़ पुराना और मधु इसका प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तशूल, रक्तरोग (स्राव), दाह, हिक्का, ज्वर और वमन नष्ट होता है॥१॥

बृहत्यादिक्वाथ—

बृहतीगोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुवालिका। पीताः पित्तभवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम्॥१॥

बृहत्यादिक्वाथ—बड़ी कटेरी, गोखरू, एरण्डमूल, कुश की जड़, काश (कांदी) की जड़, ईख की जड़, सुगन्धवाला समान भाग लेकर क्वाथ कर पान करने से कठिन से कठिन पित्तशूल शीघ्र नष्ट होता है॥१॥

त्रिफलारग्वधादि—

त्रिफलारग्वधक्वाथः शर्कराक्षौद्रसंयुतः। रक्तपित्तहरो दाहपित्तशूलनिवारणः॥१॥

त्रिफलारग्वधादि क्वाथ—आंवला, हर्रा, बहेड़ा और अमलतास समभाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर शक्कर और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तपित्त दाह तथा पित्तशूल को नष्ट करता है॥१॥

त्रिफलादि—

त्रिफलारिष्टयष्ट्याह्वकटुकारग्वधैः शृतम्। पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये॥१॥

त्रिफलादि क्वाथ—आंवरा, हर्रा, बहेरा, नीम की छाल, मुलेठी, कुटकी, अमलतास का गूदा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से दाह और शूल को शमन करता है॥१॥

शतावरीस्वरस प्रयोग—

शतावरीरसं क्षौद्रयुक्तं प्रातः पिबेन्नरः। दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तगदापहम्॥१॥

शतावरी स्वरस—शतावरि स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर प्रातः काल पान करने से दाह और शूल शान्त होकर सब प्रकार के पित्तरोग नष्ट होते हैं॥१॥

धात्र्यादियोग—

धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्तीगोस्तनाम्बुना। पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिवारणम्॥१॥

धात्र्यादि योग—आँवले का स्वरस अथवा विदारीकन्द का स्वरस तथा त्रायमाण और मुनक्का इनके क्वाथ शकरा के प्रक्षेप को देकर पान करने से पित्तशूल शमन होता है॥१॥

धात्रीचूर्णादि—

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम्। सगुडां घृतसम्मिश्रां भक्षयेद्वा हरीतकीम्॥१॥

धात्रीचूर्ण—आँवले के चूर्ण को मधु के साथ लेह बनाकर अथवा हर्रा के चूर्ण को पुराने गुड़ और घृत के साथ मिलाकर भक्षण करने से पित्तजशूल नष्ट होता है॥१॥

गुडादियोगा—

गुडशालियवक्षीरं सर्पिर्दुग्धं विरेचनम्। जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनः॥१॥

गुडादियोग—गुड़ पुराना, शालिधान, जौ और दूध इनका खीर पिलाने से, तथा दूध में घृत मिलाकर पिलाने से, विरेचन देने से, जांगल जीवों के मांस का रस पिलाने से पित्तजशूल शमन होता है॥१॥

## अथ कफशूलचिकित्सामाह।

शाल्यन्नं जाङ्गलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम्। मद्यानि जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत्॥१॥

कफ शूल चिकित्सा—कफशूल में शालिधान्य, जांगल जीवों का मांसरस, नीम, कटुरसवाले पदार्थ, मद्य और पुराने गेहूं इनका प्रयोग करना चाहिये॥१॥

त्रिलवणादिचूर्णम्—

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम्। सुखोष्णेनाम्भसा पीतं कफशूलहरं परम्॥१॥

त्रिलवणादि चूर्ण—सेंधानमक, सोंचर नमक (सौवर्चल), बिड़नमक, पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल सोंठि और हुरहींग, समभाग लेकर चूर्णकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से शूल को नष्ट करने के लिये उत्तम है ॥ १ ॥

## त्रिदोषशूलचिकित्सामाह।

शङ्खचूर्णयोग—

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गु व्योषसंयुतम्। उष्णोदकेन तत्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ १ ॥

शङ्खचूर्णयोग—शङ्खभस्म, सेंधानमक, हुरहींग सोंठि, पीपरि और मरिच सम भाग लेकर चूर्णकर उष्णोदक के अनुपान से पान करने से त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

मण्डूरावलेह—

गोमूत्रसिद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम्। विलिह्य मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २ ॥

मण्डूरावलेह—गोमूत्र के योग से सिद्ध किया हुआ मण्डूरभस्म और हर्रा-बहेरा तथा आँवला इनका चूर्ण, सब समान भाग लेकर मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से त्रिदोषजशूल नष्ट होता है ॥ २ ॥

## अथ आमशूलचिकित्सामाह।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी। दोषमाहरं सर्वं यच्चाग्निविवर्धनम् ॥ १ ॥

आमशूल चिकित्सा—आम से उत्पन्न शूल में कफजशूल को नष्ट करने वाली सम्पूर्ण क्रियायें तथा आम को नष्ट करनेवाली सम्पूर्ण अन्य क्रिया (औषध पथ्यादि) और जो २ अग्निवर्धक क्रियायें हैं वह करनी चाहिये ॥ १ ॥

चित्रकादिक्वाथ—

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यसकं शृतम्। सहिङ्गुसैन्धवविडमामशूलहरं परम् ॥ १ ॥

चित्रकादि क्वाथ—चित्रकमूल, पिपरामूल, एरण्डमूल, सोंठि, धनियां और छागलवाना सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें हुरहींग, सेंधानमक और बिड़नमक का प्रक्षेप देकर सेवन कराने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

एरण्डादिक्वाथ—एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्गपाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः।

सक्षारहिङ्गुलवणो रुबुतैलमिश्रः श्रोण्यंसपृष्ठहृदयस्तनमध्यशूले ॥ १ ॥

एरण्डादि क्वाथ—एरण्डमूलत्वक, बेल की छाल, छोटी कटेरी, बड़ी कटरी, बिजौरा नीबू, पाषाणभेद, सोंठि, पीपरि, मरिच, सम भाग लेकर क्वाथ कर इसमें यवाक्षार, हुरहींग, सेंधानमक और एरण्डतैल का प्रक्षेप देकर पान करने से श्रोणि, अंसदेश, पीठ, हृदय और स्तन की पीड़ा शमन होती है ॥ १ ॥

एरण्डादितैलयोग—एरण्डतैलं षड्भागं लशुनस्य तथाष्टकम्।

एकं हिङ्गु त्रिसिन्धूत्थं सर्वमेकत्र मर्दयेत्। त्रिनिष्कं भक्षयेच्चानु ह्यामशूलप्रशान्तये ॥ १ ॥

एरण्डतैलादियोग—एरण्ड का तैल ६ भाग, शुद्ध लहसुन आठभाग, हुरहींग एक भाग, सेंधानमक तीन भाग, एकत्र चूर्णकर योग्य मात्रा अनुपान के द्वारा (उष्णोदक से) ३ निष्क (३ माशे) की मात्रा से [ कहीं ९ टङ्क मात्रा की भाषा भी है ] सेवन करने से आमशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिङ्गुत्रिगुणसैन्धवं तस्मात्त्रिगुणतैलमैरण्डम्। तत्त्रिगुणरसोनरसं गुल्मोदावर्तशूलघ्नम् ॥ १ ॥

शुद्ध हींग १ भाग, सेंधानमक ३ भाग, एरण्डतैल ९ भाग, लहसुन का रस २७ भाग इन सबको एकत्र मिलाकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से गुल्म उदावर्त और शूल को नष्ट करता है ॥ १ ॥

## अथ द्वन्द्वजशूलचिकित्सा।

कण्टकार्यादिक्वाथ—निदिग्धिका बृहत्यौ च कुशकाशोरुबूकाः।

गर्दभूरण्डमूलं च वारिणा सह पाचयेत्। पित्तानिलकफोद्भूते शूले पित्तानिलात्मके ॥ १ ॥

कण्टकार्यादि क्वाथ—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कुश की जड़, कास की जड़, रेंड की जड़,

मुण्डी वाला, गोखरू और एरण्डमूल सम भाग लेकर क्वाथकर शीतल होने पर शक्कर और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने के लिये पित्तज वातज मिश्रित द्वन्द्वज शूल में देना चाहिये ॥ १ ॥

पटोलादि —

पटोलत्रिफलारिष्टामृता क्षौद्रयुतं पिबेत् । पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

पटोलादि क्वाथ—परवर का पत्ता, हर्रा, आंवरा, बहेरा, नीम की छाल, गुर्च इन्हें समभाग लेकर क्वाथकर शीतल होनेपर मधु का प्रक्षेप देकर पित्त-कफज शूल, ज्वर, वमन, दाह और शूल में पान करने के लिये देना चाहिये । इससे ये रोग शमन होते हैं ॥ १ ॥

द्राक्षादिक्वाथ —

द्राक्षाटरूषयोः क्वाथः श्लेष्मपित्तार्त्तं जयेत् । पित्तश्लेष्मोद्भव शूल विरेकवमनैर्जयेत् ॥ १ ॥

द्राक्षादि क्वाथ—दाख और अडूसा समान भाग लेकर क्वाथ कर सेवन करने से कफ-पित्तज शूल को नष्ट करता है । पित्त-कफज शूल को विरेचन तथा वमन कराकर जीतना चाहिये ॥ १ ॥

क्षाराम्बुयोग —

क्षारोदकं पिबेदुष्णं पिप्पलीलवणान्वितम् । वातश्लेष्मोद्भवं शूलं कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥१॥

क्षाराम्बुयोग—क्षार का जल ( यवक्षारादिकों का घोल ) गरमकर उसमें पीपरि के चूर्ण और सेंधानमक मिलाकर पान करने से वात-कफज शूल और कुक्षिशूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

## शूले साधारणविधिः ।

त्रिफलादिविरेचनम्—

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रक्षौद्रक्षीररसैः पृथक् । एरण्डतैलं द्विगुणैर्हितं शूले विरेचनम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि विरेचन—समान मिलित त्रिफला का क्वाथ, गोमूत्र, मधु, दूध अथवा मांसरस इनमें से कोई एक द्रव्य दो भाग और एरण्डतैल एकत्र कर सेवन करने से विरेचन होकर शूल शमन होता है ॥ १ ॥

बीजपूरादिस्वरस —

बीजपूररसः पानात् मधुक्षारयुतो जयेत् । पार्श्वहृद्वस्तिशूलानि कोष्ठवायुं च दारुणम् ॥ १ ॥

बीजपूरादि स्वरस—बिजौरा नीबू के स्वरस में मधु और क्षार ( यवक्षार ) मिलाकर पान करने से पार्श्व, हृदय और बस्ति का शूल शमन होता है और कोष्ठ का कठिन वात भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्यादिक्वाथ —पथ्यासदारुवचपुष्करमूलयुक्तो निष्क्वाथ्य हिङ्गुजटिलातिविषासमेताम् ।

पीत्वा सुखोष्णमथ वातकृतं सशूलमामोद्भवं कफकृतं च निहन्ति शूलम् ॥१॥

पथ्यादि क्वाथ—हर्रा, देवदारु और पुष्करमूल समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें शुद्ध हींग, पीपरि और अतीस के चूर्ण का प्रक्षेप देकर कुछ गरम रहे तभी पीने से वातजशूल आमशूल और कफज शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मातुलुङ्गादि —

मातुलुङ्गरसो वाऽपि शिग्रुक्वाथस्तथा परः । सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्वस्तिशूलहा ॥ १ ॥

मातुलुङ्गादि योग—बिजौरा नीबू के रस अथवा सहिजन के क्वाथ में यवक्षार और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से पार्श्व, हृदय और बस्ति शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

अन्यच्च—मातुलुङ्गरसे सर्पिः सहिङ्गु लवणान्वितम् ।

सुखोष्णं पाययेत्तद्धि विड्विबन्धानुलोमनम् । कुक्षिहृत्पार्श्वशूलेषु वेदना चोपशाम्यति ॥ १ ॥

बिजौरे नीबू के रस में गोघृत, शुद्ध हींग और सेंधानमक मिलाकर कुछ गरम कर पिलाने से मलावरोध नष्ट होता है और वायु का अनुलोमन होता है तथा कुक्षि हृदय और पार्श्वदेश के शूल की पीड़ा शमन होती है ॥ १ ॥

बिल्वमूलादि—

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् । हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ १ ॥

बिल्वमूलादि क्वाथ—बेल की जड़, एरण्डमूल चित्रकमूल, सोंठि इनके क्वाथ में शुद्ध हींग और सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर सेवन करने से शीघ्र शूल शमन होता है ॥ १ ॥

हरीतकीयोग—

मूत्रान्तःपाचितां शुष्कां लोहचूर्णसमन्विताम्। सगुडामभयां दद्यात्सर्वशूलोपशान्तये ॥१॥

हरीतकी योग—गाय के मूत्र में हरड़ को पाक कर सुखा एवं इसमें समान लोहभस्म और गुड़ मिला कर सेवन करने से सब प्रकार के शूल शमन होते हैं ॥ १ ॥

लोहत्रिफलायोग—

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम्। प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ १ ॥

लोहत्रिफला योग—तीक्ष्ण लोह के भस्म में सम भाग त्रिफला का चूर्ण मिला कर-मधु और गोघृत के अनुपान से सेवन करने पर सब प्रकार के शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

## अथ चूर्णानि।

तत्रादौ तुम्बुर्वादि चूर्णम्।

चूर्णं तुम्बुरुदाडिमत्रिलवणक्षाराजमोदाभयाहिङ्ग्वूषणपुष्कराह्वयकृतं कुम्भत्रिभागान्वितम्।
मन्दोष्णेन जलेन पीतमखिलं शूलं सगुल्मोदरं
ह्याध्मानाजीर्णविबन्धमामपवनानाहौ च शीघ्रं जयेत् ॥ १ ॥

तुम्बुर्वादि चूर्ण—तेजबल का फल, शुद्ध-हींग, सेंधानमक, सौंचर नमक, बिड़नमक, यवक्षार, अजवायन, हर्रा, वायबीरंग, सोंठि, मरिच, पीपरि और पुष्कर मूल प्रत्येक एक २ भाग और दन्ती का मूल ३ भाग लेकर चूर्ण कर थोड़े उष्णजल से सेवन करने (पान करने से) सम्पूर्ण शूल, गुल्म, उदर, आध्मान, अजीर्ण, विबन्ध (वात एवं मल का अवरोध) आमवात और आनाहरोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विश्वाद्यम्—विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्भसा तु क्षारद्विहिङ्गुलवणत्रयपुष्कराणाम्।
चूर्णं पिबेद् हृदयपृष्ठकटिग्रहामपक्वाशयार्तिमुदरं ज्वरगुल्मशूली ॥ १ ॥

विश्वादि योग—सोंठि, एरण्डमूल, दशमूल को पृथक २ इन औषधियों और जौ समान लेकर क्वाथ कर उसमें यवक्षार, सज्जीक्षार शुद्ध हींग, सेंधा नमक, सौंचर नमक, बिड़ नमक, तथा पुष्करमूल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से हृदय पीठ, कटिग्रह आमाशय और पक्वाशय का कठिन शूल, ज्वर तथा गुल्म शूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादि—हिङ्ग्वम्लत्रिपटूग्रपञ्चकटुकाजाजीवृक्षाम्लदीप्याह्वकं
पाठाचव्यशमीबृहत्यमरदारुक्षारसारायसम्।
हिध्माध्मानविबन्धवर्ध्मकसनश्वासाग्निमान्द्यादपि
प्लीहार्शोऽनिलशूलगुल्मगलहृद्रोगाश्मपाण्डुप्रणुत् ॥ १ ॥

हिंग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, अम्लवेत, सेंधा नमक, सौंचर नमक, बिड़नमक, वच, पिपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल सोंठि, काली मरिच कपूर, वृक्षाम्ल (कोकम, शुक कामा अमलकुरा) अजवाइन, अकरकरा, पुरइन पाढ़ी, जीरा, बनभाटन की जड़, हाऊबेर, यवक्षार, सज्जीखार, लोहभस्म और इन्हें समान लेकर प्रथम सब औषधियों का चूर्ण बना कर तब लोहभस्म मिलाकर भली-भाँति मर्दन कर इस चूर्ण को यथा योग्य मात्रा से सेवन करने से हिक्का, आध्मान, विबन्ध वृद्धि, कास, श्वास, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, अर्श सब प्रकार के शूल, गुल्म, गलरोग, हृद्रोग, अश्मरी और पाण्डु ये सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

नारायणचूर्णम्—

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृत्तं स्यात्पलोन्मितम्। दन्त्याः पलं च विज्ञेयं चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥१॥
कर्षोन्मितं लिहेद्रात्रौ क्षौद्रेणाऽऽध्माननाशनम्। पार्श्वहृद्बस्तिकफपित्तशूलानि नाशयेत् ॥२॥

नारायण चूर्ण—पीपरि का चूर्ण १ कर्ष निशोथ चूर्ण तथा दन्ती एक १ पल सबको एकत्र मर्दन कर इस चूर्ण को १ कर्ष की मात्रा से मधु के अनुपान से चाटने से आध्मान रोग, मल की कठिनता, उदर और कफ पित्त के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शतपदी—

विश्वाभार्ङ्गी पद्मरसं छागानि पर्ल पलम्। सम्पूर्ण्य [illegible] ॥ १ ॥

वार्द्धं प्रस्थपलं तप्त्वा निषिञ्चेत्सप्तवारतः। ततस्तमर्दं विशोष्याथ हिङ्गु व्योषं चतुष्पलम्॥२॥
बलिसूतविषाणां गन्धकार्धं च पृथक्पृथक्। एतत्समस्तं सम्मर्द्य जम्बीराम्लैर्दिनत्रयम्॥३॥
बदरास्थिप्रमाणेन वटिकां कारयेद् बुधः। द्वेऽप्येके भक्षयेत्प्रातः कोष्णतोयं पिबेदनु॥४॥
सर्वशूलं हरेद्गुल्ममजीर्णं परिणामजम्। अतिसारगदं हन्याद्ग्रहणीं च विशेषतः॥५॥

शङ्खवटी—इमली का क्षार ५ पल, पाँचों नमक पृथक् २ पल पल पल लेकर चूर्ण कर जमीरी नींबू के दो प्रस्थ रस में मिला देवे पश्चात् इसमें शुद्ध शंख १० पल लेकर अग्नि पर तपा २ कर सात बार बुझावे, फिर इसको भली-भाँति मर्दन कर सुखा कर इसमें शुद्ध हींग सोंठि, मरिच, पीपरि इनका चूर्ण ४-४ पल मिलावे और शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, शुद्ध विष इनसे आधा १ पल लेकर पारद गन्धक की कज्जली कर फिर विष उसके साथ मर्दन कर सबको एकत्र कर जमीरी नींबू के रस में ३ दिन तक मर्दन कर बेर की गुठली के प्रमाण की वटी बना कर प्रातःकाल एक २ वटी उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के शूल गुल्म अजीर्ण, परिणाम शूल, अतीसार रोग और विशेष कर ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं॥१-५॥

सूर्यप्रभावटी—व्योषमग्निर्यवानीहिङ्गुजीरणद्वयं विषं निम्बुक-
द्रावैरार्द्रकजे रसैर्विमर्दितं शुद्धं मरीचोपमा।
कर्तव्या वटिकाऽथ सा दिनमुखे भुक्ता कवोष्णाम्बुना।
शूलं ह्यष्टविधं निहन्ति सहसा सूर्यप्रभा नामतः॥१॥

सूर्यप्रभावटी—सोंठि, पीपरि, मरिच, चित्रकमूल, बच, चित्रकमूल शुद्ध हींग, जीरा और कृष्ण जीरा, शुद्ध मीठा विष, लेकर उत्तम चूर्ण कर जमीरी नींबू के रस में मर्दन करे फिर अदरक के रस में मर्दन कर मरिच के समान वटी बना कर प्रातःकाल उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से आठों प्रकार के शूलों को यह 'सूर्यप्रभा' नाम की वटी सहसा नष्ट कर देती है॥१॥

खण्डपिप्पली—

कणाचूर्णं तु कुडवं षट्पलं हविषस्तथा। पलषोडशकं खण्डं शतावर्याः पलाष्टकम्॥१॥
क्षीरप्रस्थद्वये सार्धं लेहीभूते तदुद्धरेत्। त्रिजातमुस्तधान्याक शुण्ठीमांसीद्विजीरकम्॥२॥
अभयाऽऽमलकं चैव चूर्णं द्वादशकार्षिकम्। तदर्धं मरिचं भागं सारं खादिरमेव च॥३॥
मधुत्रिपलसंयुक्तं खादेत्सिद्धं यथाबलम्।
शूलारोचकहृल्लासच्छर्दिपित्ताम्लरोगनुत्। अग्निसन्दीपनी हृद्या खण्डपिप्पलिका मता॥४॥

खण्डपिप्पली योग—पीपरि का चूर्ण एक कुडव (आधासानी) गोघृत ६ पल, शर्करा १६ पल शतावरि स्वरस ८ पल और गोदुग्ध २॥ प्रस्थ इनको लेकर अवलेह पाक की विधि से पाक करे जब लेह सिद्ध हो जावे तब उतारकर उसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागरमोथा, धनियाँ सोंठि, जटामासी, जीरा और कृष्णजीरा, हर्रा और आँवला इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण पृथक् २ आरद २ कर्ष लेवे और मरिच का चूर्ण ६ कर्ष, खैर का चूर्ण १२ कर्ष लेकर एकत्र मिलाकर मर्दन कर शीतल होने पर मधु ३ पल मिलाकर रख लेवे। इस अवलेह को अग्निबल के अनुसार सेवन करने से शूल, अरुचि, उबकाई, वमन और अम्लपित्तरोग नष्ट होवे हैं और यह लेह अग्नि को दीप्त करता है और हृदय का हितकर है। इसका नाम खण्डपिप्पली (लेह) है॥१-४॥

घृतम्—

घृताच्चतुर्गुणो देयो मातुलुङ्गरसो दधि। शुष्कमूलककोलाम्लकषायो दाडिमाम्भसा॥१॥
बिडसौवर्चलक्षारं पञ्चकोलयवानिभिः। पाठामूलककल्केन सिद्धं शूले घृतं मतम्॥२॥
हृत्पार्श्वशूले श्वासे कासे हिक्कां तथैव च। वर्मगुल्मप्रमेहार्शोवातव्याधींश्च नाशयेत्॥३॥

घृत प्रकरण—गाय का मूर्च्छित घृत एक प्रस्थ और घृत से चौगुना मातुलुङ्ग (बिजौरा) नींबू का रस, दही, शुष्कमूलक (सखीमूली) का क्वाथ बेर के फल अथवा अम्लवेत के फल का क्वाथ और अनार का रस प्रत्येक ४ प्रस्थ लेकर पृथक् २ पाककर इसमें कालीमिर्च, सेंधानमक यवाक्षार पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्रकमूल, सोंठि, अजवाइन, पुरइनपाढी की जड़, समान मिलित ½ प्रस्थ लेकर कल्ककर उपर्युक्त औषधियों में मिलाकर घृत सिद्ध कर उतार छानकर इस घृत का

सेवन करने से शूल में उत्तम लाभ करता है और उन्य तथा पार्श्वशूल, श्वास, कास, हिक्का, हृद्रोग, गुल्म, प्रमेह, अर्श और वातव्याधियों को नष्ट करता है॥ १-२ ॥

## अथ रसाः।

### शूलगजकेसरीरस—

रसविषगन्धकपर्दक्षारेण सिन्धुपिप्पलीविश्वैः। अहिवल्लीरसपिष्टैः शूलेभहरिर्हि गुञ्जोऽयम्॥

शूलगजकेसरीरस—शुद्धपारद, शुद्धमीठा विष, शुद्धगन्धक, कौड़ीभस्म, यवाक्षार, सेंधानमक, पीपरि का चूर्ण और सोंठि का चूर्ण समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर सबको एकत्र मिलाकर पान के रस में मर्दन कर २ रत्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह शूलगजकेसरी नामक रस शूल तथा अन्य कई प्रकार के रोगों को नष्ट करता है॥ २ ॥

अन्यच्च—क्षारं कपर्दाहिविषं पटुश्च व्योषं च सम्मर्द्य भुजङ्गवल्ल्या।
रसेन गुञ्जाप्रमिताः प्रदिष्टाः समीरशूलेभहरिः प्रचण्डः॥ १ ॥

यवाक्षार, कौड़ीभस्म, शुद्धमीठा विष, सेंधानमक, सोंठि, मरिच, पीपरि, समान भाग लेकर उत्तमचूर्ण कर पान के रस के साथ मर्दन कर १ रत्ती के प्रमाण की वटी बनाकर सेवन करने से शूल नष्ट होता है इसका नाम 'समीरशूल गजकेसरी' है॥ १ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम्।

पटोलं कारवेल्लं च वास्तूकं शिग्रुकं तथा। सामुद्रं लशुनं चाब्दं शालिः संवत्सरोषितः॥१॥
एरण्डतैलं सुरभीजलं च तप्ताम्बु जम्बीररसोऽपि कुष्टम्।
लघूनि च क्षाररजांसि चेति वर्गो हितः शूलगदार्दितेभ्यः॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—परवर, करेला, बथुआ, सहिजन, सामुद्रनमक, लहसुन, एक वर्ष का पुराना शालिधान का चावल, एरण्डतैल, गोमूत्र, उष्णजल, जमीरी नीबू का रस, कूट, लघु पदार्थ और क्षार चूर्णादि ये सब शूल के रोगियों के लिये हितवर्ग (हितकर अथवा पथ्य) कहे गये हैं॥१-२॥

विरुद्धान्यन्नपानानि जागरं विषमाशनम्। रूक्षतिक्तकषायाणि शीतलानि गुरूणि च॥३॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं वैदलं कटुकानि च। वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः॥ ४ ॥

विरुद्ध भोजन, रात्रि जागरण, विषम भोजन, रूखा, तिक्त, कषाय, शीतल और गुरु पदार्थ, व्यायाम, मैथुन, मदिरा, दाल, कटु पदार्थ, वेगावरोध (मूत्रमलादि का अवरोध), शोक और क्रोध ये सब शूल का रोगी त्याग दे अर्थात् ये अपथ्य हैं॥ ३-४ ॥

## अथ परिणामशूलनिदानप्रारम्भः।

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः सन्निहितस्तदा। कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्बली॥ १ ॥

परिणाम शूल का निदान—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित हुआ बलवान् वायु कफ और पित्त में व्याप्त होकर शूल को उत्पन्न करने वाला होता है॥ १ ॥

### तन्त्रान्तरे—

यदा कफः प्रच्युतः स्यात् पित्तेन सह मूर्च्छितः। वायुमादाय कुरुते शूलं जीर्यति भोजने॥१॥
कुक्षौ जठरपार्श्वेषु नाभ्यां वस्तौ स्तनान्तरे। पृष्ठमूलप्रदेशेषु सर्वेष्वेषु वा पुनः॥ २ ॥

जब कफ अपने स्थान च्युत होकर पित्त के साथ मूर्च्छित हो जाता है तब वायु उसको लेकर भोजन के पचते समय में शूल को उत्पन्न करता जिससे कोखों में, उदर में, पार्श्वस्थान में, नाभि स्थान में, मूत्राशय में, स्तनों में पृष्ठमूल (त्रिक देश) भाग में शूल होता है॥ १-२ ॥

भुक्तमात्रेऽथवा वान्ते जीर्णे चान्ने प्रशाम्यति। षष्टिकव्रीहिशाल्यन्नभोजनेन च वर्धते॥ ३ ॥

भोजन कर लेने पर, वमन हो जाने पर तथा अन्न के जीर्ण हो जाने पर शूल में शान्ति आ जाती है। साठी धान और शालिधान के भात के सेवन से बढ़ता है॥ ३ ॥

तन्वीनामाश्रयं शूलं दुर्विज्ञेयं महागदम्। आहाररसवाहानां स्रोतसां दुष्टिहेतुकम्॥ ४ ॥

यह शूल भी आहार के रसों को वहन करने वाली नाड़ियों के दूषित होने के कारण उत्पन्न हुआ दुर्विज्ञेय महारोग को परिणाम शूल कहते हैं॥ ४ ॥

केचित्त्वन्नद्रवं प्राहुरन्ये सर्वत्रिदोषजम्। पक्तिशूलं वदन्त्येके केचिदन्नविदाहजम् ॥ ५ ॥

कोई २ आचार्य उसे अन्नद्रव शूल अथवा पक्तिदोष से उत्पन्न ( पक्ति शूल ) कहते हैं तथा कोई आचार्य 'अन्नविदाहज शूल' कहते हैं ॥ ५ ॥

तस्य सामान्यलक्षणमाह—

भुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम्। तस्य लक्षणमेतद्धि समासेन प्रकीर्त्यते ॥ १ ॥

परिणाम शूल के सामान्य लक्षण—जिस शूल में भोजन के पचने के समय शूल हो उसे 'परिणामज शूल' कहते है। उसका लक्षण यहाँ संक्षेप से कहते हैं ॥ १ ॥

वातिकमाह—

आध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धारतिवेपनैः। स्निग्धोष्णोपशमं प्रायो वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ १ ॥

वातादिक परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में आध्मान, पेट में आटोप, मलमूत्र का अवरोध हो, मन खिन्न रहे, कम्पन हो तथा और स्निग्ध उष्ण प्रक्रिया से प्राय शूल शान्त हो जाय उसे वातिक परिणाम शूल कहते हैं ॥ १ ॥

पैत्तिकमाह—

तृष्णादाहारतिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम्। शूलं शीतशमं प्रायः पैत्तिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ १ ॥

पैत्तिक परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में तृषा, दाह, अरुचि, स्वेद आदि शूल के समय होवें, और कटु, अम्ल तथा लवणरस के व्यवहार से शूल में वृद्धि हो और प्राय करके शीतल पदार्थ के सेवन से शूल शान्त हो जावे उस वैद्य 'पैत्तिक परिणाम शूल' कहते हैं ॥ १ ॥

श्लैष्मिकमाह—

छर्दिहृल्लाससम्मोहस्वल्परुग्दीर्घसन्तति। कटुतिक्तोपशान्तं हि तच्च ज्ञेयं कफात्मकम् ॥१॥

कफज परिणाम शूल—जिस परिणाम शूल में वमन, हृल्लास, मोह, मन्द २ शूल हो तथा चिरकाल तक शूल का वेग बना रहे एवं जो शूल कटु और तिक्त पदार्थों के सेवन से शान्त हो उसे 'कफज परिणाम शूल' मानना चाहिये ॥ १ ॥

द्विदोषजमाह—संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत्।

द्विदोषज परिणाम शूल—दो दोषों के मिश्रित लक्षण जिस परिणाम शूल में हों उसे द्विदोषज जानना चाहिये ॥

सान्निपातिकमाह—त्रिदोषजमसाध्यं स्यात्क्षीणमांसबलानलम् ॥ १ ॥

सान्निपातिक परिणाम शूल—तीनों दोषों के मिश्रित लक्षण जिसमें हों वह त्रिदोषज है। वह त्रिदोषज तथा जिस परिणाम शूल में रोगी के मांस, बल और अग्नि क्षीण हो गये हों, ये दोनों असाध्य हैं ॥ १ ॥

अन्नद्रवाख्यम्—

'जीर्णे जीर्यत्यजीर्णे च यच्छूलमुपजायते। तदप्यसाध्यं नित्यत्वादुक्तं वैद्यविशारदैः' ॥ १ ॥

अन्नद्रव शूल—जो शूल अन्न के पचने पर तथा पचने के समय अथवा अजीर्ण में भी उत्पन्न हो जाता है वह नित्य है अत एव असाध्य है। ऐसा वैद्य विशारदों ने कहा है ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन वा। न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ २ ॥

जो शूल पथ्य करने पर अथवा कुपथ्य करने पर अथवा भोजन करने पर या नहीं करने पर किसी भी प्रकार से नहीं शान्त होता है वह शूल 'अन्नद्रव' कहलाता है ॥ २ ॥

अथास्य प्रायेण त्रिदोषविकृतित्वादसाध्य —

आनाहो गौरवं छर्दिर्भ्रमस्तृष्णा ज्वरोऽरुचिः। कृशत्वं बलहानिश्च वेदनाऽतिप्रवर्तते ॥ १ ॥
उपद्रवा दशैवैते शूले च परिणामजे। सोपद्रवोऽप्यसाध्यः स्यात्कृच्छ्रेण निरुपद्रवः ॥ २ ॥

त्रिदोष के विकार से दोष प्राय शूल में—आनाह, गुरुता, वमन, भ्रम, तृषा, ज्वर, अरुचि, कृशता, बल की हानि और अधिक पीड़ा होना, ये दस परिणाम शूल के उपद्रव हैं। उपद्रव सहित परिणाम शूल भी त्रिदोषज की भाँति असाध्य है और उपद्रव रहित परिणाम शूल—कष्ट साध्य है ॥

## अथ तच्चिकित्सा।

लङ्घनं प्रथमं कुर्याद्वमनं च विरेचनम्। वस्तिकर्म परं चात्र पक्तिशूलोपशान्तये ॥ १ ॥

परिणाम शूल चिकित्सा—परिणामशूल में प्रथम लङ्घन, वमन और विरेचन करा कर बस्ति कर्म कराने से शूल शान्त हो जाता है ॥ १ ॥

वातजं स्नेहयोगेन पित्तजं रेचनादिना ।
कफजं वमनाद्यैश्च पक्तिशूलमुपाचरेत् । द्वन्द्वजं स्नेहयोगेन सन्निपातेन सर्वजम् ॥ २ ॥

वातजनित परिणाम शूल को स्नेह युक्त योगों से, पित्तजनित को रेचनादि से, कफजनित को वमनादि से शमन करे और द्वन्द्वज परिणाम शूल को स्नेह युक्त योगों से तथा तीनों दोषों में कहे गये योगों से त्रिदोषज को विचार पूर्वक चिकित्सा करके शमन करे ॥ २ ॥

कल्काः—

विष्णुक्रान्ताजटाकल्कः सितामाक्षिकसर्पिषा । परिणामभवं शूलं नाशयेत्सप्तभिर्दिनैः ॥ १ ॥

कल्क प्रकरण—विष्णु क्रान्ता ( अपराजिता ) की जड़ के कल्क में शर्करा-मधु और घृत मिला कर सेवन करने से सात दिन में परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

शुण्ठीतिलगुडैः कल्कं दुग्धेन सह योजयेत् । परिणामभवं शूलमामवातञ्च नश्यति ॥ २ ॥

सोंठि, तिल और पुराना गुड़ इनको समान लेकर कल्ककर दूध के अनुपान से सेवन करने से परिणाम शूल और आमवात नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ।
उग्रं परिणतिशूलं सप्ताहात्तज्जयति चावश्यम् ॥ ३ ॥

सोंठि, तिल और पुराने गुड़ के कल्क को दूध के साथ पाककर जो सेवन करता है उसका अतिकठिन परिणामशूल सात दिन में अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

शम्बूकभस्मयोगः—

शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् । पक्तिजं विनिहन्त्याशु शूलं विष्णुरिवासुरान् ॥

शम्बूकभस्म योग—शम्बूक ( घोंघा ) के भस्म को उष्णजल के अनुपान से सेवन करने से शीघ्र पक्तिशूल इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार विष्णु भगवान से असुर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शम्बूकादिवटिका—

शम्बूकत्र्यूषणं चैव पञ्चैव लवणानि च । समांशा गुटिकां कृत्वा कलम्बुकरसेन च ॥ १ ॥
प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेच्च यथाबलम् । शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥२॥

शम्बूकादि वटिका—शम्बूक भस्म, मरिच, पिप्पली २ पांचोंनमक समान लेकर चूर्णकर कलम्बुक ( करमी ) के पत्ते के रस के साथ मर्दनकर वटी बनाकर प्रातःकाल अथवा भोजन के समय बला-नुसार मात्रा से सेवन करने से मनुष्य परिणामशूल से ( हठात् ) अवश्य मुक्त हो जाता है ॥१-२॥

क्षीरमण्डूर—

लोहकिट्टं पलान्यष्टौ गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् । परिणामभवं शूलं तथो हन्ति न संशयः ॥ १ ॥

क्षीर मण्डूर—८ पल शुद्धमण्डूर को ८ गुण गोमूत्र में मिलाकर विधिपूर्वक पाककर मात्रा दी जाने पर उतारकर यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से शीघ्र तथा निश्चित ही परिणाम शूल नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

तारमण्डूर —

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च । नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ॥१॥
गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्द्धद्विगुणको गुडः । शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा गुटिकां स्निग्धे भाजने ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया । प्राग्भक्तमध्यभक्तेन भोजनस्य प्रयोजितः॥३॥
योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च शोथमग्निनिवारणम् । शूलशान्तो कृपादेवेनोपशरणा प्रकटीकृतः ॥४॥

तारमण्डूर—वायविडङ्ग, चित्रकमूल, चव्य, आंवला, हर्रे, बहेरा, सोंठि, मरिच, पीपरि, प्रत्येक एक २ भाग लेवें और मण्डूर शुद्ध ९ भाग, गोमूत्र अठारह भाग और पुराना गुड़ १८ भाग लेकर प्रथम गोमूत्र मण्डूर और गुड़ को एकत्र कर शुद्धकर विधि से पाक सिद्ध कर उनमें उपरोक्त ९ औषधियों के चूर्ण को मिलाकर चिकने पात्र में रखे तथा भोजन के पहिले पात्र में

रख लेवे। इसको १ कर्ष के प्रमाण की मात्रा से भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से यह योग कठिन पक्तिशूल को शीघ्र शमन करता है और कामला, पाण्डुरोग, शोथ, मेदोरोग, वातव्याधि तथा अर्शरोग को नष्ट करता है। शूल से पीड़ितों पर कृपा करके 'तारा'ने इस योग को प्रकट किया है। इसलिये इस योग का नाम 'तारामण्डूर' है ॥ १-७ ॥

भीममण्डूरः—

यवक्षारकणाशुण्ठीकोलग्रन्थिकचित्रकात्। प्रत्येकं पलमादाय प्रस्थं लौहस्य किट्टतः ॥ १ ॥
शनैः पचेदयःपात्रे पाकदर्वीप्रलेपनम्। दत्त्वाऽष्टगुणगोमूत्रं किट्टाच्चूर्णाद्विपाचयेत् ॥ २ ॥
ततोऽक्षमात्रान्वटकान्योजयेत्सप्तरात्रतः।
आदिमध्यावसानेषु भोजनस्योचितस्य वै। स भीमवटको ह्येष परिणामरुगन्तकः ॥ ३ ॥

भीममण्डूर—यवाखार, पीपरि, सोंठि, बेर, पिपरामूल और चित्रकमूल प्रत्येक एक २ पल शुद्ध मण्डूर एक प्रस्थ लेकर प्रथम मण्डूर को अठगुने गोमूत्र के साथ विधि पूर्वक लोहे के पात्र में मन्दाग्नि से पाक करे गाढ़ा होने पर उसमें उपर्युक्त जवाखारादि के श्लक्ष्ण चूर्ण को मिलाकर एक कर्ष के प्रमाण की वटी बनाकर सात रात तक भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से यह भीममण्डूर परिणाम शूल को निश्चित नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

शतावरीमण्डूर—

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम्। शतावरीरसस्याष्टौ दध्नश्च पयसस्तथा ॥ १ ॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः। विपचेत्सर्वमेकत्र यावत्पिण्डत्वमाप्नुयात् ॥२॥
सिद्धं तु भक्षयेन्मध्ये प्राशे भुक्तस्य चाग्रतः। वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम् ॥३॥
निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ।

शतावरी मण्डूर—शुद्ध मण्डूर का चूर्ण शतावरि का रस, दही और दूध प्रत्येक ८ पल, और गाय का घृत ४ पल, इनको एकत्र कर विधि पूर्वक पाक करे जब पिण्ड बँधने लगे तब उतार कर रख लेवे और इसको भोजन के आदि, मध्य और अन्त में सेवन करने से वातज शूल, पित्तज शूल और परिणाम शूल नष्ट होते हैं। मण्डूर का यह योग निश्चित ही शूल को नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १-३ ॥

दुग्धे निर्वापणं कार्यं यद्वा बहुसुतारसे। अथवा चोभयोरेव लौहकिट्टस्य सप्तधा ॥ ४ ॥
रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद्यदि मर्दनात्। तदा पाकं विजानीयान्मण्डूरस्य भिषग्वरः ॥

मण्डूर पाकविधि—मण्डूर को तपा कर दूध में अथवा शतावरि के रस में अथवा दोनों में सात २ बार बुझावे इस प्रकार की क्रिया करने पर जब मण्डूर का रस और गन्ध शुभ हो जावे और पाक मर्दन करने पर बत्ती के समान हो जावे तब मण्डूर का पाक उत्तम हुआ जानना चाहिये ॥ ४-५ ॥

लोहगुग्गुलु —

त्रिफला मुस्तकं व्योषं विडङ्गं पौष्करं वचा। चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥१॥
अयोभस्म पलान्यष्टौ गुग्गुलुस्तावदेव तु। सर्पिषा मेलयित्वाऽथ कर्षमात्रवटीकृतम् ॥ २ ॥
अथादनु पिबेत्कोष्णं वारि शूलाद्विमुच्यते। जीर्णाद्यसृग्भयात्पाण्डोः कामलाया हलीमकात् ॥

लोह गुग्गुलु—आँवरा, हर्रा, बहेरा, नागरमोथा, सोंठि, पीपरि, मरिच, वायभीरंग, पुहकरमूल, बच, चित्रकमूल, मुलहठी, एक-एक पल लेकर उत्तम चूर्ण कर उसमें लोहभस्म तथा शुद्ध गुग्गुल ८-८ पल लेकर मिलाकर उसमें घृत पर्याप्त मात्रा में मिलाकर कूटकर एक कर्ष के प्रमाण की वटी बना लेवे। इसको खाकर उष्ण जल का अनुपान पीवे तो शूल से मुक्त हो जाता है और अन्नद्रवशूल, पाण्डु, कामला और हलीमक रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

विडङ्गाद्यो मोदकः —

विडङ्गतण्डुलं व्योषं त्रिवृद्दन्ती सचित्रकम्। सर्वाण्येतानि संहृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥१॥
गुडेन मोदकान्कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः।
उष्णोदकानुपानेन दद्यादग्निविवर्धनम्। जयेत्त्रिदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ॥ २ ॥

विडङ्गादि मोदक—वायविडंग का चावल सोंठि, पीपरि, मरिच, निशोथ, दन्तीमूल, चित्रक

मूल, सम भाग लेकर उत्तम चूर्ण कर पुराना गुड़ मिलाकर विधिपूर्वक मोदक (बटी) बनाकर यथा योग्य मात्रा से प्रातः उष्णोदक के अनुपान से (सेवन करने से) अग्नि की वृद्धि होती है और त्रिदोषज शूल तथा परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

एरण्डादिभस्मयोगः —

एरण्डबदरबिल्वाम्बूकयवर्षाभूगोक्षुरं समम्। अन्तर्दग्ध्वा पिबेदग्निरुष्णाम्भि शूलशान्तये ॥ १ ॥

एरण्डादि भस्म योग—एरण्डमूल, बिल्वमूल, जम्बूक भस्म, गदह पुराना, गोक्षुर सम भाग लेकर कूट कर एक मिट्टी के पात्र में रख मुख बन्दकर चुल्हिका यन्त्र के द्वारा भस्म कर शीत होने पर यथा योग्य मात्रा से उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से शूल शमन होता है ॥

पथ्यादिलौहम्—

पथ्यालौहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिषा। परिणामभवं हन्ति वातपित्तकफात्मकम् ॥ १ ॥

पथ्यादि लौह—हर्रा का चूर्ण, लौह भस्म और सोंठ के चूर्ण को मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से त्रिदोषज परिणाम शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृष्णादि लौहम्—

कृष्णाभयालौहचूर्णं विलिहन्मधुसर्पिषा। परिणामभवं शूलं सद्यो हन्ति सुदारुणम् ॥ १ ॥

कृष्णादि लौह—पीपरि का चूर्ण, हर्रा चूर्ण और लौहभस्म सम भाग लेकर मधु और घृत के अनुपान से चाटने से कठिन परिणाम शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

धात्रीलौहम्—

गन्धं ताम्रं रसं लौहं प्रत्येकं मानितं पलम्। सर्वमेतत्समाहृत्य विपचेत्कुशलो भिषक् ॥ १ ॥

आज्ये पलद्वादशके दुग्धे शतपले पचेत्। पक्वे तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूते घनतां नयेत् ॥ २ ॥

विडङ्गचित्रकाव्यस्त्रिफलात्रिकटूनां तथैव च। सिध्मजं पलोन्मितं तेन त्रयं समिश्रतां नयेत् ॥ ३ ॥

ततः पिष्ट्वा शुभे भाण्डे स्थापयेत्तद्विचक्षणः। आरभेत शोभने घस्रे पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥

घृतेन मधुना भक्ष्यं भक्षयेन्माषसम्मितम्। अष्टमाषाः क्रमात्तावन्मात्रां संवर्धयेत्ततः ॥५॥

अन्नपानं च दुग्धेन नारिकेलोदकेन वा। जीर्णशाल्यन्नमुद्गाश्च सितासौवीरसायुधा ॥ ६ ॥

वर्ज्यानामविरुद्धानि पानाद्यान्यपि भक्षयेत्। हृत्कुक्षिपार्श्वशूलं च वातमार्गं कटिग्रहम् ॥ ७ ॥

गुल्मशूलं च सर्वं च पक्तृवातोद्भवं विशेषतः।

अग्निमान्द्यं क्षयः कुष्ठं श्वासकासविषूचिकाः। अश्मरी मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन शाम्यति ॥८॥

धात्री लौह—शुद्ध गन्धक, ताम्र-भस्म, शुद्ध पारद लौहभस्म प्रत्येक एक एक पल लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर लौह-ताम्र मिला कर मर्दन कर १२ पल घीउ में तथा १०० पल गौ दुग्ध में पृथक् २ पाक करे सिद्ध हो जाने पर इसमें वायविडंग, हर्रा, बहेड़ा, आंवला, चित्रकमूल, सोंठ, पीपल और मरिच, प्रत्येक एक २ पल लेकर उत्तम चूर्ण कर मिलादेवे फिर सबको पीस कर एक अच्छे (चिकने) पात्र में रख देवे। इस योग को शुभ दिन में सूर्य तथा गुरु की पूजा कर घृत और मधु के अनुपान से एक माशा की मात्रा से प्रारम्भ कर आठ माशा तक क्रम से बढ़ा कर सेवन करे। पथ्य में अन्नपान दुग्ध दूध के साथ भक्षण करे, नारियल का जल पीवे पुराने शालिधान के चावल, मूंग, शर्करा, कांजी आदि का और रसमय में बढ़ हुए अपथ्य अन्न पानादि का त्याग कर देवे तो इस योग से हृदय शूल, पार्श्वशूल वातमार्ग, कटिग्रह, सब प्रकार के गुल्म, शूल तथा विशेष करके पक्व और पक्वाशय का शूल, मन्दाग्नि, क्षय, कुष्ठ, श्वास कास विषूचिका, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रं सैन्धवं क्षारो रुचकं रोमकं विडम्। दन्ती लौहरजः किट्टं त्रिवृत्सूरणकं समम् ॥ १ ॥

दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम्। तत्पाचितं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ २ ॥

जीर्णे जीर्णे च भुञ्जीत मांसादि घृतसाधितम्। नाभिशूलं च हृच्छूलं गुल्मप्लीहकृतं च यत् ॥

विद्रध्यष्ठीलं हन्ति कफवातोद्भवं तथा। अग्न्ययं तद्विशुष्यतीनं मद्धुन्यपि ॥ ४ ॥

सामुद्राद्य चूर्ण—सामुद्र लवण, सेंधा नमक, जवाखार, काचलोण, रोमक नमक, विड नमक,

नमक, बिड़नमक, दन्तीमूल, लौह-भस्म, शुद्ध मण्डूर, निशोथ और सूरणकन्द इन सब औषधियों को समान लेकर उत्तम चूर्ण कर, दही, गोमूत्र और दूध में पृथक् २ मन्दाग्नि पर पाक कर गाढ़ा होने पर चूर्ण कर अग्निबल के अनुसार मात्रा से उष्ण जल के अनुपान से पीवे और भोजन पचा रहे अथवा नहीं पचा रहे पर भोजन के समय घृतादि से सिद्ध किया हुआ मांसादि का भोजन करे। इससे नाभि शूल, हृदय शूल, गुल्म का शूल प्लीहा का शूल, विद्रधि और अष्ठीला का शूल आदि और कफ-वात से उत्पन्न शूल, आनाह शूल, अजीर्ण और ग्रहणी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

शूलानामपि सर्वेषामौषधमेतदुत्तमं परम् । परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकं मतम् ॥ ५ ॥

सब शूलों की जो जो औषधियाँ कही गयी हैं उनमें इससे उत्तम कोई औषध नहीं है। किन्तु परिणाम शूल को नष्ट करने की यह विशेष औषध है ॥ ५ ॥

पिप्पल्यादियोग —

समागधीगुडं सर्पिः प्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम् । पक्त्वा पीत्वा जयत्याशु पक्तिशूलं समुद्धतम् ॥ १ ॥

पिप्पल्यादि योग- पीपरि का कल्क, पुराना गुड़ दो-दो पल, मूर्च्छित गोघृत १ प्रस्थ और घृत से चतुर्गुण ( ४ प्रस्थ ) गौ दुग्ध मिला कर घृत पाक की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से शीघ्र बढ़ा हुआ पक्ति शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिपुरभैरवो रस —

भागौ रसस्य भागश्च हेम्नः पिष्टं विधाय च । तया द्वादशभागानि ताम्रपत्राणि लेपयेत् ॥१॥

ऊर्ध्वाधो गन्धकं दत्त्वा पलमात्रं समन्ततः । क्षारस्य शृङ्गशृङ्गस्य चूर्णं योज्य समन्ततः ॥२॥

सिञ्चेन्मत्स्याक्षिनीरेण रुद्ध्वा याममचतुष्टयम् । पचेच्छूलहरः सूतो भवेत्त्रिपुरभैरवः ॥ ३ ॥,

त्रिपुरभैरव रस—शुद्ध पारद २ भाग, स्वर्ण शुद्ध एक भाग दोनों को खरल में मर्दन कर, शुद्ध ताम्र के पत्र १२ भाग लेकर उस पर इसे लेप करदे, फिर शुद्ध गन्धक का चूर्ण एक पल लेकर उक्त स्वर्णादि लिप्त ताम्र पत्र के ऊपर नीचे ( गन्धक को ) एक शरावपात्र में रख कर उसके चारों ओर यवाक्षार और शृङ्गशृङ्ग के चूर्ण को देकर मत्स्याक्षी ( मछेछी ) के स्वरस से भलीभाँति सिञ्चित कर ( भिजा कर ) पात्र का मुख ऊपर मिट्टी द्वारा बन्द कर अग्नि पर रख कर चार पहर अग्नि पर विधिपूर्व पाक कर स्वांगशीत होने पर उतार कर रख लेवे। यह 'त्रिपुरभैरव रस' शूलनाशक है ॥ १-३ ॥

माषो मध्वाज्यसंयुक्तो देयोऽस्य परिणामजे । अन्येष्वेरण्डतैलेन कटुत्रययुतो हितः ॥ ४ ॥

इसे परिणाम शूल में १ माषा की मात्रा से मधु और घृत के अनुपान से और अन्य शूलों में एरण्डतैल तथा त्रिकुट के चूर्ण के अनुपान से देना चाहिये ॥ ४ ॥

शूलदावानल , सारसंग्रहात्—

शुद्धसूत विषं गन्धं पलांशं मर्दयेद्दृढम् । मरीच पिप्पली शुण्ठी हिङ्गु सौवर्चलं द्वयम् ॥१॥

पलाष्टक पटूनां च चिञ्चाक्षार पलाष्टकम् । सक्षार शङ्खभस्म जम्बीराम्ले निषेचयेत् ॥ २ ॥

पलाष्टक च सप्तोज्य सरसर्वं निम्बुकद्रवे । दिनं मर्द्यं कोलमात्रं भक्षयेत्सर्वशूलनुत् ॥ ३ ॥

शूलदावानल रस—शुद्ध पारद, शुद्ध मीठा विष, शुद्ध गन्धक इनको एक २ पल लेकर पारद गन्धक की कज्जली कर विष मिला कर भलीभाँति मर्दन करे। फिर मरिच पीपरि, सोंठि, शुद्ध हींग, सौवर्चल नमक प्रत्येक दो २ पल लेकर चूर्ण करले, और मिलित पाचो नमक इमली का क्षार, और शङ्ख की भस्म प्रत्येक ८-८ पल लेकर जमीरी नीबू के रस में सातबार गरम करके बुझा कर पश्चात् सब औषधियों को एकत्र कर नीबू के रस के साथ दिनभर मर्दन कर आधा कष के प्रमाण की मात्रा से खाने से सब प्रकार के शूल नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

अजीर्णोदरमन्दाग्निमसाध्यमपि साधयेत् । शूलदावानलाख्योऽयं रसोऽजीर्णादिरोगहा ॥४॥

अजीर्ण, उदर रोग, मन्दाग्नि, आदि यदि असाध्य भी हो गये हों तो भी उनको यह 'शूलदावानल रस' नष्ट कर देता है ॥ ४ ॥

पथ्यापथ्यम्— माषादिशिम्बीधान्यानि मद्यानि वनिता हिमम् ।

आतपं जागरं क्रोधं रूक्षं सन्धानमम्लकम् । वर्जयेत्पक्तिशूलार्तस्तथाऽजीर्णे तिलानपि ॥ १ ॥

अपथ्य—उड़द आदि विष्टम्भी अन्न, मद्य, स्त्रीप्रसंग, धूप सेवा, धूम्र, जागरण ( रात्रि जागरण ) क्रोध, शोक, चिन्ता तथा भारी आदि अन्य पदार्थ को इन अजीर्ण भोजन और शिर को परिणामशूल का रोगी त्याग देवे ॥ २ ॥

## अथोदावर्तनिदानम् ।

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारवमीन्द्रियैः । क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसम्भवः ॥ १ ॥

उदावर्त के निदान—अधोवायु, मल, मूत्र, जम्भाई, आँसू, छींक, डकार, वमन, वीर्य, क्षुधा, तृषा, उच्छ्वास और निद्रा इन वेगों को रोकने से उदावर्त रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तेषां क्रमेण लक्षणान्याह, अथादौ वातावरोधजमाह—

वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गोऽध्मानं क्लमो रुजा । जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥

उदावर्त के लक्षण—अधोवायु रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें अधोवायु-मूत्र और पुरीष का अवरोध हो जाता है और आध्मान, ग्लानि, ज्वर, उदर में वातजनित रोग तथा अन्य भी उदर रोग हो जाते हैं ॥ २ ॥

पुरीषावरोधजमाह—आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ।
पुरीषमास्यादथवा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥

मल के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें पेट में गुड़गुड़ाहट, शूल, गुदा में कतरने के समान पीड़ा, मल का अवरोध और ऊर्ध्ववात हो जाता है और कभी २ मुख से मल भी निकलने लगता है ॥ ३ ॥

मूत्रनिग्रहजमाह—

बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा । विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

मूत्र के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें मूत्राशय और शिश्न में शूल होता है, मूत्रकृच्छ्र, सिर में पीड़ा, शरीर का नम जाना ( झुक जाना या नत हो जाना ) और वंक्षण का फूल जाना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ४ ॥

जृम्भाविघातजमाह—मन्याहनुस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः ।
तथाक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥

जम्भाई के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मन्या और गले में स्तम्भ होता है, सिर में पीड़ा तथा अन्य सिर के विकार, वात विकार और नेत्र, नासिका, मुख इनके रोग तथा तीव्र कर्ण रोग होते हैं ॥ ५ ॥

अश्रुविघातजमाह—आनन्दजं वाऽप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुञ्चतो हि ।
शिरोगुरुत्वं नयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥

अश्रुविघातज के लक्षण—आनन्द से अथवा शोक से बहते हुए आँसू के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें सिर में भारीपन, नेत्ररोग तथा तीव्र पीनस रोग होता है ॥ ६ ॥

क्षवथुनिरोधजमाह—

मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ । इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥

छींक के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें मन्यास्तम्भ, सिर-दर्द, अर्दित, अर्धावभेद ( अधकपारी ) और इन्द्रियों की दुर्बलता ( इन्द्रियों के कार्य में न्यूनता ) आदि होते हैं ॥ ७ ॥

उद्गारविघातजमाह—कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथवाऽप्रवृत्तिः ।
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति घोरा विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

डकार के रोकने से जो उदावर्त रोग होता है उसमें कण्ठ और मुख भरा रहता है ( जिस प्रकार भोजन मुख कण्ठ से भरा रहने के समान ज्ञात होता है ) अत्यन्त तोद होना ( सम्पूर्ण शरीर में सुई चुभाने के समान पीड़ा होना ), कूजन होना ( आँतों में शब्द होना ) वायु का रुक जाना और अन्यान्य भी वातजनित घोर विकार होते हैं ॥ ८ ॥

छर्दिनिग्रहजमाह—

कण्डूकोठारुचिव्यङ्गशोथपाण्ड्वामयज्वराः । कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा मताः ॥ ९ ॥

वमन के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें कण्डू, मण्डल, अरुचि, व्यङ्ग (झाँई) शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, हृल्लास (उबकाई) और विसर्प आदि रोग होते हैं ॥ ९ ॥

शुक्रविघातजमाह—मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोथो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेद्वा ते ते विकारा विहिते च शुक्रे ॥ १० ॥

वीर्य के रोकने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें मूत्राशय, गुदा और अण्डकोष में शोथ और पीड़ा होती है, एवं वीर्यस्राव तथा अन्यान्य वीर्य सम्बन्धी विकार भी होते हैं ॥ १० ॥

क्षुधावरोधजमाह—

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधोऽभिघातात्कृशता च दृष्टेः ॥ ११ ॥

भूख के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें तन्द्रा, देह का टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टि में कमी होती है ॥ ११ ॥

तृष्णानिरोधजमाह—कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तृष्णाभिघाताद् हृदयव्यथा च ॥ १२ ॥

तृषा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें कण्ठ और मुख सूखता है, श्रवणशक्ति का अवरोध होता है और हृदय में पीड़ा होती है ॥ १२ ॥

श्वासावरोधजमाह—श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण हृद्रोगमोहावथवाऽपि गुल्मः ॥ १३ ॥

श्रमादि से उत्पन्न श्वास (उच्छ्वास) के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें हृद्रोग, मोह अथवा गुल्म होता है ॥ १३ ॥

निद्रानिग्रहजमाह—जृम्भाङ्गमर्दोऽक्षिशिरोऽतिजाड्यं निद्राभिघातादथवाऽपि तन्द्रा ॥ १४ ॥

निद्रा के रोकने से जो उदावर्त होता है उसमें जम्हाई, शरीर का टूटना, नेत्र तथा सिर में स्तब्धता अथवा तन्द्रारोग होता है ॥ १४ ॥

रूक्षभोजनजनितविकारमाह—

वायुः कोष्ठानुगो रूक्षकषायकटुतिक्तकैः । भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तं करोति च ॥ १५ ॥

रूक्ष, कषाय, कटु और तिक्तरस वाले पदार्थों के अति सेवन करने से कुपित हुई कोष्ठ की वायु शीघ्र उदावर्तरोग उत्पन्न कर देता है ॥ १५ ॥

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

वातमूत्रपुरीषासृक्कफमेदोवहानि वै । स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ १६ ॥
ततो हृद्बस्तिशूलार्तो हृल्लासारतिपीडितः । वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १७ ॥
श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान् ।
वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् । बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ १८ ॥

उदावर्त की सम्प्राप्ति—यह कुपित हुआ वायु-अधोवायु, मूत्र, मल, रक्त, कफ और मेद को वहन करने वाली नाड़ियों को अवरुद्ध करता है तथा पुरीष को भी सुखा देता है। जिससे हृदय, बस्ति इनके शूल से अधिक पीड़ा होती है, हृल्लास और हृदयोद्वेग से पीड़ा होती है, और अधोवायु-मूत्र और मल उस मनुष्य को बड़े कष्ट देते हैं, तथा श्वास-कास-प्रतिश्याय, दाह, मोह, तृषा, ज्वर, वमन, हिक्का, शिरोरोग होते हैं और मन तथा श्रवणमें भ्रम होता है, (अर्थात् चित्त में स्थिरता तथा श्रवणशक्ति की न्यूनता होती है) तथा अन्य भी अनेक प्रकार के वात के कोप से उत्पन्न होने वाले विकार होते हैं ॥ १६-१८ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

तृष्णार्दितं परिक्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् । शकृद्वमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ १ ॥

उदावर्त के असाध्य लक्षण—जिस उदावर्त में रोगी तृषा-तथा क्लेश से पीड़ित हो, क्षीण हो, शूल से पीड़ित हो, तथा उसके मुख से मल निकलता हो उसे बुद्धिमान् वैद्य त्याग देवे अर्थात् यह असाध्य है ॥ १ ॥

## अथ उदावर्तचिकित्सा ।

सर्वेष्वेतेषु भिषजा चोदावर्तेषु कृत्स्नशः । वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥१॥

उदावर्त चिकित्सा—सब प्रकार के उदावर्तरोग में वैद्य विगुणित (दूषित) वायु को अपने मार्ग पर ले आने की (वायु को प्रकृतिस्थ करने की) क्रियाओं को करे ॥ १ ॥

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्ने विशेषतः। पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहकीर्तितः॥१॥

वातजनित ( वाताबरोधज ) उदावर्तरोग में विशेष करके स्नेह और स्वेदन करके आस्थापन कर्म करे ( आस्थापन बस्ति देवे ) और पुरीषज ( पुरीषावरोधज ) उदावर्त में आनाह रोग में कही हुई सब क्रियाओं को व्यवहार में लावे ॥ १ ॥

सौवर्चलादि—

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत्। एलां वाऽप्यथ मद्येन क्षीरं वाऽप्य पयस्तु वा ॥

सौवर्चलादि योग—मूत्रज ( मूत्रावरोधज ) उदावर्त में सौवर्चल नमक मधुर प्रमाण में मिलाकर मद्यपान करे अथवा छोटी इलायची मदिरा में मिलाकर पान करे अथवा दही के पानी के साथ अन्न खावे अथवा दूध पीवे अथवा त्रिफला का क्वाथ या जल ( रस ) पीवे ॥ १ ॥

उर्वारुबीजादियोग—

उर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणान्वितम्। पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा ॥ १ ॥

उर्वारु बीजादि योग—ककड़ी के बीज ( जल के साथ पीसकर ) उसे में नमक मिला पान करने से अथवा पञ्चमूल के साथ पकाया हुआ दूध पीने से अथवा द्राक्षा का रस पान करने से मूत्रज उदावर्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

यवक्षारादियोग —

यवक्षारं सितायुक्तं पिबेद्वा मृद्विकारसैः। वरीकूष्माण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पिबेत्तथा ॥ १ ॥

यवक्षारादि योग—यवक्षार में अथवा द्राक्षा के रस में अथवा शतावरी और श्वेत कूष्माण्ड के रस में शर्करा मिलाकर पान करने से मूत्रज उदावर्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूषकादियोग —

मूषकस्य विशा लेपं बस्तेरुपरि वा चरेत्। किंशुकानां प्रलेपो वा कवोष्णो मूत्ररोधहा ॥१॥

मूषकादि योग—मूसे की विष्ठा का मूत्राशय पर लेप करने से अथवा पलाश के फूलों को पीस गरम कर मूत्राशय पर लेप करने से मूत्रावरोध ( अथवा मूत्र निरोधज उदावर्त ) नष्ट होता है ॥ १ ॥

विड्वा श्वदंष्ट्राकृत्मूषिकाविट्कर्कटीबीजानि समांशिकानि।
आलिप्यमानानि समानि बस्तौ मूत्रस्य निष्पन्दकराणि सद्यः।
अत्र सर्वं प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १ ॥

गोखरू के पञ्चाङ्ग, मूसे की विष्ठा और ककड़ी के बीजों को समान लेकर कांजी में पीस कर बस्ति पर लेप करने से शीघ्र मूत्र आ जाता है अर्थात् मूत्रावरोध मिट जाता है। इस मूत्रावरोध में मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोग में कही हुई सब क्रियाओं को करना चाहिये ॥ १ ॥

## अथाश्रुजादीनां चिकित्सा।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृम्भाजं समुपाचरेत्। अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्निग्धस्विन्नस्य देहिनः ॥१॥

उदावर्त की सामान्य चिकित्सा—जम्भाई के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग को स्नेह और स्वेद के उपचार से शमन करे। आंसू के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग को स्नेहन और स्वेदन कराकर अश्रुमोक्षण कराना चाहिये ॥ १ ॥

मरीचाद्यञ्जनैर्धूमैरादित्यावलोकनैः। क्षवजे क्षवकृन्नस्यैर्नागरेणाथवा क्षवम् ॥ १ ॥

आंसू निकलने के लिये मरिच आदि तीक्ष्ण पदार्थों का अञ्जन लगाना धूएं में बैठना सूर्य की ओर देखना आदि कर्म करना चाहिये। छींक के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में छींक लाने वाले द्रव्य ( छींक लाने वाले नस्य ) को नाक में डालकर छींकना चाहिये अथवा सोंठ आदि नाक में लगाकर छींकना चाहिये ॥ १ ॥

उद्गारजे सस्नेहवर्तिं स्नैहिकं धूममाचरेत्। सलवणं सार्द्रकं वाथ दध्नो वा मस्तुनान्वितम् ॥ १ ॥

डकार के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में स्नेह द्रव्यों वाला ( स्नैहिक ) धूमपान करना चाहिये और नमक तथा अदरक में लोंग मिलाकर अथवा दही के मस्तु ( मट्ठे ) के साथ भक्षण करे ॥ १ ॥

वम्या वान्तं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिर्जयेत्। बस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं चतुर्गुणजलं पयः ॥ ४ ॥
आवारिनाशात्कथितं पीतवन्तं प्रकामतः। रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ ५ ॥

वमन के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में दोष के अनुसार वमन कराये तथा नस्य कर्म और स्नेहादि कर्म करावे। शुक्र के अवरोध से उत्पन्न उदावर्तरोग में बस्ति को शुद्ध करने वाले द्रव्यों के साथ चौगुना जल मिलाकर दूध सिद्ध करे (पकावे) और जब केवल दूध मात्र शेष रहे तब उस दूध को सेवन कराकर रोगी को प्रिय स्त्रियों के साथ रमण करावे। (इस क्रिया तथा औषध से शुक्रोदावर्त नष्ट होता है) ॥ ४-५ ॥

तस्याभ्यङ्गोऽवगाहश्च मदिराचरणायुधाः। शालिः पयो निरूहाश्च हितं मैथुनमेव च ॥ ६ ॥

शुक्रोदावर्त के रोगी को अभ्यङ्ग (तेल मर्दन), अवगाहन (नदी आदि में स्नान), मद्यपान, कुक्कुटमांस भक्षण, शालिधान का चावल, दूध, निरूहबस्ति और मैथुन करना हितकर होता है ॥ ६ ॥

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धं रुच्यमल्पं च भोजनम्। तृषाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं वापि शीतलम् ॥

क्षुधा के अवरोध करने से जो उदावर्तरोग होता है उसमें स्नेहयुक्त, रुचिकारक और अल्प प्रमाण में भोजन कराना चाहिये। तृषा के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में मन्थ तथा मधुर और शीतल यवागू पीना चाहिये ॥ ७ ॥

रसेनाद्यात्तु विश्रान्तः श्रमश्वासार्दितो नरः। निद्राघाते पिबेद् दुग्धं माहिषं रजनीमुखे ॥८॥
तिलतैलेन सम्मृज्य भूतले शयनं चरेत्।
उदावर्तिनमभ्यक्तं स्निग्धगात्रमुपाचरेत्। वर्तिकास्थापनस्वेदबस्तिरेचनकर्मणा ॥ ९ ॥

श्रमश्वास के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में मांस रस पिलाना चाहिये। निद्रा के अवरोध से उत्पन्न उदावर्त में सन्ध्या समय (रात्रि के प्रारम्भ में) भैंस का दूध पिला कर तिल के तैल से शरीर को मर्दन कराकर भूमि पर शयन कराना चाहिये। अभ्यङ्ग किये हुए उदावर्त रोगी को जिसका शरीर स्निग्ध हो गया है उसको फलवर्ति, आस्थापन, स्वेदन, बस्ति कर्म तथा विरेचन कर्म करना चाहिये ॥ ८-९ ॥

## अथ सामान्यविधिः।

श्यामादिकषायो वृन्दात्—श्यामा दन्ती द्रवन्ती स्नुङ्महाश्यामाऽमृता त्रिवृत्।
सप्तला शङ्खिनी श्वेता राजवृक्षः सविल्वकः ॥
कम्पिल्लकः करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः। सर्पिस्तैलरजःक्वाथकल्केष्वप्यसमेषु च ॥
उदावर्तोदरानाहविषगुल्मविनाशनः ॥ २ ॥

श्यामादि कषाय—श्यामालता (कृष्ण-सारिवा) छोटी दन्तीमूल, बड़ी दन्तीमूल, थूहर (सेहुंड), महाश्यामा लता (बड़ी सारिवा), गुरुचि, निशोथ, सप्तला (सेहुंड का भेद), शङ्खपुष्पी, श्वेता (श्वेत सारिवा), अमलतास, बेल, कबीला, करञ्ज, स्वर्णक्षीरी (सत्यानाशी) इस गण के साथ (इन औषधियों के कल्क के साथ) घृतपाक करे अथवा तैलपाक करे अथवा इनका चूर्ण करे या क्वाथ करे अथवा कल्क बनावे, इनके सेवन करने से उदावर्त, उदर, आनाह, विषरोग और गुल्म इन सब रोगों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

वृन्दाद्वाट्यादियूषः—

वाट्या यूषेण पिप्पल्या मूलकानां रसेन वा। भुक्त्वा स्निग्धमुदावर्तवातगुल्माद्विमुच्यते ॥१॥

वाट्यादियूष—बरियार से प्रस्तुत किये यूष से अथवा पीपरि तथा मूली के रस से स्निग्ध भोजन करने से उदावर्त तथा वात गुल्म से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

वाट्यादि —

वाट्यक्षीररसैः सेव्यं यच्च वातानुलोमनम्। वातघ्नैर्लवणाद्यैश्च रसाद्यैश्चान्नमाचरेत् ॥ १ ॥

बरिआर से सिद्ध किये दूध अथवा बरिआर के रस को सेवन करे तथा अन्य वात का अनुलोमन करने वाले पदार्थों अर्थात् वातनाशक लवणादि और मांस रसादि से युक्त अन्न का सेवन करे। इससे उदावर्त नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

## आनाहचिकित्सा।

आनाहेऽपि प्रयुञ्जीत उदावर्तहरीं क्रियाम्।

विशेषमाह—

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भावयेत्। वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठास्त्वानाहभेदिकाः ॥१॥

आनाह चिकित्सा—आनाह रोग में जो उदावर्त रोग को नष्ट करने वाली क्रिया करनी चाहिये। निशोथ, हर्रा, श्यामा (कृष्ण सारिवा), इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर थूहर के दूध की भावना देकर वटी बना कर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करे। यह आनाह को नष्ट करने में श्रेष्ठ है ॥ १ ॥

हिङ्गूग्रगन्धाबिडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम्।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदरानाहविषूचिकासु ॥ २ ॥

भागोत्तर वृद्धि क्रम से हींग १ भाग बच २ भाग, बिड् लवण ३ भाग, सोंठि ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्रा ६ भाग, पुष्करमूल ७ भाग और कूट ८ भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से गुल्म-रोग, उदररोग, आनाहरोग और विषूचि का रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

वचाभयाचित्रकयावशूकान् सपिप्पलीकातिविषान् सकुष्ठान्।
उष्णाम्बुनाऽऽनाहविमूढवातान्पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी ॥ ३ ॥

बच, हर्रा, चित्रकमूल, यवाखार, पीपरि, अतीस और कूट सम भाग लेकर चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से आनाह रोग तथा विमूढ्वात शीघ्र ही नष्ट होता है। इस औषध के साथ मांस-रस और चावल का भात पथ्य देना चाहिये ॥ ३ ॥

राजधूमादिवर्त्तिः—

राजधूमबिडव्योषगुडमूत्रविपाचिता। गुदेऽङ्गुष्ठसमा वर्तिर्विधेयाऽऽनाहशूलनुत् ॥ १ ॥

राजधूमादिवर्त्ति—राज फल, गृहधूम, बिड् लवण, सोंठि पिपरि, मरिच गुड़ पुराना और गोमूत्र समान भाग लेकर पकाकर यथा विधि पाक कर हाथ के अंगूठे के प्रमाण मोटी बत्ती विधिवत् बनाकर घृत लगाकर गुदा में देने से आनाह शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

विपाच्य मूत्राम्लरसेन दन्तीपिण्डीतकृष्णाबिडकृष्णधूमैः।
वर्तिं कराङ्गुष्ठनिभां घृताक्तां गुदे ह्यानाहहरीं विदध्यात् ॥ २ ॥

दन्ती मूल, पिण्डीत (काला मैनफल), पिपरि, बिड लवण, कृष्ण सर्सो (रोरी) और गृहधूम (घर में लगा हुआ धूम का झाला) समान भाग लेकर गोमूत्र और कांजी के साथ पाक कर पूर्वोक्तरीति से बत्ती बनाकर उसमें घृत लगाकर गुदा में देने से शूल और आनाह को नष्ट करती है ॥ २ ॥

पथ्यापथ्यम्—

विष्टम्भीनि विरुद्धानि कषायाणि गुरूणि च। उदावर्ते प्रयत्नेन वर्जयेत्सततं नरः ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—विष्टम्भ करने वाले पदार्थ, विरुद्ध भोजन, कषाय रस वाले पदार्थ और गुरु पदार्थ इन द्रव्यों को आवर्त और आनाह का रोगी यत्न पूर्वक निरन्तर त्याग देवे क्यों कि ये अपथ्य हैं ॥ १ ॥

उदावर्ते हितं सर्वं पाचनं लङ्घनं तथा। आनाहे तु यथायोग्यं सेवयेन्मतिमान्नरः ॥ २ ॥

उदावर्त रोग में सब प्रकार के द्रव्य और लङ्घन करना हितकारक है और आनाह रोग में बुद्धिमान् मनुष्य को यथा योग्य (दोषानुसार) पथ्य आदि विचार कर सेवन करना चाहिये ॥

## अथातो गुल्मनिदानं व्याख्यास्यामः।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः।
कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्तर्ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥

गुल्म का निदान—मिथ्या आहार और विहार से अत्यन्त दूषित (कुपित) हुए वातादिक दोष कोठे में जाकर ग्रन्थि (गाठ) की भाँति पांच प्रकार के गुल्म रोग को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

तेषां स्थानान्याह—तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वहृन्नाभिवस्तयः।

गुल्म के स्थान—गुल्म के पांच स्थान हैं—पार्श्वद्वय, हृदय, नाभि और बस्ति।

तस्य लक्षणमाह—

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः सञ्चारी यदि वाऽचलः। वृत्तश्चयापचयवान्स गुल्म इति कीर्तितः ॥२॥

गुल्म के लक्षण—हृदय और नाभि के मध्य में चलने वाली अथवा अचल, गोल तथा बढ़ने वाली ग्रन्थि (गांठ) को 'गुल्म' कहते हैं ॥ २ ॥

[illegible] चरके—

तृष्णाज्वरपरीतस्य दाहस्वेदाग्निमार्दवैः। गुल्मिनामरुचौ चापि रक्तमेवावसेचयेत् ॥ ३ ॥

तृषा ज्वर, दाह, स्वेद, मन्दाग्नि हो और गुल्म में अरुचि भी हो तो रोगी को रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

[illegible]—

स्त्रीणामार्तवजो गुल्मो न पुंसामुपजायते। अन्यस्त्वसृग्भवो गुल्मः स्त्रीणां पुंसां च जायते ॥

स्त्रियों को आर्तव के कारण जो गुल्म होता है वह पुरुषों को नहीं होता, किन्तु अन्य कारणों से कुपित हुआ रक्तज गुल्म स्त्री और पुरुष दोनों को होता है ॥ ४ ॥

निरूढगुल्मप्रभवो हि कोष्ठे स्थितः स्वतन्त्रः परसंश्रयो वा।
स्पर्शोपलभ्यः परिपिण्डितत्वाद्गुल्मो यथा दोषमुपैति नाम ॥ ५ ॥

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः। पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥६॥

जिस ग्रन्थि (गुल्म) का निरूढ (दृढ) हो, कोष्ठ स्थान अथवा अन्य स्थान में स्वतन्त्र रहता हो, स्पर्श करने से ज्ञात होता हो (स्पष्ट ज्ञात हो जाता हो), पिण्ड के समान (गोल) हो, यदि इस प्रकार का गुल्म हो तो दोष के अनुसार उसका विभिन्न नाम है। यह गुल्म पृथक् २ वातादिकों के कुपित होने से वातज, पित्तज और कफज गुल्म कहा जाता है। और तीनों दोषों के मिलित प्रकोप से होने से सान्निपातिक गुल्म कहा जाता है। तथा एक और गुल्म रक्त से होता है जो पुरुष स्त्री दोनों को होता है। (इससे परे आर्तव जन्य गुल्म भी स्त्रियों को होता है) ॥५-६॥

तस्य पूर्वरूपमाह—उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ७ ॥

गुल्म के पूर्वरूप—गुल्म रोग जब होने को होता है तब उसके पहले डकार बहुत होता है और मल का अवरोध भोजन में अनिच्छा, सहन शक्ति की न्यूनता, आंतों में गों, गों शब्द आटोप, (गुड़ २ शब्द) आध्मान और पाचन शक्ति की न्यूनता ये सब लक्षण होते हैं ॥ ७ ॥

सर्वगुल्मानां सामान्यलक्षणमाह—

अरुचिः कृच्छ्रविण्मूत्रवातान्त्रप्रविकूजनम्। आनाहं चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ८ ॥

गुल्मों के सामान्य लक्षण—अरुचि, मल मूत्र और वायु आदि का कष्ट से होना, आंतों में कूजन (शब्द), आनाह, और ऊर्ध्ववात होना ये सब लक्षण प्राय सब प्रकार के गुल्मों में होते हैं ॥ ८ ॥

वातजमाह—रूक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च।
शोकोऽभिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ९ ॥

वातज गुल्म—रूक्ष अन्न और रूक्ष पदार्थ के अति सेवन करने से और विषम अन्नपान तथा अति मात्रा में अन्न पान करने से और विचेष्टा (परिश्रम-स्त्री प्रसंगादि) करने से, वेग (मलादिकों) के धारण करने से, अधिक शोक से, अभिघात से, मल के क्षय होने और अधिक उपवास करने से वातज गुल्म होता है। अर्थात् इन कारणों से वात कुपित होकर गुल्म उत्पन्न कर देता है ॥ ९ ॥

यः स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विड्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम्।
श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजं च ॥ १० ॥
करोति जीर्णेऽभ्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च।
वातात्स गुल्मो न च तत्र रूक्षं कषायतिक्तं कटु चोपशेते ॥ ११ ॥

जिस गुल्म रोग में स्थान, प्रमाण तथा वेदना आदि का विकल्प रहे (अर्थात् इसका कुछ ठिकाना नहीं रहे कि किस स्थान पर रहता है, कितने प्रमाण में है और कभी पीड़ा कम होती है कभी अधिक) और मल तथा अधोवायु का अवरोध हो जावे, गला और मुंह सूखता रहे, शरीर का वर्ण श्याम अथवा ताम्र हो जावे, शीत ज्वर हो और हृदय, कोख, पार्श्वदेश, स्कन्ध और सिर में पीड़ा हो, भोजन के पच जाने पर अधिक प्रकोप हो और भोजन कर लेने पर शान्त हो जावे उसे वात से होने वाला गुल्म जानना चाहिये। इसमें रूक्ष, कषाय, तिक्त और कटु पदार्थ सेवन करने से शमन नहीं होता, किन्तु बढ़ जाता है॥ १०-११॥

पैत्तिकमाह—कट्वम्ललतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा।
आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पित्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम्॥ १२॥

पित्तज गुल्म—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही और रूक्ष पदार्थों के अति सेवन करने से, क्रोध अधिक करने से, अधिक मद्य पीने से, अधिक धूप तथा अग्नि के पास रहने से, आमदोष से अभिघात से और रक्त दूषित होने से पित्तज गुल्म होता है॥ १२॥

ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च।
स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम्॥ १३॥

जिस गुल्म रोग में ज्वर, पिपासा, मुख और शरीर में लालिमा, भोजन पचते समय अत्यन्त शूल (पीड़ा), स्वेद और दाह हो, व्रण के समान गुल्म का स्पर्श सहन नहीं हो ये सब पैत्तिक गुल्म के लक्षण हैं॥ १३॥

श्लैष्मिकमाह—शीतं गुरु स्निग्धमचेष्टनं च सम्पूरणं प्रस्वपनं दिवा च।
गुल्मस्य हेतुः कफसम्भवस्य सर्वस्तु दुष्टो निचयात्मकस्य॥ १४॥

कफज गुल्म—अति-शीतल, गुरु और स्निग्ध पदार्थों के सेवन से निश्चेष्ट रहने से, (परिश्रम आदि नहीं करने से) पेट का निरन्तर भरा रहना दिन में सोना इन कारणों से कफज गुल्म होता है। और संनिपातज गुल्म में सभी वातादिक दोष दुष्ट होजाते हैं (यह प्रसङ्ग वश कहा गया है)॥ १४॥

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि।
शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य॥ १५॥

जिस गुल्म में आर्द्रता, शीत ज्वर, अंगों की शिथिलता, हृल्लास (उबकाई), कास, अरुचि, शरीर का भारीपन, शीतलता, गुल्म में पीड़ा की कमी, गुल्म का कठिन तथा उन्नत होना ये सब लक्षण हों उसे कफज गुल्म जानना चाहिये॥ १५॥

द्वन्द्वत्रिदोषजेषु हेतुलक्षणनिर्देशार्थमाह—
निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे द्विदोषजे दोषबलाबलं च।
व्यामिश्रलिङ्गानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम्॥ १६॥

द्वन्द्वज तथा त्रिदोषज गुल्म—दो दोषों के मिश्रित कारण और लक्षण दोषों के बलाबल के अनुसार जानना चाहिये अर्थात् जहाँ दो दोषों के मिश्रित कारण और लक्षण दिखाई दें उसे द्वन्द्वज और मिश्रित तीनों दोषों के कारण और लक्षण जिसमें हों उसे त्रिदोषज जानना चाहिये। फिर चिकित्सा करने के लिये द्वन्द्वज तीन प्रकार का समझना चाहिये॥ १६॥

त्रिदोषजस्यासाध्यत्वमाह—
महारुजं दाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम्।
मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत्॥ १७॥

जिस गुल्म में अत्यन्त पीड़ा हो, दाह हो, पत्थर के समान कठिन तथा उन्नत हो, शीघ्र दाह करने वाला हो, महादारुण (दुःखदायी) हो बल का क्षीण करने वाला हो तो यह त्रिदोषज गुल्म असाध्य कहा जाता है॥ १७॥

स्त्रीणां रक्तगुल्मस्य सम्प्राप्तिमाह—
नवप्रसूताऽहितभोजना या या चाऽऽमगर्भं विसृजेदृतौ वा।
वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम्॥ १८॥

[illegible] — [illegible] प्रसूता स्त्री [illegible] अहित भोजन करे अथवा जिसका गर्भ [illegible] हुआ हो अथवा ऋतु के समय में जो अहित भोजन करे उसके रक्त को [illegible] वायु रक्तगुल्म कर देता है। उसमें पीड़ा और जलन होती है ॥ १८ ॥

अन्यच्च—ऋतावनाहारतयाऽभयाद्वा विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैर्वा ।

संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषैर्गुल्मः स्त्रियां रक्तभवोऽभ्युपैति ॥ १९ ॥

ऋतु के समय में उपवास से, भय से, रूक्ष [illegible], वेगों के [illegible], [illegible] और वमन [illegible] द्वारों [illegible] और योनि दोष, स्त्रियों को रक्त गुल्म होता है ॥ १९ ॥

रक्त गुल्मः— पित्तस्य गुल्मेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ।

यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ।

स रौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ २० ॥

रक्त गुल्म के लक्षण—जिस गुल्म में पित्तगुल्म के समान लक्षण हों, किन्तु विशेषकर पिण्डाकार, अङ्गरहित, गर्भ के समान इधर-उधर फिरता रहे, [illegible] भी बहुत देर से कभी-कभी दर्द, गर्भ के समान और भी लक्षण हों। यह स्त्रियों को रक्त से होने वाला गुल्म है अर्थात् रक्त गुल्म के ये लक्षण हैं। इसकी चिकित्सा दसवें महीने के बाद करनी चाहिये। क्योंकि यही लक्षण गर्भ का भी है, अतः दोनों के [illegible] लक्षणों के [illegible] से [illegible] गुल्म न होकर गर्भ ही हो तो स्राव हो जायगा। २० ॥

असाध्यलक्षणमाह—

सञ्चितः क्रमशो गुल्मो महावास्तुपरिग्रहः । कृतमूलः सिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ २१ ॥

दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्वरैः । तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ २२ ॥

गुल्म के असाध्य लक्षण—जो गुल्म अधिक दिन से धीरे २ बढ़ता हुआ उदर भर में व्याप्त हो गया हो, अन्य धातुओं में भी जिसका प्रवेश हो गया हो, सिराओं से घिर गया हो और कछुवे के समान उन्नत हो गया हो तथा जिसमें दुर्बलता, अरुचि, उबकाई, कास, वमन, पीड़ा, ज्वर, तृषा, तन्द्रा और प्रतिश्याय हो वह गुल्म असाध्य है ॥ २१-२२ ॥

प्रकारान्तरेणाह—

गृहीत्वा सज्वरं श्वासच्छर्द्यतीसारपीडितम् । हृन्नाभिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥

जिस गुल्म रोग में ज्वर, श्वास, वमन तथा अतिसार से पीड़ा हो और हृदय, नाभि, हाथ और पावों में शोथ हो गया हो उसको यह गुल्म मार डालता है। अर्थात् इन लक्षणों वाला गुल्म असाध्य है ॥ २३ ॥

श्वासः शूलं पिपासाऽन्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता । जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥२४॥

जिसमें श्वास, शूल, पिपासा, भोजन पर अनिच्छा, गुल्म के ग्रन्थि का दृढ़ हो जाना और दुर्बलता हो उस गुल्म वाले को मरने ही के लिये जानना चाहिये। अर्थात् वह असाध्य है २४ ॥

## अथ गुल्मचिकित्सा ।

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् । बृंहणं च भवेद्न्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥

गुल्म चिकित्सा—लङ्घन ( उपवास ) और दीपन, स्निग्ध, उष्ण, वात का अनुलोमन तथा बृंहण अन्न के सेवन कराने से सब प्रकार के गुल्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या ।

मारुते ह्यवजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पयत्नमपि कर्म निहन्यात् ॥ २ ॥

गुल्म के रोगियों की वायु को शमन करने की विधिवत् चिकित्सा सबसे पहले करनी चाहिये। क्योंकि वायु के जीत लेने पर अन्य बढ़े हुए ( पित्तादिक ) दोषों को अल्प यत्न से भी शमन किया जा सकता है ॥ २ ॥

सुखोष्णा जाङ्गलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैन्धवाः । कटुत्रिकसमायुक्ता हिताः पानेषु गुल्मिनाम् ॥

जांगल जीवों का मांस रस सुखोष्ण ( थोड़ा गरम २ ) घृतादि से स्निग्ध कर सेंधा नमक और सोंठि, पिप्पलि, मरिच के चूर्ण को मिलाकर पान करने से गुल्म रोगियों को लाभ होता है ॥ ३ ॥

कुम्भिपिण्डेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् । उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥

वातनाशक क्वाथादि से परिपूर्ण भाप युक्त ( जिसका मुंह ढक कर क्वाथ किया गया हो ) कुम्भी या घट से स्वेद देवे ( भाप से सेंके ), और पिण्ड स्वेद करे ( उड़द आदि पीस कर पिण्डी बना कर गरम कर उससे स्वेद देवे ) अथवा ईंट को अग्नि में तपा कर वात नाशक क्वाथादि से सिंचन कर उस भाफ से स्वेद देवे अथवा शाल्वण-नेत्रधार आदि योगों से कुशल वैद्य गुल्म में स्वेद कर्म करे ॥ ४ ॥

गुल्मस्थाने रक्तमोक्षो बाहुमध्ये शिराव्यधः । स्वेदानुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥५॥

गुल्म के स्थान में रक्त मोक्षण कराना चाहिये, बाहु के मध्य की सिरा का रक्तमोक्षण कराना चाहिये ( बाहु के मध्य की मध्या या बड़ी सिरा बचा कर छोटी सिरा का रक्त मोक्षण कराना चाहिये क्योंकि बाहु का मध्य मर्मस्थान कहा गया है ) और स्वेद कर्म तथा वात का अनुलोमन करने वाली क्रिया सब गुल्म रोग वालों के लिये उत्तम कही गयी है ॥ ५ ॥

अथ वातगुल्मचिकित्सा—प्रागेव वातजे गुल्मे सुस्निग्धं स्वेदितं नरम् ।
रेचितं स्नेहरेकैश्च निरूहैः सानुवासनैः । उपाचरेद्भिषक्प्राज्ञो मात्राकालविशेषतः ॥ १ ॥

वात गुल्म चिकित्सा—वातज गुल्म में रोगी को प्रथम भली भाँति स्निग्ध कर, स्वेदित करे, और स्निग्ध विरेचनों से रेचित करे, फिर निरूह वस्ति तथा अनुवासन वस्ति देवे। इन सब कर्मों को विद्वान वैद्य मात्रा, काल आदि का विशेष विचार कर करे ॥ १ ॥

मातुलुङ्गादियोग—

मातुलुङ्गरसे हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम् । सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ॥ १ ॥

मातुलुङ्गादि योग—बिजौरा नीबू के रस में शुद्ध हींग, अनार दाना, विड्नमक, सेंधा नमक मिला कर सुरा मण्ड के साथ साथ मिलाकर पान करने से वातिक गुल्म की पीड़ा को हरण करता है ॥ १ ॥

शुण्ठ्यादि—नागरार्धपलं पिष्टं द्वे पले लुञ्चितस्य च ।
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् । वातगुल्ममुदावर्तं योनिशूलं च नाशयेत् ॥ १ ॥

नागरादि कल्क—सोंठि आधा पल, शुद्ध किये हुए तिल दो पल और पुराना गुड़ एक पल लेकर सबको पीस कर उष्ण दूध के साथ पान करने से वातज गुल्म, उदावर्त और योनि शूल नष्ट होता है। ( इसकी मात्रा रोग बलानुसार विचार कर देनी चाहिये )॥ १ ॥

हिङ्गुपञ्चकम्—

हिङ्गुसैन्धववृक्षाम्लराजिकानागरैः समैः । चूर्णं गुल्मप्रशमनं स्यादेतद्धिङ्गुपञ्चकम् ॥ १ ॥

हिंगुपञ्चक—शुद्ध हींग, सेंधा नमक, वृक्षाम्ल ( कोकम ) राई और सोंठि एक २ भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से यह 'हिंगुपञ्चक' चूर्ण गुल्म को शमन करता है ॥ १ ॥

केतकीक्षारयोग—

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिसम्भवः । तैलसंसेतेन शमयेद्वातगुल्मं सुदारुणम् ॥ १ ॥

केतकीक्षार योग—सज्जी, कूठ और केतकी के पौधे का क्षार तीनों को समान लेकर तेल के साथ पान करने से भयंकर वातज गुल्म शान्त होता है ॥ १ ॥

एरण्डतैलादियोग —

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी विशेषतः ॥ १ ॥

एरण्डतैलादि योग —सुरामण्ड में अथवा दूध में एरण्ड तेल मिलाकर पान करने से वातज गुल्म वाले रोगी को लाभ होता है ॥ १ ॥

हपुषाद्यं घृतम्—

हपुषाजाजिपृथ्वीकापिप्पलीमूलचित्रकैः । क्षीरमूलककोलानां रसैश्च विपचेद् घृतम् ॥ १ ॥
वातगुल्मारुचिश्वासशूलानाहज्वरार्शसाम् । ग्रहणीयोनिदोषाणां घृतमेतद्विनाशनम् ॥ २ ॥

हपुषाद्य घृत—हाऊबेर, जीरा, बड़ी इलायची पिपरामूल और चित्रकमूल समान लेकर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना गोदुग्ध और दूध के समान मूली का क्वाथ और उसी के समान बेर का क्वाथ क्रम से मिलाकर विधि पूर्वक घृत पाक करे जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार छान कर सेवन करने से वातज गुल्म, अरुचि, श्वास, शूल, आनाह, ज्वर, अर्श, ग्रहणी और योनि दोष नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

चित्रकाद्यं घृतम्—

चित्रकव्योषसिन्धूत्थपृथ्वीकाचव्यदाडिमैः । दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहपुषाधान्यकैः समैः ॥ १ ॥
दध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् । पक्त्वा पिबेद्वातगुल्मदौर्बल्याटोपशूलनुत् ॥ २ ॥

चित्रकादि घृत—चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, सेंधा नमक, बड़ी इलायची, चव्य अनारदाना, जवाइन, पिपरामूल, जीरा ( श्वेत ), हाऊबेर और धनियाँ सम भाग लेकर कल्क करे, जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना दही और दही के समान कांजी और कांजी के ही समान बेर की जड़ का काथ और उसी के समान मूली का स्वरस क्रम से मिलाकर पाक करे जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार छान कर पान करने से वातज गुल्म, दुर्बलता, आटोप और शूल को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

पथ्यम्—

तित्तिरांश्च मयूरांश्च कुक्कुटान्क्रौञ्चवर्तिकान् । सर्पिः शाल्यन्नपथ्यांश्च वातगुल्मे च योजयेत् ॥१॥

वातजगुल्म में पथ्य—तित्तिर, मोर, कुक्कुट, क्रौंच पक्षी और बटर इनके मांस रस को घृत तथा शालिधान्य ( भात के ) साथ मिलाकर वातज गुल्म में पथ्य खाना चाहिये ॥ १ ॥

वातगुल्मप्रतीकारे प्रकुप्यति यदा कफः । शस्तमुल्लेखनं तत्र चूर्णाद्यश्च कफापहाः ॥ २ ॥

वातज गुल्म की चिकित्सा करने से यदि कफ दोष बढ़ जावे तो उस अवस्था में उल्लेखन कर्म तथा कफनाशक चूर्ण आदि का प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

यदि कुप्यति वा पित्तं विरेकस्तत्र भेषजम् । दोषघ्नैरप्यशान्ते च गुल्मे शोणितमोक्षणम् ॥३॥

यदि वातज गुल्म की चिकित्सा करते २ पित्त कुपित हो जावे तो उस अवस्था में विरेचन देना चाहिये । पित्त कफ आदि दोषों को नष्ट करने वाली औषधियों के सेवन करने पर भी यदि गुल्म शान्त न होवे तो गुल्म से रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ ३ ॥

## अथ पित्तगुल्मचिकित्सा।

त्रिवृच्चूर्णम्—

पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना । विरेचनाय ससितं कम्पिल्लं च समाक्षिकम् ॥१॥

त्रिवृच्चूर्ण—पित्तज गुल्म में निशोथ का चूर्ण त्रिफला के जल से विरेचन के लिये पान करना चाहिये और कबीला का चूर्ण शर्करा तथा मधु से चटाना चाहिये ॥ १ ॥

द्राक्षादियोग—

द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुडं पिबेत् । सशर्करं वा विलिहेत्त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ॥ १ ॥

द्राक्षादि योग—पैत्तिक गुल्म में दाख और हर्रा का स्वरस निकाल कर गुड़ मिलाकर पीना चाहिये अथवा त्रिफला का उत्तम चूर्ण शर्करा के साथ खाना चाहिये ॥ १ ॥

पथ्याद्यं घृतम्—

रसेनाऽऽमलकेक्षूणां घृतपादं विपाचयेत् । पथ्याकाथेन पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धं पित्तगुल्मनुत् ॥१॥

पथ्याद्य घृत—आँवले का रस और उसी के समान ईख का रस और मूर्च्छित गोघृत चतुर्थांश तथा रस के समान ही हर्रा का काथ इनके साथ क्रम से ( एक २ के साथ पृथक् २ ) घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उतार छान कर सेवन करने से पित्तज गुल्म नष्ट होता है ॥१॥

द्राक्षाद्यं घृतम्—

द्राक्षामधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम् । परूषकाणि त्रिफलां साधयेत्पलसम्मिताम् ॥ १ ॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च । घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ २ ॥
साधयेत्तद् घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम् । प्रयोगः पित्तगुल्मघ्नः सर्वगुल्मविकारनुत् ॥ ३ ॥

द्राक्षादि घृत—दाख, मुलहठी, खजूर का फल, विदारीकन्द शतावरि, फालसा, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा प्रत्येक एक २ पल लेकर कुछ कूट कर एक आढक ( ४ प्रस्थ ) जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ उतार छानकर रख लेवे, आँवले का स्वरस ( एक प्रस्थ ), ईख का रस, गौ का दूध प्रत्येक जितना क्वाथ हो उसके समान ( एक प्रस्थ ) और मूर्च्छित, गो घृत, एक कुडव ( ¼ प्रस्थ ) तथा हर्रा का कल्क १ पल लेकर क्रम से विधिपूर्वक पृथक् २ स्वरसादिकों का पाक करते हुए

मन्द २ अग्नि पर घृत सिद्ध करे जब घृत मात्र शेष रह जावे तब उतार-छानकर शीतल होने पर घृत के चतुर्थांश शर्करा और मधु मिलाकर सेवन करने से पैत्तिक गुल्म नष्ट होता है तथा गुल्म के अन्य सब विकार नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पथ्यम्—शालिं गोछागदुग्धं च पटोलं घृतमिश्रितम्।
द्राक्षां परूषकं धात्रीं खर्जूरं दाडिमं सिताम्। पथ्यार्थे पैत्तिके गुल्मे बलातोयं च योजयेत् ॥

पित्तजगुल्म में पथ्य—शालिधान का चावल, गौ तथा बकरी का दूध, परवर का शाक (घृत में सिद्ध किया हुआ) दाख, फालसा, आँवला, खजूर का फल, अनार, शर्करा और बरियारे का स्वरस अथवा क्वाथ ये सब पित्तज गुल्म में पथ्य के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

## अथ श्लेष्मगुल्मचिकित्सा।

स्नेहोपनाहनस्वेदैस्तीक्ष्णस्रंसनबस्तिभिः। योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥१॥

कफज गुल्मचिकित्सा—कफज गुल्म में स्नेहपान, उपनाह कर्म, स्वेद कर्म, तीक्ष्ण स्रंसन बस्ति तथा वातगुल्म में कहे हुए योगों का व्यवहार कराकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

तिलादिस्वेदः—

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च। श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैः सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥१॥

तिलादि स्वेद—तिल, एरण्ड बीज, (तुषरहित) तीसी और सर्सो इनको पीस कर गुल्म (कफज गुल्म) पर लेप कर लोह के पात्र को कुछ तपा कर (सहने योग्य) उससे गुल्म को स्वेद देवे। इससे कफज गुल्म शमन होता है ॥ १ ॥

यवान्यादिः—

यवानीं चूर्णितां तक्रे विडेन लवणीकृताम्। श्लेष्मगुल्मे पिबेद्वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनीम् ॥१॥

यवान्यादि योग—अजवाइन तथा विडनमक के चूर्ण को मट्ठे में मिलाकर पान करने से कफज गुल्म में वात-मूत्र-पुरीष का अनुलोमन होता है अर्थात् कफज गुल्म में लाभ होता है ॥१॥

क्षीरषट्पलं घृतम्—

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। पलिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १ ॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम्। ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥२॥

क्षीरषट्पल घृत—पीपरि, पिपरामूल चव्य चित्रकमूल और सोंठ तथा यवक्षार इनको एकएक पल लेकर पाक करे, मूर्च्छित गोघृत और गोदुग्ध प्रत्येक एक-एक प्रस्थ एकत्र कर मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से कफज गुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास रोग और ज्वर को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

*मिश्रकस्नेह*—

त्रिवृता त्रिफला दन्ती दशमूलं पलोन्मितम्। जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥
सर्पिरेरण्डतैलं च क्षीरं चैकत्र साधयेत्। ससिद्धो मिश्रकस्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ २ ॥

मिश्रक स्नेह—निशोथ, आंवरा, हर्रा, बहेरा, दन्तीमूल तथा दशमूल ओषधियों को पृथक्-पृथक् एक २ पल के प्रमाण से लेकर चौगुने जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार-छानकर जितना क्वाथ हो उसके समान भाग मूर्च्छित गोघृत, एरण्ड तैल और दूध (गाय का) लेकर एकत्र कर पाक करे और जब केवल स्नेह (घृत-तैल) मात्र शेष रहे तब उतार-छानकर रख लेवे। इसे 'मिश्रक स्नेह' कहते हैं। इसको मधु मिलाकर सेवन करने से कफज गुल्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्यम्—

कुलत्थाञ्जीर्णशालींश्च पट्टिकान्यवजाङ्गलान्। मद्यं तैलं घृतं तक्रं कफगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

कफज गुल्म में पथ्य—कफज गुल्म में कुलथी, पुराने शालिधान का चावल साठी जौ, जांगल जीवों का मांसरस, मद्य तेल, घी और मट्ठा इन सब द्रव्यों का पथ्य में प्रयोग करना चाहिये ॥

## अथ त्रिदोषगुल्मचिकित्सा।

वरुणादिकषायस्तु गुल्मं दोषत्रयोत्थितम्। हन्ति हृत्पार्श्वशूलाढ्यं सोपद्रवमसंशयम् ॥ १ ॥

त्रिदोष गुल्म चिकित्सा—वरुणादि कषाय पान करने से त्रिदोषज गुल्म, हृदय का शूल, पार्श्वशूल और समान्य गुल्मों के सभी उपद्रव नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शार्ङ्गधराद्वरुणादिक्वाथ —

वरुणा बकपुष्पश्च बिल्वापामार्गचित्रकाः। अग्निमन्थद्वयं शिग्रुद्वयं च बृहतीद्वयम् ॥ १ ॥
सैरेयकत्रयं मूर्वा मेषशृङ्गी किरातकः। अजशृङ्गी च बिम्बी च करञ्जश्च शतावरी ॥ २ ॥
वरुणादिगणक्वाथः कफमेदोहरः स्मृतः। हन्ति गुल्मं शिरःशूलं तथाऽभ्यन्तरविद्रधीन् ॥३॥

वरुणादि क्वाथ—वरुणा की छाल, अगस्त्य का फूल, बेल की छाल, अपामार्ग की जड़, चित्रक की जड़, गनियार छोटा, गनियार बड़ा, सहिजन और रक्त सहिजन, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, कटसरैया श्वेतपुष्प की, नील पुष्प की तथा पीत पुष्प वाली तीनों पृथक् २ मूर्वामूल, मेढ़ा सिंगी, चिरैता, अजशृंगी, बिम्बी फल, करञ्ज और शतावरि ये वरुणादि हैं। इनको समान लेकर क्वाथ कर सेवन करने से कफ, मेद, गुल्म रोग, शिरःशूल और अन्तर्विद्रधि को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

## अथ रक्तगुल्मप्रतीकारः।

विसर्पवद्रक्तगुल्मिन्या नार्याः कार्या यथाविधि। स्निग्धस्विन्नकोष्ठाया योज्यं स्नेहविरेचनम् ॥

रक्तगुल्म चिकित्सा—रक्त गुल्म वाली स्त्रियों की चिकित्सा विसर्प गुल्म के समान करनी चाहिये। पहले स्नेह पान करा कर कोष्ठ को स्वेदन करे, फिर स्निग्ध विरेचन देवे ॥ १ ॥

शताह्वादिकल्क —

शताह्वाचिरिबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः। कल्कः पीतो जयेद् गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥

शताह्वादि कल्क—सौंफ, नाटा करञ्ज की छाल, देवदारु, भारङ्गी और पीपरि सम भाग लेकर कल्क कर तिल के क्वाथ के अनुपान से पान करने से रक्तज गुल्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

तिलक्वाथ—

तिलक्वाथो गुडघृतव्योषभार्ङ्गीरजोन्वितः। पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योषितः ॥

तिलक्वाथ—तिल के क्वाथ में पुराना गुड़, घृत, सोंठ, पीपरि, मरिच और बभनेठी इनके समान मिलित चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तगुल्म नष्ट होता है और रजोवरोध में देने से मासिक धर्म शुरू होता है ॥ १ ॥

सुश्रुतात्तिलमूलादि चूर्णम्—तिलमूलं च शिग्रुं च भार्ङ्गीं कुण्डीयमूलकम्।
मधुयष्टीत्रिकटुकैर्युक्तं चूर्णमुपासयेत्। पुष्परोधे वातगुल्मे स्त्रीणां सद्य सुखावहम् ॥ १ ॥

तिलमूलादि चूर्ण—तिल की जड़, सहिजन की छाल, बभनेठी, मूली, जेठीमधु, सोंठ, पीपरि और मरिच को सम भाग लेकर चूर्ण कर सेवन करने से रजोवरोध और वातज गुल्म में स्त्रियों को लाभ करता है ॥ १ ॥

भार्ङ्ग्यादिचूर्णम्—

भार्ङ्गीकृष्णाकरञ्जत्वग् ग्रन्थिकामरदारुजम्। चूर्णं तिलानां क्वाथेन रक्तगुल्मरुजापहम् ॥ १ ॥

भार्ङ्ग्यादि चूर्ण—बभनेठी, पीपरि, करञ्ज की छाल, पिपरामूल, देवदारु की छाल प्रत्येक एक २ भाग लेकर चूर्ण कर तिल के क्वाथ के साथ सेवन करने से रक्त गुल्म की पीड़ा नष्ट होती है ॥

दन्त्यादिगुटिका—दन्तीहिङ्गुयवक्षाराळाबुबीजकणागुडाः।
स्नुहीक्षीरेण गुटिका सर्वतो कर्षमात्रिका। भक्षिता रक्तगुल्मघ्नी रुधिरस्रावकारिणी ॥ १ ॥

दन्त्यादि गुटिका—दन्तीमूल, शुद्ध हींग, यवाखार, कडुतुम्बी का बीज, पीपरि, पुराना गुड़ एक २ भाग लेकर स्नुही क्षीरमर्दन कर वटी बनावे एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से रक्तजगुल्म और रजोवरोध नष्ट होता है ॥ १ ॥

अर्कपुष्पयोग —पक्वं तैलेऽर्कजं पुष्पं रुधिरस्रावकारि च ॥ १ ॥

अर्कपुष्पयोग—मदार के फूल को तेल के साथ पाक कर पान करने से रुधिर का स्राव होता है (रजोवरोध नष्ट होता है) ॥ १ ॥

पालाशक्षारघृतम्—

पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेद्धि। यस्मिन्प्रपक्वे क्षारतोयसाध्यघृतादिषु ॥ १ ॥
फेनोद्गमस्य निर्वृत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृति। स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ २ ॥

पलाश क्षार घृत—पलाश के क्षार का जल ४ भाग और मूर्च्छित गोघृत १ भाग के साथ घृत सिद्ध करे, जब घृत मात्र शेष रहे तब उतार-छानकर स्त्री को पिलाने से रक्तज गुल्म नष्ट

होता है और जो मासिक धर्म बन्द हो गया है वह होने लगता है। जिस समय क्षार के जल से घृत पाक किया जाता है उस समय फेन उसमें अधिक होता है और फटे हुए दूध के समान वह देखने में हो जाता है यही लक्षण घृत के उचित पाक होने का समझना चाहिये। यदि इस रूप का नहीं हो तो पाक ठीक नहीं हुआ, यह जानना चाहिये ॥ १-२ ॥

मुण्ड्यादि—

मुण्डीरोचनिकाचूर्णं शर्करामाक्षिकान्वितम्। विदधीतासृग्गुल्मिन्यां मलसंरेचनाय च ॥ १ ॥

मुण्ड्यादि चूर्ण—मुण्डी और वंशलोचन दोनों को समभाग लेकर चूर्ण कर शर्करा और मधु मिलाकर सेवन करने से रक्तगुल्म वाली स्त्रियों के मल का रेचन हो कर रक्तगुल्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिर्वाऽसृग्दरो हितः। अतिप्रवृत्तमस्रं तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत् ॥२॥

उष्ण द्रव्यों से रक्त गुल्म का भेदन करे और जब भेदन से रक्त निकल आवे तब उसमें रक्त प्रदर में कही हुई विधि हितकारक है। गुल्म के भेदन होने के कारण यदि रक्त का अधिक स्राव होने लगे तो उसका अवरोध भी करना चाहिये ॥ १-२ ॥

## अथ सामान्यविधिः।

चित्रकादिक्वाथ —

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीक्वाथः परं हितः। शूलानाहविबन्धेषु सहिङ्गुविडसैन्धवः ॥ १ ॥

चित्रकादि क्वाथ—चित्रकमूल, पिपरामूल, एरण्डमूल और सोंठ समभाग लेकर क्वाथ कर शुद्ध हींग, बिड़नमक और सेंधा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से शूल, आनाह और विबन्ध रोग में अत्यन्त हितकारी होता है ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादिचूर्णम्—

हिङ्गुग्रन्थिकधान्यजीरकवचाचव्याग्निपाठाशटीवृक्षाम्लं लवणत्रयं त्रिकटुकं क्षारद्वयं दाडिमम्।
पथ्यापुष्करवेतसाम्लहपुषाजाजीयुतैस्तैः कृतं चूर्णं भावितमेतदार्द्रकरसैः स्याद्बीजपूरस्य च ॥

आध्मानग्रहणीविकारगुदजान्गुल्मानुदावर्तकान्
प्रत्याध्मानगदं तथाऽश्मरियुतं तूनिद्वयारोचकान्।
ऊरुस्तम्भमतिभ्रमं च मनसो बाधिर्यमष्ठीलिकां
प्रत्यष्ठीलिकिकामयापहरते पावकीसमुष्णाम्बुना ॥ २ ॥

हृत्कुक्षिबस्तिवङ्क्षणकटीजठरान्तरेषु बस्तिस्तनांसफलकेषु च पार्श्वयोश्च।
शूलानि नाशयति वातकफासजानि हिङ्ग्वादि मान्द्यमिदमाश्विनसंहितायाम् ॥ ३ ॥

हिंग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, पीपरामूल, धनियां, जीरा, वच, चाव, चित्रकमूल, पुरइन, पाढ़ी, कचूर, वृक्षाम्ल (कोकम), सेंधानमक, सोंचरनमक, बिड़नमक सोंठि, पीपरि, मरिच, पीपल, यवाखार, सज्जीखार, अनारदाना, हर्रा, पुष्करमूल, अम्लवेत, हाऊबेर, जीरास्वेत, सम भाग (एक २ भाग) लेकर चूर्ण बना कर अदरक के स्वरस से भावना देवे, फिर जमीरी नीबू के स्वरस से भावित कर उष्णोदक के अनुपान से पीने से आध्मान, ग्रहणी, अर्श, गुल्म, उदावर्त, प्रत्याध्मान, अश्मरी, तूनी, प्रतूनी, अरुचि, ऊरुस्तम्भ, मतिभ्रम (भ्रमरोग) मानस रोग (उन्मादादि) बधिरता, अष्ठीला, प्रत्यष्ठीला आदि रोग, हृदय, कुक्षि, वंक्षण कटि, उदर, बस्ति, स्तन, स्कन्ध दोनों, तथा दोनों पार्श्वों के शूल और वात कफ से उत्पन्न शूल इन सब को तथा मन्दाग्नि को भी नष्ट करता है। आश्विन संहिता में इस चूर्ण का नाम "हिंग्वादि चूर्ण" है ॥ १-३ ॥

हिङ्ग्वादिनवकम्—

हिङ्गु पुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी। श्यामा बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ १ ॥
यवक्वाथोदकेनैतद् घृतभृष्टेन पाययेत्। तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥

हिंग्वादिनवक—शुद्ध हींग, पुष्करमूल, तिम्बरू के फल, हर्रा, कृष्ण सारिवा, बिड़नमक, सेंधा-नमक, यवाखार और सोंठ इन औषधियों को सम भाग लेकर चूर्ण कर रखे, पुनः घृत के साथ भून लेवे फिर यव के क्वाथ के अनुपान से उपरोक्त चूर्ण को सेवन करने से शूल तथा उपद्रवों सहित गुल्मरोग दूर जाता है ॥ १-२ ॥

भास्करलवणाख्यचूर्णम्—

सामुद्रलवणं ग्राह्यमष्टकर्षमितं बुधैः। पञ्च सौवर्चलं ग्राह्यं विडसैन्धवधान्यकम् ॥ १ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं पथ्यं जीरकपत्रकम्। नागकेसरतालीसमम्लवेतसकं तथा ॥ २ ॥
द्विकर्षमात्राण्येतानि प्रत्येकं कारयेद् बुधः। मरीच जीरकं विश्वमेकैकं कर्षमात्रकम् ॥ ३ ॥
दाडिमस्य चतुष्कर्षं त्वगेला चार्धकार्षिका। एतच्चूर्णीकृतं सर्वं लवणं भास्कराभिधम् ॥ ४ ॥

भास्कर लवणाख्य चूर्ण—बुद्धिमान वैद्य सामुद्र नमक और सोंचर नमक ८ कर्ष और विटनमक, सेंधानमक, धनिया, पीपरि, पिपरामूल, पथ्य, श्वेत, जीरा तेजपात, नागकेसर, तालिस-पत्र, अम्लवेत, प्रत्येक दो २ कर्ष तथा मरिच, जीरा और सोंठि, एक १ कर्ष, अनारदाना ४ कर्ष, दालचीनी आधा कर्ष और छोटी इलायची के दाने आधा कर्ष सबको एकत्र चूर्ण कर ऐसे यह 'भास्कर लवणाख्य चूर्ण कहा जाता है ॥ १-४ ॥

शाणप्रमाणं देयं तु मस्तुतक्रसुरासवैः। वातश्लेष्मभवं गुल्मं प्लीहानमुदरं क्षतम् ॥ ५ ॥
अर्शांसि ग्रहणीं कुष्ठं विबन्धं च भगन्दरम्। शोथं शूलं श्वासकासमामदोषं च हृद्रुजम् ॥ ६ ॥
मन्दाग्निं नाशयत्येतद्दीपनं पाचनं परम्। सर्वलोकहितार्थाय भास्करेणोदितं पुरा ॥ ७ ॥

इस चूर्ण को एक शाण ( ४ माशा ) के प्रमाण की मात्रा से दही के पानी, तक्र, मद्य अथवा आसव के अनुपान से सेवन करने पर वातकफ से उत्पन्न गुल्म, प्लीहा, उदर, क्षतरोग, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, विबन्ध, भगन्दर, शोथ, शूल, श्वास, कास, आमदोष हृदय की पीड़ा, मन्दाग्नि इन सब रोगों को नष्ट करता है। यह चूर्ण अत्यन्त दीपन तथा पाचक है। इस चूर्ण को संसार के कल्याण के लिये पहले भास्कर ने कहा था इसीसे इसका नाम 'भास्कर लवण है ॥ ५-७ ॥

क्षारद्वयादि—

क्षारद्वयानलव्योषनीलीलवणपञ्चकम्। चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ १ ॥

क्षारद्वयादि योग—यवाक्षार, सज्जीक्षार, चित्रकमूल, सोंठि पीपरि, मरिच, नील, सेंधानमक, सोंचरनमक, विड्नमक, समुद्रनमक और उद्भिदनमक सम भाग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के गुल्मरोग तथा उदररोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अग्निमुखरस —

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च द्विगुणा भवेत्। पिप्पली त्रिगुणा ज्ञेया शृङ्गवेरं चतुर्गुणम् ॥
यवानिका पञ्चगुणा षड्गुणा च हरीतकी। चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठं चाष्टगुणं भवेत् ॥ २ ॥
एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया। पिबेद्दध्ना मस्तुना वा सुरया कोष्णवारिणा ॥ ३ ॥
उदावर्तमजीर्णं च प्लीहानमुदरं तथा।
अङ्गानि यस्य शीर्यन्ते विषं वा येन भक्षितम्। अर्शोहरो दीपनश्च शूलघ्नो गुल्मनाशनः ॥ ४ ॥

अग्निमुख रस—शुद्ध हींग एक भाग, बच दो भाग, पीपरि तीन भाग, सोंठि ४ भाग, अजवाइन ५ भाग, हर्रा ६ भाग, चित्रकमूल ७ भाग, कूट ८ भाग लेकर चूर्ण बना कर प्रसन्ना, दही, दही के पानी, सुरा अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने पर वात को तथा उदावर्त, अजीर्ण प्लीहा और उदररोग को नष्ट करता है तथा जिसके अङ्ग शिथिल हो गये हों अथवा जिसने विष भक्षण किया हो उन्हें लाभ करता है तथा अर्शरोग, शूल रोग और गुल्मरोग को भी नष्ट करता है। यह दीपन है ॥ ४ ॥

कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव क्षयनाशनः। चूर्णो ह्यग्निमुखो नाम्ना न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥

यह 'अग्निमुख' नामक चूर्ण कास और क्षय को भी शीघ्र नष्ट करता है। यह चूर्ण अपने नाम के प्रभाव को नष्ट नहीं होने देता अर्थात् उपर्युक्त सभी रोगों में अवश्य लाभ करता है ॥ ५ ॥

काङ्कायनगुटिका—

'यवानी जीरकं धान्यं मरिचं गिरिकर्णिका। अजमोदोपकुञ्ची च चतुःशाणा पृथक् पृथक् ॥
हिङ्गु षट्शाणिकं कार्यं क्षारौ लवणपञ्चकम्। त्रिवृच्चाष्टमितैः शाणैः प्रत्येकं कल्पयेत्सुधीः ॥
'दन्ती शठी पौष्करं च विडङ्गं दाडिमं शिवा। चित्रकोऽम्लवेतसः शुण्ठी शाणैः षोडशभिः पृथक् ॥
बीजपूररसेनैषां गुटिकां कारयेद् बुधः। घृतेन पयसा चाम्लै रसैरुष्णोदकेन वा ॥ ४ ॥
पिबेत्काङ्कायनप्रोक्ता गुटिका गुल्मनाशिनी। मद्येन वातिकं गुल्मं गोक्षीरेण च पैत्तिकम् ॥ ५ ॥

मूत्रेण कफगुल्मं च दशमूलैस्त्रिदोषजम्। उष्ट्रीदुग्धेन नारीणां रक्तगुल्मं निवारयेत्॥ ६॥
हृद्रोगं ग्रहणीशूलं कृमीनर्शांसि नाशयेत्॥ ७॥

काङ्कायन गुटिका—अजवायन, जीरा, धनियां, मरिच, इन्द्रायण, अजमोदा, कृष्ण जीरा प्रत्येक चार २ शाण (१६-१६ माशा) शुद्ध हींग ६ शाण, यवाखार, सज्जीखार, सेंधा नमक, विड नमक सोंचर नमक, सामुद्र नमक, उद्भिद नमक और निशोथ पृथक् पृथक् आठ २ शाण और दन्तीमूल, कचूर, पुष्करमूल, वायविडंग, अनारदाना, हर्रा, चित्रकमूल, अम्लवेत, सोंठि प्रत्येक १६-१६ शाण लेकर चूर्ण कर बिजौरा नीबू के रस में मर्दन कर वटी बना लेवे इस वटी को घृत, दूध, अम्लरस (कांजी आदि) अथवा उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से यह काङ्कायन वटी गुल्म को नष्ट करती है। मद्य के अनुपान से वातिक गुल्म, गोदुग्ध से पैत्तिक गुल्म, गोमूत्र से कफज गुल्म, दशमूल के क्वाथ से त्रिदोषज गुल्म और ऊँटनी के दूध के अनुपान से स्त्रियों के रक्त गुल्म, हृद्रोग, ग्रहणी, शूल, कृमि तथा अर्शों को नष्ट करती है॥ १-७॥

चिञ्चाक्षारादिशङ्खवटी—

चिञ्चाक्षारं स्नुहीक्षारमर्कक्षारं पलं पलम्। द्विपलं शङ्खजं भस्म रामठं च पलार्धकम्॥ १॥
लवणानि च सर्वाणि पलमात्राणि योजयेत्। क्षारद्वयं पलार्धं च सर्वमेकत्र योजयेत्॥ २॥
जम्बीरकरसैर्मर्द्यमनलस्य दिनत्रयम्। भृङ्गराजस्य निर्गुण्ड्याश्चैव पृथगृत्रयं॥ ३॥
आर्द्रकस्य रसेनैव प्रत्येकं त्रिदिनमर्दितम्। बदरीबीजमात्रांस्तु वटकान् कारयेद्भिषक्॥ ४॥

चिञ्चाक्षारादि शङ्ख वटी—इमली का क्षार, सेहुँड का क्षार, मदार का क्षार एक २ पल, शंख भस्म दो पल शुद्ध हींग आधा पल (२ कर्ष) पांचों नमक मिलित एक पल, यवाखार और सज्जी खार दोनों मिलित आधा पल लेकर सबको एकत्र मर्दन कर जम्बीरी नीबू के रस तथा चित्रकमूल के स्वरस के साथ पृथक् २ तीन २ दिन तक मर्दन करे। फिर भांगरे के रस, निर्गुण्डी के रस शुण्ठी के रस और अदरक के रस के साथ पृथक् २ तीन २ दिन मर्दन कर बेर के बीज के समान (प्रमाण) वटी बना कर वैद्य रख लेवे॥ १-४॥

एकैकं भक्षयेत्प्रातः पञ्च गुल्मानपोहति। सर्वं शूलं निहन्त्याशु अजीर्णं च विषूचिकाम्॥ ५॥
मन्दाग्निं नाशयेच्छीघ्रं पथ्यं तैलाम्लवर्जितम्। चिञ्चाशङ्खवटी नाम ग्रहणीरोगहारका॥ ६॥

इसकी एक २ वटी प्रातःकाल सेवन करने से पांचों प्रकार के गुल्म नष्ट होते हैं और सब प्रकार के शूल रोग, अजीर्ण विषूचिका और मन्दाग्नि शीघ्र नष्ट होते हैं। इसके साथ पथ्य में केवल तैल और खटाई वर्जित है। यह चिञ्चा क्षार शङ्ख वटी' नामक औषधि ग्रहणी रोग को नष्ट करने में उत्तम कही गयी है॥ ५-६॥

वज्रक्षार—

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम्। टङ्कणं स्वर्जिकाक्षारं तुल्यं चूर्णं प्रकल्पयेत्॥ १॥
अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैः भावयेदातपे त्र्यहम्। अर्कपत्रं विलेपेन रुद्ध्वा भाण्डे पुटे पचेत्॥ २॥
स क्षारं चूर्णयित्वाऽथ त्र्यूषणं त्रिफलारजः।
जीरकं रजनी वह्निर्नवकस्य समं सतः। क्षारार्धं योजयेत्सम्यगेकीकृत्य विचूर्णयेत्॥ ३॥
वज्रक्षारमिदं शुद्धं स्वयं प्रोक्तं पिनाकिना॥ ४॥

वज्रक्षार—सामुद्र नमक, सेंधा नमक, काच नमक, यवाखार, सोंचर नमक, शुद्ध टङ्कण और सज्जीखार सम भाग लेकर चूर्ण कर मदार के दूध और सेहुँड के दूध के साथ पृथक् २ तीन दिन तक भावना देवे फिर मदार के पत्तों में लपेट कर एक हांडी में रख कर मुख बन्द कर अग्नि पर जला कर भस्म कर लेवे और मर्दन कर इस भस्म में सोंठि, पीपरि, मरिच आंवरा, हर्रा, बहेड़ा, जीरा, हरदी, चित्रकमूल इन नौ द्रव्यों को समान भाग लेकर चूर्ण कर भस्म (क्षार) जितना हो उससे आधा सम मिलित चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर रख लेवे। इस 'वज्रक्षार' को स्वयं महादेवजी ने कहा था॥ १-४॥

सर्वोदरेषु गुल्मेषु शूले शोथे च योजयेत्। अग्निमान्द्ये त्वजीर्णे च भक्षेन्निष्कद्वयं तथा॥ ५॥

इसको सब प्रकार के उदर रोग, गुल्म, शूल, शोथ, मन्दाग्नि और अजीर्ण में देना चाहिये इसकी मात्रा दो निष्क के प्रमाण की चाहिये॥ ५॥

वाताधिके जलैः कष्णैर्घृतैः पित्ताधिके हितः । कफे गोमूत्रसंयुक्त आरनालैस्त्रिदोषजुत् ॥ ६ ॥

वात की अधिकता में गुनगुने उष्ण जल के अनुपान से, पित्त की अधिकता में घृत से, कफ की अधिकता में गोमूत्र से और त्रिदोष की अधिकता में कांजी के अनुपान से सेवन करना चाहिये। अर्थात् इन २ अनुपानों से तीनों दोषों के कोप से होने वाले गुल्म आदि नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

योगसारात्शङ्खद्राव —प्रथम जम्बीरनीरं बदरपरिमितं काकतुण्डस्य मूलं
कर्षार्धं स्वर्जिकायाखिपटुपलयुतं नव्यसारं पलार्धम् ।
सार्धं सूर्यतापे मुनिदिनयुगुरं काचकुप्यां निधाय
दद्याद्गुल्मं सुतीव्रं जठरमलरुजं शङ्खद्रावसंज्ञः ॥ १ ॥

शङ्खद्राव का लक्षण और गुण—जमीरी नीबू का रस एक प्रस्थ, काकनासा की जड़ कोल प्रमाण ( २ शाण ), सज्जीखार आधा कर्ष, सेंधानमक, सोंचर नमक और बिड्नमक मिलित १ पल, नरसार आधा पल लेकर सबको एकत्र कर काच के पात्र में रख कर चौदह दिन तक सूर्य के ताप में रख कर सेवन करने से तीव्र गुल्म रोग, उदररोग और मल की पीड़ा ( मल का उचित निर्गम नहीं होना ) आदि सब नष्ट होते हैं । इसका नाम 'शङ्खद्राव' है ॥ १ ॥

अन्य शङ्खद्राव—

फटकीपलमेकं च सैन्धवं पलमेव च । द्विपलं च यवक्षारं द्विपलं नवसागरम् ॥ १ ॥
चतुष्पलं सुराक्षारं पलार्धं कासिसं तथा । डमरुयन्त्रप्रयोगेन चुल्ल्यां वै बदरीन्धनैः ॥ २ ॥
साधयेल्लाघवात्पूर्णं शङ्खद्रावरसं परम् । गुल्मादिसर्वरोगेषु देयः सम्यक्सुखप्रदः ॥ ३ ॥

फिटकिरी, सेंधा नमक, १-१ पल, यवाखार, नरसार दो पल, सोरा ४ पल, कासीस आधा पल, लेकर मर्दन कर विधिपूर्वक डमरू यन्त्र में रख कर चूल्हे पर चढ़ा कर बेर की लकड़ी के आँच से पाचन करे। यह 'शङ्खद्राव रस' लघुता के कारण शीघ्र यन्त्र में ऊपर चढ़ जावेगा। इसको गुल्म आदि सभी उदर रोगों में देने से लाभ होता है ॥ १-३ ॥

अन्यच्च—

सैन्धवं च यवक्षारं नव्यसारं तथैव च । प्रत्येकं द्विपलं मात्रा सुराक्षारं चतुष्पलम् ॥ १ ॥
फटकीपलमेकं च पलार्धं कासिसं तथा । सर्वमेकत्र संयोज्य डमरूयन्त्रमध्यगे ॥ २ ॥
चुल्ल्यां प्ररोहयेत्तत्तु ज्वालयेत्खादिरेन्धनैः । द्रावितं तरसमादाय तेजोरूपं जलप्रभम् ॥ ३ ॥
द्रावयेदखिला धातूःवराटांश्च न संशयः । शङ्खद्रावरसो नाम गुल्मोदरहरः परः ॥ ४ ॥

सेंधा नमक, यवाखार और नरसार प्रत्येक दो २ पल लेवे, सोरा ४ पल, फिटकिरी, १ पल, कासीस आधा पल लेकर सबको एकत्र कर डमरू यन्त्र में रख कर चूल्हे पर चढ़ा कर बेर की लकड़ी की आँच देवे। इससे द्रवित तेजोरूप जल के समान औषध को रख लेवे। इस शङ्खद्राव से सब धातु द्रवित हो जाते हैं ( गल जाते हैं ) और कौड़िया भी द्रवित हो जाती हैं। यह 'शङ्ख द्राव' नामक रस गुल्म तथा उदर रोग का अत्यन्त नाश करने वाला है ॥ १-४ ॥

क्रव्यादरसः—

द्विपलं गन्धकं शुद्धं द्रावयित्वा विनिक्षिपेत् । पारदं पलमानेन मृतशुल्वायसीपुनः ॥ १ ॥
कर्षमानेन सम्मिश्र्य पश्चात्कुलदले क्षिपेत् । ततो विचूर्ण्य यत्नेन निक्षिप्यायसपात्रके ॥२॥
चुल्ल्यां निवेश्य यत्नेन चालयेन्मृदुवह्निना । पात्रं पात्रं हि जम्बीररसं तत्र प्रचारयेत् ॥
पञ्चकोलसमुद्भूतैः कषायैः साम्लवेतसैः । भावना खलु दातव्या पञ्चाशत्प्रमितास्तथा ॥४॥
भृष्टटङ्कणचूर्णेन तुल्येन सह मेलयेत् । तदर्धपञ्चलवणं सर्वसाम्यमरीचकं ॥ ५ ॥
सप्तधा भावयेत्पश्चाच्चणकक्षारवारिणा । ततः संशोष्य सम्पेष्य कूपिकाभ्यन्तरे क्षिपेत् ॥ ६ ॥

क्रव्यादि रस—शुद्ध गन्धक दो पल लेकर अग्नि पर पिघला कर शुद्ध पारद १ पल में मिलाकर मर्दन कर विधि पूर्वक कज्जली कर उसमें ताम्र भस्म और लोह भस्म एक एक कर्ष मिला कर मर्दन कर मन्द २ अग्नि पर लोहे के पात्र में पाक करें जब द्रवी भूत हो जावे तब पर्पटी की विधि से एरण्ड पत्र पर डालकर पर्पटी बना कर फिर चूर्ण कर एक लोहे के पात्र ( कड़ाही ) में रख कर चूल्हे पर चढ़ा कर उसमें एक आढ़क जमीरी नीबू के रस को मिला कर

मन्द २ अग्नि पर पाक करे और चलाता रहे जब सब रस सूख जावे तब पञ्चकोल के काथ पिपरि, पिपरा मूल, चव्य, चित्रक मूल और सोंठि को समान लेकर विधि पूर्वक अठगुने जल में काथ कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे और अम्लवेत के क्वाथ से पृथक् पृथक् ५० बार भावित कर सुखा लेवे सूखने पर जितना यह औषध हो उसके समान भाग भूना हुआ (शुद्ध टङ्कण) सोहागा का चूर्ण मिलावे और सुहागे के आधा भाग पांचो नमक का मिश्रित चूर्ण मिलावे, तथा सब मिला कर जितना हो उसके बराबर मरिच का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर चणकक्षार के जल से सात भावना देकर सुखा कर पीस कर शीशी में रख लेवे ॥१-६॥

अत्यन्तगुरुभोज्यानि गुरुमांसान्यनेकशः । भक्षेच्चाऽऽकण्ठपर्यन्तं ततो देयो रसोत्तमः ॥७॥
चतुर्वल्लमितो देयस्तक्रे सलवणैरपि । भक्तं जीर्यति तत्क्षिप्रं जायते दीपनं परम् ॥ ८ ॥
रसः क्रव्यादनामाऽयं प्रोक्तो मन्थानभैरवैः ।
सिंहलक्षोणिपालाय भूरिमांसभुजे पुरा । ततः क्रव्यादकः प्रोक्तो दृढप्रत्ययकारकः ॥ ९ ॥

अत्यन्त गुरु भोज्य पदार्थ, अनेक प्रकार के गुरु मांसादि कण्ठ पर्यन्त भोजन कर अर्थात् अधिक से अधिक प्रमाण में भोजन कर इस रस को ४ वल्ल के प्रमाण की मात्रा से सेवन करना चाहिये। इसको नमक मिले हुए मट्ठे के साथ भी देते हैं। इसके सेवन से भोजन शीघ्र पचता है और अग्नि अत्यन्त दीप्त होती है। इस 'क्रव्याद भैरव' नामक रस को मन्थान भैरव ने सिंहल देश के राजा के लिये कहा था जो बहुत मांस भोजी था। इसलिये इसका नाम 'क्रव्याद रस' कहा गया, यह अत्यन्त पाचन है ॥ ७-९ ॥

कुर्याद्दीपनमुद्धतं पवनजे देहे परं शोषणं
तुन्दस्थौल्यनिबर्हणो गदहरो दुष्टव्रणार्तिप्रणुत् ।
कासश्वासविनाशनो ग्रहणिकाविध्वंसनः स्रंसनो
गुल्मप्लीहजलोदरोपशमनः क्रव्यादनामा रसः ॥ १० ॥

यह रस अत्यन्त अग्नि को दीप्त करता है, वातज और शरीर में अत्यन्त शोषक है। पेट के निकले हुए तोंद और स्थूलता को नष्ट करता है, रोग को हरण करता है और दुष्ट व्रण की पीड़ा कास, श्वास तथा ग्रहणी को नष्ट करता है और स्रंसन स्नावक अर्थात् मल निकालने वाला है। और गुल्म, प्लीहा, जलोदर को यह क्रव्याद नामक रस नष्ट करता है ॥ १० ॥

विश्वहिङ्गुबिडैः सार्धं क्रव्यादो भक्षितो रसः । गुल्मानशेषान्प्लीहानं विद्रधीनपि नाशयेत् ॥
सोंठि शुद्ध हींग और बिड नमक के समान मिश्रित चूर्ण के साथ इस क्रव्याद रस को भक्षण करने से सब प्रकार के गुल्मरोग, प्लीहा और विद्रधि भी नष्ट होता है ॥ ११ ॥

गदनिग्रहाच्चविकासवः—

चविकायास्तुलार्धं तु तदर्धं चित्रकस्य च । धान्यिका पुष्करं मूलं पद्मम्या हपुषा शटी ॥१॥
पटोलमूलत्रिफलायवानीकुञ्जलत्वचः । विशाला धान्यकं रास्ना दन्ती दशपलोन्मिता ॥ २ ॥
कृमिघ्नमुस्तमञ्जिष्ठादेवदारुकटुत्रिकम् । भागान्पञ्चपलानेतानष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ३ ॥
द्रोणशेषे रसे पूते देयं गुडतुलात्रयम् । धातक्या विंशतिपलं चातुर्जातं पलाष्टकम् ॥ ४ ॥
लवङ्गव्योषकक्कोलं पलिकानि प्रकल्पयेत् । निदध्यान्मासमेकं तु घृतभाण्डे सुसंस्कृते ॥ ५ ॥

चविकासव—चव्य आधा तुला (५० पल) और उसका आधा (२५ पल) चित्रकमूल और धान्यिका (हींग अथवा कृष्ण जीरा), पुष्करमूल, चिरायमूल, हाऊबेर, कमूर, परवर की जड़ (पत्र सहित लेना चाहिये) त्रिफला (आंवरा, हर्रा बहेरा), अजवाइन, कौरया की छाल, माहरि, धनियाँ, रास्ना और दन्तीमूल प्रत्येक दस २ पल और वायविडङ्ग, नागरमोथा मजीठ, देवदारु, सोंठि मरिच पीपरि प्रत्येक ५-५ पल लेकर सबको एकत्र कर आठ द्रोण (३२ आढ़क) जल के साथ विधिपूर्वक अष्टमांशशेष पाक कर उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ तीन सौ पल, धाय का फूल २० पल और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर इन चारों का सम मिश्रित चूर्ण आठ पल, तथा लवङ्ग, सोंठि पीपरि, मरिच कङ्कोल इनका एक २ पल चूर्ण को लेकर सबको घड़े में मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख कर मुख बन्द कर आसव की विधि से एक मास रखा रहने देवे ॥ १-५ ॥

चतुष्पलां पिबेन्मात्रां मासात् पीतं निपच्यति । सर्वगुल्मविकारांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ ६ ॥
प्रतिश्यायं क्षयं कासमष्ठीलां वातशोणितम् । उदराण्यग्निमांद्यं च चविकाद्यो महासवः ॥७॥

एक मास के पश्चात् छानकर ( जब आसव सिद्ध हो जावे तब ) रख लेवे। इसको प्रात काल ४ पल के प्रमाण की मात्रा से पान करने से सब प्रकार के गुल्मरोग, २० प्रकार के प्रमेह, प्रतिश्याय, क्षय, कास, अष्ठीला, वातरक्त, उदररोग, अग्निमांद्य आदि सभी इस चविकादि नामक महासव से नष्ट होते है ॥ ६-७ ॥

कुमार्यासवः—

कुमार्याश्च रसद्रोणे गुडं पलशतं तथा । तुलार्द्धमिसच्या विजया क्वाथयेत्तज्जलार्मणे ॥ १ ॥
चतुर्थांशावशेषे तु पूते तस्मिन्निधापयेत् । मधुनश्चाऽऽढकं दत्त्वा धातक्या द्विपलाष्टकम् ॥ २ ॥
स्निग्धभाण्डे विनिक्षिप्य कल्कं चैव प्रदापयेत् । जातीफलं लवङ्गं च कंकोलं च कबाबकम् ॥
जटिलाचव्यचित्रं च जातिपत्री सकर्कटम् । अक्ष पुष्करमूलं च प्रत्येकं च पलं पलम् ॥ ४ ॥
मृतं ताम्रं तथा लोहं शुक्तिमात्रं प्रदापयेत् । भूम्यां वा धान्यराशौ वा स्थापयेद्दिनविंशतिम् ॥
तमुद्धृत्य पिबेन्मात्रां यथा चाग्निबलावलम् । पञ्चकास तथा श्वासं क्षयरोगं च दारुणम् ॥५॥
उदराणि तथाऽष्टौ च पञ्चार्शांसि च नाशयेत् । वातव्याधिमपस्मारमन्यान्रोगान्सुदारुणान् ॥

कुमारी आसव—कुमारी ( घृत कुमारी ) के १ द्रोण ( ४ आढक ) रस में पुराना गुड सौ पल, विजया ( भांग ) २५ पल लेकर एक द्रोण जल के साथ क्वाथ करे चौथाई शेष रहने पर उतार–छानकर रख लेवे। शीतल होने पर इसमें मधु एक आढक ( चार प्रस्थ ), धाय का फूल १६ पल मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख कर उसमें जायफल, लवंग, ककोल, कबाबचीनी, पीपरि, चव्य चित्रकमूल, जावित्री, काकड़ासिंगी, बहेड़ा, पुष्करमूल, प्रत्येक एक २ पल लेकर इनका कल्ककर ( श्लोकार्थ कल्क ही है पर चूर्ण दिया जाता है ) मिला देवे और ताम्र भस्म और लोह भस्म एक २ शुक्ति ( आधा २ पल ) मिलाकर मुख मुद्रण कर भूमि में अथवा धान्यराशि में आसव की विधि से रखकर बीस दिन तक रहने दे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर निकाल–छानकर अग्निबल के अनुसार मात्रा से पान करने से पाँचों प्रकार के कास, श्वास तथा कठिन क्षयरोग, आठों प्रकार के उदररोग, ऐ प्रकार के अर्शरोग आदि नष्ट होते हैं और वातव्याधि, अपस्मार तथा अन्यान्य कठिन रोगों को भी यह आसव नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

जाठरं कुरुते दीप्तं कोष्ठशूलं च नाशयेत् ।
गुल्माष्टकं नष्टपुष्पं नाशयेदेकपक्षतः । कुमारिकासवो ह्येष बृहस्पतिविनिर्मितः ॥ ८ ॥

तथा जठराग्नि को दीप्त करता है, कोष्ठशूल को नष्ट करता है, आठों प्रकार के गुल्मों को तथा नष्टपुष्प ( मासिकधर्म की रुकावट ) को एक पक्ष के सेवन से नष्ट करता है। इस कुमारी आसव को बृहस्पति जी ने बनाया था ॥ ८ ॥

हिङ्ग्वादिघृतम्—

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकी । श्यामा बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ १ ॥
यवक्वाथोदकेनैतद् घृतप्रस्थं विपाचयेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ २ ॥

हिंग्वादि घृत—शुद्ध हींग, पुष्करमूल, तेजबल के फल, हर्रा, श्यामा ( कृष्ण सारिवा ), विड नमक, सैंधानमक, यवाखार, सोंठि प्रत्येक सममाग ( एक २ भाग ) लेकर कल्ककर जितना हो उसके चौगुना ( एक प्रस्थ ) मूर्च्छित गोघृत लेकर उसमें मिलावे और उसमें यव का क्वाथ घृत से चौगुना ( ४ प्रस्थ ) लेकर मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत पाक करके घृत मात्र शेष रहने पर उतार–छानकर सेवन करने से शूल तथा उपद्रवों से युक्त गुल्म का भेदन होता है अर्थात् नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

दाधिकघृतम्—

बिडदाडिमसिन्धूत्थधुस्तुरग्न्योपजीरकैः । हिङ्गु सौवर्चलक्षारचुक्रवृक्षाम्लवेतसैः ॥ १ ॥
बीजपूररसोपेतैः सर्पिर्दधि चतुर्गुणम् । साधितं दाधिकं नाम्ना गुल्महृत्प्लीहशूलनुत्परम् ॥ २ ॥

दाधिक घृत—बिडनमक, अनारदाना, सेंधानमक, चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, जीरा श्वेत, शुद्ध हींग, सोंचर नमक, यवाखार, चुक, वृक्षाम्ल ( कोकम ), अम्लवेत सममाग लेकर कल्क

करे और कल्क से चौगुना मूर्च्छित गोघृत तथा गोघृत से चौगुना बिजौरे नीबू का रस और घृत से चौगुना ही दही मिलाकर घृत सिद्ध कर रख लेवे। यह 'दाधिक' नामक घृत गुल्म और प्लीहा को नष्ट करने वाला है ॥ १-२ ॥

घृतं त्रायमाणादि—

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणं चतुष्पलम्। पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥१॥
रोहिणी कटुका मुस्ता त्रायमाणा दुरालभा। द्राक्षा तामलकी वीरा जीवन्ती चन्दनोत्पलम् ॥
रसस्याऽऽमलकानां च क्षीरस्य च घृतस्य च। पलानि पृथगष्टौ सम्यक्पक्त्वा विपाचयेत् ॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पित्तजं ज्वरम्। हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम् ॥४॥

त्रायमाणादि घृत—त्रायमाण को चार पल लेकर दस गुने जल के साथ क्वाथ करे जब जलकर ५ भाग शेष रह तब उतार-छानकर यह क्वाथ ८ पल लेकर इसमें मजीठ या गम्भार, कुटकी, नागरमोथा, त्रायमाण, जवासा, दाख, भुइँ आँवला, विदारीकन्द, जीवन्ती, लालचन्दन, नील कमल प्रत्येक सम भाग लेकर कल्क करे। मिलित यह कल्क २ पल और इसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत, आँवले का स्वरस और दूध प्रत्येक आठ पल और सम्पूर्ण द्रव्यों को क्रम से घृत पाक की विधि से पाक कर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से पित्त गुल्म, रक्त गुल्म, विसर्प, पित्त ज्वर, हृद्रोग, कामला और कुष्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सामुद्राद्यवर्ति —

वातवर्चोनिरोधेषु सामुद्रार्द्रकसर्षपैः। कृत्वा पायौ विधातव्या वर्तयो मरिचान्विताः ॥ १ ॥

सामुद्रादि वर्ति—अधोवायु और मल का जब अवरोध हो जावे तब सामुद्रनमक, अदरख, सरसों और मरिच समभाग लेकर पीस कर विधि पूर्वक अंगूठे के प्रमाण की मोटी बत्ती बना कर गुदा में देने से यह सामुद्रादि बत्ती वायु और मल को निकालती है ॥ १ ॥

## अथ रसाः।

वज्राख्यो नाराचो रस—शुद्धसूतं समं गन्धं जेपालं त्रिफलासमम्।
त्रिकटुं पेषयेत्क्षौद्रमिश्रं गुल्मं लिहन्हरेत्। उष्णोदकं पिबेच्चानु नाराचोऽयं रसोत्तमः ॥ १ ॥

नाराच रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध जमालगोटा, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, सोंठि, पीपरि, मरिच इनका पृथक् २ चूर्ण एक १ भाग लेकर प्रथम पारद, गन्धक की कज्जली कर फिर इन सब को एकत्र मर्दन (खरल) कर यथा योग्य मात्रा से मधु मिलाकर चाट कर उष्णोदक का अनुपान करे तो यह नाराच नामक उत्तम रस गुल्म को नाश करता है ॥ १ ॥

वडवानलरस —

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतं ताम्राभ्रटङ्कणम्। सामुद्रं च यवक्षारं स्वर्जिकं चैव नागरम् ॥ १ ॥
अपामार्गस्य च क्षारं पालाशं वत्सनाभकम्। प्रत्येकं सूततुल्यं स्याद्वनकाम्लेन मर्दयेत् ॥ २ ॥
हस्तिकन्याद्रवैश्चाह्नो आर्द्रकस्य पुटेल्लघु।
माषैकं भक्षयेन्नित्यं रसोऽयं वडवानलः। सर्वगुल्मं निहन्त्याशु ग्रहणीं च विशेषतः ॥ ३ ॥

वडवानल रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, ताम्र भस्म, अभ्रक भस्म, शुद्ध टङ्कण, समुद्र नमक, यवाक्षार, सज्जी क्षार, सेंधा नमक, सोंठि, अपामार्ग का क्षार, पलास का क्षार, शुद्ध वत्सनाभ विष, प्रत्येक पारद के समान अर्थात् सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर सब द्रव्यों के उत्तम चूर्ण को तथा भस्म को मिला कर वनकाम्ल (वन गाजर का रस) के साथ मर्दन करे फिर केले के स्वरस एवं कुमारी के स्वरस, तथा अदरख के स्वरस के साथ पृथक् २ मर्दन कर पुट पाक की विधि से लघु पुट देकर एक माशा के प्रमाण की मात्रा से नित्य सेवन करने से यह 'वडवानल रस' सब प्रकार के गुल्मों को शीघ्र नष्ट करता है और विशेष कर ग्रहणी रोग को नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

गुल्मकुठारो रसः—

नागवल्लीरसैः कान्तं समं ताम्रं समाक्षिकम्। अम्लीरसेन संपिष्टा वटी गुञ्जाप्रमाणिका ॥ १ ॥
मधुनाऽऽर्द्रकनीरेण चाऽऽडुम्बर सेविता।
अजीर्णमामं गुल्मं च हरत्यर्शोऽग्निशूलके। नाम्ना गुल्मकुठारोऽयं सर्वगुल्मान् व्यपोहति ॥१॥

गुल्म कुठार रस—नाग (सीसा) भस्म, वंग भस्म, अभ्रक भस्म, कान्त लोह भस्म, ताम्र भस्म समान (एक २ भाग) लेकर मर्दन कर जमीरी नीबू के रस के साथ खरल कर एक रत्ती के प्रमाण की वटी बना कर मधु और अदरक स्वरस और यवाक्षार तथा सज्जी क्षार इनके अनुपान के साथ सेवन करने से अजीर्ण, आम शोथ, गुल्म, हृदय पार्श्व और उदर के शूल तथा सब प्रकार के गुल्मों को यह गुल्म कुठार नामका रस नष्ट करता है ॥ १ ॥

कान्ताभ्रमदेभसिंहाख्यो रस —

रसगन्धवराटताम्रशङ्खविषवङ्गाभ्रककान्ततीक्ष्णगुण्डम् ।
अहिहिङ्गुलटङ्कणं समांशं सकलं त्रिगुणं पुराणकिट्टम् ॥ १ ॥
पशुमूत्रविलोडितं हि पश्चात् त्रिफलाभृङ्गरजार्द्रकोत्थनीरैः ।
सुविभाव्य वराम‍ृताटरूषात्मरसैरष्टगुणैः पुनर्नवोत्थैः ॥ २ ॥
पृथगग्निहुतं घनं विधाय गुटिका गुञ्जयुता निजानुपानैः ।
ज्वरपाण्डुतृषास्रपित्तगुल्मक्षयकासस्वरभेदमान्द्यमूर्च्छाः ॥ ३ ॥
पवनादिषु दुस्तराष्टरोगान् सकलं पित्तहरं महाशूलं च ।
बहुना किमसौ यथार्थनामा सकलव्याधिहरो मदेभसिंहः ॥ ४ ॥

मदेभसिंहाख्य रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, कौड़ीभस्म, ताम्रभस्म, शङ्खभस्म, शुद्धविष, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म, कान्तलोहभस्म, तीक्ष्णलोहभस्म, मुण्डलोहभस्म, नागभस्म, शुद्ध हिंगुल, शुद्धटङ्कण प्रत्येक समभाग (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य औषधियों के एकत्र खरल कर सब मिलाकर जितना हो उससे तिगुना पुराना मण्डूर गोमूत्र से लोडित मिलाकर मर्दन कर त्रिफला के क्वाथ, भांगरे के स्वरस और अद्रक के स्वरस के साथ पृथक् २ भावित कर सुखाकर त्रिफला, गुडूचि, अडूसा और पुनर्नवा इनके पृथक् २ अठगुने स्वरस के साथ अग्नि पर पाक करे जब पकते २ घना हो जावे तब उतार कर एक गुंजा के प्रमाण की वटी बनाकर अनुपान विशेष से सेवन करने से ज्वर, पाण्डु, तृषा, रक्तपित्त, गुल्म, क्षय, कास, स्वरभंग, मन्दाग्नि, मूर्च्छा तथा वातादिरोग, कठिन आठो प्रकार के कुष्ठादि रोग, सब प्रकार के पित्तरोग और महाशूल को नष्ट करता है। अधिक क्या यह 'मदेभसिंह' नामक रस यथार्थ में सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

प्रवालपञ्चामृतरसः—

प्रवालमुक्ताफलशङ्खशुक्तिकपर्दिकानां च समांशभागम् ।
प्रवालमात्रं द्विगुणं प्रयोज्यं सर्वं समोद्य रविदुग्धमेव ॥ १ ॥
एकीकृतं तत्खलु भाण्डमध्ये क्षिप्त्वा मुखे बन्धनमत्र योज्यम् ।
पुटं विदध्यादतिशीतले च उद्धृत्य तद्भस्म क्षिपेत्करण्डे ॥ २ ॥
नित्यं द्विवारं प्रतिपाकयुक्तं वल्लप्रमाणं हि नरेण सेव्यम् ।
आनाहगुल्मोदरप्लीहकासश्वासाग्निमान्द्यान् कफमारुतोत्थान् ॥ ३ ॥
अजीर्णमुद्गारहृदामयघ्नं ग्रहण्यतीसारविकारनाशनम् ॥ ४ ॥

प्रवाल पञ्चामृतरस—प्रवालभस्म, मुक्ताभस्म, शङ्खभस्म, शुक्ति (सीप) भस्म और कौड़ीभस्म समान भाग लेवे और केवल प्रवाल दो भाग लेवे और मर्दनकर जितना हो उसके समान मदार के दूध को मिलाकर खरलकर शराव-सम्पुट में रख कर मुखमुद्रण कर पुटपाक की विधि से गजपुट में फूंक देवे और स्वांग शीत होने पर निकाल कर उस भस्म को पात्र में रख लेवे। इसको १ वल्ल (१॥ रत्ती) के प्रमाण की मात्रा से नित्य दो बार सेवन करने से आनाह, गुल्म, उदर, प्लीहा कास, श्वास, मन्दाग्नि, कफ तथा वात से उत्पन्न रोग, अजीर्ण, उद्गार, हृदय के रोग, ग्रहणी तथा अतीसार आदि रोग नष्ट होता है ॥ १-४ ॥

मेहामयं मूत्ररोगं मूत्रकृच्छ्रं तथाऽश्मरीम् । नाशयेन्नात्र सन्देहः सत्यं गुरुवचो यथा ॥ ५ ॥

प्रमेह रोग, मूत्ररोग, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी इन सब रोगों को प्रवाल पञ्चामृत रस अवश्य नष्ट करता है। यह गुरु के वचन के समान सत्य है ॥ ५ ॥

पथ्याश्रितं भोजनमादरेण समाचरेत्प्रिमलचित्तवृत्त्या ।
प्रवालपञ्चामृतनामधेयो योगोत्तमः सर्वगदापहारी ॥ ६ ॥

इस 'प्रवालपञ्चामृत' के सेवन के समय प्रसन्न चित्त होकर पथ्य ही भोजन करना चाहिये । सब रोगों को नष्ट करने वाला यह योग अति उत्तम है ॥ ६ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

संवत्सरसमुत्पन्नाः कलमाः रक्तशालयः । लावं कुलत्थयूषश्च धन्वमांसरसः सुरा ॥ १ ॥
गवामजायाश्च पयो मृद्वीका च परूषकम् । तक्रमेरण्डतैलं च लशुनं बालमूलकम् ॥ २ ॥
पचूरो वास्तुकं शिग्रुर्मातुलुङ्गं हरीतकी । वातानुलोमनं चैव पथ्यं गुल्मे नृणां भवेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—एक वर्ष के पुराने कलमी तथा शालिधान के चावल लावक, कुलथी का यूष, धन्वदेशीय जीवों का मांस रस, मद्य, गौ तथा बकरी का दूध, मुनक्का, फालसा, मठठा, एरण्डतैल, लहसुन, छोटी मूली पचूर नामक शाक, बथुआ, सहिजन, बिजौरा नीबू, हर्रे और वात को अनुलोमन करने वाले पदार्थ गुल्म रोग में मनुष्यों के लिये पथ्य होते हैं ॥ १-३ ॥

माषादयः शिम्बिधान्ये शूकधान्ये यवादयः । वल्लूरं मूलकं मात्स्यं मधुराणि फलानि च ॥

शिम्बीधान्यों में उड़द आदि और शूकधान्यों में यव आदि तथा सूखा मांस, मूली, मछली, मीठे फल आदि को गुल्म का रोगी नहीं सेवन करे ॥ ४ ॥

अधोवायुशकृन्मूत्रश्रमश्वासक्षुधारणम् । वमनं जलपानं च गुल्मरोगी परित्यजेत् ॥ ५ ॥

अधोवात, मल मूत्र, परिश्रम, श्वास, क्षुधा इनके वेग का धारण वमन, श्रम, अधिक जलपान अथवा अनियमित जलपान इन सबको गुल्म का रोगी त्याग देवे ॥ ५ ॥

इति गुल्मप्रकरणं समाप्तम्

## अथातो हृद्रोगनिदानम् ।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तैः श्रमाभिघाताध्यशनप्रसङ्गैः ।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥

हृद्रोग का निदान—अति उष्ण और अतिगुरु पदार्थों और अति अम्ल-अतिकषाय तथा अति तिक्त रस वाले पदार्थों के अति सेवन करने से, अत्यन्त परिश्रम करने से, आघात होने से, अध्यशन अर्थात् भोजन करने के पश्चात् पुनः भोजन कर लेने से, अति मैथुन से अति चिन्ता से और मलमूत्रादि के वेगों के अवरोध से, हृदय दूषित होकर पाँच प्रकार का हृद्रोग होता है ॥१॥

तस्य संप्राप्तिमाह—

दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः । हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥

हृद्रोग की सम्प्राप्ति—वातादि दोष अपने कुपित होने के कारण कुपित होकर रसधातु को दूषित कर और हृदय में प्रवेश कर जो पीड़ा उत्पन्न करते हैं उस पीड़ा को हृद्रोग कहते हैं ॥२॥

वातिकमाह—

आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते तथा । निर्मथ्यते दीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥ ३ ॥

वातिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में हृदय तन जावे ( पेंठ जावे ), हृदय में सुई चुभाने के समान, मथने के समान चीरने के समान, फोड़ने के समान या टूटने ( टुकड़े करने ) के समान पीड़ा हो उस हृदय रोग को वात के प्रकोप का ( वातज ) हृद्रोग जानना चाहिये ॥ ३ ॥

पैत्तिकमाह—

तृष्णोष्मदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदये क्लमः । धूमायनं च मूर्च्छा च स्वेदः शोषो मुखस्य च ॥

पैत्तिक हृद्रोग—जिस हृद्रोग में तृषा, उष्णता, दाह, चूसने के समान हृदय में पीड़ा और क्लान्ति हो मुख से धुआँ निकलने के समान ज्ञात हो मूर्च्छा स्वेद और मुख सूखना हो उस हृदय रोग को पित्त के प्रकोप का ( पैत्तिक ) जानना चाहिये ॥ ४ ॥

श्लैष्मिकमाह—

गौरवं कफसंस्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् । माधुर्यमपि चास्यस्य बलासावतते हृदि ॥

कफज हृद्रोग—जिस हृद्रोग में भारीपन हो ( हृदय भारी हो ) मुख से कफ का स्राव, अरुचि जड़ता, मन्दाग्नि और मुख मधुर स्वाद का बना रहे उस हृदय रोग को कफ के प्रकोप का (कफज) जानना चाहिये ॥ ५ ॥

त्रिदोषकृमिजयोर्लक्षणमाह—

द्यात्त्रिदोषमप्येवं सर्वलिङ्गं हृदामयम्। त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ ६ ॥
क्षीरगुडादीनि ग्रन्थिस्तस्योपजायते। मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चास्योपगच्छति ॥ ७ ॥

त्रिदोषज तथा कृमिज हृद्रोग—जिस हृदयरोग में वातादिक तीनों दोषों के सम्मिलित लक्षण खाई देवें उसको त्रिदोष के कोप का (त्रिदोषज) हृद्रोग जानना चाहिये। हृद्रोग में जो दुरात्मा रुष तिल, दूध, गुड़ आदि का अधिक सेवन करता है उसके हृदय में मर्म के एक स्थान में न्थि (गांठ) उत्पन्न हो जाती है, उसमें क्लेद होता है और रस भी पहुंच जाता है ॥६-७॥

त्संक्लेदात्कृमयश्चास्य भवन्त्युपहतात्मनः। तीव्रार्तितोदं कृमिजं सदोषत्रयसम्भवम् ॥ ८ ॥

अपथ्य करनेवाले रोगी को उसी क्लेद से कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और उससे हृदय में कठिन पीड़ा होती है सुई चुभाने के समान दर्द होता है। इसको त्रिदोषज कृमिज हृद्रोग कहते हैं ॥८॥

त्क्लेशः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः। अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिजे भवेत् ॥९॥

कृमिज हृद्रोग—जिस हृद्रोग में उबकाई आवे (वमन की इच्छा हो-हो कर रुक जावे), ख से अधिक थूक निकले, सुई चुभाने के समान पीड़ा हो, शूल, हृल्लास (वमनेच्छा), आंखों के सामने अँधेरा, अरुचि, नेत्र श्याम वर्ण के हो जावें और शोष हो उस हृद्रोग को कृमिज जानना चाहिये ॥ ९ ॥

उपद्रवाः—क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः।
क्रिमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः ॥ १० ॥

हृद्रोग के उपद्रव—क्लम (शिथिलता), भ्रम और शोष ये सब हृद्रोग के उपद्रव हैं। कृमिज हृद्रोग में कृमिरोग के उपद्रव और कफ दोष सम्बन्धी कहे गये उपद्रव होते हैं ॥ १० ॥

## अथ हृद्रोगचिकित्सा।

वातहृद्रोग—

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम्। द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन वा ॥ १ ॥

वातज हृद्रोग की चिकित्सा—वातज हृदय रोग में रोगी को स्नेह देकर दशमूल के क्वाथ को पिलाकर अथवा स्नेहयुक्त पदार्थों में नमक मिलाकर पान करा कर वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम्—

पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम्। सौवर्चलमथो शुण्ठी दीप्यकश्चेति चूर्णितम् ॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः। पाययेच्छुद्धदेहस्य वातहृद्रोगशान्तये ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपरि छोटी इलायची, वच, शुद्ध हींग, यवाक्षार, सेंधा नमक, सोचर नमक, सोंठ और अजव सबको एक-एक भाग लेकर चूर्णकर यथायोग्य मात्रा से फलों के रस, कांजी, कुलथी के रस वा क्वाथ, दही, मद्य और आसव इनमें से किसी एक के अनुपान से रोगी को वमनादि से शुद्ध कर सेवन कराने से वातिक हृद्रोग शमन होता है ॥ १-२ ॥

पुष्करमूलाद्यं चूर्णम्—

सपुष्कराख्यं फलपूरमूलं महौषधं शट्यभया च कल्कः।
क्षाराम्लसर्पिर्लवणैर्विमिश्रः स्याद्वातहृद्रोगहरो नराणाम् ॥ १ ॥

पुष्करमूलाद्य चूर्ण—पुष्कर मूल, बिजौरा नीबू की जड़, सोंठ, कचूर, हर्रा, सम भाग से कल्क बनाकर यवाक्षार, कांजी, घृत, नमक इन सबको उस कल्क में मिश्रित कर सेवन करने से मनुष्यों का वातज हृदयरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पित्तहृद्रोग—

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत्। पित्तोपसृष्टे हृदये सिञ्चेत् मधुरैः शृतैः ॥ १ ॥

पित्तज हृद्रोग चिकित्सा—गम्भार की छाल, मुलहठी, मधु शर्करा और पुराना गुड़ इनको जल के साथ पीस-घोलकर पान कर वमन कराना चाहिये। इससे पित्तज हृदयरोग शमन होता है। पित्तज हृदयरोग वाले को मधुर द्रव्यों के शीतल क्वाथों से सिञ्चन करना चाहिये ॥ २ ॥

शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ १ ॥

पित्तज हृद्रोग वाले को शीतल पदार्थों का लेप लगाना चाहिये और शीतल क्वाथों से सिंचन करना चाहिये तथा द्राक्षा, शर्करा, मधु और फालसा इनको जल के साथ पीस कर पान कराकर विरेचन देकर शुद्ध कराकर तब पित्तनाशक अन्न पान आदि सेवन कराना चाहिये ॥ १ ॥

द्राक्षादिचूर्णम्—

द्राक्षाहरीतक्योस्तुल्यं शर्करया रजः। पीतं हिमाम्बुना हन्ति पित्तहृद्रोगमञ्जसा ॥ १ ॥

द्राक्षादि चूर्ण—द्राक्षा और हरीतकी इनको समान लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके बराबर शर्करा मिलाकर मर्दन कर मात्रा पूर्वक शीतल जल के अनुपान से पान करने से पित्तज हृद्रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

अर्जुनादिचूर्णम्—

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं पित्तहृदामयजित्। सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥१॥

अर्जुनादि क्षीरपाक—अर्जुन की छाल का कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना गाय का दूध मिलाकर और पाकार्थ जल दूध से चौगुना मिलाकर दुग्धपाक की विधि से पाक कर केवल दूध शेष रहने पर उतार-छानकर शीतल होने पर उसमें शर्करा मिलाकर पान करने से पित्तज हृद्रोग नष्ट होता है एवं लघु पञ्चमूल (शालिपर्ण्यादि) से विधिपूर्वक सिद्ध किया दूध अथवा खरैटी और मुलहठी के कल्क के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया दूध पित्तज हृद्रोग को शमन करता है ॥ १ ॥

वृन्दात्कसेरुकादिसर्पिः—

कसेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपौण्डरीकं मधुकं बिसं च।
ग्रन्थिं च सर्पिः पयसा पचेत्तत् क्षौद्रान्वितं पित्तहृदामयघ्नम् ॥ १ ॥

कसेरुकादि घृत—कसेरू, सेवार और अदरक, पुंडरिया, मुलहठी, भिसाण्ड और नागरमोथा अथवा पिपरामूल समभाग लेकर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और पाकार्थ घृत से चौगुना गोदुग्ध मिलाकर पका सिद्धकर घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर शीतल कर मधु मिलाकर सेवन करने से पित्तज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कफजहृद्रोग—

हृद्रोगे कफजे स्विन्नं वामितं लङ्घितं नरम्। कफघ्नैर्भेषजैर्युञ्ज्याज्ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥१॥

कफज हृद्रोग चिकित्सा—कफज हृद्रोग के रोगी को स्वेद देकर वमन और लङ्घन कराकर दोष बल आदि का विचार करके कफ नाशक औषध का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

त्रिवृताद्यौ चूर्णक्वाथौ—

त्रिवृच्छटीबलारास्नाशुण्ठीपथ्याः सपौष्कराः। चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्याः कफहृद्गदे ॥२॥

त्रिवृतादिचूर्ण और क्वाथ—निशोथ, कचूर, खरैटी, रास्ना, सोंठि, हर्रे और पुष्करमूल समभाग लेकर चूर्ण अथवा क्वाथ बनाकर गोमूत्र के साथ पान करने से (चूर्ण को गोमूत्र के अनुपान से और क्वाथ को गोमूत्र के प्रक्षेप से) कफज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

एलादि—

सूक्ष्मैला मागधीमूलं पटोलं सर्पिषा सह। भक्षयेदाशु हृद्रोगे कफजे सपरिग्रहम् ॥ १ ॥

एलादिचूर्ण—छोटी इलायची के दाने पिपरामूल, परवर को मद या दाम्पात्र समभाग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से सेवन करने से उपद्रवों सहित कफज हृद्रोग नष्ट होता है ॥२॥

त्रिदोषजहृद्रोग—त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्यादन्नं तु सर्वेषु हितं विधेयम्।
चूर्णानि सर्पींषि च वक्ष्यमाणान्यत्र प्रयोज्यानि भिषग्भिराशु ॥ १ ॥

त्रिदोषज हृद्रोग चिकित्सा—त्रिदोषज हृद्रोग में प्रथम लङ्घन कराना चाहिये फिर त्रिदोषों को शमन करने वाले अन्न को देना चाहिये तथा दूसरे जगह (आगे) कहे हुए चूर्ण तथा घृतादि का प्रयोग इसमें वैद्य को शीघ्र करना चाहिये ॥ १ ॥

कृमिजहृद्रोग—

हृद्रोगे कृमिजे कार्यं लङ्घनं चापतर्पणम्। पश्चात्कृमिहरं कर्म कृमिरोगोक्तमाचरेत् ॥ १ ॥

कृमिज हृद्रोग चिकित्सा—कृमिजन्य हृद्रोग में पहले लङ्घन और पीछे अपतर्पण कराना चाहिये। तद पश्चात् कृमिरोग में कहे हुए कृमिनाशक कर्मों को करना चाहिये ॥ १ ॥

कृमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गामयसंयुतम्। हृदि स्थिताः पतन्त्येव ह्यसाध्या कृमयो नृणाम् ॥

कृमिजन्य हृद्रोग में वायविडङ्ग और कूठ इनके समान चूर्ण को लेकर गोमूत्र के अनुपान से पान करने पर मनुष्यों के हृदय में रहने वाले असाध्य कृमि भी गिर जाते हैं ॥ २ ॥

## अथ सामान्यहृद्रामयप्रतीकारः।

पचनारिजटा द्विपलाष्टगुणे सलिले पचिता यवजेन युतम्।
क्वथनं हृदयोऽत्रपपार्श्वकटीरदिशूल विदारणसिंहनखम् ॥ १ ॥

हृद्रोग के सामान्य प्रतीकार—एरण्डमूल की छाल को दो पल लेकर अठगुने जल में पकाकर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छानकर यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से हृदय के शूल, पार्श्वदेश के शूल और कटिशूल इन सबको नष्ट करने में सिंह के नख के समान है अर्थात् जिस तरह सिंह का नख हाथियों के मस्तक को फाड़ देता है उसी तरह यह क्वाथ इन रोगों को नष्ट कर देता है ॥ १ ॥

दशमूलादिक्वाथ—

दशमूलकषायस्तु लवणक्षारसंयुतः। पीतो निहन्ति सहसा हृद्रामयमसंशयम् ॥ १ ॥

दशमूलादि क्वाथ—दशमूल के द्रव्यों को समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें सेंधा नमक और यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से हृद्रोग को हठात् निश्चय ही नष्ट करता है ॥ १ ॥

पुष्करादिक्वाथ—क्वाथः कृतः पुष्करमातुलुङ्गपलाशपूतिकशटीसुराह्वैः।
सनागराजाजिवचायवाह्वक्षारः उष्णो लवणेन पेयः ॥ १ ॥

पुष्करादि क्वाथ—पुष्करमूल, बिजौरा नीबू की जड़, पलाश की जड़, पूतिकरञ्ज, कचूर, देवदारु, सोंठि, जीरा, वच और यवाखार समभाग लेकर क्वाथ कर उसमें यवाखार और सेंधानमक का प्रक्षेप देकर पान करने से हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादिचूर्णम्—हिङ्गूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम्।
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्भसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादि चूर्ण—शुद्ध हींग, वच, विडनमक, सोंठि, पीपरि, कूठ, हर्रा, चित्रकमूल, यवाखार, सोंचरनमक और पुष्करमूल समान लेकर चूर्ण बनाकर इसको यव के विधिवत् बने हुए क्वाथ के अनुपान से सेवन करने से शूल और हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पुष्करचूर्णम्—

चूर्णं पुष्करमूलस्य मधुना सह लेहयेत्। हृच्छ्वासश्वासकासांश्च हृद्रामयहरं परम् ॥ १ ॥

पुष्कर चूर्ण—पुष्कर मूल का चूर्ण बना कर मधु के अनुपान से सेवन करने से हृच्छ्वास, श्वास, कास और हृदय रोग को नष्ट करता है ॥ १ ॥

ककुभाद्यं चूर्णम्—घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिबेत्सचूर्णं ककुभत्वचोत्थम्।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं जित्वा भवेच्चिरजीविनस्ते ॥ १ ॥

ककुभाद्य चूर्ण—घृत के अनुपान से, दूध के अनुपान से अथवा गुड़ के जल के अनुपान से इनमें से किसी एक के साथ (अनुपान से) विधि पूर्वक बनाया हुआ अर्जुन के छाल का चूर्ण सेवन करने से हृदय रोग, जीर्ण ज्वर तथा रक्त पित्त नष्ट होता है। यह आयु वर्धक है ॥ १ ॥

एणशृङ्गभस्मयोग—

शरावसम्पुटे दग्ध्वा शृङ्गं हरिणजं पिबेत्। गव्येन सर्पिषा पिष्टं हृच्छूलं नश्यति ध्रुवम् ॥ १ ॥

एणशृङ्ग भस्म योग—एण मृग के सींग को शराव सम्पुट में रख कर विधि पूर्वक गज पुट में पुट देकर भस्म कर पीस कर गो घृत में मिला कर (गो घृत के अनुपान से) पान करने से हृदय के शूल को निश्चित ही नष्ट करता है ॥ १ ॥

बृहत्कट्ुकादि—

पिष्टा वा कटुका पेया सयष्टीका सुखाम्बुना। जीर्णज्वरं रक्तपित्तं हृद्रोगं च व्यपोहति ॥१॥

कट्वकादि योग—कुटकी और जेठी मधु सम भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर सुखोष्ण जल के साथ पान करने से जीर्ण ज्वर, रक्त पित्त और हृदय रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

## अथ घृतानि ।

अथादौ बल्लभघृतम्—शतार्धमभयानां तु सौवर्चलपलद्वयम् ।
पचेत्कल्कैर्घृतप्रस्थं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् । घृतं वल्लभकं नाम्ना श्रेष्ठं हृद्रोगनाशनम् ॥ १ ॥

बल्लभ घृत—सुपक्व उत्तम हरड़ संख्या में ५०, और सौंचर नामक दो पल लेकर विधि पूर्वक कल्क कर जितना हो अथवा एक प्रस्थ मूर्च्छित गो घृत और घृत से चौगुना ( ४ प्रस्थ ) गो दुग्ध मिला कर घृत पाक की विधि से मन्द २ अग्नि पर पाक करे घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छान कर सेवन करने से हृद्रोग नष्ट होता है। यह 'वल्लभ' नाम का उत्तम घृत है ॥ १ ॥

यष्ट्यादिघृतम्—

यष्टीनागबलोक्षीरीष्यार्जुनैः सर्पिः सुसाधितम् । हृद्रोगक्षयपित्तास्रश्वासकासज्वरार्तिजित् ॥ १ ॥

यष्ट्यादि घृत—जेठी मधु, नागबला, छुग पसाला, अर्जुन की छाल सममाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और पाकार्थ घृत से चौगुना जल देकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, रक्त पित्त, श्वास, कास और ज्वरादि तथा इनकी पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात्पुनर्नवादितैलम्—

पुनर्नवादारुपञ्चमूलरास्नायवाश्नोलकपित्थबिल्वम् ।
पक्त्वा जले तेन पचेच्च तैलमभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्गदघ्नम् ॥ १ ॥

पुनर्नवादि तैल—पुनर्नवा ( गदह पुरना ), दारुहल्दी, पञ्चमूल ( शालिपर्णी, पृश्नपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू ) की पाचों ओषधिया पृथक् २ रास्ना, जव, अखोल, कैथ और बेल की छाल इन ओषधियों को पृथक् २ पल २ भाग लेकर आठगुने जल के साथ विधि पूर्वक क्वाथ करे और चौथाई शेष रहने पर उतार छान लेवे तथा जितना क्वाथ हो उसके चौथाई मूर्च्छित तिल का तेल लेकर मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर तैल मात्र शेष रहने पर उतार छान कर, इसके मर्दन करने से अथवा पान करने से वातज हृद्रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

## अथ रसाः ।

वृन्दात्त्रिनेत्रो रसः—

रसगन्धाभ्रभस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना । एकविंशतिधा घर्मे भावितानि विधानतः ॥ १ ॥
माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
वातजं पित्तजं श्लेष्मसम्भूतं वा त्रिदोषजम् । कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ॥ २ ॥

त्रिनेत्र रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और अभ्रक भस्म सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अभ्रक भस्म मिलाकर मर्दन कर अर्जुन वृक्ष की छाल के जल ( स्वरस अथवा क्वाथ ) २१ बार घाम में रख कर भावना की विधि से भावित कर रख लेवे। इस चूर्ण को एक माष ( मासा ) के प्रमाण की मात्रा से मधु के साथ लेह बना कर सेवन करने से वात-जनित, पित्तज, कफज अथवा त्रिदोषज और कृमिज हृद्रोग निश्चित ही नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

हृदयार्णवरस—सूतार्कगन्धं क्वाथेन त्रफला मर्दयेद्दिनम् ।
काकमाच्या वटीं कृत्वा चणमात्रां तु भक्षयेत् । हृदयार्णवनामाऽयं हृद्रोगहृत्को रसः ॥ १ ॥

हृदयार्णव रस—शुद्धपारद, ताम्रभस्म और शुद्ध गन्धक सम भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर ताम्र भस्म मिलाकर मर्दन कर त्रिफला के क्वाथ के साथ दिन भर मर्दन करे फिर मकोय के स्वरस के साथ दिन भर खरल कर चने के प्रमाण की वटी विधिपूर्वक बना कर सेवन करने से यह 'हृदयार्णव' नामक रस हृद्रोग को नष्ट करने वाला है ॥ १ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

शालिर्मुद्गा यवा मांसं जाङ्गलं मरिचान्वितम् । पटोलं कारवेल्लं च पथ्यं प्रोक्तं हृदामये ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—शालि धान्य, मूंग, जव, जाङ्गल जीवों का मांस रस, मरिच का चूर्ण मिला हुआ परवर, करेली ये सब हृदय रोग में पथ्य हैं ॥ १ ॥

तैलाम्लक्षारगुर्वन्नकषायश्रममातपम्। रोषं स्त्रीनर्म चिन्तां च भाष्यं हृद्रोगवांस्त्यजेत्॥ २ ॥

तेल, अम्लरस, खारे पदार्थ, तक्र, गुरु अन्न, कषाय रस वाले पदार्थ, परिश्रम, धूप सेवन, क्रोध, मैथुन, चिन्ता और अधिक सम्भाषण ये सब हृद्रोग का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये सब अपथ्य हैं ॥ २ ॥

इति हृद्रोगप्रकरणम् समाप्तम्

---

## अथ उरोमदनिदानम्।

अत्यभिष्यन्दिगुरुपर्युषितपूत्यामिषाशनात्। सरक्तं मांसं यकृत्प्लीह्नोः सद्यो वृद्धिं यदा गतम्॥
उरोमदं तदा कुक्षौ कुरुतः कफमारुतौ।

उरोमद निदान—अत्यन्त अभिष्यन्दी पदार्थ के सेवन से अति गुरु अन्न के सेवन से और सड़ा हुआ तथा दुर्गन्ध युक्त मांस के खाने से मांस तथा रक्त के सहित शीघ्र यकृत् और प्लीहा जब बढ़ जाते हैं तब कुक्षि स्थान में कफ और वायु प्रविष्ट होकर उरोमद रोग को करते हैं ॥ १ ॥

सस्तम्भं सज्वरं घोरं स्पर्शासहं गुरुत्वम् ॥ २ ॥
आध्मानं कुक्षिहृत्कण्ठे वातविण्मूत्ररोधनम्। तन्द्रारोचकशूलानि तस्य लिङ्गानि निर्दिशेत् ॥

उरोमद के लक्षण—उरोमद रोग में स्तम्भन, घोर ज्वर, स्पर्श का सहन नहीं होना, गुरुता, कुक्षि, हृदय और कण्ठ में आध्मान अधोवायु मल तथा मूत्र का अवरोध तन्द्रा अरुचि और शूल होते हैं ॥ २-३ ॥

## अथ उरोमदचिकित्सा।

अथाऽऽशु स्वेदनं कुर्याद्वमनं रक्तमोक्षणम्। तीक्ष्णैर्निरूहणं चैवं क्रमाल्लङ्घनमाचरेत् ॥१॥

उरोमद चिकित्सा—उरोमद रोग में शीघ्र स्वेदन कर्म, वमन कर्म, रक्तमोक्षण, तीक्ष्ण पदार्थों से निर्मित निरूह बस्ति और क्रम से लङ्घन कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

पुत्रजीवकशिग्रुत्वक्सुवर्चलापर्पटोद्भवाः। रसा एकैकशः कोष्णा द्विशो वा रामठान्विताः ॥२॥
सपञ्चलवणाः पेयास्त्रिवृद्गुडसुकल्किताः। तन्निवृत्तौ यथालाभं मूत्रतैलसुरासवैः ॥ ३ ॥
चव्याम्लवेतसक्षाररामठम्चित्रकान्। पिबेत्तैलारनालाभ्यामुरोमदनिवृत्तये ॥ ४ ॥

पुत्रजीवक, सहिजन की छाल, सूर्यमुखी और वरिभारा इनमें से एक-एक द्रव्य का रस अथवा दो २ द्रव्यों का रस थोड़ा गरम कर शुद्ध हींग के प्रक्षेप के साथ पान करने से तथा पांचो नमक मिलित, निशोथ और गुड़ इन द्रव्यों के कल्क विधिपूर्वक बनाकर पान करने से और उरोमद के निवृत्त होने पर गोमूत्र, तिल का तेल, मद्य और आसव इनमें से जो प्राप्त हो सके उसके साथ चव्य, अम्लवेत, यवाक्षार, शुद्ध हींग और चित्रक मूल इनके समान मिलित विधिवत बने चूर्ण को पान करने से अथवा इस चूर्ण को तेल और कांजी के साथ पान करने से उरोमद निवृत्त होता है ॥ १-४ ॥

यो वा नरस्यात्र कृतस्य कर्मणो विधिर्विरुद्धो न भवेन्मनागपि।
यथाबलं वीक्ष्य च शुद्धविग्रहं तथाविधं पथ्यमपि प्रयोजयेत् ॥ ५ ॥

पथ्यापथ्य—यहाँ इस रोग में कहे हुए जो कर्म हैं उनको करे तथा जो विधि तनिक भी विरुद्ध न हो उसे ( पथ्य ) करे और बल आदि का विचार कर विधि पूर्वक पथ्य भी देवे और रोगी का शरीर निरन्तर शुद्ध रक्खे ॥ ५ ॥

इति उरोमदप्रकरण समाप्तम्

---

## अथातो मूत्रकृच्छ्रनिदानम्।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात्।
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाष्टौ ॥ १ ॥

मूत्रकृच्छ्र निदान—अति व्यायाम, तीक्ष्ण औषधियों के अधिक सेवन, रूक्ष अन्न के अति सेवन, अति मद्यपान, अति मैथुन, अति नृत्य कर्म अति शीघ्र चलने, घोड़े आदि की अधिक

वृन्दात् मन्थादियोग—मन्थं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयो वार्धसितासमेतम् ।
धात्रीरसं वेक्षुरसं पिबेद्वा कृच्छ्रे सरक्ते मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

मन्थादि योग—इस पित्तज मूत्र कृच्छ्र रोग में विधिवत बने हुए किसी मन्थ में शर्करा और घृत मिलाकर पीना चाहिये, अथवा औटाये हुए शीतल दूध में आधा भाग शर्करा मिलाकर पीना चाहिये, अथवा आँवले का स्वरस या ईख का स्वरस मधु के प्रक्षेप के साथ पीना चाहिये। इन योगों में किसी एक के पान करने से रक्त के सहित मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्राक्षादि—

द्राक्षा सितोपलाकल्कं कृच्छ्रघ्नं मस्तुना युतम् । पिबेद्वा कामतः क्षीरमुष्णं गुडसमन्वितम् ॥

द्राक्षादि योग—द्राक्षा और मिश्री दोनों को समान लेकर कल्क बनाकर दही के पानी के अनुपान से अथवा उष्ण किया हुआ दूध और पुराना गुड़ मिलाकर इच्छानुसार पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

वृन्दान्नारिकेलादि—

नारिकेलजलं योज्यं गुडधान्यसमन्वितम् । सदाहं मूत्रकृच्छ्रं च रक्तपित्तं निहन्ति च ॥ १ ॥

नारिकेलादि योग—नारियल के जल में पुराना गुड़ और धनियाँ का चूर्ण मिला कर पान करने से दाह सहित मूत्रकृच्छ्र तथा रक्त पित्त नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अन्यच्च—रक्तस्य नारिकेलस्य जलं कतकसंयुतम् । शर्करैलासमायुक्तं मूत्रकृच्छ्रहरं विदुः ॥ १ ॥

रक्तवर्ण के नारियल के जल में निर्मली फल, शर्करा और छोटी इलायची के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिसर्पि—शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलककल्कसिद्धम् ।
सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ १ ॥

शतावर्यादि—शतावरि मूल, कास (डाभ) की जड़, कुश की जड़, गोखरू, विदारीकन्द, ईख की जड़ और आँवला सम भाग लेकर कल्क कर इस कल्क के साथ विधिपूर्वक घृत सिद्ध करे अथवा पाक विधि से दूध को सिद्धकर उसमें शर्करा मिला कर पान करने से पित्तज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। (घृत सिद्ध करना हो तो कल्क से चतुर्गुण मूर्च्छित गोघृत लेना चाहिये) ॥ १ ॥

## अथ श्लेष्मकृच्छ्रम् ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहः ।
तक्रं च तिक्तोषणसिद्धतैलं बस्तिश्च शस्तः कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार (यवक्षारादि), उष्ण तथा तीक्ष्ण औषध और अन्नपानादि का सेवन करना चाहिये, स्वेदकर्म, जौ अन्न का भोजन वमनकर्म और निरूह बस्ति देना चाहिये, तक्र सेवन, तिक्त पदार्थ तथा मरिच इनसे सिद्ध किया हुआ तैल सेवन तथा बस्ति देना, ये सब उत्तम हैं अर्थात् इन क्रियाओं से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मूत्रादियोग—

मूत्रेण सुरया वाऽपि कदलीस्वरसेन वा । कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मां पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ १ ॥

मूत्रादियोग—छोटी इलायची के सूक्ष्म चूर्ण को गोमूत्र अथवा मद्य अथवा केले के वृक्ष के रस के अनुपान से सेवन से (पान) करने से, कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

तक्रादियोगो वृन्दात्—तक्रेण युक्तं सितवारकस्य बीजं पिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः ।
पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

तक्रादि योग—हिलिमोचिका के बीजों को पीस कर तक्र के अनुपान से अथवा प्रवाल भस्म को चावल के धोवन के अनुपान से सेवन करने से कफज मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता ॥ १ ॥

## अथ त्रिदोषकृच्छ्रम् ।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे तु कृच्छ्रे यथाबलं कर्म समीक्ष्य कार्यम् ।
त्रयाधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु बस्तिः ॥ १ ॥

त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—त्रिदोष से उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों में बढ़े

हुई विधियों को रोगी के दोष बला-बल को विचार कर करनी चाहिये तथा उसमें यदि कफ की अधिकता मालूम हो तो प्रथम वमन कराना चाहिये, यदि पित्त की अधिकता हो तो प्रथम विरेचन करना चाहिये तथा यदि वात की अधिकता हो तो प्रथम वस्ति कर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

बृहत्यादिक्वाथ—

बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गकाः । पाचयेत् क्वाथं पिबेन्मार्त्यः कृच्छ्रे दोषत्रयोद्भवे ॥ १ ॥

बृहत्यादि क्वाथ—बड़ी कटेरी, पृष्ठपर्णी, पुरइन पाढ़ी, जेठीमधु, इन्द्रजौ समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतावर्यादिक्वाथ—

शतावर्यास्तु मूलानां निकायः ससितामधुः । मूत्रदोषं निहन्त्याशु वातपित्तकफोद्भवम् ॥१॥

शतावर्यादि क्वाथ—शतावरि की जड़ का क्वाथ बना कर शीतल कर उसमें शर्करा और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से वात-पित्त तथा कफदोष से उत्पन्न होने वाले मत्रदोष (मूत्रकृच्छ्र) शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडदुग्धयोग—

गुडेन मिश्रितं दुग्धं कदुष्णं कामतः पिबेत् । मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करा वातरोगनुत् ॥ १ ॥

गुड़ दुग्ध योग—थोड़े गरम दूध में पुराना गुड़ मिला कर इच्छामर पान करने से सभी प्रकार के (त्रिदोषज) मूत्रकृच्छ्र, शर्करा रोग और वातरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

## अथाभिघातमूत्रकृच्छ्रम् ।

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया हिता । पञ्चवल्कलकमृल्लेपः कवोष्णोऽत्र प्रशस्यते ॥ १ ॥

अभिघातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—अभिघात से (शस्त्रादि से क्षत अथवा अभिहत होने से) उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्र रोग में वातज मूत्रकृच्छ्र में कही हुई क्रिया हितकर है। और पञ्च-वल्कल (बट, पीपल (अश्वत्थ), पाकर, गूलर, बेत इनकी छाल) को सम भाग (एक-एक भाग) लेकर एक भाग मिट्टी मिला कर पीस कर (जल के साथ) गरम कर कुछ गर्म-गर्म लेप (पेडूपर) करने से अभिघातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

मन्थादियोग—मन्थं पिबेद्वा ससितं ससर्पिः शृतं पयो वाऽर्धसिताप्रयुक्तम् ।

धात्रीरसं चेक्षुरसं पिबेद्वाऽभिघातकृच्छ्रे मधुना विमिश्रम् ॥ १ ॥

मन्थादि योग—विधिपूर्वक बने हुए मन्थ में शर्करा और घृत मिला कर अथवा औटाये हुए दूध में आधा भाग शर्करा मिला कर अथवा आँवले के रस में वा ईख के रस में मधु मिला कर पान करने से अभिघातज मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है ॥ १ ॥

## अथ शुक्रविघातजकृच्छ्रम् ।

कृच्छ्रे शुक्रविघातोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् । सक्षीरं ससितं सर्पिर्मिश्रञ्चापि प्रपिबेन्नरः ॥१॥

शुक्र विघातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—शुक्र विघात से मूत्रकृच्छ्र रोग में शुद्ध शिलाजीत मधु, दूध, शर्करा और घृत (गोघृत) मिश्रित कर पान करना चाहिये इससे लाभ होता है ॥ १ ॥

शुक्रदोषविशुद्ध्यर्थं समदां प्रमदां श्रयेत् । तृणपञ्चकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिबेदपि ॥ १ ॥

शुक्र विघातज मूत्रकृच्छ्र दोष की शुद्धि के लिये मदमत्त (यौवनमद से मत्त) स्त्री के साथ रमण करना चाहिये और तृण पञ्चमूल के योग से विधिपूर्वक सिद्ध किये घृत को पान करना चाहिये। इससे शुक्रज (शुक्र विघातज) मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ २ ॥

लेह्यं शुक्रविघातोत्थे शिलाजतुसमाक्षिकं ।

पलादिहिङ्गुयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः । मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहरं परम् ॥ २ ॥

शुक्रविघातज मूत्रकृच्छ्र में शुद्ध शिलाजीत को मधु के साथ लेह बनाकर चाटना चाहिये और बरिआरा तथा शुद्धहींग मिले हुए दूध में गोघृत मिलाकर पीना चाहिये। इससे मूत्र दोष की शुद्धि होती है और शुक्र दोष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

## अथ शकृद्विघातज कृच्छ्रम् ।

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तयः स्युः पुरीषजे कृच्छ्रे तत्र विधिं कार्यं सर्वं शुक्रविघातजित् ॥

पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—मलावरोध से उत्पन्न होने वाले मूत्रकृच्छ्ररोग में चूर्णसेवन, अभ्यङ्ग, बस्तिकर्म ये सब करना चाहिये और मूत्रविबन्ध को नष्ट करने वाले सब काम ( सभी चिकित्सा ) करना चाहिये । इससे पुरीष विघातज मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरादिक्वाथ —

क्वाथो गोक्षुरबीजानां यवक्षारयुतः सदा । मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जातं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥ १ ॥

गोक्षुरादि क्वाथ—गोखरू के बीजों का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें यवाखार का प्रक्षेप देकर पान करने से पुरीषविघातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

## अथाश्मरीज कृच्छ्रम् ।

अश्मरीजे मूत्रकृच्छ्रे स्वेदाद्या चाश्मरीक्रिया । पाषाणभेदक्वाथस्तु कृच्छ्रमश्मरिजं जयेत् ॥ १ ॥

अश्मरी जन्य मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा—अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र रोग में स्वेदादि कर्म जो अश्मरी को नष्ट करने वाले हैं उन्हें करना चाहिये । और पाषाण भेद ( पथरचूर ) के क्वाथ को पान करने से अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

एलादि —एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।

शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करं साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

एलादियोग—छोटी इलायची, पीपरि, मुलहठी, पाषाण भेद, रेणुका बीज, गोखरू, अडूसा, एरण्डमूल सम भाग लेकर क्वाथ कर इसमें शुद्ध शिलाजीत और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

## अथ सामान्यविधिः ।

त्रिकण्टकादिक्वाथो मधुनिश्रितः—

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाशदुरालभापर्वतभेदपथ्याः ।

निघ्नन्ति पीता मधुनाश्मरीकां सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादि क्वाथ—गोखरू, अमलतास की गुदी, दाभ की जड़, कास की जड़, जवासा, पित्तपापड़ा, पाषाणभेद और हर्रे सम भाग लेकर क्वाथ सिद्ध कर शीतल होने पर मधु प्रक्षेप देकर पान करने से मरणासन्न वाला भी अश्मरी से उत्पन्न मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पाषाणभेदादि —पाषाणभेदस्त्रिवृता च पथ्या दुरालभा पुष्करगोक्षुरश्च ।

पलाशशृङ्गाटककर्कटीजबीजः कषायः सुनिरुद्धमूत्रे ॥ १ ॥

पाषाण भेदादि क्वाथ—पाषाणभेद, निशोथ, हर्रे, जवासा, पुष्करमूल, गोखरू, पलाश के बीज, सिंघाड़े के बीज और ककड़ी के बीज सम भाग लेकर क्वाथ बना कर पान करने से अवरुद्ध हुए मूत्ररोग में लाभ होता है अर्थात् मूत्र खुलकर होता है ॥ १ ॥

समूलगोक्षुरादि —

समूलगोक्षुरक्वाथः सितामाक्षिकसंयुतः । नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि तथा चोष्णसमीरणम् ॥ १ ॥

समूल गोक्षुरादि क्वाथ—मूलसहित गोखरू के क्वाथ में शीतल होने पर शर्करा और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है और उष्णवात को नष्ट करता है ॥ १ ॥

यवादिक्वाथ—यवोरुबूकतृणपञ्चमूलीपाषाणभेदैः सशतावरीभिः ।

कृच्छ्रेषु गुल्मेष्वपि चाश्मरीषु कृतः कषायो गुडसम्प्रयुक्तः ॥ १ ॥

यवादि क्वाथ—यव, एरण्डमूल, तृण पंचमूल की औषधियाँ, पाषाण भेद, शतावरी और हर्रे सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें पुराने गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्र कृच्छ्र और गुल्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

एलादियोग —एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां चूर्णानि तण्डुलजलैर्लुलितानि पीत्वा ।

यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य धीमानासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ १ ॥

एलादि योग—छोटी इलायची के बीज, पाषाण भेद ( पथरचूर ) शुद्ध शिलाजीत, पीपरि सम भाग लेकर चूर्ण कर तण्डुलोदक के अनुपान से पीने से अथवा इस चूर्ण में पुराना गुड़ मिलाकर चाटने से मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ भी मूत्रकृच्छ्र का रोगी जीवित हो जाता है ॥ १ ॥

क्षाराणां प्रयोग—

अङ्कोठतिलकाष्ठानां क्षारः क्षौद्रेण संयुतः । दधिवार्यनुपानेन मूत्रदोषं नियच्छति ॥ १ ॥

क्षारों का प्रयोग—अङ्कोल के लकड़ी का और तिल के लकड़ी का क्षार समान लेकर मधु मिला कर दही के अनुपान से सेवन करने से मूत्रदोष नष्ट होता है ॥ १ ॥

सितायुक्तो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रनिवारणः । निदिग्धिकारसो वाऽपि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥

शर्करा और यवाक्षार सम भाग लेकर सेवन करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं । अथवा छोटी कटेरी के रस में मधु मिला कर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

यवक्षारसमायुक्तं पिबेत्तक्रं च कामतः । मूत्रकृच्छ्रविनाशाय सर्वेषामश्मरीनाशनम् ॥ ३ ॥

यवाक्षार को तक्र में मिला कर इच्छा पूर्वक पान करने से मूत्रकृच्छ्र तथा अश्मरी रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

माषमेकं यवक्षारं कूष्माण्डस्वरसं पलम् । शर्कराकर्षसंयुक्तं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४ ॥

यवाक्षार १ माषा, श्वेतकुष्माण्ड ( पेठा या भतुआ ) का स्वरस १ पल और शर्करा १ कर्ष मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ ४ ॥

दाडिमाद्ययोग —

दाडिमाम्लयुतां दद्यात् शुण्ठीजीरकसंयुताम् । पीत्वा सुरां सलवणां मूत्रकृच्छ्रात्प्रमुच्यते ॥ १ ॥

दाडिमादि योग—खट्टे अनार के रस, सोंठ, जीरा और सेंधा नमक मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग से मुक्ति होती है ॥ १ ॥

उर्वारुबीजकल्क प्रयोग—

उर्वारुबीजकल्कं च श्लक्ष्णं पिष्टाऽक्षसम्मितम् । धान्याम्ललवणैः पेयं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ १ ॥

उर्वारु बीज कल्क—ककड़ी के बीज को भलीभाँति पीस कर कल्क बनाकर एक कर्ष प्रमाण लेकर धान्याम्ल ( कांजी ) सेंधा नमक मिलाकर उसके अनुपान से पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिकल्क —

त्रिफलायाः सुपिष्टायाः कल्कं कोलसमन्वितम् । वारिणा लवणोपेतं पिबेन्मूत्ररुजापहम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि कल्क—त्रिफला समान लेकर भली भाँति पीस कर कल्क कर एक कोल ( आधा कर्ष ) प्रमाण लेकर सेंधानमक मिलाकर जल के अनुपान से सेवन करने से मूत्र के कष्ट को ( मूत्रकृच्छ्ररोग को ) नष्ट करता है ॥ १ ॥

एलादि—

पिबेन्मद्येन सूक्ष्मैलां धात्रीफलरसेन वा । शितिवारकबीजं वा तक्रेण श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ १ ॥

एलादियोग—मद्य अथवा आँवले के फल के रस के साथ छोटी इलायची के बीजों के चूर्ण को पान करने से अथवा सुसना के शाक के बीजों के श्लक्ष्ण चूर्ण को तक्र के साथ पान करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

हरिद्रादि —हरिद्रागुडकर्षैकं चाऽऽरनालेन वा पिबेत् ।
वन्ध्याकर्कोटिकाकन्दं भक्षेत्क्षौद्रसितायुतम् । अश्मरीं हन्ति को चित्रं रहस्यं हि शिवोदितम् ॥

हरिद्रादि योग—हल्दी और पुराना गुड़ एक कर्ष लेकर आरनाल ( कांजी ) के साथ ( अनुपान से ) पान करना चाहिये अथवा बांझककोड़े की जड़ का चूर्ण, मधु और शर्करा के साथ भक्षण करना चाहिये । इससे ( इन दोनों प्रकार के योगों से ) अश्मरी नष्ट होती है । इसमें विचित्रता की ( चकित होने की ) कोई बात नहीं है । यह रहस्य शिवजी का कहा है ॥ १ ॥

योगसारादेलादि—

एलागोक्षुरयोश्चूर्णं शिशोर्देयं मधुप्लुतम् । मूत्रकृच्छ्रापहः क्वाथ पेयस्तन्मूलवारिणा ॥ १ ॥

छोटी इलायची के बीज और गोखरू सम भाग लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर बालकों को देने से उनका मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है और इसके जड़ के क्वाथ का भी सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरस्य तथा क्वाथो यवक्षारयुतः शुभः । सर्वकृच्छ्रविनाशाय शिलाजतुयुतोऽथ वा ॥ २ ॥

गोखरू का क्वाथ बनाकर उसमें यवाक्षार का प्रक्षेप देकर शुद्ध शिलाजीत को मिला कर पान करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करता है ॥ २ ॥

खर्जूरादिचूर्णम्—

खर्जूरामलबीजानि पिप्पली च शिलाजतु । एलामधुकपाषाण चन्दनोर्वारु बीजकम् ॥ १ ॥
धान्यकं शर्करायुक्तं पातव्यं ज्येष्ठवारिणा ।
अङ्गदाहं लिङ्गदाहं गुदवङ्क्षणदाहकम् । शर्करारमरिशूलघ्न बल्यं वृष्यकरं परम् ॥ २ ॥

खर्जूरादि चूर्ण—खजूर, आँवले के बीज ( गिरि ), पीपरि, शुद्ध शिलाजीत, छोटी इलायची, मुलहठी, पाषाण भेद ( पत्थरचूर ), रक्तचन्दन, ककड़ी के बीज और धनियां समान ( एक २ भाग ) लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके समान उसमें शर्करा मिलाकर ज्येष्ठाम्बु अर्थात् शालिधान के चावलों के धोवन के अनुपान से पान करने से अङ्गों का और लिङ्ग, गुदा-वङ्क्षण और शुक्र के दाह तथा शर्करा और अश्मरी के शूल इन सबको नष्ट करता है और अत्यन्त बलकारक तथा वृष्य है । (पाठान्तर में मूत्र-वीर्य तथा शर्करा रोग में मुलहठी के क्वाथ के अनुपान का विधान है)।

इक्षुरसादियोग—

मृष्टेक्षुस्वरस प्राश्यमाखुविट्सहितं पिबेत् । नाशयेन्मूत्रकृच्छ्राणि सद्य एव न संशयः ॥ १ ॥

इक्षुरसादि योग—ईख को आग में भूनकर स्वरस निकाल कर ( कोल्हू में पेर कर ) उसमें मूषक के मल का चूर्ण मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र रोग को शीघ्र नष्ट करता है, इसमें संशय नहीं है ॥ १ ॥

कुटजयोग —

पिष्ट्वा गोपयसा श्लक्ष्णं कुटजस्य त्वचं पिबेत् । तेनोपशाम्यते क्षिप्रं मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम् ॥१॥

कुटजयोग—कुटज ( कोरया ) की छाल को गोदुग्ध के साथ भली भाँति पीसकर पान करने से कठिन मूत्रकृच्छ्ररोग शीघ्र शमन हो जाता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकाद्य घृतम्—त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुकर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।
सर्पिर्गुडार्धांशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहारि ॥ १ ॥

त्रिकण्टकाद्यघृत—गोखरू, एरण्डमूल, कुशादि तृणपंचमूल, शतावरि, ककड़ी के बीज, सम भाग ( एक २ भाग ) लेकर कल्ककर जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत के चौगुना ईख का रस मिला कर घृत सिद्ध कर जितना घृत हो उसमें आधा भाग पुराना गुड़ मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और मूत्राघात रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शतावरीघृतम्—

घृतप्रस्थं शतावर्या रसस्यार्धाढकं पचेत् । अजाक्षीरेण संयुक्तं चतुष्प्रस्थमितेन तु ॥ १ ॥
द्विगोक्षुरामृतानन्ताकाशकण्टकिनीरसान् । कुडवार्धं पृथग्दत्त्वा पिष्टैर्यष्टिकटुत्रयम् ॥ २ ॥
यष्ट्याफलिनीदुग्धाशिलाजत्वश्मभेदकैः । त्रिसुगन्धान्वितैरक्षपलोशैः साधितं पुनः ॥ ३ ॥
शर्कराद्विपलोपेतं क्षौद्रपादसमन्वितम् । हन्ति कृच्छ्राणि सर्वाणि मूत्रदोषानशेषतः ॥
सर्वकृच्छ्राणि हन्त्याशु प्रसिद्धं तु शतावरीघृतम् ॥ ४ ॥

शतावरी घृत—मूर्च्छित गाय का घृत एक प्रस्थ, शतावरि का रस आधा आढक ( २ प्रस्थ ) दोनों को मिला कर पाक करे जब शतावरि का रस जल जाय तब उसमें बकरी का दूध चार प्रस्थ देकर पाक करे जब दूध जल जावे तब उसमें दोनों ( छोटा-बड़ा ), गोखरू गुर्च, अनन्तमूल काश ( कास ) की जड़, छोटी कटेरी के पृथक २ स्वरस को देकर पाक कर उसमें जेठीमधु, सोंठि पीपरि, मरिच, गोखरू, त्रिफला, दुग्धा ( दूधी बूटी ), शुद्ध शिलाजीत, पाषाण भेद, दालचीनी, इलायची तेजपात आधा २ पल लेकर कल्क बनाकर और मिलाकर पुनः पाकार्थ घृत से चतुर्गुण जल मिलाकर यथाविधि सिद्ध कर उतार-छानकर शीतल कर उसमें दो पल शर्करा और घृत जितना हो उसके चतुर्थांश मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग, मूत्रदोष, अश्मरी और शर्करारोग को नष्ट करता है यह 'शतावरीघृत' सब प्रकार के कृच्छ्र रोगों को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १-४ ॥

त्रिकण्टकादिगुग्गुलु—

त्रिकण्टकात् कथितेऽग्निरे पुर पचेत्पाकविधानयुक्त्या।
फलत्रिकव्योषपयोधराणां चूर्णं पुरेण प्रमितं प्रदद्यात् ॥ १ ॥
वटी प्रमेहं प्रदरं च मूत्राघातं च कृच्छ्रं च तथाऽश्मरीं च।
शुक्रस्य दोषान् सकलांश्च वातात्सिद्धन्ति मेघानिव वायुवेगः ॥ २ ॥

त्रिकण्टकादि गुग्गुलु—गोखरू का अष्टमांशावशिष्ट सिद्ध क्वाथ लेकर उसमें शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर गुग्गुलु पाक की विधि से पाक करे जब पाक सिद्ध होवे तब उसमें आंवला, हर्रा, बहेड़ा, सोंठि, पीपरि, मरिच और नागरमोथा समभाग लेकर श्लक्ष्ण चूर्णकर गुग्गुलु के समान मात्रा में मिलाकर वटी बनाकर सेवन करने से प्रमेह, प्रदर, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी और सम्पूर्ण वीर्य दोष तथा अन्यान्य दोषों को भी इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार मेघ को वायु का वेग नष्ट ( तितर-बितर ) कर देता है ॥ १-२ ॥

सेकलेपौ—विद्या श्वदंष्ट्राफलमूलिकाविडङ्गर्वारुबीजानि सकाञ्जिकानि।
आलिप्यमानानि समानि बस्तौ मूत्रस्य निष्पन्दकराणि सद्यः ॥ १ ॥

सेक तथा लेप विधि—गोखरू के फल, मूली, विडनमक, ककड़ी के बीज समान भाग लेकर कांजी के साथ पीस कर लेप की विधि से बस्ति स्थान पर लेप करने से शीघ्र मूत्र को निकालने वाला होता है ॥ १ ॥

बस्तावेरण्डतैलेन स्निग्धाये किंशुकोत्थयैः। क्वथपुष्पैः स्वेदसेकं मूत्रकृच्छ्रोपशान्तये ॥ २ ॥

बस्तिस्थान को एरण्डतैल से स्निग्ध करके ढाक ( पलाश ) के फूलों को क्वथित कर उससे स्वेद देने तथा सिञ्चन करने से मूत्रकृच्छ्र शमन होता है ॥ २ ॥

कोष्णाखुविट्कर्कटलेपो बस्तेरुपरि कृच्छ्रिणः। त्रपुसीबीजलेपो वा धारा वा किंशुकाम्भसः ॥
ध्वजच्छिद्रे चेन्दुशान दान वा चटकाविटः। मेघनादशिफालेपः स्वेदो वा कर्कटाम्भसा ॥४॥
पातो वा कोष्णतैलस्य धारा वा कोष्णवारिणः। मतैते पादिका योगा मूत्रकृच्छ्रहरा मताः ॥

आखु ( चूहे ) के मल को जल के साथ पीस कर कुछ गरम कर अथवा ककड़ी के बीजों को जल के साथ पीस कर मूत्रकृच्छ्र के रोगी के बस्तिस्थान पर लेप करने से अथवा ढाक को क्वथित कर उसकी जलधारा ( क्वाथ धारा ) बस्ति पर देने से, अथवा लिङ्ग के छिद्र में कर्पूर अथवा चटक पक्षी ( गवरैया ) के मल को डालने से अथवा मेघनाद ( चौराई ) की जड़ को जल में पीसकर बस्तिपर लेप करने से अथवा केकड़े के विधिवत् बने क्वाथ से स्वेद देने से अथवा थोड़-थोड़े गरम तैल अथवा जल की धारा बस्ति पर देने से, ( इनमें से किसी एक के व्यवहार से ) मूत्रकृच्छ्र रोग नष्ट होता है ॥ ३-५ ॥

चन्द्रकलारसः, सप्रदात्—

प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्सूतं ताम्रं तथाऽभ्रकम्। द्विगुणं गन्धकं चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ॥
मुस्तादाडिमदूर्वाख्यैः केतकीस्तनजद्रवैः। सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटस्य च वारिणा ॥ २ ॥
रामशीतलिकातोयैः शतावर्या रसेन च। भावयित्वा प्रयत्नेन दिवसे दिवसे पृथक् ॥ ३ ॥
तिक्ता गुडूचिकासत्वं पर्पटोशीरमाधवी। श्रीगन्ध सारिवा चैषां समानं सूक्ष्मचूर्णितम् ॥४॥
द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत्। ततः पोताश्रयं कृत्वा वटवः कार्याश्चणोपमा ॥५॥
अयं चन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रः परिकीर्तितः। सर्वपित्तगदध्वंसी वातपित्तगदापहः ॥ ६ ॥

चन्द्रकला रस—शुद्ध पारद, ताम्रभस्म और अभ्रक भस्म प्रत्येक एक-एक कर्ष शुद्ध गन्धक द्विगुण ( दो कर्ष ) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली विधिपूर्वक कर के फिर ताम्र तथा अभ्रक भस्म को मिलाकर मर्दन कर नागरमोथा, अनार, दूब तृण, केतकी, गोदुग्ध, सहदेवी, कुमारी ( घृत कुमारी ), पित्तपापड़ा, रामशीतला और शतावरि के स्वरस अथवा क्वाथ से ( जिसका स्वरस नहीं निकाल सके उसके क्वाथ से ) पृथक्-पृथक् एक-एक दिन विधिपूर्वक भावित करे फिर कुटकी, गुरुचि के सत्त पित्तपापड़ा, खस, माधवीलता, श्वेत चन्दन, सारिवा, समान लेकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर उपर्युक्त भावित पारदादि द्रव्यों में समान ( जितना भावित रस हो उसके तुल्य समान

मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षिनिरोधकः । वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

वातबस्ति के लक्षण—जो अज्ञानी मनुष्य मूत्र के वेग को धारण करता है उसकी बस्ति स्थान में रहने वाली वायु बस्ति के मुख को अवरुद्ध कर देती है जिससे मूत्र का अवरोध हो जाता है और बस्तिस्थान तथा कुक्षि में पीड़ा होती है। इसे 'वात बस्ति' जानना चाहिये। यह रोग कष्ट साध्य है ॥ ५–६ ॥

मूत्रातीतमाह—

चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते । मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥

मूत्रातीत के लक्षण—जो मनुष्य बड़ी देर तक मूत्र के वेग को धारण करता है उसको फिर मूत्र शीघ्रता से नहीं आता अथवा मन्द २ वेग से मूत्र होता है, इस अवस्था को 'मूत्रातीत' रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

मूत्रजठरमाह—

मूत्रस्य वेगेऽभिहते तदुदावर्तहेतुकः । अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥
नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् । तन्मूत्रजठरं विद्याद्गुदबस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥

मूत्रजठर के लक्षण—मूत्र के वेग को धारण करने से उदावर्त को उत्पन्न कर देने वाला कुपित अपान वायु उदर को अत्यन्त पूर्ण कर देता है उससे नाभि के नीचे आध्मान हो जाता है और तीव्र पीड़ा होती है तथा इस आध्मान से गुदा और बस्ति का मार्ग रुक जाता है। इसको 'मूत्रजठर' कहते हैं ॥ ८–९ ॥

मूत्रोत्सङ्गमाह—

बस्तौ वाऽप्यथवा नाले मणौ वा यस्य देहिनः । मूत्रं प्रवृत्तं सज्जेत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥
स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् । विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥

मूत्रोत्सङ्ग के लक्षण—जिस मनुष्य को बस्ति में अथवा मूत्रनाली ( लिङ्ग ) में अथवा लिङ्ग के मुण्ड में प्रवृत्त हुआ ( निकलता हुआ ) मूत्र रुक जाता है अथवा बल पूर्वक बहाने से ( बल लगा कर मूत्रोत्सर्ग करने से रक्त के साथ धीरे २ मूत्र निकलता है और उसमें पीड़ा होती है अथवा नहीं भी होती है यह 'मूत्रोत्सङ्ग' नाम की व्याधि वायु के विगुण ( विमार्ग ) होने से होती है ॥ १०–११ ॥

मूत्रक्षयमाह—

रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ । मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

मूत्रक्षय के लक्षण—जिसका शरीर रूक्ष तथा क्लान्त ( थकित ) हो गया हो उसके बस्ति स्थान में रहने वाला पित्त तथा वायु कुपित होकर पीड़ा तथा दाह सहित मूत्रक्षय कर देते हैं इसको 'मूत्रक्षय रोग' कहते हैं ॥ १२ ॥

मूत्रग्रन्थिमाह—

अभ्यन्तरे बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् । अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥

मूत्र ग्रन्थि के लक्षण—बस्ति के भीतर मुख पर अकस्मात् जो गोल स्थिर, छोटी सी, अश्मरी समान पीड़ा करने वाली ग्रन्थि ( गांठ ) उत्पन्न हो जाती है उसे 'मूत्रग्रन्थि' कहते हैं ॥ १३ ॥

तन्त्रान्तरे तु—

मूत्रं वातकफाद्दुष्टं बस्तिद्वारेषु दारुणम् । ग्रन्थिं कुर्यात्स कृच्छ्रेण सृजेन्मूत्रं तदावृतम् ॥१४॥

वात और कफ से दूषित हुआ मूत्र बस्ति के द्वार पर कठिन ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है। उससे ( उस ग्रन्थि से ) घिरा हुआ मूत्र कष्ट से बाहर निकलता है, इसे 'मूत्रग्रन्थि' कहते हैं ॥१४॥

मूत्रशुक्रमाह—मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते । भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ॥ १५ ॥

मूत्रशुक्र के लक्षण—जो मनुष्य मूत्र के वेग होने के समय मूत्र का अवरोध करके स्त्रीप्रसंग करता है उसका वीर्य कुपित वायु से उद्धत होकर अपने स्थान से [illegible] मूत्र के प्रथम या [illegible] पीछे राख जल के समान निकलता [illegible] ॥

उष्णवातमाह—

व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलावृतम्। बस्तिं मेढ्रं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेदधः॥
मूत्रं हारिद्रमथवा सरक्तं रक्तमेव वा। कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम्॥ १७॥

उष्णवात के लक्षण—अधिक व्यायाम करने से, अधिक मार्ग चलने से, अधिक ताप में रहने से, इन सब कारणों से कुपित हुआ पित्त बस्ति में प्राप्त होकर वायु से घिर कर बस्ति, शिश्न और गुदा में दाह करता है और हरदी के समान, रक्तवर्ण का अथवा रक्तसहित कष्ट से मूत्र का नीचे की ओर स्राव होता है। उसे 'उष्ण वात' कहते हैं॥ १६-१७॥

मूत्रसादमाह—

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत्। कृच्छ्रान्मूत्रं तदा रक्तं पीतं श्वेतं घनं सृजेत्॥
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत्। शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम्॥ १९॥

मूत्रसाद के लक्षण—पित्त और कफ अथवा दोनों जब वायु के संग मिलकर बस्ति में कुपित हो जाते हैं तब कष्ट से रक्त, पीत या श्वेत वर्ण का और घना मूत्र निकलता है। उसमें दाह होता है तथा गोरोचन, शङ्ख तथा चूने के समान श्वेतवर्ण का मूत्र होता है अथवा सूखा हुआ सब वर्णों का मूत्र होता है। उसको 'मूत्रसाद' कहते हैं॥ १८-१९॥

विड्विघातमाह—रूक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्तं शकृद्यदा।
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः। विड्गन्धं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातं तमादिशेत्॥२०॥

विड् विघात के लक्षण—रूक्ष तथा दुर्बल मनुष्य का वात कुपित होकर जब मल को आवृत कर लेता है (घेर लेता है) तब वह मलमूत्रवाहिनी नाड़ियों में प्राप्त हो जाता है और मूत्र में मिल जाता है जिससे विष्ठा मिला हुआ और विष्ठा के गन्ध वाला बड़े कष्ट से मूत्र होता है। उसको 'विड्विघात' कहते हैं॥ २०॥

बस्तिकुण्डलमाह—

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात्प्रपीडनात्। स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत्॥
शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि। पीडितस्तु सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान्॥
बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविषोपमम्। पवनप्रबलं प्रायो दुर्निवारमबुद्धिभिः॥ २३॥

बस्तिकुण्डल के लक्षण—अति शीघ्र २ मार्ग चलने से, अधिक उपवास करने से, अधिक परिश्रम करने से, आघात हो जाने से अथवा किसी अन्य प्रकार से बस्ति के पीड़ित हो जाने से अपने स्थान से हटकर बस्ति स्थूल होकर (फूल कर) गर्भ के समान हो जाती है, जिससे शूल, कम्पन या संचालन, दाह इनसे पीड़ित होकर बिन्दु-बिन्दु करके मूत्र का स्राव होता है और बस्ति को दबाने से मूत्र धारा रूप में बहता है तथा स्तम्भन और पीड़न होता है इससे रोगी दुखी होता है। इसको अति कठिन शस्त्र और विष के समान दुःखप्रद 'बस्तिकुण्डल' रोग कहते हैं। यह रोग प्रायः वायु की प्रबलता से होता है और अबुद्धि अथवा अल्पबुद्धि पुरुषों के लिये दुर्निवार (असाध्य) है॥ २१-२३॥

तस्मिन्पित्तान्विते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता। श्लेष्मणा गौरवं शोफः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम्॥

इस रोग में जब पित्त का अधिक कोप होता है तब उसमें दाह, शूल और मूत्र में विवर्णता होती है, और जब कफ की अधिकता होती है तब गुरुता, शोथ और स्निग्धता युक्त श्वेतवर्ण का घना (गाढ़ा) मूत्र निकलता है॥ २४॥

श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति।
अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः।
स्याद्बस्तौ कुण्डलीभूते तृण्मोहः श्वास एव च॥ २५॥

साध्यासाध्यता—जिसमें बस्ति का मुख कफ से अवरुद्ध हो गया हो और पित्त बढ़ गया हो वह कुण्डलिका असाध्य है। जिसमें बस्ति का मुख खुला हो और जो कुण्डली की भाँति नहीं हुई हो वह 'बस्तिकुण्डलिका' साध्य है। बस्ति जब कुण्डली की भाँति हो जाती है तब उसमें तृषा, मोह और श्वास हो जाता है। यह भी असाध्य है॥ २५॥

## अथ मूत्राघातचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् । वस्त्यादुत्तरबस्तिं च मूत्राघाते सवेदने ॥ १ ॥

मूत्राघात चिकित्सा—मूत्राघात के रोगी को प्रथम स्नेहन तथा स्वेदन कराकर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये और पीड़ायुक्त मूत्राघात में उत्तरवस्ति देना चाहिये ।

नलादिक्वाथ —नलकुशकाशेक्षुशिफाक्वथितं प्रातः सुशीतलं ससितम् ।

पिबतः प्रयाति नियतं मूत्राघातः सवेदनः पुंसः ॥ २ ॥

नलादि क्वाथ—नरकट की जड़, कुश की जड़, काश की जड़ और ईख की जड़ समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर शीतल करके प्रातःकाल उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पीड़ा सहित मूत्राघात रोग निश्चित ही नष्ट होता है ॥ २ ॥

गोधावत्यादि—

गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् । पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य सङ्घातम् ॥

गोधावत्यादि क्वाथ—गोधावती (गोरखटिया) के मूल का क्वाथ बनाकर उसमें गोघृत तिल का तेल और गाय का दूध मिलाकर पान करने से मूत्रसङ्घात को शीघ्र ही भेदन कर निकालता है ॥१॥

शार्ङ्गधरात्—

वीरतरवृक्षादन्या वाला सहचरद्वयम् । कुशद्वयं नलो गुन्द्रा वसुकुपोऽग्निमन्थकः ॥ १ ॥

मूर्वा पाषाणभेदश्च स्योनाको गोक्षुरस्तथा । अपामार्गश्च कमलं ब्राह्मी चेति गणो वरः ॥ २ ॥

वीरतर्वादिरित्येष शर्करामश्मरीं कृच्छ्रहा । मूत्राघातं वातरोगान्नाशयेदचिरादपि ॥ ३ ॥

वीरतर्वादि क्वाथ—गांडर दूब अथवा सरकण्डे की जड़, बन्दा (वृक्ष पर की बांदी), अरुसा दोनों सहचर (पीत पुष्पवाली और नील पुष्पवाली), दोनों कुश (कुश और दाभ) नरकट, पटेर इनका मूल, अगस्त के फूल, गनियार की छाल, मूर्वा, पाषाणभेद, सोना पाठा की छाल, गोखरू, अपामार्ग, कमल और ब्राह्मी ये वीरतर्वादि गण हैं। इस वीरतर्वादि गण के क्वाथ का सेवन करने से शर्करा रोग, अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात तथा सम्पूर्ण वात रोगों को नष्ट करता है (शार्ङ्गधर में 'सहचरत्रयम्' पाठ है अर्थात् तीनों प्रकार के नील पीत और श्वेत पुष्प के सहचर) ॥ १-३ ॥

पिबेच्छिलाजतु क्वाथे गणे वीरतरादिके । रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य च ॥ ४ ॥

इस वीरतरादि गण के क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत अथवा जवासे का रस मिलाकर पीने से अथवा अडूसा का क्वाथ पीने से भी उपर्युक्त शर्करादि रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

दशमूलादि क्वाथ—

दशमूलीशृतं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम् । वातकुण्डलिकाष्ठीलावातबस्तौ प्रमुच्यते ॥ १ ॥

दशमूलादि क्वाथ—दशमूल की प्रत्येक ओषधियों को सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें शुद्ध शिलाजीत और शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से वातकुण्डलिका अष्ठीला और वात बस्ति से रोगी मुक्त होता है ॥ १ ॥

गोक्षुरादिक्वाथ—

पीतो गोकण्टकक्वाथः सशिलाजतुकौशिकः । मूत्रकृच्छ्रान्मूत्रघातान्मूत्रोत्सङ्गाद्विमुच्यते ॥ १ ॥

गोक्षुरादि क्वाथ—गोखरू के विधिपूर्वक बने क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत और शुद्ध गुग्गुल मिला कर पान करने से मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात और मूत्रोत्सङ्ग से रोगी मुक्त होता है ॥ १ ॥

शिलाजतुयोग—

सशर्करं च समितं क्षीरं सिद्धं शिलाजतु । निहन्ति मूत्रकृच्छ्रं मूत्राघातं च देहिनः ॥ १ ॥

शिलाजतु योग—शुद्ध शिलाजीत में मिश्री और श्वेत शर्करा मिलाकर पान करने से मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादियोग—

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरुभिः सिद्धं पयो वा लघुपञ्चमूलजैः ।

गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छ्रादिषु

त्रिकण्टकादि योग—गोखरू, एरण्डमूल और शतावरि इन द्रव्यों के द्वारा क्षीरपाक विधि से दूध सिद्ध कर उसमें पुराने गुड़ का प्रक्षेप देकर सेवन करने से मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता है। अथवा घृत और दूध मिलाकर पान करने से भी मूत्रकृच्छ्रादि रोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

निदिग्धिकादियोग—

निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वा तक्रसंयुतम् । जले कुङ्कुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥ १ ॥
शृतशीतपयोऽश्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना । पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठामुष्णवाते सशोणिते ॥ २ ॥

निदिग्धिकादि योग—छोटी कटेरी के स्वरस को तक्र में मिलाकर अथवा केसर के कल्क को पर्युषित कर उसमें मधु मिलाकर पान करने से और औटा कर शीतल किया हुआ दूध तथा अन्न का भक्षण करने से, तथा श्वेत चन्दन को चावल के धोवन में पिस कर शर्करा मिलाकर पान करने से रक्त सहित उष्णवात नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

शतावर्यादियोग—

शतावरीगोक्षुरभूधात्रीमूलानां स्वरसं पलम् । माषमेकं यवक्षारं सौरं माषद्वयं तथा ॥ १ ॥
द्विगुञ्जं टङ्कणक्षारं सर्वमेकत्र मेलयेत् । पिबेत्तद्धि विनाशाय मूत्राघाते सुदारुणे ॥ २ ॥

शतावर्यादि योग—शतावरि, गोखरू और भुई आवला की जड़ों का स्वरस मिलित १ पल, यवक्षार १ माषा, सुगन्धकर्पूर (शीतलमिरच) दो माषा, टङ्कण क्षार (शुद्ध सुहागा) दो रत्ती सब को एकत्र कर कठिन मूत्राघात को नष्ट करने के लिये देना चाहिये ॥ १-२ ॥

मूत्रशोणितचिकित्सा—स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य सिच्यते ।
मैथुनोपरमश्चास्य बृंहणीयो विधिर्मतः । ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरबस्तिषु ॥ १ ॥

मूत्रशोणित चिकित्सा—जब अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करने से शिश्न से रक्त का स्राव होने लगता है तब उसे मूत्रशोणित कहते हैं। उसमें मैथुन सर्वथा त्याग देना चाहिये और बृंहण क्रिया करनी चाहिये तथा कुक्कुट का वसा अथवा तैल की उत्तरबस्ति देनी चाहिये ॥ १ ॥

स्वगुप्ताद्यं चूर्णम्—

स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारजः । समानमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ॥ १ ॥
सर्वं सम्यग्विमर्द्याक्षमात्रां लीढ्वा पयः पिबेत् । हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ॥

स्वगुप्ताद्य चूर्ण—केवाच के फल (बीज), मुनक्का, पीपरि, ताल मखाना और शर्करा सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके आधा गोदुग्ध, मधु और घृत इनको समान मिलित लेकर उसमें भली भाँति मर्दन कर एक अक्ष (कर्ष) के प्रमाण की मात्रा से चाटकर ऊपर से दूध का अनुपान पान करने से शुक्रक्षय से उत्पन्न होने वाले दोष नष्ट होते हैं और बन्ध्या यदि सेवन करे तो उसे पुत्र होता है ॥ १-२ ॥

क्षौद्रार्धभागघृतम्—

क्षौद्रार्धभागः कर्तव्यो भागः स्यात्क्षीरसर्पिषोः । शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाचूर्णं च तत्समम् ॥
स्वयंगुप्ताफलं चैव सर्वेषां क्षुरकस्य च । पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥ २ ॥
तदेकस्थं मेलयित्वा खल्वेनोन्मथ्य च क्षणम् । तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्क्षीरं ततः पिबेत् ॥

क्षौद्रार्ध भाग घृत—मधु आधा भाग, गोदुग्ध, गोघृत, शर्करा, द्राक्षा, केवाँच के बीज, ताल मखाना और पीपरि का चूर्ण प्रत्येक १ भाग एकत्र कर कुछ समय तक खरल में मर्दन कर इसमें से एक कर्ष भर लेकर चाट कर ऊपर से गोदुग्ध पान करे ॥ १-३ ॥

घृतसर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः सदा ।
शुक्रदोषाञ्जयत्सर्वानेवापि सुदारुणान् । जयेच्छोणितदोषांश्च वन्ध्या स्त्री गर्भमाप्नुयात् ॥

इस घृत को सेवन करने के पहले शरीर शुद्ध कर लेना चाहिये। इसके प्रयोग से सब प्रकार के अत्यन्त कठिन तथा बढ़े हुए शुक्रदोष नष्ट होते हैं और रक्त दोष या आर्तव सम्बन्धी दोष नष्ट होते हैं तथा बन्ध्या स्त्री को इसके सेवन से गर्भ रहता है ॥ ४ ॥

धान्यगोक्षुराद्य घृतम्—

धान्यगोक्षुरकक्वाथकल्कसिद्धं घृतं हितम् । मूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु शुक्रदोषे च दारुणे ॥ १ ॥

धान्य गोक्षुराद्य घृत—धनियाँ और गोखरू इनके क्वाथ तथा इन्हीं के कल्क के साथ घृत पाक

की विधि से ( सिद्ध हैं चतुर्गुण मूर्च्छित गोदुग्ध और घृत से चतुर्गुण क्वाथ के द्वारा ) सिद्ध घृत के सेवन करने से मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और कठिन शुक्र दोष में लाभ करता है ॥ १ ॥

चित्रकाद्य घृतम्—

चित्रकं सारिवा चैव बला कालानुसारिवा । द्राक्षाविशालापिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ॥ १ ॥
तथैव मधुकं दद्याद्दद्यादामलकानि च । घृताढकं पचेदेतैः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ २ ॥
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् । शीतं परिस्रुतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ३ ॥
तुगाक्षीर्याश्च तत्सर्वं मतिमान्परिमिश्रयेत् । ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ॥ ४ ॥
मूत्रग्रन्थिं मूत्रमन्दं सुप्तवातमसृग्दरम् । विड्विघातं निहन्त्येतद्वस्तिकुण्डलिमप्युत ॥ ५ ॥

चित्रकाद्य घृत—चित्रकमूल, सारिवा लता, खरेंटी, नागबला, कृष्ण सारिवा, द्राक्षा, गाडरि की जड़, पीपरि, इन्द्रायन, हर्रा, बहेड़ा, मुलहठी और आँवला प्रत्येक एक-एक अक्ष के प्रमाण से लेकर कल्क कर मूर्च्छित गोघृत एक आढक ( ४ प्रस्थ ) में मिलावे और उसमें गाय का दूध एक द्रोण और जल एक द्रोण ( ४ आढक ) मिलाकर घृत सिद्ध करे जब घृत मात्र शेष रहे तो उतार छानकर शीतल होने पर उसमें शर्करा और वंशलोचन का चूर्ण एक २ प्रस्थ मिलाकर रख ले। इस घृत को दोष, बल और अग्नि के अनुसार मात्रा से पान करने से मूत्रग्रन्थि, मूत्रमान्द्य, सुप्तवात, रक्तप्रदर, विड्विघात और वस्तिकुण्डलिका ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १–५ ॥

सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ।
असृग्दोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च । प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चित्रकाद्यं सदा बुधैः ॥ ६ ॥

इस घृत के प्रयोग से स्त्री शीघ्र ही गर्भधारण कर लेती है तथा रक्तदोष, योनिदोष और मूत्रदोष में इस 'चित्रकाद्य घृत' का प्रयोग बुद्धिमान् को सदा करना चाहिये ॥ ६ ॥

सदाभद्राद्यं चूर्णम्—सदाभद्राश्मभिन्मूलं शतावर्यश्च चित्रकम् ।
रोहिणीकोकिलाक्षौ च श्वेतरक्तं त्रिकण्टकम् ॥
श्लक्ष्णपिष्टं सुरा पीता मूत्राघातप्रणाशनम् ॥ १ ॥

सदाभद्राद्य चूर्ण—गम्भार की छाल, पाषाणभेद की जड़, शतावरि मूल, चित्रक मूल, कुटकी तालमखाना, कमल बीज, ईख की जड़ और गोखरू को सम भाग लेकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर सुरा ( मद्य ) के अनुपान से सेवन करने से मूत्राघात रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

उशीरादिचूर्णम्—

उशीरं वालकं पद्मं कुष्ठं धात्री च मोचकी । एला हरेणुकं द्राक्षा कुङ्कुमं नागकेसरम् ॥ १ ॥
पद्मकेसरकन्दं च कर्पूरं चन्दनद्वयम् । व्योषं मधुकबीजानि अश्वगन्धा शतावरी ॥ २ ॥
गोक्षुरं कर्कटाख्यं च जाती कङ्कोलजीरकम् । एतानि समभागानि द्विगुणा स्यात्सितोपला ॥ ३ ॥
मध्वाज्याभ्यां च प्रातरेव बुभुक्षितः । क्षयं च रक्तपित्तं च पाण्डुदाहमसृग्दरम् ॥ ४ ॥
मूत्राघातं मूत्रकृच्छ्रं रक्तस्रावं च नाशयेत् । अशीतिं वातजान्रोगान्विशेषान्मेहनुत्परम् ॥ ५ ॥

उशीरादि चूर्ण—खस, सुगन्धबाला, तेजपात, कूठ, आँवला, मूसली, छोटी इलायची के बीज, रेणुका बीज, द्राक्षा, केसर, नागकेसर, पद्मकेसर, पद्म की जड़, कपूर, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन, सोंठ, पीपरि, मरिच, मुलहठी, आम की गुठली, असगन्ध, शतावरि, गोखरू, ककड़ी के बीज, चमेली, कङ्कोल, सफेद जीरा ( जीरक ) समभाग लेकर ( एक एक भाग लेकर ) चूर्णकर जितना हो उसके दुगुना शक्कर मिलाकर मर्दन कर रख लेवे। इसको प्रातः शर्करा ( मिश्री ) तथा मधु के साथ मात्रा अनुसार सेवन करने से क्षय, रक्तपित्त, पाण्डु, दाह, प्रदर, मूत्रकृच्छ्र, रक्तस्राव और अस्सी प्रकार के वात रोग नष्ट होते हैं तथा विशेष कर यह प्रमेह रोग नष्ट करने में उत्तम है ॥

सामान्य क्रिया—

अश्मरीमूत्रकृच्छ्रेषु भेषजं सत्क्रिया च या । मूत्राघातेषु सर्वेषु कुर्यात्तामर्थमादरात् ॥ १ ॥

सामान्य क्रिया—अश्मरी तथा मूत्रकृच्छ्र रोग में कही हुई सभी औषधियाँ और क्रियायें मूत्राघात रोग में प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ १ ॥

स्नेहस्वेदोपचारश्च कृच्छ्रघ्नो यः पुरोदितः । मूत्राघातेषु सर्वेषु स प्रयोज्यो विजानता ॥ २ ॥

चन्द्रकला नामक जो रस मूत्रकृच्छ्र-रोग के प्रकरण में पहले कह आये हैं, वे सब प्रकार के मूत्राघात रोग में बुद्धिमान् वैद्य को प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम्।

पुरातना लोहितशालयश्च मांसानि धन्वप्रभवाणि मद्यम्।
तक्रं पयो दध्यपि माषयूषः पुराणकूष्माण्डफलं पटोलम् ॥ १ ॥
खर्जूरखर्जूरकनारिकेलतालद्रुमाणामपि मस्तकानि।
यथामलं सर्वमिदं च मूत्राघातातुराणां हितमादिशन्ति ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने रक्तवर्ण के शालिधान का चावल, धन्वदेशीय ( मरुस्थल के ) जीवों का मांस, मदिरा, तक्र, दूध, दही, उड़द का यूष, पुराने श्वेत कुष्माण्ड ( पेठा ), परवर, ककड़ी, खजूर, नारियल, तथा ताड़ वृक्ष के मस्तक, ये सब पदार्थ दोषानुसार मूत्राघात के रोगियों के लिये हितकर कहे गये हैं ॥ १-२ ॥

विरुद्धाशनसर्वाणि व्यायामं मार्गशीलनम्।
रूक्षं विदाहि विष्टम्भि व्यवायं वेगधारणम्। करीरं वमनं चापि मूत्राघाती विवर्जयेत् ॥३॥

सब प्रकार के विरुद्ध भोजन, व्यायाम, मार्ग चलना, रूक्ष, विदाही और विष्टम्भी पदार्थ, मैथुन, मलादि वेगों का अवरोध, करीर फल खाना और वमन मूत्राघात का रोगी त्याग देवे ॥३॥

इति मूत्राघातप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथाश्मरीनिदानम्।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थी शुक्रजाऽपरा। प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥१॥

अश्मरी निदान—अश्मरी ( पथरी ) रोग चार प्रकार का होता है एक वात के कोप से, दूसरा पित्त के कोप से तीसरा कफ के कोप से और चौथा शुक्र दोष से। प्रायः करके सब प्रकार के अश्मरी रोग श्लेष्मा को ही आश्रय करके रहते हैं और उक्त चारों प्रकार के अश्मरी रोग यम के समान भयङ्कर होते हैं ॥ १ ॥

तत्संप्राप्तिमाह—विशोषयेद्वस्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा।
यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ २ ॥

अश्मरी की सम्प्राप्ति—जब वायु बस्ति स्थान में कुपित होता है तब बस्ति में स्थित हुए शुक्र सहित अथवा पित्त सहित अथवा कफ सहित मूत्र को सुखा देता है जिससे अश्मरी रोग हो जाता है। यह अश्मरी रोग जिस क्रम से गाय के पित्त के सूखने से गोरोचन हो जाता है उसी क्रम से मूत्र के सूखने से हो जाता है ॥ २ ॥

तस्यामनेकदोषाश्रयत्वमाह—

नैकदोषाश्रयाः सर्वा अथासां पूर्वलक्षणम्। बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥
मूत्रे च बस्तगन्धत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः।

अश्मरी के अनेक दोषाश्रयत्व—सब प्रकार की अश्मरी एक दोष के आश्रय से नहीं रहती अर्थात् अनेक दोषों से युक्त होती है और इस अश्मरी के होने के समय ( पहले ) बस्ति में आध्मान और बस्ति के समीप के स्थानों में ( बस्ति के ऊपर नीचे शिश्न तथा अण्डकोशादि में ) अति पीड़ा होती है और मूत्र में बकरे के गन्ध के समान गन्ध होती है तथा मूत्रकृच्छ्र, ज्वर और अरुचि होती है ॥ ३ ॥

तासां सामान्यलक्षणमाह—

सामान्यलिङ्गं रुङ्नाभिसेवनीबस्तिमूर्धसु। विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गे निरोधिते ॥४॥
तद्व्यपायात्सुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम्। तत्संक्षोभात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ॥५॥

अश्मरी के सामान्य लक्षण—नाभिस्थान, सीवनी, बस्ति स्थान तथा सिर में पीड़ा होती है, अश्मरी के मूत्र मार्ग में रुकने के कारण मूत्र कई धार से होता है और वह अश्मरी जब मूत्रमार्ग से पृथक् हो जाती है, तब सुखपूर्वक स्वच्छ गोमेद के समान मूत्र होता है। उस अश्मरी के

संक्षुभित (कट) होने से क्षत भी हो जाता है जिससे रक्त के साथ मूत्र निकलता है और कुछ मूत्र वेग में बल करने से अत्यन्त पीड़ा होती है। ये सब अश्मरी रोग के सामान्य लक्षण हैं। ४-६॥

वातजामाह—

तत्र वाताद्भृशार्त्तो नाऽऽर्त्तो दन्तान्खादति वेपते। मृद्नाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्वणन्॥
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः। श्यावारुणाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव॥

वातज अश्मरी—जिस अश्मरी रोग में अत्यन्त पीड़ा होती है जिससे मनुष्य दाँत कटकटाता है, काँपता है, शिश्न को मर्दन करता है तथा निरन्तर नाभि को पीड़ित करता रहता है और काँखता है उसको वायु सहित मल निकलता है, बार-बार बूँद २ मूत्र त्याग करता है तथा जो अश्मरी श्याव अथवा अरुण वर्ण की तथा कण्टकदार होती है उसे वात के कोप से (वातज) अश्मरी जाननी चाहिये॥ ७॥

पित्तजामाह—

पित्तेन दह्यते बस्तिः पच्यमान इवोष्मवान्। भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीताऽसिताऽश्मरी॥

पित्तज अश्मरी—जिस अश्मरी में बस्ति में दाह होती है और आग पकने के समान पीड़ा होती है तथा ऊष्मा होती है और अश्मरी भिलावे की गुठली के समान (आकार की होती है, तथा रक्त या पीत वर्ण की होती है उसे पित्त के कोप से (पित्तज) अश्मरी कहते हैं॥ ८॥

श्लेष्मजामाह—

बस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः। अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाऽथवा सिता॥

कफज अश्मरी—जिस अश्मरी में बस्ति में सूई चुभाने के समान पीड़ा, शीतलता और गुरुता होती है और अश्मरी बड़ी चिकनी, मधु के वर्ण की अथवा श्वेत वर्ण की होती है उसे कफ के कोप से (कफज) अश्मरी कहते हैं॥ ९॥

एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा। आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखाः॥१०॥

ये तीनों प्रकार की (वातज, पित्तज, कफज) अश्मरियाँ प्रायः करके बालकों को होती हैं (कदाचित् बड़ों को भी हो जाती हैं)। इनके रहने के आश्रय (बस्ति) और संचय (पथरी की स्थूलता) दोनों ही अल्प होते हैं इसलिये उसके पकड़ने (बस्ति यन्त्र से) और निकालने में सुख से पीटकर सुगमता होती है॥ १०॥

शुक्राश्मरीमाह—शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात्।
स्थानाच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः। शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी॥११॥

शुक्राश्मरी—शुक्राश्मरी पूर्ण वयस्क मनुष्य को ही (जो मैथुन के योग्य होते हैं) शुक्र के धारण करने से होती है। मैथुन द्वारा स्थान से च्युत हुए जिस वीर्य को जो हठपूर्वक या भयादि से रोक लेते हैं (गिरने नहीं देते) उस वीर्य को कुपित वायु शिश्न में रहती है वह लेकर अण्डकोष और बस्ति के मध्य में सुखा देती है। उसको 'शुक्राश्मरी' कहते हैं अर्थात् इसी कारण से शुक्राश्मरी होती है॥ ११॥

लक्षणमाह—

बस्तिरुङ्मूत्रकृच्छ्रत्वमुष्कश्वयथुकारिणी। तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेति विलीयते॥ १२॥

जिस अश्मरी में बस्तिस्थान में पीड़ा मूत्रकृच्छ्र और मुष्कदेश (अण्डकोष) में शोथ होता है और उसमें (पथरी के) उत्पन्न होते ही यदि किसी प्रकार से विलीन हो जावे तब शुक्र निकलता है उसे 'शुक्राश्मरी' कहते हैं॥ १२॥

शर्करालक्षणमाह—

पीडिते त्ववकाशेऽस्मिन्नश्मर्येव तु शर्करा। अणुशो वायुना भिन्ना सा त्वस्मिन्ननुलोमगे॥
निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते। मूत्रस्रोतःस्थिता सा तु सज्य कुर्यादुपद्रवान्॥१३॥

शर्करा के लक्षण—अश्मरी को पीड़ित करने से (फिर भी कहनी है) अश्मरी वेग से वही अश्मरी शर्करा हो जाती है। वह वायु से भिन्न होकर टुकड़े-टुकड़े होकर शर्करा में बालू के समान वायु के अनुलोम होने से मूत्र के साथ बाहर निकलती है और प्रतिलोम होने से रुक जाती है। वह अश्मरी का कण मूत्रमार्ग में रुक कर जाने से उपद्रव करती है अर्थात् ये शर्करा के लक्षण हैं॥

उपद्रवानाह—

दौर्बल्यं सदनं कार्श्यं कुक्षिशूलमथारुचिः। पाण्डुत्वमुष्णवातश्च तृष्णा हृत्पीडनं वमिः ॥१५॥

अश्मरी के उपद्रव—दुर्बलता, अङ्ग की ग्लानि, कृशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डु, उष्णवात, तृषा, हृदय में पीड़ा, वमन ये सब अश्मरी के उपद्रव हैं ॥ १५ ॥

तस्या असाध्यत्वमाह—

प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्रं रुजार्दितम्। अश्मरी क्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता ॥ १६ ॥

अश्मरी के असाध्य लक्षण—जिस अश्मरी के रोगी का नाभिस्थान और अण्डकोष शोथ युक्त और मूत्र का अवरोध हो जाय, पीड़ा से पीड़ित हो और सिकता (शर्करा) से युक्त हो उसको अश्मरी शीघ्र मार डालती है अर्थात् अश्मरी में ये असाध्य लक्षण हैं ॥ १६ ॥

अप्सु स्वच्छास्वपि तथा तिक्तिकासु घटेऽथ वा। कालान्तरेण पङ्कः स्यादश्मरीह भवेत्तथा ॥

स्वच्छजल अथवा पानी से भरे घड़े में इस अश्मरी को डालदेने से कुछ समय के पश्चात् वह पङ्क के समान हो जावेगी ॥ १७ ॥

## अथ अश्मरीचिकित्सा।

आदौ शूलं कुक्षिदेशे कटौ स्यात् पश्चाद्रोधो जायते मूत्रमुष्णम्।
एतैर्लिङ्गैरश्मरीरोगचिह्नं ज्ञात्वा कुर्याद्भेषजाद्यैश्चिकित्साम् ॥ १ ॥

अश्मरी चिकित्सा—रोग के प्रारम्भिक अवस्था में यदि कुक्षि देश तथा कटि भाग में शूल हो पश्चात् मूत्र अवरुद्ध (दमन) हो जाय और मूत्र उष्ण होवे तो ये लक्षण अश्मरी रोग के हैं ऐसा जान कर वैद्य चिकित्सा करे ॥ १ ॥

वाताश्मरी—वाताश्मरीपूर्वरूपे स्नेहपानं प्रशस्यते ॥ १ ॥

वाताश्मरी चिकित्सा—वाताश्मरी के पूर्वरूप में ही (जब पूर्वरूप ज्ञात हो तभी) स्नेहपान कराना चाहिये ॥ १ ॥

शुण्ठ्यादि क्वाथ—

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणभित्शिग्रुवरुणगोक्षुरैः। अभयारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ॥ १ ॥
रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः।
वाताश्मरीं हन्ति कृच्छ्रं मान्द्यमग्नेश्च सन्रुजः। कट्यूरुगुदमेढ्रस्थं वङ्क्षणस्थं च मारुतम् ॥ २ ॥

शुण्ठ्यादि क्वाथ—सोंठ, अरनी, पाषाणभेद, सहिजन की छाल, वरुण की छाल, गोखरू हर्रे और अमलतास के फल का गूदा इनको समान भाग लेकर क्वाथ बना उसमें शुद्ध हींग, यवाक्षार और सेंधा नमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से वाताश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, मन्दाग्नि से होने वाली अन्य प्रकार की पीड़ायें और कटि, ऊरु, गुदा, शिश्न तथा वङ्क्षण में स्थित वात इन सबों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

वरुणक्वाथ—वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम्।
क्वाथयित्वा पिबेत्तस्य यवक्षारगुडान्वितम्। पीत्वा वाताश्मरीं हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥

वरुणादि क्वाथ—वरुणा की उत्तम छाल, सोंठ और गोखरू सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें यवाक्षार और पुराने गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से पुरानी वाताश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

वीरतर्वादि—

वीरतर्वादिकः क्वाथः पूर्वोक्तो वातजाश्मरीम्। सद्यो हन्ति यवक्षारगुडयुक्तो न संशयः ॥१॥

वीरतर्वादि क्वाथ—पूर्व कथित वीरतर्वादि गण (गांडर दूब, वन्दा (बांदी) दोनों सहचर कहीं २ तीना सहचर का पाठ है, कुश की जड़, कास की जड़, नरकट की जड़, पटेर की जड़, अगस्त की छाल, अरनियार, मूर्वा, पाषाणभेद अरलू, गोखरू चिचिड़ा, पद्म और माही) की औषधियों को समान लेकर क्वाथ कर उसमें यवाक्षार और पुराना गुड़ का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र तथा निश्चित ही वाताश्मरी को नष्ट करता है ॥ १ ॥

क्षारान्यवागूं पेयाश्च कषायाणि पयांसि च। भोजनार्थे प्रयोज्यानि वाताश्मरिशुपां नृणाम् ॥

वाताश्मरी में पथ्य—सब प्रकार के क्षार (यवाक्षारादि), यवागू, पेया, कषाय तथा क्षीरपाक ये सब भोजन के लिये वाताश्मरी के रोगी को देना चाहिये ॥ २ ॥

पित्ताश्मरी—

पीत्वा पाषाणभित्क्वाथं सशिलाजतुशर्करम् । पित्ताश्मरीं निहन्त्याशु वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ १ ॥

पित्ताश्मरी चिकित्सा—पाषाण भेद के क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पित्ताश्मरी को शीघ्र इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार बिजली वृक्ष को नष्ट करती है ॥ १ ॥

कफाश्मरी—

क्वाथो निपीतः सक्षारः शिग्रुवरुणकत्वचोः । कफजामश्मरीं हन्ति वज्राशनिरिव द्रुमम् ॥ १ ॥

कफाश्मरी चिकित्सा—सहिजन और वरुण की छाल को समान लेकर क्वाथ कर उसमें यवाक्षार का प्रक्षेप देकर पान करने से कफाश्मरी को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार बिजली वृक्ष को नष्ट करती है ॥ १ ॥

शुक्राश्मरी—

शुक्राश्मर्यां तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः ॥ १ ॥

शुक्राश्मरी चिकित्सा—शुक्राश्मरी रोग में अश्मरी का नष्ट करना ही सामान्य विधि है अर्थात् अश्मरी नाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

कूष्माण्डरस—

यवक्षारगुडोन्मिश्रं पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् । रसं मूत्रविबन्धघ्नं शुक्राश्मरिविनाशनम् ॥ १ ॥

कूष्माण्ड रस—श्वेत कूष्माण्ड ( पेठा ) के रस में यवाक्षार और पुराना गुड़ मिलाकर पान करने से मूत्र विबन्ध रोग और शुक्राश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

शतावर्यादि—

शतावरीमूलरसो गव्येन पयसा समः । पीतो निपातयत्याशु अश्मरीं चिरजामपि ॥ १ ॥

शतावर्यादि रस—शतावरि के मूल का रस समान भाग गाय के दूध में मिलाकर पान करने से पुरानी शुक्राश्मरी भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

कुटजादियोग—

पिबतः कुटजं दध्ना पथ्यमन्नं च खादतः । निपतत्यचिराद्वत्स निश्चितं मेढ्रशर्करा ॥ १ ॥

कुटजादि योग—कोरैया की छाल का चूर्ण दही के अनुपान से सेवन करने से तथा पथ्य अन्न ( अश्मरी रोग में जो पथ्य अन्न कहे गये हैं वे अन्न ) भोजन करने से शीघ्र लिङ्ग की शर्करा निश्चित ही नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

कुटजकल्क—

अपि च कुटजमूलं धेनुदध्ना सुपिष्टं पिचुमितमवलीढं पातयत्यश्मरीकाम् ॥ १ ॥

कुटज कल्क—कोरैया की जड़ को गाय के दही के साथ पीस कर कल्क बना कर एक पिचु ( एक कर्ष ) प्रमाण की मात्रा से चाटने से अश्मरी गिर जाती है ॥ १ ॥

एरण्डादिकल्कः—

गन्धर्वहस्तबृहतीव्याघ्रीगोक्षुरकेक्षुरात् । मूलकल्कं पिबेद्दध्ना मधुरेणाश्मभेदनः ॥ १ ॥

एरण्डादि कल्क—एरण्ड, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, तालमखाना लेकर कल्क बना कर मधु या दही के अनुपान से सेवन करने से अश्मरी रोग नष्ट होती है ॥ १ ॥

पाषाणभेदादि क्वाथ—

पाषाणभिद्वसुकगोक्षुरकोरुबूकगुन्द्राक्षुरेक्षुरसमूलकृतः कषायः ।

दध्ना युतो जयति मूत्रविघातकृच्छ्रशुक्राश्मरीरिति च दारुणया सहैताम् ॥ १ ॥

पाषाणभेदादि क्वाथ—पाषाणभेद, वसुका, गोखरू, एरण्ड, छोटी कटेरी और तालमखाना इनके मूल भाग को समान लेकर क्वाथ कर उसमें दही का प्रक्षेप देकर पान करने से मूत्र विघात, कृच्छ्र शुक्राश्मरी और दारुण रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

एलादि—एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।

शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ १ ॥

एलादि क्वाथ—छोटी इलायची, पीपरि, मुलहठी, पाषाण, भेद, रेणुका, गोखरू, अडूसा,

एरण्डमूल समभाग लेकर क्वाथ बनाकर उसमें शुद्ध शिलाजीत तथा शर्करा का प्रक्षेप देकर अश्मरी और मूत्र कृच्छ्र में पान करने को देना चाहिये ॥ १ ॥

शिग्रुमूलादि—क्वाथः शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिपातनः।
क्षीरान्नभुग्वर्हिशिखामूलं वा तण्डुलाम्बुना ॥ १ ॥

शिग्रु मूलादि क्वाथ—सहिजना के जड़ का क्वाथ बनाकर कुछ उष्ण रहते २ पान करने से अश्मरी गिर जाती है अथवा मयूरशिखा के मूल को चावल के धोवन के साथ पीसकर पान करने तथा केवल दूध और अन्न भोजन करने से अश्मरी नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

शिलाजत्वादि—

अश्मर्यां चाश्मरीकृच्छ्रे शिलाजतु समाक्षिकम्। यवक्षारं गोक्षुरं च खादेद्वा चाश्मरीहरम् ॥१॥

शिलाजत्वादि योग—शुद्ध शिलाजीत को मधु के अनुपान से सेवन करने से अश्मरी में तथा अश्मरी सहित मूत्रकृच्छ्र में लाभ होता है अथवा यवाक्षार और गोखरू इनके चूर्ण को भक्षण करने से अश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥

त्रपुसीबीजादि—त्रपुसीबीजं पयसा पीत्वा वा नारिकेलज कुसुमम्।
स्वमूत्रशर्करायान् भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ १ ॥

त्रपुसी बीजादि योग—ककड़ी के बीजों को अथवा नारियल के फूलों को दूध में पीसकर पान करने से कुछ ही दिनों में मूत्राघात और शर्करा का रोगी सुखी हो जाता है ॥ १ ॥

रा[illegible]गोपालकर्कट्यादि—

गोपालकर्कटीमूलं पिष्टं पर्युषिताम्भसा। पीयमानं त्रिरात्रेण पातयत्यश्मरीं हठात् ॥ १ ॥

गोपाल कर्कट्यादि योग—गोपाल ककड़ी (गोपाल कांकड़ी) की जड़ को पर्युषित जल (बासी पानी) के साथ पीस कर पान करने से तीन रात में ही अश्मरी को बलपूर्वक नष्ट करता है ॥ १ ॥

वृन्दात् शृङ्गवेरादियोग—

शृङ्गवेरयवक्षारपथ्याकालीयकान्वितम्। आजं दधि भिनत्युग्रामश्मरीमाशु पातयेत् ॥ १ ॥

शृंगवेरादि योग—सोंठ, यवाक्षार, हर्रा और काली अगर समभाग लेकर चूर्णकर बकरी के दही के अनुपान से सेवन करने से बढ़ी हुई कठिन अश्मरी को भी शीघ्र भेदन कर गिरा देता है ॥

अर्कपुष्पीकल्क—गव्येन पिष्टा पयसाऽर्कपुष्पी निपीयमानाऽनुदिनं प्रभाते।
विदार्य वीर्येणानिजेन शीघ्रामप्यश्मरीं या कुरुते सदाहाम् ॥ १ ॥

अर्कपुष्पी कल्क—अर्कपुष्पी (श्वेत पुष्प का कुरकुर) को गाय के दूध के साथ पीसकर प्रतिदिन प्रातः काल पान करने से यह योग अपने प्रभाव से शीघ्र-दाहयुक्त अश्मरी को भी तोड़कर निकाल देता है ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादिचूर्णम्—

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम्। अविक्षीरेण सप्ताहं पिबेदश्मरिभेदनम् ॥ १ ॥

त्रिकण्टकादि चूर्ण—गोखरू के बीजों का चूर्ण मधु के अनुपान से चाटकर पश्चात् भेड़ी का दूध पान करने से एक सप्ताह में अश्मरी का भेदन कर गिरा देता है ॥ १ ॥

हरिद्रादियोग—

यः पिबेद्रजनीं सम्यक्सगुडां तुषवारिणा। तस्याऽऽशु चिररूढाऽपि पातयेत्तं मेढ्रशर्करा ॥१॥

हरिद्रादि योग—जो मनुष्य हल्दी के चूर्ण और पुराने गुड़ को भलीभाँति मिलाकर कांजी के साथ पान करता है उसकी अत्यन्त पुरानी मेढ्र शर्करा भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

तिलादिक्षारयोग—

तिलापामार्गकदलीपलाशयवसम्भवः। क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ॥ १ ॥

तिलादिक्षार योग—तिल, चिचिड़ा, कदली (केला) पलाश और यव इनके क्षार को भेड़ी मूत्र के साथ पान करने से शर्करा तथा अश्मरी में लाभ होता है। (ग्रन्थान्तर में भेड़ी के दूध के साथ पान करने का विधान है) ॥ १ ॥

तिलक्षार—क्षारो निपीतस्तिलनालजातः समाक्षिकः क्षीरयुतस्त्रिरात्रम्।
हन्त्यश्मरीं सिन्धुविमिश्रितं वा निपीयमानं रुचकं प्रयत्नात्॥ १॥

तिलक्षार योग—तिलनाल के क्षार को मधु और दूध के साथ तीन रात (तीन दिन) पान करने से अश्मरी नष्ट होती है अथवा सेंधानमक मिलाकर रुचक नमक को यत्नपूर्वक पान करने से भी अश्मरी नष्ट होती है॥ १॥

वरुणादिघृतम्—

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ १॥
वारुणी कदली बिल्वं तृणजं पञ्चमूलकम्। अमृता चाश्मभेदश्च बीजं च त्रपुसस्य च॥ २॥
शतपर्वा तिलक्षारः पलाशक्षार एव च। यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत्॥ ३॥
अस्य मात्रां पिबेज्जन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया।
जीर्णे चानुपिबेत्पूर्वमजीर्णे न तु मस्तुना। अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत्॥ ४॥

वरुणादि घृत—वरुणा की छाल सौ पल लेकर काढ़कूट कर एक द्रोण (४ आढ़क) जल में पाक करे, चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ तथा मारुणि की जड़, केला की जड़, बेल की छाल, तृणपञ्चमूल की पाँचों ओषधियाँ, गुर्चि, शुद्ध शिलाजीत, ककड़ी के बीज, बाँस की जड़, तिल का क्षार और पलाश का क्षार जूही की जड़, इन एक एक कर्ष लेकर कल्क कर मिलाकर सिद्ध करे, उस घृत को देशकाल, वय, बल आदि का विचार कर मात्रा से यदि भोजन पच चुका हो तो दही के पानी से पिलावे और अजीर्ण हो तो दही का पानी नहीं पिलावे। इसके सेवन से अश्मरी, शर्करा और मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं॥ १-४॥

पाषाणभेदपाक—

अश्मभेदाभयस्यैकं चूर्णितं पलमाहितम्। गव्ये दुग्धाढके क्षिप्त्वा पाचयेन्मृदुवह्निना॥ १॥
दर्व्या सम्मर्दयेत्तावद्यावद्घनतरं भवेत्। एला त्वक्पत्रमगधा यष्टीमधुघृताभया॥ २॥
कौन्ती श्वदंष्ट्रा चूर्णकं तालमूली पुनर्नवा। पाषाणभेदो त्रिकटू च मांसी सत्ताह्वापत्त्रकम्॥ ३॥
वङ्गं लोहं तथाभ्रं च कर्पूरं पर्पटं शटी। पञ्चमेतानि त्वक्च संयुक्तं च शिलाजतु॥ ४॥
पृथगर्धपलं चूर्णं चूर्णिता गिरिकर्णिका। मार्धप्रस्थमिता मात्रा दुग्धे वै सम्पक्ता भवेत्॥ ५॥
सर्वं तत्रैव विक्षिप्य स्याद्धृतीतस्ततो नयेत्। मधुनः प्रस्थकं दद्यात्सिमग्धभाण्डे विनिक्षिपेत्॥ ६॥
कर्षार्धं भक्षयेत्प्रातस्तीक्ष्णं तैलादिकं त्यजेत्। पञ्चाश्मरीभेदनः स्यान्मूत्रकृच्छ्रं तथैव च॥ ७॥
मूत्राघातान्प्रमेहांश्च नाशयेन्मधुमेहकान्। अधोगं रक्तपित्तं च पलितं कुष्ठमेव च तथा॥ ८॥
सीमाश्मरीपरीतानां विशेषेण हितं हि तत्। प्रथमान्निरिताश्विनिभ्यां प्रवदाय निवेदितम्॥ ९॥

पाषाणभेदपाक—पाषाणभेद को कूट-पूर्ण कर कपड़े में छानकर एक प्रस्थ लेवे और एक आढ़क (४ प्रस्थ) गाय के दूध में मिलाकर मन्द २ अग्नि पर पाक करे और तब तक चलाता रहे जब तक की वह गाढ़ा न हो जावे। गाढ़ा होने पर (खोवा हो जाने पर) उसमें छोटी इलायची के बीज, दालचीनी, तेजपात, पीपरि, मुलेठी, गुर्चि, हर्रे, शुद्ध गोखरू, भरसा, तालमूली, पुनर्नवा, जवाखार, शिम्बी (संभवतः इन्द्रायण अर्थ करना उचित है।) पाषाणभेद, त्रिकुटा, जटामांसी, सिन्दूर, दालचीनी, तेजपात, इन ओषधियों के चूर्ण को एक २ पल लेवे और वंगभस्म, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, शुद्धकपूर, पित्तपापड़ा, कचूर, तेजपात मालकांगनी, कायफल और शुद्ध शिलाजीत के चूर्ण को प्रत्येक आधा २ पल लेकर तथा गोखरू सर्वांगा आधा प्रस्थ लेकर कर्षप्रमाण दूध पाक (अर्थात् चार सेर में) मिलाकर मन्द २ कर उतार लेवे और स्वांग शीतल होने पर उसमें एक प्रस्थ मधु मिलाकर इस सिद्ध पाषाणभेद पाक को स्निग्ध पात्र में रख लेवे। इसको आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से नित्य प्रति खावे और तीक्ष्ण पदार्थ तथा तैल आदि का सेवन त्याग देवे तो पाँचों प्रकार की अश्मरी नष्ट होती हैं। यह मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, प्रमेह, मधुमेह, अधोगामी रक्तपित्त पलित तथा कुष्ठ के रोग को भी नष्ट करता है तथा सीम अश्मरी से युक्त रोगियों के लिए विशेष हितकर है। इस योग को प्रथम अश्विनी कुमारों ने प्रकट करके निवेदित किया था (बताया था)॥ १-९॥

## अथ रसाः।

सप्ताऽऽरी पाषाणवज्ररस —

शुद्धसूतं त्रिधा गन्धं यामैकं श्वेतपुनर्नवैः। मर्दयित्वा दिनं खल्वे दत्त्वा तद्भूधरे पचेत् ॥१॥
पाषाणभेदचूर्णं तु समयुक्तं द्विमाषकम्। भक्षयेदश्मरीं हन्ति रसः पाषाणवज्रकः ॥ २ ॥
गोपालकर्कटीमूलक्वाथं तदनु पाययेत् ॥ ३ ॥

पाषाणवज्रक रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध गन्धक तीन भाग लेकर दोनों की कज्जली कर श्वेत पुनर्नवा के रस के साथ दिन भर मर्दन कर 'भूधर यन्त्र' में रख कर पकावे। शीतल होने पर इसके सम भाग पाषाणभेद का चूर्ण मिलाकर दो माशा के प्रमाण की मात्रा में सेवन करने से यह 'पाषाणवज्रक रस' अश्मरी रोग को नष्ट करता है। इसके साथ अनुपान में गोपाल ककड़ी के मूल का क्वाथ देना चाहिये ॥ १-३ ॥

त्रिविक्रमरस —

ताम्रभस्म त्वजाक्षीरे पाच्यं तुल्ये घृते पचेत्। तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम् ॥१॥
निर्गुण्ड्युत्थद्रवैर्मर्द्यं दिनं तद्गोलमाहरेत्। यामैकं वालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥
बीजपूरस्य मूलं तु सजलं चानुपाययेत्। रसस्त्रिविक्रमो नाम्ना सिकतां चाश्मरीं जयेत् ॥३॥

त्रिविक्रम रस—ताम्रभस्म एक भाग लेकर बकरी के दूध और उसके समभाग घृत मिलाकर अग्नि पर पाक करे, परिपक्व हो जाने पर निकाल कर जितना हो उसके समान शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक पृथक् २ लेकर कज्जली बनाकर ताम्र में मिलाकर निर्गुण्डी के स्वरस के साथ दिन भर मर्दन कर गोलक (गोला) बनावे। पुनः उस गोलक को 'वालुका यन्त्र' में रख कर एक पहर तक पाक करे। स्वांगशीत होने पर निकाल कर दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से सेवन करे। बिजौरे नीबू के मूल को जल के साथ पीसकर अनुपान देवे तो इस 'त्रिविक्रम' नामक रस से सिकता और अश्मरी रोग नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

## अथ पथ्यम्।

कुलित्था मुद्गगोधूमा जीर्णशालियवा हिता।
धन्वामिषं तण्डुलीयं जीर्णकूष्माण्डकं फलम्। आर्द्रकं यावशूकश्च पथ्यमश्मरिरोगिणाम् ॥१॥

पथ्य—कुलथी, मूंग, गेहूं, पुराने शालिधान के चावल, यव, धन्वदेशीय जीवों का मांस, चौराई के साग पुराने श्वेत कूष्माण्ड (पेठा) के फल, अदरख, यवाक्षार ये सब अश्मरी के रोगियों के हितकर पथ्य हैं ॥ १ ॥

इति अश्मरीप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथातो मेहनिदानम्।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ १ ॥

प्रमेह निदान—अत्यन्त सुखपूर्वक अधिक बैठे रहने से, सोये रहने (परिश्रम रहित होने से), अधिक दही खाने से, ग्राम्य जीवों (बकरी आदि), जल जीवों (मत्स्यादि), और आनूप जीवों (जल के निकट रहने वाले चक्रवाकादि) के मांस अधिक भक्षण करने से दूध अधिक पीने से, नये अन्न, जल और गुड़ विकार (शर्करा मिठाई आदि) तथा सब प्रकार के कफकारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से प्रमेहरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—मूत्राघाताः प्रमेहाश्च शुक्रदोषास्तथैव च।
मूत्रदोषाश्च ये चाऽपि बस्तौ चैव भवन्ति हि ॥ २ ॥

मूत्राघात, प्रमेह, शुक्रदोष तथा मूत्रदोष अथवा जो २ अन्य दोष (रोग) बस्ति में होने वाले हैं वे सभी उपर्युक्त कारणों से उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् इन सब रोगों के भी ये ही कारण हैं ॥२॥

सम्प्राप्तिमाह—मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतः प्रदूष्य।
करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तान्येव पित्तं परिदूष्य चापि ॥ ३ ॥

क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य बस्तौ धातून्प्रमेहान्कुरुतेऽनिलश्च ॥ ४ ॥

प्रमेह की सम्प्राप्ति—बस्ति स्थान में स्थित कुपित कफ मेद, मांस तथा शारीरिक क्लेद ( द्रव भाग ) को दूषित कर कफज प्रमेह को उत्पन्न करता है और उष्णता से ( उष्णवीर्य तथा उष्ण स्पर्शादि से ) बढ़ा हुआ बस्ति में स्थित पित्त मेद-मांसादिकों को दूषितकर पित्तज प्रमेह को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कुपित वायु अन्य दोषों ( कफ-पित्त ) के क्षीण होने पर धातुओं ( वसा-मज्जादि ) को बस्ति में खींच कर प्रमेहों ( वातिक प्रमेहों ) को उत्पन्न कर देता है ॥१-४॥

क्रमेण साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड् याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः ।
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्च यथाक्रमं ते ॥ ५ ॥

साध्यासाध्यता—प्रमेह २० प्रकार का होता है, जिसमें दस प्रकार के प्रमेह होते हैं वे कफज ( कफदोषजन्य ) समक्रिय होने से साध्य हैं क्योंकि इसके दोष ( कफ ) और दूष्य ( मेदादि धातु ) दोनों एक ही क्रिया ( कटु-तिक्तादि क्रिया कषायादि )-से शमन हो जाते हैं इसलिये कफज दस सुखसाध्य हैं। पित्तज प्रमेह छः प्रकार के होते हैं वे ( पित्त के दोषक ) विषम क्रिया होने से याप्य हैं क्योंकि इसके दोष ( पित्त ) और दूष्य ( मेदादिधातु ) दोनों की क्रिया विषम है ( जिस क्रिया से पित्त शमन होता है उससे मेदादि में वृद्धि होती है ) अर्थात् एक से दूसरे में समता नहीं होती है इसलिये पित्तज कष्टसाध्य है। वातज प्रमेह चार प्रकार के होते हैं वे ( वात के दोष से होते हैं ) महात्ययकारी ( विनाशकारी ) होने से असाध्य हैं क्योंकि वायु मज्जादि गम्भीर धातुओं का अपकर्षण करने वाला व्याप्त एवं शीघ्रकारी होने के कारण विनाश कर देता है इसलिये चार प्रकार का वातज असाध्य है ॥ ५ ॥

तन्त्रान्तरे—

ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता । रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् ॥ ६ ॥

ज्वर रोग में दोष और ऋतु दोनों समान हों, प्रमेह रोग में दोष तथा दूष्य दोनों समान हों और रक्तज गुल्म में पुरानापन ( बहुत दिन का पुराना ) हो तो ये सुख साध्य के लक्षण हैं। ६॥

तन्त्रान्तरे वातजप्रमेहस्य साध्यत्वमुक्तम्—

या वातमेहान्प्रति पूर्वमुक्ता वातोल्बणानां विहिता क्रिया सा ।
वायुर्हि मेहेष्वतिकर्शितेषु करोति मेहान्प्रति नास्ति चिन्ता ॥ ७ ॥

जो क्रिया वात प्रमेहों के लिये पहले कही गयी है वही क्रिया वातोल्बण प्रमेहों के लिये करनी चाहिये। वायु देह को अति कर्शित ( क्षीण ) करके प्रमेह करती है अतः मेह के प्रति ( वातोल्बण प्रमेह की ) चिन्ता नहीं करनी चाहिये ॥ ७ ॥

प्रमेहे दोषदूष्यवर्णनम्—

कफः सपित्तः पवनश्च दोषा मेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः ।
मज्जा रसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ८ ॥

प्रमेह दोष दूष्य वर्णन—प्रमेह रोग में कफ-पित्त और वायु ये दोष कहे जाते हैं और मेद, रक्त, शुक्र, जल ( शरीरज क्लेद स्वेदादि ) वसा लसीका, मज्जा रस, ओज तथा मांस ये सब दूष्य कहे जाते हैं। इन्हीं से बीस प्रकार के एक साथ से संख्या निर्दिष्ट किया है कि मेह २० ही होते हैं। अधिक नहीं होते ॥ ८ ॥

तन्त्रान्तरे दूष्यसंग्रह उक्तः—

वसा मांसं शरीरस्य क्लेदः शुक्रं च शोणितम् । मेदो मज्जाऽथ लसीकौजः प्रमेहे दूष्यसंग्रहः ॥

वसा, मांस, शरीर का क्लेद ( स्वेदादि ), शुक्र ( वीर्य ) रक्त, मेद, मज्जा, लसीका, ओज ये सब प्रमेह रोग में दूष्य माने गये हैं ॥ ९ ॥

पूर्वरूपमाह—

दन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः । दाहश्चिक्कणता देहे तृट् स्वाद्वास्यं च जायते ॥

प्रमेह के पूर्वरूप—जब प्रमेह रोग होने को होता है तब उसके पहले दांत आदि ( दांत-नेत्र नाक, कान, बाल और जिह्वा ) में मल का अधिक होना, हाथ-पैर में दाह, शरीर में चिकनाहट

(चिकनाई), तृषा और मुखका मधुर होना और चकार (च) ग्रहण से केशों का जटिल होना, नख का अधिक बढ़ना ये सब होते हैं ॥ १० ॥

सामान्यलक्षणमाह—सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।

प्रमेह के सामान्य लक्षण—सब प्रकार के प्रमेहों के सामान्य लक्षण यही है कि मूत्र अधिक तथा मलिन (विकृत) होता है ॥

कारणभेदात्कार्यभेदमाह—दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ११ ॥
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते । तस्मात्प्रमेहं परीक्ष्याऽऽदौ क्रिया कार्या भिषग्वरैः ॥१२॥

प्रमेह के भेद—दोष और दूष्य में विभिन्नता नहीं होने पर भी उनके संयोग विशेष से और मूत्र के वर्णादि भेद से प्रमेहों में भेद की कल्पना की जाती है अर्थात् भेद हो जाता है इसलिये श्रेष्ठ वैद्य को पहले भली भाँति भेद की परीक्षा करके तब क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिये ॥

उदकमेहस्तथा चेक्षुः सान्द्रमेहः सुराभिधः । पिष्टप्रमेह शुक्राख्यः सिकता शीतकः शनैः ॥
लालामेहस्तथा क्षारो नीलमेहोऽथ कालकः । हारिद्रमेहमाञ्जिष्ठौ रक्तमेहस्तथाऽपरः ॥ १४ ॥
पोसमोऽथ वसामेहो मज्जामेहश्च कीर्तितः । क्षौद्रमेहस्तथा हस्ती मेहानां विंशतिः क्रमात् ॥

प्रमेहों के नाम—उदक मेह (उदकमेह), इक्षुमेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, सिकतामेह, शीतमेह, शनैर्मेह, लाला मेह, क्षार मेह, नील मेह, काल मेह, हारिद्रमेह, मञ्जिष्ठ मेह, और रक्त मेह, ये सोलह और वसामेह, मज्जा मेह, क्षौद्र मेह तथा हस्ति मेह, ये मिलकर क्रम से २० प्रकार के प्रमेह कहे गये हैं। (इनमें पूर्व क्रम से उदकादि दस कफज, क्षारादि छै पित्तज और वसादि चार वातज मेह जानना चाहिये) ॥ ११-१५ ॥

उदकमेहादयो दश कफजा, तत्रोदकमेहमाह—

अच्छं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् । मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥१६॥

उदक मेह के लक्षण—जिस प्रमेह में स्वच्छ, मात्रा में अधिक, श्वेत वर्ण का, शीतल, गन्ध रहित, जल के समान मूत्र होवे उसे 'उदक मेह' जानना चाहिये ॥ १६ ॥

इक्षुमेहमाह—इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ।

इक्षुमेह के लक्षण—जिस मेह में किञ्चित् आविल (मलिन), पिच्छिल (चिकना) और ईख के रस के समान अत्यन्त मधुर मूत्र होता है उसे 'इक्षुमेह' कहते हैं ॥

सान्द्रमेहमाह—सान्द्रीभवत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥ १७ ॥

सान्द्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र पर्युषित होने पर (एक दिन रात रख देने) पर घन (गाढा) हो जावे उसे 'सान्द्रमेह' कहते हैं ॥ १७ ॥

सुरामेहमाह—सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ।

सुरामेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र सुरा के समान ऊपर स्वच्छ और नीचे घन (गाढा) होता है (नीचे मूत्र थम जाता है) उसे 'सुरामेह' कहते हैं।

पिष्टमेहमाह—संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥ १८ ॥

पिष्टमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र होते समय रोमाञ्च हो जावे और पिसे हुए आटे के समान मात्रा में अधिक तथा श्वेत मूत्र होवे उसे 'पिष्ट मेह' कहते हैं ॥ १८ ॥

शुक्रमेहमाह—शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ।

शुक्र मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शुक्र (वीर्य) के समान वर्ण वाला अथवा शुक्र मिला हुआ होता है उसे 'शुक्र मेह' कहते हैं।

सिकतामेहमाह—मूत्राणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥ १९ ॥

सिकता मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र में मल के अणु (कण) सिकता (बालू) के रूप में निकलते हैं उसे 'सिकता मेह' कहते हैं ॥ १९ ॥

शीतमेहमाह—शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ।

शीतमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र अधिक मात्रा में, मधुर तथा अत्यन्त शीतल होता है उसे 'शीतमेह' कहते हैं।

शनैर्मेहमाह—शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥ २० ॥

शनैर्मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र शनैः शनैः (मन्द मन्द) से होता है उसे 'शनैर्मेह' कहते हैं ॥ २० ॥

लालामेहमाह—लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १ ॥

लाला मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र लाला तन्तु (लार के धागों की तरह) अर्थात् पिच्छिल मूत्र की भाँति होता है उसे 'लालामेह' कहते हैं ॥ १ ॥

पित्तजानाह, तत्र क्षारमेहमाह—

गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ॥ २१ ॥

क्षारमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र का गन्ध, वर्ण, रस और स्पर्श ये सब क्षार के जल के समान हों अर्थात् क्षार के सदृश मूत्र हो उसे 'क्षारमेह' कहते हैं ॥ २१ ॥

नीलकालमेहावाह—नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मषीनिभम् ।

नीलमेह तथा काल मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र नील के वर्ण का आता है उसे 'नीलमेह' तथा जिसमें मूत्र मषी (काली स्याही) के समान आता है उसे 'कालमेह' कहते हैं ।

हारिद्रमेहमाह—हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं दहत् ॥ २२ ॥

हारिद्र मेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र का स्वाद कटु और रंग हल्दी के समान जलन होती है उसे हारिद्र मेह कहते हैं ॥ २२ ॥

माञ्जिष्ठमेहमाह—विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् ।

माञ्जिष्ठ के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त तथा मजीठ के जल के समान मूत्र होता है उसे 'माञ्जिष्ठ मेह' कहते हैं ।

रक्तमेहमाह—विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ॥ २३ ॥

रक्तमेह के लक्षण—जिस मेह में दुर्गन्ध युक्त, उष्ण, लवण रसयुक्त तथा रक्त के वर्ण का मूत्र होता है उसे 'रक्तमेह' कहते हैं ॥ २३ ॥

एवं षड् पैत्तिका—चतुरो वातजानाह । तत्रादौ वसामेहमाह—

वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ।

वसामेह के लक्षण—जिस मेह में वसायुक्त तथा वसा धातु की भाँति (वसा के समान) बार-बार मूत्र होता है उसे 'वसामेह' कहते हैं ।

मज्जामेहमाह—मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥

मज्जामेह के लक्षण—जिस मेह में मज्जा के समान तथा मज्जा मिला हुआ बार २ मूत्र होता है उसे 'मज्जामेह' कहते हैं ॥ २४ ॥

क्षौद्रमेहमाह—कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहेन मेहति ।

क्षौद्रमेह के लक्षण—जिस मेह में मूत्र कषाय, मधुर, और रूक्ष होता है उसे 'क्षौद्र मेह' कहते हैं । (किसी २ के मत से क्षौद्र मेह मधु के सदृश होता है) ।

हस्तिमेहमाह—

हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् । सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ २५ ॥

हस्तिमेह के लक्षण—जिस प्रमेह में मत्त हाथी के मूत्र की भाँति निरन्तर वेग रहित लसीका सहित बँधा हुआ मूत्र होता है, उसे 'हस्तिमेह' कहते हैं ॥ २५ ॥

उपद्रवानाह—

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः । उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥

कफज मेह के उपद्रव—भोजन का परिपाक नहीं होना, अरुचि, वमन, निद्रा, कास और पीनस ये कफज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २६ ॥

पित्तमेहोपद्रवानाह—बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः ।

दाहस्तृष्णाऽम्लको मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥ २७ ॥

पित्तज मेह के उपद्रव—बस्ति और लिंग में तोद, (सूई चुभाने के समान पीड़ा) होना, अण्डकोष फटने के समान, पीड़ा होना, ज्वर होना, दाह, तृषा, अम्लक, मूर्च्छा और मल भेद (पतला मल का होना) ये पित्तज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २७ ॥

वातजानामाह—

वातजानामुदावर्तः कण्ठहृद्ग्रहलोलताः। शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥२८॥

वातज प्रमेह के उपद्रव—उदावर्त कण्ठ ग्रह होना हृदय ग्रह शूल, अनिद्रा, शोष, कास और श्वास ये वातज प्रमेह के उपद्रव हैं ॥ २८ ॥

अथासाध्यतामाह—

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेव च। पिडिकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २९ ॥

असाध्य लक्षण—जिस प्रमेह में कहे हुए उपद्रव (अविपाकादि) उपस्थित हों और स्राव (और मूत्रस्राव) अधिक होता हो तथा शराविका आदि पिडिकाओं से रोगी पीडित हो प्रमेह गाढ़ (अधिक दिन से) हो वह असाध्य है ॥ २९ ॥

मूर्च्छाछर्दिज्वरश्वासकासवीसर्पगौरवैः। उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही दुष्प्रतिक्रियः ॥ ३० ॥

जिस प्रमेह में मूर्च्छा, छर्दि (वमन), ज्वर, श्वास, कास, विसर्प और गौरव ये उपद्रव उपस्थित हों वह दुष्प्रतिक्रिय अर्थात् चिकित्सा के योग्य नहीं (असाध्य) है ॥ ३० ॥

नराणां दृश्यते मेहः स्त्रीणां किं तु न दृश्यते। अन्नपानविशेषेण दोषदूष्यक्रमेण च ॥ ३१ ॥

रजः प्रवर्तते यस्मान्मासि मासि विशोधयेत्। सर्वान् धातूंश्च दोषांश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ॥

स्त्रियों के प्रमेह का अभाव—पुरुषों को प्रमेह दिखाई देता है किन्तु स्त्रियों को नहीं दिखाई देता इसमें दोष और दूष्य के क्रम से और अन्नपान की विशेषता से ऐसा होता है। क्योंकि मास-मास में स्त्रियों को रजःस्राव होता रहता है जिससे सब धातु और दोषों की शुद्धि होती रहती है इसलिये स्त्रियों को प्रमेह नहीं होता है ॥ ३१-३२ ॥

जातः प्रमेही मधुमेहिनो वा साध्यो न रोगः स हि बीजदोषात्।
ये चापि केचित्कुलजा विकारा भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥ ३३ ॥

अन्य असाध्य लक्षण—जो प्रमेह मधुमेही (मधुमेही से सामान्य मेह का बोध होता है) से उत्पन्न बालक (प्रमेह वाले की सन्तान) को होता है वह बीज दोष के कारण साध्य नहीं होता अर्थात् असाध्य है। अथवा और भी जो कुलज विकार (कुष्ठ, क्षय, अर्शादि रोग) होते हैं वे सब भी असाध्य कहे जाते हैं ॥ ३३ ॥

मधुमेहित्वं प्रत्येयमाह—

सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः। मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥३४॥

(प्रमेह की अपेक्षा से मधुमेहता)—सब प्रकार के प्रमेह (साधारण [साध्य] कफजादि मेह भी) अचिकित्स्य होने पर (चिकित्सा नहीं करने पर) और अधिक समय तक रह जाने पर (पुराने हो जाने पर) मधुमेहत्व को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् मधुमेह हो जाते हैं और मधुमेहत्व को प्राप्त होकर असाध्य हो जाते हैं ॥ ३४ ॥

तन्त्रान्तरे—

गुल्मी च मधुमेही च राजयक्ष्मी च यो नरः। अचिकित्स्या भवन्त्येते बलमांसपरिक्षयात् ॥

गुल्म के रोगी, मधुमेह के रोगी और राजयक्ष्मा के रोगी ये जब बल मांस से क्षीण हो जाते हैं तब अचिकित्स्य हो जाते हैं अर्थात् असाध्य हो जाते हैं। (किन्तु जब तक बल, मांस रहे तब तक चिकित्सा करनी चाहिये) ॥ ३५ ॥

धातुक्षयावरणाभ्यां कुपितवातेन मधुसम्भवमाह—

मधुमेहो मधुसमं जायते स किल द्विधा। क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथवा ॥ ३६ ॥

धातुक्षय और आवरणभेद से मधुमेह का द्वैविध्यलक्षण—जिस मेह में समान मूत्र होता है (वर्ण में तथा स्वाद से) उसे मधुमेह कहते हैं। वह मधुमेह दो प्रकार का होता है एक धातु के क्षय होने के कारण वायु के कुपित होने से और दूसरा पित्तादि दोष के कारण मार्ग के अवरुद्ध (आवृत) हो जाने से अर्थात् मधुमेह दो प्रकार का होता है एक धातिक और दूसरा उपेक्षित।

आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयन्। क्षीणः क्षणात्क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥

आवृत वायु (कफ-पित्तादि के कारण घिरा हुआ वायु) उनके (दोषों के) लक्षणों को

अकस्मात् प्रकट करता हुआ क्षण में ही क्षीण हो जाता है और क्षण में ही पूर्ण हो जाता है। यह ( उपेक्षित ) मधुमेह कष्ट साध्य होता है ॥ २७ ॥

मधुमेह शब्दप्रवृत्तौ निमित्तमाह—

मधुर यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति। सर्वेऽपि मधुमेहाख्या माधुर्याच्च तनोरत ॥ २८ ॥

मधुमेह शब्द की प्रवृत्ति में निमित्त—जिनके प्रमेह में प्राय मधु के समान मीठा मूत्र होता है और शरीर मधुर हो उनके सभी प्रमेह मधुमेह कहे जावेंगे ॥ २८ ॥

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशद तिक्तकटुकं तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ २९ ॥

प्रमेह निवृत्ति के लक्षण—जब प्रमेह के रोगी का मूत्र मलिन और पिच्छिल नहीं हो, स्वच्छ तिक्त और कटु तब उसे आरोग्य हुआ ( प्रमेह से रहित ) जानना चाहिये ॥ २९ ॥

प्रमेहपिडिका—प्रमेहिणां प्रजायन्ते पिटिकाः सर्वसन्धिषु।

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी। मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी च विदारिका ॥

विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया कृता। सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ २ ॥

प्रमेह पिडिका—प्रमेह के रोगियों को सब सन्धियों में पिडिकायें उत्पन्न हो जाती हैं उनके नाम कहते हैं। शराविका, कच्छपिका, जालिनी, विनता, अलजी, मसूरिका, सर्षपिका, पुत्रिणी, विदारिका और विद्रधि। ये दस प्रकार की पिडिकायें प्रमेहरोग की उपेक्षा करने से ( उचित चिकित्सा नहीं करने से ) सन्धियों के मर्म स्थान में अथवा सन्धियों और मर्मों में तथा मांसल स्थानों में उत्पन्न हो जाती हैं ॥ १-२ ॥

शराविकामाह—अन्तोन्नता च तद्रूपा निम्नमध्या शराविका।

शराविका के लक्षण—जिस पिडिका में किनारे २ उठी हुई और मध्य में नीची शराव (सकोरे) के आकार की पिडिका हो उसे 'शराविका' कहते हैं।

सर्षपिकामाह—गौरसर्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपी ॥ ३ ॥

सर्षपिका के लक्षण—जिस पिडिका का रूप श्वेत सर्सों के समान तथा उसी के प्रमाण का आकार हो उसे 'सर्षपिका' कहते हैं ॥ ३ ॥

कच्छपिकामाह—सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः।

कच्छपिका के लक्षण—जिस पिडिका का आकार कछुए के समान हो और दाह युक्त हो उसे 'कच्छपिका कहते हैं। अर्थात् कछुये के पीठ के समान चारो ओर नीची और बीच में उठी हुई शोथ युक्त होती है।

जालिनीमाह—

जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता। अवगाढरुजोत्क्लेदा पृष्ठेवाऽप्युदरेऽपि वा ॥ ४ ॥

जालिनी के लक्षण—जिस पिडिका में तीव्र दाह हो, मांस के जाल में घिरी हुई हो, अत्यन्त पीड़ा तथा क्लेद ( पूयादि ) से युक्त हो और पीठ अथवा उदर में उत्पन्न हुई हो उसे 'जालिनी' कहते हैं ॥ ४ ॥

विनतामाह—महती पिटिका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता।

विनता के लक्षण—जो पिडिका आकार में बड़ी हो और नीलवर्ण की हो उसे 'विनता' कहते हैं।

महत्यल्पचिता ज्ञेया पिटिका सा तु पुत्रिणी ॥ ५ ॥

पुत्रिणी के लक्षण—जिस पिडिका का आकार बड़ा हो और छोटी २ पिडिकाओं से युक्त हो अर्थात् एक पिडिका बड़ी हो और उसके साथ छोटी २ पिडिकायें भी हों उसे 'पुत्रिणी' कहते हैं ॥

मसूरिकामाह—मसूरदलसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका।

मसूरिका के लक्षण—जो पिडिका आकार प्रकार में मसूर की दाल के समान हो उसे 'मसूरिका' जाननी चाहिये।

अलजीमाह—रक्तासिता स्फोटवती विज्ञेया त्वलजी बुधैः ॥ ६ ॥

अलजी के लक्षण—जो पिडिका रक्तवर्ण की अथवा श्वेत वर्ण की हो और फफोलों से युक्त हो उसे 'अलजी' जाननी चाहिये ॥ ६ ॥

विदारिमाह—विदारीकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका।

विदारिका के लक्षण—जो पिडिका आकार में विदारी कन्द के समान वृत्त (गोल) तथा कठिन हो उसे 'विदारिका' कहते हैं।

विद्रधिकामाह—विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा॥ ७॥

विद्रधिका के लक्षण—जो पिडिका विद्रधि के लक्षणों से युक्त होती है उसे 'विद्रधिका' कहते हैं॥

पिडिकानामारम्भकारणमाह—

ये यन्मया स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु तन्मयाः। विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः॥८॥

पिडिकाओं के होने के कारण—जो २ प्रमेह जिस जिस (वातादि) दोष से उत्पन्न होते हैं उन २ प्रमेहों में होने वाली ये पिडिकायें भी उन दोषों से युक्त होती हैं अर्थात् कफज आदि प्रमेहों में उत्पन्न पिडिका कफ आदि से युक्त होती हैं कभी २ ये पिडिकायें बिना प्रमेह के भी दूषित मेदा वालों को हो जाती हैं॥ ८॥

तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वास्तुपरिग्रहः।

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः। सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिडिकाः परिवर्जयेत्॥ ९॥

ये पिडिकायें तब तक नहीं लक्षित होती हैं जब तक स्थान को आवृत्त नहीं करलेती हैं अर्थात् जब तक पूर्ण प्रकाशित नहीं हो जाती हैं तब तक इनका ज्ञान नहीं होता है। पिडिकाओं की असाध्यता—ये पिडिकायें यदि गुदा, हृदय, सिर, कन्धा, पीठ तथा अन्य मर्मस्थानों में उत्पन्न हुई हों, और उपद्रवों (आगे उपद्रव लिखे हैं उनसे) से युक्त हों तथा दुर्बल अग्नि वाले को हुई हों तो उसे त्याग देना चाहिये॥ ९॥

चरकेण पिडिकानामुपद्रवा उक्ताः—

तृट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामदज्वराः। विसर्पो मर्मसंरोधः पिडकानामुपद्रवाः॥ १॥

पिडिकाओं के उपद्रव—तृषा, कास, मांस संकोच, मोह, हिक्का, मद, ज्वर, विसर्प और मर्म स्थानों का संरोध, ये पिडिका के उपद्रव होते हैं॥ १॥

प्रमेहनिवृत्तिलक्षणं सुश्रुतेऽपि पठितम्—

प्रमेहिणां यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशदं कटु तिक्तं च तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते॥ १॥

प्रमेह निवृत्ति के लक्षणान्तर—जब प्रमेह के रोगी का मूत्र अनाविल (मलिनता रहित) और स्निग्धतारहित (चिकनाई रहित), स्वच्छ, कटु तथा तिक्त हो तो उसे आरोग्य अर्थात् प्रमेह निवृत्त हुआ जानना चाहिये॥ १॥

हारिद्रवर्णं रुधिरं च मूत्रं विना प्रमेहस्य तु पूर्वरूपैः।

यो मेहयेत्तं न वदेत्प्रमेहं रक्तस्य पित्तस्य स हि प्रकोपः॥ २॥

प्रमेह-रक्तपित्त का भेद—यदि प्रमेह रोग का पूर्व लक्षण (पूर्वरूप) नहीं हुआ हो और उस अवस्था में भी यदि मूत्र का वर्ण पीत अथवा रक्त आता हो तो उसे प्रमेह रोग नहीं कहते हैं। ऐसा रक्त पित्त के कोप होता है यह जानना चाहिये अर्थात् रक्तपित्त और प्रमेह में यही भेद है कि प्रमेह के मूत्र का वर्णादि पूर्वरूप के पश्चात् ही प्रमेह के लक्षणों का होता है और रक्तपित्त के कोप से पीतादि वर्ण के मूत्र बिना प्रमेह के पूर्वरूप के ही प्रमेह के समान हो जाते हैं वहाँ रक्तपित्त के प्रकोप का जानना चाहिये॥ २॥

## अथ प्रमेहचिकित्सा।

दश षट् चापि चत्वारः कफपित्तसमीरजाः।

साध्या याप्या असाध्यास्ते प्रमेहाः क्रमशो नृणाम्॥ १॥

प्रमेह चिकित्सा—कफज दस प्रमेह साध्य, पित्तज छव प्रमेह याप्य और वातज चार प्रमेह असाध्य इस क्रम से मनुष्यों को २० प्रकार के प्रमेह होते हैं॥ १॥

कफप्रमेहचिकित्सा—हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्रा पाठाविडङ्गार्जुनधन्वयासाः।

उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च॥ १॥

दार्वी विडङ्गं खदिरो धवश्च सुराह्वकुष्ठार्जुनचन्दनानि।

दार्व्यग्निमन्थौ त्रिफला सपाठा पाठा च मूर्वा च तथा श्वदंष्ट्रा॥ २॥

यवान्युशीराण्यभया गुडूची समुस्तिकाचित्रकसप्तपर्णाः ।
पादैः कषायाः कफमेहिनां ते दशोपदिष्टा मधुसम्प्रयुक्ताः ॥ ३ ॥

कफज प्रमेह चिकित्सा—१-हर्रा, कायफल, नागरमोथा और लोध २-पुरइन पाढ़ी, बायबिडंग, अर्जुन की छाल और यवासा। ३—हरदी दारुहरदी, तगर और बायबिडंग। ४—कदम्ब की छाल, शालवृक्ष की छाल, अर्जुन की छाल और अजवाइन। ५—दारुहरदी, बायबिडंग खैर और धव की छाल। ६—देवदारु, कूट, अर्जुन वृक्ष की छाल और लालचन्दन। ७—दारुहरदी, गनियार, अवरा, हर्रा, बहेड़ा और पुरइनपाढ़ी। ८—पुरइनपाढ़ी, मूर्वामूल और गोखरू। ९—अजवाइन, खस, हर्रा और गुरुचि। १०—जामुन की छाल, हर्रा चित्रकमूल और छितवन की छाल। इनमें प्रत्येक श्लोक के एक २ योग हैं। इस प्रकार ये दस योग दस प्रकार के कफज मेहों के लिये क्रमपूर्वक कहे गये हैं। इन योगों के विधिवत् बने क्वाथ को शीतल कर मधु के प्रक्षेप के साथ यथा क्रम सेवन करने से कफज दस मेह नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

जलप्रमेहेक्षुरसप्रमेहे सान्द्रप्रमेहे च सुराप्रमेहे।
पिष्टप्रमेहेऽपि च शुक्रमेहे क्रमादमी स्युः सिकताप्रमेहे।
शीतप्रमेहे च शनैः प्रमेहे लालाप्रमेहेऽपि सुखाय तेषाम् ॥ ४ ॥

उदक मेह, इक्षु मेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकता मेह, शीतमेह शनैर्मेह और लालामेह में क्रम पूर्वक हरीतक्यादि, पाठादि, हरिद्रादि, कदम्बादि, दार्व्यादि, सुराह्वादि ( देवदार्वादि ) दार्व्यादि, पाठादि, यवान्यादि और जम्ब्वादि क्वाथ का सेवन करने से लाभ होता है ॥ ४ ॥

सुश्रुतात्—तत्रोदकमेहिनाम्—पारिजातकषायं पाययेत्। इक्षुमेहिनाम्-निम्बकषायम्। सान्द्रमेहिनाम्—सप्तपर्णकषायम्। सुरामेहिनाम्—शाल्मलीकषायम्। पिष्टमेहिनाम्—द्विहरिद्राकषायम्। शुक्रमेहिनाम्-दूर्वाशैवलप्लवकरञ्जकसेरुककषायम्, ककुभचन्दनकषायं वा। सिकतामेहिनाम्—निम्बकषायम्, शीतमेहिनाम्—पाठागोक्षुरकषायम्। शनैर्मेहिनां त्रिफलागुडूचीकषायम्। लालामेहिनां त्रिफलारग्वधकषायं पाययेत् ॥ १ ॥

उदकमेह वालों को पारिजात ( हर शृङ्गार ) का विधिवत् बना क्वाथ पिलाना चाहिये। इक्षुमेह वालों को निम्बकषाय ( नीम का क्वाथ ), सान्द्रमेह वालों को सप्तपर्ण ( छितवन ) का क्वाथ, सुरामेह वालों को शाल्मली ( सेमर का ) क्वाथ, पिष्टमेह वालों को द्विहरिद्रा ( हरदी और दारु हरदी ), शुक्रमेह वालों को दूब, सेवार, केवटीमोथा, करञ्ज और कसेरू को समान लेकर क्वाथ बनाकर यह क्वाथ अथवा अर्जुन की छाल और लालचन्दन का क्वाथ, सिकतामेह वालों को नीम का क्वाथ, शीतमेह वालों को पुरइनपाढ़ी और गोखरू का क्वाथ शनैर्मेह वालों को त्रिफला और गुडूची का क्वाथ और लालामेह वालों को त्रिफला और अमलतास का क्वाथ बनाकर सेवन कराना चाहिये इन दस प्रकार के क्वाथों से दसो कफज मेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पित्तमेहचिकित्सा—

उशीरलोध्रासुरचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम्।
पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयामुष्ककवृक्षकाणाम् ॥ १ ॥
लोध्राम्बुकालीयकधातकीनां बिम्बार्जुनानां शिशिरोत्पलानाम्।
माञ्जिष्ठहारिद्रकनीलक्षाराम्लाख्यरक्ते क्रमशः कषायाः ॥ २ ॥

पित्तमेह चिकित्सा—१-खस, लोध देवदारु और लाल चन्दन। २-खस, नागरमोथा, आँवला और हर्रा। ३-परवर के डालपात, नीम की छाल, आँवला और गुरुचि। ४ नागरमोथा, हर्रा, मोथा और श्वेत कुटज की छाल। ५-लोध, सुगन्धबाला, काला चन्दन ( देवी चन्दन ), और धाय के फूल और सोंठ ६-अर्जुन की छाल, नीम और नील कमल, इन पृथक् २ छओं योगों को समान लेकर क्वाथ कर क्रम से मांजिष्ठ मेह, हारिद्रमेह, नीलमेह, क्षारमेह, अम्लमेह और रक्तमेह इन छै पित्तज मेहों में सेवन करने से लाभ होता ॥ १-२ ॥

सुश्रुतात्—माञ्जिष्ठमेहिनाम्—मञ्जिष्ठाचन्दनकषायं पाययेत् । हारिद्रमेहिनाम्—राजवृक्षकषायम् , नीलमेहिनाम्—सालसारादिकषायमश्वत्थकषायं वा । क्षारमेहिनाम्—त्रिफलाकषायम् , कालमेहिनाम्—न्यग्रोधादिकषायम् । शोणितमेहिनां गुडूचीतिन्दुकास्थिकाश्मर्यखर्जूरकषायं, मधुमिश्रं पाययेत् ।

पित्तजमेह चिकित्सा—माञ्जिष्ठ प्रमेह वालों को मजीठ और चन्दन को समान लेकर क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये । एवं हारिद्रमेह वालों को अमलतास का क्वाथ, नीलमेह वालों को साल्सारादिगण का अथवा अश्वत्थ वृक्ष की छाल का क्वाथ, क्षारमेह वालों को त्रिफला का क्वाथ, कालमेह वालों को न्यग्रोधादि गण का क्वाथ और रक्तमेह वालों को गुर्चि, तिन्दुक के फल की गुठली, गम्भार की छाल और खजूर सममाग लेकर क्वाथ बना शीतल कर मधु के प्रक्षेप के साथ सेवन कराना चाहिये ।

वातमेहचिकित्सा—

अग्निमन्थकषायं तु वसामेहे प्रयोजयेत् । पाठाशिरीषदुःस्पर्शामूर्वाकिंशुकतिन्दुकैः ॥ १ ॥
कपित्थेन भिषक्कुर्यात्क्वाथं हस्तिप्रमेहके । पूगखदिरयोः क्वाथः सक्षौद्रः क्षौद्रमेहिनाम् ॥२॥

वातज मेह चिकित्सा—वसामेह में गनियार की छाल का क्वाथ, हस्तिमेह में पुरइनपाढी, सिरस की छाल, यवासा, मूर्वामूल, पलासपुष्प तिन्दुक फल तथा कैथ फल के समभाग का क्वाथ और क्षौद्रमेह में पूगीफल और विटखदिर को सममाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये ॥ १-२ ॥

छिन्नावह्निकषायेण पाठाकुटजरामठम् । तिक्ता कुष्ठं च सञ्चूर्ण्य सर्पिर्मेही पिबेन्नरः ॥ ३ ॥

गुर्च और चित्रकमूल के क्वाथ में पुरइनपाढी, कुटजत्वक्, शुद्ध हींग कुटकी, कूठ सम भाग लेकर चूर्णकर इनका प्रक्षेप देकर पान करने से सर्पिर्मेह ( मज्जमेह ) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुश्रुतात्—अत ऊर्ध्वमसाध्येष्वपि योगान्यापनार्थं वक्ष्यामः । तद्यथा—वसामेहिनाम्—अग्निमन्थकषायं शिंशपाकषायं वा । सर्पिर्मेहिनाम्—कुष्ठकुटजपाठाहिङ्गुकटुरोहिणीकल्कं गुडूचीचित्रककषायेण पाययेत् । क्षौद्रमेहिनाम्—खदिरकदरक्रमुककषायम् । हस्तिमेहिनाम्—तिन्दुककपित्थशिरीषपलाशपाठामूर्वादुःस्पर्शाकषायं मधुमिश्रम् , हस्त्यश्वशूकरखरोष्ट्रास्थिक्षारं चेति ।

सुश्रुत के मत से इसके ऊपर असाध्य जो वातिक मेह हैं उनके शमन के लिये भी उपाय लिखे जा रहे हैं :—

वसामेह वालों के लिये गनियार अथवा शीशम की छाल का विधिपूर्वक क्वाथ बना कर देना चाहिये । सर्पिर्मेह वालों के लिये कूठ, कोरया की छाल, पुरइनपाढी, शुद्ध हींग और कुटकी सम भाग लेकर चूर्णकर ( कल्क कर पाठ है पर क्वाथ का प्रक्षेप चूर्ण ही अच्छा होता है ) उसका प्रक्षेप गुरुचि और चित्रकमूल के क्वाथ में मिलाकर सेवन कराना चाहिये । क्षौद्रमेह वालों के लिये खैर, बबूर की छाल और पूगीफल का क्वाथ बनाकर देना चाहिये । हस्तिमेह वालों को तिन्दुकफल, कैथ, शिरिष की छाल, पलास की छाल, पुरइनपाढी, मूर्वामूल और यवासा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये और हाथी, घोड़ा, सुअर, गधा, ऊँट, इनकी अस्थियों का क्षार बनाकर देना चाहिये ।

## अथ द्वन्द्वजप्रमेहचिकित्सा ।

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि बिभीतरोहीतककौटजानि ।
पुष्पाणि कृष्णश्च विचूर्णितानि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेहे ॥ १ ॥

द्वन्द्वज प्रमेह चिकित्सा—कमीला, छितवन, साल, बहेड़ा, रोहित तृण और कोरया इन ओषधियों के पुष्पों को सममाग लेकर चूर्ण कर दही के साथ मिलाकर और मधु डाल कर चाटने से कफपित्त मिश्रित द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है ॥ १ ॥

हरीतकीकट्फलमुस्तलोध्रकुचन्दनोशीरकृतः कषायः ।
क्षौद्रेण युक्तः कफपातमेहं निहन्ति पीतो रजसा च पीतः ॥ २ ॥

हर्रा, मायफर, नागरमोथा, लोध, पतङ्ग की लकड़ी और खस सममाग लेकर क्वाथ कर उसमें हरदी के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कफवातजनित द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है॥ २॥

विडङ्गरजनीद्वन्द्वखदिरोशीरपूगज। क्वाथ पीतः प्रगे हन्ति मेह पित्तानिलोद्भवम्॥ ३॥

वामोरग, हरदी, दारुहरदी, खैर, खस और पूगीफल सममाग लेकर क्वाथ कर प्रातःकाल सेवन करने से वातपैत्तिक द्वन्द्वजमेह नष्ट होता है॥ ३॥

क्वाथः खर्जूरकाश्मयतिन्दुकास्थ्यमृताहृत। सुहिम पीतमात्रस्तु सक्षौद्रो रक्तमेहहा॥ ४॥

खजूर, गम्भार की छाल, तिन्दुक फल की गुठली और गुरुचि समान लेकर क्वाथ बनाकर शीतल कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से रक्तमेह नष्ट होता है॥ ४॥

## अथ सामान्यप्रमेहचिकित्सा।

फलत्रिकादि क्वाथ—फलत्रिक दारुनिशाविशालामुस्त च निष्काथ्यनिशांशकल्कम्।
विपेत्कषायं मधुसम्प्रयुक्त सर्वप्रमेहेषु चिरोत्थितेषु॥ १॥

फलत्रिकादि क्वाथ—अंवरा, हर्रा, बहेड़ा, दारुहरदी, माहरि की जड़, नागरमोथा, सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें हरदी का कल्क और मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के पुराने प्रमेह नष्ट होते हैं॥ १॥

विडङ्गादिक्वाथ—

विडङ्गरजनीयष्टीनागरागोक्षुरैः कृतः। कषायो मधुना हन्ति प्रमेहा दुस्तरानपि॥ १॥

विडङ्गादि क्वाथ—वामोरग, हरदी, जेठीमधु सोंठि और गोखरू सममाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कठिन प्रमेह भी नष्ट होते हैं॥ १॥

पलाशपुष्पाणां क्वाथ—

पलाशतरुपुष्पाणां क्वाथः शर्करया युतः। निषेवित प्रमेहाणि हन्ति नानाविधान्यपि॥ १॥

पलाश पुष्प क्वाथ—पलाश के पुष्पों का क्वाथ बनाकर उसमें शकरा का प्रक्षेप देकर सेवन करने से अनेक प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है॥ १॥

त्रिफलादिक्वाथ—

त्रिफलादारुदार्व्यब्दकाथ क्षौद्रेण मेहहा। कुटजासनदार्व्यब्दफलत्रयभवोऽथवा॥ १॥

त्रिफलादि क्वाथ—अंवरा, हर्रा, बहेड़ा, देवदारु, दारुहरदी, नागरमोथा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है। अथवा कोरया की छाल, असना, दारुहरदी, नागरमोथा, अँवरा हर्रा, बहेड़ा सम भाग लेकर क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर सेवन करने से प्रमेह नाश होता है॥ १॥

गुडूच्यादि—

गुडूच्याः स्वरस पेयो मधुना सर्वमेहजित्। निशाकल्कयुतो धात्रीरसो वा माक्षिकान्वितः॥

गुडूच्यादि योग—गुरुचि के स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के प्रमेहों का नाश होता है। हरदी का कल्क अथवा मधु मिलाकर आँवले का स्वरस पान करने से सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं॥ १॥

भूधात्र्यादि—

भूधात्री च त्रिशाणा मरीचानां च विंशतिः। असाध्या साधये मेहान्सप्तरात्राद्य संशयः॥१॥

भूधात्रिकादि योग—भुईं आँवले का स्वरस ३ शाण (१८ माशा) और संख्या में २० मरिच का चूर्ण मिलाकर पान करने से असाध्य प्रमेहों को भी सात रात में (एक सप्ताह के सेवन करने से) अवश्य साध्य कर देता है (नष्ट कर देता है)॥ १॥

कतकबीजयोग—कर्षप्रमाण कतकस्य बीजं तक्रेण पिष्टं सह माक्षिकेण।
प्रमेहजालं विनिहन्ति सद्यो रामो यथा रावणमाहवे तु॥ १॥

कतक बीज योग—निर्मली के बीजों को एक कर्ष लेकर मट्ठे के साथ पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र प्रमेह जाल को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार रावण को युद्ध में राम ने नष्ट किया (मारा) था॥ १॥

आकुल्यादियोग —

आकुलीमुकुल धात्री दरिद्रा मधुना लिहन्। विंशतिं च प्रमेहाणां हन्ति सत्यं न संशयः ॥१॥

आकुलादि योग—आकुल वनस्पति विशेष की कली अथवा गेहूं के बाल का डोला (होरहा) और पिसा, आंवला हरदी सममाग लेकर चूर्ण कर मधु के अनुपान से सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेहों को निश्चय हो नष्ट करता है, यह सत्य है ॥ १ ॥

निशात्रिफलायोग —

द्विनिशात्रिफलायुक्तं रात्रौ पर्युषितं जलम्। प्रभाते मधुना पीतं मेहमूलं निकृन्तति ॥ १ ॥

निशा त्रिफला योग—हरदी, दारुहरदी, अवरा, हर्रा, बहेड़ा इनको समान लेकर औ कुट कर रात को जल में भिजा देवे प्रातः उस पर्युषित जल को मधु के प्रक्षेप से सेवन करने से प्रमेह रोग को समूल नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलाकल्क —

सजलं त्रिफलाकल्कमातपे धारयेत्त्र्यहम्। तन्नाण्डे दोलिकायन्त्रे चणका मुष्टिमात्रकान् ॥१॥

अहोरात्रोषिता न्खादेद्वर्धमानं दिने दिने। असाध्यं साधयेन्मेहं सिद्धयोग उदाहृतः ॥ २ ॥

त्रिफला कल्क—त्रिफला (अवरा-हर्रा-बहेड़ा सममाग मिश्रित) कल्क बनाकर उसमें जल मिलाकर एक मृत पात्र में रखकर तीन दिन तक धूप में रक्खे फिर उस पात्र में कपड़े में बांधकर एक मुट्ठी चना दोला यन्त्र की भांति लटका दे (चना वरा जल में डूबा रहे) एक दिन रात उसमें रहने के पश्चात निकाल कर क्रम से दिन २ बढ़ा कर सेवन करने से असाध्य मेहों को भी साध्य कर देता है। यह सिद्ध योग कहा गया है ॥ १-२ ॥

सालमुस्तयोग—

सालमुस्तककम्पिल्लकल्कमक्षसमं पिबेत्। धात्रीरसेन सक्षौद्रं सर्वमेहहरं परम् ॥ १ ॥

सालमुस्त योग—साल और नागरमोथा तथा कबीला सममाग लेकर कल्क कर एक अक्ष प्रमाण लेकर आंवले का स्वरस और मधु मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

त्रिफलादिचूर्णम्—

मधुना त्रिफलाचूर्णमथ वाऽश्मजतूत्तमम्। लोहजं वाऽश्मयोर्थं वा लिह्यान्मेहनिवृत्तये ॥ १ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—त्रिफला का चूर्ण अथवा शुद्ध शिलाजीत अथवा लोह भस्म मधु मिलाकर सेवन करने से प्रमेह रोग की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

न्यग्रोधादिचूर्णम्—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थस्योनाकारग्वधासनम्। आम्रं कपित्थं जम्बूश्च प्रियालं ककुभं धवम् ॥१॥

मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम्। पटोलं मेषशृङ्गीं च दन्ती चित्रकपाटली ॥ २ ॥

करञ्जं त्रिफला शक्रमल्लातकफलानि च। एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ ३ ॥

न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत्। फलत्रयरसं चानु पिबेन्मूत्रं विशुध्यति ॥ ४ ॥

न्यग्रोधादि चूर्ण—वट, उदुम्बर, पीपल, अरलू, अमलतास, असना आम, कैथ, जामुन, प्रियाल (वृक्ष विशेष), अर्जुन, धाव, महुआ इनकी छाल, मुलहठी, लोध, वरुण की छाल पारिभद्र (पारिजात) की छाल, परवर की डालपात, मेढासिंगी, दन्तीमूल, चित्रकमूल, पाढर की छाल, कंजु, आंवला, हर्रा बहेड़ा, इन्द्रजव और शुद्ध मिलावे के फल प्रत्येक सम भाग लेकर चूर्ण कर लेवे। यह न्यग्रोधादि चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटना चाहिये और त्रिफला का स्वरस अनुपान में पीना चाहिये। इससे मूत्र शुद्ध होता है ॥ १-४ ॥

एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च। वेगेन प्रशमं यान्ति पिडिका न च जायते ॥ ५ ॥

न्यग्रोधादि चूर्ण से बीस प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं और जितने प्रकार के मूत्रकृच्छ्र रोग हैं वे सब वेग से (शीघ्र) शमन हो जाते हैं तथा पिडिकायें (प्रमेह पिडिकायें) नहीं उत्पन्न होती हैं ॥

कर्कटीबीजादिचूर्णम्—

कर्कटीबीजसिन्धूत्थत्रिफलासमभागिकम्। पीतमुष्णाम्भसा चूर्णं मूत्ररोधं निवारयेत् ॥ १ ॥

कर्कटी बीजादि चूर्ण—ककड़ी के बीज, सेंधा नमक, आँवला, हर्रा, बहेड़ा सम भाग लेकर चूर्ण कर उष्णोदक के अनुपान से पान करने से मूत्रावरोध नष्ट होता है ॥१॥

गोक्षुरादिगुटी—

त्रिकटुत्रिफलामुस्तं गुग्गुलं च समांशकम् । गोक्षुरकाथसंयुक्तां गुटिकां कारयेद्बुधः ॥ १ ॥
देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकाम् । न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥२॥
प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च । मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाशु नाशयेत् ॥ ३ ॥

गोक्षुरादि गुटी—सोंठ, पीपरि, मरिच, आँवला हर्रा बहेड़ा सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके समान शुद्ध गुग्गुल मिलाकर गोखरू के क्वाथ में मर्दन कर विधिवत् वटी बना कर देश, काल और बल के अनुसार मात्रा से सेवन करने से अनुलोमक है। इसके सेवन के समय कोई विशेष परिहार नहीं है। इच्छानुकूल भोजनादि कर्म करना चाहिये। इससे प्रमेह वात रोग, वातरक्त, मूत्राघात, मूत्रदोष और प्रदर रोग ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

चन्द्रप्रभागुटी योगरत्नावल्या—

वेल्लव्योषफलत्रिकं त्रिलवणं द्विक्षारचव्यानल-
श्यामापिप्पलिमूलमुस्तकसटीमाक्षीकधातुर्वचा ।
पद्मव्यामरदारुवारणकणाभूनिम्बदन्तीनिशा
पत्रैलातिविषा पिचुप्रतिमिता लोहस्य कर्षाष्टकम् ॥ १ ॥
त्वक्क्षीरी पलिका पुराद्दश पलान्यष्टौ शिलाजन्मनो
मानात्कर्षसमा कृतेति गुटिका संयोज्य सर्वं भिषक् ।
सर्वेव प्रतिवासरं सह घृतक्षौद्रेण लिह्यादिमां
तक्रं मस्तु च गोघृतं मधुरसं पश्चात्पिबेन्मात्रया ॥ २ ॥

चन्द्रप्रभा गुटी—वायवीडङ्ग, सोंठि, पीपरि, मरिच, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, सेंधा, सौवर्चल और बिड नमक, यवाखार, सज्जी खार, चव्य, चित्रकमूल, निशोथ, पिपरामूल, नागरमोथा, कपूर, स्वर्णमाक्षिक भस्म, दालचीनी वच देवदारु, गजपीपरि, चिरैता, दन्तीमूल हल्दी, तेजपात, इलायची के दाने, अतीस, इन सब द्रव्यों का चूर्ण बनाकर पिचु प्रमाण ( २ तोला वा एक कर्ष ) पृथक् २ लेवे और लोह भस्म ८ कर्ष, वंश लोचन २ पल, शुद्ध गुग्गुल १० पल, शुद्ध शिलाजीत ८ पल लेकर सबको खरल में एकत्र मर्दन कर कर्ष प्रमाण की वटी विधिपूर्वक बनाकर घृत और मधु के साथ प्रतिदिन सेवन करे, अपने अनुकूल मात्रा से तक्र दही का पानी, गोघृत, मधु और मांस रस का अनुपान सेवन ( पीना ) करना चाहिये। इस योग में पारद-गन्धक की कज्जली अथवा रससिन्दूर अथवा अभ्रक भस्म भी एक पल मिलाने का योग कई ग्रन्थों में है। ( इसकी मात्रा ४ रत्ती की है पर अपने २ बलानुसार सेवन करना चाहिये ) ॥ १-२ ॥

अर्शांसि प्रदरं ज्वरं च विषमं नाडीव्रणानश्मरीं
कृच्छ्रं विद्रधिमग्निमान्द्यमुदरं पाण्ड्वामयं कामलाम् ।
यक्ष्माणं समगन्दरं सपिटिकां गुल्मप्रमेहारुची
रेतोदोषमुरःक्षतं कफमरुत्पित्तार्तिमुग्रां जयेत् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से सब प्रकार के अर्शरोग, प्रदर, विषम ज्वर, नाड़ीव्रण, अश्मरी, मूत्र कृच्छ्र, विद्रधि, मन्दाग्नि, उदररोग, पाण्डुरोग, कामला यक्ष्मा, भगन्दर, प्रमेहपिडिका और भगन्दर की पिडिका गुल्मरोग, प्रमेह अरुचि, वीर्यदोष उरःक्षत, कफ-वात और पित्त के अति उग्र रोग इनको यह नष्ट करती है ॥ ३ ॥

वृद्धं मञ्जनयत्पुपालमसमोऽसर्कं वयः यर्थये—
द्वेतस्यों न निषिद्धमन्नमसकृत्नाल्पावामो मैथुनम् ।
विप्यातः गुटिकेयमत्रिततरा चन्द्रप्रभा नामतः
सान्द्रानन्दकरी समोऽति च वपि चन्द्रेण गुर्व्या समो ॥ ४ ॥

यह वटी वृद्धपुरुषों को युवा करती है अर्थात् युवा के समान शक्तिशाली करती है तथा

इसके ओज और बल को बढ़ाती है। इसके सेवन करने के समय किसी प्रकार के मद्यादि, मार्ग गमन तथा मैथुनादि किसी कर्म का निषेध नहीं है। यह प्रसिद्ध बड़ी आनन्द देने वाली, रुचि करने वाली तथा चन्द्रमा के समान शरीर को सुन्दर बनाने वाली है। इसका नाम चन्द्रप्रभा है। (यद्यपि इसके सेवन के समय कुछ वर्जित नहीं है तथापि दधि द्रव्य के साथ सेवन किया जावे तो और लाभकारक है)॥ ४॥

योगरत्नाकरात् पूगपाक—

इभाम्भोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्री प्रियालाः कटु
र्जंजालुत्रिसुगन्धजीरकयुगं शृङ्गाटकं धातकी।
जातीकोशलवङ्गधान्यकयुताः प्रत्येकमेषोऽमिताः
पूगस्याष्टपलं विचूर्ण्य च पयःप्रस्थत्रये सम्पचेत् ॥ १ ॥
गोसर्पिः कुडव सितापलशतं धात्रीवरी द्व्यञ्जली
मन्दाग्नौ विपचेद्विपक्वमुदिने सुस्निग्धभाण्डे क्षिपेत्।
स खादेत् यथाग्नि वासरमुखे मेहांश्च जीर्णज्वरं
पित्तं साम्लमसृक्स्रुतिं च गुदजान्यस्माद्विनाशात्मु च ॥ २ ॥
मन्दाग्निं च विजित्य पुष्टिमतुलां कुर्याच्च शुक्रप्रदो
योगो गर्भकरः परः प्रदरहृत् स्त्रीणामसृग्दोषजित् ॥ ३ ॥

पूगपाक—नागकेसर, नागरमोथा चन्दन, सोंठ, पीपर, मरिच, आंवरा, चिरौंजी, कोरदा की छाल, इन्द्रायन की, दालचीनी, तेजपात, इलायची, जीरा, कृष्णजीरा, सिंघाड़ा, वंशलोचन, जायफल, जावित्री, लवंग, धनियां, बड़ी इलायची के दाने प्रत्येक १ कर्ष (टङ्क २ वर्ष) लेकर चूर्ण करे फिर उत्तम पुंगीफल का चूर्ण ८ पल लेकर तीन प्रस्थ गाय के दूध के साथ पाक कर गाढ़ा, (खोवा) कर लेवे पश्चात् उस खोवे को एक कुडव (आधासेर) गाय के घृत के साथ भून कर उसमें श्वेत शर्करा ५० पल, आंवले का चूर्ण और शतावरि मूल का चूर्ण दो २ अञ्जली (१६ १६ पल) तथा उपर्युक्त नागकेसरादि का चूर्ण मिलाकर मृदु अग्नि पर पाक कर अच्छे चिकने पात्र में रख देवे। इस पाक को अग्निबल के अनुसार प्रातः सेवन कराने से प्रमेह रोग, जीर्ण ज्वर, अम्लपित्त रक्तस्राव, बवासीर, मद, और तथा नाक के रोग तथा मन्दाग्नि को नष्ट करता है और अत्यन्त पुष्टिकारक, शुक्रकारक है, तथा यह योग उत्तम गर्भकारक है, स्त्रियों के रक्तदुष्टि रोगों को नष्ट करने वाला है ॥ १-३ ॥

अश्वगन्धापाक—पलान्यष्टावश्वगन्धां विपाच्य गोदुग्धे पट्शरके मन्दवह्नौ।
दर्वीलेपो यावदास्ते सुपक्वस्त्वग्वालं त्रिपत्रं कर्षप्रमाणम् ॥ १ ॥
जातीजातं केशरं वराख्यं मोचं मांसी चन्दनं कृष्णसारम्।
पत्रीकृष्णापिप्पलीमूलदेवपुष्पं कङ्कोलाख्यं कपोटसारम् ॥ २ ॥
भल्लीबीजं शृङ्गाटं गोक्षुराख्यं सिन्दूराभ्रं नागवङ्गं च लोहम्।
कर्षार्धार्धं सर्वचूर्णं प्रकल्प्य सशोध्यायो शर्करापक्वपाके ॥ ३ ॥
पक्त्वा शीतं कारयेदश्वगन्धापाकोऽयं वै हन्ति मेहानशेषान्।
ज्वरं जीर्णं शोषगुल्मान्तिकारी पैत्तं वातान्शुक्रवृद्धिं करोति ॥ ४ ॥
पुष्टिं दद्याद्वह्निसन्दीपनोऽयं कान्तिं कुर्यात्सौमनस्यं नराणाम् ॥ ५ ॥

अश्वगन्धापाक—असगन्ध का चूर्ण आठ पल और गाय का दूध छे शराव या ३ प्रस्थ लेकर मन्द २ अग्नि पर पाक तब तक करे जब तक कलछी में लगे नहीं फिर इसमें दालचीनी, नागकेसर, इलायची और तेजपात का समान मिलित चूर्ण एक कर्ष मिलावे और जायफर, नागकेसर, वंशलोचन, मोचरस, जटामांसी, चन्दन, खैरसार, जावित्री, पीपरि, पिपरामूल, लवंग, कंकोल, पादर की छाल अखरोट के फल का गूदा, शुद्ध भिलावा, सिंघाड़ा, गोखरू, रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, लौहभस्म प्रत्येक का चूर्ण चौथाई २ कर्ष, मिलावे और श्वेत शर्करा ५० पल का पाक कर (चाशनी बना) एकत्र कर पाक की विधि से सिद्ध पाक शीतल होने पर स्निग्ध पात्र में रख ले। यह अश्वगन्धापाक सम्पूर्ण प्रमेहों को नष्ट करता है,

जीर्ण ज्वर, शोथ, गुल्म, वात तथा पित्त के विकार को नष्ट करता है, वीर्य की वृद्धि करता है, पुष्टिकारक है, अग्निदीपक है तथा शरीर की कान्ति को बढ़ाता है और रुचिकारक है ॥ १-५ ॥

सालमपाक—क्षीरे द्रोणयुते ससालकुडव मन्दाग्निना पाचितं
यावत्पाकमुपागतेऽप्यरहितं प्रस्थं गुडं निक्षिपेत् ।
चातुर्जातलवङ्गजातिफलकैर्मुस्तातुगाधान्यकैः
शुण्ठीमागधिकोषणाश्वगन्धयालौहैश्च मिश्रीकृतम् ॥ १ ॥
हृद्रोगक्षयशोषमारुतगदान् हिक्कास्रपित्तशोषणे ।
विंशन्मेहशिरोविकारशमनो रोगानशेषाञ्जयेत् ॥ २ ॥

सालम पाक—एक द्रोण गाय दूध में सालम मिश्री का चूर्ण एक कुडव ( आधा मानी ) मिलाकर मन्द २ अग्नि पर पाक करे जब गाढ़ा हो जाय तब उसमें पुराना गुड़ एक प्रस्थ मिलावे और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, लवंग, जायफल, नागरमोथा, वंशलोचन, धनियाँ, सोंठि, पीपरि, मरिच, असगन्ध, हर्रा इन द्रव्यों का उत्तम चूर्ण और लोहभस्म, प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर यथा विधि पाक में मिश्रित कर स्निग्ध पात्र में रख ले। इसके सेवन करने से हृद्रोग, क्षय, शोष, वात के रोग, हिक्का, रक्त शोष, बीसों प्रकार के प्रमेह रोग तथा सिर के रोग और सम्पूर्ण व्याधियों को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

द्राक्षापाक—द्राक्षादुग्धसितापृथक्परिमिता प्रस्थेन सम्पाचिता
युक्त्या वैद्यवरेण चूर्णमधुना देयं पलार्धं पृथक् ।
चातुर्जातकटुत्रयं मृगमदं लोहाभ्रकं केशरं
पत्री जातिफलं मृगाङ्करजतं कुसुम्बरी चन्दनम् ॥ १ ॥
सम्यग्जातरसं प्रभातसमये सेव्यं द्विकर्षोन्मितं
स्निग्धं शुक्रकरं प्रमेहशमनं पित्तामयध्वंसनम् ।
मूत्राघातविबन्धकृच्छ्रशमनं रक्तार्तिनेत्रार्तिहृत्-
पादे पाणितले विदाहशमनं सौख्यप्रदं प्राणिनाम् ॥ २ ॥

द्राक्षापाक—दाख एक प्रस्थ, गाय का दूध एक प्रस्थ और श्वेत शर्करा एक प्रस्थ लेकर एकत्र कर विधिपूर्वक पाक करे, गाढ़ा हो जाने पर उसमें वैद्य युक्तिपूर्वक पाक की विधि से आगे लिखी दालचीनी, इलायची के दाने तेजपात, नागकेसर सोंठ पीपरि, मरिच, कस्तूरी, लोहभस्म, अभ्रकभस्म, केसर, जावित्री जायफल शुद्ध कपूर, रौप्यभस्म, धनियाँ और चन्दन इन औषधियों के पृथक् २ आधा २ पल चूर्ण-भस्म को मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख लेवे। इसको प्रातःकाल दो कर्ष के प्रमाण की मात्रा से ( अथवा वय-बल के अनुसार मात्रा से ) सेवन करना चाहिये। यह स्निग्ध वीर्यवर्धक प्रमेह को शमन करने वाला पित्त के रोग को नष्ट करने वाला मूत्राघात, विबन्ध, मूत्रकृच्छ्र इनको शमन करने वाला, रक्त सम्बन्धी पीड़ा, नेत्र रोग इनको नष्ट करने वाला, हाथ पैर के तलवों के दाह को शमन करने वाला और प्राणियों को सुख देने वाला है ॥ १-२ ॥

## अथाऽऽसवघृततैलादि ।

लोध्रासव—लोध्रं शटी पुष्करमूलमेलां मूर्वां विडङ्गं त्रिफलां यवानीम् ।
चव्यं प्रियङ्गुं क्रमुकं विशालां किराततिक्तं कटुरोहिणीं च ॥ १ ॥
भार्ङ्गीं नतं चित्रकपिप्पलीनां मूलं सकुष्ठातिविषां सपाठाम् ।
कलिङ्गकान् केशरमिन्द्रसाह्वं नखं सपत्रं मरिचं प्लवं च ॥ २ ॥
द्रोणेऽम्भसः कर्षसमानि पक्त्वा पूते चतुर्भागजलावशेषे ।
रसेऽर्धभागं मधुनः प्रदाय पक्षं निधेयो घृतभाजनस्थः ॥ ३ ॥
लोध्रासवोऽयं कफपित्तमेहान् क्षिप्रं निहन्याद्द्विपलप्रयोगात् ।
पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिं ग्रहण्या दोषं किलासं विविधं च कुष्ठम् ॥ ४ ॥

आसव घृत तैलादि प्रकरण—लोध्रासव—लोध, कचूर, पुष्करमूल, इलायची के दाने मूर्वा मूल, वायविडंग, बहेरा, हर्रा आँवला, अजवाइन, चाब, प्रियंगु, सुपारी इन्द्रायण की जड़, चिरैता,

कुटकी, कमोठी, तगर, चित्रकमूल, पिपरामूल, कूट, अतीस, पुष्करपादी, कोरया की छाल, नागकेसर इन्द्रजो, नरी द्रव्य, तेजपात, मरिच, केवटीमोथा प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर जो कुट कर एक द्रोण ( ४ आढ़क ) जल के साथ चतुर्थांशावशेष पाक करके उतार छानकर शीतल होने पर जितना क्वाथ हो उसके आधा मधु मिलाकर एक स्निग्ध घृत पात्र में रख कर आसव की विधि से १५ दिन तक मुख बन्द कर रख दे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर एक पल के प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से यह 'लोध्रासव' कफ और पित्त के प्रमेह को शीघ्र ही नष्ट करता है और पाण्डुरोग, अर्श, अरुचि, ग्रहणी के दोष, श्वित्र कुष्ठ तथा अनेक प्रकार के अन्यान्य कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

सिंहामृतघृतम्—

कण्टकार्या गुडूच्याश्च सहरेव शत शतम्। सङ्कट्योद्धराले विद्वांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसा पचेत् ॥ १ ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्। त्रिकटुत्रिफलारास्नाविडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ २ ॥
काश्मर्याश्चापि मूलानि पूतिकस्य त्वचस्तथा। कुट्टयेदिति सर्वाणि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् ॥
अस्य मात्रां पिबेत्प्रातः शालिभिः पयसा हितः। प्रमेहं मधुमेहं च मूत्रकृच्छ्रं भगन्दरम् ॥४॥
आलस्यं चान्त्रवृद्धिं च कुष्ठरोगं विशेषतः। क्षयं चापि निहन्त्येतन्नाम सिंहामृतं घृतम् ॥५॥

सिंहादिघृत—छोटी कटेरी, गुरुचि, दोनों को सौ २ पल पृथक् २ लेकर ओखल में कूट कर चार द्रोण ( १६ आढ़क ) जल के साथ चतुर्थांशावशेष पाक कर उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ मिलावे और सोंठि, पीपरि, मरिच आंवला हर्रा, बहेड़ा, रास्ना, बायबिरंग, चित्रकमूल, गम्भार की जड़, पूतिकरञ्ज और दालचीनी समान ( एक २ भाग ) लेकर कूटकर कल्ककर यह कल्क घृत से चौथाई मिलाकर घृत सिद्ध कर यथायोग्य मात्रा से प्रातःकाल पान करने तथा शालिभात और दूध का पथ्य सेवन करने से प्रमेह, मधुमेह, मूत्रकृच्छ्र, भगन्दर, आलस्य, अन्त्र वृद्धि और विशेष कर कुष्ठरोग को नष्ट करता है तथा यह सिंहादि नामक घृत क्षयरोग को भी नष्ट करता है ॥ १-५ ॥

हरिद्रादितैलम्—निशारसं चतुः प्रस्थं द्विप्रस्थक्षीरसंयुतम्।
कुष्ठाश्वगन्धालशुननिशापिप्पलिकल्कितम्। विपक्वं तिलजप्रस्थं मेहानां विंशतिं जयेत् ॥१॥

हरिद्रादितैल—हल्दी का स्वरस ४ प्रस्थ, गाय का दूध दो प्रस्थ और मूर्च्छित तिल का तेल एक प्रस्थ मिला कर उसमें कूट, असगन्ध, लहसुन हल्दी, पीपरि इनको समान मिलित कल्क मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर सेवन करने से बीसों प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं॥१॥

लेपनम्—

क्षीरमौदुम्बरं यत्नाद्वाकुचीं च प्रयोजयेत्। पिटिकासु समस्तासु लेपनं सम्प्रशान्तये ॥ १ ॥

लेपन—गूलर का दूध और बाकुची बीज इनको पीस कर लेप बनाकर लगाने से सब प्रकार की पिडिकायें शमन होती हैं ॥ १ ॥

## अथ रसाः।

तत्रादौ हरिशङ्कररसः—

सूताभ्रमामलद्रवैः सप्तवारं विभावयेत्। हरिशङ्करसंज्ञः स्याद्रसः सर्वप्रमेहनुत् ॥ १ ॥

हरिशङ्कररस—पारदभस्म अथवा रससिन्दूर तथा अभ्रकभस्म इन दोनों को समभाग लेकर आँवले के रस के साथ सात बार भावित कर लेवे। यह 'हरिशङ्कर' नामक रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

मेघनादरस —

सूतं कान्तं गन्धतीक्ष्णं ताप्यं व्योषं फलत्रिकम्। शिलाजतुशिलाङ्कोल्लबीजं रात्रिकविश्वकम् ॥
त्रिः सप्तकृत्वो भृङ्गाम्बुभिर्भावयेन्निष्कमानकम्। मधुना मेघनादोऽयं सर्वमेहान्विनाशयेत् ॥ २ ॥
महानिम्बस्य बीजानि पेषयेत्तण्डुलाम्बुना। सघृतान्यचिराद्धन्युः पानान्मेहांश्चिरोत्थितान् ॥

मेघनाद रस—शुद्धपारद, कान्तलौहभस्म, शुद्धगन्धक, तीक्ष्णलौहभस्म स्वर्णमाक्षिकभस्म, सोंठि मरिच, आँवला, हर्रा बहेड़ा, इनका चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत, शुद्ध मैनसिल, अङ्कोल के बीज का

चूर्ण, हरदी का चूर्ण, कैथ के फल का चूर्ण इन सब को सम भाग (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य सभी औषधियों को एकत्र मर्दन कर भांगरे के स्वरस के साथ भावित कर सुखा कर पीस कर इसको एक निष्क (४ माशा) की मात्रा से मधु के अनुपान से सेवन करने से यह 'मेघनाद रस' सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है। (मात्रा रोग बलानुसार देनी चाहिये) ॥ १-२ ॥

मेहकुञ्जरकेसरीरसः—

रसगन्धायसाभ्राणि नागवङ्गौ सुवर्णकम्। वज्रकं मौक्तिकं सर्वमेकीकृत्य विचूर्णयेत् ॥ १ ॥
शतावरीरसेनैव गोलकं शुष्कमातपे। पश्चाच्च शुष्कं तमुद्धृत्य शरावे सुदृढे क्षिपेत् ॥ २ ॥
सन्धिलेपं मृदा कुर्याद्गर्तायां गोमयाग्निना। पुटेद्यामचतुःसंख्यमुद्धृत्य स्वाङ्गशीतलम् ॥३॥
श्लक्ष्णखल्वे विनिक्षिप्य गोलं तं मर्दयेद् दृढम्। देवब्राह्मणपूजां च कृत्वा धारयाऽथ कूपिके ॥
खादेद्वल्लद्वयं प्रातः शीतं चानु पिबेज्जलम्। अष्टादश प्रमेहांश्च जयेन्मासोपयोगतः ॥ ५ ॥
पुष्टिं तेजो बलं वर्णं शुक्रवृद्धिं च दारुणम्। अग्निबलं वितनुते मेहकुञ्जरकेसरी ॥
दिव्यं रसायनं श्रेष्ठं नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

मेहकुञ्जरकेसरी रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोह भस्म, अभ्रक भस्म, नाग भस्म, वंग भस्म, सुवर्ण भस्म, हीरा भस्म, मोती भस्म सम भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य औषधियों को मिलाकर मर्दन कर फिर शतावरि के रस के साथ मर्दन कर गोल बनाकर धूप में सुखा लवे फिर उसे शराव सम्पुट में रख कर सम्पुट का मुख भली भाँति बन्द पुटपाक की विधि से एक गढ़े में रखकर गोबर के आग में चार पहर तक पुट देवे (पकने देवे), स्वांग शीत होने पर निकाल कर खरल में रखकर उस गोले को भली भाँति पीस लेवे फिर देवता और ब्राह्मण की पूजा कर के शीशी में रख लवे। इसको दो बल्ल के प्रमाण की मात्रा से प्रातः खाकर शीतल जल का अनुपान करे तो यह रस एक मास के सेवन करने से अठारह प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है और इससे पुष्टि होती है, तेज बल, वर्ण और वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है और अग्नि के बल को बढ़ाता है। यह 'मेहकुञ्जरकेसरी' नामक रस दिव्य एवं श्रेष्ठ रसायन है। इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥ १-६ ॥

मेहान्तको रसः—

मृताभ्रकान्तलोहानि नागवङ्गौ विशोधितौ। यथोत्तरं भागवृद्ध्या खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् ॥१॥
तालमूलीरसैर्धारावाराही शतावर्या हिमाम्बुना। भावनाऽत्र प्रकर्तव्या यामं यामं पृथक्पृथक् ॥२॥
चणमात्रां वटीं कृत्वा नवनीतेन सेवयेत्। प्रातरुत्थाय विधिना सर्वमेहकुलान्तकः ॥ ३ ॥

मेहान्तक रस—यथाभाग उत्तरोत्तर वृद्ध करके अभ्रक भस्म १ भाग, कान्त लोह भस्म २ भाग, लोहभस्म ३ भाग नागभस्म ४ भाग, वंग भस्म ५ भाग लेकर खरल में रख कर मर्दन कर तालमूली के रस (मूसली के रस) वाराही कन्द के रस, शतावरि के रस और सुगन्धबाला के रस के साथ पृथक् २ एक २ पहर तक क्रम से भावित कर चने के प्रमाण की वटी विधि पूर्वक बनाकर मक्खन के साथ प्रातःकाल विधिवत् सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट कर देता है ॥ १-३ ॥

शालयश्च सपटोलं च तण्डुलीयकवास्तुकम्। मत्स्याक्षी मुद्गयूषं च अपक्वकदलीफलम् ॥ ४ ॥

रस के सेवन करते समय पथ्य में शालिधान का चावल, परवर, चौराई, बथुआ, मत्स्याक्षी, मूंग का यूष तथा कच्चा केला आदि का सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

अर्शांसि ग्रहणीदोषमूत्रकृच्छ्राश्मरीगुल्मान्। कामलापाण्डुशोफांश्च अपस्मारभ्रमक्षयान्।
रक्तकासविनाशे स्यात्पञ्चलोहरसायनम् ॥ ५ ॥

इस रस के सेवन से अर्श, ग्रहणी के दोष, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरीरोग कामलारोग पाण्डु, शोथ, अपस्मार, भ्रम, क्षय तथा रक्तसहित कास इन सबको यह पञ्चलोह रसायन (मेहान्तक रस, जिसमें ५ प्रकार के रसों का योग है) नष्ट कर देता है ॥ ५ ॥

वेदविद्यारसः—

बहुमरसं सूतं सूतं शुद्धं चौद्रे विमर्दयेत्। द्विगुणो लेहयेत्प्रातः हन्ति मेहान्विरन्समान् ॥१॥

मेहारि रस—वंगभस्म, पारदभस्म वा रससिन्दूर दोनों को समान लेकर मधु के साथ मर्दन कर दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से नित्य चाटने से पुराने प्रमेहों को भी नष्ट करता है॥ ६॥

चन्द्रकलावटी—एला सकर्पूरसिता सधात्री जातीफलं केसरशाल्मली च।
सूतेन्द्रवङ्गायसभस्म सर्वमेतत्समांशं परिभावयेच्च॥ १॥
गुडूचिकाशाल्मलिकाकषायैर्निष्कप्रमाणं मधुना ततश्च।
वटीं कृत्वा वटीं चन्द्रकलेतिसंज्ञां सर्वप्रमेहेषु नियोजयेत्ताम्॥ २॥

चन्द्रकला वटी—छोटी इलायची के दाने का चूर्ण, शुद्ध कपूर, श्वेतशर्करा, आँवले का चूर्ण, नागकेसर, सेमल की मूसली का चूर्ण, पारदभस्म वा रससिन्दूर, वंगभस्म और लोहभस्म समभाग (एक २ भाग) लेकर एकत्र खरल में घोटकर प्रथम गुरुचि के क्वाथ वा स्वरस से पश्चात् सेमल के क्वाथ वा स्वरस से विधिपूर्वक भावित कर सुखाकर मधु मिला कर आधा निष्क (२ माशा) के प्रमाण की वटी बना सभी प्रमेहों में इसका प्रयोग करना चाहिये। इसका 'चन्द्रकलावटी' नाम है॥

वङ्गेश्वर—

रसमेकं त्रयो वङ्ग वङ्गसाम्यं तु गन्धकम्। मर्दयेद्दिनमेकं तु कुमार्याः स्वरसे बुधः॥ १॥
संस्थाप्य गोलकं भाण्डे रोधयेत्सुदृढं सुरम्। पाचयेद्वालुकायन्त्रे दिनमेकं दृढाग्निना॥ २॥
स्वाङ्गशीतलमादाय सम्पूज्य द्विजदेवताः। पिप्पलीमधुना युक्तं सर्वमेहेषु योजयेत्॥ ३॥

वंगेश्वर रस—शुद्ध पारद एक भाग वंगभस्म तीन भाग और वंग के समान (३ भाग ही) शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर वंग मिलाकर मर्दन कर कुमारी के रस के साथ एक दिन भर (४ पहर) मर्दन कर गोला बनाकर एक काँच के पात्र में रख कर मुख बन्द कर कपरमिट्टी कर विधिपूर्वक 'वालुका यन्त्र' में एक दिन भर (४ पहर तक) दृढ अग्नि पर पाककर स्वांगशीत होने पर निकाल पीसकर ब्राह्मण तथा देवता की पूजाकर यथायोग्य मात्रा से पीपरि के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर सब प्रकार के प्रमेहों में प्रयोग करना चाहिये, इससे सब प्रमेह नष्ट होते हैं॥ १-३॥

क्षीरान्नं योजयेत्पथ्यमम्ललवणवर्जितम्। रसो वङ्गेश्वरो नाम सर्वमेहनिकृन्तनः॥ ४॥

इसके सेवन के समय अन्न और दूध का पथ्य देवे और अम्ल तथा लवणरस का त्याग कर देवे। यह वंगेश्वर नाम का रस सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करने वाला है॥ ४॥

महावङ्गेश्वर—

वङ्गं कान्तं च गगनं हेमपुष्पं समं समम्। कुमारीरसतो भाव्यं सप्तवारं भिषग्वरैः॥ १॥
एष वङ्गेश्वरो नाम प्रमेहान्विंशतिं जयेत्।
मूत्रकृच्छ्रं सोमरोगं पाण्डुरोगं महाश्मरीम्। रसायनमिदं श्रेष्ठं नागार्जुनविनिर्मितम्॥ २॥

महावंगेश्वर रस—वंगभस्म, कान्तलोहभस्म, अभ्रकभस्म, धतूर के फूल समभाग लेकर कुमारि के स्वरस से सात बार भावित कर रख लेवे, यह 'महावंगेश्वर' नामकरस बीसों प्रकार के प्रमेह को नष्ट करता है तथा मूत्रकृच्छ्र सोमरोग, पाण्डुरोग और अश्मरीरोग को नष्ट करता है। यह 'नागार्जुन जी' का बनाया हुआ श्रेष्ठ रसायन है॥ १-२॥

वङ्गभस्मप्रयोगो गुणाश्च—

वङ्गं शिलाजतुयुतं तु मतं प्रमेहे धातुक्षये दुर्बलनष्टशुक्रयोः।
अभ्रेण युक्तं तु सुतप्रदं स्याज्जातीफलार्कक्रहाटलवङ्गयुक्तम्॥ १॥

वंगभस्म—वंगभस्म को शुद्ध शिलाजीत के साथ सेवन करने से प्रमेह रोग, धातुक्षय, धातु दौर्बल्य तथा नष्ट शुक्र रोग को नष्ट करने वाला होता है। वंगभस्म को अभ्रकभस्म जायफर के चूर्ण, ताम्रभस्म स्वर्णभस्म और लवंग के चूर्ण इनके साथ सेवन करने से पुत्र को देने वाला होता है॥ १॥

शाल्मलीत्वक्प्रसोपेतं सक्षौद्ररजनीरसः। वङ्गभस्म हरेन्मेहान्पञ्चानन इव द्विपान्॥ २॥

वंगभस्म को सेमर वृक्ष की त्वचा के स्वरस, मधु हरदी के चूर्ण, इनके साथ सेवन करने से प्रमेहों को इस प्रकार नष्ट करता है जैसे शेर हाथियों को॥ २॥

गुडूचीसारमधुना वङ्गभस्म प्रमेहनुत्। नागभस्म तथैवापि सर्वमेहविनाशनम्॥ ३॥

वङ्गभस्म को गुरुचि के सत्त्व और मधु इनके साथ सेवन करने से प्रमेह को नष्ट करता है। इसी प्रकार नाग भस्म भी सब प्रकार के प्रमेहों को नष्ट करता है ॥ ३ ॥

पयो गवां सखण्डकं त्रिकण्टवङ्गवल्लकम् । प्रमेहमण्डलं परं सुधा धयन्ति सादरम् ॥ ४ ॥

वङ्गभस्म को एक वल्ल प्रमाण लेकर गोखरू के चूर्ण के साथ खांड ( शर्करा ) मिश्रित गोदुग्ध के अनुपान से सेवन करने से प्रमेह नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

वङ्गगुणाः—तिक्तकं सलवणं च भेदकं पाण्डुजन्तुशमनं सुशीतलम् ।
मेहदाहशमनं च कान्तिदं वङ्गमाहुरिति मारुतापहम् ॥ १ ॥

वङ्ग के गुण—वंगभस्म, तिक्त लवण रस युक्त भेदक पाण्डु तथा कृमि रोग का नाशक, शीतल, प्रमेह और दाह को शमन करने वाला, कान्ति को देने वाला और वातनाशक कहा गया है ॥ १ ॥

अभ्रकयोग—

निश्चन्द्रमभ्रकं भस्म सवरारजनीरजः । मधुना लीढमचिरात्प्रमेहान्विनिवर्तयेत् ॥ १ ॥

अभ्रक भस्म का योग—निश्चन्द्र ( उत्तम ) अभ्रक भस्म को त्रिफला ( समान मिलित ) के चूर्ण और हल्दी के चूर्ण के साथ मधु के अनुपान से चाटने से सब प्रकार के प्रमेहों को शीघ्र नष्ट करता है। ( इसकी मात्रा रोग बलानुसार देनी चाहिये ) ॥ १ ॥

नागभस्मयोग—

शुद्धस्य च मृतस्याहे रजो वल्लमितं लिहेत् । सनिशामलकक्षौद्रं सर्वमेहप्रशान्तये ॥ १ ॥

नागभस्म का योग—शुद्ध नागभस्म को एक वल्ल के प्रमाण की मात्रा से हल्दी के चूर्ण, आंवले के चूर्ण और मधु के साथ सेवन करने से सब प्रकार के प्रमेह शमन होते हैं ॥ १ ॥

गन्धकयोग—

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयः पिबेत् । विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहाः पिटिका अपि ॥

गन्धक का योग—शुद्ध आंवलासार गन्धक को यथायोग्य मात्रा से पुराने गुड़ के साथ सेवन कर दूध का अनुपान करने से बीसों प्रकार के प्रमेह तथा प्रमेह पिडिकायें भी नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

शिलाजतुयोग—

शिलाजतुरसं पीत्वा प्रातः क्षीरसितायुतम् । मुच्यते सर्वमेहेभ्यस्त्रिभिः सप्तदिवसैर्नरः ॥ १ ॥

शिलाजीत का प्रयोग—शुद्ध शिलाजीत को दूध और शर्करा के साथ प्रातः पान करने से २१ दिन में सब प्रकार के प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

स्वर्णमाक्षिकभस्मयोग—

माक्षिकं मधुना लीढं मेहं हरति सर्वथा । गुडूचीसत्त्वसंयुक्तं विषमेहं व्यपोहति ॥ १ ॥

स्वर्ण माक्षिक भस्म योग—स्वर्ण माक्षिक भस्म को मधु के साथ सेवन करने से प्रमेह और गुडूची के सत्त्व के साथ सेवन करने से विषम मेह नष्ट होता है ॥ २ ॥

वसन्तकुसुमाकरः—

पृथग्द्वौ हाटकं चन्द्रं त्रयो वङ्गाहिकान्तजम् । चत्वारः सूतमभ्रं च प्रवालं मौक्तिकं तथा ॥ १ ॥
भावना गव्यदुग्धेक्षुवासामोचीहिमोत्पलैः । मोचाकन्दरसैः सप्त क्रमाद्दाप्य पृथक्पृथक् ॥ २ ॥
शतपत्ररसेनैव मालत्याः कुसुमैस्तथा । पश्चान्मृगमदैर्भाव्यः सुसिद्धो रसराड् भवेत् ॥ ३ ॥
कुसुमाकरविख्यातो वसन्तपदपूर्वकः । वल्लद्वयमितः सेव्यः सिताज्यमधुसंयुतः ॥ ४ ॥
वलीपलितहृन्मेध्यः कामदः सुखदः सदा । मेहघ्नः पुष्टिदः श्रेष्ठः परं वृष्यो रसायनम् ॥ ५ ॥

वसन्त कुसुमाकर रस—स्वर्णभस्म और रौप्यभस्म दो-दो भाग, वंगभस्म नागभस्म और कान्तभस्म प्रत्येक ३ भाग पारदभस्म वा रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, प्रवालभस्म और मोती भस्म प्रत्येक ४ भाग लेकर सबको खरल में मर्दन कर गाय के दूध से ईख के रस से और अडूसा, हल्दी, सुगन्धवाला, सफेद कमल, केला तथा केले के कन्द के स्वरस से पृथक् ७ क्रमशः सात भावना देवे। फिर गुलाब के फूल वा कमल के फूल वा मालती या चमेली के फूल तथा कस्तूरी इन यथायोग्य स्वरस से पृथक् ७ भावना देकर गुटिकाकार गोली बनाकर रख लेवे। इस प्रकार भलीभाँति सिद्ध किया हुआ यह रसराज होता है। यह वसन्त कुसुमाकर के नाम से प्रसिद्ध है। इसको दो

वल्ल के प्रमाण की मात्रा ( यथायोग्य मात्रा ) से शर्करा, घृत और मधु के अनुपान से सेवन करना चाहिये। यह सभी पलितरोग को नष्ट करता है मेधाशक्ति बढ़ाता है काम उत्पन्न करता है और सुख देता है, प्रमेह को नष्ट करता है यह पौष्टिक, अत्यन्त वृष्य और श्रेष्ठ रसायन है ॥१-५॥

आयुर्वृद्धिकरं पुंसां प्रजासाधनमुत्तमम्। क्षयकासतृषोन्मादश्वासरक्तविषार्तिजित् ॥ ६ ॥

आयु की वृद्धि करता है, सन्तानकर योगों में उत्तम है, तथा क्षय, कास, तृषा, उन्माद, श्वास रक्तदोष तथा विष दोष को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

सितायुक्चन्दनसंयुक्तमम्लपित्तादिरोगजित्। शुक्लपाण्डुमयं शूलान्मूत्राघाताश्मरीं हरेत् ॥

इसको शर्करा और चन्दन ( घिसा हुआ श्वेतचन्दन ) के साथ सेवन करने से अम्लपित्तादि ( पित्तज ) रोगों को नष्ट करता है और शुक्लवर्ण का पाण्डुरोग ( जिस रोग में रक्त की न्यूनता से शरीर का वर्ण श्वेत हो जाता है उसे श्वेत पाण्डुरोग कहते हैं ) तथा पाण्डुरोग, शूल, मूत्राघात और अश्मरी इन रोगों को नष्ट करता है ॥ ७ ॥

योगवाहि विदं सेव्यं कान्तिश्रीबलवर्धनम्। सुसात्म्यमिष्टभोजी च रमयेत्प्रमदाशतम् ॥८॥

यह रस योगवाही है। इसके सेवन से शरीर की कान्ति, श्री तथा बल की वृद्धि होती है और इसके सेवन के समय सात्म्य मिष्ट पदार्थों का भोजन करने वाला सौ स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है ॥ ८ ॥

मदनं मदयन्मदमुग्रमयन्प्रमदानिवहानतिविह्वलयन्।
सुरते सुखदेरतिविप्लवनेभवसारसुधामयमेव सुहृत् ॥ ९ ॥

यह रस कामदेव के मद को बढ़ाता है, अत्यन्त मद से विह्वल रमणियों को शान्त कराता है ( अनेक रमणियों को तृप्त कराता है ) सुरत के समय सुख पहुंचाता है, भोग शक्ति को बढ़ाता है और संसारी ( कामी ) मनुष्यों के लिये मित्र के समान है ॥ ९ ॥

जलजामृतरस —

शंखक्षीरं शिला धातुर्वङ्गं कुन्दुरुमिन्द्रवल्ककम्। मेहारियोजसंयुक्तं विदारीजीवनीरसैः ॥ १॥

भावयेत्त्रिवारं तु सितोपलसमन्वितम्। जलजामृतविख्यातो रसोऽयं मेहकृच्छ्रनुत् ॥ २ ॥

जलजामृतरस—शंखक्षीर, शुद्धमैनसिल, वङ्गभस्म, नागभस्म और श्वेत अपराजिता के बीजों का चूर्ण इनको समान लेकर एकत्र मर्दन कर विदारीकन्द के स्वरस तथा जीवन्ती के स्वरस से पृथक् २ तीन २ बार भावित कर सुखा कर चूर्ण कर श्वेत शर्करा के अनुपान से सेवन करे। यह 'जलजामृत' नामक प्रसिद्ध रस प्रमेह तथा मूत्रकृच्छ्र को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

प्रमेहपिटिकानां तु प्राक्कार्यं रक्तमोक्षणम्। पाटनं तु विपक्वानां सारां पाने प्रशस्यते ॥ ३ ॥

क्वाथो व्रणघ्नोऽत्र वस्तिर्मूलस्तीक्ष्णैर्विरेचनम्। व्रणप्रतिक्रिया सर्वा कार्याऽत्रापि भिषग्वरैः ॥

प्रमेह पिडिका चिकित्सा—प्रमेह पिडिकाओं का प्रथम रक्त मोक्षण कराना चाहिये और जो पिडिकायें पक गयी हों उनका पाटन ( चीरा लगाना ) आदि कर्म करना चाहिये और उसमें पान करने के लिये व्रणनाशक क्वाथ का प्रयोग, वस्ति कर्म और तीक्ष्ण मूल दन्ती आदि द्रव्यों से विरेचन कराना चाहिये और व्रण रोग में कही हुई सारी क्रिया ( चिकित्सा ) इस प्रमेह पिटिका में भी श्रेष्ठ वैद्य को करनी चाहिये ॥ ३-४ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम्।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी। शालिमुद्गकुलित्थाश्च मेहिनां देहिनां हिताः ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—सावा, कोदो, वन कोदो, गेहूं, चना, अरहर शालिधान का चावल, मूंग, कुलथी ये सब पदार्थ प्रमेह के रोगियों के लिये हितकर हैं ॥ १ ॥

मेदोघ्ना यन्मूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु। यवास्तस्मात्प्रशस्यन्ते मेहेषु च विशेषतः ॥ २ ॥

प्रमेह रोग में जौ विशेष कर लाभदायक है क्योंकि वह मेदनाशक, मूत्र को बांधने वाला और सब धातुओं के लिये इसकी प्रशंसा है ॥ २ ॥

तिक्तशाकं पटोलानि जाङ्गलामिषजा रसाः। सैन्धवं मरिचं चैव मेहिनामाहरेद्भिषक् ॥ ३ ॥

तिक्त रस वाले शाक, परवर, जाङ्गल जीवों का मांस रस, सेंधा नमक और मरिच इन सब द्रव्यों को वैद्य प्रमेह के रोगियों को आहार के लिये देवे ॥ ३ ॥

सदासनं दिवा निद्रा नवान्नानि दधीनि च। मूत्रवेग धूम्रपान स्वेद शोणितमोक्षणम् ॥ ४ ॥
सौवीरक सुरा सूक्त तक्र क्षारं घृत गुडम्। अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ५ ॥

सदा आसन पर बैठ रहना, दिन में सोना, नया अन्न का भक्षण करना, दही खाना, मूत्र के वेग को रोकना, धूम्रपान करना, स्वेद कर्म करना, रक्तमोक्षण कराना, सौवीर, सुरा, सूक्त तक्र, क्षार, घृत, गुड, अम्ल रस वाले पदार्थ ईख का रस, पिष्ट अन्न और आनूप मांस इन सब पदार्थों को प्रमेह का रोगी त्याग देवे ॥ ४-५ ॥

इति प्रमेहप्रकरणं समाप्तम्।

---

## अथ ग्रन्थान्तरे बहुमूत्रमेहनिदानम्।

काये स्वेदोऽङ्गगन्धः करपदरसनानेत्रकर्णोपदेहः
कासः शैथिल्यमङ्गेऽरुचिरपि पिटिकाः कण्ठताल्वोष्ठशोषः।
दाहः शीतप्रियत्वं धवलिमतनुता श्वासता पीतमूत्रं
मूत्रस्थाः मक्षिकाश्चाश्चिरमपि बहुमूत्राख्यरोगे प्रवृद्धे ॥ १ ॥

बहुमूत्र प्रमेह—जिस का बहुमूत्र रोग बढ़कर पुराना हो जाता है उसके शरीर से अधिक गन्ध निकलती है, हाथ, पैर, जिह्वा, नेत्र और कर्ण स्थान में उपदेह (लेप किये हुए के समान) होता है, कास, अङ्गों में शिथिलता, अरुचि और पिटिकायें होती हैं, कण्ठ-तालु और ओठ सूखने लगते हैं, दाह और शीत से प्रेम (शीत की इच्छा) होता है शरीर का वर्ण श्वेत हो जाता है, शरीर में अधिक थकान (श्वास) और मूत्र का वर्ण पीला होता है और मूत्र पर मक्खियां बैठती हैं। ये सब लक्षण होते हैं ॥ १ ॥

वाग्भट—स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे शय्यासनस्वप्नसुखाभिलाषः।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गता केशनखातिवृद्धिः ॥ १ ॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो माधुर्यमास्ये करपाददाहः।
भविष्यतो मेहगणस्य लिङ्गं मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ २ ॥

शरीर से अधिक स्वेद होना, अङ्ग से गन्ध का निकलना, अङ्ग का शिथिल होना, शय्या पर बैठे रहने, सोये रहने आदि सुख की इच्छा होना, हृदय, नेत्र, जीभ, कान इनमें उपदेह शरीर का घन (स्तम्भ) होना, केश तथा नखों का अधिक बढ़ना शीत से प्रेम (शीत की इच्छा होना), गला तथा तालु का सूखना, मुँह का स्वाद मधुर रहना, हाथ पैरों में दाह होना और मूत्र पर चींटियों का आना ये सब प्रमेहों के होने के लक्षण होते हैं ॥ १-२ ॥

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं मधूपमं स्याद् द्विविधो विचारः।
संतर्पणाद्वा कफसम्भवः स्यात्क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥ ३ ॥

प्रमेह को मधुर, चिकना तथा मधु के समान देखकर दो प्रकार का विचार करना चाहिये। सन्तर्पण से कफज मेह होता है और दोषों के (कफ-पित्तादि के) क्षीण होने से वातज प्रमेह (मधुमेह) होता है ॥ ३ ॥

सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः।
साध्या न ते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टम् ॥ ४ ॥

साध्यासाध्य विचार—पूर्वकथित पूर्वरूपों सहित कफ-पित्त मिश्रित मेह तथा वातज मेह क्रम से साध्य नहीं है (असाध्य हैं)। पित्तज मेह याप्य हैं और यदि मेद अधिक दूषित नहीं हुआ हो तो साध्य भी होते हैं ॥ ४ ॥

## अथ बहुमूत्रचिकित्सा।

त्रिफलारग्वधपाठामधुयुतैः कृतः। कुम्भयोनिरिवाम्भोधिं बहुमूत्रं तु शोषयेत् ॥ १ ॥

बहुमूत्र की चिकित्सा—आँवला, हर्रा, बहेड़ा, बांस के पत्ते, नागरमोथा, पुरइनपाढ़ी, अमलतास इनका काथ कर शीतल होने पर मधु मिलाकर सेवन करने से इस प्रकार बहुमूत्र सूखता है जिस प्रकार अगस्त्य मुनि के पीने से समुद्र सूख गया था ॥ १ ॥

तारकेश्वररस—मृतं सूतं मृतं वङ्गं मृतं लोहाभ्रकं समम् ।
मर्द्यं मधुना सार्धं रसोऽयं तारकेश्वरः । माषैकं लेहयेत्क्षौद्रैर्बहुमूत्रापनुत्तये ॥ १ ॥

तारकेश्वर रस—पारदभस्म या रससिंदूर, बंगभस्म, लोहभस्म और अभ्रकभस्म, समभाग लेकर मर्दन कर मधु के साथ घोटकर रख लेवे। इसमें से एक माशा के प्रमाण की मात्रा से मधु के अनुपान से चाटने से बहुमूत्र रोग को नष्ट करता है। इसका नाम तारकेश्वर रस है ॥ १ ॥

आनन्दभैरववटी—

विषोषणकणाटङ्कहिङ्गुलैः समचूर्णकैः । आनन्दभैरवस्यास्य गुञ्जाऽतीसारमेहनुत् ॥ १ ॥

आनन्द भैरव वटी—शुद्ध मीठा विष, मरिच, पीपरि, शुद्ध टङ्कण, शुद्ध हिंगुल, समान लेकर चूर्ण कर एकत्र मर्दन कर विधिपूर्वक वटी बना इस 'आनन्द भैरव' नामक रस के सेवन करने से अतीसार तथा प्रमेह रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

इति बहुमूत्रप्रमेहप्रकरणं समाप्तम्

---

# अथ मेदोरोगनिदानम् ।

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः । मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्धते ॥ १ ॥

मेदोरोग निदान—परिश्रम नहीं करने से, दिन में सोने से, कफकारक आहार के सेवन करने से प्रायः करके मधुर अन्न या रस स्नेह से मिलकर मेद को बढ़ाता है ॥ १ ॥

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः । मेदस्तु चीयते तस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

मेद की सम्प्राप्ति—मेद के बढ़ने के कारण सब धातुओं के मार्ग के आवृत हो जाने से दूसरे धातुओं (रस-रक्तादि) की पुष्टि नहीं होती है केवल मेद ही बढ़ता है और मेद बढ़ने से मनुष्य सब कामों में अशक्त हो जाता है ॥ २ ॥

मेदस्विलक्षणम्—

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः । युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्ध्यैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ १ ॥

बढ़े हुए मेद के लक्षणादि—श्वास शीघ्र २ आना, तृषा, मोह, निद्रा अधिक होना, एका-एक श्वास का अवरोध तथा अङ्ग शिथिल होना, क्षुधा लगना, स्वेद अधिक होना, शरीर से दुर्गंध निकलना, शक्ति अल्प होना और मैथुन शक्ति का कम होना ये सब लक्षण मेद के बहुत बढ़ जाने पर उपस्थित हो जाते हैं ॥ १ ॥

मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थि तिष्ठति । अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ २ ॥

मेद धातु प्रायः करके सब जीवों के उदर और अस्थि में ही स्थित होता है इसलिये मेदस्वियों का (प्रथम) उदर ही बढ़ता है ॥ २ ॥

मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्कोष्ठे वायुर्विशेषतः । चरन्संधुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ३ ॥

तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं काङ्क्षयत्यपि । विकारांश्चाश्नुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ४ ॥

मेद के बढ़ने से जठराग्नि की प्रदीप्तता—मेद के बढ़ जाने के कारण सब स्रोतों के आवृत हो जाने से विशेष कर कोष्ठ में चलती हुई वायु अग्नि को तीव्र कर देती है इससे उसका आहार पचकर सूखता रहता है इसलिये आहार किया अन्न शीघ्र पच जाता है और फिर अन्न की इच्छा होती है। इस इच्छा के समय अन्न नहीं मिलने पर दूसरे २ घोर विकार उत्पन्न हो जाते हैं ॥

एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ । एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलो यथा ॥ ५ ॥

दुश्चिकित्स्यता—ये दोनों अग्नि और वायु विशेष कर उपद्रव करने वाले होते हैं और ये स्थूल (मेदस्वी) को इस प्रकार दहन करते हैं जिस प्रकार वन को दावाग्नि ॥ ५ ॥

मेदस्यतीव संवृद्धे सहसैवानिलादयः । विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ६ ॥

मेद के अत्यन्त बढ़ जाने से अकस्मात् वायु अत्यन्त कठिन विकारों (रोगों) को करके शीघ्र जीव को नष्ट कर देती है ॥ ६ ॥

स्थूललक्षणम्—

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः । अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ७ ॥

अतिस्थूल के लक्षण—मेद तथा मांस के अधिक बढ़ जाने के कारण जिस मनुष्य के नितम्ब, उदर और स्तन हिलते रहते हैं और उसे वृद्धि ( शरीर की स्थूलता या मांस वृद्धि ) यथायोग्य नहीं होती है तथा यथोचित उत्साह नहीं होता है। ऐसे मनुष्य को 'अतिस्थूल' कहते हैं ॥ ७ ॥

स्थूले स्युर्दुस्तरा रोगा विसर्पाः सभगन्दराः। ज्वरातिसारमेहार्शः श्लीपदापचिकामलाः ॥८॥

अतिस्थूलता से उत्पन्न रोग—स्थूलता के कारण मनुष्य को विसर्प, भगन्दर, ज्वर, अतिसार, मेह, अर्श, श्लीपद अपची और कामला आदि भयङ्कर रोग हो जाते हैं ॥ ८ ॥

कृशलक्षणम्—

शुष्कस्फिगुदरग्रीवो धमनीजालसन्ततः। त्वगस्थिशेषोऽतिकृशः स्थूलपर्वा नरः स्मृतः ॥९॥

कृश के लक्षण—जिस मनुष्य के नितम्ब, उदर, गला, सूखे हुए हों नस सब फैली हुई दिखाई देवे, त्वचा और अस्थियां बची हुई हों और पर्व स्थूल हों उसे 'अतिकृश' कहते हैं ॥९॥

## अथ मेदोरोगचिकित्सा।

क्षौद्रेण त्रिफलाक्वाथः पीतो मेदोहरः स्मृतः। शीतीभूतं तथोष्णाम्बु मेदोघ्नं क्षौद्रसंयुतम् ॥१॥

मेदरोग की चिकित्सा—आँवरा, हर्रा, बहेड़ा समान लेकर क्वाथ बनाकर शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से मेद का नाश होता है और उष्ण कर शीतल किये जल में मधु मिला कर पान करने से भी मेद का नाश होता है ॥ १ ॥

उष्णं भक्तस्य मण्डं वा पिबेत्कृशतनुर्भवेत्। सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ॥ २ ॥

मधुना सक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः। क्षारं वा तालपत्रस्य हिङ्गुयुक्तं पिबेन्नरः ॥

मेदोवृद्धिविनाशाय भक्तमण्डसमन्वितम् ॥ ३ ॥

भात का गरम व मांड पीने से शरीर कृश होता है अर्थात् मेद नष्ट होता है तथा चाव, जीरा सोंठि, पीपरि, मरिच, शुद्ध हींग, सोंचरनमक, चित्रकमूल इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर सत्तू में मिलाकर ( १६ गुने सत्तू में मिलाकर ) मधु के साथ पान करने से मेद को नष्ट करता है और अग्नि को दीप्त करता है अथवा ताड़ पत्र के क्षार को शुद्ध हींग के साथ मिलाकर भात के मांड के साथ पान करने से मेद वृद्धि नष्ट होती है ॥ १-३ ॥

हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रं चूतत्वचो दाडिमवल्कलं च।

एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां जम्ब्वाः कषायश्च नराधिपानाम् ॥ ४ ॥

हर्रा, लोध, नीम की पत्ती, आम की छाल, अनार की छाल इनका अङ्गराग ( उबटन ) विधि पूर्वक बनाकर लगाने से स्त्रियों के वर्ण की सुन्दरता बढ़ती है इसी प्रकार जामुन के क्वाथ से राजाओं की सुन्दरता बढ़ती है ॥ ४ ॥

फलत्रिकं त्रिकटुकं सतैललवणान्वितम्। षण्मासादुपयोगेन कफमेदोनिलापहम् ॥ ५ ॥

फल त्रिकादियोग—आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, सोंठि पीपरि मरिच, इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर तेल और नमक के साथ मिलाकर छै मास तक सेवन करने से कफ-मेद और वायु को नष्ट करता है ॥ ५ ॥

गुडूचीभद्रमुस्तानां प्रयोगस्त्रैफलस्तथा। तक्रारिष्टप्रयोगश्च प्रयोगो माक्षिकस्य च ॥ ६ ॥

गुडूच्यादि योग—गुरचि और नागरमोथा का चूर्ण वा त्रिफला का चूर्ण तक्रारिष्ट अथवा मधु के सेवन करने से मेदरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

त्र्यूषणाद्यं लोहम्—

त्र्यूषणं त्रिफलाचव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम्। वाकुची सैन्धवं चैव सौवर्चलमयोरजः ॥ १ ॥

माषमात्रमतश्चूर्णं लिहेदाज्यमधुप्लुतम्। अतिस्थौल्यमिदं चूर्णं निहन्त्यग्निविवर्धनम् ॥ २ ॥

त्र्यूषणाद्य लोह, सोंठि, पीपरि मरिच, आँवरा, हर्रा बहेड़ा, चाव, चित्रमूल, विड़नमक, औद्भिद नमक, वाकुची बीज सेंधानमक, सोंचर नमक और लोहभस्म समान भाग लेकर चूर्ण एकत्र-मर्दन कर एक माषा के प्रमाण की मात्रा से मधु और घृत के साथ मिलाकर चाटने से अत्यन्त स्थूलता को यह चूर्ण नष्ट करता है और अग्नि को बढ़ाता है ॥ १-२ ॥

मेदोघ्नं मेहकुष्ठघ्नं श्लेष्मव्याधिनिबर्हणम्।

आऽऽहारे नियमश्चात्र विहारे वा विधीयते। त्र्यूषणाद्यमिदं चूर्णं रसायनमनुत्तमम् ॥ ३ ॥

इसके सेवन करने से मेद, प्रमेह, कुष्ठ तथा कफज व्याधियों का नाश होता है। इसके सेवन के समय आहार-विहार का कोई नियम नहीं है। यह 'व्योषाद्य चूर्ण' (लौह) नामक ओषधि उत्तम रसायन है॥ १॥

नवकगुग्गुलु—व्योषाग्निमुस्तात्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम्।
खादन्सर्वाञ्जयेद् व्याधीन्मेदःश्लेष्मामवातजान्॥ १॥

नवक गुग्गुलु—सोंठि, पीपरि, मरिच, नागरमोथा, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा और वायविडंग सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके समान भाग शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर विधिपूर्वक वटी बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के मेदोज, कफज और आम वातज रोग नष्ट होते हैं॥ १॥

लेपोद्वर्तने—

हितो मोचरसो युक्तश्चूर्णैः समुद्रफेनजैः। प्रलेपात् निहन्त्याशु देहदौर्गन्ध्यमुत्कटम्॥ १॥

*लेप और उद्वर्तन—मोचरस में समुद्रफेन का चूर्ण मिलाकर लेप करना हितकर है। यह देह की तीव्र दुर्गन्धि को शीघ्र नष्ट करता है॥ १॥*

वासादलरसालेपाच्छङ्खचूर्णेन मूर्च्छितात्। बिल्वपत्ररसो वाऽपि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः॥२॥

अड़ूसा के पत्तों के स्वरस में शङ्खभस्म मिलाकर अथवा बेल के पत्तों के रस को शरीर पर लेप करने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है॥ २॥

हरीतकीं तु सम्पिष्य गात्रमुद्वर्तयेत्ततः। पश्चात्स्नानं प्रकुर्वीत देहस्वेदप्रशान्तये॥ ३॥

हर्रा को भलीभाँति पीस कर शरीर पर उद्वर्तन (उबटन) करके पश्चात् स्नान करने से देह का स्वेद शमन होता है॥ ३॥

चन्द्राम्बुपीतलोध्रशिरीषोशीरकेसरैः। उद्वर्तनं भवेद् ग्रीष्मे स्वेदोद्गमनिवारणम्॥ ४॥

कपूर, श्वेतचन्दन या पद्मकाठ, लोध, शिरीष, खस, नागकेसर सम भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर ग्रीष्मऋतु में उद्वर्तन करने से स्वेद का अधिक होना नष्ट होता है॥ ४॥

बब्बूलस्य दलैः सम्यग्वारिणा परिपेषितैः। गात्रमुद्वर्त्य पश्चाद्धरीतक्या सुपिष्टया॥ ५॥
भूय उद्वर्तनं कृत्वा पश्चात्स्नानं समाचरेत्। प्रस्वेदो मुच्यते क्षिप्रं सततस्वेद समाचरेत्॥६॥

बबूर के पत्तों को विधिपूर्वक जल के साथ पीसकर शरीर पर उद्वर्तन करे, फिर हर्रे को भली-भाँति पीस कर उबटन करे पश्चात् स्नान कर लेवे। इस प्रकार करने से शीघ्र स्वेद का अधिक आना नष्ट होता है॥ ५-६॥

जम्बूदलार्जुनतरुप्रसवैः सकुष्ठैरुद्वर्तनं प्रकुरुते प्रतिवासरं यः।
प्रस्वेदविप्रुषकणिकानिकरानुषङ्गाद्दुर्गन्धिता वपुषि तस्य पदं न धत्ते॥ ७॥

जामुन के पत्ते, अर्जुन वृक्ष के फूल या फल और कूठ को समान लेकर पीस कर प्रतिदिन उबटन करने पर स्वेद आने से शरीर की दुर्गन्धि नष्ट होती है॥ ७॥

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः।
प्रियङ्गुलोध्राभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदिष्टः॥ ८॥

शिरीष की छाल या पत्ते या फल, रोहिसतृण (गुलाब घण्डा), नागकेसर, लोध समभाग लेकर उबटन बनाकर शरीर पर लेप करने से त्वचा के दोष तथा स्वेद नष्ट होता है। प्रियङ्गु, लोध, हर्रा और चन्दन समान लेकर पीस कर उबटन करने से शरीर की दुर्गन्धि को नष्ट करता है॥८॥

बृहत्त्रिफलाद्यं तैलम्—

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः। निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः॥ १॥
गुडूचीन्द्रयवाकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः। तैलमेभिः समं पक्वं सुरसादिरसप्लुतम्॥ २॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजितम्। स्थौल्यालस्यकण्ड्वादीन् जयेत्कफकृतान्गदान्॥

*त्रिफलादि तैल*—आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, अतीस, मूर्वा मूल, निशोथ, चित्रकमूल, अड़ूसा, नीम की छाल, अमलतास, बच, छितवन की छाल, हरदी, दारु हरदी, गुरुचि, इन्द्रजौ, पीपरि, कूठ, सर्सों, सोंठ सम भाग लेकर कल्क कर जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना सुरसादिगण की ओषधियाँ (श्वेत तुलसी, काली तुलसी, गन्धपलास, वन तुलसी, गन्धतृण, भूस्तृण, राई, सर्सों, काली वन तुलसी, कासमर्द (कसौंजर), नकछिकनी,

भार्गी, कायफर, सम्भालू, गोरो (श्वेत तथा नीलपुष्प वाली), चन्द्रशूर, मूसाकानी (मूषाकर्णी) बमनेठी, काकनासा, मकोय, महानिम्ब) का स्वरस या क्वाथ मिलाकर विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर इस तैल को पान अभ्यङ्ग या गण्डूषधारण, नस्य और बस्ति कर्म करने से स्थौल्य, आलस्य, कण्डु आदि रोग तथा कफज व्याधि नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

महासुगन्धितैलम्—

चन्दनं कुङ्कुमोशीरं प्रियङ्गुश्च तथा रोचनम् । तुरुष्कागुरुकस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ १ ॥
जातीकक्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च । नलिका नलदं कुष्ठं हरेणुं तगरं प्लवम् ॥ २ ॥
नखं व्याघ्रनखं स्पृक्का वालको दमनकं तथा । प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशं शाणमात्रकं ॥ ३ ॥
महासुगन्धिकं ह्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत् । स्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ ४ ॥

महासुगन्धि तैल—लालचन्दन, केसर, खस, फूल प्रियङ्गु, कचूर, गोरोचन, शिलारस, अगर कस्तूरी, कपूर, जावित्री, जायफल, कङ्कोलमरिच, पूगी फल, लवंग, नलिका नाम की सुगन्धि द्रव्य की छाल (नरसल) पीली खस, कूठ, रेणुका, तगर, नागरमोथा नखी, व्याघ्र नखी, स्पृक्का, सुगन्ध वाला, दौना, पुण्डरिया, कचूर, प्रत्येक एक २ शाण की मात्रा से लेकर कल्क कर मूर्च्छित तिल के तैल एक प्रस्थ में मिलावे और पाकार्थ जल चार प्रस्थ मिलाकर तैल सिद्ध करे इस महासुगन्धित तैल के व्यवहार से स्वेदनिर्गम, मैल, शरीर की दुर्गन्धि, कण्डु और कुष्ठ आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा । युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥
सुभगो दर्शनीयश्च गच्छेद्वै प्रमदाशतम् ।
वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते । अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥

इस तैल के शरीर पर मालिश करने से सत्तर वर्ष का वृद्ध भी युवा के समान वीर्यवान् और स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय और सुन्दर देखने के योग्य रूपवान् तथा सौ स्त्रियों के साथ भोग करने की शक्ति वाला हो जाता है, वन्ध्या स्त्री भी गर्भ धारण करती है, नपुंसक पुरुष भी पुरुषत्व को प्राप्त होता है, पुत्र नहीं होने वाले को पुत्र होता है और मनुष्य सौ वर्ष तक जीता है ॥ ५-६ ॥

## रसाः ।

तत्राऽऽदौ रसभस्मयोग —

रसभस्मवल्लमात्रं लीढ्वा मधुना पिबेदनु क्षौद्रम् ।
कोष्णाम्बुना समेतं स्थौल्यं मेदःकृतं जयति ॥ १ ॥

रसभस्म का योग—पारद भस्म अथवा रससिन्दूर को एक वल्ल (२ रत्ती) के प्रमाण की मात्रा से लेकर मधु मिलाकर चाटने से और मधु को उष्णोदक में मिलाकर अनुपान करने से मेद से उत्पन्न स्थूलता नष्ट होती है ॥ १ ॥

त्रिमूर्तिरस —

सूतगन्धकयोर्भस्म सम संमेल्य भावयेत् । निर्गुण्डीपत्रतोयेन मुसलीकन्दवारिणा ॥ १ ॥
एवं सिद्धमनु माषमात्रं रसमनुत्तमम् । लोध्रचूर्णेन चाग्नीसाक्षपूर्णमेवं त्रिमूर्तिकम् ॥२॥
षट्कटु त्रिफला पञ्चलवणावल्गुजस्य तत् । मेदः शोथाग्निमान्द्यामवातकफगदापहम् ॥३॥

त्रिमूर्ति रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, लोहभस्म समान लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर लोहभस्म मिलाकर मर्दन कर मेउड़ी के पत्ते के स्वरस और मुसलीकन्द के रस से पृथक् २ भावित कर सुखा कर चूर्ण कर रख सिद्ध उत्तम रस को एक माशा लेकर लोध के चूर्ण और मधु के साथ मिलाकर चाट लेवे और ऊपर से पीपरि, पिपरामूल, चव्य चित्रकमूल, सोंठ, मरिच त्रिफला हर्रा, बहेड़ा, आंवला पांचो प्रकार के नमक और बाकुची बीज समान लेकर चूर्ण कर त्रिशु प्रमाण (एक माशा) की मात्रा से खावे तो मेदरोग शोथ, मन्दाग्नि आमवात और कफज रोग नष्ट होते हैं ॥ १-३ ॥

वडवाग्निरस—

शुद्धसूतं मृतं ताम्रं तालं बोलं समं समम् । अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्यं बोलैर्देयं द्विगुञ्जकम् ॥ १ ॥

वडवाग्निरसो नाम स्थौल्यं शुल्कं नियच्छति। पलं क्षौद्रं पलं तोयमनुपानं पिबेत्सदा ॥ २ ॥

वडवाग्नि रस—शुद्ध पारा, ताल भस्म, ताम्रभस्म, शुद्ध गन्धक प्रत्येक सम भाग लेकर प्रथम पारा गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिलाकर मदार के दूध के साथ दिन भर मर्दन कर सुखाकर रख लेवे। इसको दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा में मधु के साथ चाटने से यह 'वडवाग्नि' नामक रस स्थूलता और शोथ को नष्ट करता है। इसके सेवन के पश्चात् एक पल मधु को एक पल जल में मिलाकर अनुपान करना ( पीना ) चाहिये ॥ २ ॥

पथ्यापथ्यम्—

पुराणशाल्यो मुद्गकुलत्थोद्दालकोद्रवाः। लेखना बस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने शालिचावल या चावल, मूंग, कुल्थी, वनकोदो कोदो लेखन बस्ति, ये सब मेद वाले रोगियों को सदा सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः। हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ २ ॥

परिश्रम करना, चिन्ता करना, मैथुन करना, रास्ते चलना, मधु सेवन, अधिक जागना, यव तथा सावाँ का भोजन करना ये सब कर्म स्थूलता को अवश्य नष्ट करते हैं ॥ २ ॥

अस्वप्नं च व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च। स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणैव प्रवर्धयेत् ॥

निद्रा का त्याग, मैथुन, परिश्रम और चिन्ता को स्थूलता नष्ट करने की इच्छा करने वाले को क्रम से बढ़ाना चाहिये ॥ ३ ॥

इति मेदोरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथोदरनिदानम्।

रोगाः सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ सुतरामुदराणि तु। अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसञ्चयात् ॥१॥

उदररोग निदान—प्रायः करके सभी रोग मन्दाग्नि मूलक होते हैं, उसमें भी उदर रोग तो अवश्य ही मन्दाग्नि मूलक होते हैं। उदर रोग अजीर्ण से, मलिन ( दूषित ) अन्नों के खाने से तथा मल के संचय से भी होते हैं ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे—

अतिसञ्चितदोषाणां पापकर्म च कुर्वताम्। उदराण्युपजायन्ते मन्दाग्नीनां विशेषतः ॥ २ ॥

वातादि० दोषों के अत्यन्त दूषित होकर संचित हो जाने से, पाप-कर्मों के करने से और विशेष कर मन्दाग्नि से उदररोग होते हैं ॥ २ ॥

संप्राप्तिमाह—रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि सञ्चिताः।
प्राणाग्न्यपानान्सन्दूष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ ३ ॥

उदररोग की सम्प्राप्ति—दूषित हुए वातादि दोष संचित होकर स्वेद तथा अम्बुवाही स्रोतों को रोककर प्राणवायु, अग्नि तथा अपानवायु को दूषित करके मनुष्यों को उदररोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ ३ ॥

सुश्रुते—तत्पूर्वरूपं बलवर्णकाङ्क्षा वलीविनाशो जठरेऽपि राज्यः।
जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्यो बस्तौ रुजः पादगतश्च शोफः ॥ ४ ॥

जब उदररोग होने को होता है तो उसके पहले बल तथा वर्ण की आकाङ्क्षा होती है, वली ( त्रिवली ) में दोष आ जाता है, उदर पर रेखा हो जाती है, अन्न के जीर्ण होने का ज्ञान नहीं होता है, दाह-बस्ति स्थान में पीड़ा और पैरों में शोथ होता है ॥ ४ ॥

उदरस्य सामान्यलक्षणमाह—

आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता। शोथः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ ५ ॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि।

उदररोग के सामान्य लक्षण—उदर में आध्मान चलने की शक्ति की कमी, दुर्बलता मन्दाग्नि, शोथ, अङ्गों में शिथिलता अधोवायु तथा मल का अवरोध, दाह, तन्द्रा, ये सब लक्षण प्रायः करके सभी उदररोगों में होते हैं ॥ ५ ॥

निर्जलोदरलक्षणम्—

सर्वं स्वतोयमरुणमशोफं नातिभारिकम्। गवाक्षितं सिराजालैः सदा गुडगुडायते ॥ ६ ॥

निर्जलोदर के लक्षण—जिस उदररोग के रोगी के उदर में कहीं भी जल नहीं हो, वर्ण शरीर का अरुण हो ( शरीर पर रक्त की लालिमा हो ) पेट में शोथ कहीं नहीं हो, पेट अधिक भारी नहीं हो, सिराओं का जाल दिखाई पड़ता हो और पेट सदा गुड़गुड़ाता हो उसे 'निर्जलोदर' कहते हैं ॥ ६ ॥

उदराणां संख्या—

पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः। सम्भवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक् शृणु ॥ ७ ॥

उदररोग की संख्या—पृथक् २ दोषों से ( वातादिक पृथक् २ ) तीन, समस्त दोषों से ( सन्निपात से ) प्लीहा से एक, बद्ध से एक, क्षत से एक और जल से एक इस प्रकार आठ तरह के उदररोग होते हैं इनका पृथक् २ लक्षण निम्न है ॥ ७ ॥

वातोदरलक्षणमाह—

तत्र वातोदरे शोफः पाणिपान्नाभिकुक्षिषु। कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥ ८ ॥
शुष्ककासोऽङ्गमर्दोऽधो गुरुता मलसंग्रहः। श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्रासवत् ॥ ९ ॥
सतोदभेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम्। आध्मातदृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ॥
वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतो गतिः ॥ १० ॥

वातोदर के लक्षण—जिस उदररोग में हाथ-पैर-नाभि और कुक्षिस्थान में शोथ कुक्षि पार्श्व देश, उदर, कटि, पृष्ठ इन स्थानों में पीड़ा, पर्वों में छेदने के समान पीड़ा और सूखा कास होता है, शरीर टूटता है शरीर के अधोभाग ( नाभि से नीचे ) में गुरुता और मल का अवरोध हो जाता है, त्वचा आदि ( त्वचा नख नेत्रादि ) श्याम या अरुण वर्ण के हो जाते हैं और अचानक उदर में वृद्धि और ह्रास होता है ( पेट फूलता और कम होता है ), उदर में तोद ( सूई चुभाने के समान पीड़ा ) तथा भेद ( फटने के समान ) होता है, पतली तथा काली सिराओं से उदर घिरा रहता है, फूले हुए चमड़े की थैली पर ठोंकने के समान उदर ठोंकने से शब्द करता है और उदर में वायु पीड़ा तथा शब्द करता हुआ सर्वत्र विचरता रहता है उसे वातोदर कहते हैं ॥

पैत्तिकमाह—पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तृट् कटुकास्यता।
भ्रमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ ११ ॥
पीतताम्रशिरानद्धं सस्वेदं सोष्म दह्यते। धूमायते मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १२ ॥

पित्तोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में ज्वर मूर्च्छा दाह तृषा मुख का स्वाद कटु, भ्रम और अतिसार होता है, त्वचा, नख, नेत्रादि पीत वर्ण के होते हैं और उदर हरे रंग का हो जाता है, पेट ताम्र वर्ण तथा पीत वर्ण की सिराओं से घिरा रहता है, स्वेद, उदर में उष्मा तथा दाह होता है, धूवें के गन्ध के समान गन्ध का डकार आता है, स्पर्श करने से उदर मृदु ज्ञात होता है, शीघ्र पाक होता है ( अर्थात् जलोदरत्व को प्राप्त हो जाता है ) और पीड़ा होती है, उसे पित्त के कोप का रोग ( पित्तोदर ) कहते हैं ॥ ११-१२ ॥

श्लैष्मिकमाह—श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापः श्वयथुगौरवम्।
निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ १३ ॥
उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत्। चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥

कफोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में अङ्गों में ग्लानि, सुन्नता, शोथ, गुरुता निद्रा, उत्क्लेश, अरुचि, श्वास और कास होता है तथा त्वचा, नख, नेत्रादि श्वेतवर्ण के हो जाते हैं, उदर भीगे कपड़े से लिप्त की भांति स्निग्ध श्वेत तथा बड़ी रेखाओं से घिरा हुआ रहता है पेट देर में बढ़ता है तथा स्पर्श करने पर कठिन, शीत, गुरु और स्थिर ज्ञात होता है, उसे कफ के कोप का उदर रोग अर्थात् कफोदर कहते हैं ॥ १३-१४ ॥

सान्निपातिकमाह—स्त्रियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्त्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः।
यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गराँश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १५ ॥

तेनाऽऽशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम्।
तच्छीतवातातपदुर्दिनेषु विशेषतः कुप्यति दह्यते च।
स चाऽऽतुरो मूर्च्छति सम्प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृष्णया च॥ १६॥
दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध।

सन्निपातोदर के लक्षण—दुष्ट प्रकृति की स्त्रियां (अथवा दुष्ट पुरुष) अपना नख, रोम, मूत्र मल तथा आर्तव, अन्न तथा पान की वस्तुओं में मिलाकर पति अथवा अन्य किसी पुरुष को खिला देती हैं (पति या अन्य पुरुष को अपने वश में करने के लिये स्त्रियां अपना आर्तव आदि खिला कर अपने वश में करती हैं) उससे अथवा शत्रु आदि के द्वारा विष (किसी अन्न-पान के संयोग से दिया हुआ) भक्षण करने से अथवा दूषित जलादि के सेवन से अथवा दूषी विष के सेवन से रक्त शीघ्र दूषित हो जाता है और तीनों दोष कुपित होकर अत्यन्त कठिन त्रिदोषज उदर रोग को करते हैं उससे उदर में शीतकाल, वायु के समय, आतप (धूप) के समय और दुर्दिन (बादल पानी आदि के समय) में विशेष कर रोग का कोप होता है, तथा उदर में दाह होता है और रोगी मूर्च्छित होता रहता है, तथा पाण्डुवर्ण का और दुर्बल हो जाता है, तृषा से युक्त रहा करता है। इसको सन्निपातोदर या दूष्योदर भी कहते हैं। आगे प्लीहोदर कहेंगे॥१५-१६॥

प्लीहोदरयकृदुदरलक्षणम्—

विदाह्यभिष्यन्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च॥ १७॥
प्लीहाभिवृद्धिं कुरुतः प्रवृद्धौ प्लीहोत्थमेतज्जठरं वदन्ति।
तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चाऽऽतुरोऽत्र॥ १८॥
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः।
सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्दाल्युदरं तदेव॥ १९॥

प्लीहोदर के लक्षण—जो मनुष्य दाहकारक तथा अभिष्यन्दी पदार्थों का अधिक सेवन करते हैं उनके रक्त और कफ दूषित होकर प्लीहा को बढ़ा देते हैं, इस बढ़े हुए प्लीहा को प्लीहोदर कहते हैं। यह प्लीहा बायें ओर पेट में बढ़ती है जिससे रोगी विशेष कष्ट पाता रहता है और इसमें मन्द २ ज्वर और मन्दाग्नि होती है, यह रोग कफ और पित्त के लक्षणों से युक्त रहता है, रोगी का बल अत्यन्त क्षीण और शरीर पाण्डु हो जाता है ये सब लक्षण प्लीहोदर के हैं। साथ ही दाहिने पार्श्व में यकृत् जब दूषित हो जाय तब उसे 'यकृदुदर' कहते हैं॥ १७-१९॥

कफजप्लीहोदर—

प्लीहा निर्वेदनः श्वेतकठिनः स्थूल एव च। महापरिग्रहः शीतश्लेष्मसम्भव उच्यते॥ २०॥

कफज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में पीड़ा नहीं होती हो, श्वेत तथा कठिन स्थूल, बहुत बड़ी (प्लीहा) हो वह शीत तथा कफ से होनेवाली प्लीहा कही जाती है॥ २०॥

सज्वरः सपिपासश्च स्वेदनस्तीव्रवेदनः। पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पैत्तिक उच्यते॥ २१॥

पित्तज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में ज्वर तृषा, स्वेद और कठिन पीड़ा होती हो, और विशेष कर शरीर का वर्ण पीला हो उसे 'पैत्तिक प्लीहोदर' कहते हैं॥ २१॥

नित्यमानद्धकोष्ठश्च नित्योदावर्तपीडितः। वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते॥२२॥

वातिकप्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में नित्य कोष्ठ में आनाह उदावर्त की पीड़ा और वेदना हो उसे 'वातिक प्लीहोदर' कहते हैं॥ २२॥

रक्तजप्लीहोदर—

क्लमोऽतिदाहः सम्मोहो वैवर्ण्यं गात्रगौरवम्। रक्तोदरं भ्रमो मूर्च्छा ज्ञेयं रक्तजलक्षणम्।
त्रयाणामपि रूपाणि प्लीह्न्यसाध्ये भवन्ति हि॥ २३॥

रक्तज प्लीहोदर के लक्षण—जिस प्लीहोदर में ग्लानि अत्यन्त दाह और मोह हो, वर्ण विवर्ण हो जावे शरीर भारी रहे उदर का वर्ण लाल हो, भ्रम और मूर्च्छा हो उसे रक्तज प्लीहोदर कहते हैं। ये तीनों रूप प्लीहा के असाध्य अवस्था में होते हैं॥ २३॥

तत्र दोषसम्बन्धमाह—

उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः। गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान् क्रमात्॥ २४॥

प्लीहोदर के दोष सम्बन्ध—यदि प्लीहोदर में उदावर्त, पीड़ा और आनाह हो तो वात दोष का सम्बन्ध जानना चाहिये। यदि मोह, तृषा, दाह और ज्वर हो तो पित्तदोष का और यदि गुरुता, अरुचि और कठिनता हो तो कफ दोष का सम्बन्ध जानना चाहिये ॥ २४ ॥

बद्धगुदमाह—यस्यान्त्रमन्नैरुपलेपिभिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् ।
सञ्चीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः सङ्करवच्च नाड्याम् ॥ २५ ॥
निरुध्यते यस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ।
हृन्नाभिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २६ ॥

बद्धगुदोदर के लक्षण—जिस उदर रोग में मनुष्य की आँत अन्न से अथवा उपलेपी पदार्थों ( चिकने पदार्थों ) से, या बालों से, पत्थरों से ( अन्नादि के साथ जो पेट में चले जाते हैं उनसे ) आच्छादित हो जाती है उसका मल दोषों सहित धीरे २ संचित होकर आँत की नाड़ियों में जम जाता है, इस कारण उसकी गुदा में पुरीष का अवरोध हो जाता है और बड़ी कठिनता से थोड़ा २ मल निकलता है, मल के अवरोध होने से हृदय और नाभि के मध्य में उदर बढ़ जाता है इसको 'बद्धगुदोदर' कहते हैं ॥ २५-२६ ॥

एतद्बद्धोदरं तेन स्युर्दाहज्वरतृड्भ्रमाः । कासश्वासोरुसदनं हृन्नाभिशिरस्सु च ॥ २७ ॥
मलसङ्गोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मूढमारुतम् । स्थिरं नीलारुणशिरारोमराजिविराजितम् ।
नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते ॥ २८ ॥

बद्धगुदोदर में दाह, ज्वर, तृषा, भ्रम, कास, श्वास, ऊरुस्थान में अवसन्नता, हृदय-नाभि स्थान और सिर में पीड़ा होती है, मल का अवरोध, अरुचि, वमन, उदर में वायु का मूढ़ होकर रहना ( वायु का गुम होना ), पेट का स्थिर रहना तथा नील एवं अरुणवर्ण की सिराओं और रोम की पंक्तियों से घिरा रहना आदि होता है तथा प्राय करके नाभि के ऊपर गौ के पूछ की आकृति का बन जाना ये सब लक्षण होते हैं ॥ २७-२८ ॥

क्षतोदरमाह—शल्यं तथान्नोपहितं यदन्त्रं भुक्तं भिनत्त्यागतमन्यथा वा ।
तस्मात्स्रुतोऽन्त्रात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥ २९ ॥
नाभेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यतेऽतीव विदाह्यते च ।
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ ३० ॥

क्षतोदर के लक्षण—जिस उदररोग में भोजन किये हुए अन्नादि के साथ काँटे कङ्कड़ आदि को आँत में प्राप्त होकर टेढ़े-मेढ़े होने से आँतों को भेदन कर देते हैं जिससे आँतों से जल के समान स्राव होता है और बारबार गुदा के रास्ते बाहर निकलता रहता है और नाभिस्थान के नीचे उदर बढ़ जाता है, उसमें सूई चुभाने के समान और जलने के समान पीड़ा होती है इसको क्षतोदर अथवा परिस्रावी उदर कहते हैं। अब आगे जलोदर कहेंगे ॥ २९-३० ॥

दकोदरमाह—यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा वान्तो विरिक्तोऽप्यथवा निरूढः ।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य स्रोतांसि दुष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ ३१ ॥
स्नेहोपलिप्तेष्वथवापि तेषु दकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ।
स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ॥ ३२ ॥
यथा दृतिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चापि दकोदरं तत् ॥ ३३ ॥

जलोदर के लक्षण—जिस उदररोग में जो कोई मनुष्य स्नेहपान करके, अनुवासन बस्ति लेकर वमन कर, विरेचन कर अथवा निरूहबस्ति लेकर शीघ्र ही जल पी लेता है उसके जलवाही स्रोत ( जल को वहन करने वाली नाड़ियाँ ) दूषित हो जाते हैं और उन जलवाही स्रोतों में स्नेह के लिप्त होने से पूर्वरोग ( क्षतोदर ) के समान ( नाभि के नीचे उदर का बढ़ जाना, गुदा से स्राव होना आदि लक्षणों वाला ) जलोदररोग हो जाता है जिसमें पेट स्निग्ध, बड़ा और नाभि के चारों ओर उभर हो जाता है, अच्छी तरह तना हुआ जल से परिपूर्ण होता है और जिस प्रकार जल भरने की थैली ( मशक आदि ) जल से पूर्ण रहने पर क्षुभित होती है, काँपती है और शब्द करती है उसी प्रकार जलोदर वाले का उदर भी क्षुभित, कम्पित और शब्द युक्त होता रहता है। ये सब जलोदर के लक्षण हैं ॥ ३१-३३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम्। बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम्॥

उदररोग के साध्यासाध्यता—प्राय करके सभी उदररोग उत्पन्न होते ही कष्टसाध्य माने जाते हैं। परन्तु यदि रोगी बलवान हो, पेट में जल नहीं उत्पन्न हुआ हो और रोग नया ही उत्पन्न हुआ हो तो यत्न से साध्य होता है॥ १४॥

अशोफमरुणाभासं सशब्दं नातिभारिकम्। सदा गुडगुडायुक्तं सिराजालगवाक्षितम्॥ १५॥
नाभिं विष्टभ्य वायुस्तु वेगं कृत्वा प्रणश्यति। हृद्वङ्क्षणकटीनाभिगुदं प्रत्येकशूलिनः॥ १६॥
कर्कशं सृजते वातं नातिमन्दे च पावके। लोलस्यापि रसे चाल्पे मूत्रेऽल्पे संहते विशि॥१७॥
अजातोदकमित्येतैर्लक्षणैर्विज्ञाय लक्षणैः।

जब तक उदर में शोथ नहीं हो उदर का वर्ण अरुण हो, शब्द करता हो, अधिक भारी नहीं हो, सदा गुड गुड करता हो, सिराओं से घिरा हुआ हो, नाभि को विष्टम्भ करके वायु वेग करे और नष्ट हो जावे, हृदय, वङ्क्षण, कटिभाग, नाभि और गुदा का प्रत्येक में शूल हो, पेट से वेगवान् वायु निकले, अग्नि मन्द नहीं हुआ हो, उदर के चंचल होने पर भी रस (जल) का अंश कम हो, मूत्रकम हो और मल रुका हुआ हो, ये लक्षण जिस रोगी को हों उसे अजात उदक समझना चाहिये अर्थात् उसके उदर में जल नहीं आया है यह जानना चाहिये॥ १५-१७॥

कुक्षेर्वृद्धिश्चातिमात्रं सिरान्तर्धानमेव च। दकपूर्णदृतिक्षोभस्पर्शौ जातोदकं भवेत्॥ १८॥

जिसकी कोख अधिक बढ़ गयी हो, सिरायें पटपर नहीं दिखाई देवें और पानी से भरे हुए चमड़े की थैली के समान जिसके पेट में क्षोभ होता हो और वैसा ही स्पर्श करने पर भी ज्ञात हो उसे जातोदक रोग समझे अर्थात् उदर में जल आजाने के ये लक्षण हैं॥ १८॥

विशेषेणासाध्यत्वमाह—

पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा। प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रमुदरं नृणाम्॥ १९॥

एक पक्ष (१५ दिन) के पश्चात् बद्धगुद (बद्ध गुदोदर) और जिसमें जल आ गया हो ऐसा सभी उदररोग तथा छिद्रान्त्र (क्षतोदर) उदररोग ये सब प्राय मनुष्यों के नाश के लिये ही होते हैं॥

पुनरप्यसाध्यत्वमाह—

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम्। बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत्॥ ४०॥

जिस उदर रोगी के आँखों में शोथ और लिंग टेढ़ा हो गया हो, त्वचा (पेट की) आर्द्र और पतली और बल, रक्त, मांस और अग्नि क्षीण हो गये हों, उसे त्याग देना चाहिये॥ ४०॥

पार्श्वभङ्गान्नविद्वेषशोफातीसारपीडितम्। विरिक्तं चाप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत्॥ ४१॥

जिसको पार्श्वभङ्ग (दोनों पसलियों का टूटा होना) अन्न से द्वेष (अरुचि) शोथ और अतिसार हो और विरेचन कराने पर भी जिसका उदर पूर्ण ही रहे उसे त्याग देना चाहिये॥४१॥

## अथोदरचिकित्सा।

तत्राष्टावुदराणि—पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षतोदकैः॥ १॥

उदररोग की गणना—पृथक् २ दोषों से अर्थात् वात-पित्त और कफ से तीन, समस्त अर्थात् त्रिदोष से एक और प्लीहा, बद्ध, क्षत तथा जल होने वाले उदररोग एक २ इस प्रकार ८ प्रकार के उदररोग होते हैं॥ १॥

तत्र पृथग्दोषैर्वातपित्तकफैः सन्निपातेनैकम्। प्लीहोदरं बद्धोदरं क्षतोदरं जलोदरमिति सञ्ज्ञा भवन्ति। तेष्वसाध्यं बद्धगुदं परिस्रावि च। शेषाणि कृच्छ्रसाध्यानि। सर्वाण्येव च प्रत्याख्यायोपक्रमेत्। तेष्वाद्यास्त्रयो भेषजसाध्याः। उत्तराः शस्त्रसाध्याः। कालप्रकर्षात्सर्वाण्येव। शस्त्रसाध्यानि भवन्ति वर्जयितव्यानि वा, इति सुश्रुतात्॥

यहाँ पर पृथक् २ दोषों से होने वाले अर्थात् वातोदर, पित्तोदर और कफोदर कहे जाते हैं इस प्रकार ये तीन हुए और सन्निपात से (तीनों दोषों से) होने वाला सन्निपातोदर एक और प्लीहोदर एक, बद्धोदर एक, क्षतोदर एक और जलोदर एक, इन संज्ञाओं वाले आठ प्रकार के उदररोग होते हैं। इन आठों में 'बद्धगुद' और 'परिस्रावी' असाध्य हैं और शेष छः कष्टसाध्य हैं।

सब उदर रोगों को असाध्य ही समझकर चिकित्सा करनी चाहिये। इनमें आदि के चार ( वातोदर पित्तोदर, कफोदर और सान्निपातोदर ) भेषज से ( औषधि चिकित्सा से ) साध्य होते हैं और अन्त के चार प्लीहोदर, बद्धोदर, क्षतोदर और जलोदर शस्त्र चिकित्सा से साध्य होते हैं। समय बीत जाने पर ( पुराने होने पर ) सभी उदररोग शस्त्र से सिद्ध होने वाले हो जाते हैं अथवा त्याज्य ( असाध्य ) हो जाते हैं ॥

वातोदरचिकित्सामाह—

उपक्रमेद्भिषग्दोषबलकालविशेषवित्। स्थिरादिभिर्सर्पिः पानं स्नेहं स्वेदं विरेचनम् ॥ १ ॥
वेष्टनं वाससा स्नानं शाल्वणेनोपनाहनम्। पेया यूषरसाशं च योज्यं वातोदरे क्रमात् ॥२॥

वातोदर की चिकित्सा—उदर रोग में दोष ( वातादि ), रोगी तथा रोग का बल और काल आदि का विशेषज्ञ वैद्य चिकित्सा करे अर्थात् इनका विचार कर चिकित्सा करे। वातोदर में 'स्थिरादि सर्पिष' का पान कराना चाहिये, स्नेहन, स्वेदन, और विरेचन देना चाहिये और क्रम से वातोदर में वस्त्र से उदर को बाँधना चाहिये। शाल्वण स्वेद के द्रव्यों से उपनाह कराना चाहिये, तथा पथ्य के लिये पेया, यूष, मांसरस तथा अन्न का व्यवहार करना चाहिये ॥ १-२ ॥

एरण्डतैलादियोग—एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तं त्रिफलारजो वा।
निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्वाथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ १ ॥

एरण्ड तैलादि योग—एरण्ड के तेल को दशमूल के क्वाथ में मिलाकर पान कराने से अथवा त्रिफला के समान मिश्रित चूर्ण को गोमूत्र के साथ सेवन कराने से अथवा दशमूल के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर पान कराने से वातोदर शोथ और शूल नष्ट होते हैं।

दशमूलादियोग—

दशमूलकषायेण क्षीरवृत्तिः शिलाजतु। सद्यो वातोदरी क्षीरमौष्ट्रमाजं च केवलम् ॥ १ ॥

दशमूलादियोग—दशमूल के क्वाथ में शुद्ध शिलाजीत मिलाकर सेवन करने और केवल दूध ही पथ्य खाने से अथवा केवल ऊँट या बकरी के दूध के सेवन करने से शीघ्र वातोदर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—कुष्ठं दन्ती यवक्षारं व्योषं त्रिलवणं वचाम्।
आजाजीं दीप्यकं हिङ्गु स्वर्जिकां चव्यचित्रकम्। शुण्ठी चोष्णाम्बुना पीत्वा वातोदररुजापहाम् ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूठ, दन्तीमूल, यवक्षार, सोंठि, पीपरि, मरिच, सेंधा नमक, सोंचर नमक, विडनमक, वच, जीरा, अजवाइन शुद्ध हींग, सज्जी, चव्य, चित्रकमूल और सोंठि समभाग का चूर्ण उष्णोदक के अनुपान से सेवन कराने से वातोदर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

वृन्दात्सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि क्षारो यवानामजमोदभागाः।
सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं हिङ्गु विडं च समानि कुर्यात् ॥ १ ॥
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि भुञ्जीत पूर्वं कवलप्रशस्तान्।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं वातप्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम् ॥ २ ॥
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं भगन्दरं चापि निहन्ति सद्यः ॥ ३ ॥

सामुद्रादि चूर्ण—समुद्र नमक, सोंचर नमक सेंधा नमक, यवक्षार, अजमोदा, पीपरि, चित्रक मूल, सोंठि, शुद्ध हींग और सांभरनमक समभाग लेकर विधि पूर्वक चूर्ण कर घृत में मिलाकर भोजन के पूर्व प्रशस्त ( उचित ) मात्रा में खावे तो इससे वातोदर, गुल्म, अजीर्ण, वात का प्रकोप, दुष्ट ग्रहणी रोग, दुष्ट अर्श ( दूषित अर्श ), पाण्डु रोग और भगन्दर ये सब रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १-३ ॥

दशमूलाद्यं घृतम्—

दशमूलीकषायेण रास्नानागरदारुभिः। पुनर्न [illegible] घृतं सिद्धं [illegible] ॥ १ ॥

दशमूलादि घृत—दशमूल का क्वाथ [illegible] ३, देवदारु और दोनों पुनर्नवा ( श्वेत तथा रक्त ) [illegible] कल्क कर, घृत सिद्ध कर सेवन करने से वातोदर नष्ट [illegible]

पित्तोदरम्—

पित्तोदरे च बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत्। पयसा त्रिवृताकल्केनोरुबूकशृतेन वा॥ १॥
सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनाऽऽरग्वधेन च। घृतं पित्तोदरे पेयं मधुरौषधसाधितम्॥ २॥

पित्तोदर की चिकित्सा—पित्तोदर में यदि रोगी बलवान हो तो प्रथम उसे विरेचन देना चाहिये। इसके बाद १-दूध के साथ त्रिवितावर के अथवा २-एरण्ड के फलों के अथवा ३-सातला (स्नुही विशेष) त्रायमाणा और अमलतास फल के अथवा ४-मधुर गण की ओषधियों के कल्क के साथ विधि पूर्वक घृत सिद्ध कर सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर पित्तोदर नष्ट होता है। (कोई २ आचार्य इन चारों योगों को दो ही मानते हैं)॥ १-२॥

न्यग्रोधविच्त्रिफलासिद्धं सर्पिष्पानं विशुद्धये।
पृश्निपर्णीबलाभ्याघ्रीलाक्षानागरसाधितम्। क्षीरं पित्तोदरं हन्ति जठरं कतिभिर्दिनैः॥ ३॥

निग्रोध और अवरा, हर्रे, बहेड़ा, इनके कल्क के साथ सिद्ध किया घृत सेवन करने से पित्तोदर में विरेचन होकर लाभ होता है तथा पृष्ठपर्णी, खरिआरा, छोटी कटेरी, लाख और सोंठि इन ओषधियों के साथ क्षीर पाक विधि से सिद्ध किया दूध सेवन करने से पित्तोदर तथा कतिपय पैत्तिक उदर के उपद्रवों को नष्ट करता है॥ ३॥

श्लेष्मोदरम्—

श्लेष्मोदरिणं तु पिप्पल्यादिसिद्धेन सर्पिषा स्नेह पीत्वा स्नुहीक्षीरानुलोम्य त्रिकटुकमूत्र-तैलमुष्कादिकायेनाऽऽस्थापयेदनुवासयेच्च यवकिण्वसर्षपामलकबीजैश्चोपनाहयेदुदरम्। भोज येच्चैनं त्रिकटुकमगाढेन कुलित्थयूषेण पयसा वा स्वेदयेच्चाभीक्ष्णम्।

कफोदर की चिकित्सा—कफोदर रोग वाले को पिप्पल्यादि गण (पीपरि, पिपरा मूल, मरिच, गज पीपरि, सोंठि चित्रक मूल, रेणुका, रास्ना, अजमोदा, सर्षों हींग, बमनेठी, पुरइन पाढ़ी, इन्द्रजौ, जीरा, बकाइन, मूर्वामूल, अतीस, कुटकी और वाभीरंग) की ओषधियों के क्वाथ के साथ विधि पूर्वक घृत सिद्ध कर पान कराकर स्नेहन कर, थूहर के दूध के साथ सिद्ध किये घृत से अनुलोमन कर, सोंठि, पीपरि, मरिच, गोमूत्र और आस्थापन वर्ग में कहे हुए मुस्तादि वर्ग के क्वाथ के साथ विधि पूर्वक सिद्ध किये हुए तैल से स्थापन बस्ति और अनुवासन बस्ति देवे। पश्चात् यव, किट्ट, सर्षों, मूली बीज इनको पीसकर पेट के ऊपर उपनाह देवे। कुलथी के यूष में सोंठि, पीपरि और मरिच का चूर्ण प्रचुर प्रमाण में मिलाकर भोजन करावे (पथ्य देवे) अथवा दूध पिलावे और पूर्ण स्वेद देवे।

व्योषयुक्तं कुलित्थाम्बु पयो वा भोजने हितम्।
गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्कृतिभिस्तथा। सक्षीरतैलपानैश्च शमयेत्तत्कफोदरम्॥ १॥

भोजन के लिये सोंठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण मिला हुआ कुलथी का यूष अथवा दूध देना हितकर है और गोमूत्र तथा अरिष्ट पिलाने से चूर्ण सेवन से, लौह भस्म मिश्रित औषध देने से और दूध के साथ तैल मिलाकर पान कराने से कफोदर रोग शमन होता है॥ १॥

दूष्योदर निलिङ्गमुदरं च—

सन्निपातोदरे कार्या एष एव क्रियाविधिः। हरीतकयमयाकल्कमाविर्त मूत्रमम्बुना॥ १॥
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत्। सप्तलाशङ्खिनीसिद्धं घृतं चात्र विशोधनम्॥ २॥

दूष्योदर, सन्निपातोदर की चिकित्सा—सन्निपातोदर में यही क्रिया करनी चाहिये। हर्रे का सेवन करना चाहिये और हर्रे के कल्क से भावित गोमूत्र को जल के साथ सेवन करने से (पान करने से) सब प्रकार के उदर रोग प्लीहा, प्रमेह, अर्श, कृमि तथा गुल्म नष्ट होते हैं। और सप्तला (स्नुही विशेष) और शंखिनी (यवतिक्ता अथवा श्वेत अपराजिता) इनके कल्क से विधिवत् सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से विशोधन होता है॥ १-२॥

दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरी पिबेत्। नागरत्रिफलाप्रस्थं घृतं तैलं तथाऽऽढकम्॥ ३॥
मस्तुना साधयित्वा तु पिबेत्सर्वोदरापहम्। कफमारुतसम्भूतं गुल्मं चैव प्रशाम्यति॥ ४॥

दन्ती के फल और द्रवन्ती के फल का तेल दूष्योदर में पीने से लाभ होता है। तथा सोंठि और त्रिफला का कल्क एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत ४ प्रस्थ, मूर्च्छित तिल का तेल ४

क्षारादि योग—यवाक्षार, विड नमक और पीपरि के समान भाग चूर्ण को पुनर्नवा के स्वरस को कुछ गरम कर उसके अनुपान से बलानुसार मात्रा से प्रातः सेवन करने से यकृत् और प्लीहा रोग शमन होता है ॥ २ ॥

शोभाञ्जनादियोग—

शोभाञ्जनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निकणान्वितम् । पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

शोभाञ्जनादि योग—सहिजन की छाल के क्वाथ में सेंधा नमक, चित्रक मूल और पीपरि का चूर्ण मिलाकर अथवा पलास के क्षार के साथ यवाक्षार मिलाकर प्रयोग करने से प्लीहा शमन होती है ॥ १ ॥

लशुनादियोग—

लशुनं पिप्पलीमूलमभयां चैव भक्षयेत् । पिबेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगविमुक्तये ॥ १ ॥

लशुनादि योग—लहसुन, पिपरामूल और हर्रा के सम भाग चूर्ण खाकर ऊपर से गोमूत्र का अनुपान करने से प्लीहा रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

रोहीतकादिकल्कः—

रोहीतकाभयाकल्कं भावितं मूत्रमम्बुना । पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥ १ ॥

रोहितकादि कल्क—रोहित तृण ( गुलाबबाँस ) और हर्रा समान ले कल्क कर गोमूत्र से भावित कर जल के अनुपान से पीने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, मेह, अर्श, कृमि और गुल्म रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्रवन्तीनागवटी—

तिलैरण्डद्रवन्तीनां क्षारो भल्लातकं कणा । एषां भागं समं कृत्वा तद्द्वयं तु गुडं मतम् ॥ १ ॥
खादेदग्निबलं ज्ञात्वा पावकस्य विवृद्धये । जयेत्प्लीहानमत्युग्रं यकृद्गुल्मं तथैव च ॥ २ ॥

द्रवन्ती नाग वटी—तिल का क्षार, एरण्ड का क्षार, द्रवन्ती का क्षार, गुड़ भिलावा और पीपरि एक २ भाग लेकर एकत्र कर जितना हो उसके समान पुराना गुड़ मिलाकर वटी बनाकर अग्नि-बल के अनुसार सेवन करने से जठराग्नि की वृद्धि होती है और अति उग्र प्लीहा को तथा यकृत् और गुल्म रोग को नष्ट करती है ॥ १-२ ॥

शिग्रुक्वाथ—

शोफप्लीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः । अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्वाथः ससैन्धवः ॥ १ ॥

शिग्रु क्वाथ—सहिजन की छाल के क्वाथ में पीपरि, मरिच, अम्लवेत और सेंधा नमक के समान मिश्रित चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से शोथ और प्लीहोदर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

क्षारभावितपिप्पली—

पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिभाविता । गुल्मप्लीहार्तिशमनी वह्निदीप्तिकरी मता ॥ १ ॥

क्षार भावित पिप्पली—पलास के क्षार के जल से पीपरि को भावित कर सेवन करने से गुल्म तथा प्लीहा की पीड़ा को शमन करती है और अग्नि दीप्त करती है ॥ १ ॥

अग्निमुखं लवणम्—

चित्रकत्रिवृतादन्तीत्रिफलारुष्करैः समैः । यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु सैन्धवम् ॥ १ ॥
भावयित्वा स्नुहीक्षीरैः स्नुहीकाण्डे प्रक्षिपेत्ततः । मृत्पङ्केनावलिप्याथ प्रक्षिपेज्जातवेदसि ॥ २ ॥
सुदग्धं च ततो ज्ञात्वा शनैर्वैद्यः समुद्धरेत् ।
तक्रेण पीतं सम्पूर्णं यकृत्प्लीहोदरापहम् । एतदग्निमुखं नाम्ना लवणं वह्निवर्धनम् ॥ ३ ॥

अग्निमुख लवण—चित्रक मूल, निशोथ, दन्ती मूल, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, बच्छ भलाव, समभाग लेकर चूर्ण कर जितना चूर्ण हो उसके बराबर सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर सेंहुड़ के दूध से भावित कर सुखा कर चूर्ण कर सेंहुड़ लकड़ी के बीच के गूदे को निकाल कर उसी में इस चूर्ण को भर कर गुलगुला कपड़ मिट्टी कर आग में डाल दे। जब भली भाँति पक हो जावे तब वैद्य उसे धीरे से निकाल कर सेंहुड़ सहित सम्पूर्ण को चूर्ण कर तक्र के अनुपान से पान कराने से यकृत् और प्लीहोदर नष्ट होते हैं। यह 'अग्निमुख' नाम का लवण अग्निवर्द्धक है ॥ १-३ ॥

चित्रकाद्यं घृतम्—

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत्। आरनालं तु द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १ ॥
पञ्चकोलकतालीसं क्षारौ च पटुपञ्चकम्। यवान्यौ द्वे च जरणे मरीचं चाक्षसम्मितम् ॥ २ ॥
एतैर्युक्तया घृतं सिद्धं मात्रया च पिबेन्नरो। प्लीहशोफोदरार्शांसि विशेषाद्ग्निदीपनम् ॥ ३ ॥

चित्रकाद्य घृत—चित्रक मूल का क्वाथ एक तुला (१०० पल) और मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ, कांजी दो प्रस्थ, दही का पानी या तक चार प्रस्थ लेकर उसमें पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्रकमूल, सोंठि, तालीस पत्र, यवाखार, सज्जी खार, पांचो नमक पृथक् २ जवाइन, अजमोदा, जीरा और कृष्ण जीरा तथा मरिच प्रत्येक एक २ कर्ष पीसकर कल्क बना ले और यथाविधि इसको घृत में मिलाकर घृत सिद्ध कर, यथा योग्य मात्रा से प्रातः सेवन करने से प्लीहा शोथ, उदर रोग और अर्श नष्ट होते हैं। विशेष कर यह घृत अग्नि दीपक है ॥ १-३ ॥

महारोहितकं घृतम्—

रोहितकात्पलशतं सम्यक् बदराढकम्। साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥ १ ॥
घृतप्रस्थं समावाप्य च्छागक्षीरं चतुर्गुणम्। तस्मिन्द्रव्याणि सर्वाणि प्रदद्यात्कार्षिकाणि च ॥
व्योषं फलत्रिकं हिङ्गु यवानीं तुम्बरु बिडम्। विडङ्गं चित्रकं चैव हपुषा चविकं वचा ॥३॥
अजाजी कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च। पुनर्नवा विशाला च यवक्षारं सपौष्करम् ॥ ४ ॥
एतैर्घृतं विपक्वं तु निदध्याद्दृढभाजने। पाययेच्च पलं मात्रां रसयूषपयोम्बुभिः ॥ ५ ॥
यकृत्प्लीहोदरं शूलमग्निमांद्यं च नाशयेत्। कुक्षिशूलं पार्श्वशूलं कटिशूलमरोचकम् ॥ ६ ॥
विण्मूत्रशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम्।
छर्द्यतीसारशमनं तन्द्राज्वरनिवारणम्। महारोहीतकं नाम्ना प्लीहघ्नं तु विशेषतः ॥ ७ ॥

महारोहितक घृत—रोहितक (रुहेड़ा) की छाल सौ पल, बेर एक आढ़क (४ प्रस्थ) लेकर दोनों को कूट कर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर, उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और बकरी का दूध ४ प्रस्थ मिलावे और उसमें नीचे लिखी सोंठ, पीपरि, मरिच, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, शुद्ध हींग, जवाइन, तेजबल के फल, बिड नमक, बायबिडंग, चित्रकमूल, हाऊबेर, चव्य, वच, जीरा, काला नमक, अनारदाना, देवदारु, पुनर्नवा, माहरि, यवाखार और पुहकरमूल इन सब ओषधियों को पृथक्-पृथक् एक २ कर्ष लेकर कल्ककर उपर्युक्त घृतादि में मिलाकर घृत सिद्ध कर पात्र में रख लेवे। इस घृत को एक पल के प्रमाण की मात्रा में मांस रस, यूष, दूध और जल इनमें से किसी एक के अनुपान से सेवन करने से यकृत्, प्लीहोदर, शूल, मन्दाग्नि, ये सब रोग नष्ट होते हैं और कुक्षिशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, अरुचि, विण्मूत्रशूल (मलावरोध से होने वाला शूल), पाण्डुरोग, कामला, वमन, अतीसार, तन्द्रा और ज्वर को भी नष्ट करता है। यह 'महारोहितक' नाम का घृत विशेष कर प्लीहारोग को नष्ट करता है ॥ १-७ ॥

यकृदुदरचिकित्सा—प्लीहोद्दिष्टाः क्रियाः सर्वा यकृतः सम्प्रकल्पयेत्।
कार्यं च दक्षिणे बाहौ तत्र शोणितमोक्षणम् ॥ १ ॥

यकृत् उदर-चिकित्सा—प्लीहारोग में कही हुई सब चिकित्सा यकृत् रोग में करनी चाहिये और दाहिनी भुजा से रक्तमोक्षण कराना चाहिये। (दाहिनी भुजा की केहुनी के मध्य की सिरा को भेदन कर रक्त निकलवाना चाहिये) ॥ १ ॥

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरं चतुर्गुणम्। पचेत्या पिबेद्यथावह्नि यकृद्दाल्युदरापहम् ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि घृत—पीपरि का कल्क और उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना गाय का दूध मिलाकर घृत सिद्ध कर अग्निबल के अनुसार की मात्रा से पान करने से यह घृत यकृद्दाल्युदर को नष्ट करता है ॥ २ ॥

## अथ बद्धगुदोदरप्रतीकारः।

स्विन्ने बद्धोदरे योज्यो वस्तिस्तीक्ष्णैस्तु भेषजैः। सतैललवणैश्चापि निरूहश्चानुवासनम् ॥१॥

बद्ध गुदोदर चिकित्सा—बद्धगुदोदर में प्रथम स्वेद देकर पुनः तीक्ष्ण ओषधियों से बनी वस्ति देनी चाहिये तथा तेल और नमक मिली हुई ओषधियों द्वारा निरूहवस्ति तथा अनुवासन वस्ति देनी चाहिये ॥ १ ॥

उदावर्तहरं सर्वं प्रकर्तव्यं चिकित्सितम्। वर्तयो विविधाश्चात्र पायौ दातव्याः प्रकीर्तिताः ॥२॥

उदावर्त को नष्ट करने वाली सब चिकित्सायें करनी चाहिये और अनेक प्रकार की वस्तुरु बत्तियों को गुदा में देनी चाहिये ॥ २ ॥

तीक्ष्णैर्विरेचनं चात्र दाप्यते तु विशेषतः। वातहन्त्री विधिः सर्वो विधातव्यो विजानता ॥३॥

इस बद्धगुदोदर में विशेष कर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये और वातनाशक सभी विधियों को करनी चाहिये ॥ ३ ॥

क्षतोदरबद्धोदरे च—छिद्रान्त्रबद्धगुदयोर्जठरयोः प्रयोगवित्।
राज्ञानुज्ञो भिषक्कुर्यात्पाटनं व्यधनक्रियाम् ॥ १ ॥

क्षतोदर और बद्धोदर चिकित्सा—छिद्रान्त्र (क्षतोदर) और बद्धगुदोदर में प्रयोग करने में चतुर वैद्य राजकीय आज्ञा को लेकर पाटन (आपरेशन) और व्यधन (चीर-फाड़) करे ॥ १ ॥

तथा जातोदकं सर्वमुदरं व्यधयेद्भिषक्। ज्ञातींश्च सुहृदो दारान्ब्राह्मणान्नृपतिं गुरुम् ॥ २ ॥
अनुज्ञाप्य भिषग्वर्यो विदध्यात्संशयं ध्रुवम्। सुवेष्टितं त्वधो नाभेर्वामतश्चतुरङ्गुलात् ॥ ३ ॥
अङ्गुष्ठोदरमात्रं तु व्रीहिवक्त्रेण भेदयेत्। नाडीमुभयतो द्वारां संयोज्यापहरेज्जलम् ॥ ४ ॥

सब प्रकार के जलोदर में वैद्य रोगी के पेट को वेध कर जल निकाले। उस समय रोगी के जाति, मित्र, स्त्री, ब्राह्मण, राजा और गुरु की आज्ञा ले लेवे और उनसे यह स्पष्ट कह देवे कि प्राण का इसमें अवश्य संशय है। फिर नाभिस्थान के नीचे भलीभाँति वस्त्र से वेष्टित कर नाभि के बायें भाग में चार अङ्गुल पर अङ्गुष्ठ के मध्यभाग तक की गहराई के प्रमाण से व्रीहिमुख शस्त्र से भेदन कर उसमें दोनों ओर जिस नाड़ी (नली) का मुँह खुला हुआ हो ऐसी नली डालकर उसके द्वारा जल को निकाले ॥ १-४ ॥

न चैकस्मिन्दिने सर्वं दोषं त्वपहरेत्तथा। कासश्वासौ ज्वरस्तृष्णा गात्रभङ्गश्च वेपथुः ॥ ५ ॥
अतिसारश्च सुतरां पूर्यते जठरं ततः। तृतीयपञ्चमाद्येषु दिवसेष्वल्पशः पुनः ॥ ६ ॥
स्रावयेदुदकं तैललवणाभ्यां दहेद्व्रणम्। वल्लीवाद्रिपता दोषे रस प्राणनिपूर्णं च ॥ ७ ॥
संवेष्टयेद्गाढतरं कौशेयाविकचर्मणा। जलोदरेऽम्बु विस्राव्य जातं जातं विरेचनैः ॥ ८ ॥

एक ही दिन में सम्पूर्ण दोषों को (सम्पूर्ण जल को) नहीं निकाल देवे क्योंकि एक ही दिन में सम्पूर्ण जल निकाल देने से कास, श्वास, ज्वर, तृष्णा, गात्रभङ्ग, कम्प और अतीसार रोग हो जाते हैं और उदर फिर जल से पूर्ण हो जाता है। इसलिये तीसरे, पाँचवें, सातवें और नवें दिन यथा क्रम से अल्प अल्प निकालना चाहिये और जल निकले हुए व्रण को तैल और नमक मिलाकर लिप्त कर देवे और व्रण को जला देवे (दाग देवे)। यदि रिक्त होने से जलोदर हुआ हो तो प्राण रस का प्रतिपूरण करना चाहिये तथा कौशेय (रेशमी) वस्त्र अथवा भेड़, बकरी आदि के चर्म से भलीभाँति वेष्टित कर देना चाहिये। जलोदर में जब २ जल आता जावे तब तब विरेचन द्वारा निकालते रहना चाहिये ॥ ५-८ ॥

निरिक्तजठराध्मानं स्नेहार्तैर्बस्तिभिर्जयेत्। निःसृते लङ्घितो पेयामस्नेहलवणां पिबेत् ॥ ९ ॥
अतः परं तु षण्मासान्क्षीरवर्ती भवेन्नरः। त्रीन्मासान्पयसा पेयां पिबेत्त्रींश्चापि भोजयेत् ॥ १० ॥
सकोरदूषश्यामाकं पयसा श्लक्ष्णं लघु। नरः संवत्सरेणैव जयेत्प्राप्तं जलोदरम् ॥ ११ ॥

विरेचन देने पर यदि आध्मान हो तो स्नेह बस्ति द्वारा उसे नष्ट करना चाहिये। जल निकालने के पश्चात रोगी को लङ्घन कराकर स्नेहरहित तथा लवणरस रहित पेया पिलाना चाहिये। पश्चात् छै मास तक केवल दूध ही पिलाना चाहिये, फिर तीन मास तक दूध और पेया मिलाकर पिलाना चाहिये, फिर तीन मास कोदो, साँवा दूध के साथ देना चाहिये अथवा सेंधा नमक अल्प मात्रा में मिलाकर देना चाहिये। इस प्रकार एक वर्ष तक पथ्य सेवन करने से मनुष्य जलोदर को दूर कर सकता है ॥ १०-११ ॥

## अथ जलोदरेषु सामान्यविधि।

वर्धमानं मन्दरक्ताद्युक्ता पायस हितम्।
क्षीरेणैरण्डजं तैलं त्रिवृच्चूर्णेन वा सह। उदरे त्रिफलाक्वाथं विवर्तं पयसा वा हितं दिने ॥ १ ॥

उदर रोगों की सामान्य चिकित्सा—उदर रोगों में प्राय मल की अधिकता होती है ( इसीसे रोग में वृद्धि भी होती है ) इसलिये उदर का बहुत बार शोधन कराना चाहिये ( विरेचन देना चाहिये )। इसके लिये दूध के साथ एरण्ड तैल पान करना चाहिये अथवा गोमूत्र के साथ एरण्ड तैल कई बार पान करना चाहिये अथवा ज्योतिष्मती ( माल कांगनी ) का तैल दूध के साथ प्रति दिन पान करना चाहिये ॥ १ ॥

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत् ॥ २ ॥

आठो प्रकार के मूत्र उदररोगियों को सिंचन तथा पान करने के लिये देना चाहिये ॥ २ ॥

देवदार्वादिलेप—

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः। साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ॥ १ ॥

देवदार्वादि लेप—देवदारु, पलास, मदार, गजपीपरि और सहिजन की छाल, असगन्ध सममाग ले पीसकर गोमूत्र मिलाकर उदर पर धीरे २ लेप करे तो उदर रोग में लाभ होता है ॥१॥

रोहितकादियोग—

रोहितकाभयाशुण्ठी पिबेन्मूत्रेण शक्तितः। सर्वोदरहरं प्लीहमेहार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥ १ ॥

रोहितकादि योग—रोहितक ( रुहेड़ा ), हर्रा, सोंठि का चूर्ण कर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के उदर रोग, प्लीहा, मेह, अर्श, कृमि और गुल्म नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

विशालादि—

विशालाशङ्खिनीदन्तीत्रिवृन्नीलीफलत्रयम्। निशाविडङ्गकम्पिल्लं मूत्रेणोदरवान्पिबेत् ॥१॥

विशालादि योग—माहुरि, शङ्खिनी ( शङ्खाहुल ), दन्तीमूल, निशोथ, अँवरा, हर्रा, बहेड़ा, हरदी बायबिरंग, कबीला, सममाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर गोमूत्र के साथ पान करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पय आदि—पयो वा चव्यदन्त्यग्निविडङ्गव्योषकल्कितम्।

पेयं वा शृङ्गवेराम्बु कषायो दारुवह्निजः। चव्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये ॥ १ ॥

पय-आदि योग—चव्य, दन्तीमूल, चित्रकमूल बायबिरंग, सोंठि, पीपरि, मरिच समान ले कल्क कर दूध के साथ पान करे अथवा अद्रक का स्वरस पान करे अथवा देवदारु और चित्रक मूल का क्वाथ अथवा चव्य और सोंठि का क्वाथ बनाकर पान करे तो उदर रोग शान्त होता है ॥१॥

सुश्रुतात्—हरीतकीसहस्रं वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः।

सहस्रं पिप्पलीनां वा स्नुक्क्षीरेण सुभावितम् ॥ १ ॥

पिप्पलीवर्धमानं वा क्षीराशी वा शिलाजतु। तद्वद्वा गुग्गुलुं क्षीरं तुल्यार्द्रकरसं तथा ॥

चित्रकामरदारुभ्यां कल्कं क्षीरेण वा पिबेत् ॥ २ ॥

एक सहस्र बड़ी हरड़ को क्रम से गोमूत्र के साथ ( प्रथम एक हरड़ से प्रारम्भ कर और एक २ हरड़ बढ़ाता जाये ) सेवन करे और दूध का ही आहार करे अथवा एक सहस्र पीपरि को लेकर सेहुड़ के दूध के साथ भावित कर उसी क्रम से सेवन करने से उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ अथवा वर्धमान पिप्पली योग का सेवन करे और दूध का ही पथ्य करे अथवा शुद्ध शिलाजीत का सेवन करे और दूध का पथ्य करे अथवा शुद्ध गुग्गुल को दूध के साथ सेवन करे अथवा दूध में समान भाग अद्रक का रस मिलाकर सेवन करे अथवा चित्रक मूल और देवदारु सममाग ले कल्क कर दूध के साथ पान करे तो उदर रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पिप्पलीवर्धमानम्—

त्रिभिरथ परिवृद्धं पञ्चभिः सप्तभिर्वा दशभिरथ विवृद्धं पिप्पलीवर्धमानम्।

इति पिबति युवा यस्तस्य न श्वासकासज्वरजठरगुदार्शोवातरक्तक्षयाः स्युः ॥ १ ॥

वर्धमान पिप्पली योग—तीन पाँच सात अथवा दस पीपरि के क्रम से बढ़ा कर जो मनुष्य वर्धमान पिप्पली योग का सेवन करता है और दूध का पथ्य करता है उस पुरुष को श्वास, कास, ज्वर, उदर, गुल्म, अर्श, वात रक्त और क्षय ये सब रोग नहीं होते हैं ॥ १ ॥

देवद्रुमादि—देवद्रुमं शिग्रु मयूरकं च गोमूत्रपिष्टामथवाऽश्वगन्धाम्।

पीत्वाऽऽशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं कृमीन्सशोफानुदरं च दूष्यम् ॥ १ ॥

देवद्रुमादि योग—देवदारु, सहिजन की छाल, मरुर, अथवा केवल असगन्ध को गोमूत्र के साथ पीस कर पान करने से बढ़ा हुआ उदर रोग, कृमि रोग, शोथ और दूष्योदर नष्ट होते हैं ॥

पटोलाद्यं चूर्णम्—

पटोलमिन्द्ररजनीविडङ्गत्रिफलात्वचम् । कम्पिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत् ॥१॥
षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥
विरिक्तो मृदु भुञ्जीत भोजनं जाङ्गलै रसैः । मण्डपेयां च पीत्वा वा सव्योषं षडहं पयः ॥३॥

पटोलाद्य चूर्ण—परवर का पत्र पात, इन्द्रजौ, हल्दी, वायविडंग, त्रिफला (आंवला, हर्रे बहेड़ा) दालचीनी, कबीला, नील का फल और निशोथ इन औषधियों में से आदि की छै औषधियों को (परवर से दालचीनी तक) एक २ कर्ष लेवे और अन्त की तीन औषधियों को अर्थात् कबीला दो कर्ष, नील का फल तीन कर्ष और निशोथ चार कर्ष लेकर सबका चूर्ण कर मुष्टि प्रमाण (एक पल) की मात्रा से गोमूत्र के साथ पान करे। (यह मात्रा अत्यधिक है ३ कर्ष की या यथा बल मात्रा से प्रारम्भ करे)। इससे विरेचन हो जाने पर मृदु पदार्थों का भोजन जाङ्गल जीवों के मांस रस के साथ करे अथवा मण्डपेया पीवे। पश्चात् सोंठि, पीपरि, मरिच का चूर्ण मिलाकर पकाया हुआ दूध छै दिन तक पीवे ॥ १-३ ॥

शृतं पिबेत्ततश्चूर्णं पिबेदेवं पुनः पुनः । हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं चापकर्षति ॥ ४ ॥

इस प्रकार बार २ इस चूर्ण को इसी विधि से पान करने से यह चूर्ण सब प्रकार के उदर के रोगों को और जलोदर को भी तथा कामला, पाण्डु रोग और शोथ को नष्ट करता है ॥ ४ ॥

नारायणचूर्णम्—

यवानी हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका । कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शठी वचा ॥१॥
शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम् । द्वौ क्षारौ पुष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ २ ॥
विडङ्गं च समांशानि दन्तीभागत्रयं तथा । त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ३ ॥

नारायण चूर्ण—अजवाइन, हाऊ बेर, धनियाँ आँवला, हर्रे, बहेड़ा, कलौंजी (कलौंजी काली (कृष्ण जीरा का भेद), पिपरामूल, अजमोदा (बनतगन्धा), कचूर, बच, सौंफ जीरा, सोंठि मरिच पीपरि सत्यानाशी, चित्रक मूल, जवाखार, सज्जी खार, पुष्कर मूल, कूठ, पाँचों नमक (पृथक २) वायविडंग, प्रत्येक सम भाग लेवे और दन्ती मूल तीन भाग, निशोथ और माहुरि दो दो भाग, सातला (सेंहुड़ भेद) ४ भाग लेकर चूर्ण कर लेवे। यह 'नारायण' नाम का चूर्ण सब प्रकार के रोग समूहों को नष्ट करने वाला है ॥ १-३ ॥

एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः । तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ॥ ४ ॥
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया । दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ॥ ५ ॥
परिकर्ते च वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके । भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ६ ॥
हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्देऽनले ज्वरे । दंष्ट्राविषे मूलविषे गरले कृत्रिमे विषे ॥
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ७ ॥

तक्र के अनुपान से उदररोगियों को और बेर के रस के अनुपान से गुल्मरोग वालों को पीना चाहिये और आनाहवात में सुरा, वातरोग में प्रसन्ना, मलबद्धरोग में दही के मण्ड, अर्श में अनार के रस, परिकर्तिका में वृक्षाम्ल (कोकम के फल) और अजीर्ण में उष्णोदक के अनुपान से सेवन करना चाहिये, तथा भगन्दर, पाण्डुरोग कास, श्वास, गलग्रह हृद्रोग, ग्रहणी, कुष्ठ मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष (दाँत से काटने से उत्पन्न विष) मूल विष (जड़ी बूटियों का विष) गरल विष और कृत्रिम विष, इन सब रोगों में स्निग्धकोष्ठ वाले रोगी को यह विरेचन चूर्ण यथायोग्य पान करना चाहिये ॥ ४-७ ॥

क्षारद्वयादिचूर्णम्—क्षारद्वयानलव्योषनीलीलवणपञ्चकम् ।
चूर्णितं सर्पिषा पेयं सर्वगुल्मोदरापहम् ॥ १ ॥

क्षार द्वयादि चूर्ण—जवाखार सज्जीखार, चित्रकमूल, सोंठि, पीपरि, मरिच, नील पृथक् २

पाँचों नमक, प्रत्येक सम भाग लेकर चूर्ण कर तक्र के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के गुल्मरोग और उदररोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शुक्तिकाक्षारादियोगः—

सामुद्रशुक्तिकाक्षारो यवक्षारः ससैन्धवः । गोदध्ना सम्प्रयुज्येत सर्वोदरविनाशनम् ॥ १ ॥

शुक्तिकाक्षारादि योग—समुद्र सीप का भस्म, यवाक्षार, सेंधानमक समान लेकर चूर्ण कर एकत्र मर्दन कर गौ के दही के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं ॥

उष्ट्रीक्षीरपानम्—

उष्ट्रीक्षीरं पिबेज्जीर्णे निरन्नो जठरामयी । पक्षं मासमृतुं वाऽपि न च पानीयमाचरेत् ॥ १ ॥

उष्ट्रीक्षीर पान—जो उदररोगी मनुष्य केवल ऊटनी का दूध पीवे अन्न नहीं खावे और दूध उसे पचता जावे, तो इस प्रकार यदि वह एक पक्ष ( १५ दिन ), एक मास अथवा एक ऋतु ( दो मास ) तक करता रहे और पानी भी नहीं पीवे तो उसका उदररोग नष्ट हो जाता है ॥

## अथ घृतानि ।

तन्त्रान्तरे बिन्दुघृतम्—अर्कक्षीरपले द्वे तु स्नुहीक्षीरपलानि षट् ।
पथ्याकम्पिल्लकश्यामाशम्याकगिरिकर्णिकाः ॥ १ ॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा । एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् । यावतोऽस्य पिबेद्बिन्दूंस्तावद्वेगान्विरिच्यते ॥ ३ ॥

बिन्दुघृत—मदार का दूध दो पल, सेहुंड का दूध छः पल, हर्रा, कबीला, श्यामालता या काली निशोथ, अमलतास के फल की गुदी, श्वेतापराजिता, नील, निशोथ, दन्तीमूल, शङ्खिनी ( [illegible] ), चित्रकमूल, प्रत्येक २ पल ले कल्क कर मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और पाकार्थ जल ४ प्रस्थ देकर घृत सिद्ध कर इस घृत को कोष्ठ की मलिनता ( मलावरोध ) में एक बूंद सेवन करना चाहिये । जितनी बूंद पिलावे उतनी ही बार विरेचन होता है ॥ १-३ ॥

कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं श्वयथुं सभगन्दरम् ।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा । एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ४ ॥

इसके सेवन से कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोथ, भगन्दर और उदर रोग इस प्रकार शान्त होते हैं जिस प्रकार इन्द्र के वज्र से वृक्ष नष्ट होते हैं । यह 'बिन्दुघृत' ऐसा प्रभावशाली है कि इसको उदर पर मल देने से विरेचन हो जाता है ॥ ४ ॥

योगतरङ्गिण्या नाराचघृतम्—

त्रिफला चित्रको दन्ती बृहती कण्टकारिका । स्नुही चार्कविडङ्गानि घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ १ ॥
तस्य मृद्वग्निसिद्धस्य कर्षार्धं पाययेन्नरम् ।
शोथगुल्मोदरानाहप्लीहोदरजलोदरान् । नाशयत्युग्रवेगानेतान् सर्पिर्नाराचसंज्ञितम् ॥ २ ॥

नाराच घृत—आँवला, हर्रा, बहेड़ा, चित्रकमूल, दन्तीमूल बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, सेहुंड, मदार, वायविडंग समभाग कल्क कर एक कुडव ४ पल मूर्च्छित गोघृत के साथ चतुर्थांश प्रमाण ( १ पल ) लेकर मिला देवे और पाकार्थ जल ४ कुडव ( २ मानी ) मिलाकर मन्द अग्नि से घृत सिद्ध कर आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से पान करने से शोथ, गुल्म, उदर, आनाह, प्लीहोदर, जलोदर ये सभी रोग यदि अत्यन्त बढ़े हुए भी हों तो उन्हें यह 'नाराच' नामक घृत नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

त्रिवृताद्यं घृतम्—

पयस्यष्टगुणे सर्पिः प्रस्थं स्नुक्पयसः पलम् । त्रिवृत्पलककल्केन सिद्धं जठरगुल्मनुत् ॥ १ ॥

त्रिवृताद्य घृत—मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और दूध गाय का अठगुना ( ८ प्रस्थ ) सेहुंड का दूध एक पल और निशोथ का कल्क एक पल इनको एकत्र कर घृत सिद्ध कर सेवन करने से जठर रोग तथा गुल्म नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पञ्चमूलाद्यं घृतम्—द्वे पञ्चमूल्यौ त्रिवृतां निकुम्भं ससप्तलं चित्रकशिग्रुमूलम् ।
करञ्जबीजं त्रिफलां गुडूचीमेरण्डमूलं मदयन्तिकां च ॥ १ ॥

पाठां सभार्ङ्गीं सुषवीं सनिर्का सरोहिर्षां यासकुचेछिकां च ।
पृथग्समाहृत्य पलं जलस्य द्रोणे पचेच्चतुरंशशेषे।
घृतं विपक्वं सकषायचुक्तं निहन्ति पीतं सकलोदराणि ॥ २ ॥

पञ्चमूलाद्य घृत—छोटी पञ्चमूल (दशमूल) के पृथक् २ दसों द्रव्य, निशोथ, दन्तीमूल, सप्तला (सातला) चित्ते की जड़, सहिजन की जड़, करञ्ज के बीज, अँवरा, हर्रा, बहेड़ा, पुरुषि, एरण्डमूल, मदयन्ती (नरमा रूदा) पुरइनपाढ़ी, बभनेठी, कृष्णजीरक, कुटकी, रोहिष तृण (गुन्धतृणा), जवासा और पुरइनपाढ़ी पृथक् २ पल २ पल लेकर एक द्रोण (१६ प्रस्थ) जल के साथ चतुर्थांशावशेष पाक कर उतार-छानकर जितना क्वाथ हो उसके चतुर्थांश मूर्छित, गोघृत मिला घृत सिद्ध कर पान करने से सब प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

हिंग्वादिघृतम्—

हिंग्वा रसोनार्द्रकशिग्रुपथ्यावचाम्बुदन्तीदहनमूलतोयैः ।
द्विशारपञ्चोषणकल्ककपादैः सिद्धं घृतं ह्युदरे प्रशस्तम् ॥ १ ॥

हिंग्वादि घृत—हींग, लहसुन अदरक, सहिजन की छाल, हर्रा, वच, दन्तीमूल और चित्रमूल के पृथक् ७ दसों द्रव्य समभाग लेकर सोलह गुने जल में चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार छानकर जितना क्वाथ हो उसके चतुर्थांश मूर्छित गोघृत और घृत से चतुर्थांश भाग लिये हुये यवक्षार, सज्जीक्षार पीपरि, पिपरामूल, चव्य, चित्ते की जड़ और सोंठि इनको समान ले कल्क कर सबको एकत्र कर घृत सिद्ध कर सेवन करने से उदररोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

तक्रपानम्—

वातोदरी पिबत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् । शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ॥ १ ॥
यवानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी । सन्निपातोदरी तक्रं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ॥ २ ॥
प्लीहोदरी तु दधुपादीप्यकाजाजिसैन्धवैः ।
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् । व्योषसक्षारलवणैर्युक्तं तु सलिलोदरी ॥ ३ ॥

उदररोग में तक्रपान—वातज उदररोग वाला मनुष्य तक्र में पीपरि का चूर्ण और सेंधानमक मिलाकर पीवे और पित्तज उदररोग वाला शक्कर और मरिच का चूर्ण मिलाकर, कफज उदररोग वाला अजवान, सेंधानमक जीरा, सोंठि पीपरि और मरिच का समान मिश्रित चूर्ण मिलाकर सन्निपातज उदररोग वाला सोंठि, पीपरि, मरिच, यवक्षार और सेंधानमक का समान मिश्रित चूर्ण मिलाकर, प्लीहोदर वाला हाऊबेर, अजवान, जीरा और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर, छिद्रोदर (क्षतो दर) वाला पीपरि का चूर्ण और मधु मिलाकर और जलोदर वाला मनुष्य सोंठि, पीपरि, मरिच यवक्षार और सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर तक्र को पीवे। इस प्रकार के तक्र सेवन से सब प्रकार के उदररोग नष्ट होते हैं ॥

शोथोदरचिकित्सा—हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाछिन्नरुहाकषायः ।
सगुग्गुलुमूत्रयुतश्च पेयः शोथोदराणां प्रवरः प्रयोगः ॥ १ ॥

शोथोदर चिकित्सा—हर्रा सोंठि, देवदारु पुनर्नवा गुरुचि समभाग ले क्वाथ कर उसमें शुद्ध गुग्गुलु तथा गोमूत्र का प्रक्षेप देकर पान करना शोथोदर के लिये उत्तम योग है ॥ १ ॥

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठीतिक्तामृतादार्व्यभयाकषायः ।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूलश्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ २ ॥

पुनर्नवा, नीम की छाल, परवर की छाल पत्र, सोंठ कुटकी, हर्रा, दारुहल्दी, गुरुचि सम भाग ले क्वाथ कर सेवन करने से सम्पूर्ण अङ्गों का शोथ, उदररोग कास, शूल, श्वास और पाण्डु रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पुनर्नवादारुसमभयागुडूचीः पीत्वा समूत्रा सहिताः सगुग्गुलुः ।
सर्वाङ्गशोथोदरपाण्डुरोगस्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयघ्नः ॥ ३ ॥

पुनर्नवा दारुहल्दी हर्रा, गुरुच सम भाग ले क्वाथ कर गोमूत्र और शुद्ध मर्दित गुग्गुलु का प्रक्षेप देकर पान करने से सर्वाङ्ग के शोथ, शोथ, उदर, पाण्डुरोग, स्थूलता, प्रसेक (लालास्राव) और ऊर्ध्वभाग के कफज रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा क्षीरं गवां वा त्रिफलाविमिश्रम्।
क्षीराशयुक्केवलमेव गव्यं मूत्रं पिबेद्वा श्वयथूदरेषु ॥ ४ ॥

गोमूत्र मिलाकर भैंस का दूध, अथवा त्रिफला का चूर्ण मिलाकर गाय का दूध अथवा केवल गोमूत्र पीने और दूध तथा अन्न को ही अशन (पथ्य) करने से शोथोदररोग नष्ट होते हैं ॥४॥

सप्ताहं माहिषं मूत्रं पयसा चाम्बुवर्जितम्। पिबेदौष्ट्रं पयो मासं श्वयथूदरनाशनम् ॥ ५ ॥

एक सप्ताह तक भैंस का मूत्र जलरहित दूध में मिलाकर पीने से अथवा ऊँटनी का दूध एक मास तक पीने से शोथोदररोग नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

बिल्वाग्निचव्यार्द्रकशृङ्गवेरकाथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम्।
सच्छागदुग्धं ग्रहणीगुदोत्थशोथाग्निसादारुचिहृद्वरिष्टम् ॥ ६ ॥

बेल की छाल, चित्रक की जड़, चव्य और अदरक सम भाग ले क्वाथ करे और इन्हीं द्रव्यों का कल्क भी करके जितना क्वाथ हो उसके चतुर्थांश मूर्च्छित गोघृत और घृत चतुर्थांश समान मिलित कल्क तथा बकरी का दूध क्वाथ के समान भाग मिलाकर घृत सिद्ध कर सेवन करने से ग्रहणी, गुदा के रोग (अर्शादि), शोथ, मन्दाग्नि और अरुचि ये सब नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

## अथ रसाः।

नाराचो रसः —

मृष्टटङ्कणतुल्यं तु मरिचं च रसं समम्। गन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥१॥
सर्वतुल्यं क्षिपेद्दन्तीबीजं सर्वमकल्मषम्। द्विगुञ्जं रेचनं चैतदुदराणि व्यपोहति ॥ २ ॥

नाराचरस—शुद्ध टङ्कण, मरिच, शुद्ध पारद, १-१ भाग और शुद्ध गन्धक पीपरि और सोंठि दो २ भाग चूर्ण कर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य ओषधियों के चूर्ण को मिला कर मर्दन कर जितना चूर्ण हो उसके बराबर शुद्ध दन्तीबीज का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर दो रत्ती के प्रमाण की मात्रा से वटी बनाकर सेवन करने से विरेचन होता है और उदररोग नष्ट होता है ॥

इच्छाभेदी रसः —

शुण्ठीमरिचसंयुक्तो रसगन्धकटङ्कणाः। जैपालस्त्रिगुणः प्रोक्तः सर्वमेकत्र मर्दितम् ॥ १ ॥
इच्छाभेदी रसो ह्यस्य द्विगुञ्जो ससितो पिबेत्। तक्रौदनं च दातव्यं पथ्यमत्र विजानता ॥२॥

इच्छाभेदीरस—सोंठि, मरिच, शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध टङ्कण १-१ भाग ले चूर्ण कर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिला मर्दन कर उसमें ३ भाग शुद्ध जमाल गोटा के बीज का चूर्ण मिला मर्दन कर दो रत्ती के प्रमाण की वटी बना शर्करा के साथ सेवन कर जितने चुल्लू अर्थात् जितनी बार जल पीवे उतनी ही बार विरेचन होता। यह 'इच्छाभेदीरस' इच्छानुसार भेदन करता है। विरेचन के पश्चात् मट्ठा और भात का पथ्य देना चाहिये। (गरम जल पीने से इसमें विरेचन का अवरोध होता है) ॥ १-२ ॥

जलोदरारिः —

पिप्पली मरिचं ताम्रं काञ्चनीचूर्णसंयुतम्। स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम् ॥
निष्कं भुक्तं विरेकेण सत्यं हन्ति जलोदरम् ॥ १ ॥

जलोदरारि रस—पीपरि, मरिच, ताम्रभस्म, हरदी का चूर्ण सम भाग ले मर्दन कर सेहुण्ड के रस के साथ दिन भर (४ पहर) मर्दन कर जितना हो उसके बराबर शुद्ध जमालगोटा के बीज का चूर्ण मिला मर्दन कर निष्क प्रमाण (४ माषा) से सेवन करने से विरेचन होकर जलोदररोग नष्ट हो जाता है। यह सत्य है ॥ १ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम्।

दोषैः कुक्षौ हि सम्पूर्णे वह्निर्मन्दत्वमृच्छति। तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥

पथ्यापथ्य—उदर रोग में वातादि दोष कुक्षिस्थान में भरे रहते हैं जिससे अग्नि मन्द हो जाती है, इसलिये इस रोग में दीपन और लघु भोजन (पथ्य) देना चाहिये ॥ १ ॥

शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम्। विरेकास्थापने श्रेष्ठं सर्वेषु जठरेषु च ॥ २ ॥

शालिधान का चावल, साठी का चावल, गेहूँ जौ और नीवार (तीनाधान का चावल) भोजन के लिये देना चाहिये तथा विरेचन और आस्थापन कर्म उदर रोगों में करना उत्तम है ॥

उदरपथ्य हरिणयान्—

विरेचनं लङ्घनमब्दमग्रतः पुराणकुलत्थमुद्गारुणशाल्यो यवाः ।
मृगा द्विजा जाङ्गलजाश्च तेऽखिलाः पेया सुरा माध्विकसीधुसैन्धवाः ॥ १ ॥
तक्रं रसोनो रुबुतैलमार्द्रकं शालिं च शाकं कुलकं फलिङ्गकम् ।
पुनर्नवा शिग्रुफलं हरीतकी ताम्बूलमेला यवशूकमायसम् ॥ २ ॥
अजागवोष्ट्रीमहिषीपयो जलं लघूनि तीक्ष्णानि च दीपनान्यपि ।
यथामलं पथ्यगणोऽयमाश्रितः सदा नृणां स्यादुदरामये सति ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—विरेचन कर्म, लङ्घन, एक वर्ष के पुराने कुलथी, मूंग, रक्त वर्ण के शालिधान का चावल, यव, मृग ( जांगल पशु ), पक्षी इनका मांस रस, पेया, सुरा, मधु, सीधु, सेंधा नमक, मठठा, लहसुन, एरण्ड तैल, अदरक, शालिच शाक परवर, करेली, पुनर्नवा, सहिजन का फल, हर्रा, पान, छोटी इलायची, जवाखार, लोहभस्म, बकरी, गाय, ऊँटनी, भैंस के दूध तथा मूत्र और लघु, तीक्ष्ण तथा दीपन द्रव्य सेवन करना चाहिये। रोगी के दोष बलाबल के अनुसार इन उपर्युक्त पदार्थों का सेवन उदर रोगी मनुष्यों को करना चाहिये अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ १-३ ॥

जलपान दिवास्वाप गुरुमभिष्यन्दि भोजनम् । व्यायाम चाध्वयान च जठरी परिवर्जयेत् ॥

जल पीना, दिन में सोना, गुरु और अभिष्यन्दी पदार्थ का भोजन, परिश्रम, मार्ग चलना और यान इन सब को उदर का रोगी त्याग दे अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ४ ॥

इति उदररोगप्रकरणम् समाप्तम्

---

## अथ शोथनिदानम् ।

शोथस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं रूपमाह—

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान्बहिः सिराः । नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥
उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥ १ ॥

शोथ की सम्प्राप्ति—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित वायु दूषित रक्त, पित्त और कफ को बाहर सिराओं में ले जाकर उनकी गति को अवरुद्ध कर मांस और त्वचा के आश्रय में उन्नत तथा कठिन शोथ उत्पन्न कर देता है। यह त्रिदोष संघातात्मक होता है ॥ १ ॥

सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् । दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥ २ ॥

यह शोथ हेतु विशेष से तथा रूपभेद से नव प्रकार का होता है जैसे दोषों के पृथक् २ भेद से ( वात पित्त और कफ से ) तीन, द्वन्द्वज तीन, सान्निपातिक एक, अभिघातज एक और विष से एक, इस प्रकार नव प्रकार का शोथ होता है ॥ २ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—तत्पूर्वरूपं दवथुः सिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ३ ॥

शोथ का पूर्व रूप—जब शोथ होने को होता है तब इसके पहले नेत्रादिकों में विशेष दाह, सिराओं में तनाव और शरीर का गुरु होना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

कारणमाह—शुद्ध्यामयाभक्तकृशाबलानां क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ।
दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ४ ॥

शोथ के कारण—जो शुद्धि जिसकी हुई हो ( वमन विरेचन आदि किया गया हो ), ज्वर पाण्डु आदि रोग जिसे हुआ हो, जो उपवास अथवा विगुण भोजन किया हो, इन कारणों से दुर्बल और कमजोर हुए मनुष्य यदि क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरु पदार्थ दही आम ( अपक्व ) पदार्थ मिट्टी शाक ( पत्रशाक ), विरोधी, दूषित तथा विषमिश्रित अन्न आदि का सेवन कर लेता है तो उसे शोथ रोग हो जाता है ॥ ४ ॥

अर्शांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्माभिघातो विषमा प्रसूतिः ।
मिथ्योपचारः प्रतिकर्मणां च निजस्य हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ ५ ॥

और अर्शरोग, निश्चेष्ट रहना, देह की शुद्धि नहीं करना ( दोषों का शोधन नहीं करना ), मर्म स्थानों में आघात होना, प्रसव का विषम होना ( गर्भपातादि होना ) और मिथ्या उपचार

-( वमन आदि का अयोग्य उपचार या अनावश्यक वमनादि कर्म करना ) इन सब कारणों से शोथ रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ५ ॥

तस्य सामान्यलक्षणमाह—

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम् ।
सलोमहर्षं च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

शोथ के सामान्य लक्षण—शरीर में गुरुता, मन का स्थिर नहीं रहना, उत्सेध अर्थात् त्वचा में ऊँचापन ( शोथ ) होना, ऊष्मा होना, सिराओं का दुर्बल होना, रोमाञ्च होना और वर्ण का विवर्ण हो जाना ये सब शोथ होने के साधारण लक्षण हैं ॥ ६ ॥

वातशोथमाह—चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितः प्रसुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः ।
प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवाबली च श्वयथुः समीरणात् ॥ ७ ॥

वातज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ चलता रहे अर्थात् एक निश्चित स्थान पर नहीं रहे, शोथ पर की त्वचा पतली, परुष, अरुण अथवा कृष्ण वर्ण की हो, उसमें शून्यता और रोमाञ्च होता हो, इनके सहित पीड़ा अकारण ही शान्त हो जाती हो ( कभी बढ़ जाती हो ), तथा दबाने से शोथ दब जाता हो ( फिर उठ जाता हो ) और दिन में शोथ बलवान् हो। ( शोथ में वृद्धि हो और रात्रि में कम हो ) उसे वायु के कोप का शोथ जानना चाहिये ॥ ७ ॥

पैत्तिकमाह—मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्ज्वरभ्रमस्वेदतृषामदान्वितः ।
य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत्स पित्तशोफो भृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥

पित्तज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ का स्थान कोमल हो गन्ध युक्त, कृष्ण वर्ण अथवा पीत वर्ण का हो, और ज्वर, भ्रम, स्वेद तृषा और मद हो, शोथ में दाह हो, स्पर्श करने से पीड़ा हो, नेत्र रक्त वर्ण के हों और शोथ में अत्यन्त दाह तथा पाक हो उसे पित्त के कोप का शोथ जानना चाहिये ॥ ८ ॥

कफजमाह—गुरुः स्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत् ।
सकृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ९ ॥

कफज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ गुरु ( भारी ) तथा स्थिर हो, पाण्डुवर्ण का, अरुचि रोग युक्त, स्राव, निद्रा, वमन और मन्दाग्नि करने वाला तथा कठिनता से उत्पन्न और शान्त होने वाला हो और दबाने से दबे नहीं तथा रात्रि में शोथ बढ़ जावे उसे कफ के कोप से होने वाला शोथ जानना चाहिये ॥ ९ ॥

श्रूयन्ते यस्य गात्राणि स्पन्दन्तीव रुजन्ति च । पीडितोऽप्युन्नमति च वातशोफं समादिशेत् ॥१०॥
यश्चाप्यरुणवर्णाभः शोफो नक्तं प्रणश्यति । स्नेहोष्णमर्दनाभ्यां च प्रणश्येत्स च वातिकः ॥

अन्य वातज शोथ—जिस शोथ रोग में शरीर में कम्पन तथा पीड़ा होता हुआ शोथ उत्पन्न हो और दबाने से शोथ दबकर फिर उठ जावे उसे वातज शोथ कहते हैं और जिस शोथ का वर्ण अरुण हो तथा रात्रि में शोथ नष्ट हो जावे और स्नेह पदार्थ ( घृत-तैलादि ) के मर्दन तथा उष्ण सेकादि से नष्ट हो जावे उस वातज शोथ कहते हैं १०-११ ॥

यः पीतः सज्वरार्तिः स्याद्दूयते च विदह्यते । स्विद्यते क्लिद्यते गन्धी स पैत्तः श्वयथुः स्मृतः॥

अन्य पित्तज शोथ—जिस शोथ रोग में शोथ का वर्ण पीत हो, ज्वर पीड़ा ( सन्ताप या दुःख ) दाह, स्वेद, क्लेद और गन्ध हो उसे पित्तज शोथ कहते हैं ॥ १२ ॥

यः पीतमुखवर्णत्वक्पूर्वं मध्यात्प्रसूयते । तनुत्वक्चातिसारी च स पैत्तः श्वयथुः स्मृतः ॥ १३ ॥

जिस शोथ में मुख का वर्ण तथा त्वचा पीत वर्ण के हो गये हों तथा शोथ की प्रथम उत्पत्ति मध्य शरीर से हुई हो, त्वचा पतली और अतीसार रोग हो उसे पित्तज शोथ कहते हैं ॥ १३ ॥

द्विदोषजमाह—निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद्द्विदोषजः ॥

द्विदोषज शोथ—दो २ दोषों के मिलित निदान और लक्षण जिस शोथ रोग में हों उसे द्विदोषज अर्थात् वात पित्तज, पित्त कफज और वात कफज शोथ जानना चाहिये ।

सन्निपातजमाह—सर्वाकृतिः सन्निपाताच्छोफो व्यामिश्रहेतुजः ॥ १४ ॥

भूनिम्बादि क्वाथ—चिरेता और सोंठि इनको सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें ... पुनर्नवा का क्वाथ पान करने से मनुष्यों के सर्वांग में हुए शोथ निश्चित ही शीघ्र नष्ट हो जाते हैं।

पथ्याद्यो क्वाथः—

पथ्यामृतामद्रिपुनर्नवाग्निदार्वीनिशादारुमहौषधानाम् ।
क्वाथो निपीतोदरपाणिपादवक्त्राश्रितं हन्त्यचिरेण शोथम् ॥ १ ॥

पथ्यादि क्वाथ—हर्रा, गुर्च, कमलगट्टा, गदह पुरना, चित्त की जड़, दारुहल्दी, हल्दी, देवदारु, सोंठि, समभाग लेकर क्वाथ कर पान करने से उदर हाथ, पाँव और मुख के आश्रय होने वाले शोथ शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

त्रिफलादि क्वाथ—

त्रिफलाक्वाथपान हि महिषीसर्पिषा सह । हन्ति शोथ प्रमेह च नाडीव्रणभगन्दरम् ॥ १ ॥

त्रिफलादि क्वाथ—आंवला हर्रा, बहेड़ा समान लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर उसमें भैंस के घृत का प्रक्षेप देकर पान करने से शोथ प्रमेह नाड़ी व्रण और भगन्दर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

सिंहास्यादि—सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं पीत्वा समाक्षिकम् ।
कृच्छ्रशोथं जयज्जन्तुः कासश्वासज्वरं वमिम् ॥ १ ॥

सिंहास्यादि क्वाथ—अडूसा गुरुचो, बड़ी छोटी सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कष्ट साध्य शोथरोग, कास, श्वास, ज्वर और वमन रोग नष्ट होते हैं॥१॥

चूर्णानि तत्रादौ पिप्पल्यादि—

कृष्णाग्निविश्वघननीरदकण्टकारीपाठानिशाकरिकणामृगधाजटानाम् ।
चूर्ण कवोष्णसलिलेन विलोड्य पीतं नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ १ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपरि, चित्त की जड़, सोंठि, नागरमोथा, जीरा, छोटी बड़री, पुरइनपाड़ी हल्दी, गजपीपरि, पिपरामूल समभाग लेकर चूर्ण कर इसको कुछ गरम जल में घोल कर पान करने से शोथरोग नष्ट होता है। मनुष्यों के लिये शोथरोग का नाश करने वाला इससे बढ़कर अन्य कोई और औषध नहीं है ॥ १ ॥

गुडाद्य योग—

गुडपिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् । आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ १ ॥

गुडाद्य चूर्ण—पुराना गुड़, पीपरि, सोंठ, समभाग लेकर चूर्णकर सेवन करने से शोथ नष्ट होता है और आमाजीर्ण शान्त होता है, शूल नष्ट होता है और वस्ति शुद्धि होती है ॥ १ ॥

अन्यच्च—

गुडार्द्रकत्रयं प्राश्य शङ्खचूर्णं पलत्रयम् । अष्टपलसमा कृष्णा लोहकिट्टायसोः पलम् ॥
चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ॥ १ ॥

अन्य मत से गुडादि योग—पुराना गुड़, सोंठ और पीपरि तोल १ पल, लेकर चूर्ण कर एकत्र कर उसमें शुद्ध मण्डूर भस्म तथा लौहभस्म एक १ पल मिलाकर खाद कर सेवन करने से सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पुनर्नवाद्यं चूर्णम्—

पुनर्नवा शार्ङ्गसुता पाठा विश्वा महौषधिका । ... ॥१॥
समभागानि सम्पूर्ण नवो गोमूत्रेण वा त्रिफलम् । बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रावसारिणम् ॥
हन्ति चाऽऽयुष्प्रदाष्टौ प्रजारोधोदराण्यपि ॥ २ ॥

पुनर्नवाद्य चूर्ण—गदहपुरना, दारुहल्दी, गुरुचि, पुरइनपाड़ी, सोंठि ... हल्दी, दारुहल्दी बड़ी कटरी, छोटी कटेरी, चीता चित्त की जड़ और ... समभाग लेकर चूर्णकर गोमूत्र के अनुपान से सेवन करने से बहुत प्रकार के शोथ जो सम्पूर्ण शरीर में फैल गये हों सबको नष्ट करता है। तथा आठों प्रकार के उदर रोग और बवासीर रोग को भी नाश कर देता है ॥ १-२ ॥

त्रिवृतादि—

त्रिवृत्कृष्णाकटुकादिमूत्रिपत्रादार्व । ... ॥

द्विगुण सचित्रेष्वपूर्णं पयसा शोफशान्तये ॥ १ ॥

चित्रकादि चूर्ण—पाषाणभेद, दन्तीमूल, बड़ी, निशोथ, चित्रक की जड़, देवदारु, सौंठि, मरिच, पीपरि, अजवा, हर्रा, बहेड़ा इन सबके चूर्ण को एक २ भाग और लोहभस्म दो भाग लेवे सबको एकत्र करके दूध के अनुपान से सेवन करने से शोथ रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गुडार्द्रकादियोग—

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडपिप्पलीं वा।
कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पथ्यभुगपि मासम् ॥ १ ॥
शोफप्रतिश्यायगलास्यरोगान्सश्वासकासारुचिपीनसादीन्।
जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्हन्यात्तथाऽन्यानपि वातरोगान् ॥ २ ॥

गुडार्द्रकादि योग—पुराना गुड़ और अदरक अथवा पुराना गुड़ और सौंठि अथवा पुराना गुड़ और हर्रा अथवा पुराना गुड़ और पीपरि इनमें से किसी एक योग को कर्ष प्रमाण की मात्रा से प्रारम्भ कर क्रम से यथा योग्य प्रमाण बढ़ाता हुआ तीन पल तक के प्रमाण की मात्रा तक सेवन करे और पथ्य सेवन करे इस प्रकार एक मास तक करे तो इससे शोथ, प्रतिश्याय, गला तथा मुख के रोग, श्वास, कास, अरुचि, पीनसादि रोग, जीर्ण ज्वर, अर्श, ग्रहणी के विकार तथा अन्यान्य वातरोग भी नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

पुनर्नवादियोग—पुनर्नवामूलकृष्णदारुविश्वौषधशुण्ठीमूलसिद्धा।
रसा यवागूश्च पयांसि पथ्याः शोफे प्रदेया दशमूलगर्भाः ॥ १ ॥

पुनर्नवादि योग—गदहपुरना, मूली, देवदारु, गुरुचि, चित्रक की जड़, समभाग लेकर सोलह गुने जल के साथ पाक करे जब आधा शेष रह तो उसमें दशमूल का कल्क देकर उसी जल में रस, यवागू, दूध, यूष आदि सिद्ध कर शोथ में देना चाहिये। इससे शोथ शमन होता है ॥ १ ॥

क्षीरम्—

क्षीरं शोफहरं दारुवर्षाभूनागरैः शृतम्। पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम् ॥ १ ॥

क्षीर—देवदारु, गदहपुरना सौंठि इन द्रव्यों के साथ अथवा चित्त की जड़, सौंठि, मरिच, पीपरि निशोथ और देवदारु इन द्रव्यों के साथ क्षीरपाक की विधि से क्षीर सिद्ध कर पान करने से शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

आर्द्रकरसः—

आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः। अजाक्षीराशिनः शोघ्रं सर्वशोथहरो भवेत् ॥ १ ॥

आर्द्रकरस—अद्रक के रस पुराने गुड़ को मिलाकर पान करने और बकरी के दूध का पथ्य लेने से शीघ्र ही सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गोमूत्रमण्डूरम्—

गोमूत्रसिद्धमण्डूरं सुरभीरसभावितम्। माणकार्द्रकदन्तीनां रसेष्वपि च भावयेत् ॥ १ ॥
त्रिफलाकटुचव्यानां चूर्णं पाणितलद्वयम्।
पिबेत्सुसिद्धे पाके तु मधुनश्च पलद्वयम्। निहन्ति सन्नजं शोफं सर्वाङ्गं च विशेषतः ॥ २ ॥

गोमूत्र मण्डूर—शुद्ध मण्डूर (दो पल) को गोमूत्र के साथ अग्नि पर सिद्ध कर गोमूत्र से भावित करे फिर मान कन्द और अद्रक के रस में पृथक् २ भावित करे पश्चात् सुखाकर उसमें आँवला, हर्रा, बहेड़ा, सौंठि पीपरि, मरिच और चव्य का समान मिलित चूर्ण दो पल ले मिला कर मर्दन कर दो पल मधु मिलाकर सेवन करने से सन्निपातज शोथ तथा विशेष कर सम्पूर्ण अङ्गों के शोथ को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

कंसहरीतकी—द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसेऽभयानां च शतं गुडाच्च।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषत्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ १ ॥
प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशीते किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात्।
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ २ ॥

कंसहरीत की—दोनों पञ्चमूल (दशमूल) समान मिलित को एक आढक लेकर एक द्रोण जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार—छानकर उसमें उत्तम पके हुए हरड़ संख्या

में १०० और पुराना गुड़ सौ पल मिला घोल कर शुद्ध छान कर हरड़ समेत अग्नि पर रख कर अवलेह सिद्ध कर उसमें सोंठि मरिच, पीपरि के चूर्ण को एक २ पल ले और दालचीनी, इलायची और तेजपात का पृथक् २ एक २ कर्ष चूर्ण को मिलावे और इसी प्रमाण से यवाक्षार भी मिलावे तथा शीतल हो जाने पर उसमें आधा प्रस्थ मधु मिला कर स्निग्धपात्र में रख लेवे। प्रतिदिन एक हरड़ खा कर और ऊपर से शुक्ति प्रमाण ( आधा पल ) इस लेह को चाट लेवे तो इससे बढ़ा हुआ शोथ नष्ट होता है ॥ १–२ ॥

कासज्वरारोचकमेहगुल्मप्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।
कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ३ ॥

कास, ज्वर, अरुचि, मेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोषज, उदररोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्ररोग, वात रोग और शुक्र रोग ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

दशमूल हरीतक्या तुल्यं कंसहरीतकी । मानं तेनात्र नाकार्षं चरके प्राह वेज्जटः ॥ ४ ॥

दशमूल हरीतकी जो आगे लिखी गयी है उसी के समान यह कंसहरीतकी है। इस कंसहरीतकी में चरक ने मान नहीं कहा है परन्तु वेज्जट महाराज ने यहाँ दशमूल हरीतकी के समान ही मान ग्रहण करने को कहा है ॥ ४ ॥

दशमूलहरीतकी—

दशमूलीकषायस्य कंसे पथ्याशतं गुडात् । तुलां पचेद्घने तस्मिन् व्योषक्षारचतुष्पलम् ॥ १ ॥
त्रिजातं तु सुवर्णांशं प्रस्थार्धं मधुनो हिमे । दशमूलहरीतक्यः शोथान्हन्ति सुदुस्तरान् ॥२॥

दशमूल हरीतकी—दशमूल के मिलित द्रव्यों को एक आढक लेकर एक द्रोण जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार–छान कर उसमें सौ पल पुराना गुड़ मिला घोल छान कर उसम पके हुए संख्या में १०० हरड़ मिलाकर अग्नि पर रख कर अवलेह सिद्ध कर उसमें सोंठि, पीपरि, मरिच और यवाक्षार चार पल ( एक २ पल पृथक् २ ) चूर्ण मिलावे और दालचीनी इलायची और तेजपात इनका चूर्ण एक २ कर्ष मिलावे और शीतल होने पर आधा प्रस्थ मधु मिलाकर स्निग्ध पात्र में रख उपर्युक्त कंसहरीतकी की भाँति इस दशमूल हरीतकी का सेवन करने से कठिन शोथ नष्ट होते हैं ॥ १–२ ॥

पुनर्नवासव—पुनर्नवे द्वे तु पले समेता दुःस्पर्शा गुडूची सह चित्रकेण ।
निदिग्धिका च त्रिफला विषाणा द्रोणावशेषे सलिले सतर्कम् ॥ १ ॥
पूत्वा रसे द्वे च शते पुराणं गुडं मधुप्रस्थयुतं सुशीतम् ।
मासं निदध्याद्घृतभाजनस्थं पक्षे यवानां परतश्च मासम् ॥ २ ॥
चूर्णीकृतैरर्धपलांशिकैश्च व्योषत्वगेलामरिचाम्बुपत्रैः ।
गन्धान्वितं क्षौद्रयुतं प्रसिद्धं जीर्णे पिबेद्व्याधिपरं समीक्ष्य ॥ ३ ॥
हृत्पाण्डुरोगं श्वयथुं प्रवृद्धं प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान् ।
भगन्दरार्शोजठराणि कासश्वासग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ ४ ॥
शाखानिलं बद्धपुरीषतां च हिक्कां च कासं च हलीमकं च ।
क्षिप्रं जयेद्वर्णबलायुरोजस्तेजोन्वितो मांसरसेन युक्तः ॥ ५ ॥

पुनर्नवासव—दोनों पुनर्नवा ( लाल और श्वेत ) एक २ पल पृथक् २ दुरालभा, गुर्च, गुरुचि, चित्र की जड़ छोटी कटेरी, त्रिफला, हर्रे, बहेड़ा पृथक् २ एक २ पल लेकर ४ द्रोण जल के साथ चतुर्थांशावशेष क्वाथ कर उतार–छान लेवे और इसमें दो सौ पल पुराना गुड़ और शीतल होने पर मधु एक प्रस्थ मिलावे तथा त्रिकटु, तेजपात, दालचीनी, इलायची, मरिच, सुगन्ध बाला, तेज पात इन सब द्रव्यों को आधा २ पल प्रमाण चूर्ण कर मिला स्निग्ध पात्र में रख मुख मुद्रण आसव की विधि से एक मास रखने पश्चात् एक मास यव की राशि में रख कर सिद्ध किये हुए इस सुगन्धित मधुयुक्त आसव को रोग बलादि को विचार यथोचित मात्रा से सेवन करने से हृद्रोग, पाण्डु, शोथ भी अत्यन्त बढ़ा हुआ हो प्लीहा, भ्रम अरुचि, मेह गुल्म, भगन्दर, अर्श, उदररोग, कास, श्वास ग्रहणीरोग, कुष्ठ, कण्डू खाज ( इन्द्रिय खुजली ) से इसके बाद शाखावात, मल बद्धता, हिक्का, कास, हलीमक, इन सब रोगों को शीघ्र नष्ट कर देता है। और वर्ण, बल,

आयु, ओज को बढ़ाता है। इसका मांस रस पथ्य करने के पश्चात् सेवन करना अधिक लाभ दायक है॥ १-४॥

वासकासव —

वासकस्य तुले द्वे तु द्विद्रोणेऽपां विपाचयेत्। द्रोणावशेषे तस्मिंस्तु शीते पूते प्रदापयेत्॥१॥
गुडस्यैकां तुलां तत्र धातक्याश्च पलाष्टकम्। पिपेत्र्यूर्णीकृतं सहिंसत्वगेलापत्रकेसरम् ॥२॥
कङ्कोलस्योषणस्यापि पिप्पल्याश्चुपकल्पयेत्। निदध्याद् घृतभाण्डे तु पक्षादूर्ध्वं ततः पिबेत्॥
वासकासव इत्येष सर्वश्वयथुनाशनः ॥ ३ ॥

वासासव—अडूसा का पञ्चाङ्ग दो तुला ( २०० पल ) लेकर क्वाथ की विधि से दो द्रोण जल में चतुर्थांशावशेष पाक कर उतार-छान कर शीतल कर उसमें पुराना गुड़ एक तुला ( १०० पल ) धाय के फूल आठ पल और दालचीनी इलायची, तेजपात, नागकेसर, कङ्कोल, सोंठि, मरिच, पीपरि प्रत्येकवस्तु को एक २ पल ले चूर्णकर सबको एकत्र मिला घृत पात्र में रख मुखमुद्रण कर आसव की विधि से एक पक्ष ( १५ दिन ) रख कर आसव सिद्ध होने पर पान करने से यह वासकासव सब प्रकार के शोथ को नष्ट करता है॥ १-३॥

दार्व्यादियोग —

पिबेदुष्णाम्बुना दारुपथ्याशुण्ठीपुनर्नवाः। चित्रकातिविषापाठाविश्वदारूषणानि वा॥
वर्षाभूशृङ्गवेराभ्यां कल्कं वा सर्वशोथनुत्॥ १॥

दार्व्यादि योग—१-देवदारु, हर्रे, सोंठि और पुनर्नवा, अथवा २-चित्रक, अतीस, अरसा सोंठि, देवदारु, मरिच, अथवा ३-पुनर्नवा और सोंठि इनमें से किसी एक योग के विधिवत् बने कल्क को उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से सब प्रकार के शोथ नष्ट होते हैं॥ १॥

तक्रादियोग—

तक्रं पिबेद्वा गुडभिन्नवर्चाः सव्योषसौवर्चलमाक्षिकं च।
विबद्धवातस्तु पयसा रसैर्वा प्रागुष्णमद्यानुरुबूकतैलम्॥ १॥

तक्रादियोग—जिस शोथ के रोगी का मल गुड़ तथा टूटा हुआ ( आम ) निकलता हो उसको सोंठि मरिच, पीपरि, सोंचर नमक के चूर्ण और मधु मिलाकर तक्र पीना चाहिये और जिसके मल और वात का अवरोध हो गया हो ऐसे शोथ के रोगी को प्रथम दूध अथवा मांस रस के साथ एरण्ड का तैल पीना चाहिये पश्चात् उष्ण मद्य पीना चाहिये इससे शोथ नष्ट होता है॥ १॥

पुनर्नवादिघृतम्—

पुनर्नवापत्ररसाम्रमूलसद्रुत तोयार्मणोपसिद्धम्।
चतुर्थभागेन घृतं विपक्वं प्रस्थं तु तत्कल्कपलाष्टकेन॥ १॥
संसेवितं वातबलासरोगान्सर्वांश्च शोफानतिदुस्तरांश्च।
गुल्मोदरप्लीहगुदोद्भवांश्च निहन्ति वह्निं कुरुतेऽपि पुंसाम्॥ २॥

पुनर्नवादि घृत—गदहपुरना के पत्र और आम के जड़ की छाल इनको सम भाग ले कूट कर मिलित एक प्रस्थ को १६ प्रस्थ जल के साथ क्वाथ कर चतुर्थांश ( १ आढ़क ) शेष रहने पर उतार छानकर जितना हो उसके चतुर्थांश ( १ प्रस्थ ) मूर्च्छित गोघृत और उसी पुनर्नवा पत्र और आम की जड़ का समान मिलित कल्क आठ पल मिलाकर घृत सिद्ध कर सेवन करने से सब प्रकार के वात तथा कफ के रोग अति कठिन शोथ, गुल्म, उदर, प्लीहा और अर्श इन सब रोगों को नष्ट करता है और अग्नि को बढ़ाता है॥ १-२॥

पञ्चमूलाद्य तैलम्—

पञ्चमूलं सलवणं सरलं देवदारु च। हस्तिकर्णी पलाशस्य फलानि निचुलस्य च॥ १॥
पलाशं काकनासा च गुडूची देवपुष्पकम्। अहिंसा श्रेयसी हिंस्रा श्वसनगन्धा पुनर्नवा॥२॥
कायस्था च वयस्था च दारुका जटिला जटा। अलम्बुषोरुबूकं च मधुसाह्व सनागरम्॥ ३॥
शिग्रुर्गोधावनी भार्ङ्गी तर्कारी पौष्करी जटा।
एतैः सिद्धं यथालाभं तैलमभ्यञ्जनैस्त्रिभिः। निहन्त्युदीर्णं श्वयथुं जन्तोर्वातकफात्मकम्॥४॥

पञ्चमूलादि तैल—छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, सरिवन, पिठिवन और गोखरू तथा सेंधानमक,

ग्राम्यजीवों के मांस, आनूप जीवों के मांस, कच्चा मांस, नमक, सूखा शाक, नये अन्न, गुड़ से प्रस्तुत मद्य, पिठ्ठी, दही मलाई सहित, झरना का पानी, मद्य, अम्ल रस द्रव्य, धान, सूखा मांस, अधिक भोजन, गुरु तथा असात्म्य और दाह कारक पदार्थ का सेवन, रात को सोना और मैथुन इनको शोथ का रोगी त्याग देवे ॥ ४ ॥

वृन्दात्पथ्यापथ्यम्—

पुराणयवशाल्य न दशमूलोपसाधितम् । अल्पमल्पकटुस्नेहं भोजनं शोफिनां हितम् ॥ १ ॥

वृन्द से पथ्यापथ्य—पुराने यव, शालीधान के चावल, इनको दशमूल के क्वाथ में सिद्ध कर देना चाहिये और थोड़ा अम्ल, कटु तथा स्निग्ध भोजन शोथ के लिये लाभदायक है ॥ १ ॥

पिष्टान्नमुष्ण लवणानि मद्य मृद दिवा स्वप्नमजाङ्गल च ।
पयो गुडं तैलमथो गुरुणि शोफ जिघांसु परिवर्जयेत् ॥ १ ॥

पिठ्ठी के अन्न, उष्ण द्रव्य, नमक, मद्य, मिट्टी खाना, दिन में सोना, जांगल जीवों के अतिरिक्त अन्य जीवों का मांस, दूध, गुड़, तेल और गुरु पदार्थ शोथ को नष्ट करने की इच्छा वाला त्याग देवे ॥ १ ॥

इति शोथप्रकरण समाप्तम्

---

## अथ मुष्कान्त्रवृद्धिघर्मरोगनिदानम् ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

क्रुद्धोरुद्धगतिर्वायुः शोथशूलकरश्चरन् । मुष्कौ वङ्क्षणतः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ॥
प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः ॥ १ ॥

वृद्धि की सम्प्राप्ति—ऊपर की ओर से अवरुद्ध गति वाला तथा कुपित अपान वायु नीचे की ओर चलता हुआ शोथ और शूल को करता हुआ वंक्षण स्थान से अण्डकोश में प्राप्त होकर फलकोशाभिवाहिनी ( अण्डकोशों के आधारभूत ) धमनियों ( नाड़ियों ) को पीड़ित करता हुआ फलकोशों ( अण्डकोशों ) ( एक को अथवा दोनों ) को बढ़ाता है ॥ १ ॥

वृद्धेः संख्यामाह—

दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः स वृद्धिः सप्तधा गदः । मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलः ॥ २ ॥

वृद्धि की संख्या—दोषों अर्थात् वातज, पित्तज और कफज इन भेद में से तीन, रक्त से एक, मेद से एक और मूत्रदोष तथा अन्त्र दोष से एक २ इस प्रकार वृद्धि रोग सात प्रकार का होता है। परन्तु इसमें मूत्रज और अन्त्रज जो वृद्धि है वह वात से ही होती है ( यहाँ केवल कारण भेद से गणना में लिए गये हैं ) ॥ २ ॥

वातजमाह—वातपूर्णदृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥

वातज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में वायु पूर्ण चमड़े की थैली के समान अण्डकोश स्पर्श करने पर रूक्ष ज्ञात हो और उसमें अकारण पीड़ा हो उसे वात के दोष की वृद्धि जाननी चाहिये।

पित्तजमाह—पक्वोदुम्बरसङ्काशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् ॥ ३ ॥

पित्तज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में अण्डकोश पके हुए गूलर के फल के समान वर्ण का हो जाये तथा उसमें उष्मा और पाक हो उसे पित्त के दोष [illegible] जाननी चाहि[illegible]

श्लेष्मजमाह—कफात्कठिनो गुरुः स्निग्धः क[illegible]

कफज वृद्धि के लक्षण—जिस वृद्धि में अण्डको[illegible]

कठिन और थोड़ी पीड़ा हो उसे कफ के दोष की वृ[illegible]

रक्तजमाह—कृष्णस्फोटावृतः [illegible]

रक्तज वृद्धि के लक्षण [illegible] वृद्धि में [illegible]

हुआ हो और पित्तज [illegible] युक्त हो उस [illegible]

मेदोजमाह—[illegible]

मेदोज वृद्धि के ल[illegible] वृद्धि [illegible]

तथा ताड़ के फल के [illegible] की वृद्धि [illegible]

मूत्रजमाह—

मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः। अम्भोभिः पूर्णदृतिवत्क्षोभं याति सरुङ् मृदुः ॥५॥

मूत्रज वृद्धि के लक्षण—जो मनुष्य मूत्र के वेग को रोकता है उसे मूत्रजवृद्धि होती है यह वृद्धि (अण्डकोश) उसके चलने पर जल से भरे हुए चमड़े की थैली के समान डोलती है, उसमें पीड़ा होती है और मृदु होती है, मूत्रकृच्छ्र होता है, और यह कोश हिलता हुआ नीचे की ओर लटक जाता है उसे मूत्रवृद्धि कहते हैं ॥ ५ ॥

अन्त्रजमाह—गुरूष्णपूर्णमधस्तात्स्याद्बाहुल्यान्यफलकोषयोः।
वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥ ६ ॥

धारणेरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः। क्षोभणैः क्षुभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ॥ ७ ॥
पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत्। कुर्याद्वङ्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ८ ॥

अन्त्रज वृद्धि के निदानादि—वात को कुपित करने वाले (रूक्ष-तिक्त-कषायादि) आहार के सेवन करने से अति शीतल जल में स्नान करने से, मलमूत्रादि के वेगों को धारण करने से, वेगों को बलपूर्वक निकालने से, अधिक भार ढोने से, अधिक मार्ग सेवन करने से, अङ्गों का विषम चालन करने से, तथा वायु को क्षोभित करने वाले अन्य कर्मों (अधिक बलवान से युद्ध, उच्चस्वर से बोलना आदि) को भी करने से कुपित हुई वायु क्षुद्रान्त्र के अवयव को विगुण कर अपने स्थान से नीचे की ओर ले जाती है और वंक्षणसन्धि में गांठ के समान शोथ उत्पन्न कर देती है (आँत को लाकर शोथ कर देती है) उसे 'अन्त्रवृद्धि' कहते हैं (इसी को आँत उतरना कहते हैं) ॥६-८॥

उपेक्ष्यमाणस्यान्त्रवृद्धिमाह—

उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः।
प्रपीडितोऽन्तः स्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥ ९ ॥

उपेक्षित अन्त्रवृद्धि के लक्षण—इसकी उपेक्षा करने से (चिकित्सा शीघ्र नहीं करने से) वह वायुवंक्षण सन्धि से अण्डकोश में आकर आध्मान, पीड़ा और स्तम्भ (मलादि का अवरोध) सहित शोथ वृद्धि करती है। उस वायु के द्वारा उतरी हुई आँत को दबाने से शब्द करती वायु आँत के सहित भीतर प्रवेश कर जाती है और छोड़ देने पर पुनः आ जाती है ॥ ९ ॥

यस्यान्त्रावयवैः श्लेष्मा मुष्कयोर्याति सञ्चयात्।
अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ १० ॥

असाध्य लक्षण—जिस पुरुष के आँत के अवयवों से श्लेष्मा निकल कर अण्डकोशों में जाकर संचित हो जाती है और वातज वृद्धि के समान जिसका लक्षण होता है वह अन्त्रवृद्धि असाध्य है॥

बध्मनिदानम्—

अत्यभिष्यन्दिगुर्वन्नसेवनान्निचयं गतः। करोति ग्रन्थिवच्छोथं दोषो वङ्क्षणसन्धिषु ॥
ज्वरशूलाङ्गसादाढ्यं तं बध्ममिति निर्दिशेत् ॥ १ ॥

बध्म निदान—अत्यन्त अभिष्यन्दी (दही आदि) पदार्थों के अति सेवन से तथा अति गुरु अन्न के अति सेवन करने से संचित हुआ दोष वंक्षण सन्धि में गांठ के समान शोथ उत्पन्न कर देता है और उसमें ज्वर, शूल, अङ्गों की शिथिलता आदि होती है उसे 'बध्मरोग' कहते हैं ॥ १ ॥

## अथ वृद्धिचिकित्सामाह—

वातवृद्धि चिकित्सा—सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम्।
गुग्गुलुं मूत्रैर्वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः। वातवृद्धिनिहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥

वातवृद्धि चिकित्सा—एक मास तक दूध के साथ एरण्ड के तैल को अथवा शुद्ध गुग्गुलु को गोमूत्र के साथ पान अथवा गोमूत्र में एरण्ड तैल मिला कर उसके साथ पान करने से अत्यन्त पुरानी भी वातजवृद्धि शीघ्र नष्ट होती है ॥ १ ॥

पित्तवृद्धिचिकित्सा—

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम्। क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्यात्पित्तवृद्धिरुजापहः ॥ १ ॥

पित्तज वृद्धि चिकित्सा—लालचन्दन, मुलहठी, कमल, खस, नीलकमल सममाग ले दूध के साथ पीस कर लेप बनाकर लगाने से पित्तज वृद्धि की पीड़ा नष्ट होती है ॥ १ ॥

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् । पानं चाऽपि कषायस्य पित्तवृद्धौ प्रशस्यते ॥ २ ॥

पञ्चवल्कल ( वट, पीपल, पाकड़, गूलर और बेत की छाल ) के कल्क बना कर घृत मिलाकर लेप करने से अथवा पञ्चवल्कल के क्वाथ को पान करने से पित्तज वृद्धि में लाभ होता है ॥ २ ॥

कफवृद्धिचिकित्सा—

कफवृद्धौ मूत्रपिष्टैरुष्णवीर्यैः प्रलेपनम् । पातव्यो मूत्रसंयुक्तः कषायः पीतदारुणः ॥ १ ॥

कफज वृद्धि चिकित्सा—उष्णवीर्य द्रव्यों को गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से अथवा दारुहरदी के क्वाथ को गोमूत्र के साथ पान करने से अथवा सोंठि, मरिच, पीपरि, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा इनको समान लेकर क्वाथ बनाकर उसमें यवाक्षार और सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर पान करने से कफ-वात के कोप को नष्ट करता है तथा विरेचन कराकर कफजवृद्धि को नष्ट करता है ॥

त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत् । कफवातात्मकोपघ्नं विरेकात्कफवृद्धिजित् ॥ २ ॥

रक्तजवृद्धि चिकित्सा—रक्तपित्त के कोप से होने वाले वृद्धिरोग में अविदाही ( दाह नहीं करने वाले ) औषध तथा पथ्य को सेवन करना चाहिये और पित्त को नष्ट करने वाले सब कार्य करना चाहिये तथा रक्त से होने वाले वृद्धि में रक्तमोक्षण कराना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तवृद्धिचिकित्सा—

अविदाहि च भैषज्यं कर्तव्यं रक्तपैत्तिके । सर्वं पित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ १ ॥

मुहुर्मुहुर्जलौकाभिः शोणितं रक्तजे हरेत् । शीतमालेपनं सर्वं पाको रक्ष्यः प्रयत्नतः ॥ २ ॥

रक्तजवृद्धि में बार-बार जोंक के द्वारा रक्तमोक्षण कराना चाहिये तथा सब प्रकार के शीतल लेप व्रण पर करना चाहिये और पाक नहीं हो ऐसा यत्न करते रहना चाहिये ॥ २ ॥

त्रिवृतं प्रपिबेत्क्षौद्रशर्करासहितं मुहुः । विद्रधिक्रमं कुर्यादामे पक्वे च रक्तजे ॥ ३ ॥

निशोथ के क्वाथ में शीतल होने पर मधु और शक्कर का प्रक्षेप देकर बार-बार पिलाना चाहिये तथा इस रक्तजवृद्धि में आम तथा पक्व दोनों अवस्था में विद्रधि को चिकित्सा के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

मेदोवृद्धिचिकित्सा—

स्विन्नं मेदःसमुत्थानं लेपयेत्सुरसादिना । शिरोविरेचनद्रव्यैः सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ १ ॥

मेदो वृद्धि चिकित्सा—मेद से उत्पन्न होने वाले वृद्धि का सुरसादि गण की ओषधियों से विधिपूर्वक स्वेदन करना चाहिये और शिरोविरेचन करने वाले द्रव्यों को पीसकर गोमूत्र मिलाकर थोड़ा गरम कर लेप करना चाहिये । इससे मेदोवृद्धि नष्ट होती है ॥ १ ॥

षड्षणगुग्गुलु—

षड्षणं क्षौद्रसमं गुग्गुलुं गव्यसर्पिषा । प्रयुक्तं सुदृढश्रीयं यथाग्नि दिवसाननं ॥
कटुतिक्तकषायाशी मेदोवृद्धिप्रणाशनम् ॥ १ ॥

षड्षण गुग्गुलु—पीपरि, पिपरामूल, चव्य चित्रक की जड़, सोंठि और मरिच सममात्र लेकर चूर्णकर उसके समान भाग शुद्ध गुग्गुलु मिला कूटकर मधु और गोघृत मिलाकर अग्नि बल के अनुसार प्रातःकाल भक्षण करने से और कटु-तिक्त तथा कषाय रस वाले पदार्थ का ही पथ्य सेवन करने से मेदोवृद्धि नष्ट होती है ॥ १ ॥

मूत्रजे अन्त्रवृद्धौ च—

संस्वेद्य मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् । सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेन वै ॥ १ ॥

मूत्रज तथा अन्त्रवृद्धि चिकित्सा—मूत्रज तथा अन्त्रवृद्धि में वृद्धि का स्वेदन करके वस्त्र से वेष्टित कर देना चाहिये और सीवनी के पास नीचे 'व्रीहिमुख' यन्त्र से शिरा का वेधन कराना चाहिये ॥ १ ॥

मुष्ककोशमसम्प्राप्तामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः । वातवृद्धिक्रमं कुर्याद्दाहस्तत्राग्निना हितः ॥ २ ॥

यदि अन्त्र वृद्धि अण्डकोश की ओर नहीं आयी हो तो वातज वृद्धि के समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये और अग्नि से दाह करना यहाँ हितकर है ॥ २ ॥

शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा सीवनिमादरात् । व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये ॥

दाहं स्यात् के ऊपर कान के अन्तिम भाग में सीवनी को छोड़ कर व्यत्यासभाव से अर्थात् यदि अण्डकोष में वृद्धि हो तो बायें कान की और बायें अण्डकोष में वृद्धि हो तो दायें कान की सिरा को भेदन करे तो इससे अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

अन्त्रवृद्धौ योग —

तैलमेरण्डजं पीत्वं बलासिद्ध पयोन्वितम्। आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ४ ॥

बरिआरा के साथ क्षीरपाक की विधि से सिद्ध दूध में एरण्ड के तेल को मिलाकर पान करने से आध्मान और शूल से युक्त अन्त्रवृद्धि रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रास्नादि—

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः। क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥ ५ ॥

रास्नादि क्वाथ—रास्ना, जेठी मधु, गुरुचि, एरण्ड की जड़, बरिआरा और गोखरू का सम भाग क्वाथ कर उसमें एरण्ड तेल मिलाकर सेवन करने से शीघ्र अन्त्रवृद्धि का नाश होता है ॥ ५ ॥

पिप्पल्यादिप्रलेप —

पिप्पली जीरकं कुष्ठं बदरं शुष्कगोमयम्। काञ्जिकेन प्रलेपोऽयमन्त्रवृद्धिविनाशनः ॥ ६ ॥

पिप्पल्यादि लेप—पीपरि, जीरा, कूठ, बेर, सूखा गोबर इनको समान ले चूर्ण पीस कर काञ्जी में मिलाकर लेप करने से अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ६ ॥

देवदार्वादि प्रलेप —

देवदारुमिशीवासापाषाणभेदमूलसैन्धवैः। क्षौद्रयुक्तश्च तैर्लेपो वृद्धिमन्त्रभवां जयेत् ॥ ७ ॥

देवदार्वादि लेप—देवदारु, सौंफ, वासा, पाषाण भेद की जड़, और सेंधा नमक इनको समान ले कूटपीस कर मधु मिलाकर लेप करने से अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है ॥ ७ ॥

अण्डवृद्धिचिकित्सा—

तैलं नारायणं योज्यं पानाभ्यञ्जनबस्तिषु। गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां रसगन्धककज्जलीम् ॥ १ ॥
पीत्वा निहन्ति सहसा वृद्धिं वृषणसम्भवाम्।

अण्डवृद्धि चिकित्सा—अण्डवृद्धि में नारायण तेल को पान करने, मर्दन करने और बस्ति कर्म में प्रयोग करने से और गोमूत्र में एरण्ड तेल मिलाकर उसमें शुद्ध पारद तथा शुद्ध गन्धक की कज्जली मिलाकर पान करने से अण्डकोष की वृद्धि को हठात् नष्ट करता है ॥ १ ॥

वातकफवृषणफलत्रिकादि—

फलत्रिकोत्थं क्वाथं गोमूत्रेणैव पाययेत्। वातश्लेष्मकृतं हन्ति शोथं वृषणसंभवम् ॥ २ ॥

फलत्रिकादि क्वाथ—हर्रा, बहेड़ा, आँवला सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें गोमूत्र मिलाकर पान करने से वृषण का वातकफज शोथ नष्ट होता है ॥ २ ॥

प्लक्षादिपिण्डी—

प्लक्षाक्षबीजशुण्ठीनिर्गुण्डीनां मिथः समैश्चूर्णैः।
घृतमधुसहिता पिण्डी न शमते मुष्कवृद्धिकथाम् ॥ ३ ॥

प्लक्षादि पिण्डी—पाकड़, बहेड़े की गुठली, सोंठि और निर्गुंडी सम भाग लेकर चूर्ण कर घृत और मधु मिलाकर पिण्डी बनाकर विधिवत् प्रयोग करने से अण्डकोश की वृद्धि को नष्ट करता है ॥

वचासर्षपकल्केन प्रलेपः शोफनाशनः।

दार्वीचूर्णं गवां मूत्रैर्निपीतं मुष्कवृद्धिजित्। आर्द्रकस्य रसः क्षौद्रयुक्तो वृषणवातजित् ॥४॥

वच और सर्सों को पीसकर लेप करने से अण्डकोष का शोथ नष्ट होता है, अथवा दारु हरदी के चूर्ण को गोमूत्र के साथ पान करने से मुष्क वृद्धि नष्ट होती है अथवा अदरक के स्वरस में मधु मिलाकर पान करने से वृषण वात नष्ट होता है ॥ ४ ॥

## अथ सामान्यविधिः।

मांस्यादिघृतम्—

मांसी कुष्ठं पत्रकैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम्। कृमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कटुरोहिणी ॥१॥
सैन्धवं तगरं चैव कुटजातिविषैः समैः। एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥
घृष्टमुण्डीतकैरण्डनिम्बपत्रभवं रसम्। कण्टकार्याश्चापि दुग्धं प्रस्थं प्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ ३ ॥

सिद्धमेतद्घृतं पीतमन्त्रवृद्धिं व्यपोहति । वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापि वा ॥
मूत्रवृद्धिं च हन्त्येतान्सर्वानाशु न संशयः ॥ ४ ॥

मांस्यादि घृत—जटामासी कूठ, तेजपात, इलायची, रास्ना, काकड़ासिंगी, चित्त की जड़, कामीरग, असगन्ध, छैल छरीला, कुटकी, सेंधा नमक, तगर, कोरया को छाल और मजीठ को समान वा एक २ कर्ष लेकर कल्क कर एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत में मिलाकर पाक करे और इसमें पाकार्थ अरूसा का स्वरस, मुण्डी का स्वरस, एरण्ड के पत्तों का स्वरस, नीम के पत्तों का स्वरस छोटी कटेरी के पंचाग का स्वरस और गाय का दूध प्रत्येक एक २ प्रस्थ पृथक् २ डालकर विधिवत् पाक करे घृत मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर पान करने से अन्त्रवृद्धि को नष्ट करता है और वातज वृद्धि, पित्तज वृद्धि, मेदोज वृद्धि और मूत्रज वृद्धि को यह घृत शीघ्र और निश्चय ही नष्ट कर देता है ॥ १-४ ॥

पुनर्नवादि तैलम्—

पुनर्नवाऽमृता दारु सक्षार लवणत्रयम् । कुष्ठं सटी वचा मुस्तं रास्ना कट्फलपुष्करम् ॥ १ ॥
यवानी हपुषा शिग्रुः शताह्वा चाजमोदिका । विडङ्गातिविषापथ्यापञ्चकोलकसंयुतैः ॥ २ ॥
एभिरपसमैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत् । गोमूत्रं द्विगुणं देयं काञ्जिकं च तथैव च ॥ ३ ॥
पुनर्नवाद्यमेतत्तु बस्तौ पाने तयोस्समम् । कटयूरुपृष्ठमेढ्रेषु कुक्षौ च वृषणाश्रितम् ॥
कफवातोद्भवं शूलमन्त्रवृद्धिं विनाशयेत् ॥ ४ ॥

पुनर्नवादि तैल—पुनर्नवा, गुरुचि, देवदारु, यवाखार सेंधानमक, सोंचरनमक, विडनमक, कूट, कचूर, वच, नागर मोथा, रास्ना, कायफर, पुहकर मूल, अजवाइन, हाऊबेर, सहिजन, सौंफ अजमोदा, बामीरग अतीस, जेठी मधु, पीपरि, पिपरामूल, चाव, चित्त की जड़ और सोंठि पृथक् २ एक २ अक्ष के प्रमाण से लेकर एक प्रस्थ पस्क मूर्च्छित तिल के तेल में मिलाकर तेल पाक करे और इसमें गोमूत्र और कांजी दो २ प्रस्थ देकर पाक करे तेल मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर रख लेवे। यह 'पुनर्नवादि तैल' बस्ति कर्म तथा पान करने में उत्तम है। इससे कटि, ऊरू, पीठ, शिश्न, कुक्षि और अण्डकोष में उत्पन्न होनेवाले कफ और वात के शूल तथा अन्त्रवृद्धि नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

## अथ वर्ध्मचिकित्सामाह ।

बिल्वादिचूर्णम्—

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः
श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वौषधाग्न्यम्बरम् ।
कृष्णाग्रन्थिकपञ्चलवणं क्षाराजमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं वर्ध्मजित् ॥ १ ॥

बिल्वादि चूर्ण—बेल की जड़, कैथ की जड़, सोना पाठा की छाल, चित्त की जड़, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, श्यामा (काली निशोथ), पूति करञ्ज, सहिजन की छाल, सोंठि, शुद्ध भिलावा, पीपरि, पिपरा मूल, बामीरग, पृथक् २ पांचो नमक, यवाखार अजमोदा सम भाग (एक २ भाग) लेकर चूर्ण कर कांजी अथवा उष्ण जल अथवा मथित (तक्र) के अनुपान से यथायोग्य मात्रा से सेवन करने से वर्ध्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

भृष्टश्चैरण्डतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः । कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वर्ध्मरोगहरः परः ॥ १ ॥

एरण्ड तैलादि योग—एरण्ड के तेल के साथ हरड़ के कल्क वा चूर्ण को भूजकर उसमें पीपरि का चूर्ण तथा सेंधा नमक मिलाकर सेवन करने से वर्ध्म रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

भद्रदारुसिन्धुविश्वाब्ददारुक्रिमिहरारमितं । लोध्रयुक्तं घृतेनाद्यात्तद्वर्ध्महरं परम् ॥ २ ॥

भद्रदार्वादि चूर्ण—गोखरू, सेंधा नमक, सोंठि, नागरमोथा देवदारु, बामीरग, पत्रचूर और लोध सममाग लेकर विधि पूर्वक चूर्ण कर घृत के साथ मिलाकर सेवन करने से वर्ध्म नष्ट होता है ॥

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वा निचुलं वचा । ह्रीवेरं मधुकं भार्ङ्गी देवदारु सनागरम् ॥ ३ ॥
कट्फलं पौष्करं मेदा चविका चित्रकं सटी । विडङ्गातिविषे श्यामा हरेणुर्नीलिनी स्थिरा ॥४॥
बिल्वाजमोदा रास्ना च कृष्णा दन्ती च तैः समैः । साध्यमैरण्डजं तैलं तैलं वा कफवातनुत्॥

चर्म्मोद्दायतंगुल्ममार्शं प्लीहमेहाग्न्यमादवातान्। आनाहमश्मरीं चैव हन्यात्तदनुवासनात् ॥६॥

सैन्धवादि तेल—सेंधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, समुद्रफल, बच, दारुबेर, मुलहठी, चमनेटी, देवदारु, सोंठि, कायफर, पुष्करमूल, मेदा, पथ्य, चित्ता की जड़, कचूर, काकोली, अतीस, माली निशोथ, रेणुका, नील, शालिपर्णी, बेल की छाल, अजमोदा, रास्ना, दन्ती, पीपरि, समान लेकर विधिवत् कल्क कर कल्क के चौगुना मूर्च्छित एरण्ड तेल अथवा तिल का तेल और पाकार्थ जल तेल से चौगुना लेकर मेल पाक कर सेवन करने से ये दोनों तेल कफ और वात को नष्ट करते हैं और वर्म्म, उदावर्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, मेह, आढ्यवात, आनाह, अश्मरी, ये सभी रोग इस तेल का अनुवासन वस्ति के द्वारा प्रयोग करने से नष्ट होते हैं ॥ १-६ ॥

अजाजी हपुषा कुष्ठं गोमयं बदरात्वचम्। काञ्जिकेन तु सम्पिष्टं कुर्याद्वर्म्मप्रलेपनम् ॥ १ ॥

अजाज्यादि लेप—जीरा, हाऊबेर, कूठ, गाय का गोबर, बेर की छाल सम भाग लेकर कांजी के साथ पीसकर लेप करने से वर्ध्म में लाभ होता है ॥ १ ॥

सद्योमृतस्य काकस्य मलेन परिलेपनम्। वर्ध्मरोगं प्रशमयत्याशु रविणा तिमिरं यथा ॥
पक्वेऽस्य दारणं कृत्वा प्रकर्त्तव्या व्रणक्रिया ॥ २ ॥

काक मल (विष्ठा) प्रलेप—शीघ्र ही मरे हुए काक की विष्ठा का वर्ध्म पर लेप करने से वर्ध्मरोग शीघ्र इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सूर्य से अन्धकार। वर्ध्म के पक जाने पर चीरफाड़ कर व्रण के समान (शोधन-रोपण आदि) क्रिया करनी चाहिये ॥ २ ॥

## अथ कुरण्डचिकित्सा।

यः पित्तकोपेण कुरण्डरोगो भवेच्छिशोर्दक्षिणमुष्कभागे।
तस्योर्ध्वभागं श्रवणस्य विध्येद्वामस्य वामप्रभवेऽपरस्य ॥ १ ॥

कुरण्ड चिकित्सा—पित्त के विकार से यदि बालक को कुरण्ड रोग (अण्डवृद्धि) दायें अण्डकोष में हो तो दायें कान के ऊपर को और बायें अण्डकोष में हो तो बायें कान के ऊपर की सिरा बेध देना चाहिये ॥ १ ॥

एरण्डतैलादियोग—

एरण्डतैलसम्मिश्रं कासीसं सैन्धवं पिबेत्। वस्त्रेण वृषणं बद्ध्वा कुरण्डज्वरनाशनम् ॥ १ ॥

एरण्ड तैलादि योग—एरण्ड तेल में शुद्ध कासीस का चूर्ण और सेंधा नमक मिलाकर पान करने से और वस्त्र से अण्डकोष को बाँधने से कुरण्ड ज्वर नष्ट होता है ॥ १ ॥

इन्द्रवारुण्यादि—

इन्द्रवारुणिकामूलं तैलं पुष्करजं तथा। सम्मर्द्य च सगोदुग्धं पिबेज्जन्तुः कुरण्डजे ॥ १ ॥

इन्द्रावरुण्यादि योग—माहुरि की जड़ का चूर्ण तिल का तेल अथवा एरण्ड का तेल, पुष्करमूल का चूर्ण सब समान लेकर मर्दनकर गोदुग्ध के अनुपान से पान कराने से कुरण्डरोग नष्ट होता है॥

सैन्धवादिलेप—

सञ्चूर्णितं सैन्धवमाज्ययुक्तं सम्मर्द्य तोयस्थितमेव सोष्णम्।
मुहुर्मुहुर्यः कुरुते प्रलेपं विलीयते तस्य कुरण्डरोगः ॥ १ ॥

सैन्धवादि लेप—सेंधा नमक के चूर्ण को गोघृत में मिलाकर जल में डालकर उष्ण करे जब जल उष्ण होगा तो घृत भी उष्ण होकर फैल आवेगा उस फैले हुए उष्ण घृत का बार २ लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गव्यं घृतेन संयुक्तं क्षिपेत्सैन्धवचूर्णकम्। पिबेत्सप्तदिनं यावच्चावलेपः कुरण्डजे ॥ १ ॥

सैन्धवादि योग—गौ के घृत में सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर सात दिन तक पान करने और इसी का लेप भी करने से कुरण्ड रोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

तण्डुलवारिविमिश्रं घृतपुरसञ्ज्ञं यदुच्यते लोके। तन्मूलं पिष्टलेपं कुरण्डगलगण्डयोः कुर्यात् ॥२॥

घृतपुट लेप—चावल के धोवन के साथ घीकरज की जड़ पीस कर कुरण्ड और गलगण्ड पर लेप करना चाहिये इससे कुरण्ड और गलगण्ड नष्ट होता है ॥ २ ॥

ईश्वरीमूलमेरण्डमूलं मूषकचर्म च। प्रलेपः स्यात्कुरण्डानां रोगविच्छेदकारकः ॥ ३ ॥

ईश्वरी मूलादि लेप—बांझ ककोड़े की जड़, एरण्ड की जड़, मूस का चमड़ा इनको समान ले पीस कर लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सुपेषितं ब्राह्मणयष्टिकाया मूलं समं तण्डुलधावनेन।
निहन्ति लेपाद्गलगण्डमालां कुरण्डमुष्कानिलजान्विकारान् ॥ ४ ॥

ब्राह्मणयष्टि मूल प्रलेप—ब्रह्मदण्डी ( बमनेठी ) की जड़ को पीस कर चावल का धोवन समान मिलाकर लेप करने से गलगण्ड, गण्डमाला और मुष्कगत कुरण्ड रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

वातारितैलमृदितं सुरवारुणीजं मूलं नरः पिबति यो मसृणं विचूर्ण्य ।
गव्ये निधाय पयसि त्रिदिनावसाने तस्य प्रणश्यति कुरण्डकृतो विकारः ॥ ५ ॥

इन्द्रवारुणी मूल योग—एरण्ड के तेल के साथ माहुरि की जड़ को पीस कर गाय के दूध में मिलाकर तीन दिन तक जो पीता है उसका कुरण्ड नामक विकार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम् ।
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानान्निहन्ति कुरण्डमतीव वृद्धम् ॥ ६ ॥

सिद्ध हरीतकी—हर्रा को गोमूत्र में भिगो कर ( भावित कर ) एरण्ड के तेल में भून कर सेंधा नमक के चूर्ण को उसमें मिलाकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ भी कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शम्बूकोदरनिहितं गव्यं सप्ताहमातपे सर्पिः ।
स्थितमपहरति कुरण्डं सैन्धवचूर्णान्वितं लेपात् ॥ ७ ॥

शम्बूक योग—शम्बूक ( घोंघे ) के भीतर गाय का घृत भर कर एक सप्ताह तक धूप में रखने के बाद उस घृत में सेंधा नमक के चूर्ण को मिलाकर लेप करने से कुरण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

संशोधनं बस्तिरसृग्विमोक्षः स्वेदः प्रलेपोऽरुणशालयश्च ।
एरण्डतैलं सुरभीजलं च धन्वामिषं शिग्रुफलं पटोलम् ॥ १ ॥
पुनर्नवागोक्षुरकाग्निमन्थताम्बूलपथ्यारसनारसोनम् ।
धान्याम्लगृञ्जनकं मधूनि जीर्णं घृतं वत्सरजं च तक्रम् ॥ २ ॥
अर्धेन्दुवद्वङ्क्षणयोश्च दाहो व्यस्तासतो बाहुशिराव्यधश्च ।
यथामयं शस्त्रविधिश्च वर्गः स्याद्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनां सुखाय ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—संशोधन कर्म ( वमन विरेचनादि ), बस्तिकर्म, रक्तमोक्षण, स्वेदकर्म लेप लगाना लाल शालीधान का चावल, एरण्ड का तैल, गौ का मूत्र, धन्वदेशीय ( मरुस्थल के ) जीवों का मांस, सहिजन का फल, परवर, पुनर्नवा, गोखरू, गनियार, पान, हर्रा, रास्ना लहसुन, वमन कर्म, प्रियंगु, गाजर, मधु, सौ वर्ष का पुराना घृत, कांजी, मठ्ठा, अर्धचन्द्राकार लोहा तपाकर वंक्षण सन्धि में दागना, बाहु की सिराओं को व्यत्यासभाव से ( दाहिने ओर के अण्डकोष के बढ़ने में बायें और बायें ओर के बढ़ने से दाहिने बांह की सिरा का ) भेदन करना, रोगानुसार शस्त्र चिकित्सा तथा रोगनाशक पदार्थों का सेवन करना आदि सभी उपाय वर्ग तथा वृद्धि रोग में हितकर हैं ॥ १-३ ॥

आनूपमांसानि दधीनि माषाः पिष्टानि तुम्बीमुपोदिका च ।
गुरूणि शुक्रोत्थितवेगरोधाः स्युर्ब्रध्नवृद्ध्यामयिनामहिताः ॥ ४ ॥

आनूप जीवों का मांस दही, उड़द, पिठ्ठी दूषित अन्न, पोई का शाक, गुरु द्रव्य, वीर्य के उठे हुए वेग को रोकना, ये सभी ब्रध्न वर्ग तथा वृद्धिरोग वालों के लिये अहितकर हैं ॥ ४ ॥

वृन्दात् —वेगधारणं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं तथा ।
अत्यशनमथाध्वानमुपवासं परित्यजेत् ॥ १ ॥

वेगों को धारण करना, पीठ पर ( घोड़ा आदि की पीठ पर ) चढ़ना (सवारी करना), व्यायाम मैथुन, अधिक भोजन, मार्ग सेवन और उपवास इन सबको त्याग देवे ॥ २ ॥

इति मुष्कान्त्रवृद्धिब्रध्नरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

---

# अथ गलगण्डगण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदनिदानम् ।

गलगण्डादिनिदानमाह—

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले । महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥

गलगण्ड का रूप—जिस मनुष्य के गले में दृढ़ ( अचल ) शोथ उत्पन्न होकर अण्डकोष के समान लटके और वह शोथ बड़ा हो अथवा छोटा हो उसे 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ १ ॥

यथोक्तं भोजेनापि—

महान्तं शोथमल्पं वा हनुमन्यागलाश्रयम् । लम्बन्तं मुष्कवद्दृष्ट्वा गलगण्डं विनिर्दिशेत् ॥

बड़ा अथवा छोटा जो शोथ हनु, मन्या और गला के आश्रय में अण्डकोष के समान लम्बा लटक जाता है उसे 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ १ ॥

तस्य संप्राप्तिमाह—

वातः कफश्चापि गले प्रदुष्टो मन्ये तु संश्रित्य तथैव मेदः ।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥

गलगण्ड की सम्प्राप्ति—वात, कफ और मेद गले में दूषित होकर दोनों ओर की मन्याओं का आश्रय लेकर क्रम से अपने अपने लक्षणों से युक्त ( वातज, कफज और मेदोज ) गण्ड (शोथ) कर देते हैं उन्हें 'गलगण्ड' कहते हैं ॥ २ ॥

तत्र वातिकमाह—

तोदान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावोऽरुणो वा पवनात्मकस्तु ।
पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्ध्यपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रशोषः ॥

वातज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में तोद ( सुई चुभाने के समान पीड़ा ) हो और वह काली नसों से घिरा हो, तथा उसका वर्ण श्याम अथवा अरुण हो एवं वह रूक्ष हो, बहुत देर में बढ़े और पके नहीं, कोई २ स्वयं पक भी जावे और जिसको यह उत्पन्न होवे उसके मुख का स्वाद विरस हो, तालु तथा गला सूखता रहे उसे वात के कोप का गलगण्ड (वातज गलगण्ड) कहते हैं ॥

श्लैष्मिकमाह—

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥
चिराभिवृद्धिं भजतेऽचिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजः कदाचित् ।
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

कफज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में स्थिरता तथा शरीर के वर्ण के समान वर्ण हो और जो गुरु हो, जिसमें अति कठिन कण्डू हो, जो शीतल तथा बड़ा हो, बहुत देर में बढ़े बहुत देर में पके तथा पाक के समय में भी पीड़ा अल्प ही हो और मुख का स्वाद मधुर हो, तालु तथा गले में कफ लिप्त रहे उसे कफ के कोप का ( कफज ) गलगण्ड कहते हैं ॥ ४-५ ॥

मेदोजमाह—स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवः कण्डुयुतोऽल्परुक्च ।
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेऽनुशब्दं कुरुतेऽतिमात्रम् ॥

मेदोज गलगण्ड—जिस गलगण्ड में स्निग्धता तथा गुरुता हो और जो पाण्डु वर्ण का हो, जिसमें दुर्गंध, कण्डू, अल्प पीड़ा हो, अलाबू ( लौकी ) के समान मूल में पतला और लम्बा होकर लटकने वाला हो, शरीर के समान ही गण्ड का क्षय और वृद्धि हो अर्थात् शरीर दुर्बल होने पर क्षीण और सबल होने पर वृद्ध हो और उसका मुख स्निग्ध रहे, गले में अनुवाद हो अर्थात् जो बोले उसके ही अनुसार गले में भी शब्द होवे उसे मेद के प्रकोप का मेदोज गलगण्ड जानना चाहिये ॥ ६ ॥

असाध्यत्वमाह—कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ।
क्षीणं च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेद्धि ॥ ७ ॥

असाध्य लक्षण—जिस गलगण्ड में रोगी बड़े कष्ट से श्वास लेवे, सम्पूर्ण शरीर उसका मृदु

( कोमल वा शिथिल ) हो गया हो, रोग एक वर्ष का पुराना हो गया हो, रोगी को अरुचि हो, शरीर क्षीण और स्वरभेद हो, उस गलगण्ड के रोगी को वैद्य त्याग देवे ॥ ७ ॥

स्थानतुल्यतया गलगण्डमालामिहैवाह—

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षा समन्यागलवङ्क्षणेषु ।
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुभिश्च गण्डैः ॥ १ ॥

गण्डमाला का स्वरूप—मेद और कफ के कुपित होने के कारण काख-कक्षा-मन्या ( कर्ण मूल का निचला स्थान ), गला और वङ्क्षण में बन बेर ( झर बेर ) बड़ी बेर और आँवले के प्रमाण की बहुत सी गण्ड ( गाँठें ) उत्पन्न हो जाती हैं ये गाँठें बहुत समय के बाद धीरे २ मन्दता सम पकने वाली होती हैं उसे 'गण्डमाला' कहते हैं ॥ १ ॥

यदाह भोजः—

वातपित्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समन्वितम् । जङ्घयोः कण्डरां प्राप्य मात्स्याण्डसदृशान्बहून् ॥
कुर्वन्ति ग्रन्थींस्तांस्तेभ्यः पुनः प्रकुपितोऽनिलः । स दोषानूर्ध्वगो यत्र कक्षाम न्यागलाश्रितः ॥
नानाप्रकारान्कुरुते ग्रन्थीनसावपची इव । अपची कण्ठमन्यासु कक्षावङ्क्षणसन्धिषु ॥
गण्डमालां विजानीयादपचीतुल्यलक्षणाम् ॥ ३ ॥

बढ़े हुए वात-पित्त और कफ तथा संचित मेद मिल कर जङ्घाओं की कण्डराओं को प्राप्त होकर मत्स्याण्ड ( मछली के अण्डे ) के सदृश बहुत सी ग्रन्थियों को उत्पन्न कर देते हैं फिर उनसे कुपित ऊर्ध्वग वात उन दोषों को वक्ष स्थल, कांख, मन्या और गला के आश्रय करके अनेक प्रकार की ग्रन्थि अपची की भाँति कर देता है। उसी अपची को जो कण्ठ, मन्या, कांख और वङ्क्षण सन्धियों में ( माला की आकृति की ) हो जाती है उसे 'गण्डमाला' जानना चाहिये। ये ( गण्डमालायें ) अपची के समान ही लक्षणों वाली होती हैं ॥ १-३ ॥

गण्डमालातुल्यतयाऽपचीमाह—

ये ग्रन्थयः केचिदपाकपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ।
कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ॥ १ ॥

गण्डमाला का भेद से अपची—गण्डमाला की ग्रन्थियों में यदि कोई पकती हों, कोई बहती हों ( ग्रन्थियों में पूयादि का स्राव होता हो ), कोई नष्ट होती हों और कोई उत्पन्न होती हों इस प्रकार की अवस्था यदि बहुत समय तक रह जावे तो उस अवस्था को कोई २ अपची कहते हैं ॥

तस्याः साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्याः स्मृताः पीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्या ॥

साध्यासाध्यता—ये उपर्युक्त ग्रन्थियां साध्य कही गयी हैं। परन्तु जिसमें पीनस, पार्श्वशूल, कास, ज्वर और वमन भी हो ऐसी ग्रन्थियां असाध्य हैं ॥

अथापचीरूपतुल्यतया ग्रन्थिमाह—

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः सन्दूष्य मेदश्च तथा सिराश्च ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ १ ॥

ग्रन्थि रोग—कुपित ( वृद्ध ) वातादिक दोष तथा मेद और सिरायें मांस और रक्त को दूषित करके गोल उठी हुई गांठदार शोथ को कर देते हैं उसे 'ग्रन्थि' ( गांठदार होने से ) कहते हैं ॥१॥

वातिकमाह—आयम्यते व्यथति तुद्यते च प्रत्यस्यते मथ्यति भिद्यते च ।
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाऽऽततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम् ॥ २ ॥

वातज ग्रन्थि—जिस ग्रन्थि में खींच कर फटाने छेदन करने, सुई चुभाने, फेंकने, मथने, फोड़ने आदि की भांति पीड़ा होती हो और जो कृष्ण वर्ण की कोमल बस्ति के समान फैली हुई हो तथा फूटने पर जिसमें स्वच्छ रक्त का स्राव हो उसे वातज ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ २ ॥

पैत्तिकमाह—दन्दह्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ।
रक्तः स पीतोऽप्यथ वाऽपि पित्ताद्भिन्नः स्रवेदुष्णमतीव चास्रम् ॥ ३ ॥

पित्तज ग्रन्थि—जिस ग्रन्थि में अत्यन्त दाह धूमा निकलने के समान या अति सन्ताप चूसने ( सिंगी तुम्बी आदि से रक्त खींचने ) के समान क्षार से पकने के समान और अग्नि से जलाने

के समान पीड़ा हो और फूटने पर उससे लाल या पीत वर्ण का अत्यन्त दूषित रक्त का स्राव हो उसे पित्त के कोप की ( पित्तज ) ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ ३ ॥

श्लैष्मिकमाह—शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिपाण्डुः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ।
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ ४ ॥

कफज ग्रन्थि—जिस ग्रन्थि में शीतलता हो शरीर के ही वर्ण के समान वर्ण हो पीड़ा अल्प तथा पाण्डु हो और जो पत्थर के समान कठिन हो, बहुत देर में बढ़े और फूटने पर उससे श्वेत वर्ण का गाढ़ा पूय का स्राव हो उसे कफ के कोप की ( कफज ) ग्रन्थि समझनी चाहिये ॥ ४ ॥

मेदोजमाह—शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कण्डुयुतोऽल्परुक् च ।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिः प्रतिमं च मेदः ।

मेदोज ग्रन्थि—जिस ग्रन्थि में शरीर की वृद्धि होने से वृद्धि तथा शरीर के क्षीण होने से ह्रास हो वह चिकनी, अत्यन्त बड़ी, कण्डु, तथा अल्प पीड़ायुक्त हो, और फूटने पर उसमें से पिण्याक ( पीली हुई खली ) और घृत के समान मेद का स्राव हो उसे मेद के कोप की ( मेदोज ) ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥ ५ ॥

उक्तं च भोजेन—

मेदो वायुर्यदा मांसे निक्षिपेद्यत्र त्वचि । तत्र मेदोभवो ग्रन्थिः श्यावो भवति पाण्डुरः ॥
कृशे कृशो महान्स्थूले ग्रन्थिर्भिन्नश्च पीडितः । तिलकल्कनिभः स्रावो घृतवच्चास्य जायते ॥

जब वायु कुपित होकर मेद को मांस अथवा त्वचा में फेंकता है ( ले आता है ) तब वहाँ श्याम वर्ण वाली अथवा पाण्डु वर्ण वाली मेद से ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है। वह ग्रन्थि रोगी के दुर्बल होने पर सूक्ष्म और स्थूल होने पर बड़ी होती है तथा पीड़ित होने और फूटने पर उससे तिल के कल्क के समान और घृत के समान स्राव होता है उसे 'मेदोज ग्रन्थि जाननी चाहिये ॥

सिराजग्रन्थेः सम्प्राप्तिमाह—

व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु सिराप्रतानम् ।
सङ्कुच्य सम्पीड्य विशोष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥
ग्रन्थिः सिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ॥ १ ॥

सिराज ग्रन्थि—जो निर्बल मनुष्य अधिक श्रम करते हैं उनके श्रम से कुपित वायु सिरा समूह को आक्षिप्त, सङ्कुचित, पीड़ित और विशोषित करके शीघ्र उठी हुई गोल ग्रन्थियों को उत्पन्न कर देती है। वह सिराज ग्रन्थि यदि पीड़ा युक्त और चलने वाली हो तो कष्ट साध्य है और यदि पीड़ा रहित, अचल, बड़ी, मर्मस्थान एवं अस्थि से उत्पन्न होने वाली हो तो वह त्यागने योग्य ( असाध्य ) होती है ॥ १ ॥

तस्यासाध्यत्वमाह—

स चारुजश्चाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १ ॥

असाध्यता—पीड़ा रहित, मर्म स्थान से उत्पन्न और अचल पाँचों प्रकार की ग्रन्थियों को वैद्य त्याग देवे ॥ १ ॥

उक्तं भोजेन—पञ्चैतानरुजो ग्रन्थीन्मर्मजानचलांस्त्यजेत् ।
कपोलगलमन्यासु दुश्चिकित्स्याश्च सन्धिषु ॥ १ ॥

कपोल, गला, मन्या और सन्धियों में होने वाली ग्रन्थियाँ दुश्चिकित्स्य होती हैं उन्हें भी त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥

अर्बुदान्याह—तस्य संप्राप्तिमाह—

गात्रप्रदेशे क्वचिदेव दोषाः सम्मूर्छिता मांसमसृक्प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूलं चिरवृद्ध्यपाकम् ॥
कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाधं तदर्बुदं शास्त्रविदो वदन्ति ॥ १ ॥

अर्बुद की सम्प्राप्ति—कुपित वातादिक दोष शरीर के किसी भाग में मांस और रक्त को दूषित कर गोल, कोमल अल्प पीड़ा ( धीरे २ पीड़ा ) करने वाला, अत्यन्त बड़ा और बड़े मूल वाला, बहुत समय में बढ़ने वाला तथा बहुत समय में पकने वाला अति गम्भीर मांसोच्छ्रय ( मांस का उठाव ) कर देते हैं उसको शास्त्रज्ञ वैद्य 'अर्बुद' कहते हैं ॥ १ ॥

तस्य संख्यामाह—

वातेन पित्तेन कफेन चापि रक्तेन मांसेन च मेदसा च ।
सञ्जायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ॥ २ ॥

अर्बुद की संख्या—वात, पित्त, कफ, रक्त, मांस, और मेद से उत्पन्न होनेवाले छै प्रकार के अर्बुद होते हैं उनके सभी लक्षण सदा ग्रंथि के समान ही होते हैं ॥ २ ॥

रक्तार्बुदमाह—

दोषाः प्रदुष्टाः रुधिरं शिराश्च सङ्कुच्य सम्पीड्य गतास्त्वपाकम् ।
सास्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धिम् ॥ ३ ॥
कुर्वन्त्यजस्रं रुधिरप्रवृत्तिमसाध्यमेतद्रुधिरात्मकं तु ।
रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्भवेदर्बुदपीडितस्तु ॥ ४ ॥

रक्तार्बुद के लक्षण—दूषित ( कुपित ) हुए वातादिक दोष रुधिर और सिराओं को सङ्कुचित और पीड़ित करके पाक रहित अथवा थोड़ा पाक कर के स्राव सहित ऊँचा मांसपिण्ड कर देते हैं और वह मांस पिण्ड मांसाङ्कुरों से व्याप्त तथा शीघ्र बढ़ने वाला होता है और उससे निरन्तर रक्त निकलता रहता है इस प्रकार का अर्बुद रोग असाध्य होता है और रक्तक्षय के उपद्रवों से पीड़ित होने के कारण रोगी पाण्डुवर्ण का हो जाता है ॥ ३-४ ॥

मांसजस्य सम्प्राप्तिमाह—

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेत्तु शोथम् ।
अवेदनं स्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ॥
प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ १ ॥

मांसार्बुद के लक्षण—मुष्टि प्रहारादि से अङ्गों के पीड़ित होने से दूषित हुआ मांस शोथ को उत्पन्न कर देता है वह शोथ पीड़ारहित, स्निग्ध, शरीर के वर्ण के समान वर्ण वाला, पाकरहित, पत्थर के समान ( कठिन ) और अचल ( स्थिर ) होता है । दूषित मांस वाले और मांस अधिक भक्षण करने वाले मनुष्य को यह शोथ ( अर्बुद ) गम्भीर होता है ॥ १ ॥

असाध्यत्वमाह—मांसार्बुदं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ।
संप्रस्रुतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदसाध्यम् ॥ २ ॥

अर्बुद के असाध्य लक्षण—यह मांसार्बुद असाध्य कहा गया है । तथा जो साध्य अर्बुद कहे गये हैं उनमें भी ये ( आगे कहे हुए ) त्याज्य हैं ( असाध्य हैं ), अर्थात् जिस अर्बुद से स्राव होता रहता हो, जो मर्मस्थान में उत्पन्न हुआ हो, जो स्रोतों में ( नासिकादि स्थान में ) उत्पन्न हुआ हो अथवा जो अचल ( स्थिर ) हो ये सब त्याज्य ( असाध्य ) अर्बुद हैं ॥ २ ॥

अध्यर्बुदलक्षणमाह—

यज्जायतेऽन्यत्खलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः ।
यद्द्वन्द्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुदं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ ३ ॥

अध्यर्बुद-द्विरर्बुद के लक्षण—पूर्व उत्पन्न हुए अर्बुद और भी उत्पन्न हो जावे उसे विद्वान 'अध्यर्बुद' कहते हैं और जो अर्बुद एक साथ अथवा क्रम से दो उत्पन्न होते हैं उसे दो दोषों वाला 'द्विरर्बुद' कहते हैं । वह असाध्य होता है ॥ ३ ॥

प्रकारान्तरेण—

अर्बुदेः स्वर्बुदं जातं द्वन्द्वजं धातुगं च यत् । द्विरर्बुदमिति ज्ञेयं तथाऽसाध्यं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

अर्बुद के ऊपर उत्पन्न हुआ अर्बुद, द्वन्द्वज ( द्वन्द्व रूप में उत्पन्न ) अर्बुद और अर्बुद के साथ ( निकट ) उत्पन्न अर्बुद-द्विरर्बुद जानना चाहिये । यह ( द्विरर्बुद ) असाध्य होता है ॥ १ ॥

अर्बुदानां पाकाभावे हेतुमाह—

न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्च तेषां सर्वार्बुदान्येव निसर्गतस्तु ॥ १ ॥

अर्बुद में पाक नहीं होने के कारण—अर्बुद में कफ की अधिकता और मेद की बहुलता तथा

विशेष कर दोष की स्थिरता (दोष के चिरकाल तक स्थायी होने से) और ग्रथिरूप होने से सब प्रकार के अर्बुद में पाक स्वाभाविक ही नहीं होता है ॥ १ ॥

## अथ गलगण्डचिकित्सा।

स्वेदोऽनिलोत्थे गलगण्ड आदौ नाड्यानिलघ्नौषधपत्रपिण्डैः।
स्वेदोपनाहौ कफसम्भवेऽपि कृत्वा क्रमं श्लेष्महरं विदध्यात् ॥ १ ॥

गलगण्ड चिकित्सा—वात से उत्पन्न गलगण्ड में प्रथम नाड़ी स्वेद देना चाहिये, तथा वात नाशक औषध, वातनाशक पत्रादि एवं वातनाशक बालुका पिण्डादि से स्वेद देना चाहिये। इसी प्रकार कफ से उत्पन्न स्वेद उपनाह तथा कफ नाशक होने पर क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

वातगण्डे—

हिंगुल शिग्रुमूलानि दशमूलमथापि च। आलेपनं वातगण्डे सुखोष्णं सम्प्रशस्यते ॥ १ ॥

वातज गण्ड—समुद्रफल, सहिजन की जड़ या छाल और दशमूल को इसी औषधियां प्रत्येक समान लेकर पीस कर कल्क बना गरम कर सुखोष्ण रहते लेप करने से वातज गण्ड के लिये लाभदायक होता है ॥ १ ॥

कफगण्ड—

देवदारु विशाला च कफगण्डे प्रलेपनम्। छर्दनं शीर्षरेकश्च सर्वो रेचनिको हितः ॥ १ ॥

कफज गण्ड—देवदारु और माहरि की जड़ को पीस कर लेप करने, वमन कराने, शिरो विरेचन कराने और सभी प्रकार के विरेचन कराने से कफज गण्ड में लाभ होता है ॥ १ ॥

मेदोगण्डे—मेदःसमुत्थेऽत्र यथोपदिष्टां विध्येत्सिरां स्निग्धतनोर्नरस्य।
श्यामासुधालोहपुरीषदन्तीरसाञ्जनैश्चापि हितः प्रलेपः ॥ १ ॥

मेदोज गण्ड—मेद से उत्पन्न गलगण्ड रोग में पूर्व कथित विधि से रोगी मनुष्य को स्निग्ध करके उचित शिरा का वेधन करना चाहिये। तथा श्यामलता अथवा काली निशोथ, चूना, लौह किट्ट (मण्डूर), दन्तीमूल और रसवत इन सबको समभाग से पीसकर लेप करने से मेदोज गण्ड में लाभ होता है ॥ १ ॥

सामान्ययोग—

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः। हितः कर्णे पलाशस्य गलगण्डं प्रशमयति ॥ १ ॥

सामान्य विधि—चावल के धोवन के साथ पलास की जड़ को पीसकर कान पर लेप करने से गलगण्ड शमन होता है १ ॥

जलकुम्भीकजं भस्म पक्त्वा गोमूत्रगालितम्। पिबेत्कोद्रवभक्ताशी गलगण्डनिवृत्तये ॥ २ ॥

जलकुम्भी के भस्म गोमूत्र में मिलाकर पाक कर पान करने तथा कोदो के चावल का भात और मट्ठा का पथ्य सेवन करने से गलगण्ड रोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं स्थापितं घटे मासम्।
अन्तर्धूमविदग्धं मधुना गलगण्डनाशनं लीढम् ॥ ३ ॥

भैंस के मूत्र मण्डूर का मिलाकर घड़े में रखकर एक मास तक रख देवे पश्चात् अन्तर्धूम विधि से मण्डूर का भस्म बनाकर मधु के साथ यथायोग्य मात्रा से चाटने से गलगण्ड रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सूर्यावर्तरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहनम्। स्फोटास्रावैः शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥४॥

हुरहुर और लहसुन दोनों को समान ले पीसकर इसके उपनाह (अथवा पुल्टिस बांधने) से गलगड फूटकर बहकर शमन हो जाता है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ ४ ॥

सर्षपाः शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवाः। मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥५॥
गण्डानि ग्रन्थयश्चैव गण्डमालास्तथैव च। लेपनात्तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाऽचिरात् ॥

सर्सों, सहिजन के बीज, सन के बीज, तीसी, जौ और मूली के बीज इन सबको समान लेकर खट्टे मट्ठा के साथ पीस कर लेप करने से गड, (गलगड) ग्रन्थियों और गंडमालायें शीघ्र ही शान्त और नष्ट हो जाती हैं ॥ ५-६ ॥

जीर्णकर्कारुफलरसो विडसैन्धवसंयुतः । नस्येन तरुणं हन्ति गलगण्डं न संशयः ॥ ७ ॥

नस्य—पुराने श्वेत कुष्माण्ड का रस विडनमक और सेंधा नमक तीनों मिलाकर नस्य देने से तरुण ( नूतन ) गलगण्ड अवश्य नष्ट होता है ॥ ७ ॥

श्वेतापराजितामूलं प्रातः पिष्ट्वा पिबेन्नरः । सर्पिषा नियताहारो गलगण्डप्रशान्तये ॥ ८ ॥

श्वेतापराजिता प्रयोग—श्वेत पुष्पवाली अपराजिता की जड़ पीसकर उसमें घृत मिलाकर पान करने तथा पथ्य से रहने से गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम् । गलगण्डं निहन्त्याशु पानात्पथ्यानुशीलिनः ॥ ९ ॥

जलपान विधि—तिक्त अलाबु फल ( तितलौकी का फल ) जो पक कर पूर्ण हो उसका गूदा, बीज आदि निकाल कर उसमें जल भर देवे और सात दिन तक पर्युषित करे अर्थात् सात दिन उसमें वह जल पड़ा रहने देवे पश्चात् उसका पान करे और पथ्य से रहे तो गलगण्ड शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

अमृतादितैलम्—

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्बहिंस्राभयावृक्षकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगे ॥ १ ॥

अमृतादि तैल—गुरुचि, हींग, नीम की छाल, हर्रा, कोरैया की छाल, पीपरि, खरिआरा, ककही ( गंगेरन ) और देवदारु सम भाग ( एक २ भाग ) लेकर कल्क कर उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और उससे चौगुना जल देकर तेल सिद्ध कर नित्य पान करने से गलगण्ड रोग में लाभ होता है ॥ १ ॥

तुम्बीतैलम्—

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः । कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ।
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ॥ १ ॥

तुम्बी तैल—बायबिडंग, यवाक्षार, सेंधा नमक, बच, रास्ना, चित्र की जड़, सोंठि, मरिच, पीपरि और देवदारु सम भाग लेकर कल्क कर उसके चौगुना सर्षों का मूर्च्छित तेल और उससे चौगुना तितलौकी के फल का रस मिलाकर सिद्ध तेल उतार-छानकर इस तैल का नस्य लेने से पुराना गलगण्ड रोग भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

वेधविधि—जिह्वाधः पार्श्वयोर्मूलात्सिरा द्वादश कीर्तिताः ।
तासां स्थूले सिरे द्वे च छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः ॥ १ ॥
बडिशेनैव सङ्गृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् । स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन् दद्याद्रसगुडमार्द्रकम् ॥ २ ॥
भोजनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते । यवमुद्गपटोलादि कटु रूक्षं तु भोजनम् ॥
छर्दिं च रक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ ३ ॥

सिरावेध की विधि—जिह्वा के नीचे दोनों ओर बारह सिरायें होती हैं उसके दो सिरायें मोटी होती हैं उन दोनों सिराओं को 'बडिशयन्त्र' से पकड़ कर 'कुशपत्र यन्त्र' से धीरे धीरे बुद्धिमान् वैद्य छेदन करे और रक्त निकल जाने पर उस व्रण में गुड़ और अदरक का रस मिला कर लगावे। तथा जो पदार्थ अभिष्यन्दी न हो उसे देवे और कुल्थी के यूष को पिलावे यव-मूंग-परवर आदि तथा कटुरस वाले एवं रूक्ष पदार्थों का भोजन करावे और गलगण्ड में वमन कर्म तथा रक्तमोक्षण करावे। इससे गलगण्ड नष्ट हो जाता है ॥ १-३ ॥

## अथ गण्डमालापचीचिकित्सा ।

महादण्डीयमूलं तु पिष्टं तण्डुलवारिणा । प्रलेपितं हन्ति लेपेन गण्डमालां न संशयः ॥ १ ॥

गंडमाला-अपची चिकित्सा—महादंडी की जड़ को चावल के धोवन के साथ पीस कर फूटी हुई गंडमाला पर लेप करने से गंडमाला मनलगिन अवश्य ही नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

निजद्रवेण संपिष्टं मुण्डीमूलं प्रलेपयेत् । गण्डमाला क्षयं याति तद्द्रवं च पिबेत्पलम् ॥ २ ॥

मुंडीप्रलेप—मुंडी की जड़ को उसी के ही स्वरस के साथ पीस कर लेप करने तथा उसी के रस को एक पल के प्रमाण से पान करने से गंडमाला नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

काञ्चनारत्वचः क्वाथः शुण्ठीचूर्णेन नाशयेत् । गण्डमालां तथा क्वाथः क्षौद्रेण वरुणत्वचः ॥३॥

कचनार की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें सोंठि के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से अथवा वरुणा की छाल का क्वाथ करके शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से गण्डमाला नष्ट होती है ॥ ३ ॥

जलेन पेषयेत्तुल्यं काञ्चनीचित्रकं विषम् । सप्ताहं लेपयेद्यस्य यदि स्याद्गण्डमालिका ॥
स्फुटन्ती नात्र सन्देहः स्फोटे लेपमिमं कुरु ॥ ४ ॥
आरग्वधशिफां पिष्ट्वा सम्यक्तण्डुलवारिणा । तस्य नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥५॥

लेपविधि—कचनार की छाल, चित्रक की जड़ और शुद्ध विष सम भाग लेकर जल के साथ पीसकर एक सप्ताह ( ७ दिन ) तक लेप करने से गण्डमाला फूट जाती है। इसमें सन्देह नहीं, फूट जाने के पश्चात् यह लेप करना चाहिये अर्थात् अमलतास की जड़ को चावल के धोवन के साथ भली भाँति पीसकर लेप करना चाहिये और नस्य भी इसी का देना चाहिये। इससे गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ ४-५ ॥

त्रिफलाद्यो गुग्गुलु —

पट्पलं त्रिकटु ज्ञेयं त्रिफलाऽत्र पलद्वयम् । काञ्चनारत्वचाचूर्णं योजयेद्द्वादश पलम् ॥ १ ॥
गुग्गुलुः सर्वतुल्यः स्यात्सर्वमेकत्र कुट्टयेत् । क्षौद्रं पलशतं देयं गुटिकां कर्षसम्मिताम् ॥
भक्षयेद्गण्डमालार्तो गलग्रन्थिं च नाशयेत् ॥ २ ॥

त्रिफलादि गुग्गुलु—सोंठि, पीपरि और मरिच का सम भाग मिलित चूर्ण छै पल, आँवला, हर्रा, बहेड़ा इनका सम भाग मिलित चूर्ण २ पल, कचनार की छाल का चूर्ण १२ पल और शुद्ध गुग्गुलु सब चूर्णों के बराबर (२० पल ) लेकर भली भाँति कूट कर एकत्र मर्दन कर उसमें मधु सौ पल मिला मर्दन कर एक कर्ष के प्रमाण की वटी बनाकर भक्षण करने से गण्डमाला, गले की ग्रन्थियाँ नष्ट होती हैं ॥ १-२ ॥

काञ्चनारगुग्गुलु—

पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारत्वचो बुधैः । पट्पलं त्रिफला ग्राह्या व्योषं ग्राह्यं पलत्रयम् ॥१॥
पलैकं वरुणस्यापि त्वगेलापत्रकं तथा । कर्पकर्षमितं ग्राह्यं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥
सर्वं चूर्णमिदं यावत्तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः । समस्तं गुटिकाः कार्याः शाणमात्रास्ततो बुधः ॥
एकैकां भक्षयेत्प्रातर्दुर्दिनांश्च सदा नरः । गण्डमालां जयेदुग्रामपचीमर्बुदानि च ॥ ४ ॥
ग्रन्थीन्व्रणां सगुल्मांश्च कुष्ठानि च भगन्दरम् । अनुपाने प्रयोक्तव्यः क्वाथो मुण्डीसमुद्भव ॥
क्वाथो वा खदिरस्यापि पथ्याक्वाथोऽथ वाल्पकः ॥ ५ ॥

काञ्चनार गुग्गुलु—कचनार की छाल का चूर्ण दस पल, त्रिफला का चूर्ण समान मिलित छै पल, सोंठि, पीपरि, मरिच का समान मिलित चूर्ण ३ पल, वरुणा की छाल चूर्ण एक पल दालचीनी, इलायची और तेजपात का चूर्ण पृथक् २ दो कर्ष लेकर सबको एकत्र मर्दन कर जितना हो उसके बराबर शुद्ध गुग्गुलु को मिला मर्दन कर एक शाण ( ४ माषा ) के प्रमाण की वटी बना कर प्रात काल नित्य एक २ वटी रोगी को खिलावे तो इसके निरन्तर सेवन करने से उग्र गण्डमाला, अपची अर्बुद, ग्रन्थि, गुल्म, कुष्ठ और भगन्दर ये सभी रोग नष्ट होते हैं। इसके सेवन के समय अनुपान में मुण्डी अथवा खैर का क्वाथ अथवा थोड़े प्रमाण में हर्रा का क्वाथ देवे ॥ १-५ ॥

अजमोदादितैलम्—

अजमोदा च सिन्दूरं हरितालं निशाद्वयम् । क्षारद्वयं फेनयुतं सार्धकं सरलोद्भवम् ॥ १ ॥
इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलीकन्दकं समैः । एभिः सार्षपकं तैलमजामूत्राष्टयोजितम् ॥ २ ॥
मृद्वग्नौ पाचयेदेतत्सनुग्रार्कक्षीरसंयुतम् । अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥ ३ ॥
आमां विदग्ध्यां तु पचेत्पक्वां चैव विशोधयेत् । रोपणं मृदुभावं च तैलेनानेन कारयेत् ॥४॥

अजमोदादि तैल—अजमोदा, सिन्दूर, हरताल, हरदी, दारुहरदी, जवाखार, सज्जीखार, समुद्रफेन, सरल काठ माहुरि, अपामार्ग और केले की जड़ सम भाग ( एक २ भाग ) ले कल्क कर उसके चौगुना सर्सों के मूर्च्छित तेल और उससे अठगुना बकरी का मूत्र मिला कर मन्द २

अग्नि पर पाक करे तथा इसमें वचक के साथ सेहुड के दूध तथा मदार के दूध को भी कल्कीय द्रव्यों में से एक द्रव्य के प्रमाण से पृथक् २ दोनों को मिला लेवे और पाक सिद्ध होने (तैल मात्र शेष रह जाने) पर उतार-छानकर रख लेवे इस 'अजमोदादि तैल' से गंडमाला नष्ट होती है, गंडमाला को विदग्ध कर पका देता है और पके हुए को शुद्ध करता है तथा इससे व्रण का रोपण होता है और मृदुभाव होता है अर्थात् इस तैल से व्रण का रोपण और मृदुभाव करना चाहिये ॥

निर्गुण्डी तैलम्—

निर्गुण्डीस्वरसेनाथ लाङ्गलीमूलकल्किकम्। तैलं नस्येन हन्त्याशु गण्डमालां सुदुस्तराम् ॥

निर्गुण्डीतैल—निर्गुण्डी (सेंहुडी) का स्वरस चार सेर, मूर्च्छित सर्सों का तैल १ सेर, लांगली (कलिहारी) की जड का कल्क एक पाव ले एकत्र कर तैल सिद्ध कर उतार-छानकर रख ले। इस तैल के नस्य लेने से कठिन से कठिन गंडमाला शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

छुच्छुन्दरीतैलम्—छुच्छुन्दर्या विपक्वं तु चतुर्गुणं तैलवरं प्रवरम्।
अभ्यङ्गाच्छमयेन्नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ २ ॥

छुच्छुन्दरी तैल—छुछुन्दर का मांस लेकर उसके चौगुना सर्सों का मूर्च्छित तैल और उससे चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कठिन गंडमाला भी नष्ट हो जाती है ॥

गुञ्जातैलम्—गुञ्जामूलफलैस्तैलं तोयद्विगुणितं पचेत्।
तस्याभ्यङ्गेन शमयेद्गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ १ ॥

गुञ्जा तैल—गुञ्जा की जड और फल को समान लेकर कल्क कर उसके चौगुना सर्सों का मूर्च्छित तैल और तैल के दुगुना जल (पाकार्थ) मिला कर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कठिन गंडमाला भी शमन हो जाती है ॥ १ ॥

गन्धकादियोग—

गन्धकं टङ्कणं सिन्धुकाञ्चनीनवसारकम् सौवर्चलं यवक्षारं काचं रक्तं सुवर्चलम् ॥ १ ॥
सितं रक्तं च पाषाणं भूपकोलं नियोजयेत्। जेपालबीजमज्जा च सर्वं जम्बीरपीडितम् ॥ २ ॥
क्षारैश्छित्त्वा प्रदातव्यं वेष्टयेदेरण्डपत्रकैः। पूर्वं त्र्यहात्स्फुटत्यत्र दध्यन्नं बन्धयेत्ततः ॥ ३ ॥
गण्डमालाग्रन्थयश्चो बहिर्निर्यान्ति नान्यथा। अभिमन्त्र्य सितं सायं रवौ प्रातः समाहरेत् ॥
पेटारीमूलकं धूपैर्धूपयित्वाथ खण्डयेत्। चतुर्दशगुणैः सूत्रैर्बद्ध्वा ग्रन्थिं गले स्थितम् ॥५॥

गन्धकादि योग—गन्धक, टङ्कण, सैंधानमक, कचनार, नवसादर, सौंचरनमक, यवाखार, काच नमक (कचलोन), सिन्दूर, सौंचरनमक, शुद्ध श्वेत, संखिया शुद्ध रक्त संखिया, जमालगोटे के बीज की मज्जा, समभाग लेकर जमीरी नीबू के रस के साथ पीस कर गण्डगत को क्षार से छेदन कर (पाछ कर) उस पर इसका लेप लगाकर एरण्ड के पत्तों को उस पर लपेट कर बांध देवे। इस प्रकार तीन दिन तक करने से गंडमाला फूट जाती है। फूटने के पश्चात् उस पर दही और अन्न मिला कर बाँधना चाहिये। इस क्रिया से (योग से) गंडमाला ग्रन्थि और अपची ये निश्चित ही बाहर निकल जाती हैं (नष्ट हो जाती हैं)। शनिवार की सन्ध्या में श्वेत पेटारी की जड को अभिमंत्रित कर रविवार के प्रातः उसे उखाड लावे और साफ कर उसे धूप से धूपित टुंड २ कर चौदहगुना सूत से बाँध कर गले के ग्रन्थि पर बाँध देने से ग्रन्थि नष्ट हो जाती है ॥ १-५ ॥

मन्त्र—ॐ गुरु प्रसादि तिरि तिरि पिचपुटक पुगमाहते पापट-
गालापरदृढमूलयामुकाबेपालरेव गुरुप्रसादात् ॥

पेटारी मूल को अभिमन्त्रित करने का मन्त्र—इसी मन्त्र को पढकर अभिमंत्रित करना चाहिये।

गन्धकादिलेप—

गन्धकं सूतकं तुग्धमर्कक्षीरं ससैन्धवम्। विष्ठा च काञ्चनीमूलं लेपोऽयं गण्डमालिके ॥१॥

गन्धकादि लेप—शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद, मदार का दूध, सैंधानमक, कचनार की जड़ की समान (एक २ भाग) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बनाकर फिर अन्य द्रव्यों को मिला लेप बना कर लेप लगाने से गंडमाला नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

लेपालवटी—

विष्ठा जेपालपत्राणि स्वरसेन वटी वरी। छायाशुष्का ततो लेपाद्गण्डमाला विनश्यति ॥१॥

जैपाल पत्र वटी—जमालगोटे के पत्तों को उसके ही रस के साथ पीसकर वटी बना कर छाया में सुखा कर फिर उसे उसी के रस में घिस कर लेप करने से गण्डमाला नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

भल्लातकादिलेप —

भल्लातकासीससुतारादन्तीमूल गुडस्नुग्रविदुग्धदिग्धैः।
लेपान्वितैर्गच्छति गण्डमाला समीरवेगादिव मेघमाला ॥ १ ॥

भल्लातकादि लेप—भिलावा, कासीस, चित्त की जड़, दन्ती की जड़, गुड़ सेंहुड का दूध और मदार का दूध सम भाग ले एकत्र खरल कर लेप बना कर गण्डमाला पर लेप करने से गण्डमाला इस प्रकार नष्ट होती है जिस प्रकार वायु के वेग से मेघमालायें नष्ट हो जाती हैं ॥ १ ॥

गंडमालाखण्डनोरस—

कर्षसूत शुद्धमस्य गन्धक स्यर्धमुत्तमम्। सार्धकर्षं ताम्रभस्म मृत किट्ट त्रिकर्षकम् ॥ १ ॥
व्योषं पट्कर्षतुलितमर्धाध सैन्धवं सितम्। काञ्चनारत्वचश्चूर्णं पलत्रयमितं क्षिपेत् ॥ २ ॥
पलत्रयं गुग्गुलोश्च शुद्धस्य समुपाहरेत्। घृतयुक्त्या तु समेत्य दृढ सुरभिसर्पिषा ॥ ३ ॥
गण्डमालाखण्डनोऽयं रसो माषत्रयात्मकः। भुक्तो निहन्ति गण्डानि गण्डमालां च दारुणाम् ॥

गण्डमालाखंडन रस—शुद्ध पारद, एक कर्ष, शुद्ध गन्धक आधा कर्ष, ताम्रभस्म १½ कर्ष मंडूर भस्म, ३ कर्ष, सोंठि, मरिच और पीपरि का समान मिश्रित चूर्ण छै कर्ष, श्वेत वर्ण के सेंधा नमक का चूर्ण आधा अक्ष (½ कर्ष) कचनार की छाल का चूर्ण तीन पल और शुद्ध गुग्गुल तीन पल एकत्र मर्दन कर गाय के घृत के साथ भलीभाँति घोंट कर रस रक्खे यह गण्डमाला कंडन' नामक रस कहा गया है। इसे ३ मासे के प्रमाण से सेवन करने से गलगंड और गण्डमाला जो अति बढ़ गयी हो वह भी नष्ट हो जाती हैं ॥ १-४ ॥

अपचीचिकित्सा—अलम्बुषायाः स्वरसं पीतो द्विपलमात्रया।
अपचीगण्डमालानां कामलायाश्च नाशनः ॥ १ ॥

अपची चिकित्सा—मुण्डी बूटी का स्वरस २ पल के प्रमाण की मात्रा से पान करने से अपची गण्डमाला और कामला रोग का नाश होता है ॥ १ ॥

नवकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम्। पक्त्वा च पोलिकां खादेदपचीनाशनाय च ॥२॥

नवकार्पास मूल योग—नूतन कपास की जड़ चावल के धोवन के साथ पीसकर पोलिका (पूप) बना कर पका कर खाने से अपची नष्ट होती है ॥ २ ॥

सौभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम्। कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ ३ ॥

सौभाञ्जनादि लेप—सहिजन की छाल और देवदारु बराबर २ लेकर कांजी के साथ पीसकर थोड़ा गरम कर गरम २ लेप करने से कठिन अपची का नाश होता है ॥ ३ ॥

सर्षपारिष्टपत्राणि दन्त्या भल्लातकैः सह। छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं विलेपनम् ॥ ४ ॥

सर्षपादि लेप—सर्सों, नीम की पत्ती, दन्ती की जड़ और भिलावा को बकरे के मूत्र के साथ पीसकर लेप करने से अपची का नाश होता है ॥ ४ ॥

अश्वत्थकाष्ठनिचुलं गवां दन्तं च दाहयेत्। वाराहमज्जसंयुक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥ ५ ॥

अश्वत्थादि लेप—पीपल वृक्ष की लकड़ी, गौ का दाँत इन दोनों को जलाकर भस्म कर बराबर २ लेकर सूअर की मज्जा में मिलाकर लेप करने से अपची के व्रण नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक्। अङ्गुलान्तरितं सम्यगपचीविनिवृत्तये ॥ ६ ॥

उपायान्तर—हाथ के मणिबन्ध (कलाई) पर एक २ अंगुल के अन्तर से तीन रक्षा बांधे। इससे अपची नष्ट होती है ॥ ६ ॥

चन्दनादितैलम्—चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी।
एतत्तैलं श्रुतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ १ ॥

चन्दनादि तैल—लालचन्दन, हर्रा, लाही, बच और कुटकी समान ले कल्क कर उसके चौगुना सर्सों का मूर्च्छित तेल और उससे चौगुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर उतार-छानकर पान करने से अपची समूल नष्ट होती है ॥ १ ॥

व्योषाद्यं तैलम्—

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च। तैलमेभिः शृतं नस्यात्कृच्छ्रामप्यपचीं जयेत् ॥ १ ॥

व्योषादि तैल—सोंठि, पीपरि, मरिच, वायविडंग, मुलहठी, सेंधा नमक और देवदारु समान लेकर कल्क कर उसके चौगुना सरसों, मूर्च्छित तेल और उससे चौगुना जल मिलाकर तैल सिद्ध कर उतार-छानकर नस्य लेने से कठिन अपची भी नष्ट होती है ॥ १ ॥

## अथ ग्रन्थिचिकित्सा।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक्शोथप्रक्रियाम्। पक्वानापाट्य संशोध्य रोपयेद्व्रणभेषजैः ॥ १ ॥

ग्रन्थि रोग चिकित्सा—ग्रन्थि यदि आम हो तो शोथ रोग के समान उसकी चिकित्सा करनी चाहिये और यदि पक गयी हो तो वैद्य को उसका पाटन (चीरफाड़) कर शोधन करना चाहिये तथा व्रण रोपक औषधों से उस व्रण का रोपण करना चाहिये ॥ १ ॥

हिंस्रा सरोहिण्यमृताऽथ भार्ङ्गी स्योनाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धाः।
गोमूत्रपिष्टाः सह तालपर्ण्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ २ ॥

छोटी कटेरी, कुटकी, गुरुचि, बमनेठी, आलू की छाल, बेल की छाल, अगर काली, सहिजन की छाल और काली मूसली समान लेकर गोमूत्र के साथ पीस वात के कोप से उत्पन्न होनेवाली ग्रन्थि पर लेप करने से यह वातज ग्रन्थि धीरे २ नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

जलायुकाः पित्तकृते हिताः स्युः क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च।
द्राक्षारसेनेक्षुरसेन चापि चूर्णं पिबेद्वाऽपि हरीतकीनाम् ॥ ३ ॥

पित्त के कोप से होने वाली ग्रन्थि में जोंक के द्वारा रक्त मोक्षण करना चाहिये अथवा दूध और जल मिलाकर उससे अथवा दाख के रस से अथवा ईख के रस से ग्रन्थि पर सिंचन करना चाहिये अथवा हर्रा का चूर्ण दाख के रस या ईख के रस से पीना चाहिये ॥ ३ ॥

मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां त्वग्भिः प्रदेहानवचारयेच्च।
हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्यं ग्रन्थिष्वभिषक् श्लेष्मसमुत्थितेषु ॥ ४ ॥

कफ के कोप से होने वाली ग्रन्थि में दोषों का यथाक्रम पहले हरण कर (वमन विरेचन के द्वारा दोषों को नष्ट कर) महुआ, जामुन, अर्जुन और बेत की छालों को पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ४ ॥

अमर्मजातं शमनप्रयातं सत्यक्रमेणापहरेद्विचार्य।
देहस्थिते वाससि सिद्धकर्मं सद्यः क्षतोक्तं च विधिं विदध्यात् ॥ ५ ॥

जो ग्रन्थि मर्म स्थान में उत्पन्न नहीं हुई हो और शमन भी नहीं होती हो यह अब पक जावे तब विचार कर वैद्य उसे चीर देवे और शुद्ध कर कपड़े से बांधना आदि सिद्ध कर्म करे तथा सद्यः उत्पन्न क्षत (व्रण) के समान सब विधि करे (सद्योव्रण की क्रिया करे) ॥ ५ ॥

क्षारेण चोत्कृत्य सुपक्वमाशु प्रक्षालयेत्पञ्चतमैः कषायैः।
संशोधनैस्तं च विशोधयेत्तु क्षारोत्तरैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः ॥ ६ ॥

सिञ्चेच्च तैलं त्वथ चारणीयं विडङ्गपाठारजनीविपक्वम्।
मेदःसमुत्थे तिलकल्कदिग्धैः कृत्वोपरिष्टाद्द्विगुणं पटान्तम् ॥ ७ ॥

हुताशतप्तेन मुहुः प्रमृज्यात्सलोहेन धीमान् च वर्धितेन।
प्रलिप्तदर्भा त्वथ छायया वा प्रतप्तयाऽऽस्य स्वेदनमस्य कार्यम् ॥ ८ ॥

पकी हुई ग्रन्थि (भलीभाँति पकी हुई) को क्षार से छेदन कर पाँच पञ्चवल्कल (रक्तनाशक) कषायों से व्रण को धोवे पश्चात् क्षार युक्त मधु और घृत आदि संशोधन द्रव्यों से उस व्रण का शोधन करे। फिर वायविडंग, पुरइनपाढ़ी और हरदी के कल्क से सिद्ध किये तेल से व्रण का सिंचन करे और तेल को गाढ़ी बनाकर व्रण पर रख देवे। यदि मेद के कारण से ग्रन्थि हो और उसे छेदन किया गया हो तो तिल का कल्क बनाकर व्रण पर लेप कर उस पर कपड़ा दो परत कर रखकर बांध देवे। पुनः बार २ अग्नि में तपाये हुए लोहे से उसपर दाह करे और बुद्धिमान् वैद्य कच्ची (कठगुल) पर लाह को पीसकर लेप कर अग्नि पर तपाकर स्वेदन कर्म करे ॥

निपात्य वा शस्त्रमपोह्य मेदो दहेत्सुपक्वं त्वथ वा विदार्य ।
प्रक्षाल्य मूत्रेण तिलैः सुपिष्टैः सुवर्चलाद्यैर्हरितालमिश्रैः ॥ ९ ॥
मरैन्धवैः क्षौद्रघृतप्रगाढैः क्षारोत्तरैरेनमभिप्रशोध्य ।
तैलं विदध्याद्विकरञ्जगुञ्जायंवासपत्रैः प्रियङ्गुदमूत्रसिद्धम् ॥ १० ॥

अथवा मेदोज ग्रन्थि को पकने पर शस्त्र से छेदन करके उसके मेद को निकाल कर जला देवे अथवा पकी हुई ग्रंथि को शस्त्र से छेदन कर गोमूत्र से धोवे पश्चात् तिल को भलीभाँति पीसकर उसमें सोंचर नमक, शुद्ध हरताल, सेंधा नमक, मधु, घृत और यवाक्षारादि क्षार मिलाकर लेप कर व्रण का शोधन करे पुनः दोनों (करञ्ज, पूतिकरञ्ज), गुञ्जा, बांस के पत्ते, प्रियङ्गु या मालाकन्द और हिंगोट समान ले पल्क कर उसके चौगुना तिल का मूर्च्छित तैल और तैल से चौगुना गोमूत्र मिलाकर तैल सिद्ध कर ग्रन्थि के व्रण पर लगावे। इससे ग्रन्थि नष्ट होती है ॥१०॥

विष्णुकान्ता च पेटारी काञ्जिकेन सुपेषिता। काक्षस्फोटं हरेल्लेपाद्दुष्टग्रन्थिषु का कथा ॥१॥

विष्णुकान्ता (अपराजिता) और पेटारी इन दोनों को समान लेकर कांजी के साथ भलीभांति पीसकर लेप करने से काक्षस्फोट (असाध्य स्फोट रोग) भी नष्ट हो जाता है तो दूषित ग्रन्थि आदि का क्या कहना है अर्थात् ये अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पुत्रजीवस्य मज्जानं जले पिष्ट्वा प्रलेपयेत्। काक्षस्फोटं विषस्फोटं सद्यो हन्त्यारसवेदनम् ॥

पुत्र जीवक (जियापोता या पतजुग) के फल की गिरी को जल के साथ पीस कर लेप करने से वेदना सहित काक्षस्फोट और विषस्फोट (ये दोनों व्रण असाध्य हैं) शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और इस लेप से कक्षा ग्रन्थि (कांख में होने वाली ग्रन्थि या कखौरी), कर्ण ग्रन्थि और गले की ग्रन्थि नष्ट होती है ॥ २ ॥

कक्षाग्रन्थिं कर्णग्रन्थिं गलग्रन्थिं च नाशयेत्। राजिकालशुन पेष्य लेपो हृद्गलग्रन्थिहाः ॥
गन्धोऽर्कदुग्धतालेन जेपालेन च नाशयेत् ॥ ३ ॥

राई और लहसुन इन दोनों को समान ले पीसकर लेप करने से हृदय और गले की ग्रन्थियां नष्ट होती हैं और गन्धक, मदार का दूध, हरताल और जमालगोटा समान ले पीसकर लेप करने से भी ग्रन्थियां नष्ट हो जाती हैं ॥ ३ ॥

## अर्बुदचिकित्सा।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः ।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ १ ॥

अर्बुद चिकित्सा—ग्रन्थि रोग और अर्बुद रोग में विशेष अन्तर नहीं है क्योंकि स्थान, कारण, आकार, दोष और दूष्य ये सब दोनों के समान ही होते हैं, इसलिये वैद्य अर्बुद रोग की चिकित्सा ग्रन्थि के चिकित्सा के समान ही करे ॥ १ ॥

वातार्बुदं क्षीरघृताम्लसिद्धैरुष्णैः सतैलैरुपनाहयेत्।
कुर्याच्च सुख्यान्युपनाहनानि सिद्धैश्च मांसैरथ वेसवारैः ॥ २ ॥

वातिक अर्बुद को दूध घृत और अम्ल पदार्थों से सिद्ध किये हुए उष्ण तैलों से अथवा पके हुए मांस तथा वेसवार आदि से उपनाह करना चाहिये, ये मुख्य उपनाह हैं ॥ २ ॥

स्वेदं विदध्यात्कुशलश्च नाड्या शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ।
वातघ्ननिर्यूहपयोऽम्लभागैः सिद्धं घृतं वा त्रिवृतं पिबेद्वा ॥ ३ ॥

कुशलता पूर्वक नाड़ी स्वेद देवे और सिंगो के द्वारा बहुत बार रक्तमोक्षण करावे तथा वात नाशक क्वाथ, दूध और अम्लादि से सिद्ध घृत अथवा निशोथ को पिलावे ॥ ३ ॥

स्नेहोपनाहा मृदवस्तु पथ्या पित्तार्बुदे कायविरेचनं च ।
विघृष्य चौदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ ४ ॥

पित्तज अर्बुद चिकित्सा—पित्त के कोप से होने वाले अर्बुद रोग में स्नेह कर्म तथा मृदु उपनाह कर्म पित्तनाशक क्वाथ सेवन और विरेचन कर्म करना चाहिये ये सब पथ्य (हितकर) हैं। पश्चात् मृदु होने पर गूलर के शाक (पत्ते) और गोजी (गोभी) के पत्ते को समान ले जल

के साथ पीसकर उसमें मधु मिलाकर लेप करना चाहिये इससे पित्तार्बुद शमन हो जाता है ॥ ४ ॥

शुद्धस्य जन्तोः कफजेऽर्बुदे च रक्ते च सिक्ते स्रवतोऽर्बुदं च ।
मेद स्रुते मांसकृतेऽपि कार्यं प्रणोदितं सर्वचिकित्सितं च ॥ ५ ॥

कफज अर्बुद में रोगी को शुद्ध करके ( वमन विरेचन कराकर शुद्ध कर ), रक्तार्बुद में रक्त निकलते हुए रोगी को सिंचन करके और मेदोज अर्बुद में मांस से उत्पन्न अर्बुद में भी व्रण में कही हुई सम्पूर्ण चिकित्साओं को करनी चाहिये ॥ ५ ॥

छिन्न यवक्षारविडङ्गबीज गन्धोपलैः स्यात्सप्तचूर्णीकृतैर्यत् ।
रक्तेन मिश्रैः सरटस्य सद्यस्तदर्बुदं शाम्यति नान्यथैतत् ॥ १ ॥

यवाक्षार, वायविडङ्ग के बीज, गन्धक समान लेकर भली भाँति पीसकर गिरगिट का रक्त उसमें मिलाकर लेप करने से अर्बुद रोग शीघ्र नष्ट हो जाता है इसमें सन्देह नहीं है ॥ १ ॥

उपोदिकारसाभ्यक्ता तत्पत्रपरिवेष्टिता । प्रणश्यत्यचिरान्नृणां पिटिकार्बुदजातयः ॥ २ ॥

पोई शाक के स्वरस से अर्बुद की पिडिका को लिप्त करके और उसी के पत्र से वेष्टित करने से शीघ्र ही मनुष्यों की अर्बुदजात ( अर्बुद से उत्पन्न ) पिडिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा तयोपनाहो लवणेन सार्धम् ।
दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चिद्दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ३ ॥

पोई को कांजी और तक्र के साथ पीसकर सेंधा नमक मिला कर उपनाह करने से अर्बुद रोग शमन होता है । किसी २ वैद्य का मत है कि इस उपनाह को दिन ही दिन में किया जाय तो साधारण अर्बुद नष्ट होता है और रात्रि में किया जावे तो इससे मर्मस्थान में उत्पन्न अर्बुद नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

गन्धशिलाविश्वौषधविडङ्गनागभस्मभिः समैश्चूर्णम् ।
कृकलासरक्तयुक्तं लेपात्सद्योऽर्बुदध्वंसि ॥ ४ ॥

गन्धक, मैनसिल, सोंठि, वायविडंग और नागभस्म ( सीसे की भस्म ) इन सब के चूर्ण को समभाग ले गिरगिट के रक्त को इसमें मिलाकर लेप करने से अर्बुद रोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च । लवणेनाथ वा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ ५ ॥

थूहर और त्रिकाण्ड थूहर दोनों को पीस गरम कर अथवा सैंधानमक की पोटली बनाकर गरम कर अथवा सीसे को तपा कर उससे स्वेद देने से अर्बुद नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूमो मनःशिला । मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहरः परः ॥
एतामेव क्रियां कुर्याद्दोषे शर्करार्बुदे ॥ ६ ॥

हल्दी, लोध, पतंग काठ की लकड़ी, गुड़, गृहधूम ( धूआं के कारण से उत्पन्न घर में का झाला ) और मैनसिल इन सबको सम भाग लेकर चूर्ण कर पश्चात् मर्दन कर मधु मिला कर लेप बना कर लगाने से अर्बुदरोग को नाश करने में यह योग उत्तम है । इसी प्रकार शर्करार्बुद में भी सब क्रियायें करनी चाहिये ॥ ६ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

पुराणघृतपानं जीर्णलोहितशाल्यः । यवा मुद्गाः पटोलं च रक्तशिग्रुः कठिल्लकम् ॥ १ ॥
शालिं च शाकं वेत्राग्रं रूक्षाणि च कटूनि च । दीपनानि च सर्वाणि गुग्गुलुश्च शिलाजतु ॥
गलगण्डे गलमालापचीग्रन्थ्यर्बुदाम्बरे । यथादोषं यथावस्थं पथ्यमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने घृत का पान, पुराने रक्तवर्ण के शालीधान के चावल, यव मूंग, परवर, रक्तसहिजन, करैली, हिलिश्चा का शाक, बेत के अग्रभाग का शाक, रूक्ष और कटु द्रव्य, सब प्रकार के अग्नि दीपक द्रव्य, गुग्गुल ( शुद्ध ) और शिलाजीत ( शुद्ध ) ये सब द्रव्य गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुद इन सभी रोगों में दोष और अवस्था के अनुसार पथ्य कहे गये हैं ॥ १-३ ॥

दुग्धेक्षुविकृतीः सर्वा मांसं चानूपसम्भवम् । पिष्टान्नमम्लं मधुरं गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥ ४ ॥
गलगण्डे गण्डमालापचीग्रन्थ्यर्बुदामयान् । विशिष्टप्रगदद्वारो यत्नात्मीं परिवर्जयेत् ॥ ५ ॥

दूध, ईख तथा दूध और ईख के बने सभी पदार्थ ( दही, खोवा, गुड़ आदि ), आनूप जीवों के

मांस, पिठ्ठी के पदार्थ, अम्ल द्रव्य, मधुर, गुरु और अभिष्यन्दकारक सभी पदार्थ गलगण्ड, गण्डमाला, अपची, ग्रन्थि और अर्बुदरोग में अपथ्य जानकर रोगी को त्याग करा देवे ॥ ४-५ ॥

इति गलगण्डगण्डमालापच्यर्बुदप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ श्लीपदनिदानम् ।

**मेदोमांसाश्रयं शोफं पादयोः श्लीपदं वदेत् । स्वलिङ्गैर्दोषभिदापि ज्ञेयं स्याच्च कफोत्तरम् ॥**

श्लीपद-निदान—मेद और मांस के आश्रय होकर जो पैरों में शोथ होता है वह श्लीपद कहा जाता है, वह अपने लक्षणों को प्रकट करने वाले वातादिक दोषों से तीन प्रकार का होता है, इसमें ( तीनों दोषों में ) कफ की ही प्रधानता होती है ॥ १ ॥

तस्य सम्प्राप्तिमाह—यः सज्वरो वङ्क्षणजो भृशार्तिः शोफो नृणां पादगतः क्रमेण ।

सच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ २ ॥

श्लीपद-सम्प्राप्ति—जो शोथ ज्वर के साथ वंक्षण स्थान से उत्पन्न होकर अत्यन्त कष्ट देता हुआ क्रम से मनुष्यों के पैरों की ओर ( नीचे की ओर ) आता है उसे श्लीपद कहते हैं । किसी २ आचार्य का कहना है कि यह शोथ ( श्लीपद ) हाथ, कान, नेत्र, लिंग, ओठ और नासिका में भी होता है ( इसकी निरुक्ति 'शिलावत् पदम् इति श्लीपदम्' ऐसी भी की जाती है जो युक्ति संगत है ) ॥ २ ॥

वातजमाह—

वातजं कृष्णरूक्षं तु स्फुटितं तीव्रवेदनम् । अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर एव च ॥ ३ ॥

वातज श्लीपद—जिस श्लीपद में शोथ का वर्ण कृष्ण वर्ण का हो, रूक्ष हो, फटा हुआ हो, अत्यन्त और अकारण ही पीड़ा करने वाला हो ( बिना किसी आघात आदि के ही पीड़ा हो ) तथा जिसमें बहुत ज्वर होता हो उसे वात के कोप का वातज श्लीपद कहते हैं ॥ ३ ॥

पित्तजमाह—पित्तजं पीतसङ्काशं दाहज्वरयुतं मृदु ॥

पित्तज श्लीपद—जिस श्लीपद में शोथ का वर्ण पीला हो, दाह हो, ज्वर हो तथा शोथ में कोमलता हो उसे पित्त के कोप का पित्तज श्लीपद जानना चाहिये ॥ ३½ ॥

श्लेष्मजमाह—श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥ ४ ॥

कफज श्लीपद—जिस श्लीपद में शोथ में स्निग्धता हो, श्वेत अथवा पाण्डुवर्ण का हो, भारी तथा स्थिर ( अचल ) हो उसे कफ के कोप का श्लीपद जानना चाहिये ॥ ४ ॥

एषामसाध्यत्वमाह—वल्मीकमिव सञ्जातं कण्टकैरिव सञ्चितम् ।

सर्वात्मकं महत्तच्च वर्जनीयं विशेषतः ॥ ५ ॥

असाध्य श्लीपद—जिस श्लीपद में वल्मीक के समान ऊँचा-नीचा शिखर की भाँति वृद्धि हो और कण्टकाकार ग्रन्थियों से युक्त हो, तीनों दोषों के लक्षण जिसमें दिखाई दें तथा बहुत बढ़ गया हो उसे विशेषतः त्याग देना चाहिये । अन्य ग्रन्थों [ निदानादि ] में 'सर्वात्मकम्' के स्थान पर 'अब्दात्मकम्' पाठ है । इससे एक वर्ष का पुराना श्लीपद असाध्य जानना चाहिये ॥ ५ ॥

श्लीपदे कफस्याव्यभिचारेण प्राधान्यमाह—

त्रीण्येतानि विजानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।

गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति कफाद्विना ॥ ६ ॥

कफप्रधान श्लीपद—ये तीनों प्रकार के ( वातजादि ) श्लीपद भी प्रायः कफ की ही अधिकता से होते हैं क्योंकि इसमें जो गुरुता और महानता होती है वह कफ के बिना नहीं हो सकती ॥६॥

श्लीपदसम्भवे हेतुनिर्देशमाह—

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः । ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ७ ॥

श्लीपद होने के कारण—जिस स्थान में पुराना ( वर्षा का ) जल भूमि पर पड़ा सड़ता रहे कभी सूखे नहीं ऐसे आनूप देश और जिस देश में सब ऋतुओं में शीतलता रहती हो उस देश में श्लीपदरोग विशेष कर होता है ॥ ७ ॥

पुनरसाध्यत्वमाह—यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य ।

सास्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ८ ॥

प्रकारान्तर से असाध्य श्लीपद—जिस श्लीपद की उत्पत्ति कफज आहार ( मधुरादि गुरु विशेष द्रव्य ) और विहार ( दिवास्वापादि ) आदि से हुई हो, रोगी की प्रकृति कफ की हो ( कफज प्रकृति के मनुष्य को श्लीपद हुआ हो ), श्लीपद से स्राव होता हो, अत्यन्त ऊँचा ( शिखर आदि के आकार का ) हो गया हो, सब दोषों के लक्षणों से युक्त हो, अत्यन्त कण्डू से युक्त हो और कफयुक्त हो वह श्लीपद त्याज्य है ॥ ८ ॥ ( ८ )

## अथ श्लीपदचिकित्सा ।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तसेचनैः । प्राय श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपद समुपाचरेत् ॥ १ ॥

लङ्घन, लेपन, स्वेदन, रेचन, रक्तमोक्षण और प्राय करके कफनाशक उष्ण उपचार ( आहार औषधादि ) आदि से श्लीपद की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहांश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् । कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत्तु चतुरङ्गुले ॥ २ ॥

वात से उत्पन्न श्लीपद में वैद्य स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म और उपनाह कर्म करके गुल्फ ( गाठ ) के ऊपर चार अंगुल पर सिरावेधन करे, इससे वातज श्लीपद नष्ट होता है ॥ २ ॥

गुल्फस्याधःशिरां विध्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे । पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥

पित्त से उत्पन्न श्लीपद में गुल्फ के नीचे की सिरा का वेधन करे तथा पित्त नाशक क्रिया एवं पित्तज अर्बुद और विसर्प के समान चिकित्सा ( क्रिया ) करे ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठामधुकं रास्नामहिंस्रां सपुनर्नवाम् । पिष्ट्वाऽऽरनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥
शिरासु विदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे ॥ ४ ॥

मजीठ, मुलहठी, रास्ना, छोटी कटेरी और गदहपुरना सम भाग कांजी के साथ पीसकर लेप बना कर पित्तज श्लीपद को शमन करने के लिये लगावे तो पित्तज श्लीपद नष्ट होता है। कफ से उत्पन्न श्लीपद में अगूठे की विदित सिरा ( जिस में श्लीपद हुआ हो उस ) का वेधन करे ॥

सिद्धार्थसौभाञ्जनदेवदारुविश्वौषधैर्मूत्रयुतैः प्रलेपयेत् ।
पुनर्नवानागरसर्षपाणां कल्केन वा काञ्जिकमिश्रितेन ॥ ५ ॥

श्वेत सर्सों, सहिजन, देवदारु, सोंठि समान लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर अथवा पुनर्नवा, सोंठि, सर्सों समभाग लेकर कल्क कर कांजी मिलाकर लेप करने से कफज श्लीपद नष्ट होता है ॥

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः । प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमपि दारुणम् ॥ ६ ॥

धतूर के पत्ते, एरण्ड के पत्ते या मूलत्वक्, मेउड़ी के पत्र, पुनर्नवा, सहिजन और सर्सों समान लेकर कल्क कर लेप करने से पुराना एवं कठिन श्लीपद भी नष्ट होता है ॥ ६ ॥

हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवदारु च । सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ ७ ॥

चित्रक की जड़ तथा देवदारु को गोमूत्र के साथ पीसकर अथवा सर्सों और सहिजन का कल्क बनाकर थोड़ा गरम लेप करने से श्लीपद में हितकर होता है ॥ ७ ॥

प्रपिबेद्वाभयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन वा । पिबेद्वेव गुडूचीं च नागरं भद्रदारु वा ॥ ८ ॥
पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये । पूतीकरञ्जच्छदजं रसं चापि यथाबलम् ॥ ९ ॥

हरड़ का कल्क बनाकर अथवा गुरुचि के स्वरस को गोमूत्र या अन्य मूत्र के साथ पान करे अथवा सोंठि या देवदारु के कल्क को सर्सों के तैल के साथ पान करने से श्लीपद नष्ट होता है। पूतिकरंज के पत्तों के स्वरस को यथाबल पान करने से श्लीपद रोग नष्ट होता है ॥ ८-९ ॥

अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकजं रसम् । प्रयुञ्जीत भिषक्प्राज्ञः कालसात्म्यविभागवित् ॥ १० ॥

इसी प्रकार जियापोते के पत्तों के स्वरस का प्रयोग वैद्य काल और सात्म्य का विचार कर उचित मात्रा से करे तो श्लीपद नष्ट होता है ॥ १० ॥

पलाशमूलस्वरसं पिबेद्वा तैलेन तुल्यं सितसर्षपाणाम् ।
मूत्रेण पथ्यामरदारुविश्वं सगुग्गुलु श्लीपदिभिर्निषेव्यम् ॥ ११ ॥

पलास की जड़ का स्वरस और श्वेत सर्सों का तैल समान लेकर पान करे अथवा हर्रा, देवदारु, सोंठि और शुद्ध गुग्गुलु समान भाग ले चूर्ण कर गोमूत्र के साथ श्लीपद का रोगी सेवन करे तो श्लीपद नष्ट होता है ॥ ११ ॥

वृद्धदारकचूर्णं वा मूत्रसौवीरकादिभिः। लीढ़ितं श्लीपदं हन्ति कृच्छ्रं संवत्सरोषितम्॥१२॥

विधारे के चूर्ण को गोमूत्र और सौवीर आदि से नित्य कुछ दिन तक सेवन करने से एक वर्ष के पुराने कष्ट साध्य श्लीपद को नाश करता है॥ १२॥

पिप्पल्यादिचूर्णम्—

पिप्पली त्रिफला दार्वी नागरं सपुनर्नवम्। भागैर्द्विपलिकैरेतेषां तत्समं वृद्धदारकम्॥ १॥
काञ्जिकेन तु तच्चूर्णं पिबेत्कर्षप्रमाणतः। जीर्णे वा परिहीनं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम्॥२॥
श्लीपदं वातरोगांश्च प्लीहगुल्ममरोचकम्। अग्निं च कुरुते घोरं भस्मकं च प्रयच्छति॥ ३॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपरि, हर्रा, बहेड़ा, आँवरा, दारुहल्दी, सोंठि, गदहपुरना, प्रत्येक दो दो पल और सब के समान भाग (१४ पल) विधारा लेकर चूर्णकर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से काञ्जी के अनुपान से पान करने से और इस औषध के पच जाने पर त्रिदोष नाशक अल्प आहार करने से श्लीपद, वातरोग, प्लीहा, गुल्म और अरुचि ये नष्ट होते हैं, अग्नि की वृद्धि होती है और कठिन भस्मक रोग भी नष्ट होता है॥ १-३॥

कृष्णाद्यो मोदकः—

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्धपलं पलम्। विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य च पलद्वयम्॥
मधुना सह संयुक्तः श्लीपदं हन्ति दारुणम्॥ १॥

कृष्णादि मोदक—क्रम से अर्थात् पीपरि एक कर्ष, चित्त की जड़ आधा पल और दन्तीमूल एक पल लेवे, उत्तम संख्या में २० नग हर्रा और गुड़ दो पल लेकर कूट पीस कर विधिपूर्वक मोदक बना कर मधु के अनुपान से सेवन करने से कठिन श्लीपद भी नष्ट होता है॥ १॥

विडङ्गादितैलम्—

विडङ्गसारिवार्केषु नागरे चित्रके तथा। भद्रदार्व्येलकाख्येषु सर्वेषु लवणेषु च॥
तैलं पक्वं पिबेद्वाऽपि श्लीपदानां निवृत्तये॥ १॥

विडङ्गादि तैल—वायविडंग, सारिवा लता, मदार, सोंठि, चित्त की जड़, नागरमोथा, देवदारु, इलायची और पांचो नमक पृथक् २ समान भाग लेकर कल्क कर उसके चौगुना मूर्च्छित सर्सों का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर मर्दन तथा पान करने से श्लीपद नष्ट होता है॥ १॥

सौरेश्वरघृतम्—

सुरसा देवकाष्ठं च त्रिफला त्रिकटुर्गजा। लवणानि च सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम्॥ १॥
चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलु हपुषा वचा। यवाग्रजः सपाठश्च चव्यैलं वृद्धदारकः॥ २॥
कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। दशमूलकषायेण धान्ययूषद्रवेण च॥ ३॥
दधिमण्डसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक्। पक्वं स्यादुद्धृतं कल्कात्पिबेत्कर्षत्रयं हविः॥४॥
श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितं च यत्। मेदोऽश्रितमभिघातोत्थं हन्यादेव न संशयः॥५॥
अपचीगलगण्डानि अन्त्रवृद्धिं तथाऽर्बुदम्। नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजान्यपि॥ ६॥

सौरेश्वर घृत—तुलसी, देवदारु, हरड़, बहेड़ा, आँवला, सोंठि, पीपरि, मरिच, गजपीपरि, पृथक् २ पांचो नमक, वायविडंग, चित्त की जड़, चाव, पिपरामूल, शुद्ध गुग्गुलु, हाऊबेर, बच, यवाखार, पुरइनपाढ़ी, चाव, इलायची और विधारा को एक २ कर्ष लेकर कल्क कर, मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ में मिला लेवे और इसमें दशमूल का सिद्ध क्वाथ, धान्यों का सिद्ध यूष और दही का मण्ड अर्थात् दही का पानी पृथक् २ एक २ प्रस्थ लेकर घृतपाक की विधि से सबको सिद्ध कर उतार-छानकर तीन कर्ष के प्रमाण की मात्रा से पान करने से कफ और वात से उत्पन्न मांस, रक्त और मेद के आश्रय रहने वाला तथा अभिघातज श्लीपद निश्चय नष्ट होते हैं और अपची, गलगण्ड, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, ग्रहणी के दोष, शोथ और अर्श आदि भी नष्ट होते हैं॥ १-६॥

परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठक्रिमिविनाशनम्। घृतं सौरेश्वरं नाम श्लीपदं हन्ति सेवितम्॥ ७॥
जीवकेन घृतं प्रोक्तं रोगानीकविनाशनम्। यवान्नं कूर्ममांसं च कटुतैलं च योजयेत्॥
श्लीपदानां प्रशान्त्यर्थं मांसान्तं दाहमग्निना॥ ८॥

प्रकारान्तर से असाध्य श्लीपद—[
विशेष द्रव्य ) और विहार (
( कफज प्रकृति के मनुष्य को श्लीपद
आदि के आकार का ) हो गया हो,
और कफयुक्त हो वह श्लीपद त्याज्य

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तसेचनैः
लङ्घन, लेपन, स्वेदन, रे—
औषधादि ) आदि से श्लीपद की
स्नेहस्वेदोपनाहांश्च
वात से उत्पन्न श्लीपद में
( गाठ ) के ऊपर चार
गुल्फस्याधःशिरां
पित्त से उत्पन्न श्लीपद में
पित्तज अर्बुद और विसर्प के

शिरासु
मजीठ, मुलहठी, रास्ना,
लेप बना कर पित्तज श्लीपद
कफ से उत्पन्न श्लीपद में

श्वेत सर्सों, सहिजन,
सोंठि, सर्सों सममाग लेकर

धतूर के पत्र, एरण्ड के
समान लेकर कल्क कर लेप कर
हितश्च लेपने नित्यं चित्रको
चित्त की जड़ तथा देवदारु
बनाकर थोड़ा गरम लेप करने से

पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां
एरण्ड का कल्क बनाकर अथवा
स अथवा सोंठि या देवदारु के कल्क
है। पूतिकरंज के पत्तों के स्वरस को
अनेनैव विधानेन पुत्रंजीवकजं रसम्
इसी प्रकार जियापोता के पत्तों के
उचित मात्रा से करे तो श्लीपद नष्ट होता
पलाशमूलस्वरसं पिबेद्वा तैलेन
मूत्रेण पथ्यामरदारुविश्वं
पलाश की जड़ का स्वरस और श्वेत सर्सों
सोंठि और शुद्ध गुग्गुल समान भाग के चूर्ण
श्लीपद नष्ट होता है ॥ ११ ॥

पिसा हुआ ( पिठ्ठी आदि ) अन्न, दुग्ध विकार ( खोआ-दही आदि ), गुड़, आनूप जीवों का मांस, स्वादु ( मधुर ) तथा अम्लरस वाले पदार्थ, पारियात्र ( पर्वत विशेष ), सिन्धु नदी तथा विन्ध्य पर्वत से निकली नदियों का जल, पिच्छिल पदार्थ, गुरु द्रव्य और अभिष्यन्दी पदार्थ श्लीपद के रोगी को त्याग देना चाहिये ॥ १ ॥

इति श्लीपदरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ विद्रधिनिदानम्।

सम्प्राप्तिमाह—त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः।
दोषाः शोफं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता भृशम् ॥ १ ॥

विद्रधि की सम्प्राप्ति—अस्थि समाश्रित ( अस्थि के आश्रय रहने वाले ) वातादिक दोष अपने कुपित होने वाले कारणों से कुपित होकर त्वचा, रक्त, मांस और मेद को दूषित कर धीरे धीरे अत्यन्त कठिन और बड़ी शोथ को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १ ॥

लक्षणपूर्वकं भेदानाह—

महामूलं रुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथवाऽऽयतम्। स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥
पृथग्दोषैः समस्तैश्च क्षतेनाप्यसृजा तथा। षण्णामपि च तेषां तु लक्षणं सम्प्रचक्षते ॥ २ ॥

विद्रधि के भेद लक्षण—जो शोथ महामूल वाली ( दृढ़ मूल वाली ), पीड़ायुक्त, गोल, अथवा लम्बे आकार की होती है उसे 'विद्रधि' कहते हैं और यह विद्रधि छे प्रकार की होती है ( इसके दो भेद होते हैं। एक बाह्य विद्रधि जो त्वचा, स्नायु और मांस में होती है और दूसरी अन्तर्विद्रधि जो गुदा आदि वक्ष्यमाण प्रदेशों में होती है। आगे इसके लक्षण स्पष्ट होंगे ) अर्थात् पृथक् २ वातादि दोषों से तीन, सान्निपातिक एक, क्षत से एक और रक्त से एक इस प्रकार छे प्रकार की विद्रधि होती है। इन छहों के लक्षण आगे कह जाते हैं ॥ १-२ ॥

वातिकमाह—

कृष्णोऽरुणो वा विषमो भृशमत्यर्थवेदनः। चित्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसम्भवः ॥ १ ॥

वातिक विद्रधि—जिस विद्रधि का वर्ण कृष्ण अथवा अरुण हो, शोथ में विषमता हो अर्थात् कभी बढ़े कभी घटे, अत्यन्त कठिन पीड़ा हो और वृद्धि तथा पाक में विचित्रता हो अर्थात् नाना प्रकार की वृद्धि और पाक होवे उसे वात के कोप की विद्रधि जाननी चाहिये ॥ १ ॥

पैत्तिकमाह—

पक्वोदुम्बरसङ्काशः पीतो वा ज्वरदाहवान्। क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसम्भवः ॥ १ ॥

पैत्तिक विद्रधि—जिस विद्रधि का आकार पके हुए उदुम्बर ( गूलर ) के समान अथवा पीत वर्ण का हो, ज्वर तथा दाह से युक्त हो, शीघ्र उत्पन्न होने वाली तथा शीघ्र पकने वाली हो उसे पित्त के कोप की विद्रधि जाननी चाहिये ॥ १ ॥

श्लेष्मजमाह—

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः। चि…रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसम्भवः ॥ १ ॥

कफज विद्रधि—जिस विद्रधि का आकार शराव ( सकोरे ) के सदृश, पाण्डु वर्ण का, शीतल, स्निग्ध, अल्प वेदना वाला हो और बहुत दिन में विद्रधि का उत्थान ( वृद्धि ) और पाक हो उसे कफ के कोप की विद्रधि जाननी चाहिये ॥ १ ॥

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाः क्र…शः स्मृताः ॥

विद्रधियों में जो स्राव होता है वह पतला-पीला और श्वेत वर्ण का क्रम से वात-पित्त और कफ के दोष से होता है ॥

सान्निपातिकमाह—

नानावर्णरुजास्रावो घाटालो विषमो महान्। विषमं पच्यते चापि विद्रधिः सान्निपातिकः ॥

सान्निपातिक विद्रधि—जिस विद्रधि से अनेक ( कृष्णपीतादि ) वर्ण का अनेक ( तोददाहादि ) पीड़ा से युक्त अनेक प्रकार का पतला पीला स्राव हो, आकार घट के समान उन्नताग्र हो, कभी छोटा हो कभी बड़ा अथवा अत्यन्त बड़ा हो और पाक भी विषम हो अर्थात् किसी स्थान

पर पके किसी स्थान पर नहीं पके अथवा कभी शीघ्र पके कभी देर में पके तो उसे सन्निपात के कारण हुई विद्रधि माननी चाहिये ॥ २ ॥

अभिघातसम्प्राप्तिमाह—

तैस्तैर्भावैरभिहते क्षते वाऽपथ्यकारिणः। क्षतोष्मा वायुविसृतः सरक्तं पित्तमीरयेत् ॥ १ ॥
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायन्ते तस्य देहिनः। आगन्तुर्विद्रधिर्ह्येष पित्तविद्रधिलक्षणः ॥ १ ॥

अभिघातज और आगन्तुज विद्रधि—उन २ वस्तुओं से जिनसे अभिघात होता है ( लाठी, लोहा, पत्थर आदि से ) आघात होने पर अथवा क्षत होने पर ( रक्तस्रावादि होने से ) जो अपथ्य करते हैं उनकी वायु के द्वारा विस्तारित क्षत की ऊष्मा रक्त के साथ पित्त में प्रवृत्त हो उसे कुपित करती है, जिससे ज्वर, तृष्णा, दाह उत्पन्न हो जाते हैं और पित्त के विद्रधि के समान उसके लक्षण होते हैं उसे 'अभिघातज' एवं 'आगन्तुज' विद्रधि जानना चाहिये ॥ १ ॥

रक्तजमाह—

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः। पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १ ॥

रक्तज विद्रधि—जो विद्रधि कृष्ण स्फोटों ( कृष्ण वर्ण की पिडिकाओं ) से युक्त ( घिरा हुआ ) हो, श्यामवर्ण की हो, अत्यन्त तीव्र दाह और पीड़ा एवं ज्वर से युक्त हो और पित्तज विद्रधि के लक्षणों से युक्त हो उसे 'रक्तज विद्रधि' कहते हैं ॥ २ ॥

उक्ता विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥

जो ये विद्रधियां ऊपर कही गयी हैं इन सब में सान्निपातिक विद्रधि असाध्य है ॥

अभ्यन्तरविद्रधिकारणमाह—

आभ्यन्तरानतस्तूर्ध्वं विद्रधीन्सम्प्रचक्षते। गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कसंसृष्टभोजनात् ॥ १ ॥
अतिव्यवायव्यायामवेगाघातविदाहिभिः। पृथक्सम्भूय वा दोषाः कुपिता गुल्मरूपिणम् ॥
वल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ॥ २ ॥

आभ्यन्तर विद्रधि—अतिगुरु, असात्म्य, विरुद्ध, शुष्क और संसृष्ट अन्नों के भोजन करने से, अत्यन्त मैथुन और व्यायाम आदि करने से, मलमूत्रादि के वेग को रोकने से, विदाही पदार्थों के सेवन करने से वातादि दोष पृथक् २ अथवा एकत्र ( समस्त मिलकर ) कुपित होकर गुल्म के समान अथवा वल्मीक के समान उन्नत अभ्यन्तर प्रदेश में अर्थात् कोष्ठ या उदर में विद्रधियों को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १-२ ॥

संस्थानमाह—गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्क्षणयोस्तथा।
वृक्कयोः प्लीह्नि यकृति क्लोम्नि वाऽप्यथवा हृदि ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि का स्थान—अन्तर्विद्रधि गुदा वस्ति के मुख, नाभि, कोख, दोनों वंक्षण स्थान दोनों वृक्क, प्लीहा, यकृत्, क्लोम अथवा हृदय में होता है ॥ १ ॥

तेषां लक्षणम्—

एवमुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः। अधिष्ठानविशेषेण लक्षणानि निबोध मे ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि के लक्षण—इन विद्रधियों के लक्षण वातादि दोषों के अनुसार जिस प्रकार बाह्य विद्रधि के लक्षण हैं वैसे ही कहे हैं किन्तु स्थान विशेष से भिन्न लक्षण कहे जाते हैं ॥ १ ॥

गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता। नाभ्यां हिक्का तु साटोपा कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥
कटीपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्षणस्थे तु विद्रधौ। वृक्कयोः पार्श्वसङ्कोचः प्लीह्नि श्वासनिरोधनम् ॥३॥
सर्वाङ्गप्रग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते। श्वासो यकृति हिक्का च पिपासा क्लोमजेऽधिका ॥

गुदा में जब अन्तर्विद्रधि होती है तो अपानवायु का अवरोध हो जाता है, बस्ति में होने से कष्ट से अल्पमूत्र होता है, नाभि में होने से हिक्का तथा आटोप ( गुड़ गुड़ शब्द ) होता है, कोख में होने से वायु का कोप ( वायु विकार ) होता है, वंक्षणों में होने से कटि और पीठ में तीव्र स्तम्भ और पीड़ा होती है, वृक्क स्थानों में होने से पार्श्वदेश में सङ्कोच होता है, प्लीहा में होने से श्वासोच्छ्वास में अवरोध होता है, हृदय में होने से सम्पूर्ण अङ्गों में तीव्र स्तम्भ और पीड़ा तथा कास होता है यकृत् में होने से श्वास और हिक्का होती है और क्लोम स्थान में होने से तृषा अधिक होती है ॥ २-४ ॥

स्रावनिर्गममाह—

नाभेरुपरिजाः पक्का यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः। अधः स्रुतेषु जीवेत्तु स्रुतेपूर्ध्वं न जीवति ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि का स्राव—नाभि स्थान से ऊपर हुई ( हृदय आदि की ) अन्तर्विद्रधि जब पकती है तब फूटने पर उसके स्राव ( पूयादि ) ऊपर को जाते हैं अर्थात् मुखादि से निकलते हैं और नाभि से नीचे हुई ( गुदादि की ) अन्तर्विद्रधि फूटने पर उसके स्रावादि नीचे की ओर (गुदादि से) जाते हैं। इसमें जिन मनुष्यों के स्राव नीचे के मार्ग से होते हैं वह तो जी जाता है परन्तु जिसके स्राव ऊपर ( मुखादि ) से होते हैं वे नहीं जीते ॥ १ ॥

उक्तं हारीतेन—ऊर्ध्वं प्रपन्नेषु मुखाद्धराणां प्रवर्ततेऽसृक्सहिता हि पूयः।

अधःप्रपन्नेषु च पायुमार्गाद्द्वाभ्यां प्रवृत्तिस्त्विह नाभिजे च ॥ १ ॥

अन्तर्विद्रधि—यदि ऊर्ध्वग होकर अथवा नाभि स्थान से ऊपर की फूटती है तो रक्त पूयादि मुख से निकलते हैं और यदि नीचे की ओर होकर नाभि स्थान से नीचे की फूटती है तो रक्त पूयादि गुदा के द्वारा निकलते हैं और यदि विद्रधि नाभि स्थान में होती है तो ऊपर मुंह और गुदा दोनों से निकलती है ॥ १ ॥

स्रावविषय साध्यासाध्यत्वमाह—

हृन्नाभिबस्तिवर्ज्या ये तेषु भिन्नेषु बाह्यतः। जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ १ ॥

हृदय, नाभि और बस्ति इन स्थानों में उत्पन्न अन्तर्विद्रधियों को छोड़ कर जो अन्तर्विद्रधि हों और उनका मुख बाहर की ओर हो तो कदाचित् वह पुरुष ( रोगी ) बच भी जाता है परन्तु उससे भिन्न होने पर अर्थात् हृदय-नाभि और बस्ति स्थान में विद्रधि हो ( इनका मुख भीतर या बाहर हो ) मर्म स्थानों की अन्तर्विद्रधि भी जिनका मुख भीतर हो वह नहीं बचता है ॥१॥

अथोक्तंभोजेन—असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्कोऽप्यपक्वश्च विद्रधिः।

सन्निपातोत्थितोऽप्येवं पक्व एव तु बस्तिजः ॥ १ ॥

मर्म स्थान में जो विद्रधि हुई हो वह तथा सन्निपातज विद्रधि यदि पके अथवा नहीं पके तो भी असाध्य हैं और बस्ति में जो विद्रधि हो वह यदि पक जावे तो असाध्य है ॥ १ ॥

त्वग्जो नाभेरधो यश्च साध्यो नोपरि नाभिजः ॥ २ ॥

जो विद्रधि त्वचा पर हो और नाभि के नीचे हो वह असाध्य है और नाभि स्थान से ऊपर होने वाली विद्रधि भी असाध्य होती है ॥ २ ॥

पुनः साध्यासाध्यत्वमाह—

साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ज्यः सान्निपातिकः। आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् ॥१॥

साध्यासाध्यता—वातादिक तीन और आगन्तुज अभिघातज तथा रक्तज ये पांच विद्रधियां साध्य होती हैं केवल सान्निपातिक असाध्य है। इन विद्रधियों की आम-पक्व और विदग्ध होने की अवस्था शोथ की भाँति जाननी चाहिये ॥ १ ॥

तेषामभ्यन्तरेष्वसाध्यमाह—

आध्मानबद्धनिष्यन्दं छर्दिहिक्कातृषान्वितम्। रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥

जिस अन्तर्विद्रधि में रोगी को अध्मान, मूत्रावरोध, वमन, हिक्का, तृषा, पीड़ा तथा श्वास हो वह विद्रधि उस मनुष्य का नाश कर देती है अर्थात् असाध्य है ॥ १ ॥

आमो वा यदि वा पक्वो महान् वा यदि वेतरः। सर्वो मर्मोत्थितस्त्वाशु विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥

विद्रधि आम अथवा पक्व हो, महान अथवा इससे इतर ( छोटी ) हो, किन्तु मर्म स्थान में उत्पन्न हुई सब प्रकार की विद्रधि कष्ट साध्य कही गयी है ॥ २ ॥

हृन्नाभिबस्तिजः पक्वो वर्ज्यो यश्च त्रिदोषजः।

हृदय, नाभि और बस्ति में उत्पन्न होनेवाली विद्रधि यदि पक जावे तो वह वर्ज्य है ( असाध्य है ) और त्रिदोषज विद्रधि भी असाध्य है उसे त्याग देना चाहिये।

मुष्टिप्रमाणो गुल्मस्तु विद्रधिस्तु ततः परम् ॥ ३ ॥

विद्रधि का प्रमाण—गुल्म मुष्टि के प्रमाण का होता है और विद्रधि उससे बड़ी होती है ॥ ३ ॥

मानकमूलादि योग—मानकन्द (मान का कन्द) को चूर्ण कर मधु में मिलाकर चावल के तण्डुलोदक का पान करने से मनुष्यों की बढ़ी हुई अन्तर्विद्रधि भी शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

हरीतक्यादिचूर्णम्—

हरीतकीसैन्धवधातकीनां रजो घृतक्षौद्रयुतं प्रयुक्तम्।
निहन्ति शीघ्रं ध्रुवमेव पुंसामत्यर्थवृद्धं विद्रधिमुग्ररूपम् ॥ १ ॥

हरीतक्यादि चूर्ण—हर्रा, सेंधा नमक, धाय के फूल, समभाग लेकर चूर्णकर मधु और घृत के अनुपान से सेवन करे (चाटे) तो मनुष्यों की अत्यन्त बढ़ी हुई कठिन विद्रधि भी अवश्य ही नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

सौभाञ्जनादि—सौभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः।
अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ १ ॥

सौभाञ्जनादि योग—सहिजन की छाल अथवा मूल का क्वाथ बनाकर उसमें शुद्ध हींग और सेंधा नमक का प्रक्षेप देकर प्रातः पान करने से शीघ्र ही विद्रधि को नष्ट करता है ॥ १ ॥

शिग्रुमूलं जले धौतं दरपिष्टं प्रलेपयेत्। तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ २ ॥

सौभाञ्जन इत्यादि—सहिजन की जड़ को जल में धोकर शिला पर पीसकर लेप करने तथा उसके रस में मधु मिलाकर पान करने से मनुष्य की अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है ॥ २ ॥

त्रिफलागुग्गुलु—

त्रीणि पलानि फलत्रितयस्य द्वे तु पले तुलिते मगधायाः।
पञ्च पलानि भवन्ति पुरस्य स्यात्स फलत्रिकगुग्गुलुयोगः ॥ १ ॥
पक्वेषु विद्रधिषु पूयमतिस्रवत्सु नाडीषु च व्रणगदेषु भगन्दरेषु।
स्याद्गण्डमालिषु फलत्रिकगुग्गुलुः स्यात्पथ्यं फलत्रिकपुरे घृतभोजनं च ॥ २ ॥

त्रिफला गुग्गुलु—त्रिफला समान मिलित का चूर्ण तीन पल, पीपरि का चूर्ण दो पल और शुद्ध गुग्गुलु पांच पल लेकर एकत्र मर्दन कर वटिका के विधान से वटी बनावे इसे 'त्रिफला गुग्गुलु' कहते हैं। पके हुए विद्रधि में, पूय का अत्यन्त स्राव होने वाले विद्रधि में, नाड़ी व्रण में, भगन्दर में और गण्डमाला में इसे सेवन करना चाहिये। इस त्रिफला गुग्गुलु के सेवन करते समय घृत मिला हुआ भोजन (पथ्य) करना चाहिये ॥ १-२ ॥

वरुणादिघृतम्—सिद्धं वरुणादिगणेन विधिना तत्कल्ककषायितं सर्पिः।
अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्द्यं च ॥ १ ॥
गुल्मानपि पञ्चविधानपनयतीदं यथाऽम्बु वायुसखम्।
पूर्वाह्णे प्रपिबेत्तोमसमये निशास्येऽपि ॥ २ ॥

वरुणादि घृत—वरुणादि गण की ओषधियों के क्वाथ और उसी के कल्क के द्वारा सिद्ध किया घृत अर्थात् वरुणादि गण की ओषधियों का क्वाथ ४ प्रस्थ, मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और वरुणादि गण की ओषधियों का कल्क ¼ प्रस्थ लेकर विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर सेवन करने से अत्यन्त बढ़ी कठिन अन्तर्विद्रधि शिरःशूल, मन्दाग्नि और पांचों प्रकार के गुल्म इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार जल से अग्नि। इसको प्रातःकाल भोजन के समय और रात के प्रारम्भ में पान करना चाहिये ॥ १-२ ॥

रसगन्धकयोग—

वरुणादिकषायेण रसगन्धककज्जलीम्। भुक्त्वा निहन्ति माषैकां बाह्यमन्तश्च विद्रधिम् ॥

रसगन्धक योग—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान लेकर कज्जली कर एक माशा की मात्रा लेकर वरुणादि गण की ओषधियों के अनुपान के साथ सेवन करने से बाह्य और अन्तर्विद्रधि दोनों नष्ट होती हैं (पहले एक रत्ती से प्रारम्भ करना चाहिये) ॥ १ ॥

अपक्वे त्वेतदुद्दिष्टं पक्वे तद्व्रणवत्क्रिया ॥ १ ॥

ये सब क्रियायें अपक्व विद्रधि के लिये कही गई हैं, विद्रधि के पक जाने पर व्रण की चिकित्सा के समान (अथवा व्रण की) सभी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

आमस्थे रेचनं चैव लेपः स्वेदोऽस्रमोक्षणम् । जीर्णा श्यामाककलमाः कुलत्था लशुनानि च ॥ रक्तशालिमुद्ग निष्पावः कारवेल्ल पुनर्नवा । श्रीपर्ण चित्रक क्षौद्र शोथोक्तानि च सर्वश ॥ २ ॥

पथ्यापथ्य—जब तक विद्रधि आम ( अपक्व ) रहे तब तक रेचन क्रिया, लेप, स्वेद, रक्तमोक्षण आदि करना चाहिये और पुराने सांवा, कलम धान, कुल्थी, लहसुन, लाल सहिजन, सेम, करैलो, पुनर्नवा, गनियार, चित्रकी जड़, मधु और शोथ रोग में कहे हुए सभी पथ्य सेवन करना चाहिये अर्थात् अपक्व विद्रधि में ये पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

पक्वावस्थे शस्त्रकर्म पुराणा रक्तशालयः । घृतं तैलं मुद्गरसो विलेपी धन्वजा रसा ॥ ३ ॥ शालिञ्च शाकं कदली पटोलं हिमवालुका । चन्दनं तप्तशीताम्बु सर्वं चापि व्रणोदितम् ॥ ४ ॥

जब विद्रधि पक जावे तब शस्त्र कर्म ( चीर-फाड़ ) करना चाहिये और पुराने रक्त वर्ण के शालीधान का चावल, घृत, तैल, मूंग का रस, विलेपी तथा धन्वज ( बिल में रहने वाले तथा मरुदेशीय ) जीवों का मांस रस, शालिञ्च शाक ( हिलिञ्चा का शाक ), केला, परवर, कपूर, चन्दन, औटा कर शीतल किया जल तथा व्रण रोग में कहे हुए सभी पथ्य सेवन करना चाहिये ॥

नाराणां विद्रधौ व्याधौ यथावस्थं यथाबलम् । पथ्यान्येतानि सर्वाणि निर्दिष्टानि महर्षिभिः ॥

मनुष्यों के विद्रधि रोग में अवस्था और बल के अनुसार ये सभी पथ्य महर्षियों ने निर्दिष्ट किये हैं ॥ ५ ॥

शोथिनां यान्यपथ्यानि व्रणिनामपि यानि च । क्रमादामे च पक्वे च विद्रधौ वर्जयेत्तत ॥६॥

शोथ रोग और व्रण रोग में जो अपथ्य कहे गये हैं वही क्रम से आम और पक्व विद्रधि में वर्जित करना चाहिये अर्थात् जो शोथ में अपथ्य हैं वे आम विद्रधि में और जो व्रण में अपथ्य हैं वे सभी पदार्थ पक्व विद्रधि में अपथ्य हैं ॥ ६ ॥

इति विद्रधिचिकित्सारोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ व्रणशोथनिदानम् ।

तस्य प्राग्रूपम्—एकदेशोत्थितः शोफो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ॥ १ ॥

व्रणशोथ का पूर्वरूप—शरीर के एक स्थान पर उठा हुआ शोथ व्रण रोग का पूर्वरूप है अर्थात् शरीर पर एक स्थान में शोथ होवे तो जानना चाहिये कि यही व्रण रोग का पूर्वरूप है ॥

तस्य संख्यामाह—षड्विधः स्यात्पृथक्सर्वरक्तागन्तुभेदतः ॥ १ ॥

व्रण की संख्या—यह एक देश में वातादिक पृथक् २ दोषों से ( वातज-पित्तज-कफज ) तीन, त्रिदोषज एक, रक्तज एक और आगन्तुक एक इस भेद से उत्पन्न शोथ छः प्रकार का होता है ॥१॥

तेषां लक्षणमाह—

शोफाः षडेते विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोफलक्षणैः । विशेषः कथ्यते चैषां पक्वापक्वविनिश्चये ॥१॥

व्रण शोथ के लक्षण—ये छः प्रकार के शोथ जो हैं इनके लक्षण पहले कहे हुए शोथ रोग के लक्षण के समान ही जानना चाहिये। यहाँ पर इसका विशेष लक्षण पक्वापक्व के निश्चय के लिये कहते हैं ॥ १ ॥

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिराच्चिरम् । कफजः पित्तवच्छोफो रक्तागन्तुसमुद्भवः ॥२॥

वात के कोप से जो व्रण शोथ होता है उसका पाक विषम होता है अर्थात् शोथ कहीं ( शोथ का कोई भाग ) पकता है कहीं नहीं पकता है, पित्त के कोप से जो होता है वह शीघ्र पकता है, कफ के कोप से जो होता है वह बहुत विलम्ब से ( अधिक दिन में ) पकता है और रक्तज तथा आगन्तुक शोथ पित्तज शोथ के समान अर्थात् शीघ्र पकता है ॥ २ ॥

मन्दोष्मताल्पशोफत्वं काठिन्यं त्वक्सवर्णता । मन्दवेदनता चैव शोफानामामलक्षणम् ॥३॥

आम शोथ के लक्षण—जिस शोथ में ऊष्मा मन्द हो शोथ अल्प हो, शोथ में कठिनता हो, वर्ण त्वचा के वर्ण का हो, पीड़ा अल्प हो उसे आम अर्थात् अपक्व जानना चाहिये ॥ ३ ॥

दह्यते दहनेनेव क्षारेणेव विपच्यते । पिपीलिकागणेनेव दश्यते छिद्यते तथा ॥ ४ ॥

भिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेव च ताड्यते । पीड्यते पाणिनेवान्तः सूचीभिरिव तुद्यते ॥ ५ ॥
सोषचोषो विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावपीड्यते । आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥
न गच्छेदाततः शोफो भवेद्ध्मातबस्तिवत् । ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥

पकते हुए शोथ के लक्षण—जिस व्रण शोथ में अग्नि से जलाने के समान दाह हो, क्षार से पकते हुए की भाँति ज्ञात हो, चींटियों के समूह काट रहे हैं ऐसा ज्ञात हो, छेदने के समान, शस्त्र से भेदन करने के समान, दण्डे से मारने के समान हो, हाथ से दबाने के समान अथवा सुई चुभाने के समान पीड़ा हो, दाह हो, चूसने के समान पीड़ा हो, व्रण विवर्ण ( त्वचा रक्तपीतादि ) हो, अंगुली से पीड़ित करने की भाँति पीड़ा हो, बैठने में, सोने में तथा स्थान स्थान में बिच्छू काटे की भाँति अशान्ति रहे अर्थात् व्याकुलता हो, शोथ वायु से पूर्ण बस्ति के समान फूला हुआ हो, फैलाव में न्यूनता नहीं हो और ज्वर, तृष्णा तथा अरुचि, ये सब लक्षण जिस शोथ में हों उसे पच्यमान अर्थात् पकता हुआ शोथ जानना चाहिये ॥ ४-७ ॥

वेदनोपशमः शोफो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः । प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचाम् । बस्ताविवाम्बुसञ्चारः स्याच्छोफेऽङ्गुलिपीडिते ॥
पूयस्य पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते । भक्ताकाङ्क्षा भवेच्चैव शोफानां पक्वलक्षणम् ॥ १० ॥

पक्व शोथ के लक्षण—जिस शोथ में वेदना की शान्ति ( दाहादि में न्यूनता ) हो और शोथ का लोहित वर्ण होना ( पाण्डु या धूसर वर्ण का होना ), उन्नत नहीं रहना ( शोथ में न्यूनता ), शोथ में सिकुड़न का उत्पन्न होना, सुई गड़ाने की भाँति दर्द होना, बार बार कण्डू होना, उपद्रवों ( दाह, चोष-तृषादि ) की शान्ति, शोथ में नम्रता होना ( मृदुता होना ), त्वचा पर स्फोट होना ( कुछ फट जाना ), अंगुली से दबाने पर शोथ का जल से भरे हुए चमड़े की थैली पर अंगुली दबाने की भाँति दबना अर्थात् पूय से भरा होने से मृदु होना, शोथ के एक स्थान को पीड़ित करने ( दबाने ) से दूसरे स्थान का पीड़ित होना और भोजन की इच्छा होना ये सब लक्षण हों तो शोथ पका हुआ है यह जानना चाहिये ॥ ८-१० ॥

नर्तेऽनिलाद्रुङ् न विना च पित्तं दाहः कफं चापि विना न पूयः ।
तस्माद्धि सर्वे परिपाककाले दोषैस्त्रिभिर्यान्ति तदा विपाकम् ॥ ११ ॥

व्रण में वायु के बिना पीड़ा ( तोदादि ) नहीं होती है, पित्त के बिना दाह ( पाक ) नहीं होता है और कफ के बिना पूय नहीं होता है इसलिये सब प्रकार के व्रण में ( एक दोष से उत्पन्न व्रण में ) भी पाक होने के समय तीनों दोषों का संसर्ग होता है अर्थात् प्रत्येक व्रण तीनों दोषों से पकते हैं या प्रत्येक रोग तीनों दोषों के संसर्ग से पकते हैं ॥ ११ ॥

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशे वातकफौ प्रसह्य ।
पचत्यतः शोणितमेव पाको मतः परेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १२ ॥

अधिक समय हो जाने पर बढ़ा हुआ पित्त, वात और कफ को वश कर ( क्षीण कर ) रक्त को पचाता है ( इसी से पूय बनाता है ) अर्थात् तीनों दोष और रक्त मिलकर, पक कर पूय होते हैं । पहले यह लिखा है कि केवल कफ से पूय बनता है पर यह विद्वानों का दूसरा मत है ॥

कफजेषु च शोफेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् । पक्वलिङ्गं ततः स्पष्टं यत्र स्याच्छीतशोफता ॥
त्वक्सावर्ण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ॥ १३ ॥

कफज शोथ में रक्त गम्भीर पाक को प्राप्त करता है। उसमें पाक होने का स्पष्ट लक्षण ये हैं कि शोथ में शीतलता हो, त्वचा के वर्ण के समान ही शोथ का वर्ण हो पीड़ा अल्प हो और शोथ पत्थर के समान घन स्पर्श हो ( दृढ़ शोथ हो ) इस प्रकार के लक्षण से युक्त कफज शोथ को पक जानकर वैद्य उचित चिकित्सा ( व्रण चिकित्सा ) करे ॥ १३ ॥

कक्षं समासाद्य यथैव वह्निर्वाय्वीरितः सन्दहति प्रसह्य ।
तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि मांसं सिरास्नायु च खादतीह ॥ १४ ॥

जिस प्रकार कक्ष में ( तृणपुंज में ) प्राप्त हुई अग्नि वायु से प्रज्वलित होकर भीतर ही भीतर भस्म कर देती है उसी प्रकार पके हुए व्रण का पूय यदि बाहर नहीं निकाला जावे तो वह पूय मांस, सिरा और स्नायु को खा जाता है ॥ १४ ॥

आम विपच्यमानं च सम्यक्पक्वं च यो भिषक्। जानीयात्स भवेद्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥१५॥

जो वैद्य व्रण शोथ के आम, पच्यमान और सम्यक् पक्व की अवस्था को (अपक्व, पकता हुआ और भलीभाँति पका हुआ) जानता है वही वैद्य है, शेष तस्कर वृत्ति वाले हैं अर्थात् जिस वैद्य को इसका ज्ञान नहीं है वह वैद्य के नाम पर चोरी कर के जीविका चलाने वाला वैद्य है (वैद्य नहीं है) ॥ १५ ॥

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्च पक्वमुपेक्षते। श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चितकारिणौ ॥ १६ ॥

जो वैद्य अज्ञान से आम (अपक्व) व्रण को छेदन कर देता है (चीरा दे देता है) और पके हुए व्रण की उपेक्षा करता है (नहीं चीरता है) उन अनिश्चितकारी (निश्चयपूर्वक काम नहीं करने वाले) वैद्यों को चाण्डाल के समान मानना चाहिये ॥ १६ ॥

द्विधा व्रण परिज्ञेयो शारीरागन्तुभेदतः। दोषैराद्यस्ततोऽन्यश्च शस्त्रादिक्षतसम्भवः ॥ १७ ॥

व्रण का द्वैविध्य विचार—एक शारीर व्रण और दूसरा आगन्तुज व्रण इस भेद से व्रण दो प्रकार का जानना चाहिये। इसमें आदि का जो व्रण है अर्थात् शारीर व्रण दोषों (वातादिकों) से होता है और अन्य अर्थात् आगन्तुज व्रण शस्त्रादि से क्षत होने के कारण होता है ॥ १७ ॥

वातिकमाह—स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः।
तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसम्भवः ॥ १८ ॥

वातिक व्रण के लक्षण—जो व्रण स्तब्ध (अचल) हो, स्पर्श करने पर कठिन मालूम हो, स्राव जिसमें से मन्द २ हो, पीड़ा अधिक हो, व्रण में सुई चुभाने के समान व्यथा हो, स्फुरण हो और व्रण का वर्ण श्याम हो उसे वायु के कोप से उत्पन्न व्रण जानना चाहिये ॥ १८ ॥

पैत्तिकमाह—

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्टावदारणैः। व्रणं पित्तकृतं विद्याद्गन्धैः स्रावैश्च पूतिकैः ॥ १९ ॥

पैत्तिक व्रण के लक्षण—जिस व्रण में तृषा, मोह, आर्द्रता, दाह, अवदारण (फटने) का दुःख, दुर्गन्धि और प्रतिक स्राव (शव के गन्ध का स्राव) हो उसे पित्त के कोप व्रण जानना चाहिये ॥

कफजमाह—

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः। पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः ॥

कफज व्रण के लक्षण—जिस व्रण में अत्यन्त पिच्छिलता (चिकनाहट या पूय), गुरुता, स्निग्धता, निश्चलता और अल्प पीड़ा हो, व्रण का वर्ण पाण्डु हो, थोड़ी २ आर्द्रता और बहुत समय (अधिक दिन) में व्रण का पाक हो उसे कफ के कोप का व्रण जानना चाहिये ॥ २० ॥

रक्तजमाह—

रक्तो रक्तस्रवी रक्तात्द्विद्वित्रिज स्यात्तदन्वयः। त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ॥२१॥
धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखं व्रणः। गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥

रक्तज व्रण के लक्षण—जिस व्रण का वर्ण रक्त हो और रक्त का ही जिसमें से स्राव होवे उसे रक्त के दोष का व्रण कहते हैं। द्विदोषज त्रिदोषज लक्षण—इसी रक्तज में दोषों के समन्वय से (सम्बन्ध से) द्विदोषज और त्रिदोषज भी होता है अर्थात् दो २ दोषों के सम्बन्ध होने से द्विदोषज और तीनों के सम्बन्ध से त्रिदोषज होता है। इसमें द्विदोषज त्रिदोषज के भी दो भेद हुए—एक भेद वात-पित्त, पित्त-कफ और कफ-वात का द्विदोषज तथा वात-पित्त और कफ मिश्रित त्रिदोषज तथा दूसरा भेद रक्त-वात, रक्तपित्त और रक्त-कफ का द्विदोषज और वात-पित्त-रक्त वात-कफ रक्त और पित्त-कफ-रक्त का त्रिदोषज तथा वात-पित्त-कफ और रक्त का सान्निपातिक इसके उपरान्त पूर्वकथित वातज, पित्तज, कफज और रक्तज होते हैं। इस प्रकार व्रण के पन्द्रह भेद हैं। साध्यासाध्यता—जो व्रण त्वचा और मांस में उत्पन्न हुआ हो, सुखकर स्थान पर हो अर्थात् मर्म-स्थान आदि से पृथक् हो, युवा मनुष्य को हुआ हो (जो क्रिया [चीर फाड़ आदि] सहने वाला हो), उपद्रव (ज्वरतृषादि) से रहित हो, बुद्धिमान् मनुष्य को हुआ हो, व्रण नवीन हो, सुख कर समय में (हेमन्त, शिशिरादि ऋतु में) हुआ हो ऐसा व्रण सुखसाध्य होता है। जो व्रण सुखसाध्य व्रण के गुणों से हीन गुण का हो अर्थात् कुछ लक्षणों में न्यून हो उसे कष्ट साध्य व्रण कहा गया है ॥ २१-२२ ॥

सर्वैर्विहीनोऽसाध्यस्तु छर्द्याद्युपद्रवान्वितः । पूतिः पूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्सङ्गी चिरस्थितः ॥
दुष्टव्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः ।

दुष्टव्रण के लक्षण—जो व्रण सुखसाध्य व्रण के सब गुणों से हीन हो ( सुखसाध्य व्रण के गुणों से विपरीत हो ) और उपद्रवों ( ज्वर-दाह-तृषादि ) से युक्त हो, व्रण में दुर्गन्धि हो, अधिक पूय आता हो, अत्यन्त दूषित रक्त बहता हो, अति ऊँचा हो अथवा छिद्रयुक्त हो, बहुत दिन का पुराना हो गया हो और अत्यन्त गन्ध आती हो तथा शुद्ध व्रण के लक्षणों से विपरीत लक्षण हो उसको दुष्ट व्रण कहते हैं ॥ २३ ॥

जिह्वातलाभः सुश्लक्ष्णः स्निग्धो विगतवेदनः । सुव्यवस्थो निरास्रावः शुद्धो व्रण इति स्मृतः ॥

शुद्ध व्रण के लक्षण—जिस व्रण की आभा ( कान्ति ) जिह्वातल की आभा के समान हो, श्लक्ष्ण ( चिकना ), स्निग्ध और वेदना ( पीड़ा ) रहित हो, सुव्यवस्थित ( सम हो अर्थात् ऊँचा नीचा या छिद्रयुक्त न हो ) हो तथा स्राव रहित हो उसे शुद्ध व्रण कहते हैं अर्थात् शुद्ध व्रण के ये लक्षण हैं ॥ २४ ॥

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः । स्थिराश्च पिडकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ॥

भरते हुए व्रण के लक्षण—जिस व्रण के किनारे २ कपोत के वर्ण के ( पाण्डु-धूसर ) समान वर्ण हो और क्लेदरहित ( स्रावरहित ) हो, स्थिर हो अर्थात् व्रण की वृद्धि अवरुद्ध हो गई हो और पिडिका युक्त हो अर्थात् व्रण पर दाना सा दिखाई देवे उसे रोहमाण ( भरता हुआ ) व्रण जानना चाहिये ॥ २५ ॥

रूढवर्त्मानमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् । त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं तमादिशेत् ॥ २६ ॥

भरे हुए व्रण के लक्षण—जिस व्रण का मार्ग अवरुद्ध हो गया हो ( स्रावादि का बहना बन्द हो गया हो ), ग्रन्थि आदि जिसमें नहीं हो, शोथ तथा पीड़ा नहीं हो, वर्ण त्वचा के वर्ण का हो गया हो और समतल हो गया हो उसे सम्यग्रूढ ( भलीभाँति भरा हुआ ) व्रण जानना चाहिये ।

कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां चापि व्रणे व्रणाः ॥ २७ ॥

साध्यासाध्यता—कुष्ठरोग, दूषी विष, शोष रोग और मधुमेह वाले के व्रण और जिनको व्रण के ऊपर व्रण हुआ हो उनके व्रण ये सब कष्ट साध्य होते हैं ॥ २७ ॥

वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः स्रवेत् । आगन्तुजो व्रणः सिध्येन्न सिध्येद्दोषसम्भवः ॥

जिसके व्रण से वसा, मेद, मज्जा और मस्तुलुङ्ग ( मस्तक के भेजे या मगज ) का स्राव होता हो और यदि वह व्रण आगन्तुज ( आघातादि के कारण ) हो तो साध्य होता है तथा यदि ऐसा व्रण दोष से ( वातादिक से ) हुआ हो तो साध्य नहीं होता है अर्थात् असाध्य होता है ॥२८॥

मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः । सगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥२९॥

जिस व्रण में से मद्य, अगर, घृत चमेली के फूल, कमल, चन्दन तथा चम्पा के फूल आदि का गन्ध ( इनके समान गन्ध ) आवे अथवा अन्य दिव्य गन्ध आवे तो वह मरने वाले का व्रण कहा गया है ॥ २९ ॥

ये च मर्मस्वसम्भूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः । दह्यन्ते चान्तरत्यर्थं बहिःशीताश्च ये व्रणाः ॥३०॥
प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः । प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ॥ ३१ ॥
क्रियाभिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः । वर्जयेत्तान् भिषक् संरक्षन्नात्मनो यशः ।

जो व्रण मर्म-स्थान में नहीं उत्पन्न हो कर भी अत्यन्त पीड़ा करने वाले और आभ्यन्तर में अत्यन्त दाह करने वाले हो तथा बाहर ( ऊपर ) से शीतल हो ( इसी प्रकार जो व्रण भीतर में शीतल और बाहर से दाह करने वाले हो ) और जिस व्रण में प्राण ( बल ) और मांस का क्षय हो, श्वास कास और अरुचि से पीड़ा हो, पूय और रुधिर जिसमें अत्यन्त बढ़े हुए हो ( बहते हों ) तथा जो व्रण मर्मस्थान में उत्पन्न हुए हो और भलीभाँति चिकित्सा करने पर भी सिद्ध नहीं होते हों उनको अपने यश की रक्षा करने वाला वैद्य त्याग देवे, अर्थात् ये सब असाध्य व्रण हैं ॥ ३०-३२ ॥

## अथ व्रणशोथचिकित्सा।

आदौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम्। तृतीयमुपनाहं च चतुर्थी पाटनक्रिया ॥ १ ॥
पञ्चमं शोधनं कार्यं षष्ठं रोपणमिष्यते। एते क्रमाद् व्रणस्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ॥ २ ॥

व्रणशोथ चिकित्सा—प्रथम व्रणशोथ के प्रारम्भ में विम्लापन क्रिया करे, द्वितीय में अवसेचन तृतीय में उपनाह, चतुर्थ में पाटन, पञ्चम में शोधन, षष्ठ में रोपण और सप्तम में वैकृत (विकार) नाशक क्रिया करे अर्थात् व्रण चिकित्सा में क्रम से इन सात प्रकार की क्रियाओं को करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

विम्लापनम्—

अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या शनैः शनैः। विम्लापनार्थं मृद्नीत तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥१॥

व्रण शोथ उत्पन्न होते ही पहले व्रण को घृत तेल आदि से अभ्यक्त कर बाँस की नली के द्वारा धीरे २ स्वेद देवे पश्चात् हस्ततल से अथवा अंगूठे से व्रण को पकड़ कर मले, इससे व्रण शोथ में विम्लापन होता है ॥ १ ॥

अवसेचनम्—

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः। शोफे महति संरुद्धे वेदनावति वा व्रणे ॥ १ ॥
यो न याति शमं लेपस्वेदसेकापतर्पणैः। सोऽपि मात्रा व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥

व्रण शोथ के आरम्भ में वैद्य रक्तमोक्षण क्रिया को करे क्योंकि जो शोथ अधिक हो गया हो, व्रण में पीड़ा अधिक होती हो जो लेप लगाने, स्वेद देने, सेक करने और अपतर्पण करने से भी शमन नहीं होता हो वह शोथ रक्तमोक्षण कराने से शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १-२ ॥

एकतश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः। रक्तं हि विक्रियां याति तन्मोक्षे नास्ति विक्रिया ॥

व्रण की चिकित्सा में एक ओर सम्पूर्ण क्रियाओं का योग और एक ओर केवल रक्तमोक्षण क्रिया दोनों में रक्तमोक्षण ही प्रधान है क्योंकि रक्त ही शोथ में विकृत होता है उसके निकाल देने से विकार नहीं रहता है (नष्ट हो जाता है) ॥ १ ॥

लेप—

मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च सुरदारु महौषधम्। अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ १ ॥

वातजशोथ में लेप—बिजौरा नीबू, अगेथू, देवदारु, सोंठि, कटेरी और रास्ना को समान लेकर पीसकर लेप बनाकर लेप करने से वातज शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

कल्कः काञ्जिकसम्पिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः। सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ॥

शाखोट (सिहोरा) की छाल को कांजी के साथ पीस कर कल्क बना कर घृत से स्निग्ध कर (थोड़ा घृत मिला कर) लेप करने से वातज शोथ (व्रण) इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार गरुड़ से नाग (सर्प) नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चन्दनं तथा। शीतलैश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः पित्तशोफजित् ॥ ३ ॥

पित्तजशोथ में दूर्वादि लेप—दूर्वादल (हरी दूब), नरकट की जड़, मुलहठी, लालचन्दन और शीतल गण की सब औषधियाँ लेकर लेप बनाकर लेप करने से पित्तज शोथ नष्ट होता है ॥

अजगन्धाऽश्वगन्धा च काला सरलया सह। कपित्थका च शृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥

कफज व्रण शोथ में अजमोदादि लेप—अजमोदा, असगन्ध, काली निशोथ या काला जीरा, सरल काष्ठ, कपीत्थ और काकड़ासिंगी सममाग लेकर लेप बनाकर लेप करने से कफज व्रण शोथ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिग्रुत्वक्सिकता शिवा। मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ॥

कृष्णादि लेप—पीपरि पुरानी तिल की खरी, सहिजन की छाल, बालू और हर्रा सम भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर थोड़ा गरम कर गरम २ लेप करने से कफज व्रण शोथ नष्ट होता है ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसशेलुभिः। चन्दनद्वयमञ्जिष्ठायष्टीसूरणगैरिकैः ॥ ६ ॥
शतधौतघृतोन्मिश्रैर्लेपो रक्तप्रसादनः। दाहपाकरुजास्रावशोफनिर्वापणः परः ॥ ७ ॥

रक्तज व्रण शोथ में लेप—वट, गूलर, अश्वत्थ, पाकर, बेंत और लसोड़ा (लिसोढ़ा) इनकी छाल, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, मजीठ, जेठीमधु, सूरणकन्द, गेरू मिट्टी सममाग लेकर जल के

साथ पीसकर उसमें सौ बार का धोया हुआ घी मिलाकर लेप करने से रक्त का प्रसादन होता है और दाह, पाक, पीड़ा, स्राव और शोथ ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ६-७ ॥

आगन्तुजे रक्तजे च त्वेष लेपोऽतिपूजितः ॥ ८ ॥

आगन्तुज और रक्तज व्रण शोथ में यह उल्लिखित लेप अत्युत्तम माना गया है ॥ ८ ॥

कटुतैलान्वितैर्लेपः सर्पनिर्मोकभस्मभिः । पच शाम्यति गण्डस्य प्रकोप स्फुटति द्रुतम् ॥९॥

गण्डकोप में लेप—साँप की केंचुल को जलाकर भस्म कर उसमें कड़ू तैल मिलाकर लेप बनाकर लेप करने से गण्ड ( ग्रन्थि ) का शोथ शमन होता है और यदि गण्ड शोथ अत्यन्त कुपित हो गया हो ( बढ़ गया हो ) तो शीघ्र फूट भी जाता है ॥ ९ ॥

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा । न च पर्युषितं लेपं शुष्यमाणं च धारयेत् ॥ १० ॥

लेपन का निषेध—रात्रि में लेप नहीं लगाना चाहिये क्योंकि लगाया हुआ लेप गिर जाता है, पर्युषित ( बासी ) लेप और सूखा हुआ भी लेप नहीं लगाना चाहिये ॥ १० ॥

शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति । न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते ॥ ११ ॥

यदि व्रण को पीड़न करना हो तो सूखे हुए लेप की उपेक्षा करनी चाहिये ( नहीं उतारना चाहिये ) तथा व्रण के मुख पर लेप नहीं लगाना चाहिये, इससे दोष निकल जाते हैं अथवा भीतर ही रह जाते हैं ॥ ११ ॥

न प्रशाम्यति यः शोफः प्रलेपादिविधानतः । द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहने ॥१२॥

उपनाह विधि—जो शोथ प्रलेप आदि विधि ( चिकित्सा ) से नहीं शमन होते हों उसमें उपनाह के लिये (पुल्टिस के लिये) पाचनीय द्रव्यों को व्यवहार करना चाहिये (लगाना चाहिये) ॥

उपनाहनम्—सतिलाः सातसीबीजा दध्यम्लाः सक्तुपिण्डिकाः ।
सकिण्वकुष्ठलवणाः शस्ताः स्युरुपनाहने ॥ १ ॥

तिल, अलसी के बीज, दही, कांजी, जौ के सत्तू का पिण्ड, सुराबीज, कूट और सेंधा नमक समान लेकर पीसकर उपनाह ( पुल्टिस ) करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

तैलेन सर्पिषा वाऽपि ताभ्यां वा सक्तुपिण्डिका ।
सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ २ ॥

तेल अथवा घृत अथवा दोनों मिलाकर जौ के सत्तू के पिण्ड को गरम कर गरम २ ही उपनाह करने से शोथ का पाक करता है, यह शोथ का पाक करने में उत्तम है ॥ २ ॥

पाटनम्—अन्तःपूयिष्ववक्त्रेषु तथैवोत्सङ्गवत्स्वपि ।
गतिमत्सु च रोगेषु भेदनं शस्तमुच्यते ॥ १ ॥

भेदन के योग्य व्रण—जिस व्रण के भीतर पूय भरा हो, मुख नहीं हुआ हो ( पूयादि निकलने का मुख नहीं बना हो ), व्रण उठा हुआ हो ( पूय से चढ़ा हुआ हो ) और धमाधमाता व्रण हो तो उसका भेदन करना ( चीरा लगाना ) उचित कहा गया है अर्थात् इस प्रकार के व्रण भेदन के योग्य होते हैं ॥ १ ॥

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि । मर्मोपरि च जातेषु पक्वे शोफे च दारुणे ॥ २ ॥

चिरिबिल्वोऽग्निको दन्ती चित्रको हयमारकः । कपोतकङ्कगृध्राणां मलं लेपेन दारणम् ॥ ३ ॥

बालक, वृद्ध, असहनशील, क्षीण, भीरु और स्त्रियों के व्रणों तथा मर्मस्थान पर उत्पन्न व्रणों एवं पके हुए कठिन शोथ पर चिरबिल्व ( करंज ) की छाल, चित्रक की जड़, दन्ती की जड़, भल्लातक, कनेर की जड़, कबूतर की बीट, चील पक्षी की बीट और गिद्ध की बीट को समान लेकर पीस कर लेप बना कर लेप करने से व्रण का दारण होता है अर्थात् इस लेप से व्रण फूट कर पूयादि बाहर निकल जाते हैं इस लेप को चिरबिल्वादि लेप कहते हैं ॥ २-३ ॥

सर्जिकायावशूकाद्याः क्षारा लेपेन दारणाः । हेमकाम्पिल्लकलेपो व्रणे परमदारणः ॥ ४ ॥

सर्जिक्षारादि लेप—सज्जीखार और यवक्षारादि क्षारों के लेप से व्रण का दारण होता है और दारुहल्दी का लेप बना कर लेप करने से व्रण का अत्युत्तम दारण होता है ॥ ४ ॥

दारुमूलकनिर्गुण्डी फलानि तिलसर्षपाः । सक्तवः किण्वमतसी प्रदेहः पाचनः स्मृतः ॥ ५ ॥

शणादि प्रलेप—सन का मूल, सहिजन का फल, तिल, सरसों, जव के सत्तू, सुराबीज और अलसी समान लेकर पीस कर लेप करने से व्रण का पाचन ( पाक ) होता है ॥ ५ ॥

दन्ती चित्रकमूलत्वक्स्नुह्यर्कपयसी गुडः । भल्लातकास्थिकासीससैन्धवैर्दारणं स्मृतः ॥ ६ ॥

दन्त्यादि दारण—दन्तीमूल, चित्रकी जड़ की छाल, थूहर ( सेंहुड़ ) का दूध, मदार का दूध, गुड़, भिलावे के बीज कासीस और सेंधानमक समान लेकर पीसकर लेप बना कर लेप करने से व्रण का दारण ( भेदन ) होता है ॥ ६ ॥

हस्तिदन्तो जले घृष्टो बिन्दुमात्रः प्रलेपितः । अत्यन्तकठिने चापि शोफे पाचनभेदनः ॥ ७ ॥

हस्तिदन्त लेप—हाथी के दाँत को जल के साथ घिस कर ( जिस प्रकार चन्दन घिसा जाता है ) एक बुन्द के प्रमाण से व्रण पर लेप करने से अत्यन्त कठिन व्रण शोथ का भी पाचन ( पाक ) और भेदन दोनों क्रिया को करता है ॥ ७ ॥

यवगोधूमचूर्णं च सक्षीरं दारणं पृथक् । हरिद्राभस्मचूर्णाभ्यां प्रलेपो दारुणः परः ॥
अजाविट्क्षारमृज्जश्च प्रलेपो व्रणदारणः ॥ ८ ॥

यवादि दारणयोग—यव का चूर्ण अथवा गेहूं का चूर्ण लेकर उसमें क्षार मिला कर लेप करने से व्रण का दारण होता है ( व्यवहार-यव, गहूं दोनों पृथक् २ करना चाहिये ) हरदी का भस्म और चूना मिला कर लेप करने से व्रण का दारण होता है। बकरी की विष्ठा, खारी मिट्टी का क्षार, लवण इनको मिलाकर लेप करने से व्रण का दारण होता है ॥ ८ ॥

ततः प्रक्षालने क्वाथः पटोलीनिम्बपत्रजः । अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥ १ ॥

व्रण प्रक्षालन विधि—व्रण जब फूट जावे तब ( शुद्ध करने के लिये ) परवल के पत्ते और नीम के पत्ते के क्वाथ से धोकर शुद्ध करे। जब शुद्ध हो जावे तब न्यग्रोधादिगण के त्वक् के क्वाथ से व्रण को धोवे ॥ १ ॥

पञ्चमूलीद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके । आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ २ ॥

दोषानुसार धावन कषाय—दोनों पञ्चमूल अर्थात् दशमूल के क्वाथ से वातज व्रण को धोना चाहिये। न्यग्रोधादि गण की ओषधियों के क्वाथ से पित्तज व्रण और आरग्वधादि गण के क्वाथ से कफज व्रण को धोना चाहिये तथा इस क्वाथ का प्रयोग सब क्रियाओं में करना चाहिये अथवा अन्य सब प्रकार के व्रण को भी इसी आरग्वधादि गण के क्वाथ से धोना चाहिये ॥ २ ॥

## अथ शोधनरोपणविधिः ।

तिलसैन्धवयष्ट्याह्वनिम्बपत्रनिशायुतैः । त्रिवृन्मधुयुतैः पिष्टैः प्रलेपो व्रणशोधनः ॥ १ ॥

व्रण शोधक लेप—तिल, सेंधानमक जेठीमधु, नीम की पत्तियां, हरदी, निशोथ सम भाग लेकर पीस कर मधु मिला कर लेप बना कर व्रण पर लेप करने से व्रण का शोधन होता है ॥ १ ॥

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्‌घृतम् । मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्‌व्रणशोधनः ॥२॥

तिलादि कल्क—तिल का कल्क, सेंधानमक, हरदी दारुहरदी, निशोथ घृत, मुलहठी, नीम की पत्तियां इन सबको पीस कर कल्क बनाकर व्रण पर इसका लेप करने से व्रण का शोधन होता है ॥ २ ॥

निम्बकोलकपत्राणां लेपः स्याद्‌व्रणशोधनः । निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना व्रणशोधनः ॥३॥

निम्ब पत्र लेप—नीम के पत्ते और बैर के पत्ते दोनों को समान लेकर पीसकर अथवा नीम के पत्ते और समान तिल के बने कल्क के साथ मधु मिलाकर लेप करने से व्रण का शोधन होता है ॥

निम्बपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् । दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनरोपणः ॥ ४ ॥

निम्ब पत्रादि लेप—नीम की पत्तियां, तिल, दन्ती मूल, निशोथ, सेंधानमक समान लेकर पीस कर इसमें मधु मिलाकर लेप लगाने से दुष्ट व्रण शमन होता है और व्रण का शोधन और रोपण करता है ॥ ४ ॥

अभयात्रिवृताद‌न्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः । सुरवीपत्रघरक्कमोटकुष्ठेरिका ॥ ५ ॥

पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणशोधनाः । निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ॥ ६ ॥

गम्भीर व्रण का शोधन—हर्रे के चूर्ण या निशोथ के चूर्ण या दन्तीमूल के चूर्ण या करिआरी

के मूल के चूर्ण या काले जीरे के या धतूर के या छोटी करिआर के या काली तुलसी अथवा मरुवे तुलसी के पत्तों को पीसकर उसमें सेंधा नमक और मधु मिला कर इन प्रत्येक योगों के पृथक् २ लेप करने से गम्भीर व्रणों का शोधन होता है और नीम की पत्तियों को पीसकर उसमें मधु मिलाकर लेप करने से व्रण का संशोधन होता है ॥ ५-६ ॥

एका वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ७ ॥

सारिवामूल लेप—केवल एक सारिवा की जड़ को ही पीसकर लेप करने से सब प्रकार के व्रणों का शोधन होता है ॥ ७ ॥

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकदम्बप्लक्षवेतसाः । करवीरार्ककुटजाः कषायो रोपणे हितः ॥ ८ ॥

बट, गूलर, पीपरि, कदम्ब, पाकड़, बेत, कनेर, मदार और कुटजको सम भाग लेकर क्वाथ कर इस से व्रण को धोने से व्रण का रोपण होता है ॥ ८ ॥

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन । मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥९॥

सप्तच्छद कल्क—छितवन के दूध के कल्क का लेप करने से दुष्ट व्रण शमन होता है (इसका दूध जम कर कल्क के रूप में हो जाता है)। सरफोंका के चूर्ण का मधु में मिलाकर लेप करने से सब प्रकार के व्रण का रोपण होता है ॥ ९ ॥

पञ्चवल्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः । धातकीलोध्रचूर्णैर्वा निःसारा यान्ति ते व्रणाः ॥१०॥

पञ्चवल्कलादि योग—बट, पीपर, पाकड़, गूलर और बेत की छाल के समान मिश्रित चूर्ण का लेप करने अर्थात् व्रण पर इस चूर्ण को लगाने से अथवा इनके चूर्ण में सीप का चूर्ण (भस्म) भी मिलाकर लगाने से अथवा धाय के फूल और लोध को समान लेकर चूर्ण कर व्रण पर लगाने से व्रण निःसार होते हैं अर्थात् पूयादि से रहित होकर व्रण अच्छे हो जाते हैं ॥१०॥

निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता । वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणम् ॥ ११ ॥

शोधनी तथा रोपणी वर्ति—नीम की पत्तियां, घृत, मधु, दारु हल्दी और मुलहठी समान लेकर पीसकर बत्ती बना कर लगाने से अथवा तिल का कल्क बनाकर व्रण पर लेप करने से व्रण का शोधन और रोपण होता है ॥ ११ ॥

निम्बसम्याकजात्यर्कसप्तपर्णाश्वमारकाः । कृमिघ्ना मूत्रसंयुक्ताः सेकलेपनधावनैः ॥ १२ ॥

कृमिनाशक निम्बादि धावन योग—नीम, अमलतास, चमेली, मदार, छितवन और कनेर सम भाग लेकर क्वाथ अथवा कल्क बनाकर गोमूत्र मिलाकर व्रण सिंचन करने, लेप करने और धोने से व्रण के कृमि नष्ट हो जाते हैं ॥ १२ ॥

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणक्रिमीन् । लशुनेनाथवा दद्याल्लेपनं कृमिनाशनम् ॥१३॥

कृमिनाशक योग—करञ्ज, नीम और निर्गुण्डी (सेंदुरी) इनके पत्तों का रस व्रण पर लगाने से अथवा लहसुन को पीसकर लेप करने से व्रण के कृमि नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पिर्लवणसर्षपैः । धूपनं कृमिरक्षोघ्नं व्रणकण्डूरुजापहम् ॥ १४ ॥

निम्बादि धूप—नीम की पत्तियां, वच, हींग, घृत, लवण साधारण और सेंधा नमक लेकर पीसकर धूप देने से यह धूप व्रण के कृमि, कण्डू और पीड़ा को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्तः सरुजाः सशोफाः ।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन ॥ १५ ॥

गुग्गुलु योग—शुद्ध गुग्गुलु को त्रिफला के क्वाथ में मिलाकर पान करने से क्लेद युक्त पाक युक्त, स्राव युक्त (बहते हुए), गन्धवान (दुर्गन्धित व्रण) अत्यन्त बड़े हुए, पीड़ा करने वाले तथा शोथ युक्त ये सभी व्रण नष्ट होते हैं ॥ १५ ॥

गुग्गुलुवटकः—

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः । निषेवितो विबन्धघ्नो व्रणशोधनरोपणः ॥ १ ॥

गुग्गुलु वटक—त्रिफला समान मिश्रित का चूर्ण १ एक भाग और शुद्ध गुग्गुलु १ भाग लेकर एकत्र मर्दन कर वटी बना कर सेवन करने से विबन्ध नष्ट होता है और व्रण का शोधन और रोपण करता है ॥ १ ॥

विडङ्गादिगुग्गुलु—

विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम् । सर्पिषा वटकान्कुर्यात्खादेद्वा हितभोजनः ॥
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनान् ॥ १ ॥

विडङ्गादि गुग्गुलु—वायविडंग, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, सोंठि, पीपरि, मरिच सम भाग लेकर चूर्ण कर उसके बराबर शुद्ध गुग्गुल मिलाकर मर्दन कर घृत के सहारे वटी बनाकर सेवन करे तथा पथ्य से रहने से दुष्ट व्रण, अपची, मेह, कुष्ठ और नाड़ी व्रण ये सभी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

अमृताद्यो गुग्गुलु—

अमृतापटोलमूलत्रिकटुत्रिफलाकृमिघ्नानाम् । कृत्वा समभागचूर्णं सर्वसमो गुग्गुलुर्योज्यः ॥१॥
प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेत्तथाऽक्षपरिमाणाम् ।
जेतुं व्रणवातासृक् गुल्मोदरपाण्डुशोथादीन् ॥ २ ॥

अमृतादि गुग्गुलु—गुरुचि, परवर की जड़, सोंठि मरिच, पीपरि, हर्रा, बहेड़ा, अँवरा और वायबिरंग समभाग ले चूर्ण कर सब एकत्र कर सबों के समान शुद्ध गुग्गुल मिलाकर मर्दन कर घृत के सहारे वटी बनाकर एक अक्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन सेवन करने से व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदर, पाण्डु और शोथ आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

जात्यादिघृतम्—जातीपत्रपटोलनिम्बकटुकादार्वीनिशासारिवा
मञ्जिष्ठामयतुत्थसिक्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितः ।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिता स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सगतिकाः शुध्यन्ति रोहन्ति च ॥ १ ॥

जात्यादि घृत—चमेली, परवर तथा नीम इनके पत्ते कुटकी, दारुहरदी, हरदी, सारिवा, मजीठ, हर्रा, तूतिया मोम, मुलहठी, करञ्ज के बीज सममाग लेकर कल्क कर उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत के चौगुना जल मिलाकर घृत सिद्ध कर सेवन करने से सूक्ष्म मुख वाले मर्म स्थान में उत्पन्न निरन्तर स्रवित होने वाले गम्भीर, अत्यन्त पीड़ा करने वाले और गतिमान् व्रण ( जो नाड़ी आदि के द्वारा बढ़ने वाले व्रण हैं ) ये सभी शुद्ध होते हैं और भर जाते हैं ॥ १ ॥

स्वर्जिकाद्यं घृतम्—स्वर्जिका च यवक्षारः कम्पिल्लं च हरेणुका ।
टङ्कणं श्वेतखदिरं तुत्थं चूर्णं च गोघृते ॥ १ ॥
सर्वं समांशं संचूर्ण्य मर्दयेत्प्रहरं दृढम् । स्वर्जिकाद्यमिदं सर्पिः सर्वव्रणहरं परम् ॥
रोपणं कृमिकण्डूघ्नं सवर्णकरणं परम् ॥ २ ॥

स्वर्जिकादि घृत—सज्जी, जवाखार, कबीला, रेणुका, टङ्कण, श्वेत खैर, तूतिया और चूना समान ले एकत्र चूर्ण कर जितना हो उसके बराबर गाय का घृत मिलाकर एक पहर तक दृढ़ता के साथ मर्दन कर लगाने से यह 'स्वर्जिकादि' नामक घृत सब प्रकार के व्रणों को नष्ट करने में उत्तम है और यह व्रणों को रोपण करता है, कृमि ( व्रणकृमि ) कण्डू को नष्ट करता है तथा त्वचा को सवर्ण करने में उत्तम है ॥ २ ॥

मनःशिलादिलेपः—

मनःशिला समञ्जिष्ठा सक्षारा रजनीद्वयम् । प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः स्मृतः ॥ १ ॥

मनःशिलादि लेप—मैनसिल, मजीठ, जवाखार, हरदी, दारुहरदी समान ले चूर्ण कर घृत और मधु के साथ मिलाकर लेप लगाने से त्वचा की शुद्धि करने वाला कहा गया है ॥ १ ॥

पारदादिमलहर—

रसगन्धकयोश्चूर्णं तत्समं मुर्दशृङ्गकम् । सर्वतुल्यं तु कम्पिल्लं किञ्चित्तुत्थसमन्वितम् ॥ १ ॥
सर्वं सम्मेल्येद्दत्त्वा घृतं सर्वाच्चतुर्गुणम् । पिचुप्लुतं प्रदातव्यं दुष्टव्रणविशोधनम् ।
नाडीव्रणहरं चैव सर्वव्रणनिषूदनम् ॥ २ ॥
ये व्रणा न प्रशाम्यन्ति भेषजानां शतेन च । अनेन ते प्रशाम्यन्ति सर्पिषा स्वल्पकालतः ॥३॥

पारदादि मलहर—पारद, गन्धक एक २ भाग और दोनों के बराबर मुर्दासंग ( दो भाग ), सब के बराबर ( ४ भाग ) कबीला तथा किञ्चित् मात्र तूतिया मिलाकर मर्दन कर जितना हो उसके बराबर घृत मिलाकर पिचु ( रूई का फाहा ) में भरकर व्रण पर रखने से दुष्ट व्रण शुद्ध

होते हैं नाड़ी व्रण तथा सब प्रकार के व्रण नष्ट होते हैं। जो व्रण सैकड़ों ओषधियों से भी शमन नहीं होते हों वे सभी इस घृत से अल्प समय में ही शमन हो जाते हैं। इसमें प्रथम पारद गन्धक को मर्दन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

द्वितीयपारदादिमलहर—

रसगन्धकसिन्दूरतालकम्पिल्लमुण्डकम्। तुल्यं खादिरकं चूर्णं सर्वं घृतचतुर्गुणम् ॥ १ ॥
घृष्ट्वा सम्मेल्य पिचुना व्रणे देयं विजानता। सर्वव्रणप्रशमनं घृतमेतत्प्रदायकः॥ २ ॥

दूसरा पारदादि मलहर—पारद, गन्धक, सिन्दूर, ताल, कबीला, मुर्दासंग, मुण्डी और कत्था सम भाग लेकर चूर्ण कर जितना हो उसके चौगुना घृत मिला कर पिचु में भर कर व्रण पर रखने से इस घृत से सब प्रकार के व्रण अवश्य नष्ट होते हैं। (पारद गन्धक पहले मर्दन करना चाहिये)॥

अयोरज आदिलेप—

अयोरजः सकासीसं त्रिफला कुसुमानि च। प्रलेपः कुरुते धात्र्याः सद्य एव नवां त्वचम् ॥१॥

अयोरजादि लेप—लोहभस्म, कासीस, आँवला, हर्रा, बहेरा और धायके फूल सममाग ले चूर्ण और मर्दन कर व्रण पर की त्वचा पर लेप करने से त्वचा शीघ्र नवीन हो जाती है ॥ १ ॥

## अथ सद्यो व्रणनिदानमाह।

नानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः। भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे॥

सद्यो व्रण निदान—अनेक प्रकार के धार वाले तथा अनेक प्रकार के मुखों वाले शस्त्रों के अनेक स्थानों पर गिरने और लगने से अनेक आकारों वाले (आगन्तुक) व्रण हो जाते हैं उनको 'सद्योव्रण' कहते हैं ॥ १ ॥

तेषां षड्विधत्वमाह—

छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिच्चितमेव च। घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥२॥

छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित और घृष्ट इस नाम के छ भेदवाले 'सद्योव्रण' होते हैं जिनके लक्षण कहते हैं ॥ २ ॥

तिर्यक्छिन्न ऋजुर्वाऽपि व्रणो यश्चायतो भवेत्। गात्रस्य पातनं चापि छिन्नमित्यभिधीयते ॥

छिन्न व्रण के लक्षण—जो सद्योव्रण किसी शस्त्र से तिरछा कटा हुआ हो अथवा सीधा कटा हुआ हो और लम्बा अर्थात् अधिक कटा हुआ हो तथा हाथ पैर आदि शरीर के अंग कट कर गिर पड़े हों अथवा कट गये हों पर गिरे नहीं हों ऐसे को 'छिन्न व्रण' कहते हैं ॥ ३ ॥

शक्तिकुन्तेषुखड्गाग्रविषाणैराशयो हतः। यत्किञ्चित्प्रस्रवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

भिन्न व्रण के लक्षण—जो व्रण शक्ति, कुन्त (भाला) बाण, खड्ग के अग्रभाग और सींग इत्यादि शस्त्रों से आहत होकर आमाशय आदि आशय स्थानों का भेद हुआ हो और उसमें से कुछ स्राव होने लगे (यह स्राव स्थान भेद से कई प्रकार का होता है अर्थात् बस्ति में भेदन होने से मूत्र का स्राव, पुरीषाशय में होने से पुरीष आदि होता है) उसे भिन्न व्रण कहते हैं ॥ ४ ॥

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च। हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥५॥

आशयों के भेद—आमाशय (आम का स्थान), अग्न्याशय (अग्नि का स्थान), पक्वाशय (आम के पक्के होने का स्थान) मूत्राशय (मूत्र का स्थान अर्थात् बस्ति), रक्ताशय (रक्त का स्थान अर्थात् यकृत्-प्लीहा आदि), उण्डुक (यह पुरीषाधान अँतड़ियों के भीतर रहता है), और फुफ्फुस, (यह फेफड़ा हृदय के वाम पार्श्व में रहता है) ये कोष्ठ अथवा आशय कहे जाते हैं ॥

तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते। मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥६॥
मूर्च्छा श्वासतृषाऽऽध्मानमभक्तच्छन्द एव च। विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदः स्रावोऽक्षिरक्तता ॥
लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च। हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे शृणु ॥८॥

भिन्न कोष्ठ के लक्षण—इन कोष्ठों (आशयों) के भिन्न होने पर कोष्ठ रक्त से पूर्ण हो जाता है, ज्वर और दाह होता है और मूत्रमार्ग (लिङ्ग), गुदा, मुख तथा नाक से रक्त निकलता है तथा मूर्च्छा, श्वास, तृषा, आध्मान, भोजन में अरुचि और मलमूत्र और अधो वायु का अवरोध हो जाता है, स्वेद होता है तथा नेत्र लाल हो जाते हैं, मुख से लोहे के गन्ध के समान गन्ध और

शरीर से दुर्गंध आती है और हृदय तथा पार्श्व देश में शूल होता है ये सब कोष्ठ के भिन्न होने के सामान्य लक्षण हैं। विशेष आगे कहते हैं॥ ९-८॥

आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि। आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम्॥ ९॥

आमाशय के भेद—जब किसी शस्त्र द्वारा आमाशय भिन्न हो जाने से उसमें रक्त भर जाता है तब रक्त का वमन होता है, उदर में अत्यन्त आध्मान और अत्यन्त कठिन शूल होता है॥ ९॥

पक्वाशयगते चापि रुजा गौरवमेव च। अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह॥ १०॥

पक्वाशय के भेद—जब किसी शस्त्र द्वारा पक्वाशय भिन्न हो जाता है और उससे उसमें रक्त भर जाता है तब पीड़ा होती है, शरीर भारी हो जाता है तथा विशेष करके शरीर के अधोभाग (नाभि से नीचे) में शीतलता होती है॥ १०॥

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना। उत्तुण्डितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत्॥

विद्ध व्रण के लक्षण—सूक्ष्म मुख वाले शल्य आदि से आशय को छोड़कर दूसरा अंग यदि अभिहत हो जावे और ऊंचा हो जावे तथा उसमें से शल्य निकल गया हो अथवा नहीं निकला हो उस छिदे हुए सद्यो व्रण को विद्ध कहते हैं॥ ११॥

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम्। विषमं व्रणमङ्गे यत्तत्क्षतं तु विनिर्दिशेत्॥१२॥

क्षत व्रण के लक्षण—जो सद्योव्रण शस्त्रादि के द्वारा न अत्यन्त छिन्न हुआ हो न अत्यन्त भिन्न हुआ हो प्रत्युत दोनों लक्षणों से युक्त हो ऐसे शरीर के विषम व्रण को 'क्षतव्रण' कहते हैं॥

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम्। सास्थि तत्पिच्चितं विद्यान्मज्जरक्तपरिप्लुतम्॥

पिच्चित व्रण के लक्षण—जिस सद्योव्रण में प्रहार और पीडन से अर्थात् मुद्गर आदि से लग कर अथवा कपाट आदि से दब कर अङ्ग अस्थि सहित चपटा हो जाता है और वह चिपटा हुआ स्थान मज्जा तथा रक्त से परिपूर्ण हो जाता है उसे 'पिच्चित' कहते हैं॥ १३॥

घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम्। उषास्रावान्वितं तच्च घृष्टमित्यभिधीयते॥ १४॥

घृष्टव्रण के लक्षण—किसी रूक्ष वस्तु के घर्षण से अथवा आघात से जब किसी अंग की त्वचा छिल जाती है और उसमें से उष्णतायुक्त (जलन) पीड़ा होती है और स्राव होता है उस सद्यो व्रण को 'घृष्टव्रण' कहते हैं॥ १४॥

श्यावं सशोफं पिडिकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च।
मृदु बुद्बुदोद्वृत्तमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति॥ १५॥

शल्ययुक्त व्रण के लक्षण—जो सद्योव्रण श्याम वर्ण का, शोथ तथा पिडिकाओं से युक्त हो, तथा बार २ उसमें से रक्त का स्राव हो, कोमल हो, बुद्बुद के समान (जल के बबूले के समान) ऊपर उठा हुआ मांस हो और पीड़ा हो उस व्रण को 'सशल्य व्रण' कहते हैं॥ १५॥

त्वचोऽतीत्य सिरादीनि भित्त्वा च परिहृत्य वा। कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान्॥

कोष्ठगत शल्य के लक्षण—जो शल्य त्वचा आदियों (सप्त त्वचा) को पार कर तथा सिरा-स्नायु आदिकों को भेदकर अथवा इन सिरा-आदिकों को छोड़ कर कोष्ठ में स्थित हो जाता है (विनष्ट शल्य जिसे सुश्रुत में कहा गया है) वह शल्य विज्ञानीय' अध्याय में कहे हुए (अटोप, आनाह, मूत्रपुरीषादि का मुख से बाहर निकलना आदि) उपद्रवों को करता है॥ १६॥

तत्रान्तर्लोहितं पाण्डुं शीतपादकराननम्। शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानद्धं परिवर्जयेत्॥ १७॥

असाध्य कोष्ठ भेद के लक्षण—जिस कोष्ठ भेद वाले रोगी के कोष्ठ में रक्त रह जावे अर्थात् बाहर नहीं निकले (कोष्ठ भेद में रक्त मुंह आदि से बाहर निकलता है यह पहले के लक्षणों में कह दिया गया है) और उस रोगी के पाँव, हाथ और मुँह पाण्डु वर्ण के और शीतल हो जावें तथा श्वास शीतल लेवें, नेत्र रक्त वर्ण के हो जावें और उसे आनाह होवे तो उसको त्याग देना चाहिये॥ १७॥

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिरथोष्णता च।
स्रस्ताङ्गता मूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः॥ १८॥
मांसोदकाभं रुधिरं च गच्छेत्सर्वेन्द्रियार्थोपरमस्तथैव।
दशार्धसंख्येष्वपि विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम्॥ १९॥

मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि मर्म में क्षत होने के सामान्य लक्षण—जब इन पांचों स्थानों में क्षत होता है तब रोगी को भ्रम, प्रलाप ( बक-बक बोलना ), भूमि पर गिर जाना, मोह होना, चेष्टा का विकृत होना, ग्लानि, उष्णता, शिथिलता, मूर्च्छा, ऊर्ध्ववात ( डकार ) और वात के कारण होने वाली दण्डापतानक एवं आक्षेपकादि तीव्र पीड़ायें होती हैं और मम से मांस के धोवन के समान रक्त निकलता है और सब इन्द्रियाँ अपने कार्य में अक्षम रहती हैं ( असमर्थ रहती हैं ), इन दशायें ( पांच ) मर्म स्थानों में क्षत के ये सामान्य लक्षण कहे गये हैं ॥ १८-१९ ॥

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूतं रक्तं स्रवेत्तत्क्षतजश्च वायुः ।
करोति रोगान्विविधान्यथोक्तान् शिरासु विद्धास्वथवा क्षतासु ॥ २० ॥

सिराविद्ध के लक्षण—मर्म स्थानों को छोड़ कर अन्य स्थान की सिरायें जब किसी शस्त्र ( बाण ) आदि से छिद्र हो जाती हैं अथवा सन्धादि से क्षत हो जाती हैं तब उनमें से बीरबहूटी के वर्ण का ( लाल मखमल की भाँति वर्ण का ) अधिक रक्त निकलता है, जिससे वायु कुपित होकर अनेक प्रकार के ( आक्षेपक, शिरोविकारादि ) रोगों को करता है ॥ २० ॥

कौब्ज्यं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च ।
चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २१ ॥

स्नायुविद्ध के लक्षण—जिस मनुष्य को शस्त्रादि के लगने पर उसको पीड़ा से कुब्जता और शरीर के अवयवों में अवसन्नता ( शिथिलता ) हो जावे, क्रिया करने की ( अंग संचालनादि की ) शक्ति नहीं रहे, अत्यन्त पीड़ा और बहुत समय के पश्चात् व्रण का रोपण हो ( व्रण पूरा हो ) उसको स्नायुविद्ध ( स्नायु में क्षत ) हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ २१ ॥

शोफाभिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः पर्वसु भेदशोफौ ।
क्षतेषु सन्धिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥ २२ ॥

सन्धि विद्ध के लक्षण—जब चल ( हस्तपादादि की ) अथवा अचल सन्धियों में क्षत हो जाता है ( शस्त्रादि का आघात हो जाता है ) तब उसमें शोथ बढ़ जाता है अत्यन्त पीड़ा, बल का नाश, जोड़ों पर फोड़ने के समान पीड़ा तथा शोथ होता है और सभी कर्मों में ( सन्धि के कार्यों में ) असमर्थता होती है ॥ २२ ॥

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु न चैति शान्तिम् ।
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं मनुजं व्यवस्येत् ॥ २३ ॥

अस्थिविद्ध के लक्षण—जिस क्षत वाले मनुष्य को दिन-रात कठिन पीड़ा हो, तथा सभी अवस्थाओं ( सोने बैठने आदि ) में शान्ति नहीं मिले अर्थात् किसी समय पीड़ा से शान्ति नहीं मिले तो उसको विद्वान् ( चतुर ) चिकित्सक अस्थिविद्ध जाने ॥ २३ ॥

यथास्वमेतानि विभावयेच्च लिङ्गानि मर्मस्वभिताडितेषु ।
पाण्डुर्विवर्णश्च सुखं न वेत्ति यो मांसमर्मण्यभिताडितश्च ॥ २४ ॥

सिरादि मर्मविद्ध के लक्षण—सिरा आदि मर्मों के विद्ध हो जाने पर उन स्थानों के क्षतों के जो लक्षण पहले कह हैं वे सभी लक्षण उसमें होते हैं और पृथक् २ लक्षण जो सिराविद्ध आदि के कहे हैं वे भ्रम प्रलापादि सभी लक्षण सिरा आदि मर्मों के अभिहत होने से होते हैं।

मांस मर्मविद्ध के लक्षण—मनुष्य के मांस मर्म के विद्ध होने पर उसका वर्ण पाण्डु वर्ण का अथवा विकृत वर्ण का हो जाता है और उसे सुख नहीं मिलता है ॥ २४ ॥

मर्माभिते व्रणे प्राप्य वायुर्यः सर्वदेहगः । कर्मोत्सायामयेद्देहं अयामायामं तु तं त्यजेत् ॥ २५ ॥

अयामाम की असाध्यता—सर्वदेह में संचरण करने वाला जो वायु है वह मर्म में हुए व्रण में प्राप्त होकर शीघ्र ही शरीर को आयाम युक्त कर देता है ( ऐंठ देता है ) उसे 'अयामायाम' कहते हैं ॥ २५ ॥

विसर्पः पक्षघातश्च सिरास्तम्भोऽपतानकः । मोहोन्मादव्रणरुजा ज्वरस्तृष्णाहनुग्रहाः ॥ २६ ॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः । षोडशोपद्रवाः प्रोक्ता व्रणानां व्रणचिन्तकैः ॥ २७ ॥

व्रणों के उपद्रव—विसर्प, पक्षाघात, सिरास्तम्भ, अपतानक, मोह, उन्माद, व्रण में पीड़ा, ज्वर,

तृषा, हनुमह, कास, वमन, अतीसार, हिक्का, श्वास, वेपथु ( कम्पन ) ये सोलह व्रण रोग वालों के ( व्रण रोग के ) उपद्रव होते हैं ऐसा व्रण विशेषज्ञों ने कहा है ॥ २६-२७ ॥

## अथ सद्योव्रणचिकित्सा।

युद्ध्वाऽऽगन्तुमणं वैद्यो घृतक्षौद्रसमन्वितम्। शीतां क्रियां चरेदाशु रक्तपित्तोष्मनाशिनीम्॥

सद्योव्रण चिकित्सा—वैद्य आगन्तुक व्रण जान कर शीघ्र रक्त-पित्त और ऊष्मा को नष्ट करने वाली घृत तथा मधु मिश्रित शीतल क्रिया को करे ॥ १ ॥

क्षुद्रे सद्यो व्रणे युञ्ज्यादूर्ध्वं चाऽधश्च शोधनम्।
लङ्घनं च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्रमोक्षणम् ॥ २ ॥

क्षुद्र सद्योव्रण चिकित्सा—सद्योव्रण अत्यन्त क्षुद्र ( अत्यन्त बड़ा हुआ ) हो तो उसमें ऊर्ध्वशोधन और अधःशोधन ( वमन-विरेचन ) पहले कराना चाहिये, बल के अनुसार लङ्घन और भोजन तथा रक्तमोक्षण भी करना चाहिये ॥ २ ॥

घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः। तयोरल्पं स्रवत्यस्रं पाकस्तेनाऽऽशु जायते ॥ ३ ॥

घृष्ट और विदलित व्रण चिकित्सा—घिसे हुए सद्योव्रण में विदलित ( पिच्चित ) सद्योव्रण में उपर्युक्त ( शोधनादि ) विधि उत्तम है क्योंकि इसमें से रक्त अल्प निकलता है जिससे शीघ्र ही व्रण का पाक हो जाता है। शीघ्र पाक होने के कारण शोधनादि कर्म लाभदायक हैं ॥ ३ ॥

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते चासृगतिस्रवेत्। रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो भृशम् ॥४॥
स्नेहपानपरीषेकलेपस्वेदोपनाहनम्। कुर्वीत स्नेहबस्तिं च मारुतघ्नौषधैः शृतैः ॥ ५ ॥

छिन्नादि व्रण चिकित्सा—छिन्न, भिन्न, विद्ध तथा क्षत में रक्त का अधिक स्राव होता है जिससे रक्त के नष्ट होने के कारण वायु कुपित होकर अत्यन्त कठिन पीड़ा करती है इसलिये इन व्रणों में स्नेहपान परिषेक ( औषधियों के जल का सिंचन ), लेप, स्वेद और उपनाह करना चाहिये तथा वातनाशक औषधियों के क्वाथ से स्नेह बस्ति देना चाहिये ॥ ४-५ ॥

उक्तं च ग्रन्थान्तरे—

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते सद्यो भिषग्वरः। पट्टसूत्रेण सस्वेदं कुर्याद् व्रणविशारदः ॥१॥

छिन्न-भिन्न-विद्ध और क्षत इन सद्योव्रणों में व्रण चिकित्सक वैद्य पट्टसूत्र वाले वस्त्र ( रेशमी वस्त्र ) से स्वेद करे तो लाभ होता है ॥ १ ॥

मुहुर्मुहुर्यथा दुःखं न प्राप्नोति व्रणी नरः। अथवा दीप्यलवणपोट्टल्या स्वेदयेन्मुहुः ॥ २ ॥

बार २ स्वेद इस प्रकार देवे कि रोगी को कष्ट नहीं होने पावे अथवा जवाइन और नमक की पोटली बनाकर उससे बार २ स्वेद देवे। इस प्रकार करने से इन ( छिन्नादि ) व्रणों में लाभ होता है ॥ २ ॥

सतप्तया तप्तलोहपात्रसंयोगतः क्रमात्। दुष्टं रक्तं स्थितं चापि शृङ्गचलाबुविधिर्हरेत् ॥ ३ ॥

उन पोटलियों ( पट्टसूत्र अथवा अजवायन नमक आदि की पोटलियों ) को तपे हुए लोहे के पात्र पर तपा कर सेक करना चाहिये और दूषित स्थिररक्त को सिंगी अथवा तुम्बी के द्वारा निकलवा देना चाहिये ॥ ३ ॥

सद्यःक्षतव्रणं वैद्य सशूलं परिषेचयेत्। यष्टीमधुकमिश्रेण नातिशीतेन सर्पिषा ॥ ४ ॥

सद्यःक्षत शूलयुक्त व्रण चिकित्सा—शीघ्र हो कटे हुए और पीड़ा वाले व्रण में जेठी मधु मिले हुए घृत से जो अत्यन्त शीतल नहीं हुआ हो उससे सिंचन करना चाहिये ॥ ४ ॥

कषायमधुराः शीताः क्रियाः सर्वास्तु योजयेत्। सद्योव्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥५॥

सामान्य विधि—सद्यो व्रणों में कषाय रस और मधुर रस वाली औषधियों से युक्त सब प्रकार की शीतल चिकित्सा ( क्रिया ) सात दिन तक करनी चाहिये पश्चात् पूर्वक कथित ( व्रण चिकित्सा में कथित ) क्रियायें करनी चाहिये अर्थात् सद्यो व्रण में सात दिन के पश्चात् व्रण रोग में कही हुई सभी सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये, सात दिन तक ही शीत क्रिया करनी चाहिये ॥ ५ ॥

चिकित्सितं तु सत्सर्वं सामान्यव्रणनाशनम्। आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ॥
पक्वाशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम् ॥ ६ ॥

आमाशय और पक्वाशय के क्षत में चिकित्सा—आमाशय में क्षत होकर रुधिर से उसके भर जाने पर वमन करना पथ्य कहा गया है और यदि पक्वाशय में क्षत होकर रुधिर भर गया हो तो निःसन्देह विरेचन देना चाहिये ॥ ६ ॥

यवासकादिक्वाथः—

क्वाथो यवासगोरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदाकृतः। हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं पातयेदसृक् ॥ १ ॥

यवासकादि क्वाथ—बाँस की छाल, एरण्ड की जड़, गोखरू और पाषाण भेद (पाथर चूर) सम भाग लेकर क्वाथ कर उसमें शुद्ध हींग और सेंधा नमक के समान मिलित चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कोष्ठ में क्षत होकर स्थित जो रक्त है वह गिर जाता है अर्थात् बाहर निकल जाता है ॥ १ ॥

यवादि—

यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च। भुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ॥ १ ॥

यवादि योग—जौ, बेर तथा कुलथी इनके रस बना कर बिना स्नेह के (घृतादि बिना मिलाये) अन्न के साथ भक्षण करने से अथवा यवागू में सेंधा नमक मिलाकर पान करने से कोष्ठ के रक्त निकल जाते हैं ॥ १ ॥

गौराद्यं घृतम्—

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च। प्रपौण्डरीकं ह्रीबेरं भद्रमुस्तं च चन्दनम् ॥ १ ॥
जातीनिम्बपटोलं च करञ्जं कटुरोहिणी। मधूच्छिष्टं मधूकं च महामेदा तथैव च ॥ २ ॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्। गौराद्यमिदं सर्पिः सर्वव्रणविशोधनम् ॥ ३ ॥
आगन्तुकाश्च सहजाः सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः। नाडीव्रणाश्च विषमा गच्छेयुस्ते च संक्षयम् ॥ ४ ॥

गौराद्य घृत—श्वेत सर्सों, हल्दी, मजीठ, जटामांसी, मुलहठी, पुण्डरिया काठ, सुगन्धबाला, तगर, नागरमोथा, चन्दन, चमेली, नीम, परवर इनके पत्ते, करंज, कुटकी, मोम, महुआ और महामेदा सम भाग ले कल्क कर १ प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ लेवे और पञ्चवल्कल (बर, पीपल, पाकर, गूलर और बेत की छाल) के क्वाथ की घृत से चतुर्गुण लेकर घृत सिद्ध कर लेवे। इस गौरादि घृत नामक घृत के व्यवहार से सब प्रकार के व्रण शुद्ध होते हैं और आगन्तुक, सहज, पुराने, नाड़ी और विषम प्रकार के ये सभी व्रण अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

तिक्तादिघृतम्—

तिक्तासिक्थनिशायष्टीनक्ताह्वफलपल्लवैः। पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्व्रण्यं घृतं स्मृतम् ॥ १ ॥

तिक्तादि घृत—कुटकी, मोम, हल्दी, मुलेठी और करञ्ज के फल तथा पल्लव (कोमल पत्र) सम भाग लेकर कल्क कर उसके चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण पटोलपत्र, मालती (चमेली) पत्र और निम्बपत्र के क्वाथ को मिलाकर घृत सिद्ध कर लगाने से व्रण कारक होता है अर्थात् त्वचा पर लगाने से त्वचा का विकार व्रण नष्ट होकर ठीक हो जाता है ॥ १ ॥

जात्यादितैलम्—

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवाः। सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणी ॥ १ ॥
मञ्जिष्ठा पद्मकं लोध्रमभया नीलमुत्पलम्। तुत्थकं सारिवा बीजं नक्तमालस्य च क्षिपेत् ॥ २ ॥
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। विषव्रणसमुत्थेषु स्फोटेषु च सकच्छुषु ॥ ३ ॥
कण्डूविसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा। सद्यःशस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धक्षतेषु च ॥ ४ ॥
नखदन्तक्षते देहे दुष्टमांसावघर्षणे। प्रयोक्तव्यमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ५ ॥

जात्यादि तैल—चमेली, नीम, परवर और नक्त करञ्ज के पत्र, मोम, मुलहठी, कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, कुटकी, मजीठ, पद्माख, लोध, हर्रे, नीलोत्पल, तूतिया, सारिवा और करञ्ज के बीज सम भाग ले कल्क कर उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और तैल से चौगुना जल मिलाकर तैल पका कर लगाने से विष व्रण की आपत्ति, स्फोट (फोड़े), कच्छू, कण्डू, विसर्प, सब प्रकार के कीड़ा आदिकों के काटने, शस्त्रप्रहार से कट जाने, आग से जल जाने, विद्ध तथा क्षत व्रण, नख तथा दाँत से क्षत हो जाने, दूषित मांस के घर्षण होने में लाभ करता है तथा यह तैल व्रण का शोधन और रोपण भी करता है ॥ १-५ ॥

विपरीतमल्लतैलं चक्रदत्तात्—

सिन्दूरकुष्ठविषहिङ्गुरसोनचित्रवाणाङ्घ्रिलाङ्गलिककल्ककविपक्वतैलम्।
प्रासादमण्डनयुतश्च सतुत्थफेनः क्लिन्नव्रणप्रशमने विपरीतमल्लः॥ १॥
खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंशनाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः।
एतान्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य॥ २॥

विपरीत मल्ल तैल—सिन्दूर (जो स्त्रियां लगाती हैं) कुठ, विष (शुद्ध मीठा तेलिया), हींग, लहसुन, चित्र की जड़, सरफोंका और करिआरी तथा हरताल, शुद्ध तुतिया, शुद्ध और समुद्रफेन समभाग ले कल्क बनाकर उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर तेल सिद्ध कर लेवे, इस तेल का नाम 'विपरीत मल्ल तैल' है। इससे क्लेद युक्त (आर्द्र या पूय देने वाले) व्रण शमन होते हैं और इस तेल के व्यवहार से तलवार के आघात के व्रण, अत्यन्त गुरुगण्ड (गल गण्ड) महा उपदंश, नाड़ीव्रण, व्रणविचर्चिका, कुष्ठ, पामा इन सब रोगों को यह तेल नष्ट करता है। इसके व्यवहार के समय सोना, बैठना और भोजन आदि इच्छानुकूल करना चाहिये। (व्यवहार में इस योग में तैल सर्सों का लिया जाता है और पाठ में हरताल, तुतिया और समुद्र फेन ये पाठान्तर में नहीं हैं)॥ १-२॥

दूर्वादितैलम्—

दूर्वास्वरससंसिद्धं तैलं कम्पिल्लकेन वा। दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम्॥ १॥

दूर्वादि तैल—कबीला अथवा दारुहल्दी की त्वचा का कल्क और कल्क के चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल, तथा तेल से चौगुन दूब घास का स्वरस मिलाकर तेल सिद्ध कर व्यवहार में लाने से व्रण को रोपण करने में यह प्रधान है॥ १॥

सप्तविंशतिको गुग्गुलु—

त्रिकटुत्रिफलामुस्ताविडङ्गामृतचित्रकम्। पटोलं पिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च॥ १॥
तुम्बरु पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम्। बिडं सौवर्चलं क्षारं सैन्धवं गजपिप्पली॥ २॥
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावद्द्विगुणगुग्गुलु। कोलप्रमाणां वटिकां भक्षयेन्मधुना सह॥ ३॥
कासं श्वासं तथा शोफमर्शांसि च भगन्दरम्। हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम्॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन्। चिरज्वरोपसृष्टानां क्षतोपहतचेतसाम्॥ ५॥
आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठान्युदराणि च। नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहान्श्लीपदं तथा॥ ६॥
सप्तविंशतिको नाम गुग्गुलुः प्रथितो महान्। धन्वन्तरिकृतो ह्येष सर्वरोगनिषूदनः॥ ७॥

सप्तविंशति गुग्गुलु—सोंठि, मरिच, पीपरि, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा, नागरमोथा, वायभिरंग, गुरुचि चित्र की जड़, परवर के पत्ते, पिपरामूल, हाऊबेर, देवदारु, तेजबल के फल (तुम्बरू), पुहकरमूल, चव्य, माहरि, हरदी, दारुहरदी, बिडनमक, सोंचरनमक यवाखार, सेंधानमक और गजपीपरि, प्रत्येक एक २ भाग ले चूर्ण कर उसके दूना शुद्धगुग्गुलु मिला कूट कर एक कोल (½ कर्ष) के प्रमाण की वटी बना मधु के साथ भक्षण करने से कास, श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदयशूल, पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, बस्तिशूल और गुदाशूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि और कृमि इनको नष्ट करता है तथा पुराने ज्वर से पीड़ित और क्षत से पीड़ित रोगियों के लिये हितकर है और आनाह, उन्माद, कुष्ठरोग, आठों प्रकार के उदररोग, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण और सभी प्रकार के व्रण, प्रमेह, श्लीपद इन सब रोगों को यह सप्तविंशति नाम का गुग्गुलु नष्ट करता है। सब रोगों को नष्ट करने वाला इसको धन्वन्तरि महाराज ने बनाया था॥ १-७॥

अपथ्यम्—व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात्।
तौ च रुक्च दिवास्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात्॥ १॥
अम्लं दधि च शाकं च मांसमानूपवारिजम्। क्षीरं गुरूणि चान्नानि व्रणी च परिवर्जयेत्॥

सद्योव्रण में अपथ्य—व्रणरोग में परिश्रम करने से शोथ हो जाता है इसलिये परिश्रम नहीं करना चाहिये और रात में जागने से व्रण में शोथ तथा राग अर्थात् पाक के लक्षण हो जाते हैं। इसलिये रात्रिजागरण भी व्रण के रोग को नहीं करना चाहिये, व्रणरोग में दिन में सोने से शोथ, राग और पीड़ा होती है इसलिये दिनमें नहीं सोना चाहिये, तथा व्रणरोग में मैथुन करने से शोथ, राग, पीड़ा और मृत्यु भी हो जाती है इसलिये मैथुन नहीं करना चाहिये, और अम्लरस, दही,

आभादि गुग्गुलु—बबूल की छाल, हर्रे, बहेड़ा, आँवला, सोंठि, मरिच, पीपरि प्रत्येक समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर मर्दन कर सेवन करने से भग्न का सन्धान होता है ॥ १ ॥

गोधूमप्रयोग—

ईषद्दग्धगोधूमचूर्णं पीतं समाक्षिकम् । कटिसन्धिषु भग्नेषु भग्नेष्वस्थिषु पूजितम् ॥ १ ॥
अविदाहिभिरन्नैश्च पिष्टकैः समुपाचरेत् ॥ २ ॥

गोधूम प्रयोग—थोड़ा जले भाग भूने गेहूँ का चूर्ण कर मधु के अनुपान से पान करने से कटिसन्धि का भग्न और अस्थिभग्न ( अस्थि का टेढ़ा होना ) इनमें लाभ करता है ॥ १-२ ॥

मांसं मांसरसं क्षीरं सर्पिर्यूषं च मुद्गजम् । बृंहणं चान्नपानं च सन्धिभग्नाय दापयेत् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—अविदाही अन्न ( जिसके सेवन से दाह नहीं हो ), पिठ्ठी आदि, मांस तथा मांस रस, दूध, घृत और मूंग का जूस तथा बृंहण अन्न और पेयादि सन्धिभग्न में देना चाहिये अर्थात् ये पथ्य हैं ॥ ३ ॥

लवणं कटुकं क्षारं साम्लं मैथुनमातपम् । व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ४ ॥

परन्तु नमक, कटुरस पदार्थ, क्षारद्रव्य, अम्लरस वाले द्रव्य, मैथुन, धूप सेवन, व्यायाम और रूखा अन्न नहीं सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

बालानां तरुणानां च भग्नान्याशु भवन्ति वै ।
समीचीनानि वृद्धानां भग्नानां न विशेषतः ॥ ५ ॥

बालकों के भग्न का शीघ्र सन्धान होने पर बालक तथा तरुण मनुष्यों का भग्न शीघ्र सन्धान होता है अर्थात् नवीन रक्त का प्रवाह रहने से शीघ्र जुट जाता है, परन्तु वृद्धों का भग्न विशेष कर नहीं जुटता है अथवा शीघ्र नहीं जुटता है ॥ ५ ॥

## अथ नाडीव्रणनिदानम् ।

यः शोफमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ।
अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य स्थानानि पूर्वविहितानि ततः स पूयः ॥ १ ॥

नाड़ी व्रण की सम्प्राप्ति—जो मूढ़ ( मूर्ख ) रोगी अथवा वैद्य पके हुए शोथ को ( व्रण को ) आम समझ कर उसकी उपेक्षा करता है अर्थात् पूय निस्सारक क्रिया नहीं करता है अथवा जो अत्यन्त पूय वाले व्रण की उपेक्षा करता है ( शोधनादि कर्म नहीं करता है ) और जो रोगी असाधुवृत्त है ( अहित आहार-विहार करने वाला है ) उसका वह अवरुद्ध पूय पूर्वकथित स्थानों ( त्वचा, मांस, शिरा, स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोष्ठ और मर्म ) को विदीर्ण कर भीतर प्रवेश करता है ॥ १ ॥

तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ॥ २ ॥

पूय की अन्तर्गति अथवा—नाड़ी व्रण की निरुक्ति—उस ( उक्त स्थानों को विदीर्ण करने वाले पूय के अतिमात्रा में गमन करने से गति हो जाती है ( मार्ग बन जाता है ) और उसके ( गति के कारण ) वह पूय नाड़ी की तरह बहता है इसलिये इसे नाड़ी कहा जाता है ॥ २ ॥

संख्यामाह—दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च सम्मूर्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्या ।

नाड़ी व्रण की संख्या—नाड़ी व्रण वातादि दोषों के पृथक् २ कोप से ३ सन्निपात से एक और शल्य आदि के गड़ जाने के कारण ( आगन्तुज ) एक इस प्रकार पाँच भेद के होते हैं, ( सुश्रुतादि में द्वन्द्वज भी माना गया है जिससे ८ भेद का नाड़ीव्रण होता है ) । ३ ॥

वातिकमाह—तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ॥ १ ॥

वातिक नाड़ीव्रण—जिस नाड़ी व्रण में कर्कशता हो, छिद्र सूक्ष्म हो शूल सहित फेन से युक्त ( झाग युक्त ) स्राव और रात में अधिक स्राव हो उसे वात के कोप का जानना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तमाह—

पित्तात्तु तृड्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहस्सु चापि ॥ १ ॥

पैत्तिक नाड़ी व्रण—जिस नाड़ी व्रण में अधिक तृषा, ज्वर, भ्रम, दाह, पित्त युक्त अथवा पीले वर्ण का उष्ण स्राव तथा दिन में अधिक स्राव हो उसे पित्त के कोप का जानना चाहिये ॥ १

श्लेष्मजमाह—

ज्ञेया कफाद् बहु घनार्जुनपिच्छिलास्रा स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ॥ १ ॥

कफज नाडी व्रण—जिस नाडी व्रण में अत्यन्त घना (गाढ़ा), श्वेत वर्ण का तथा पिच्छिल स्राव होता है, स्तब्धता, कण्डु और पीड़ा कम होती है और रात में वृद्धि होती है उसे कफ के कोप का जानना चाहिये ॥ १ ॥

द्विनिचयजमाह—

दोषद्वयाभिहितलक्षणदर्शनेन तिस्रो गतीर्व्यतिकरप्रभवास्तु विद्यात् ॥ १ ॥

द्विदोषज नाडी व्रण—जिस नाडी व्रण में दो दोषों के मिलित लक्षण दिखाई देवें उसे द्वन्द्वज और जिसमें तीनों दोषों के मिलित लक्षण दिखाई देवें उसे त्रिदोषज जानना चाहिये ॥ १ ॥

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषा यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि।

तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपाद्घोरां गतिं स्वसुदामिव कालरात्रिम् ॥ २ ॥

सन्निपातज नाडी व्रण—जिस नाडी व्रण में दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा और मुख शोष (मुंह का सूखना) हो और वात, पित्त तथा कफ के नाडी व्रण के लक्षण जो पहले कह चुके हैं वे सब प्रकट हों उसे सन्निपातज नाडीव्रण कहते हैं। वात, पित्त और कफ के (सन्निपात के) घोर प्रकोप वाला कालरात्रि के समान यह नाडीव्रण प्राणनाशक होता है ॥ २ ॥

शल्यनिमित्तजमाह—

नष्टं कथञ्चिदनुमार्गमुदीरितेषु स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति।

सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं स्रावं करोति सहसा सरुजा च नित्यम् ॥ १ ॥

शल्यज नाडी व्रण—यदि कदाचित् त्वचा आदि पूर्वोक्त स्थानों में शल्य आदि (सूची कण्टकादि) गड़ जावे और उसमें से निकल नहीं सके तो वह थोड़े ही दिनों में या शीघ्र ही चलनशील होकर (पक कर पूर्वकथित नियमानुसार त्वचा मांसादि को विदीर्ण कर भीतर प्रवेश करते हुए गति (मार्ग) कर) नाडीरूप व्रण को उत्पन्न कर देता है जिसमें से फेनयुक्त शल्य के कारण उन्मथित रक्त संचार अधिक होने के कारण उष्ण तथा रक्त मिश्रित स्राव को सहसा निकालता है और उसमें नित्य पीड़ा होती है ॥ १ ॥

नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्येच्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ २ ॥

नाडी व्रण के साध्यासाध्यता—नाडीव्रण त्रिदोषज असाध्य होता है और शेष चार यत्न करने पर साध्य होते हैं ॥ २ ॥

## अथ नाडीव्रणचिकित्सा।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणोत्पाट्य कर्मवित्।

सर्वं व्रणक्रमं कुर्याच्छोधनारोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाडीव्रण चिकित्सा—क्रियाकुशल वैद्य नाडी व्रण की गति प्रवाह को देखकर शस्त्र से चीर कर के सब प्रकार की शोधन-रोपण आदि क्रिया जो व्रण रोग में कही गयी है वह करे ॥

कृशदुर्बलभीरूणां नाडी मर्माश्रिता तु या। क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न तु शस्त्रेण कदाचन ॥ २ ॥

कृशादि के लिये शस्त्र निषेध—कृश निर्बल तथा भीरु मनुष्यों के नाडी व्रण तथा मर्म स्थान के आश्रित व्रण हो उसे भी क्षार सूत्रादि से छेदन करना चाहिये। कभी शस्त्र से नहीं छेदना (चीरना) चाहिये ॥ २ ॥

नाडीं वातकृतां साधु पाटितां लेपयेद्भिषक्। प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥३॥

वातज नाडी व्रण चिकित्सा—वात से उत्पन्न नाडी व्रण को भली भाँति चीरफाड़ कर उसमें अपामार्ग के बीज तथा तिल को पीसकर बनाये हुए लेप को लगाना चाहिये ॥ ३ ॥

पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशाद्वयैः।

पित्तज नाड़ी व्रण चिकित्सा—पित्त से उत्पन्न नाड़ी व्रण को चीरकर उसमें तिल, मँजीठ, नागदन्ती (नागदमन) और हरदी को समान ले पीसकर लेप करना चाहिये।

श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥ ४ ॥

कफज नाड़ी व्रण चिकित्सा—कफज नाड़ी व्रण को चीरकर उसमें तिल, जेठीमधु, दन्ती मूल नीम की छाल तथा सेंधा नमक सब समान मिलाकर लेप बनाकर लेप करना चाहिये ॥ ४ ॥

शल्यजां तिलमञ्जिष्ठामध्वाज्यैर्लेपयेन्मुहुः । आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता ॥

शल्यज नाड़ी व्रण चिकित्सा—शल्यज नाड़ी व्रण को चीर कर शुद्ध कर ( शल्यादि निकाल शोधन कर ) तिल, मजीठ, मधु और घृत का लेप बनाकर बार २ लेप करना चाहिये ॥ ४½ ॥

सूत्रवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ५ ॥

सामान्य चिकित्सा—अमलतास की जड़, हल्दी और चेर का चूर्ण ( पाठान्तर में दारु के स्थान में काला है जिससे निशोथ का चूर्ण ग्रहण है ) समान लेकर घृत और मधु मिलाकर सूत में लपेट कर नाड़ी व्रण में देने से ( बत्ती देने से ) शोधन होता है और गत्यादि का नाश होता है ॥ ५ ॥

जात्यर्कशम्याककरञ्जदन्तीसिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः ।
वर्तिं कृता हन्त्यचिरेण नाड़ीं स्नुक्क्षीरपिष्टा सह सैन्धवेन ॥ ६ ॥

जात्यादि वर्ति—चमेली के पत्र, मदार की जड़ या पत्ते, अमलतास की जड़, करंज, दन्ती मूल, सेंधा नमक, सोंचर नमक, यवाक्षार इनको समान ले चूर्ण कर उसमें सेंहुड़ का दूध और सेंधा नमक मिलाकर बत्ती बनाकर नाड़ी व्रण में देने से शीघ्र नाड़ी व्रण नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसं हरेत् । तेन सिद्धं समं तैलं नाड़ीदुष्टव्रणापहम् ॥ ७ ॥

निर्गुण्डी तैल—निर्गुण्डी को मूल पत्र सहित कुचल कर रस निकाल कर उसमें समान भाग तिलका तेल मिलाकर विधिपूर्वक पका कर इस तैल के व्यवहार से नाड़ी व्रण और दुष्ट व्रण नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितः । नाड़ीदुष्टव्रणं चापि जयेदपि भगन्दरम् ॥ ८ ॥

गुग्गुलु योग—शुद्ध गुग्गुलु, आंवला, हर्रे, बहेड़ा, सोंठि, मरिच, पीपरि, सम भाग लेकर मर्दन कर घृत मिलाकर सेवन करने से नाड़ी व्रण, दुष्ट व्रण और भगन्दर को भी नष्ट करता है। ( ग्रन्थान्तर या गुग्गुलु विधि में त्रिकटु त्रिफला चूर्ण के समान गुग्गुलु देने का विधान है ) ॥ ८ ॥

## अथ सर्वव्रणरोगाणां पथ्यापथ्यम् ।

यवषष्टिकगोधूमाः पुराणाः सितशालयः । मसूराढकमुद्गानां यूषश्च मधुशर्करा ॥ १ ॥
विलेपी लाजमण्डश्च जाङ्गला मृगपक्षिणः । घृतं तैलं पटोलं च यथार्थं बालमूलकम् ॥ २ ॥
वार्ताकं कारवेल्लं च कर्कोटं तण्डुलीयकम् । पथ्यमेतन्नरैः सेव्यं यथादोषं यथाबलम् ॥
व्रणशोथे व्रणे सद्यो व्रणे नाडीव्रणेऽपि च ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—जौ, साठी के चावल, गेहूं पुराने श्वेत वर्ण के शालिधान का चावल, मसूर, अरहर और मूंग का यूष, मधुशर्करा ( मधु से बनी चीनी ) विलेपी, लाजा ( धान की खील ) का मांड़, जाङ्गल मृग तथा जाङ्गल पक्षियों का मांस, घृत, तैल, परवल, बैर या यथयोग्य, छोटी कोमल मूली, बैंगन, करेली, ककोड़ा चौराई इन सब को मनुष्य अवस्था और बल के अनुसार व्रणशोथ, व्रण, सद्योव्रण और नाड़ी व्रण में भी पथ्य में सेवन करे ॥ १-३ ॥

अम्लाम्लदीर्घं लवणं व्यवायमायासमुच्चैः परिभाषणं च ।
दिवास्वप्नं चोपभमद्यं निशायां प्रजागरं चङ्क्रमणं दिवान्तम् ॥ ४ ॥
शोकं विरुद्धाशनमम्बुपानं शाकानि च पत्रभवानि ।
आनूपकं मांसमसात्म्यमन्नं विवर्जयेत्सततमप्रमत्तः ॥ ५ ॥

अम्ल पदार्थ, नमक रस वाले पदार्थ तीक्ष्ण द्रव्य, मद्य, मैथुन परिश्रम, जोर से बोलना, स्त्रियों का देखना ( काम दृष्टि करना ), दिन में सोना, रात में जागना, अधिक भ्रमण करना, शोक करना समय विरुद्ध भोजन करना, अधिक जल पीना, पत्र शाक, पत्ते वाले शाक खाना आनूप व अतिरिक्त मांस ( आनूप देश ) जीवों का मांस खाना, असात्म्य ( अहितकर ) अन्न को भोजन करना ये सब सावधानी के साथ त्याग देवे ॥ ४-५ ॥

## अथ भगन्दरनिदानम् ।

गुदस्य श्वयथुं कृत्वा पार्श्वतः पिडिकाऽर्तिकृत् । भिन्ना भगन्दरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥

भगन्दर का सामान्य रूप—गुदा के दो अंगुल के आसपास के स्थान में पिडिका होती है, वह पीडा करती है और जब फूटती है तब भगन्दर कही जाती है। ( भग को दारण करने वाली यह पीडिका होती है इसलिये उसे 'भगन्दर' कहते हैं और यहाँ भग शब्द से गुदा बस्ति का भी ग्रहण होता है )। वह भगन्दर पाँच प्रकार का होता ॥ १ ॥

संख्यामाह—

वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थः सन्निपाततः । उन्मार्गगः पञ्चमः स्यादेवं पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥

भगन्दर की संख्या—वात, पित्त और कफ के पृथक् २ कोप से तीन और चौथा सन्निपात से तथा पाँचवा उन्मार्गग अर्थात् शस्त्रादि के लगने के कारण, इस प्रकार पाँच भेद का भगन्दर होता है ॥ २ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजादयः । भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यन्ति भगन्दरे ॥ ३ ॥

भगन्दर का पूर्वरूप—जब भगन्दर होने को होता है तब प्रथम कटि के कपाल में अर्थात् कटिदेश में जो कपालास्थि है उसमें सुई चुभाने के समान पीडा गुदा में दाह, कण्डू और पीडा आदि होती हैं ॥ ३ ॥

वातिकमाह—कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिटिकां करोति सा ।
उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजा च भिन्नाऽरुणफेनवाहिनी ॥ ४ ॥
तत्राऽऽगमो मूत्रपुरीषरेतसां व्रणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ।

वातिक भगन्दर—कषाय रस वाले और रूक्ष जो अत्यन्त वायु को कुपित करने वाले द्रव्य हैं उनके अतिसेवन से कुपित हुआ वायु गुदा स्थान में पिटिका उत्पन्न कर देता है उसकी यदि उपेक्षा की जावे ( सेकादि क्रिया कर दबाया नहीं जावे ) तो वह पाक जाती है, अधिक पीडा करती है तथा जब वह फूटती है तब उसमें से रक्तवर्ण का फेन बहता है और मूत्र, पुरीष और शुक्र निकलने लगता है तथा अनेक व्रण ( अनेक छिद्रोंवाले ) हो जाते हैं। इस लक्षण वाले वातिक भगन्दर को 'शतपोनक' कहते हैं ॥ ४-४½ ॥

पित्तजमाह—प्रकोपणैः पित्तमतिप्रकोपितं करोति रक्तां पिटिकां गुदाश्रिताम् ।
तदाशुपाकां हिमपूयवाहिनीं भगन्दरं चोष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ ५ ॥

पैत्तिक भगन्दर—पित्त प्रकोपक आहार विहार से अतिकुपित हुआ पित्त गुदा में रक्तवर्ण की और पीडा देने वाली पिडिका उत्पन्न करता है, वह पिडिका शीघ्र पकने वाली होती है और जब फूटती है तब उसमें से उष्ण पूय बहता है। इस लक्षण वाले पैत्तिक भगन्दर को 'उष्ट्रशिरोधर' या 'उष्ट्रग्रीव' कहते हैं। ( इसकी पिडिका ऊँट की ग्रीवा के आकार की होती है इसीसे उष्ट्रग्रीव कहते हैं ) ॥ ५ ॥

श्लेष्मजमाह—

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः । श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगन्दरः ॥ ६ ॥

कफज भगन्दर—अपने प्रकोपक कारणों से कुपित हुआ कफ गुदा में पिटिका उत्पन्न करता है वह पिडिका अधिक कण्डू तथा गाढा स्राव करने वाली, कठिन, मन्द ( अल्प ) पीडा करने वाली श्वेतवर्ण की होती है। इस लक्षण वाले कफज भगन्दर को 'परिस्रावी' भगन्दर कहते हैं ॥

सन्निपातजमाह—

बहुवर्णरुजास्रावाः पिटिका गोस्तनोपमा । शम्बूकावर्तवन्नाडी शम्बूकावर्तको मतः ॥ ७ ॥

सन्निपातज भगन्दर—जिस भगन्दर में अनेक दोषों से अनेक प्रकार के वर्ण पीडा तथा स्राव हो तथा पिडिका गाय के स्तन या द्राक्षा के समान हो और उसका छिद्र ( मुख ) नाडी रूप शम्बूक के मुख के समान आवर्तित (घुमा हुआ) हो उस तीनों दोषों वाले भगन्दर को 'शम्बूकावर्त' कहते हैं ॥ ७ ॥

उन्मार्गगमाह—

क्षतागति पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्सा कृमिभिर्विदीर्यते ।
प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गि भगन्दरं वदेत् ॥ ८ ॥

क्षतज भगन्दर—शल्य आदि से क्षत हो जाने के कारण जब गुदप्रदेश में पिडिका होकर नाड़ी की गति से बढ़ जाती है और यदि उसकी उपेक्षा की जाती है तो उसमें कृमि उत्पन्न होकर उस स्थान को ( फाटकर ) अनेक प्रकार के मार्ग ( अनेक छिद्रों वाला ) बना देते हैं उस को 'उन्मार्गि भगन्दर' कहते हैं ( कृमियों के बनाये हुए मार्ग से वात-मूत्र-पुरीषादि भी निकला करते हैं इसी कारण इसको उन्मार्गि भगन्दर कहते हैं ) ॥ ८ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

घोराः साधयितुं दुःखाः सर्व एव भगन्दराः । तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥९॥

भगन्दर की असाध्यता—सब प्रकार के भगन्दर कठिन और दुःसाध्य होते हैं, परन्तु उसमें भी विशेष करके त्रिदोषज और क्षतज तो असाध्य ही हैं ॥ ९ ॥

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च । भगन्दरात् स्रवन्त्यस्तु नाशयन्ति तमातुरम् ॥ १० ॥

जिस भगन्दर में से वात, मूत्र, पुरीष, क्रिमी और शुक्र आदि का स्राव होता हो वह भगन्दर रोगी को मार देता है ॥ १० ॥

## अथ भगन्दरचिकित्सा ।

गुदपिटिकामामादौ कुर्यात्क्षायसेचनं मतिमान् ।
जलौकसाभिरपि सा पाकं न प्रयाति यथा ॥ १ ॥

भगन्दर-चिकित्सा—गुदा में जब पीड़िका होवे तब प्रथम बुद्धिमान् वैद्य रक्त मोक्षण करा देवे और जल में बैठना आदि यत्न करे जिससे पाक आदि नहीं होने पावे ॥ १ ॥

अपानमार्गपिटिकां दहेत्स्वर्णशलाकया । अग्निप्रदग्धां पश्चात्कुर्यादग्निव्रणक्रियाम् ॥ २ ॥

पिडिकादाह विधि—गुदा में होने वाली पीड़िका को अग्नि में तपा कर सोने की सलाई से दाग देवे पश्चात् अग्निव्रण की चिकित्सा करे ॥ २ ॥

पिटिकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् । कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ३ ॥

अपक्व पिडिका-चिकित्सा—गुदा की पिडिका जब तक अपक्व हो तभी तक रोगी को अपतर्पण ( लङ्घन ) तथा विरेचन करा कर अन्त में अन्य चिकित्सा करनी चाहिये । आगे भिन्न ( फूटी हुई ) की चिकित्सा कहते हैं ॥ ३ ॥

पक्वानां पाटनक्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् । विदध्याद् व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

भिन्न या पक्व की चिकित्सा—गुदा की पीड़िका जब पक आवे तब उसका पाटन ( चीरना ) करना, क्षार वा अग्नि से दाह करना आदि कर्म क्रम से व्रण के समान दोषानुसार विधि से करनी चाहिये ॥ ४ ॥

वटपत्रादिलेप —

वटपत्रेष्टिकाशुण्ठीगुडूचीसपुनर्नवाः । सुपिष्टाः पिडिकावस्थे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ १ ॥

वटपत्रादि लेप—बड़ के पत्ते, ईंट के चूर्ण, सोंठ, गुर्च और पुनर्नवा समभाग लेकर सबको भाँति पीस कर गुदा की पिडिका के मुख पर लेप करे ऐसा भगन्दर में उत्तम है ॥ १ ॥

खदिरत्रिफलाक्वाथो महिषीघृतसंयुतः । विडङ्गचूर्णयुक्तश्च भगन्दरविनाशनः ॥ २ ॥

खदिरादि क्वाथ—खैर, त्रिफला इनका क्वाथ बनाके उसमें भैंसा का घृत और वायविडङ्ग के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से भगन्दर का नाश होता है ॥ २ ॥

त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थिप्रलेपनम् । भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ ३ ॥

बिडालास्थि लेप—त्रिफला के विधिपूर्वक बने हुए स्वरस में बिल्ली की हड्डी को घिस कर लेप करने से भगन्दर शीघ्र नष्ट होता है और दुष्टव्रण भी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

कुम्भोऽग्निमूलता तर्कैः ईङ्गुदी [illegible] । [illegible] भगन्दरं [illegible] तैलमथ वा [illegible]

[illegible] लेप—आक की जड़ और इंगुदी ( हींगोट ) दोनों को [illegible] के साथ पीस कर [illegible] के रस में मिला कर लेप करने से अथवा मनुष्य की [illegible] का तैल ( [illegible] ) लगाने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कुष्ठं त्रिवृत्तिलाः दन्ती मागधी सैन्धवं मधु । रजनी त्रिफलातुत्थं हितं व्रणविशोधनम्

कुष्ठादि लेप—कूट, निशोथ, तिल, दन्तीमूल, पीपरि, सेंधानमक, मधु, हरदी, आँवरा, हर्रा, बहेरा और तूतिया सममाग ले पीसकर लगाने से भग का रोपण होता है ॥ ५ ॥

तिलत्रिवृन्नागदन्तीमञ्जिष्ठाद्यैः ससैन्धवैः । सक्षौद्रैश्च प्रलेपोऽयं भगन्दरकुलान्तकृत् ॥ ६ ॥

तिलादि लेप—तिल, निशोथ, नागदन्ती ( नागदवन ), मजीठ, सेंधानमक समान ले पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से भगन्दर को समूल नष्ट करता है ॥ ६ ॥

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः । त्रिवृत्तेजोवती दन्ती कल्को नाडीव्रणापहः ॥ ७ ॥

रसाञ्जनादि कल्क—रसवत, हरदी, दारुहरदी, मजीठ, नीम की कोमल पत्तियां, निशोथ, तेजबल की छाल और दन्तीमूल सम भाग लेकर कल्क बनाकर लेप करने से नाड़ी व्रण नष्ट होते हैं ( भगन्दर भी इससे नष्ट होते हैं ) ॥ ७ ॥

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशावचाकुष्ठमगारधूमः ।
भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ ८ ॥

तिलाभयादि लेप—तिल, हर्रा, लोध, नीम की पत्तियां, हरदी, बच, कूठ और गृहधूम ( झोला आदि जो घरों में धूम से होते हैं ) सबको सममाग लेकर पीस कर लेप करने से भगन्दर नाड़ीव्रण, उपदंश, दुष्टव्रण इन सब में शोधन और रोपण करता है ॥ ८ ॥

नवकार्षिको गुग्गुलु—त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैककर्षयोजिता गुटिका ।
कुष्ठभगन्दरनाडीदुष्टव्रणशोधिनी कथिता ॥ १ ॥

नवकार्षिक गुग्गुलु—त्रिफला समान मिलित का चूर्ण तीन कर्ष, शुद्ध गुग्गुलु ५ कर्ष और पीपरि का चूर्ण एक कर्ष ले मर्दन कर वटी बनाकर सेवन करने से कुष्ठ, भगन्दर, नाड़ी व्रण, दुष्ट व्रण इन सब का शोधन करता है ॥

जम्बूकप्रकार—जम्बूकस्याऽऽमिषं भुक्त्वा प्रकारैर्व्यञ्जनादिभिः ।
अजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते तु भगन्दरात् ॥ १ ॥

जम्बूक प्रकार—सियार का मांस व्यञ्जन आदि के प्रकार से या किसी प्रकार से भोजन कर अजीर्ण नहीं होने देवे अर्थात् इतना ही भोजन करे जितना भली भाँति पच जावे तो ऐसा एक मास तक करने से भगन्दर से मुक्ति हो जाती है ( भगन्दर नष्ट हो जाता है ) ॥ १ ॥

सप्तविंशतिको गुग्गुलु—

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गामृतचित्रकम् । चव्यैले पिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ १ ॥
तुम्बरं पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम् । बिडं सौवर्चलं क्षारं सैन्धवं गजपिप्पली ॥ २ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्विगुणगुग्गुलुः । कोलप्रमाणगुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ ३ ॥
कासं श्वासं तथा शोफमर्शांसि च भगन्दरम् । हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिवस्तिगुदे रुजम् ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन् । चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ ५ ॥
आनाहं च तथोन्मादं सकुष्ठान्युदराणि च । नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहं श्लीपदं तथा ॥
सप्तविंशतिको ह्येष सर्वरोगनिषूदनः ॥ ६ ॥

सप्तविंशति गुग्गुलु—सोंठि, मरिच, पीपरि, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, नागरमोथा, वायभिरंग गुरुचि, चित्र की जड़, चव्य, इलायची पिपरामूल, हाऊबेर देवदारु, तुम्बरू ( तेज बल का फल ), पुष्कर मूल, चव्य, माहरि, हरदी, दारुहरदी, विड्नमक, सौवर्चल नमक, यवाखार, सेंधा नमक, गज पीपरि, समान लेकर चूर्ण जितना होवे उसके दुगुना शुद्ध गुग्गुलु मिला मर्दन कर एक २ कोल के ( ½ कर्ष ) प्रमाण की वटी बनाकर मधु के अनुपान से भक्षण करने से-कास श्वास, शोथ, अर्श, भगन्दर, हृदय का शूल, पार्श्वशूल, कुक्षि-वस्ति और गुदा का शूल, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, अन्त्रवृद्धि, कृमि आदि रोग नष्ट होवे हैं और पुराने ज्वर से पीड़ित और क्षय रोग से पीड़ित मनुष्यों के लिये लाभदायक होता है तथा आनाह, उन्माद कुष्ठ रोग उदर रोग, नाड़ी व्रण दुष्ट व्रण, सब प्रकार के प्रमेह और श्लीपद रोग को एवं प्रायः सभी रोगों को यह सप्तविंशति गुग्गुलु नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

करवीराद्यं तैलम्—

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः । मातुलुङ्गार्कपयसा पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ १ ॥

करवीरादि तैल—कनेर की जड़, हल्दी, दन्ती, कलिहारी, सेंधा नमक, चित्र की जड़ बिजौरा नीबू, मदार का दूध इनको एक २ भाग ले कल्क कर चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल के चौगुना जल मिलाकर तेल पका कर लगाने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ १ ॥

विस्यन्दनं तैलम्—

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ । सुधां वचां लाङ्गलिकां हरितालं सुवर्चिकाम् ॥ १ ॥
ज्योतिष्मतीं च संयोज्य तैलं धीरो विपाचयेत् । एतद्विस्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ॥
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ २ ॥

विस्यन्दन तैल—चित्रक की जड़, मदार की जड़, निशोथ, पुरइन पाढ़ी, कठ गूलर, कनेर की जड़, सेंहुड़, वच, कलिहारी, हरताल, सज्जी और माल्कांगनी समभाग ले कल्क करे, पूर्वोक्त रीति से चौगुना तिल का तेल और जल मिलाकर बुद्धिमान् तेल सिद्ध कर लेवे, यह 'विस्यन्दन' नाम का तेल भगन्दर में लगाना चाहिये और इससे शोधन, रोपण और सवर्णता (त्वचा का सामान्य रूप) होती है ॥ १-२ ॥

निशादितैलम्—

निशार्कक्षीरसिन्ध्वग्निपुराश्वाह्वयवत्सकैः । सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ १ ॥

निशादि तैल—हल्दी, मदार का दूध, सेंधानमक, चित्र की जड़, गुग्गुल, कलिहारी और कुटज समभाग ले कल्क पूर्ववत् तिल का तेल और जल मिलाकर तेल सिद्ध कर अभ्यञ्जन (मर्दन करने से भगन्दर नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यम्—

आमे संशोधनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् । पक्वे पुनः शस्त्रविधिस्तथा क्षाराग्निकर्म च ॥ १ ॥

भगन्दर की पिड़िका जब तक आम (अपक्व) रहे तब तक संशोधन कर्म विरेचनादि, लेप, लङ्घन (उपवास) तथा रक्तमोक्षण कराना चाहिये और पक जाने पर शस्त्रविधि अर्थात् चीर फार शस्त्र से तथा क्षार से, (सलाकादि तपाकर) जलाना चाहिये, जैसा कि पहले कहा जा चुका है ॥ १ ॥

सर्वत्र शालयो मुद्गा विलेपी जाङ्गलो रसः । पटोलं शिग्रुवार्ताकं मधुरं बालमूलकम् ॥ २ ॥
तिलसर्षपयोस्तैलं तिक्तवर्गो घृतं मधु । एतत्पथ्यं नरैः सेव्यं यथादोषं भगन्दरे ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—भगन्दर की सब अवस्थाओं में शालिधान का चावल, मूंग विलेपी जाङ्गल जीवों का मांसरस, परवर, सहिजन, बैंगन का समभाग मधुर, कोमलमूली, तिल और सरसों के तेल, तिक्त वर्ग की प्रायः सभी ओषधियों का द्रव्य, घृत और मधु ये सब दोषानुसार भगन्दर रोग में मनुष्यों को सेवन करना चाहिये ॥ २-३ ॥

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च । संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ ४ ॥

व्यायाम कर्म, मैथुन, युद्ध, पृष्ठयान (घोड़े आदि के पीठ की सवारी), गुरु द्रव्य, इन सबको व्रण के रोपण हो जाने के एक वर्ष बाद तक त्याग देना चाहिये जब तक व्रण भली-भाँति अच्छा न हो, भगन्दर के व्रण के भर जाने के पश्चात् वर्षों तक इन द्रव्यों का व्यवहार नहीं करना चाहिये ॥ ४ ॥

## अथोपदंशनिदानम् ।

तस्य हेतुमाह—हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनादत्युपसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्ने पञ्चोपदंशा विविधोपचारैः ॥ १ ॥

उपदंश का हेतु—हाथ के आघात से (हाथ से किसी प्रकार का आघात हो जाने अथवा हस्त मैथुन आदि में लिङ्ग पर आघात होने से), नख, दांत आदि के लगने से, लिङ्ग को नहीं धोने से अत्यन्त मैथुन करने से और योनिदोष से (अपवित्र, रजस्वला योनि के साथ एवं अन्योन्य में पुरुष का समागम आदि के साथ मैथुन करने से) तथा और अनेक प्रकार के उपचारों (क्षार, उष्ण आदि जल से लिङ्ग को धोने से या [illegible] आदि से मैथुन) के करने से लिङ्ग में पांच प्रकार के अर्थात् वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और रक्तज उपदंश होते हैं ॥ १ ॥

[illegible]—

[illegible] ।
[illegible] ॥ २ ॥

सकण्डुरैः शोफयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्घनैः स्रावयुतैः कफेन।

वातज उपदंश—जिस उपदंश में सुई गड़ाने की भाँति और फाड़ने के समान पीड़ा हो लिङ्ग में स्फुरण (फड़कन) हो और जो स्फोट (फोड़े) हों उनका वर्ण कृष्ण हो उसे वातज उपदंश जानना चाहिये, पित्तज उपदंश जिस उपदंश में स्फोटों का वर्ण पीला हो, बहुत क्लेद वाले हों (स्राव अधिक हो) और दाह हो उसे पित्तज उपदंश जानना चाहिये, रक्तज उपदंश जिस उपदंश में फोटों का वर्ण मांस के सदृश लाल हो उसे रक्तज उपदंश जानना चाहिये (ग्रन्थान्तर में फोड़ों का वर्ण कृष्ण और रक्तस्रावी तथा पित्तज के अन्य लक्षणों के समान लक्षण वाला रक्तज उपदंश का लक्षण बताया गया है)। कफज उपदंश—जिस उपदंश में फोड़ों में कण्डु अधिक हो, शोथ हो, फोड़े बड़े हों, वर्ण उनका श्वेत हो और स्राव होता हो उसे कफज उपदंश जानना चाहिये॥ २॥

संनिपातजमाह—

नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम्॥ ३॥

सान्निपातिक उपदंश—जिस उपदंश में से अनेक प्रकार का स्राव होता हो (तीनों दोषों के लक्षणों से मिलित) और अनेक प्रकार की पीड़ा होती हो उसे त्रिदोषज उपदंश जानना चाहिये, यह असाध्य है॥ ३॥

अथासाध्यत्वमाह—

*विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेच्च।*

सजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषये प्रसक्तः॥ ४॥

कालेन शोफकृमिदाहपाकैः प्रक्षीणशिश्नो म्रियते स तेन॥ ५॥

असाध्य उपदंश लक्षण—जिस उपदंश में लिङ्ग का मांस क्षीण-शीर्ण (गल गया, सड़ गया) हो अथवा कृमि उत्पन्न होकर खा गये हों और जिसमें शिश्न गल कर नष्ट होकर केवल अण्डकोश ही शेष हो उसे त्याग देना चाहिये अर्थात् असाध्य है॥

उपेक्षा का फल—जो विषयी मनुष्य उत्पन्न होते ही मूर्खतावश इसकी क्रिया (चिकित्सा) नहीं करता है, कुछ समय के पश्चात् शोथ, कृमि, दाह, पाक आदि से युक्त होकर उसका शिश्न सड़ जाता है और वह मर जाता है॥ ४-५॥

एकस्थानत्वेनात्र लिङ्गार्शमाह—

अङ्कुरैरिव सञ्जातैरुपर्युपरि संस्थितैः। क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा॥ १॥

अब स्थान एक होने के कारण अर्थात् जिस स्थान (लिङ्ग) पर उपदंश होता है उसी स्थान पर होने के कारण लिङ्गार्श या लिङ्गवर्ति का लक्षण भी कहते हैं।

लिङ्गार्श के लक्षण—शिश्न के आगे (मुँहपर) अङ्कुर के समान (धान्य के अङ्कुर के समान) मांस के अङ्कुर कुछ बड़े एक दूसरे के ऊपर चढ़े हुए कुक्कुट के शिखा के समान क्रम से उत्पन्न हो जाते हैं॥ १॥

कोशस्याभ्यन्तरे सन्धौ सर्वसन्धिगताऽपि वा। सवेदना पिच्छिला च दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा॥

लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे।

यह वर्ति कोष में, मेढ़ के चर्म की सन्धि में अथवा सभी सन्धियों में त्रिदोष के कोप से हो जाती है उसमें पीड़ा और पिच्छिलता होती है तथा यह दुश्चिकित्स्या होती है (त्रिदोषज होने के कारण कष्ट साध्य होती है) इसको 'लिङ्गवर्ति' कहते हैं, कोई २ आचार्य इसे 'लिङ्गार्श' कहते हैं॥

मेढ्रसन्धौ व्रणाः केचित्केचित्सर्वाश्रयास्तथा॥ ३॥

कुलत्थाकृतयः केचित्केचित्पद्मदलोपमाः। रुजानाहार्तिबहुलास्तृष्णाक्लेदसमन्विताः॥

स्त्रीणां पुंसां च जायन्ते उपदंशाश्च दारुणाः॥ ४॥

स्त्रियों के उपदंश—मेढ़ की सन्धि में कुछ व्रण हो जाते हैं, कुछ व्रण सम्पूर्ण मेढ़ में हो जाते हैं। उनमें से कितने कमल के कुलथी की आकृति के और कितने कमल के पत्र के आकार के होते हैं, उन व्रणों से (व्रणों के कारण) पीड़ा होती है तथा बहुत आनाह, तृषा और क्लेद अर्थात् पूयादि का स्राव होता रहता है इस प्रकार के कठिन उपदंश स्त्रियों और पुरुषों को होते हैं॥

## अथोपदंशचिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नस्य मेढ्रस्य चर्ममध्ये शिराव्यधः ।
जलौकापातनं वा स्यादूर्ध्वाधः शोधनं तथा ॥ १ ॥

उपदंश चिकित्सा—प्रथम रोगी को स्नेहन देकर स्वेदन कर्म करे और शिश्न के मध्य में सिरा का वेध करे अथवा जोंक लगाकर रक्तमोक्षण करावे तथा ऊर्ध्व और अधःशोधन को करे ( वमन विरेचन देवे ) ॥ १ ॥

सद्योऽपहृतदोषस्य रुक्शोफावुपशाम्यतः । पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ २ ॥

दोषों को शीघ्र निकाल देने से ( वमन-विरेचन और रक्त मोक्षण आदि करा कर दोष निकाल देने से ) पीड़ा शोथ आदि शान्त हो जाते हैं। इस रोग में यत्न ऐसा करना चाहिये कि पाक नहीं हो क्योंकि पाक होने पर शिश्न नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

क्वाथ—पटोलनिम्बत्रिफलाकिराततैः क्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ।
सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥ १ ॥

पटोलादि क्वाथ—परवर के हरे पात, नीम की छाल, आँवरा, हर्रा, बहेड़ा और चिरैता सम भाग से क्वाथ बनाकर पान करना चाहिये अथवा खैर और विजसार की छाल का क्वाथ बना कर उसमें शुद्ध गुग्गुल अथवा त्रिफला के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करना चाहिये। इस प्रयोग से सब प्रकार के उपदंश नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः । सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पेयः पित्तोपदंशहा ॥ २ ॥

गैरिकादि क्वाथ ( पित्तज उपदंश में )—गेरू, रसवत या सुरमा, मजीठ, मुलहठी, खस, पद्माख, लाल चन्दन और नील कमल सममाग से क्वाथ कर घृतादि के प्रक्षेप से स्निग्ध करके पान करने से पित्तज उपदंश नष्ट होता है ॥ २ ॥

## अथ लेपाः ।

सपौण्डरीकैर्मधुकरास्नाकुष्ठपुनर्नवैः । सरलागुरुभद्राख्यैर्लेपो वातोपदंशहा ॥ १ ॥

पुण्डरीकादि लेप—पुण्डरिया काठ, मुलहठी, रास्ना, कूठ, पुनर्नवा, धूप सरल, अगर, नागरमोथा अथवा देवदारु समभाग से जल के साथ पीस कर लेप बना कर लेप करने से वातज उपदंश नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

*बब्बूलदलचूर्णं वा दाडिमत्वग्भवोऽथवा । गुण्ठनं शिश्नदेशस्य भस्म पूगफलेन वा ॥ २ ॥*

बब्बूलादि योग—बबूर के पत्तों का चूर्ण अथवा अनार की छाल का चूर्ण लिङ्ग के व्रणों पर छिड़कने या लगाने से लाभ होता है अथवा सुपारी को जल के साथ घिस कर लेप करने से उपदंश नष्ट होता है ॥ २ ॥

वटप्ररोहार्जुनजम्बुपथ्या लोध्रं हरिद्रासहितं प्रलेपः ।
सर्वोपदंशेष्वपरोहणार्थं चूर्णं च तत्स्याद्विमलाञ्जनं च ॥ ३ ॥

वटादि योग—वट के अङ्कुर, अर्जुन की छाल, जामुन की छाल, हर्रा, लोध और हल्दी सममाग से जल के साथ पीस कर लेप करने से उपदंश के व्रण नष्ट होते हैं और सब प्रकार के उपदंश के व्रणों के रोपण के लिये इन्हीं उपर्युक्त द्रव्यों के चूर्ण और सुरमा या रसवत का चूर्ण मिलाकर छिड़कना चाहिये, इससे व्रण भर जाते हैं ॥ ३ ॥

दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मषीं मधुसंयुताम् । उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ४ ॥

त्रिफलादि लेप—कड़ाही में रखकर त्रिफला को जला देवे इस राख में मधु मिला कर उपदंश पर लेप करने से शीघ्र उपदंश के व्रण का रोपण होता है ॥ ४ ॥

त्वचो दार्व्या हरिद्रायाः यष्टिमधु रसाञ्जनम् । [illegible] पीत्वा चूर्णं तथा [illegible]
[illegible] । [illegible] लेपः [illegible] व्रणरोपणं च ॥ ५ ॥

दार्व्यादि योग—दारुहल्दी की छाल, मुलहठी, रसवत, [illegible] का रस, तिल का तैल, मधु, लोध और गेरू समभाग से [illegible] पीसकर उपदंश पर लेप करने से उपदंश व्रण शमन होते हैं अर्थात् शोथ और व्रण भी उपदंश के सब शमन होते हैं ॥ ५ ॥

नीलोत्पलानि कुमुदं पद्मसौगन्धिकानि च। उपदंशेषु चूर्णानि प्रदेहोऽत्र प्रशस्यते ॥ ७ ॥

नीलोत्पलादि योग—नील कमल, कुमुदनी और लाल कमल समभाग ले चूर्ण कर उपदंश पर लगाने वा छिड़कने से लाभ होता है ॥ ७ ॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया च समन्वितम्। सक्षौद्र लेपनं योज्यं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥८॥

रसाञ्जनादि योग—रसवत, शिरीष की छाल, हर्रा समभाग ले मधु में मिला लेप बनाकर लेप करने से उपदंश व्रण का शीघ्र रोपण होता है ॥ ८ ॥

गोपीचन्दनतुत्थे च समभागेन मर्दयेत्। कज्जली जलसंयुक्ता व्रणानां लेपने हिता ॥ ९ ॥

गोपीचन्दनादि लेप—गोपीचन्दन और तूतिया समान ले मर्दन कर कज्जली करे और उसमें जल मिलाकर लेप करने से उपदंश के व्रण में लाभ होता है ॥ ९ ॥

मोचापूगविभूतिं च कोलत्वक्शङ्खजीरकम्। लिप्तोपदंशे लेपोऽयं पयसा पानमेव च ॥
माद्रायदुष्णतां सूर्णं शुष्कान्कुर्याद्व्रणानपि ॥ १० ॥

मोचादि योग—मोचा (केले की सूखी पत्तियां वा तना) और सुपारी को जला कर उसका भस्म, बेर की छाल शङ्ख और जीरा का चूर्ण सब एक २ भाग लेकर जल के साथ लेप बना कर लेप करने से और दूध के अनुपान से पान करने से उपदंश व्रण की उष्णता को शीघ्र नष्ट करता है और आर्द्र व्रणों (पूयमुक्त) को शीघ्र सुखा कर नष्ट कर देता है ॥ १० ॥

पारदादिलेप—पारदं गन्धकं तालं दरदं च मनःशिलाम्।
पृथक्कर्षं द्विकर्षं च मुद्दारं शङ्खजीरकम् ॥ १ ॥

विधाय कज्जलीं श्लक्ष्णां मर्दयेत्सुरसारसैः। छायाशुष्कां ततः कृत्वा पुनरुन्मत्तजद्रवैः ॥२॥

विमर्दाथ वटी कार्या उपदंशे प्रयोजयेत्। गोमूत्रेण प्रलेपोऽयं व्रणानां रोपणे हितः ॥ ३ ॥

पारदादि लेप—पारद, गन्धक, हरताल सिंगरिफ और मैनसिल एक २ कर्ष मुर्दासंग, शङ्ख और जीरा दो २ कर्ष लेकर पहले पारद-गन्धक की कज्जली कर सबको एकत्र मिलाकर तुलसी के रस में मर्दन कर छाया में सुखा लेवे। पुनः धतूर के रस के साथ मर्दन कर वटी बना लेवे। इस वटी को गोमूत्र के साथ मिलाकर लेप करने से उपदंश के व्रण के रोपण करने में हितकर है ॥

स्वरसः—आम्रत्वचं विनिष्पीड्य विगृह्य स्वरसं पलम्।
चतुष्पलं त्वजाक्षीरं संयुक्तं प्रपिबेत्प्रगे ॥ १ ॥

एवं मुनिदिनं कुर्यादुपदंशे व्रणे हितम्। यथा क्षीरं तथा जीर्णं गोधूमं पथ्यमाचरेत् ॥ २ ॥

आम्रत्वग् रस योग—आम के वृक्ष की छाल को कूट-पीस रस निकाल कर एक पल और बकरी का दूध ४ पल ले मिलाकर प्रातः पान करे, इस प्रकार सात दिन तक करने से उपदंश के व्रण में लाभ होता है। दूध और पुराने गेहूं का पथ्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

जातीप्रवालस्वरसं पलार्धं धेनोघृतं सर्जरसेन युक्तम्।
पिबेत्प्रगे पञ्चविधोपदंशे क्षाराहते गोधूमसर्पिपथ्यम् ॥ ३ ॥

जातीप्रवाल स्वरस—चमेली के कोमल पत्तों का आधा पल स्वरस में गौ का घृत और राल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर प्रातः पान करने से पांचों प्रकार के उपदंश शमन होते हैं। क्षार अथवा क्षारयुक्त द्रव्य को छोड़कर गेहूं और घृत का पथ्य करना चाहिये (इसमें नमक भी सम्मिलित है) ॥

प्रक्षालनम्—निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसाद्भिः।
प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्याच्चूर्णं च पित्तास्रभवोपदंशे ॥ १ ॥

निम्बार्जुनादि प्रक्षालन योग—नीम, अर्जुन पीपल, कदम्ब शालवृक्ष, जामुन, वटगूलर और बेत इनके छालों को समभाग ले क्वाथ कर लिङ्ग धोवे, इनको पीसकर लेप करे, इनके कल्क के द्वारा घृत सिद्ध कर सेवन करे और इनके चूर्ण को व्रण पर लगावे (छिड़के) तो इससे पित्त-रक्त से उत्पन्न उपदंश व्रण में लाभ होता है ॥ १ ॥

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा। व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ २ ॥

त्रिफलादि प्रक्षालन—त्रिफला के क्वाथ से अथवा भांगरे के स्वरस से उपदंश के व्रण को धोना चाहिये। इससे उपदंश शमन होता है ॥ २ ॥

व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ॥ ३ ॥

अश्वत्थादि योग—पीपल, गूलर, पाकर, बड़ और बेत के छाल के क्वाथ से व्रण को धोने से उपदंश का शोथ ( उपदंश ) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

जयाजात्यश्वमाराकेशम्याकानां दलैः पृथक्। कृत्वा प्रक्षालने कार्यं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

जयादि योग—जयन्ति,(१) चमेली कनेर मदार और अमलतास इनमें से किसी एक के पत्ते को लेकर क्वाथ कर मेढ्र पाक को धोने में प्रयुक्त करना चाहिये अर्थात् इससे प्रक्षालन करने से उपदंश नष्ट होता है ॥ ४ ॥

उपदंशे लिङ्गलेपः—

रसकर्पूरगद्याणं मर्दयेत्खदिराम्बुना। प्रक्षालयेद्वारिणा च शुष्के लेपस्तु वारिणा ॥ १ ॥

लिङ्गलेपो व्रणं हन्ति त्रिदिनाद्धात्र संशयः ॥ २ ॥

उपदंश में लिङ्गलेप—रस कपूर एक गद्याण ( ६ मासा वा ३ कर्ष ) लेकर खैर के क्वाथ के साथ मर्दन कर जल से धोवे और सुखा देवे। इस सुखे हुए रसकपूर को जल के साथ लेप बना कर लेप करने से लिङ्ग के व्रण ( उपदंश व्रण ) तीन दिन में निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

व्रणोपदंशे पूगादिलेपः—

पूगं सुदग्धमेकं तु रसगन्धकहिङ्गुलम्। खदिरं तुत्थकं चैव मर्दयेन्निम्बुनीरकैः ॥ १ ॥

समभागानि सर्वाणि गुटिकां कारयेद्बुधः। उपदंशे घृतंर्लेपस्त्रिदिनाद्व्रणरोपणः ॥ २ ॥

उपदंश व्रण में पूगादि लेप—एक सुपारी को आग में भली भाँति जला कर पीस ले और इसी के समान भाग पारद, गन्धक, हिंगुल, खैर और तूतिया को ( बराबर २ ) लेकर प्रथम पारद-गन्धक की घोट कर ( कज्जली कर ) फिर अन्य औषधियों को मिलाकर नीबू के रस में घोट कर वटी बना लेवे। इस वटी को घृत के साथ मिलाकर लेप करने से तीन दिन में उपदंश के व्रण का रोपण होता है ॥ १-२ ॥

उपदंशस्फोटे लेप —

चासीपत्रविष्ठापि रसकं देवपुष्पकम्। समभागानि सर्वाणि नवनीतेन मर्दयेत् ॥

स्फोटानामुपदंशानां व्रणशोधनरोपणम् ॥ १ ॥

उपदंश के फफोलों ( फफोलों ) पर लेप—आदरा, कपर्दिका खपरिया लिप और लवंग इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर मक्खन के साथ मर्दन कर लेप करने से उपदंश के फोड़ों और व्रणों का शोधन और रोपण होता है ॥ १ ॥

भूनिम्बादि—भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिरासनानाम्।

क्वाथैश्च कल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १ ॥

भूनिम्बादि घृत—चिरैता, नीम की छाल, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, परवल का पञ्चाङ्ग, करञ्ज, चमेली के पत्ते खैर और विजयसार इनके क्वाथ और कल्क से घृत सिद्ध कर ( इसकी पाक भाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर लिया। प्रस्तुत क्वाथ को उसके चतुर्थांश मूर्च्छित गोघृत और घृत के चतुर्थांश इन्हीं द्रव्यों का समान मिलित कल्क मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर ) सेवन करने से ( खाने से और लगाने से ) सब प्रकार के उपदंश शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम्।

सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं सरुजं सपूयम् ॥ २ ॥

करञ्जादि घृत—करञ्ज, नीम की छाल, अर्जुन की छाल, शालवृक्ष की छाल, जामुन की छाल और बड़ की छाल इनके कल्क और क्वाथ से मूर्च्छित घृत सिद्ध कर लेकर खाने से यह घृत उपदंश के दोष तथा दाह, पाक, पीड़ा और पूययुक्त ( पीप वाले ) उपदंश को नष्ट करता है ॥

आगारधूमादितैलम्—

आगारधूमो रजनी सुराह्वं कुष्ठं च तैलेऽपि। भावयित्वा पचेत्तैलं कण्डूमाक्षपकारकम् ॥

शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ १ ॥

( १ ) [illegible] किया है।

अगारधूमादि तैल—गृहधूम दश भाग, हरदी २ भाग और शुराकिट तीन भाग हैं कल्क कर तेल में देकर तेल सिद्ध कर (कल्क से चतुर्गुण मूर्च्छित तिल का तेल और तैल से चतुर्गुण पानार्थ जल देकर सिद्ध कर) लगाने से कण्डू, शोथ और पीड़ा नष्ट होती है, व्रण का शोधन और रोपण होता है और व्रण के स्थान के त्वचा का विकृत वर्ण त्वचा के वर्ण के समान होता है॥

चोपचिन्याद्यचूर्णम्—

कुडव चोपचिन्याश्च शर्करायाः पलं तथा। पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवपुष्पकम् ॥ १ ॥
आकल्लं तुरकं शुण्ठी जन्तुघ्नं च वराङ्गकम्। पृथक्कोलमितं प्राज्ञमेतच्चूर्णीकृतं शुभम् ॥ २ ॥
सममेकत्र संयोज्य कर्षार्धं प्रतिवासरम्। भक्षयेन्मधुसर्पिभ्यां युक्तं पथ्यं समाचरेत् ॥ ३ ॥
शाल्योदनं तथा सूपस्तुवरीणां घृतं मधु। गोधूमं सैन्धवं तिक्तमिश्री कोशातकीफलम् ॥४॥
आर्द्रकं जलमन्दोष्णं हितमत्र प्रकीर्तितम्। पञ्चोपदंशरोगाणां प्रमेहाणां तथैव॥
व्रणानां वातरोगाणां कुष्ठानां च विनाशनम् ॥ ५ ॥

चोपचीन्यादि चूर्ण—चोपचीनी एक कुडव (१६ तोला), शक्कर १ पल, पीपरि, पिपरामूल, मरिच, लवंग, अकरकरा, तोरन्द्र, सोंठि, वायविरंग, दालचीनी इनको पृथक २ एक २ कोल की मात्रा (½ कर्ष) से लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण को एकत्र मर्दन कर आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से और पथ्य से रहने से अर्थात् शालीधानके चावल का भात, तुवर (अरहर) की दाल, घृत, मधु गहूं सेंधानमक, तहिजन का फल, मिश्रीफल, तरोई का फल, अद्रक कुछ गरम जल यहाँ पर ये सब हितकर कहे गये हैं। इन्हीं के सेवन करने से पाचों प्रकार के उपदंश रोग प्रमेह, व्रण, वात के रोग और कुष्ठ इन सबको नष्ट करता है॥

चोपचिनीपाकः—

चोपचिन्युद्भवं चूर्णं पलद्वादशमेव च। पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं नागरं त्वचम् ॥ १ ॥
आकारकरभं लवङ्गं च प्रत्येकं कर्षसंमितम्। शर्करासमचूर्णं च पाचयेत्सर्वमेकतः ॥ २ ॥
मोदकं कारयेत्तत्तु कर्षं कर्षं प्रमाणतः। सायं प्रातर्निषेव्यस्तु पथ्यं पूर्वोक्तचूर्णवत् ॥ ३ ॥
उपदंशे व्रणे कुष्ठे वातरोगे भगन्दरे। धातुक्षयकृते कासे प्रतिश्याये च यक्ष्मणि ॥
सर्वान् रोगान्निहन्त्याशु ततः पुष्टिकरो भवेत् ॥ ४ ॥

चोपचीनी पाक—चोपचीनी का चूर्ण १२ पल, पीपरि, पिपरामूल, मरिच, सोंठि, दालचीनी, अकरकरा और लवंग का चूर्ण पृथक् १ एक २ कर्ष और इन सबों का बराबर (५५ कर्ष) शकरा लेकर पाक की विधि से उसे जल के साथ गलाकर चाशनी बना उसमें सब चूर्ण मिलाकर एक २ कर्ष के प्रमाण का विधिवत् मोदक बनाकर प्रात सायं सेवन करे और पूर्वोक्त चोपचीनी चूर्ण के साथ कहा हुआ पथ्य सेवन करे तो उपदंश व्रण कुष्ठ वातरोग, भगन्दर, धातुक्षय के कारण से उत्पन्न कासरोग, प्रतिश्याय, यक्ष्मा इन सभी रोगों को शीघ्र नष्ट करता है और पुष्टि करता है॥

बालहरीतकीयोगः—

बालपथ्या पलैकं च तुत्थं शाणमितं तथा। निम्बुद्रवेण समर्द्य दृढं सप्त दिनानि वै ॥ १ ॥
गुटिकां चणकप्रायां छायाशुष्कां तु कारयेत्। शीतोदकानुपानेन नित्यमेकां प्रदापयेत् ॥ २ ॥
यन्त्राणामेकविंशत्या मुच्यते सूपदंशतः। शालिगोधूममुद्गाश्च गोसर्पिः पथ्यमीरितम् ॥ ३ ॥

बाल हरीतकी योग—छोटी हरड़ का चूर्ण एक पल, शुद्ध तूतिया एक शाण (४ माषा) दोनों को एकत्र नीबू के रस के साथ सात दिन तक भलीभाँति मर्दन करे पश्चात् चने के प्रमाण की वटी बना छाया में सुखा शीतल जल के अनुपान से नित्य एक वटी सेवन करे। इस प्रकार २१ दिन सेवन करने से उपदंशरोग छूट जाता है। इसके सेवन के साथ शालिधान के चावल, गेहूं, मूग और गोघृत का पथ्य सेवन करना कहा है॥ १-३॥

रसगन्धककज्जली—

कर्षमात्रो रसः शुद्धो द्विकर्षो गन्धकस्तथा। विधिवत्कज्जलीं कृत्वा तां च गोघृतसंयुताम् ॥
माषमात्रां प्रतिदिनं दद्यादेव त्रिसप्तकम्। गोधूमाश्च घृतं पथ्यं कारयेल्लवणं विना ॥
उपदंशापहः श्रेष्ठो योगोऽयं मुनिभिः स्मृतः ॥ २ ॥

व्रणशोथोपदंशानां नाशनं क्षालनात्स्मृतम् ॥ ३ ॥

अश्वत्थादि योग—पीपल, गूलर, पाकर, बड़ और बेत के छाल के क्वाथ से व्रण को धोने से उपदंश का शोथ (उपदंश) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

जयामारश्वमाराकेशम्याकानां दलं पृथक्। कृत व्रणक्षालने क्वाथं मेढ्रपाके प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

जयादि योग—जनियार,(१)चमेली, कनेर, मदार और अमलतास इनमें से किसी एक के पत्ते को लेकर क्वाथ कर मेढ्र पाक को धोने में प्रयुक्त करना चाहिये अर्थात् इससे प्रक्षालन करने से उपदंश नष्ट होता है ॥ ४ ॥

उपदंशे लिङ्गलेपः—

रसकर्पूरगद्याणं मर्दयेत्खदिराम्बुना। प्रक्षाल्येद्वारिणा च शुष्के लेपस्तु वारिणा ॥ १ ॥
लिङ्गलेपो व्रणं हन्ति त्रिदिनान्नात्र संशयः ॥ २ ॥

उपदंश में लिङ्गलेप—रस कपूर एक गद्याण (६ माशा या ३ कर्ष) लेकर खैर के क्वाथ के साथ मर्दन कर जल से धोवे और सुखा देवे। इस धुले हुए रसकपूर को जल के साथ पीस कर लेप करने से लिङ्ग के व्रण (उपदंश व्रण) तीन दिन में निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

व्रणशोधने पूगादिलेपः—

पूगं सुदग्धमेकं तु रसगन्धकहिङ्गुलम्। खदिरं तुत्थकं चैव मर्दयेन्निम्बुनीरकैः ॥ १ ॥
समभागानि सर्वाणि गुटिकां कारयेद्बुधः। उपदंशे घृतैर्लेपात्त्रिदिनाद्व्रणशोधनम् ॥ २ ॥

उपदंश व्रण में पूगादि लेप—एक सुपारी को आग में भली भाँति जला कर पीस ले और उसी के समान भाग पारद गन्धक, हिंगुल, खैर और तूतिया को (बराबर २) लेकर प्रथम पारद-गन्धक को घोट कर (कज्जली कर) फिर अन्य औषधियों को मिलाकर नींबू के रस में घोट कर वटी बना लेवे। इस वटी को घृत के साथ मिलाकर लेप करने से तीन दिन में उपदंश के व्रण का शोधन होता है ॥ १-२ ॥

उपदंशस्फोटे लेप—

जातीफलविडङ्गानि रसकं दग्धपुन्नकम्। समभागानि सर्वाणि नवनीतेन मर्दयेत् ॥
स्फोटानामुपदंशानां व्रणशोधनरोपणम् ॥ १ ॥

उपदंश के स्फोटों (फोड़ों) पर लेप—जायफल, वायविडंग, खपरिया, सिर और ... इनको सम भाग लेकर चूर्ण कर मक्खन के साथ मर्दन कर लेप करे। इससे उपदंश के फोड़ों और व्रणों का शोधन और रोपण होता है ॥ १ ॥

घृतानि—भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिरासनानाम्।
सतोयकल्कैर्घृतमाशु पक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ १ ॥

भूनिम्बादि घृत—चिरैता, नीम की छाल, आँवला, हर्रे बहेड़ा, परवल का डाल-पत्र, करञ्ज, चमेली के पत्ते खैर और विजयसार इनके क्वाथ और कल्क से घृत सिद्ध करे (इनको सम भाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर लिया। प्रस्तुत क्वाथ ही घृत के चतुर्गुण, मूर्च्छित गोघृत और घृत के चतुर्थांश इन्हीं द्रव्यों का समान मिलित कल्क मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर) सेवन करने से (खाने से और लगाने से) सब प्रकार के उपदंश शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम्।
सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥ २ ॥

करञ्जादि घृत—करञ्ज नीम की छाल, अर्जुन की छाल, शालवृक्ष की छाल, जामुन की छाल और बड़ की छाल इनके कल्क और क्वाथ से पूर्वोक्त विधि का सिद्ध घृत सेवन करने से उपदंश के दोष तथा दाह, पाक, स्राव और रागयुक्त (दूषित रक्तादि से युक्त) उपदंश को नष्ट करता है ॥

आगारधूमादि घृत—

आगारधूमो रजनी सुराकिट्टं च तैस्त्रिभिः। समांशैः पचेत्तैलं कण्डूपामापहारकम् ॥
दाहघ्नं शोधनं चैव सवर्णकरणं परम् ॥ १ ॥

(१) जयादि योग में [illegible] लिखा है।

अगारधूमादि तैल—गृहधूम एक भाग, हरदी २ भाग और सुराकिट्ट तीन भाग ले कल्क कर तेल में डेकर तेल सिद्ध कर (कल्क से चतुर्गुण मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चतुर्गुण पानार्थ जल देकर सिद्ध कर) लगाने से कण्डू, शोथ और पीड़ा नष्ट होती है, व्रण का शोधन और रोपण होता है और व्रण के स्थान के त्वचा का विकृत वर्ण त्वचा के वर्ण के समान होता है॥

चोपचिन्यादिचूर्णम्—

कुडवं चोपचिन्याश्च शर्करायाः पलं तथा। पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवपुष्पकम्॥ १॥
आकल्लं पुरकं शुण्ठी जन्तुघ्नं च वराङ्गकम्। पृथक्चोऽक्षमितं भागमेतच्चूर्णीकृतं शुभम्॥ २॥
सर्वमेकत्र संयोज्य कर्षार्धं प्रतिवासरम्। भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां युक्तपथ्यं समाचरेत्॥ ३॥
शाल्योदनं तथा सूपस्तुवरीणां घृतं मधु। गोधूमं सैन्धवं शिग्रुबिम्बी कोशातकीफलम्॥४॥
आर्द्रकं जलमन्दोष्णं हितमत्र प्रकीर्तितम्। पञ्चोपदंशरोगाणां प्रमेहाणां तथैव॥
व्रणानां वातरोगाणां कुष्ठानां च विनाशनम्॥ ५॥

चोपचीन्यादि चूर्ण—चोपचीनी एक कुडव (१६ तोला), शक्कर १ पल, पीपरि, पिपरामूल, मरिच, लवंग, अकरकरा, गोखरू, सोंठि, वायबिरंग, दालचीनी इनको पृथक २ एक २ तोला की मात्रा (½ कर्ष) से लेकर चूर्ण कर सब चूर्ण को एकत्र मर्दन कर आधा कर्ष के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन मधु और घृत के अनुपान से सेवन करने से और पथ्य से रहने से अर्थात् शालीधानके चावल का भात, तुवर (अरहर) की दाल घृत, मधु गेहू, सैंधानमक, सहिजन का फल, बिम्बीफल, तरोई का फल, अदरख, कुछ गरम जल यहाँ पर ये सब हितकर कहे गये हैं। इन्हीं के सेवन करने से पाचों प्रकार के उपदंश रोग प्रमेह, व्रण, वात के रोग और कुष्ठ इन सबको नष्ट करता है॥

चोपचिनीपाक—

चोपचिन्युद्भवं चूर्णं पलद्वादशमेव च। पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं नागरं त्वचम्॥ १॥
आकल्लकं लवङ्गं च प्रत्येकं कर्षमितम्। शर्करासमचूर्णं च पाचयेत्सर्वमेकतः॥ २॥
मोदकं कारयेत्तत्तु कर्षं कर्षं प्रमाणतः। सायं प्रातर्निषेव्यस्तु पथ्यं पूर्वोक्तचूर्णवत्॥ ३॥
उपदंशे व्रणे कुष्ठे वातरोगे भगन्दरे। धातुक्षयकृते कासे प्रतिश्याये च यक्ष्मणि॥
सर्वान् रोगान्निहन्त्याशु ततः पुष्टिकरो भवेत्॥ ४॥

चोपचीनी पाक—चोपचीनी का चूर्ण १२ पल, पीपरि, पिपरामूल मरिच, सोंठि, दालचीनी, अकरकरा और लवंग का चूर्ण पृथक् २ एक २ कर्ष और इन सबों का बराबर (५५ कर्ष) शकरा लेकर पाक की विधि से उसे जल के साथ गलाकर चाशनी बना उसमें सब चूर्ण मिलाकर एक २ कर्ष के प्रमाण का विधिवत् मोदक बनाकर प्रातः सायं सेवन करे और पूर्वोक्त चोपचीनी चूर्ण के साथ कहा हुआ पथ्य सेवन करे तो उपदंश, व्रण, कुष्ठ, वातरोग, भगन्दर, धातुक्षय के कारण से उत्पन्न कासरोग, प्रतिश्याय, यक्ष्मा इन सभी रोगों को शीघ्र नष्ट करता है और पुष्टि करता है॥

बालहरीतकीयोग—

बालपथ्या पलैकं च सुत्थं शाणमितं तथा। निम्बुद्रवेण सम्मर्द्य इदं सप्त दिनानि वै॥ १॥
गुटिकां चणकप्रायां छायाशुष्कां तु कारयेत्। शीतोदकानुपानेन नित्यमेकां प्रदापयेत्॥ २॥
घस्राणामेकविंशत्या मुच्यते तूपदंशतः। शालिगोधूममुद्गाश्च गोसर्पिः पथ्यमीरितम्॥ ३॥

बाल हरीतकी योग—छोटी हरड़ का चूर्ण एक पल, शुद्ध तूतिया एक शाण (४ माशा) दोनों को एकत्र नीबू के रस के साथ सात दिन तक भलीभाँति मर्दन करे पश्चात् चने के प्रमाण की वटी बना छाया में सुखा शीतल जल के अनुपान से नित्य एक वटी सेवन करे। इस प्रकार २१ दिन सेवन करने से उपदंशरोग छूट जाता है। इसके सेवन के साथ शालिधान के चावल, गेहूँ, मूग और गोघृत का पथ्य सेवन करना कहा है॥ १-३॥

रसगन्धककज्जली—

कर्षमात्रो रसः शुद्धो द्विकर्षो गन्धकस्तथा। विधिवत्कज्जलीं कृत्वा तां च गोघृतसंयुताम्॥
माषमात्रां प्रतिदिनं दद्याद्देवं त्रिसप्तकम्। गोधूमान्नं घृतं पथ्यं कारयेल्लवणं विना॥
उपदंशापहः श्रेष्ठो योगोऽयं मुनिभिः स्मृतः॥ २॥

रस गन्धक कज्जली योग—शुद्ध पारद एक कर्ष और शुद्ध गन्धक आंवलासार दो कर्ष दोनों की ही विधिपूर्वक कज्जली कर गोदुग्ध के अनुपान से एक माशा के प्रमाण की मात्रा से तीन सप्ताह ( २१ दिन ) सेवन करे और गेहूं तथा घृत शर्करा का पथ्य बिना नमक के सेवन करे तो उपदंश को नष्ट करने वाला यह श्रेष्ठ ( उत्तम ) योग मुनियों ने कहा है ॥ १-२ ॥

महाक्षारचूर्णी —महाक्षारमाकल्लकं चाद्रिकं च क्रमाद्वर्धित वारिणा पिष्टमेतत् ।
निषेवेत माषप्रमाणं घृतेन महारोगनिघ्नं व्रणेषु व्रणघ्नम् ॥ १ ॥
गोधूम गोघृत पथ्यं मन्द लवणमाचरेत् । द्विवारं माहयेत्तावदुपदंशनिवृत्तये ॥ २ ॥

महाक्षार चूर्णी—क्रम से १-१ भाग बढ़ा कर महाक्षार ( साबुन ) १ भाग, अकरकरा २ भाग और गेरू तीन भाग लेकर जल के साथ पीस कर एक माशा के प्रमाण से घृत के अनुपान से सेवन करने से महारोग ( कुष्ठ ) को नष्ट करता है एवं व्रण में सेवन करने से व्रण को नष्ट करता है। इसके सेवन के साथ गेहूं, गोघृत तथा मन्द ( अल्प ) लवण का पथ्य करना चाहिये और उपदंश रोग की निवृत्ति के लिये इस औषधि को दो बार मास साथ सेवन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

सर्वोपदंशे रसपर्पट्यवर्ते—

शुद्ध रस विधुमितं द्विबलिं प्रभव सर्वद्विभागनवनीतमपि प्रभव ।
पश्चे मर्दिप्य विधुम [illegible] सर्वेष्वेव समुद्रौ परिशोष्य वर्तिम् ॥ १ ॥
तस्या घृत द्रवति काचमय च पात्र एवाऽद्भिवर्तिदहसालमिदं प्रदत्तम् ।
सर्वोपदंशकरिकेसरिणं व्रणघ्नं पट्टवाटिक रसपर्पटे च वियजनीयम् ॥ २ ॥

रसवर्त—(सब उपदंशों में ) शुद्ध पारद एक भाग ( १ कर्ष ), शुद्ध गन्धक दो भाग लेकर विधिवत् कज्जली कर जितना हो उसके दुगुना ( ६ भाग ) गाय का मक्खन मिलाकर अच्छी भाँति मर्दन कर एक वस्त्र पर इसका लेप कर देवे पश्चात् वह वस्त्र पर रहित नीम की डाल पर लपेट कर बत्ती बना कर नीचे मुंह कर उस बार देवे उसमें जो घृत चूवे उसे एक काच के पात्र में रक्खा जावे या काच पात्र में चुआवे । इस चुये हुए घृत को पान के पत्र में रखकर उचित मात्रा से सेवन करने से सब प्रकार के उपदंशरूपी हाथी के लिये सिंह के समान है अर्थात् सब प्रकार के उपदंशों को नष्ट करता है, व्रणों को नष्ट करता है । इस रसवर्त के सेवन के समय लवणादिक वर्ज्य पदार्थों को त्याग देवे ( केवलमात्र गेहूं और घृत का ही पथ्य करे ) ॥ १-२ ॥

पथ्यापथ्यम्—

दिवा निद्रां मूत्रवेगं गुर्वन्नं मैथुनं गुडम् । व्यायाममम्लं तक्रं च वर्जयेदुपदंशवान् ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—दिन में सोना, मूत्रवेग का धारण, गुरु अन्न, मैथुन, गुड़, व्यायाम अम्ल रस वाले द्रव्य और तक्र इनको उपदंश का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये सब अपथ्य हैं ॥ १ ॥

द्विपल चित्रकं घृतं द्विकर्ष त्रिफलाचूर्णकम् । कर्कोटकफलमिदा मृत्स्नालिप्तं प्रयत्नम् ॥ २ ॥
[illegible] चूर्णं पुटपाकविधानतः । पश्चात् [illegible] तु मर्दमताम्लुनवाद्वके ॥ ३ ॥
[illegible] मार्दे पिष्टं दिनत्रयात् । उपदंशं नाशयुक्तं घृतं घृतिमोदकम् ॥ ४ ॥
[illegible] मात्रां निवारयेत् । तदैतानहितं पथ्यं गोधूमान्नं घृतप्लुतम् ॥ ५ ॥

घृतादि योग—चित्रकी हरड़ी दो पल ( ८ तो० ) त्रिफला के बीज २ कर्ष [illegible] ( तोरई कूष्माण्डी ) का छिलका एक कर्ष, तीनों को मिलाकर चूर्ण करे और [illegible] में तूमिया [illegible] कर पुटपाक की विधि से बाद किया हुआ अर्थात् तूमिया को [illegible] खोलकर उसमें रखकर मुख बन्द कर मिट्टी से लेप कर पुटपाक की विधि से अग्नि में पका लेवे पर पुटपाक तूमिया पक जाने के पश्चात् निकाल कर्पूर चूर्ण [illegible] मिलाकर [illegible] घृत से [illegible] घृत [illegible] मोदक [illegible] दिन तक [illegible] मर्दन कर [illegible] के पत्र से [illegible] करे ( खावे ) तो [illegible] उपदंश, [illegible] नष्ट करता है। इसके सेवन के समय पथ्य में [illegible] घृत से युक्त गेहूं का सेवन करना चाहिये ॥ १-५ ॥

[illegible] सप्ताहे [illegible] त्रिफलं च [illegible] । [illegible] विलोमा च [illegible] ॥
शुद्धो [illegible] च [illegible] ।
[illegible] ॥ ७ ॥

सितवस्त्रे सलिप्य घृणोपरि स्थापयेत्सम्यक् । एतभूवेतां सर्वं सशूकदोष विरङ्गज हन्यात् ॥८॥
दाखकृत नरागात दन्तजमात्तु पूर्ण सिद्धियम् । दृष्ट्वा प्रत्ययमेतत्प्रकाशित बालबोधाय ॥९॥

उपदंश में और दूसरा लेप—कडु तैल (सरसों का तैल) एक पल, मोम दो अक्ष, मवीला, बिरोजा, सिन्दूर, सोरा और मुर्दा शङ्ख प्रत्येक एक २ कर्ष ऐसे तैल में मिला पीतल के बर्तन में रमसर अग्नि पर मन्द २ आँच से पकावे और कलछी या लकड़ी से चलाता रहे जब सब पक कर मिल जावें तब उतार लेप शीतल होने पर उसमें से निकाल कर श्वेत (स्वच्छ) वस्त्र पर लेप कर के भली भाँति व्रण पर रख देवे तो इस लेप से क्षत व्रण, शूकदोष और फिरङ्ग व्रण ये सभी नष्ट होते हैं और शस्त्र से होने वाले, नख से होने वाले, दाँत से होने वाले तथा अग्नि से जल कर हुए व्रण ये सभी शीघ्र नष्ट होते हैं। इस योग को सिद्ध देख कर बालमति (अल्प बुद्धि वाले) वैद्यों के ज्ञान एवं लाभ के लिये प्रकाशित किया गया है ॥ ८-९ ॥

इति ह्युपदंशरोगप्रकरणं समाप्तम्

## अथ शूकदोपनिदानम् ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शूकजा ॥ १ ॥

शूक दोष निदान—जो मूर्ख मनुष्य अनुचित क्रम से शिश्न को बढ़ाना चाहता है (विष युक्त भल्लातकादि ओषधियों का प्रयोग करता है) उस शूकदोष से उत्पन्न होने वाली १८ प्रकार की (सर्षपिका, अष्ठीलिका, ग्रथित, कुम्भिका, अलजी, मृदित, सम्मूढ पिडिका, अवमन्थ, पुष्करिका, स्पर्शहानि, उत्तमा, शतपोनक, त्वक्पाक, शोणितार्बुद, मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलका इन नाम की) व्याधियाँ हो जाती हैं ॥ १ ॥

सर्षपिकामाह—

गौरसर्षपसंस्थाना शूकदुष्टहेतुका । पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सर्षपिका तु सा ॥ २ ॥

सर्षपिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुरुपयोग के कारण कफ और वात के कोप की (कफ वात प्रधान) श्वेत सरसों के समान शिश्न पर पिडिकायें हो जाती हैं उसे 'सर्षपिका' जाननी चाहिये ॥ २ ॥

अष्ठीलिकामाह—कठिनैर्विषमैर्भुग्नैर्वायुनाष्ठीलिका भवेत् ।

अष्ठीलिका के लक्षण—जिस शूकदोष में शूक के विषम प्रयोग करने से (शूक मिश्रित लेप के बराबर नहीं लगाने से अर्थात् कभी कम कभी अधिक लगाने से) वायु के कुपित होने के कारण कठिन पिडिका (अष्ठीला के समान परन्तु वाताष्ठीला के लक्षणों से भिन्न लक्षण वाली) हो जाती है उसे 'अष्ठीलिका' कहते हैं ।

ग्रथितमाह—शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्ग्रथितं नाम तत्कफात् ॥ ३ ॥

ग्रथित के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के निरन्तर प्रयोग करने से (लेप निरन्तर लगाये रखने से) कफ का कोप होकर गाँठ के समान पिडिका हो जाती है उसे ग्रथित' कहते हैं ॥ ३ ॥

कुम्भिकामाह—कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिभा शुभा ॥

कुम्भिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि लेप से कुपित हुए रक्त और पित्त के कारण जामुन के फल की अस्थि के समान एवं अशुभ वेष वाली (काली) पिडिका शिश्न पर हो जाती है उसे 'कुम्भिका' कहते हैं ।

अलजीमाह—तुल्यजां स्वलजीं विद्यात्प्रोक्तां च भिषग्वरैः ॥ ४ ॥

अलजी के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अवैधानिक व्यवहार के कारण प्रमेह पिडिका में कही हुई 'अलजी' नाम की पिडिका के समान लिङ्ग पर पिडिका हो जाती है उसे 'अलजी' कहते हैं (भेद उसमें और इसमें यही है कि इसका कारण शूक दोष है तथा यह केवल लिङ्ग पर ही होती है और उसका कारण प्रमेह तथा दुष्ट मेद है और वह सन्धिमर्म तथा मांसल स्थानों में होती है) ॥ ४ ॥

मृदितमाह—मृदितं पीडितं यत्तु संरब्धं वातकोपतः ॥

मृदित के लक्षण—जिस शूकदोष में शूक प्रयोग के पश्चात् पीड़ित करने से वायु कुपित होकर शिश्न में शोथ उत्पन्न कर देता है उसे 'मृदित' कहते हैं ॥

सम्मूढपिडिकामाह—पाणिभ्यां भृशसम्मूढे सम्मूढपीडिका भवेत् ॥५॥

सम्मूढ पिडिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के प्रयोग के पश्चात् शिश्न को हाथों से अधिक मल देने से ( अधिक मर्दन कर लेप करने से अथवा लेप के पश्चात् कण्डू आदि होने पर अधिक मर्दन कर देने से ) वात के कुपित होने से ऊँचा-नीचा शिश्न हो जाता है अथवा ऐसी पिडिका हो जाती है उसे 'सम्मूढ पिडिका' कहते हैं ॥ ५ ॥

अवमन्थमाह—

दीर्घा बह्व्यश्च पिडका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः । सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ॥

अवमन्थ के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक प्रयोग के पश्चात् अविधि होने से कफ और रक्त कुपित हो जाता है, जिससे शिश्न पर लम्बी २ बहुत सी पिडिकायें मध्य में फटी हुईं, पीड़ा और रोमाञ्च को करने वाली हो जाती हैं उसे 'अवमन्थ' कहते हैं ॥ ६ ॥

पुष्करिकामाह—

पिडिकापिडिचिता या तु पित्तशोणितसम्भवा । पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका च सा ॥

पुष्करिका के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि प्रयोग होने से पित्त और रक्त कुपित हो जाता है जिससे कमल के कोष के आकार की अनेक पिडिकाओं से चिह्नित ( एक पिडिका उस रूप की ) लिङ्ग पर हो जाती हैं उसे 'पुष्करिका' कहते हैं ॥ ७ ॥

स्पर्शहानिमाह—

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् । वातपित्तकृतो शोथस्तथापाको ज्वरदाहकृत् ॥ ८ ॥

स्पर्शहानि के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि प्रयोग होने से रक्त कुपित होकर स्पर्श ज्ञान की हानि कर देता है ( शिश्न पर स्पर्श करना नहीं ज्ञात होता है ) अर्थात् लिङ्ग में सुप्ति कर देता है उसे 'स्पर्शहानि' कहते हैं ॥ ८ ॥

उत्तमामाह—

मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च सा । व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजः ॥९॥

उत्तमा के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के अविधि प्रयोग से अर्थात् बार २ शूक का अधिक प्रयोग करने से रक्त, पित्त कुपित हो जाता है जिससे मूंग और उड़द के समान रक्त वर्ण की पिडिका लिङ्ग पर हो जाती हैं उन्हें 'उत्तमा' कहते हैं ॥ ९ ॥

शतपोनकमाह—

छिद्रैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः । वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः ॥१०॥

शतपोनक के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण वात और रक्त कुपित होकर लिङ्ग पर चारों ओर से सूक्ष्म मुख वाले छिद्रों से युक्त व्रण ( पिडिकाओं ) को उत्पन्न कर देता है ( चलनी के समान छिद्रित कर देता है ) उसे 'शतपोनक' कहते हैं ॥ १० ॥

त्वक्पाकमाह—वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहकृत् ॥

त्वक्पाक के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग से वात और पित्त कुपित होकर लिङ्ग की त्वचा में पाक कर देते हैं तथा ज्वर और दाह भी उत्पन्न होता है उसे 'त्वक्पाक' कहते हैं ॥

शोणितार्बुदमाह—कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिडिकाभिर्निपीडितम् ॥ ११ ॥

शोणितार्बुद के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण रक्त कुपित होकर अर्बुद के समान लिङ्ग पर कृष्ण वर्ण के फोड़े और रक्त वर्ण की पिडिकायें पैदा कर देता है तथा उसमें अति पीड़ा होती है उसे 'शोणितार्बुद' कहते हैं अर्थात् शोणितार्बुद के ये लक्षण हैं। ( रसे पाचन और भी होता है पर उसके लक्षण रक्तार्बुद से भिन्न होते हैं वह लिङ्ग पर ही होने से, पूर्ण लक्षणों से युक्त होगा ) ॥ १२ ॥

मांसार्बुदमाह—यस्य वायुप्रकोपेण शोथे जायेऽत्र तदर्बुदम् ॥

मांसदुष्टेन जानीयादर्बुदं मांससम्भवम् ॥ १३ ॥

मांसार्बुद के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण मांसादि दूषित होकर

दूषित होकर अर्बुद के समान लिङ्ग पर व्रण उत्पन्न कर देता है उसे 'मांसार्बुद' कहते हैं। (मांसार्बुद जो अन्य अर्बुद रोग में कहा गया है उसके निदान स्थानादि से इसमें भिन्नता होती है) अर्थात् शूक दोषज मांसार्बुद के ये लक्षण हैं ॥ १२ ॥

मांसपाकमाह—

शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदना। विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥१३॥

मांस पाक के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण तीनों दोष कुपित होकर शिश्न के मांस को शीर्ण कर देते हैं (सड़ाकर गला देते हैं) और तीनों दोषों में होने वाली सब पीड़ायें होती हैं उसे 'मांसपाक' कहते हैं (यह त्रिदोषज है) ॥ १३ ॥

विद्रधिमाह—विद्रधिं सन्निपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥

विद्रधि के लक्षण—जिस शूक दोष में शूक के दुष्प्रयोग से तीनों दोष कुपित होकर शिश्न पर त्रिदोषज विद्रधि के समान लक्षणों वाली (नाना प्रकार के वर्ण, पीड़ा और स्राव से युक्त) विद्रधि उत्पन्न कर देते हैं उसे शूकदोषज विद्रधि कहते हैं ॥

तिलकालकमाह—

कृष्णानि चित्राण्यथ वा शूकानि सविषाणि तु। पातितानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः॥
कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः।
सन्निपातसमुत्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

तिलकालक के लक्षण—जिस शूकदोष में शूक के दुष्प्रयोग के कारण तीनों दोष कुपित होकर अर्थात् काला चित्रित (काले पीले नीले श्वेतादि) तथा अधिक विषयुक्त जल शूक के लेप करने से तीनों दोष कुपित होकर संपूर्ण शिश्न (लिंग) को शीघ्र ही पका देते हैं जिससे उस स्थान का मांस तिल के समान काला वर्ण का होकर शीर्ण (गल) जाता है उसे तिलकालक कहते हैं। यह भी त्रिदोषज होता है। (क्षुद्र रोग में जो तिलकालक रोग है उसके और इसके निदान आदि में भिन्नता है) ॥ १४-१५ ॥

शूकदोषेष्वसाध्यत्वमाह—तत्र मांसार्बुदं यत्तु मांसपाकश्च यः स्मृतः।
विद्रधिश्च न सिध्यन्ति ये च स्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥

शूकदोष की असाध्यता—पूर्वोक्त १८ प्रकार के शूक रोगों से मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक नाम के शूक दोष असाध्य हैं ॥ १६ ॥

## अथ शूकदोषचिकित्सा।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम्। हितः शोणितमोक्षश्च शूकरोगेषु देहिनाम् ॥१॥

शूक दोष की सामान्य चिकित्सा—शूक दोष में घृत पिलाना हितकर है और विरेचन देना पथ्य है तथा रक्त मोक्षण कराना भी हितकर है ॥ १ ॥

उल्लिख्य सार्षपीं तालपत्रेणाथ प्रलेपयेत्। त्रिकटुत्रिफलालोध्रैर्गोमूत्रपरिपेषितैः ॥ २ ॥

सर्षपिका चिकित्सा—सर्षपिका नाम का शूक दोष की पिडिका को ताल के पत्रों से रगड़ (खुरच) कर सोंठ, मरिच, पीपल, आँवला, हरड़, बहेड़ा और लोध समान भाग लेकर गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पीसकर लेप करने से सर्षपिका नाम की पिडिका नष्ट होती है ॥ २ ॥

क्रियेयमवमन्थेऽपि रक्तं शोध्यं तथोभयोः।

अवमन्थ-चिकित्सा—अवमन्थ में भी पूर्वोक्त सर्षपिका की चिकित्सा करनी चाहिये और सर्षपिका तथा अवमन्थ दोनों में रक्त को शुद्ध करने का यत्न करना चाहिये॥

अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिक्रियां चरेत् ॥ ३ ॥

अष्ठीलिका चिकित्सा—अष्ठीलिका रोग में प्रथम रक्तमोक्षण करा कर कफग्रन्थि की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे। तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ४ ॥

कुम्भिका चिकित्सा—कुम्भिका रोग में प्रथम रक्तमोक्षण करावे परन्तु यदि वह पक गया हो तो व्रण को चीरकर शुद्ध कर उसमें तिन्दुक (तेंदू) हर्रा, बहेड़ा, आँवला, और लोध सम भाग

प्रकार विधिपूर्वक पीसकर इनका लेप इनके कल्क द्वारा विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर लगाना चाहिये । इससे गत पद रोग होता है ॥ ४ ॥

अलज्यां हृतरक्तायां पूर्व एव क्रियाक्रमः ।

अलजी चिकित्सा—अलजी रोग में रक्तमोक्षण करा कर पूर्वोक्त चिकित्सा, लेप वा तैल ही लगाना चाहिये ॥

स्वेदयेद्ग्रथितं पश्चात्पाटयेत्तेन बुद्धिमान् ॥ ५ ॥

ग्रथित-चिकित्सा—ग्रथित रोग में पहले नाड़ी स्वेद विधि से स्वेदन करे पश्चात् इस रोग में पके हुए सुखोष्ण ( कुछ गरम ) उपनाहों ( पुल्टिसों ) से ग्रन्थि को उपनाह देवे ॥ ५ ॥

सुखोष्णैरुपनाहैश्च मनोज्ञैरुपनाहयेत् । उत्तमाख्यां तु पिडिकां संच्छेद्य बडिशोद्धृताम् ॥ ६ ॥

उत्तमा-चिकित्सा—उत्तमा नाम की पिड़िका प्रथम स्वेद देकर बडिश यन्त्र से उखाड़ (काट) देवे पश्चात् कषाय द्रव्यों के कल्क और चूर्ण में शहद मिला कर लगावे । इससे उत्तमा पिड़िका नष्ट हो जाती है ॥ ६ ॥

कल्कचूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् । क्रम पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ॥ ७ ॥

पुष्करी और सम्मूढ-चिकित्सा—पित्तज विसर्प चिकित्साओं को क्रम से पुष्करी और सम्मूढ पिड़िका में भी करनी चाहिये ॥ ७ ॥

त्वक्पाके स्पर्शहानौ च सेचयेन्मृदितं पुनः । वातघ्नतैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ८ ॥

त्वक्पाक, स्पर्श हानि और मृदित-चिकित्सा—त्वक्पाक, स्पर्शहानि और मृदित रोग में वातघ्न तैल को कुछ गरम कर उससे लिंग को सींचना चाहिये और मधुर वर्ग की ओषधियों से विधिवत् उपनाह करना चाहिये ॥ ८ ॥

रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके । पृथक्पर्ण्यादिभिः सिद्धं तैलं देयमनन्तरम् ॥ ९ ॥

शतपोनक-चिकित्सा—शतपोनक को खुरच कर रस क्रिया करनी चाहिये (लेप को गाढ़ा कर लगाना चाहिये ) । पश्चात् पृथक् पर्ण्यादि (पृश्नपर्णी) के द्वारा सिद्ध किया तैल लगाना चाहिये ॥

रक्तविद्रधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे । मांसार्बुदे प्रकुर्वीत क्रियां सर्वां पुनर्हिताम् ॥ १० ॥

शोणितार्बुद-चिकित्सा—रक्तज विद्रधि के समान शोणितार्बुद की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

त्रिफलां गुग्गुलुं चापि विशेषेणावचारयेत् ॥ ११ ॥

मांसार्बुद-चिकित्सा—मांसार्बुद में एकाग्र मन से वही सम्पूर्ण क्रिया ( चिकित्सा ) करनी चाहिये तथा त्रिफला गुग्गुलु का भी विशेष सेवन करना चाहिये ॥ ११ ॥

मांसपाके यथादोषं यथास्वं विधिवत्कृतैः । कषायचूर्णकल्कैश्च लेपोऽभ्यङ्गस्तथेष्यते ॥ १२ ॥

मांसपाक चिकित्सा—मांसपाक में यथादि गत की ओषधियों से विधिपूर्वक बनाये हुए कषाय चूर्ण और कल्कों से गत को क्रम से सिंचन, अवचूर्णन और लेपन करे अर्थात् कषायों से सिंचन करे, चूर्णों को गत पर छिड़के और कल्कों का लेप करे ॥ १२ ॥

विद्रधौ विधिवत्कार्यं रक्तविद्रधिभेषजम् । ... ॥ १३ ॥

विद्रधि चिकित्सा—विद्रधि में रक्तज विद्रधि के प्रकरण में कही हुई चिकित्सा को विधिपूर्वक करना चाहिये तथा ... की ओषधियों का विधिवत् ... का प्रयोग करना चाहिये ॥ १३ ॥

तिलकालके ... ॥ १४ ॥

तिलकालक चिकित्सा—तिलकालक में ... ( ... ) ... इसके दाह में घी और दूध से सेचन कर ... की चिकित्सा के अनुसार चिकित्सा करे ॥

मांसार्बुदं मांसपाकं विद्रधिं तिलकालकम् । प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् सम्यक्प्रतिक्रियाम् ॥

असाध्य चिकित्सा—... मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक को असाध्य कह कर वैद्य चिकित्सा करे ॥ १५ ॥

अथ शूकनिदानम् ।

... ॥ १ ॥

व्यायाममग्निसंतापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् । शीतोष्णलङ्घनाहारान् क्रमं त्यक्त्वा निषेविणाम् ॥
घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशिनां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥३॥
नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥
व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा । विप्रान्गुरून्धर्षयतां पापं वा कर्म कुर्वताम् ॥
पाप्मभिः कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैः प्रेरिता मलाः । वातादयस्त्रयो दोषास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च ॥

कुष्ठरोग-निदान—संयोग विरुद्ध अन्न पानादि ( दुग्ध, मत्स्यादि पदार्थों का एक साथ ) सेवन करने से द्रव, स्निग्ध तथा गुरु पदार्थों के अतिसेवन करने से वमन या अन्य भी मलमूत्रादि के वेगों को रोकने से अत्यन्त भोजन करके परिश्रम करने से अग्नि के अधिक तापने से शीत उष्ण-उपवास और आहारों का अनियन्त्रित धूप-परिश्रम तथा भय से पीडित होने से शीघ्र ही शीतल जल का सेवन ( पीने या स्नान ) करने से, अजीर्ण में भोजन या अध्यशन करने से, पञ्चकर्म ( वमन विरेचनादि ) के विधिपूर्वक न रहने से नवीन अन्न दही, मछली, अम्लद्रव्य और लवण रस के अतिसेवन करने से, उड़द मूली, पीठी, तिल क्षारद्रव्य और गुड़ के अधिक सेवन करने से, अन्न के अजीर्ण अवस्था में मैथुन करने से, दिन में सोने से ब्राह्मण एवं गुरुजनों की अवहेलना करने से तथा अन्य ( गो वध-इत्यादि ) पाप कर्मों को करने से और अन्यान्य पूर्व जन्मार्जित पापकर्मों से प्रेरित होकर वातादि तीनों दोष कुपित होकर त्वचा, रक्त मांस और शरीर सम्बन्धी जल ( लसीका ) को दूषित कर देते हैं ॥ २-६ ॥

दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः । त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्ति तत् ॥७॥

कुष्ठों का द्रव्यसंग्रह सात प्रकार का है, उन सातों में वात, पित्त, कफ ये तीनों दोष हैं तथा त्वचा, मांस, रक्त और लसीका ये चारों दूष्य हैं। वातादि के दूषित होने पर ( पहले ) त्वचा विवर्ण हो जाती है और अतिदूषित होने पर ( पश्चात् ) कुष्ठ हो जाता है ॥ ७ ॥

कुष्ठ की संख्या—उपर्युक्त कारणों से सात महाकुष्ठ और अन्य भी ग्यारह क्षुद्र कुष्ठरोग मिलकर अठारह प्रकार के कुष्ठरोग होते हैं ॥

अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त चैकादशैव तु । कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ॥ ८ ॥
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ।

कुष्ठों की संख्या—( महा ) कुष्ठ सात और क्षुद्र कुष्ठ ग्यारह इस प्रकार १८ प्रकार का कुष्ठरोग होता है। उनमें वातिक, पैत्तिक कफज, वातपित्तज, कफपित्तज तथा वातपित्तकफज, ये सात महाकुष्ठ हैं। वस्तुतः सभी कुष्ठों में तीनों दोष कुपित रहते हैं किन्तु दोष की प्रधानता के अनुसार उनका पृथक् २ नाम रखा जाता है। जैसे 'कपाल' कुष्ठ में तीनों दोष कुपित रहते हैं किन्तु वात की अधिकता से इसकी गणना वातज कुष्ठों में होती है ॥ ८ ॥

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शः स्वेदास्वेदौ विवर्णता ॥ ९ ॥
दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोठोन्नतिः श्रमः । व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥
रूढानामपि रूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् । रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥११॥

कुष्ठ का पूर्वरूप—जब कुष्ठ होने को होता है तब उसके उस स्थान पर अत्यन्त चिकनाहट, रूक्षता और स्वेद ( पसीना ) अधिक होता है अथवा नहीं होता है तथा शरीर की विवर्णता, दाह, कण्डू, त्वचा में शून्यता, सुई चुभाने के समान पीड़ा कोठ ( चकत्ते ) का होना, परिश्रम नहीं करने पर भी थकान, व्रणों का शीघ्र २ उत्पन्न होना और बहुत दिन तक रहना तथा अधिक शूल होना व्रणों के रूढ होने ( पूर्ण भर जाने ) पर भी उनमें रूक्षता होना और थोड़े ही कारणों से व्रणों में अधिक कोप हो जाना, रोमाञ्च होना और रक्त का काला पड़ जाना ये कुष्ठ रोग के पूर्वरूप हैं ॥ ९-११ ॥

तत्र कपालकुष्ठमाह—

कृष्णारुणकपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु । कापालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

कपाल कुष्ठ—जिस कुष्ठ का वर्ण काला, लाल अथवा कपालों अर्थात् घड़े के टुकड़ों के समान वर्ण का रूक्ष, कठोर पतला अर्थात् जिसकी त्वचा पतली हो गया हो और सुई चुभाने के समान जिसमें बहुत पीड़ा हो उस कुष्ठ को कपाल कुष्ठ कहते हैं। वह कुष्ठ विषम ( दुश्चिकित्स्य ) है ॥१२॥

उदुम्बरमाह—

रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम्। उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत्॥ १३॥

उदुम्बर कुष्ठ—जिस कुष्ठ में पीड़ा, दाह, राग (ललाई) कण्डू होता हो तथा उस स्थान के रोम पीले रंग वर्ण के हों और जो गूलर के फल के समान पीत रक्त मिश्रित वर्ण का हो उसको उदुम्बर कुष्ठ कहते हैं॥ १३॥

मण्डलकुष्ठमाह—श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं स्निग्धमुत्सन्नमण्डलम्।

कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते॥ १४॥

मण्डल कुष्ठ—जिस कुष्ठ का वर्ण श्वेत रक्त, स्थिर (कठिन) गाढ़ा या दलवाला, चिकना, उठे हुए और परस्पर मिले हुये मण्डल वाला अर्थात् जिसके चकत्ते उठे हुये और परस्पर मिले हुये हों उस कुष्ठ को मण्डल कुष्ठ कहते हैं। यह कष्टसाध्य है॥ १४॥

ऋष्यजिह्वमाह—

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तः श्यावं सवेदनम्। यदृष्यजिह्वासंस्थानमृष्यजिह्वं तदुच्यते॥ १५॥

ऋष्यजिह्व—जिस कुष्ठ का स्थान कर्कश (खर स्पर्श) और किनारे में रक्तवर्ण हो तथा मध्य में श्याम वर्ण हो, पीड़ा हो तथा नीले अण्डकोष वाले हरिण की जिह्वा के समान हो उसे ऋष्यजिह्व कहते हैं (जहाँ 'ऋक्षजिह्व' पाठ है वहाँ रीछ की जिह्वा के समान अर्थ समझना चाहिये)॥ १५॥

पुण्डरीकमाह—

सुश्वेतं रक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम्। रक्तान्तर्दाहकण्डूपाकवं चिरं पद्ममिवाम्भसि॥

सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते॥ १६॥

पुण्डरीक कुष्ठ—जिस कुष्ठ का वर्ण अत्यन्त श्वेत युक्त लाल किनारों वाला पुण्डरीक नामक कमल के पत्तों के समान हो, किनारे पर रक्त वर्ण हो, उसमें दाह और कण्डू हो, जल में उगते हुए कमल की भाँति प्रतीत होता हो और ऊपर उभरा हुआ हो तथा राग युक्त (लालिमा लिये) हो उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं॥ १६॥

सिध्मकुष्ठमाह—

श्वेतं ताम्रं तनु च यद्रजो घृष्टं विमुञ्चति। प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम्॥ १७॥

सिध्म कुष्ठ—जिस कुष्ठ का वर्ण श्वेत तथा ताम्र के रंग के जैसा हो, पतला चर्म वाला हो और उसके स्थान पर घिसने से धूल की तरह झड़ता हो और प्रायः यह वक्षस्थल पर तुम्बी (लौकी) के पुष्प के समान हो उसे सिध्म कहते हैं॥ १७॥

काकणन्तिकमाह—

पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकणन्तिकसन्निभम्। सरागमपर्शसहं सपाकं भृशवेदनम्॥ १८॥

सरक्तकाकणन्तिकावर्णं सपाकं तीव्रवेदनम्। त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकणं नैव सिध्यति॥ १९॥

काकणक कुष्ठ—जिस कुष्ठ का वर्ण रक्त और मध्य में कृष्ण घुँघची के आकार का रंग युक्त हो, जहाँ स्पर्श नहीं सहा जावे, जिसमें पाक और पीड़ा अधिक हो तथा घुँघची के वर्ण का पाक युक्त तीव्र वेदना वाला हो और तीनों दोषों के लक्षण जिसमें मिलते हों वह कुष्ठ काकणन्तिक कुष्ठ है॥ १८-१९॥

## अथैकादश क्षुद्रकुष्ठानि।

तत्र चर्मैककुष्ठम्—

अस्वेदनं महावास्तु यन्मत्स्यशकलोपमम्। तदेककुष्ठं चर्माख्यं बहुलं हस्तिचर्मवत्॥ २०॥

चर्म कुष्ठ—जिसमें स्वेद नहीं हो बहुत स्थान में फैला हो, जो मछली के छिलके के समान दिखाई देता हो और हाथी के चर्म के समान मोटा हो उसे चर्मकुष्ठ कहते हैं॥ २०॥

किटिभमाह—श्यावं किणखरस्पर्शं परुषं किटिभं स्मृतम्।

किटिभ कुष्ठ—जिसका वर्ण श्याम हो तथा जिसका स्पर्श खरदरा (कड़ा) और कठोर हो उसे किटिभ कुष्ठ कहते हैं॥

वैपादिकमाह—वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम्॥ २१॥

वैपादिक कुष्ठ—जिसमें हाथ-पाँव आदि फट जाते हैं और तीव्र पीड़ा होती है उसे वैपादिक कुष्ठ कहते हैं ॥ २१ ॥

अलसकमाह—कण्डूमद्भिः सरागैश्च गण्डैरलसकं वदेत् ॥

अलसक कुष्ठ—जिसमें कण्डू और राग युक्त (रक्तवर्ण के) गण्ड या फोड़े हों उसे अलसक कुष्ठ कहते हैं ।

दद्रुमण्डलमाह—सकण्डूरागपिडिकं दद्रुमण्डलमुद्गतम् ॥ २२ ॥

दद्रुमण्डल कुष्ठ—जिसमें कण्डू और लालिमा लिये हुये पिडिका युक्त मण्डलाकार त्वचा के ऊपर मण्डल हों उसे दद्रुमण्डल कुष्ठ (दाद) कहते हैं ॥ २२ ॥

चर्मदलमाह—रक्तं सशूलं कण्डूमत्सस्फोटं यद् दलत्यपि ।

तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शसहमुच्यते ॥ २३ ॥

चर्मदल कुष्ठ—जिसका वर्ण रक्त हो, उसमें शूल हो, कण्डू हो, फोड़े हों और फूट भी जाते हों और किसी प्रकार का स्पर्श असह्य हो उसे चर्मदल कुष्ठ कहते हैं ॥ २३ ॥

पामामाह—सूक्ष्मा बह्व्यः पिडिकाः स्राववत्यः पामेत्युक्ताः कण्डूमत्यः सदाहाः ।

पामा कुष्ठ—जिसमें छोटी २ बहुत सी पिड़िकायें हों स्राव और दाह होता रहे उसे पामा कुष्ठ कहते हैं ॥

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता ज्ञेया पाण्योः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च ॥ २४ ॥

कच्छुकुष्ठ—वही पामा जब तीव्र दाह और पिड़िकाओं से युक्त होकर हाथों और स्फिक् प्रदेश (कूल्हे) में उग्ररूप से हो जाते हैं तब उन्हें कच्छू कहते हैं ॥ २४ ॥

विस्फोटमाह—स्फोटाः श्यावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ॥

विस्फोटक कुष्ठ—जिस में पिड़िकायें श्यामा अथवा अरुण वर्ण की हों और उन पर की त्वचा पतली हो उसे विस्फोटक कुष्ठ कहते हैं ॥

रकसामाह—कण्डूमिता या पिडिका शरीरे संस्राव्यमाणा रकसोच्यते सा ॥ २५ ॥

रकसा कुष्ठ—जिस में शरीर पर पिड़िकायें कण्डू तथा स्राव युक्त बनी रहें उसे रकसाकुष्ठ कहते हैं ॥ २५ ॥

शतारुमाह—रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥

शतारुकुष्ठ—जिसमें रक्त अथवा श्याम वर्ण के दाह युक्त बहुत से व्रण हों उसे शतारु कुष्ठ कहते हैं ॥

विचर्चिकामाह—सकण्डूः पिडिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ॥ २६ ॥

विचर्चिका कुष्ठ—जिस कुष्ठ में कण्डू युक्त, श्यामवर्ण की बहुत स्राववाली पिड़िकायें हों उसे विचर्चिका कुष्ठ कहते हैं । यह विपादिका कुष्ठ का भेद है, स्वतः इसकी गणना कुष्ठों में नहीं है ॥

पाण्डुरं श्वित्रमित्युक्तं सस्रावं कण्डूसंयुतम् ।

श्वित्र कुष्ठ—जो पाण्डुवर्ण का स्राव और कण्डू युक्त हो उसे श्वित्र कुष्ठ कहते हैं ॥

अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ २७ ॥

साध्यासाध्यता—यह श्वित्र यदि अग्नि से जलने के कारण नहीं हुआ हो तो साध्य है और अन्य सभी असाध्य हैं ॥ २७ ॥

कुष्ठानां दोषत्रयस्य नियतलिङ्गमाह—

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् ।

वातजकुष्ठ—जो स्पर्श में कर्कश हो, वर्ण श्याम अथवा अरुण हो, रूक्ष हो और पीड़ा जिसमें अधिक हो उसे वातज कुष्ठ जानना चाहिये ॥

पित्तात्प्रकुपितं दाहरागस्रावान्वितं मतम् ॥ २८ ॥

पित्तजकुष्ठ—जिसमें दाह, राग (लालिमा) और स्राव हो उसे पित्तज कुष्ठ जानना चाहिये ॥

कफात्क्लेदि घनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् ।

कफजकुष्ठ—जिसमें क्लेद (पूय) हो घन गाढ़ापन हो, स्निग्धत्व (पिच्छिलता) हो, कण्डू हो, शीतलता हो और गुरुता हो उसे कफज कुष्ठ कहते हैं ॥

द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् । स्पर्शहानिरस्वेदत्वमीषत्कण्डूश्च जायते ॥ ९ ॥

द्वन्द्वज और सान्निपातिक कुष्ठ—इन उपर्युक्त लक्षणों में दो दोषों के मिलित लक्षण वाले कुष्ठ को द्वन्द्वज और तीनों दोषों के मिलित लक्षण वाले को सान्निपातिक कुष्ठ कहते हैं। सान्निपातिक कुष्ठ में स्पर्श का ज्ञान तथा पसीना नहीं होता और थोड़ी २ खुजली होती है ॥ ९ ॥

त्वगादिधातुगतकुष्ठलक्षणं प्रसंगेनाह—

तत्रादौ रसगतमाह—त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ।
त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्त्तनम् ॥ १० ॥

रसधातुगत कुष्ठ के लक्षण—कुष्ठ जब रस धातु के आश्रय से होता है तब उसमें अङ्ग का वर्ण विवर्ण, त्वचा में रूक्षता, रोमाञ्च और स्वेद अधिक होता है (इसमें धातु त्वचा में ही रहता है इसी कारण इसे त्वचागत भी कहते हैं) ॥ १० ॥

रक्तगमाह—

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रिते ।

रक्तगत कुष्ठ—जिसमें खुजली और पूय अधिक होता है उसे रक्ताश्रित कुष्ठ जानना चाहिये ॥

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिडिकोद्गमः ॥ ११ ॥
तोदः स्फोटाः स्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ।

मांसगत कुष्ठ—मांसगत कुष्ठ में बाहुल्य (मोटे मोटे मण्डल) हो जाते हैं, मुंह सूखता है, मांस कर्कश हो जाता है और पिडिकायें निकलती हैं, तोद तथा सुई चुभाने के समान पीड़ा और स्फोट होता है। यह मांसाश्रित कुष्ठ अचल होता है ॥ ११ ॥

मेदोगतमाह—दौर्गन्ध्यमुपदेहश्च पूयोऽथ कृमयस्तथा ॥ १२ ॥
गात्राणां भेदनं चापि कुष्ठे मेदःसमाश्रिते। कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां सम्भेदः क्षतसर्पणम् ॥ १३ ॥
मेदःस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥

मेदोगत कुष्ठ—जिस कुष्ठ में दुर्गन्ध हो, शरीर में लेप सा प्रतीत हो, पूय में कृमि उत्पन्न हों, शरीर का भेदन हो, हाथ टेढ़े हों, चलने की शक्ति का नाश हो, अङ्ग टूटते हों, क्षत (कुष्ठ मण्डल) फैलता हो और पूर्व कथित रसादि धातुगत कुष्ठ के सभी लक्षण भी होवें तो उसे मेदःस्थान गत कुष्ठ जानना चाहिये ॥ १२-१३ ॥

अस्थिमज्जागतमाह—

नासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु कृमिसम्भवः । भवेत्स्वरोपघातश्च मज्जास्थिसमाश्रिते ॥ १४ ॥

अस्थि और मज्जागत कुष्ठ—जिस कुष्ठ में नासिका भंग हो नेत्र रक्त वर्ण के हों, क्षत में कृमि उत्पन्न हों और स्वर का नाश हो जावे उसे अस्थि और मज्जागत कुष्ठ जानना चाहिये ॥

शुक्रगमाह—

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद् दुष्टशोणितशुक्रयोः । यदपत्यं तयोर्जातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ १५ ॥

शुक्रगत कुष्ठ—स्त्री-पुरुष के कुष्ठ बाहुल्य से दूषित रज और वीर्य से जो सन्तान होती है वह अवश्य कुष्ठ रोगी होती है। [illegible] (रक्त धातु से लेकर शुक्र धातुगत के कुष्ठों में जो सन्तान होती है वह उस दोष से कुष्ठ रोगी है) ॥ १५ ॥

साध्यासाध्यमाह—साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ।
मेदसि द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ १६ ॥

साध्यासाध्यता—त्वचागत (रसगत), रक्तगत, मांसगत तथा वात और कफ की अधिकता से होने वाले कुष्ठ साध्य होते हैं तथा मेद धातुगत कुष्ठ और द्वन्द्वज याप्य और मज्जा और अस्थिगत असाध्य होते हैं ॥ १६ ॥

कुष्ठस्यासाध्यलक्षणमाह—

कृमितृड्दाहमन्दाग्निसंयुक्तं यत्त्रिदोषजम् । प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ १७ ॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ॥

जिस कुष्ठ में कृमि हों, प्यास लगती हो, दाह हो, मन्दाग्नि हो जो तीनों दोषों से उत्पन्न हो, जिसके [illegible] छिन्न भिन्न अङ्गों से स्राव (रक्तस्राव) हो, जो [illegible] हो, जिसके नेत्र अधिक लाल हों, जिसका स्वर [illegible]

के हो गये हों, स्वर नष्ट हो गया हो पञ्चकर्म ( वमन विरेचनादि ) के गुणों को निष्फल करके जो उत्पन्न हुआ हो वह कुष्ठरोगी को मार डालता है अर्थात् ये सब कुष्ठ असाध्य हैं ॥ ३७॥

कुष्ठेषु चिकित्सार्थं दोषप्राधान्यमाह—

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तादौदुम्बरं कफात्।
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋष्याख्यं वातपित्तजम् ॥ ३८ ॥

कुष्ठरोग में वातादि दोषों की प्रधानता—वात की प्रधानता से कापालकुष्ठ, पित्त की प्रधानता से औदुम्बर कुष्ठ, कफ की प्रधानता से मण्डल तथा विचर्चिका कुष्ठ और वातपित्त उभय की प्रधानता से ऋष्यजिह्व कुष्ठ होता है ॥ ३८ ॥

चर्मैककुष्ठकिटिमसिध्मालसविपादिकाः। वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी ॥ ३९ ॥

वात-कफ की प्रधानता से चर्मैक, किटिभ, सिध्म, अलस और विपादिका कुष्ठ होते हैं ॥३९॥

पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा। सर्वैः स्यात्काकणं पूर्वं त्रिकं दद्रु सकाकणम् ॥४०॥
पुण्डरीकर्ष्यजिह्वे महाकुष्ठानि सप्त तु ॥

कफ-पित्त की प्रधानता से दद्रु, शतारु, पुण्डरीक, विस्फोट, पामा तथा चर्मदल नामक कुष्ठ होते हैं सब त्रिदोषों की प्रधानता से काकण कुष्ठ होता है। इस प्रकार पहले के त्रिक अर्थात् कपाल, उदुम्बर और मण्डल कुष्ठ तथा दद्रु, काकण, पुण्डरीक और ऋष्यजिह्व ये सात महाकुष्ठ होते हैं ॥ ४० ॥

श्वित्रमाह—

कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं दारुणं च यत्। निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधात्वुद्भवसंश्रयम् ॥ १ ॥

श्वित्र कुष्ठ के लक्षण—कुष्ठ के ही समान कारणों से उत्पन्न होने वाले अर्थात् जिन २ विरुद्ध भोजन, पाप कर्मादि से कुष्ठ होता है उन्हीं सब कारणों से उत्पन्न होने वाला श्वित्र, किलास अथवा दारुण कुष्ठ होता है। इसमें स्राव नहीं होता। यह त्रिदोष से अथवा त्रिधातु ( रक्त-मांस-मेद ) से उत्पन्न और त्रिधातु का आश्रय करके रहता है ॥ १ ॥

वाताद्रूक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत्। सदाहं रोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ २ ॥
सकण्डुरं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत्। वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

वातादि भेद से श्वित्र के लक्षण—वात कोप से उत्पन्न श्वित्र स्पर्श में रूक्ष तथा लाल वर्ण का होता है, पित्त कोप से उत्पन्न ताम्र वर्ण के लाल कमल पत्र समान दाह युक्त और रोम को नष्ट करने वाला होता है। कफ कोप से उत्पन्न श्वेत वर्ण का, घन ( दृढ़ ) और गुरु ( भारी ) और कण्डु युक्त होता है। यह कुष्ठ रोग क्रम से रक्त, मांस और मेद के आश्रय रहता है अर्थात् वातज अरुण वर्ण का रक्त गत होता है, पित्तज ताम्र वर्णादि का मांस गत और कफज श्वेत वर्णादि का मेदो गत होता है। इसके दो भेद और भी हैं एक व्रण ( अग्निदग्ध व्रण ) होने वाला और दूसरा वातादि दोषों से होने वाला। ये दोनों प्रकार के ( व्रणज, दोषज ) कुष्ठ उत्तरोत्तर कष्ट साध्य होते हैं ॥ २-३ ॥

तस्य साध्यासाध्यत्वमाह—

अशुक्लरोमाबहुलमसंसृष्टमथो नवम्। अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४ ॥

श्वित्र कुष्ठ की साध्यासाध्यता—जिस श्वित्र के रोम अधिक सफेद न हुए हों, त्वचा पतली हो, परस्पर सटा हुआ न हो, नवीन हो और अनग्निदग्ध ( अग्नि से जलने के कारण नहीं हुआ ) हो वह श्वित्र कुष्ठ साध्य होता है और इसके विपरीत लक्षण वाला श्वित्र कुष्ठ असाध्य होता है ॥ ४ ॥

गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम्। वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ५ ॥

गुह्य स्थान ( लिंग-योनि-गुदा आदि ) में हाथ की हथेली तथा पांव के तलवों और ओष्ठों में हुए श्वित्र कुष्ठ यदि नवीन भी उत्पन्न हुआ हो तो वह असाध्य है ॥ ५ ॥

कुष्ठादिसंसर्गजान्रोगानाह—

स्पर्शैकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशो गदाः। सर्वे संचारिणो नेत्रत्वग्विकारा विशेषतः ॥ ६ ॥

कुष्ठ आदि संसर्गज रोग—स्पर्श करने से, जूठा खाने से और शय्या पर सोने से संसर्गज रोग संसर्ग के कारण फैल जाते हैं। विशेष कर नेत्र और त्वचा के रोग तो अवश्य ही फैल जाते हैं ॥

प्रसङ्गाद्गात्रसंस्पर्शान्निःश्वासात्सहभोजनात्। सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात्॥ ७॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च। औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम्॥ ८॥

परस्पर एक दूसरे का संग, शरीर के स्पर्श से, श्वास प्रश्वास के परस्पर-संयोग से, एक साथ भोजन या एकत्र शयन करने और बैठने से तथा एक दूसरे के वस्त्र-माला आदि के धारण करने से कुष्ठ, ज्वर, शोष, नेत्राभिष्यन्द और औपसर्गिक (छोटी-छोटी रोग) एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य को हो जाते हैं॥ ७-८॥

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपि गच्छति। नातोऽनिष्टतरो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम्॥ ९॥

पुनर्जन्म में भी कुष्ठ होने का कथन—यदि कुष्ठ रोग की अवस्था में ही मृत्यु हो जावे तो पुनर्जन्म होने पर भी कुष्ठ रोग अवश्य हो जाता है। कुष्ठ से बढ़कर निन्दित दूसरा रोग नहीं है॥ ९॥

## अथ कुष्ठचिकित्सा—

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु। पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्र्यम्॥ १॥

कुष्ठ की सामान्य चिकित्सा—वात की अधिकता से होने वाले कुष्ठ में (औषध सिद्ध) घृत का पान कराना चाहिये, कफ की अधिकता से होनेवाले कुष्ठ में वमन कर्म कराना चाहिये और पित्त की अधिकता से होने वाले कुष्ठ में रक्तमोक्षण और विरेचन कराना चाहिये॥ १॥

[illegible] [illegible]। स्निग्धस्य मोक्षयेद्रक्तं कुष्ठ [illegible]॥ २॥

यदि रक्त अधिक दूषित हो गया हो तो रोगी को स्नेहन देकर [illegible] [illegible] से और [illegible] कर के रक्त निकलवा देवे। कुष्ठरोग में [illegible] करना चाहिये॥

घृते रक्षे हृते दोषे स्नेहे संशमिते निरे। रसायनानि पानानि [illegible] कुष्ठिनो मताः॥ ३॥

कुष्ठ रोगी का रक्त मोक्षण कराकर (विरेचनादि से) दोष को दूर कर [illegible] आदि से वायु का शमन होने पर रसायन और पान (अवलेह) आदि देना उचित है॥ ३॥

वमनम्—

वचावासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः। कषायो मधुना पीतो वान्तिकृत्कुष्ठनाशनः॥

वमन विधि—वच, अडूसा (अरूसा) पटोल पत्र, नीम तथा फलिनी (प्रियङ्गु) की छाल और [illegible] (को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बना) मधु के साथ पान करने से वमन होता है॥

विरेचनम्—विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः।

विरेचन विधि—निशोथ, दन्तीमूल और त्रिफला (आंवला, हरड़, बहेड़ा) का क्वाथ पिलाने से विरेचन होता है॥

पक्षे पक्षे [illegible] प्रतिमासं विरेचनम्। प्रतिवर्षं च वमनं कुष्ठे [illegible]॥ ४॥

चिकित्सा-क्रम—कुष्ठ रोग में [illegible] [illegible] द्वारा [illegible] और प्रत्येक महीने में विरेचन देना, प्रत्येक वर्ष में वमन कराना और [illegible] चाहिये॥ ४॥

## अथ लेपाः।

[illegible] [illegible] कुष्ठजित्॥ १॥

[illegible]—[illegible] [illegible] को समभाग लेकर जल के साथ विधिपूर्वक पीसकर लेप करने से कुष्ठ नष्ट होता है॥ १॥

[illegible] [illegible] कुष्ठविनाशनः॥ २॥

[illegible] [illegible] को समभाग लेकर जल के साथ विधिपूर्वक पीसकर लेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट होता है॥

[illegible] कुष्ठहर [illegible]।

[illegible] [illegible] को लेकर विधिपूर्वक पीसकर लेप करने से कुष्ठ रोग नष्ट होता है॥

[illegible] [illegible]॥ ३॥

करञ्ज बीजादि लेप—करञ्ज के बीज, चक्रमर्द के बीज और कूट को समभाग लेकर गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पीस कर लेप लगाने से कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

वल्गियष्ट्याग्निमल्लातदन्तीआरग्वधनिम्बवल्कैः। काञ्जिके पेषितैर्लेपः श्वेतकुष्ठविनाशकृत् ॥ ४ ॥

श्वेत कुष्ठ में वल्गयादि लेप—गन्धक, बायविडंग, चीता, भिलावा, दन्ती, अमलतास की जड़ और नीम की छाल को समभाग लेकर कांजी के साथ विधिपूर्वक पीस कर लेप लगाने से श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ४ ॥

श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जत्वचो दार्व्याः। सुमनःप्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥ ५ ॥

श्वेत करवीरादि लेप—श्वेत कनेर की जड़, कुड़े की छाल, करञ्ज की छाल, दारुहल्दी और चमेली के कोमल पत्र को समभाग लेकर जल के साथ विधिपूर्वक पीस कर लेप लगाने से निश्चय ही कुष्ठ रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

शैलेयकविषघ्नकयष्टिमधुसौराष्ट्रिकासर्जरसोत्पलानि।
शिला च चूर्णं नवनीतयुक्तं कुष्ठे स्रवत्यभ्यधिकं प्रदिष्टः ॥ ६ ॥

शैलेयादि लेप—शैल छरीला, बकोला, जेठी मधु, फिटकरी, राल, नील कमल और मैनसिल को समभाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर मक्खन में मिलाकर गाढ़ा लेप लगाने से स्राव देने वाला कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६ ॥

रसगन्धकयोः पिष्टं कटुतैलेन मर्दितम्। भृशं समर्थं तल्लेपात् सर्वकुष्ठं विनश्यति ॥ ७ ॥

सब प्रकार के कुष्ठ में लेप—पारद और गन्धक को समभाग लेकर विधिपूर्वक खरल कर कज्जली बना कर सरसों के तेल के साथ मर्दन कर लेप लगाने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥

## अथ क्वाथाः।

गुडूचीत्रिफलादार्वीक्वाथ उष्णैश्च वारिभिः। त्वग्दोषव्रणशोफघ्नः पीतो मासं सगुग्गुलुः ॥ १ ॥

गुडूच्यादि क्वाथ—गुरुची, आंवला, हरड़, बहेड़ा और दारुहल्दी समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके इसमें शुद्ध गुग्गुलु का प्रक्षेप देकर उष्णोदक के साथ एक मास तक पान करने से सभी प्रकार के त्वचा के दोष ( कुष्ठ विसर्पादि ) और व्रण शोथ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

खदिरत्रिफलानिम्बपटोलामृतवासकैः। अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठकण्डूविस्फोटकानपि ॥ २ ॥

खदिराष्टक—खैर की छाल, आंवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल, पटोलपत्र, गुरुची और अरूसा इन आठों औषधियों को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से कुष्ठ, कण्डू और विस्फोटक रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

महाकषाय—शुण्ठीनिम्बकिराततिक्तककणापाठाहरिद्राद्वयम्
त्रायन्ती त्रिफलाऽमृताऽब्जकटुका वासा वचा बाकुची।
मञ्जिष्ठाऽतिविषादुरालभमहानिम्बारिष्टग्रन्थिका
व्याधिघ्ना गजचिर्भटा सकुटजा भार्ङ्गी समुस्तायवा ॥ १ ॥
मूर्वा चैव पटोलपत्रसहिता रक्तं तथा चन्दनं
श्यामा पर्पटसारिवा कृमिहरा गायत्रिकासयुता।
गोमूत्रेण महाकषायमरुणोद्भूतः पिबेच्च पुमां
स्तस्याष्टादश यान्ति नाशमचिरात्कुष्ठानि दुष्टान्यपि ॥ २ ॥

महाकषाय—सोंठ, नीम की छाल, चिरायता, पीपल, पुरइन पाढ़ी, हल्दी, दारुहल्दी, त्रायमाण, आंवला, हरड़, बहेड़ा, गुरुची, कमल अथवा हिज्जल, कुटकी, अरूसा, बच, बाकुची, मजीठ, अतीस, जवासा, बकायन, चीते की जड़, बच, अमलतास की गुद्दी, माहरि, कौरया की छाल, बमनेठी, नागरमोथा, जौ, मूर्वामूल, परवल के पत्ते, रक्त चन्दन, श्यामालता (कृष्ण सारिवा) पित्त पापड़ा, श्वेत सारिवा, बायविडंग और खैर को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बना कर इसमें गोमूत्र का प्रक्षेप देकर सूर्योदय के समय जो मनुष्य पान करता है उसके अठारहों प्रकार के दूषित कुष्ठ शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ १–२ ॥

नवककषाय—त्रिफला [illegible]
एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति [illegible] ॥

मदन कषाय—आँवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल, चन्दन के पत्र, मजीठ, कुटकी, वच और इन्हीं को समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ बना कर सेवन करने से कफ-पित्त से उत्पन्न हुए कुष्ठ नष्ट होते हैं॥१॥

खदिरोदकम्—

प्रलेपोद्वर्तनस्नानपानभोजनकर्मसु। शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम्॥२॥

खदिरोदक—खैर का स्वरस, क्वाथ और चूर्ण आदि विधिपूर्वक बना कर लेप, उबटन, स्नान, पान और भोजन करने से सब प्रकार के त्वचा के रोग (कुष्ठ-विसर्पादि) नष्ट होते हैं॥२॥

दह्यमानाद्घृतं कुम्भे मयूरादिरसः। ताम्यधात्रीरसक्षौद्रैः [illegible] कुष्ठरसायनम्॥३॥

खदिरस रस—खैर की जड़, छाल तथा लकड़ी (पञ्चाङ्ग) लेकर कूटके १ घड़े के साथ एक घड़े में रखकर पकावे जब रस भली भाँति जल में आ जावे तब उस रस में अच्छा विशुद्ध खैर के रस में गोघृत, आँवले का रस और शहद का प्रक्षेप देकर पान करने से कुष्ठ नष्ट होता है॥२॥

निम्बादिकल्कः—

निम्बपत्रमदनं वा निम्बामलकमेव च। विडङ्गवाकुचीकल्कं लिह्यात्कुष्ठमपोहति॥३॥

निम्बादि कल्क—नीम के पत्तों को अथवा नीम और आँवला मिलाकर पीसकर सेवन करे अथवा वायविडंग और बाकुची का कल्क बनाकर तब तक सेवन करे जब तक कुष्ठ नष्ट नहीं हो जावे॥३॥

## अथ चूर्णानि।

पञ्चनिम्बचूर्णम्—

निम्बस्य पत्रं पुष्पं त्वचश्च मूलमेव च। पञ्चैतानि च सूक्ष्माणि समचूर्णानि कारयेत्॥१॥

अष्टभागावशेषेण खदिरासनवारिणा। भावयित्वा तु संयोगं साम्यान्यतानि कारयेत्॥२॥

पञ्चनिम्ब चूर्ण—नीम के पत्ते, फूल, छाल, फल और जड़ इन पाँचों को समभाग ले विधिपूर्वक महीन चूर्ण कर लेवे पश्चात् खैर और विजयसार समान भाग का विधिवत् अष्टमांश शेष क्वाथ बनाकर उस क्वाथ से इस चूर्ण को भावित करे। फिर इस भावित चूर्ण में इसके आगे लिखे हुए द्रव्यों के चूर्ण को लेकर इसके योग से चूर्ण को सिद्ध करे॥१-३॥

विडङ्गोऽथ विडङ्गानि व्याघ्रीभल्लातकार्कैः। भल्लातकहरीतक्यौ शुण्ठ्यमृतगोक्षुराः॥ ३॥

पद्मकशापुष्पीचित्रकनिशा। छोटपूर्णसमायुक्तं समभागं प्रकारयेत्॥४॥

वे द्रव्य ये हैं—त्रिफला मूल, वायविडंग, भल्लातक की गुठली, हरड़, शुद्ध गिलोय, हरद सोंठ, आँवला, गोखरू, पद्माख का बीज, बाकुची, चीता, हल्दी और ब्राह्मीम इन्हें समभाग लेकर चूर्ण करे॥३-४॥

मापयेन्मूत्ररसेन पुनः शुष्काणि कारयेत्। विषमायपूर्णमेतेषां [illegible] विभावयेत्॥५॥

विभाव्यसमांशं तु सर्पिषा पयसाऽपि वा। प्रत्यहं मात्रयैवेतत् खदिरासनवारिणा॥६॥

इन समस्त चूर्ण को भांगरे के स्वरस में भावित कर सुखा कर [illegible] पुनः अथवा गौ दुग्ध के अनुपान से प्रातःकाल सेवन करे और खैर तथा विजयसार का विधिवत् क्वाथ बनाकर पान करे॥५-६॥

परिहारो न चास्ति [illegible]। [illegible] कुष्ठं हन्ति [illegible]॥७॥

इस चूर्ण के सेवन करने में किसी प्रकार के परहेज की आवश्यकता नहीं है। इस चूर्ण के सेवन करने से कुष्ठ नष्ट हो जाता है॥७॥

स्वाङ्गं वीक्षितमस्य [illegible]। [illegible] पुष्पे [illegible] सेवयेत्॥

सर्वान्वाति विनिहन्ति [illegible] पञ्चनिम्बं चूर्णं॥८॥

[illegible] के रोग, [illegible] और [illegible] सभी रोग इससे नष्ट होते हैं और [illegible] (निघण्टु रत्नाकर) [illegible] है॥८॥

उद्धूलने सर्षपादिचूर्णम्—

सर्षपकरञ्जरजनीद्वयनिशादारुमञ्जिष्ठाः। त्रिफलाशटीपटीरश्वेतामूर्वाप्रियङ्गुकाश्चापि ॥ १ ॥
त्रिकटुत्रिगन्धकेसरलाक्षाश्चैषां कृतं रजः श्लक्ष्णम्।
उद्धूलनेन रक्तजपित्तजवातोत्थितं पामपि॥
निस्तोदभेदपिटिकं कुष्ठस्फुटनं विनाशयति ॥ २ ॥

सर्षपादि चूर्ण—सरसो, करञ्ज, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, हरड़, बहेड़ा, आँवला, कचूर, चन्दन, श्वेत सारिवा अथवा अतीस, मूर्वामूल, प्रियङ्गु, सोंठ, मरिच, पीपल दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर और लाख को समभाग लेकर विधिपूर्वक महीन चूर्ण कर कुष्ठ के व्रणों पर छिड़कने से रक्तज, पित्तज और वातज कुष्ठ नष्ट होते हैं तथा तोद (सुई चुभाने के समान पीड़ा) और भेद (टूटने के समान पीड़ा) से युक्त कुष्ठ व्रण, पिटिका, कुष्ठ और कुष्ठ का फूट २ कर बहना ये सब नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

विडङ्गादिचूर्णम्—

विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम्। हन्ति कुष्ठं कृमीन् मेहान्नाडीदुष्टभगन्दरान् ॥ १ ॥

विडङ्गादि चूर्ण—वायविडंग, हरड़, बहेड़ा, आंवला और पीपल को समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के अनुपान से चाटने से कुष्ठ, कृमि प्रमेह, नाड़ीव्रण, दुष्टव्रण तथा भगन्दर नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

## अथ गुटिकाः।

तत्रादौ सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका—

भल्लातकसहस्रैकं त्रिफलायाश्च वारिणि क्षिपेत्। द्रोणमात्रे पचेत्तावद्यावत्पादावशेषितम् ॥ १ ॥
शर्कराया दश पलान्येकं वाकुचिकापलम्। तथा चैवात्र देयानि पलानि दश गुग्गुलोः ॥२॥
खदिरारिष्टमञ्जिष्ठाबीजकं चेन्द्रवारुणी। चित्रकं द्वे हरिद्रे च देवदारुहरीतकी ॥ ३ ॥
भार्ङ्गी वचेति सर्वेषां प्रत्येकं च पलार्धकम्। प्रक्षिप्य गुटिका कार्या नाम्ना सर्वाङ्गसुन्दरी ॥
प्रत्यहं भक्षयेत्कुष्ठी स्वेतां बदरमात्रया। सर्वाण्येवोग्रकुष्ठानि शीघ्रमेव व्यपोहति ॥ ५ ॥

सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका—एक हजार शुद्ध भिलावा एक द्रोण त्रिफला के स्वरस अथवा क्वाथ में डाल कर पकावे जब चौथाई शेष रह जावे तब उतार-छानकर उसमें शक्करा दस पल, बाकुची का चूर्ण एक पल, शुद्ध गुग्गुल दस पल और खैर तथा नीम की छाल मजीठ विजयसार माहरि, चीते की जड़, हल्दी दारुहल्दी देवदारु, हरड़, बमनेठी और वच प्रत्येक का चूर्ण आधा २ पल मिलाकर गुटिका के विधान से बेर के समान बटी बनावे इस सर्वाङ्ग सुन्दरी गुटिका को प्रतिदिन कुष्ठ का रोगी खावे तो इससे सब प्रकार के उग्र कुष्ठ शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १-५ ॥

त्रिफलागुटिका—

त्रिफलावल्गुजलोहैः सायसगुजमृङ्गलाङ्गलीव्योषैः। सगुडैर्वाराहकन्दैः पलिकैरेकत्र सम्मिश्रैः ॥
गुटिकां प्रकल्प्य खादेदेकैकामक्षसम्मितां प्रातः।
कुष्ठं दद्रुकिलासं जित्वा वपुषः सर्वथा पलितम्।
जीवति वर्षशतं वै दीप्तहुताशो युवेव सोत्साहः ॥ २ ॥

त्रिफला गुटिका—हरड़, बहेड़ा, आंवला, शुद्ध भिलावा, लोहभस्म, कृष्ण जीरक (एघु) भांगरा, शुद्ध कलिहारी, सोंठ, मरिच, पीपल, पुराना गुड़ तथा वाराहीकन्द प्रत्येक एक २ पल लेकर विधिपूर्वक कूट पीसकर एक अक्ष के प्रमाण की बटी बनाकर एक वर्ष तक प्रतिदिन प्रातः एक २ बटी खाने से कुष्ठ, दद्रु, किलास, एवं पलित रोग को सर्वथा नष्ट कर देता है। इससे अग्नि दीप्त रहती है और युवा के समान उत्साह सहित मनुष्य सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहता है यह निश्चित है ॥ १-२ ॥

एकविंशतिको गुग्गुलुः—

चित्रकत्रिफलाव्योषमजाजीकारवीवचाः। सैन्धवातिविषा कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम् ॥ १ ॥
विडङ्गान्यजमोदा च मुस्तान्यमरदारु च। यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ॥२॥

मधुरस सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद्भिषक्। [illegible] यथाबलम् ॥ ३ ॥
[illegible] इति [illegible] ॥ ४ ॥
[illegible] वापि [illegible] ॥

षडशीति गुग्गुल—त्रिकटु, हरड़, बहेड़ा, आंवला, चीता, [illegible], [illegible], [illegible] [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और देवदारु को समभाग लेकर [illegible] चूर्ण बनाकर [illegible] हो उसके समान भाग शुद्ध गुग्गुल मिलाकर सबको कूट के पश्चात् [illegible] गुटिका के विधान से गोली बना ले। [illegible] भोजन के समय यथानुसार मात्रा से सेवन करने से अठारह प्रकार के कुष्ठ, कृमि, [illegible], [illegible], [illegible], मुखरोग और [illegible] को नष्ट करता है एवं गुल्म, [illegible] तथा [illegible] नष्ट होते हैं तथा [illegible] व्याधियों को यह गुग्गुल इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार विष्णु भगवान से असुर नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

त्रिफलामोदकः—

[illegible] पलानि दश पञ्च च। [illegible] चूर्णं [illegible] ॥ १ ॥
[illegible] पलानि दश [illegible]। [illegible] पलाश तु द्वे [illegible] ॥२॥
पञ्च [illegible] पलाश [illegible] च। [illegible] ॥ ३ ॥
[illegible] कुङ्कुम [illegible]। [illegible] चूर्णानि [illegible] ॥४॥
[illegible] नित्यशः। [illegible] ॥
[illegible]। [illegible] ॥६॥
[illegible]। [illegible] ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ८ ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ९ ॥

त्रिफला मोदक—त्रिफला (हरड़, बहेड़ा, आंवला) का समान मिश्रित चूर्ण १५ पल, [illegible] का चूर्ण ७ पल, [illegible] दो पल, शुद्ध [illegible], [illegible] चूर्ण [illegible], [illegible] २ कर्ष, शुद्ध गुग्गुल दो पल, [illegible] का चूर्ण [illegible], [illegible] का चूर्ण १ कर्ष, [illegible], मरिच, पीपल, सोंठ, [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] चूर्ण [illegible] २ कर्ष और सभी मिश्रित चूर्ण के बराबर [illegible] मिलाकर [illegible] की विधि से [illegible] प्रमाण का मोदक बनाकर [illegible] (पथ्य) भोजन करे तो इससे अठारह प्रकार के कुष्ठ, [illegible], [illegible] प्रकार के [illegible], २० प्रकार के [illegible], २० प्रकार के [illegible] तथा [illegible] ([illegible]) [illegible], [illegible] ([illegible]) [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] और [illegible] नष्ट होता है। इन रोगों में भोजन के [illegible] मोदक सेवन करना चाहिये। [illegible] के [illegible] में भोजन के पूर्व और [illegible] रोगों में भोजन के मध्य में [illegible] सेवन करना चाहिये। [illegible] सभी रोग [illegible] हो जाते हैं ॥ १-९ ॥

[illegible]

[illegible]—

[illegible]। [illegible] ॥ १ ॥
[illegible]। [illegible] ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ३ ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ४ ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ५ ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ६ ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ७ ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ८ ॥
[illegible]। [illegible] ॥ ९ ॥

चातुर्जातं च सम्पूर्णं घृतभाण्डे निधापयेत्। सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥१०॥
महाभल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः। प्राणिनां तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव च ॥११॥
श्वित्रमौदुम्बरं दद्रुमृष्यजिह्वं सकाकणम्। पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥१२॥
कृच्छ्रं कापालिकं कुष्ठं पामां चापि विपादिकाम्। वातरक्तमुदावर्तं पाण्डुरोगं वमीन्कृमीन् ॥
अर्शांसि षट् प्रकाराणि श्वासं कासं भगन्दरम्। अनुपानेन दातव्यं छिन्नातोयेन तं भिषक् ॥
भोजने च सदा योज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः। अन्यान्यपि च कुष्ठानि नाशयेन्नात्र संशयः ॥

भल्लातकावलेह—नीम की छाल, श्यामलता, अतीस, कुटकी, त्रायमाणा, हरद, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, पित्तपापड़ा, बाकुची, अनन्तमूल, वच, खैर, चन्दन, पुरइनपाढ़ो, सोंठ, कचूर, खमनेठो, अरूसा, चिरायता, कुटज की छाल, कालो निशोथ, मांइरि, मूर्वा, वायविडंग, अतीस, चीते की जड़, हस्तिकर्ण, पलास की जड़ अथवा गजकर्णकन्द, गुरुच, नागरमोथा, परवल के पत्र, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, अमलतास की गुदी, छितवन की छाल, सीरीष की छाल, घुंघची का फल, मजीठ, शुद्ध कलिहारी, रासना, दुहरकरंज, पुनर्नवा, दन्तीमूल, विजयसार भांगरा और कटसरैया (पियावासा) को पृथक् २ दो दो पल लेकर एकत्र जौ कुट कर एक द्रोण (४ आढ़क) जल के साथ पाक कर अष्टमांश शेष क्वाथ बनाकर छान लेवे और शुद्ध एक हजार शुद्ध भिलावे को छोलकर एक द्रोण जल में डाल कर चतुर्थांश शेष क्वाथ बनाकर छान लेवे और दोनों क्वाथों को लेकर वस्त्र से छानकर एकत्र कर पुनः अग्नि पर रख कर पाक करे और इसमें पुराना गुड़ एक तुला (सौ पल) मिलाकर घोलकर छान लेवे और अवलेह पाक की विधि से पुनः उसका पाक करे जब अवलेह सिद्ध होने के समय आवे तब उसमें उपरोक्त भिलावे के हजार बीजों को कूट-पीस कर डाल दे और त्रिकटु सोंठ, मरिच, पीपल, का चूर्ण एक पल, त्रिफला (आंवला, हरद, बहेड़ा) का चूर्ण एक पल और नागरमोथा, वायविडंग, चीते की जड़, चन्दन, सेंधानमक, कूट और जवाखार प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल और चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर प्रत्येक सममाग) का चूर्ण एक पल तथा शुद्ध गन्धक का चूर्ण चार पल मिलाकर भलीभाँति मर्दन कर घृत से स्निग्ध पात्र में रख लेवे। इस महाभल्लातक नाम के अवलेह को महादेव जी ने पहले पहल प्राणियों के हित के लिये निर्माण किया था। इसके सेवन करने से शीघ्र ही श्वित्र, उदुम्बर, दद्रु, ऋष्यजिह्व, काकण, पुण्डरीक और चर्म कुष्ठ तथा विस्फोट, रक्तमण्डल कष्ट साध्य कापालिक कुष्ठ, पामा, विपादिका, वातरक्त, उदावर्त्त, पाण्डु, वमन, कृमिरोग छै प्रकार के अर्श रोग, श्वास, कास, भगन्दर आदि सभी रोग नष्ट होते हैं। इसको गुरुच के स्वरस अथवा क्वाथ के अनुपान से सेवन करना चाहिये तथा इसके सेवन करने के समय पथ्य जो भोजन करने को दिया जावे उसमें विशेष कर उष्ण तथा अम्लरस पदार्थ कमी नहीं माना चाहिये। इसके सेवन करने से उल्लिखित कुष्ठों के अतिरिक्त अन्य कुष्ठ भी अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-१५ ॥

शशाङ्कलेखादिलेह—शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा सपिप्पलीका सहुताशमूला।
सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लीढा ॥ १ ॥

शशाङ्कलेखादि लेह—बाकुची, वायविडंग के बीज, पीपल, चीते की जड़, मण्डूरभस्म और आंवला इन सबके चूर्ण को पृथक् २ सममाग लेकर सबको तिल के तेल में मिलाकर चाटने से सब प्रकार के कुष्ठरोग नष्ट होते हैं। इस लेह का नाम शशाङ्कलेखादि लेह है ॥ १ ॥

धात्र्यवलेह—धात्र्यक्षपथ्यासविडङ्गवह्निभल्लातकावल्गुजलोहभृङ्गाः।
भागाभिवृद्धैस्तिलतैलमिश्रः सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेहः ॥ १ ॥

धात्र्यावलेह—आंवला, बहेड़ा, हरद, वायविडंग, चीते की जड़ शुद्ध भिलावा, बाकुची लोहभस्म और भांगरा इन सबको क्रम से भाग वृद्धि कर अर्थात् आंवला १ भाग, बहेड़ा २ भाग, हरड़ तीन भाग वायविडंग ४ भाग चीते की जड़ ५ भाग, भिलावा छै भाग, बाकुची ७ भाग, लोहभस्म ८ भाग और भांगरा ९ भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर तिल के तेल में मिलाकर लेह बनाकर चाटने से सब प्रकार के कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

## अथ घृतानि।

तिक्तषट्पलं घृतम्—निम्बं पटोलं दार्व्यौ दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम्।
कुर्यादर्धपलांशान्पर्पटकं त्रायमाणां च ॥ १ ॥
सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते पूते। चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाण च ॥२॥
मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्धकार्षिकान् भागान्। नवसर्पिषश्च षट्पलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥
कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपाण्ड्वामयश्वयथुहन्ति। पामाविसर्पपिटिकाकण्डूगण्डव्रणापहं सिद्धम् ॥४॥

तिक्त षट्पल घृत—नीम की छाल, परवल के पत्र, दारुहल्दी, जवासा, कुटकी, आंवला, हरड़, बहेड़ा, पित्तपापड़ा और त्रायमाणा प्रत्येक आधा-आधा पल (दो २ कर्ष) लेकर एक आढ़क (४ प्रस्थ) जल के साथ विधिपूर्वक क्वाथ करे जब अष्टमांश शेष रहे तो उतार-छानकर रख लेवे और लालचन्दन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा, नागरमोथा और इन्द्रजौ प्रत्येक आधा २ कर्ष पृथक् २ लेकर विधिपूर्वक कल्क कर रखे, तथा नवीन घृत छै पल लेकर मूर्च्छित कर सबको एकत्र मिलाकर घृत पाक विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से कुष्ठ, ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग, पामा, विसर्प, पिडिका, कण्डू, गण्ड और व्रणरोगादि नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

### पञ्चतिक्तक घृतम्—

निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा। कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ १ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम्। घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ २ ॥
पञ्चतिक्तमिति ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्। अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति। दुष्टव्रणकृमीनर्शःपञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥ ४ ॥

पञ्चतिक्तक घृत—नीम की छाल, परवल के पत्र छोटी कटेरी, गुरुच, अडूसा इन सबको कुटा हुआ पृथक् २ दश २ पल लेकर एक द्रोण (४ आढ़क) जल में क्वाथ की विधि से पाक कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छानकर लेवे और मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ तथा त्रिफला समान मिलित का कल्क १½ प्रस्थ मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर रखे। इसका नाम पञ्चतिक्त घृत है यह कुष्ठरोग नष्ट करने के लिये प्रसिद्ध है इसके पान करने से अस्सी प्रकार के वातज रोग, चालिस प्रकार के पित्तज रोग, बीस प्रकार के कफज रोग नष्ट होते हैं तथा दुष्टव्रण, कृमि, अर्श तथा पांचो प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

महातिक्तकं घृतम्—सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्।
मुस्तामुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ॥ १ ॥
धन्वयवासकचन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च। षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिवे चोभे ॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तं च। कल्कान्कुर्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वं त्रायमाणां च ॥
कल्कस्य चतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम्।
द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ ४ ॥
कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि। वीसर्पमम्लपित्तं वातासृक्पाण्डुरोगं च ॥ ५ ॥
विस्फोटकान्सपामानुन्मादं कामलां ज्वरं कण्डूम्।
हृद्रोगं गुल्मपिटिकां भगन्दरं गण्डमालां च ॥ ६ ॥
हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः। योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥७॥

महातिक्तक घृत—छितवन की छाल, अतीस, अमलतास की छाल, कुटकी, पुरइनपाढ़ी, नागरमोथा, खस, आंवला, हरड़, बहेड़ा, परवल के पत्र नीम की छाल, पित्तपापड़ा, जवासा, लालचन्दन, पीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी वच, मादी, शतावरीमूल, सारिवा, कृष्ण सारिवा इन्द्रजौ, अडूसा, मूर्वामूल, गुरुच, चिरायता, मुलेठी और त्रायमाणा प्रत्येक को एक २ भाग लेकर विधिवत् कल्क कर रख लेवे और पृथक् इन्हीं ओषधियों के क्वाथ में अठगुना जल मिलाकर पकावे, जब चतुर्थांश शेष रह जावे तब उतार-छानकर रख लेवे और पूर्वोक्त कल्क से चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से दुगुना आंवले का स्वरस तथा उपरोक्त सिद्ध क्वाथ सब मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर जब मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर पात्र में

कुष्ठ, रक्त पित्त, प्रबल अर्श जिनमें रक्त बहता रहता हो, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडिका, भगन्दर और गण्डमाला शीघ्र नष्ट होते हैं। इसको समय पर बलानुसार मात्रा से पान करना चाहिये। सैकड़ों योगों से भी जो महारोग नष्ट नहीं हुए हों उनको भी यह महातिक्त घृत शीघ्र नष्ट करता है॥ १-७॥

महाखदिरघृतम्—

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले। तुलार्धं सर्वं एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः॥ १॥
पर्पटः कुटजश्चैव वृषः क्रिमिहरस्तथा। हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत्॥ २॥
सप्तपर्णश्च सङ्क्षुण्णो दशद्रोणे तु वारिणि। अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत्॥ ३॥
धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाऽऽढकं पचेत्। महातिक्तककल्कैस्तु यथोक्तैः पलसम्मितैः॥४॥
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात्। महाखदिरमित्येतत्परं कुष्ठविकारनुत्॥ ५॥

महाखदिर घृत—खैर पांच तुला (५०० पल), सीसम की छाल एक तुला (१०० पल) विजयसार की छाल एक तुला (१०० पल), करञ्ज, नीम की छाल, बेत की छाल, पित्तपापड़ा, कोरया की छाल, अरूसा, वायविडंग, हल्दी दारुहल्दी, अमलतास की गुद्दी, गुरुच, हरड़ बहेड़ा, आंवला, निशोथ और छितवन की छाल इन सबको समान मिलित आधा तुला (५० पल) लेकर कूट कर दस द्रोण (४० आढक) जल में मिलाकर क्वाथ की विधि से अष्टमांश शेष रहने पर उतार-छानकर रस लेवे और आंवले का स्वरस क्वाथ के समान लेवे, नवीन एवं मूर्च्छित गोघृत एक आढक (४ प्रस्थ) लेवे तथा महातिक्तक घृत की कल्कीय औषधियां अर्थात् छितवन की छाल, अतीस, अम्लतास की जड़ या छाल, कुटकी, पुरइनपाढी, नागरमोथा खस, हरड़, बहेड़ा, आंवला, के पत्ते, नीम की छाल, पित्तपापड़ा, जवासा, लालचन्दन, पीपल पदुम काठ, हल्दी, दारुहल्दी, बच माहरि, सतावरि, सारिवा, कृष्ण सारिवा, इन्द्रजौ, अरूसा, मूर्वामूल, गुरुच, चिरायता, मुलहठी और त्रायमाणा प्रत्येक एक २ पल लेकर विधिपूर्वक कल्क कर सबको यथाविधि मिलाकर घृत पाकविधि से घृत सिद्ध कर पान तथा मर्दन करने से सब प्रकार के कुष्ठ रोग नष्ट होते हैं। यह महाखदिर घृत सभी प्रकार के कुष्ठ के विकारों को नष्ट करता है॥ १-५॥

## अथ तैलानि।

चित्रकादितैलम्—

शुभ्रस्य करवीरस्य रसो वेल्लं च चित्रकम्। त्रिभिश्च पाचितं तैलमभ्यङ्गात्कुष्ठजातिनुत्॥१॥

चित्रकादि तैल—श्वेत पुष्प वाले कनेर का स्वरस, वायविडंग और चीते की जड़ को समान भाग लेकर विधिवत् कल्क कर जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर तेल पाक की विधि से तैल सिद्धकर लगाने से कुष्ठ नष्ट होता है॥

वज्रतैलम्—

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजान्। मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोटयोरपि॥ १॥
करञ्जबीजं त्रिफलां त्रिकटुं रजनीद्वयम्। सिद्धार्थकं विडङ्गं च प्रपुन्नाटं च सहरेत्॥ २॥
मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम्। अभ्यङ्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम्॥ ३॥

वज्र तैल—छितवन, करञ्ज, मदार, मालती लता, कनेर, थूहर, सिरिस, चीता और मदार की जड़, करंज का बीज, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सोंठ, पीपल मरिच हल्दी, दारुहल्दी, श्वेत सरसों, वायविडंग और चकवड़ के बीज को समभाग लेकर विधिपूर्वक गोमूत्र के साथ पीस कर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल तथा तेल से चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध करे यह वज्र तैल लगाने से सभी प्रकार के कुष्ठ तथा नाडीव्रण और दुष्ट व्रण नष्ट होता है॥ १-३॥

मञ्जिष्ठाद्यं तैलम्—

मञ्जिष्ठाकुष्ठनिशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः। गुणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं परम्॥ १॥

मञ्जिष्ठादि तैल—मजीठ, कूठ, हल्दी, चकवड़ और अमलतास के पत्ते प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल तेल के समान भाग गुणक

(गांप एण या गुलाबकण्टा) का स्वरस और तेल के चौगुना जल मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर लगाने से कुष्ठ नष्ट होता है ॥ १ ॥

## अथाऽऽसवाः।

तत्राऽऽदौ खदिरासवः—

खदिरस्य तुलार्धं तु तत्तुल्यं देवदार्वपि। वराया विंशतिर्दार्व्याः पलानां पञ्चविंशतिः ॥ १ ॥
वाकुच्या द्वादश पलान्यष्टद्रोणेऽम्भसः पचेत्। द्रोणशेषे कषाये तु पूतशीते विनिक्षिपेत् ॥२॥
धातक्या विंशतिपलं माक्षिकस्य शतद्वयम्। शर्करायास्तुलामेकां चूर्णानीमानि दापयेत् ॥३॥
कङ्कोलक लवङ्ग च एलाजातीफलत्वचम्। केशरं मरिचं पत्र पलिका युपकल्पयेत् ॥ ४ ॥
पिप्पलीनां तु कुडवं स्थापयेद्घृतभाजने। मासादूर्ध्वं पिबेन्मात्रामनपेक्ष्य बलाबलम् ॥ ५ ॥
सर्वकुष्ठहरो ह्येष पाण्डुहृद्रोगकासनुत्।
कृमिग्रन्थ्यर्बुदग्रन्थिगुल्मप्लीहोदरान्तकृत्। एष वै खदिरारिष्टः कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ६ ॥

खदिरासव—खैर आधा तुला (५० पल), देवदारु खैर के समान अर्थात् आधा तुला (५० पल), त्रिफला समान मिश्रित २० पल, दारुहल्दी २५ पल और बाकुची १२ पल सबको कूट कर आठ द्रोण (३२ आढक) जल में मिलाकर क्वाथ की विधि से क्वाथ करे जब अष्टमांश एक द्रोण जल शेष रह जावे तब उतार–छानकर एक बड़े मिट्टी के पात्र में रख देवे और इसमें धाय का फूल २० पल, शहद २०० पल तथा शकर एक तुला (१०० पल) और आगे लिखी औषधियों का चूर्ण अर्थात् कंकोल, मरिच, लवंग, इलायची, जायफल, दालचीनी, नागकेसर मरिच, तेजपात प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल और पीपल का चूर्ण एक कुडव (१६ मानिका) मिलाकर घृत से चिकने किये हुए पात्र में रख कर आसव की विधि से एक मास तक रक्खे पश्चात् आसव सिद्ध हो जाने पर बल के अनुसार मात्रा से पान करने से यह सब प्रकार के कुष्ठ को नष्ट करता है और पाण्डु, हृद्रोग, कास, कृमि, ग्रन्थिरोग अर्बुद, ग्रन्थिगुल्म, प्लीहा और उदररोग को भी नष्ट करता है। कृष्णात्रेय ऋषि ने इसे खदिरारिष्ट माना है। ॥ १–६ ॥

कनकारिष्टः—खदिरकषाय द्रोणं सर्पिष्कुम्भे निधापयेत्सव्ये।
पलिकामात्रा येष्वान्हृत्वा तानेव सूक्ष्मचूर्णं तु ॥ १ ॥
त्रिफला त्रिकटुरजनीकनकत्वग्वाकुची गुडूची च।
सविडङ्गमत्र मधुपलशतद्वयं प्रक्षिपेत्सर्वम् ॥ २ ॥
धातक्याश्च पलान्यष्टौ कार्येऽस्मिन्प्रदेयानि।
प्रातः प्रातस्तु पिबन्नाशयति चिरोत्थितं कुष्ठम् ॥ ३ ॥
मासेन सर्वरोगान्विनिहन्ति च सर्वशोफमेहांश्च।
निर्जितकासश्वासो गुदकीलभगन्दरैर्मुक्तः। कनकारिष्टं प्रपिबन्भवति पुमान्कनककान्तिश्च ॥

कनकारिष्ट—खैर का क्वाथ एक द्रोण (४ आढक) लेकर घृत से स्निग्ध पात्र में रख देवे और उसमें त्रिफला समान मिश्रित, त्रिकटु समान मिश्रित, हल्दी, धतूर की छाल, बाकुची, गुरुच और वायविडङ्ग प्रत्येक के एक २ पल चूर्ण इसमें मिला देवे और शहद २०० पल, तथा धायका फूल आठपल मिलाकर अरिष्ट की विधि से एक मास तक बन्द रक्खे। अरिष्ट सिद्ध हो जाने पर प्रति दिन प्रातः बलानुसार मात्रा से पान करने पर पुराना कुष्ठ नष्ट होता है। एक मास निरन्तर इसके सेवन करने से सब प्रकार के शोथ, प्रमेह, कास, श्वास, अर्श और भगन्दर आदि नष्ट होते हैं। इस कनकारिष्ट के पान करने से मनुष्य स्वर्ण के समान कान्तिवाला हो जाता है ॥ १–४ ॥

दद्रुचिकित्सा—

कासमर्दकमूलानि सौवीरेण तु पेषयेत्। दद्रुकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ १ ॥

दद्रुचिकित्सा—कसौंदी (बड़े चकवड़) की जड़ को सौवीरक के साथ पीसकर लेप करने से दद्रु तथा किटिभनाम के कुष्ठ आदि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

बीजानि वा मूलकसर्षपाणां लाक्षारजन्यौ प्रपुनाडबीजम्।
श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण विलेपनं स्यात्।
दद्रूणि सिध्मं किटिभानि पामां कपालकुष्ठं विषमं च हन्युः ॥ २ ॥

मूलकबीजादि योग—मूली के बीज, सरसों के बीज, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, चकवड़ के बीज, चील की लकड़ी का दूध (गोंद या लासा), सोंठ, मरिच, पीपल, वायविडङ्ग और कूट प्रत्येक सममाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से दद्रु, सिध्म, किटिम नाम का कुष्ठ, पामा और कपाल कुष्ठ यदि विषम भयङ्कर भी हो गये हों तो नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत्। दद्रुकिटिमकुष्ठानि हन्ति सिध्ममसंशयः ॥ ३ ॥

आरग्वध पत्रयोग—अमलतास के पत्तों को कांजी के साथ पीसकर लेप करने से दद्रु, किटिम कुष्ठ अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

प्रपुन्नाटस्य बीजानि धात्री सर्जरसः स्नुही। सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्वर्तनं परम् ॥ ४ ॥

दद्रु में प्रपुन्नाट योग—चकवड़ के बीज, आँवला, राल और थूहर प्रत्येक सममाग लेकर सौवीराम्ल के साथ पीस कर लेप तथा उबटन करने से दद्रु नष्ट होता है। दद्रु के लिये यह उत्तम योग है ॥ ४ ॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्जिकतक्रपिष्टाः।
त्रिभिः प्रलेपैरपि दद्रुमूलं दद्रुं च कण्डूं च विनाशयन्ति ॥ ५ ॥

कण्डु में दूर्वादि योग—दूब, हरड़, सेंधानमक, चकवड़ के बीज, श्वेत तुलसी, प्रत्येक समान भाग लेकर कांजी और तक्र के साथ पीस कर तीन बार ही लेप करने से दद्रु एवं घन मूलकण्डू अर्थात् पुरानी जमी हुई भी कण्डू (खुजली) नष्ट होती है ॥ ५ ॥

विडङ्गगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः। धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽयं दद्रुकुष्ठनिषूदनः ॥ ६ ॥

विडङ्गादि लेप—वायविडङ्ग, चकवड़ के बीज, कूट, हल्दी, सेंधानमक और सरसों प्रत्येक सममाग लेकर धान्याम्ल के साथ पीस कर लेप करने से दद्रु तथा अन्य कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥६॥

लघुमरीचाद्य तैलम्—

मरिचालशिलाब्दार्कपयोऽश्वारिजटात्रिवृत्। शकृद्रसविशालाद्विनिशादारुचन्दनैः ॥ १ ॥
कटुतैलं पचेदस्य द्व्यक्षं विषपलान्वितम्। सगोमूत्रं तदभ्यङ्गाद्दद्रुश्वित्रविनाशकृत् ॥ २ ॥

लघुमरिचाद्य तैल—मरिच, हरताल, मैनसिल, नागरमोथा, मदार का दूध, कनेर की जड़, निशोथ, गोबर का रस, माहुरि, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु और लालचन्दन प्रत्येक एक २ अक्ष (एक २ कर्ष) और मीठा विष एक पल लेकर-सबका विधिपूर्वक कल्क कर जितना कल्क हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल के चौगुना गोमूत्र डाल कर तेल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से दद्रु और श्वित्र कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १–२ ॥

दरदादिलेप—दरदगन्धकपारदपिप्पलीविषविडङ्गनिशाग्निमरीचकम्।
अभयशुण्ठिघनाब्धिकवाकुचीकटुनृपद्रुममेदगजान्वितम् ॥ १ ॥
सममिदं खलु निम्बरसैर्युतं हरति दद्रुजकण्डुविसर्पकान्।
हरति लूतभगन्दरमण्डलं तनुविलिप्तमहो क्षणतो नृणाम् ॥ २ ॥

दरदादि लेप—हिंगुल (सिंगरिफ), गन्धक, पारद, पीपल, मीठाविष, वायविडङ्ग, हल्दी, चीते की जड़, मरिच, हरड़, सोंठ, नागरमोथा, समुद्रफेन, बाकुची बीज, कुटकी, राजवृक्ष (अमलतास) के पत्ते, चकवड़ के बीज, प्रत्येक सममाग लेकर पहले पारद-गन्धक की कज्जली कर सबको एकत्र कर नीम के पत्ते के स्वरस अथवा छाल के क्वाथ के साथ सबको पीसकर लेप करने से दद्रु, कण्डु, विसर्प, लूताविष, भगन्दर, मण्डलकुष्ठ आदि रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥

चर्मारव्यचिकित्सा—

सूतगन्धकयोः पिष्ट्वा कज्जलीकां विधाय च। म्रक्षणेन विमर्द्याथ करिचर्मलेपने हितम् ॥१॥

चर्मारव्य कुष्ठ चिकित्सा—पारद और गन्धक सममाग लेकर विधिपूर्वक कज्जली बनाकर (मर्दन कर) मक्खन के साथ लेप करने से गज चर्मरोग (चर्मारव्य कुष्ठ वा चर्मरोग) नष्ट होता है॥

कषायगौरीगदतुत्थजीरसत्तोभवं कर्षमिदं पृथक्च।
शिलाघटी सौ रविकर्षसख्यौ सार्धो विभागः किल पारदस्य ॥ २ ॥
कर्षैश्च विंशत्प्रमितैर्घृतस्य सर्वं विमर्द्य किल ताम्रपात्रे।
ततोऽङ्गलेपाद्दिवसैस्त्रिभिश्च सीघ्रं हरेच्च रोगी गजकर्णपामाम् ॥ ३ ॥

कशाचादि लेप—कबाब चीनी, हल्दी, कूट, तूतिया, जीरा और मरिच प्रत्येक पृथक् २ एक २ कर्ष लेवे और मैनसिल तथा गन्धक पृथक् २ बारह २ कर्ष लेवे तथा पारा छै कर्ष लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर सबको एकत्र मर्दन कर उसमें २० कर्ष गोघृत मिलाकर ताम्बे के पात्र में भलीभाँति मर्दन कर (पिस कर) लेप करे तो तीन दिन तक ही इसके लेप करने से तीव्र गजकर्ण रोग और पामा रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

गुञ्जाचित्रकशङ्खभस्मरजनीदूर्वाभयाब्धाङ्गक्षीरद्रुविष-धूम्रकुमारिकाजलधरार्कक्षीरधूमेशजैः ।
पारदगृहधूमजाविडङ्गमरीचपत्रीसैन्धखारीयुतैः कार्यं वै गजचर्मदद्रुरकसाकण्डूघ्नमुद्वर्तनम् ॥४॥

गुञ्जादि उद्वतन—गुञ्जा (रत्तियाँ), चीते की जड़, शङ्खभस्म, हल्दी, दूब, हरड़, करियारी विष, सेंहुड़, सेंधानमक, घिकुवार, नागरमोथा, मदार का दूध, गृह धूम (झाला), पारद, बाकुची, चकवड़ के बीज, वायविडंग, मरिच, हड़ताल और खारी (बड़ी खजूर) प्रत्येक समान भाग पीसकर उबटन करने से गज चर्म कुष्ठ, दद्रु, रकसा और कण्डू नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

आरग्वधदलैः पिष्टैर्लेपः काञ्जिकयुक्कृतः करिखगदद्रुकुष्ठानि हन्ति पामां विचर्चिकाम् ॥ ५ ॥

आरग्वधपत्र योग—अमलतास के पत्तों को काँजी के साथ पीस कर लेप करने से गज चर्म, दद्रु कुष्ठादि, पामा और विचर्चिका नष्ट होते हैं ॥ ५ ॥

किटिभचिकित्सा—

चक्राङ्कबीजं त्वक्क्षीरभावितं मूत्रसंयुक्तम् । रविवेतसकन्दं च लेपनं कटिभापहम् ॥ १ ॥

किटिभ चिकित्सा—चकवड़ के बीज और दालचीनी को समान भाग लेकर दूध से भावित करे और मदार तथा बेत की जड़ को भी उसी के समान लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से किटिभ कुष्ठ नष्ट होता है ॥ १ ॥

पिप्पलीपूतिकायरयाकुष्ठगोपित्तचित्रकैः । लेपः सम्यक्प्रदातव्यः किटिभस्य चिकित्सकैः ॥२॥

पिप्पल्यादि लेप—पीपल, पूति करंज, हरड़, कूट, गौ का पित्त (गोरोचन) और चीते की जड़ प्रत्येक समभाग लेकर भलीभाँति पीस कर लेप करने से किटिभ कुष्ठ नष्ट होता है ॥ २ ॥

गोमूत्रवारिसम्पिष्टैः शिलाकासीसतुत्थकैः । लेपः किटिभवीसर्पकुष्ठनाशाय पूजितः ॥ ३ ॥

गोमूत्रादि लेप—गोमूत्र मैनसिल, कासीस और तूतिया प्रत्येक समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर लेप करने से किटिभ कुष्ठ, वीसर्प तथा अन्यान्य कुष्ठ रोग भी नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

सिध्मचिकित्सा—

धात्रीफलं सर्जरसो यावशूकस्त्रयं त्रयम् । सौवीरपेषितं सर्वं सिध्मकुष्ठविदारणम् ॥ १ ॥

धात्र्यादि लेप—आँवले के फल, राल और जवाखार प्रत्येक समान भाग लेकर सौवीराम्ल अथवा काँजी के साथ पीस कर लेप करने से सब प्रकार के सिध्म कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्मम् ।
क्षारेण कदल्या वा रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २ ॥

शिखरी रसादि योग—अपामार्ग के रस के साथ मूली के बीजों को पीस कर लेप करने से अथवा केले के क्षार में हल्दी का चूर्ण मिलाकर लेप करने से सिध्म नष्ट होता है ॥ २ ॥

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपा दुरालभा । घृतकेसरपिष्टं निघ्नन्ति चिरकालजं सिध्मम् ॥३॥

कुष्ठादि योग—कूट, मूली का बीज फूल प्रियङ्गु, सरसों, जवासा और केसर प्रत्येक समभाग पीस कर लेप करने से पुराना सिध्म रोग भी नष्ट होता है ॥ ३ ॥

गन्धपाषाणमिश्रेण यवक्षारेण लेपितम् । सिध्मं नाशमुपैत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ ४ ॥

गंधपाषाणादि लेप—गन्धक और जवाखार समान भाग पीस कर तेल में मिलाकर लेप करने से शीघ्र ही सिध्म रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च । गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ ५ ॥

कासमर्द बीज लेप—कसौंदी (बड़े चकवड़) के बीज और मूली के बीज तथा गन्धक प्रत्येक समभाग पीस कर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट होता है। यह अत्युत्तम औषध है ॥ ५ ॥

बीजं मूलकजं निम्बपत्राणि सितसर्षपाः । गृहधूमं च संपिष्य तक्रेणाशु प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥

उद्वर्त्य नवनीतेन क्षालयेदुष्णवारिणा। ध्रुवद्यूमेन सिध्मानि शाम्यन्त्याशु शरीरिणाम् ॥७॥

मूल बीजादि लेप—मूली के बीज, नीम के पत्ते, श्वेत सरसों, गृह धूम (झाला) प्रत्येक सममाग जल के साथ पीस कर जिस अङ्ग पर सिध्म हुआ हो उस अङ्ग पर लेप करे पश्चात् मक्खन से उबटन कर के उष्ण जल से धो दे। इस प्रकार तीन दिन तक करने से सिध्म रोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ६-७ ॥

लाक्षा श्रीवेष्टक कुष्ठ हरिद्रा गौरसर्षपाः। व्योष मूलकबीजानि प्रपुन्नाटफलानि च ॥ ८ ॥
एतान्यत्र प्रदिष्टानि कुष्ठेषूद्वर्तनं परम्। सिध्मानां किटिमानां च दद्रूणां च विशेषतः॥ ९ ॥

लाक्षादि लेप—लाख, राल, कूट, हल्दी, श्वेत सरसों, सोंठ, मरिच, पीपल, मूली के बीज और चकवड़ के फल (बीज) प्रत्येक सममाग लेकर जल के साथ पीस कर उबटन करने से कुष्ठ, सिध्म, किटिम और दद्रु में विशेष लाभ होता है ॥ ८-९ ॥

कार्पासिकापत्रविमिश्रकाकजङ्घाकृतो मूलकबीजयुक्तः।
तक्रेण लेपः क्षितिपुत्रवारे सिध्मानि सद्यो नयति प्रणाशम् ॥ १० ॥

कार्पासपत्र लेप—कपास के पत्ते, काकजङ्घा और मूली के बीज प्रत्येक सममाग लेकर मठ्ठे के साथ मङ्गलवार को लेप करने से सिध्मरोग शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ १० ॥

गोमूत्रेणाथ तक्रेण जीर्णसौवीरकेण वा। पिष्टमूलकबीजानां लेपनात्सिध्मनाशनम् ॥ ११ ॥

सिध्महर लेप—गोमूत्र से अथवा मठ्ठे से अथवा पुराने कांजी से मूली के बीजों को पीस कर लेप करने से सिध्म रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

विपादिकाचिकित्सा—

धत्तूरबीजकल्केन माणकक्षारवारिणा। कटुतैलं विपक्वं तु हन्त्याद्विपादिकाम् ॥

विपादिका-चिकित्सा—धतूरे के बीजों का विधिवत् कल्क बना उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तैल और तैल के चौगुना मानकन्द के क्षार का जल मिलाकर विधिवत् तैल सिद्ध कर लगाने से विपादिका रोग नष्ट होता है ॥

तुण्डीरसेन संसिद्धं घृतं हन्ति विपादिकाम् ॥ १ ॥

तुण्डी घृत—तुण्डी (बिम्बाफल) के स्वरस से विधिवत् सिद्ध किया घृत सेवन करने से विपादिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

पामाकण्डूकच्छूविसर्पविस्फोटचर्मदलविचर्चिकाचिकित्सा क्रमेण व्याख्यास्याम —

सिन्दूरजीरद्वयरात्रियुग्ममनःशिलावह्निजगन्धकानाम्।
रसान्वितानां घृतयोजितानां पामा व्रजेद्दूरतर त्रिलेपात् ॥ १ ॥

सिन्दूरादि योग—सिन्दूर श्वेतजीरा, कृष्णजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, मैनसिल, मरिच गन्धक और पारद प्रत्येक सममाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली बना कर उसमें अन्य सभी औषधियों के चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर घृत में मिलाकर तीन बार लेप करने से पामा रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

सैन्धवं चक्रमर्दं च सर्षपं पिप्पलीं तथा। लेपयेदारनालेन पामाकण्डूविनाशनम् ॥ २ ॥

सैन्धवादि योग—सेंधानमक, चकवड़ के बीज, सरसों और पीपल इन सबको पीस कर कांजी मिलाकर लगाने से पामा और कण्डू नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

जीरकतैलम्—

जीरकस्य पलं पिष्ट्वा सिन्दूरार्धपलं तथा। कटुतैलं पचेदाभ्यां सद्यः पामाहरं परम् ॥
वृद्धवैद्योपदेशेन पाच्यं तैलं पलाष्टकम् ॥ १ ॥

जीरक तैल—जीरा एक पल लेकर पीस ले और सिन्दूर आधा पल (२ कर्ष) ले पश्चात् इन दोनों को ८ पल सरसों के तैल में पकावे। इसके लगाने से शीघ्र ही पामा रोग नष्ट होता है। वृद्ध वैद्यों के उपदेश से यहाँ आठ पल तैल लेना चाहिये। (इसलिये वृद्ध वैद्य का नाम लिया गया है कि योग के अनुसार तैल छै पल ही लिया जाता क्योंकि कल्क के चतुर्गुण ही मूर्च्छित तैल ग्रहण करने का विधान है) ॥ १ ॥

बृहत्सिन्दूराद्य तैलम्—

सिन्दूर चन्दन मांसी विडङ्गं रजनीद्वयम्। प्रियङ्गु पद्मक कुष्ठ मञ्जिष्ठां खदिरं वचाम् ॥१॥
जात्यर्कनिवृतानिम्बकरञ्ज विषमेव च। कृष्णचित्रकलोध्रं च प्रपुन्नाट च सद्रसेत् ॥ २ ॥
श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमानया। अभ्यङ्गेन प्रयोज्य तद्वर्णकृत्कुष्ठनाशनम् ॥ ३ ॥
पामा विचर्चिकां कण्डूं विसर्पं विषमेव च। रक्तपित्तोत्थितान् हन्ति रोगानेव विधान् बहून्॥
सिन्दूराद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ४ ॥

बृहत् सिन्दूराद्य तैल—सिन्दूर, लालचन्दन, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, फूलप्रियङ्गु, पदुमकाठ, कूट, मजीठ, खैर, बच, चमेली के पत्ते, मदार के पत्ते, निशोथ, नीम के पत्ते, करञ्ज के पत्ते, मीठा विष, पीपल, चीते की जड़, लोध और चकवड़ के बीज प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक सूक्ष्म पीस कर उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल से चौगुना पानी जल मिलाकर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से शरीर का वर्ण सुन्दर होता है और कुष्ठ का नाश होता है। यह पामा, विचर्चिका, कण्डू, विसर्प विषरोग और रक्तपित्त से उत्पन्न हुए अनेक प्रकार के रोगों को नष्ट करता है। इस सिन्दूराद्य तैल को सर्वप्रथम अश्विनीकुमारों ने निर्माण किया था ॥ १-४ ॥

बृहन्मरिचाद्य तैलम्—

मरिच त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः। देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १ ॥
विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला। चित्रको लाङ्गली चव्य विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ २ ॥
शिरीषकुटजौ निम्ब सप्तपर्णोऽमृता स्नुही। शम्पाको नक्तमालोऽब्दः खदिरं पिप्पली वचा॥
ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत्। आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं च चतुर्गुणम् ॥४॥
मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। पक्त्वा तैलं वर दोषान्प्रणयेत्कोठकमर्मणान् ॥ ५ ॥
पामाविचर्चिकाकण्डूदद्रुविस्फोटकानि च। वलयं पलितं छाया नीलीं व्यङ्गं तथैव च ॥
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ ६ ॥

बृहत् मरिचाद्य तैल—मरिच, निशोथ, दन्तीमूल, मदार का दूध, गोबर का रस, देवदारु हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, कूट, लालचन्दन, माहुरि, कनेर की जड़, हरताल, मैनसिल, चीता की जड़, कलिहारी विष, चाव, वायविडङ्ग, चकवड़ के बीज, शिरिष की छाल, कुटज की छाल नीम की छाल, छितवन की छाल, गुरुच, सेहुड़, अमलतास, करंज, नागरमोथा, खैर, पीपल, बच और मालकांगनी प्रत्येक एक २ पल और विष दो पल लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर उसमें एक आढक सरसों का मूर्च्छित तेल और तेल के चौगुना गोमूत्र मिलाकर तैलपाक की विधि से मिट्टी के अथवा लोहे के पात्र में रख कर धीरे २ मन्द २ अग्नि पर पका कर तैल मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर रख ले। इसके मर्दन से कोठरोग, मर्मरोग, पामा, विचर्चिका, कण्डू, दद्रु, विस्फोटक, वलीपलित छाया ( झाँई ), नीली, व्यंग आदि सभी रोग नष्ट होते हैं और सुकुमारता होती है ॥ १-६ ॥

माहेश्वर घृतम्—कृत्वा कज्जलिकां रसो कुनटिका द्वे जीरके द्वे निशे
गोदन्तोपगनाश्च वृहगन्धिका वाकुचिका सविषा।
लौहे लोहविमर्दितं खलतरं माहेश्वराख्यं घृतं
कण्डूकुष्ठविचर्चिकादिशमनं पामाहरं लेपनात् ॥ १ ॥

माहेश्वर घृत—पारद-गन्धक की समान लेकर कजली कर उसमें मदार का दूध, मैनसिल, सफेद जीरा, कृष्णजीरा, हल्दी, दारुहल्दी, गोदन्ती ( हरताल ), मरिच, सीसा का भस्म, चकवड़ के बीज, बाकुची के बीज और घृत समान भाग लेकर चूर्ण कर लोह के पात्र में लोह से ही भली भाँति मर्दन कर रख ले। इस माहेश्वर घृत के लेप करने से कण्डू, कुष्ठ, विचर्चिका आदि शमन होते हैं और पामारोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

मांसीचन्दनसम्पाककरञ्जारिष्टसर्षपम्। यष्टीकुष्ठदार्वीभिर्हन्ति कण्डूमयं गणः ॥ १ ॥

कण्डू नाशक मांस्यादि योग—जटामांसी, लालचन्दन, अमलतास के पत्ते, करंज के पत्ते,

नीम के पत्ते या छाल, सरसों, मेठीमधु, कुरैया की छाल तथा दारुहल्दी प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् पीसकर मर्दन करने से कण्डू नष्ट होता है ॥ २ ॥

अवल्गुज कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम्। समिमन्थेन गुरुमांसा मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥
कण्डू कच्छू जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ ३ ॥

अवल्गुआदि योग—बाकुची के बीज, कसौंजर (बड़े चकवड़) के बीज, चकवड़ के बीज, हल्दी प्रत्येक समान भाग लेवें और इन सबके समान सेंधानमक लेकर एकत्र कर दही के पानी और कांजी के साथ पीस कर लेप करने से उग्र कण्डू तथा कच्छू आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

कोमलसिंहास्यदल सनिशं सुरभीजलेन सम्पिष्टम्।
दिवसत्रयेण नियत शमयति कच्छू विलेपनतः ॥ ४ ॥

सिंहास्यपल्लव लेप—अडूसे के कोमल पत्ते और हल्दी दोनों को समभाग लेकर गोमूत्र में पीस कर तीन दिन लेप करने से कच्छू रोग निश्चय नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

हरिद्राकल्कसंयुक्त गोमूत्रस्य पलद्वयम्। पिवेन्नरः कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ५ ॥

हरिद्रादि योग—हल्दी के कल्क में दो पल गोमूत्र मिलाकर पान और इच्छानुकूल आहार व्यवहार करने से पामा और कच्छू रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

गन्धपाषाणचूर्णं तु कटुतैलेन योजितम्। लेपनाद्वा पानाद्वा कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ६ ॥

गन्धकादि योग—गन्धक के चूर्ण को सरसों के तेल में मिलाकर लेप अथवा पान करने से कच्छू और पामा रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

सिन्दूराद्य तैलम्—

सिन्दूरगुग्गुलुरसाञ्जनसिक्थतुत्थैः कल्कीकृतैः कटुकतैलमिदं सुपक्वम्।
कच्छू सवतिपिटिकिकामय याऽपि शुष्कामभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥ १ ॥

सिन्दूरादि तैल—सिन्दूर, गुग्गुल, रसवत, मधु का मोम और तूतिया प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना सरसों का तेल लेकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्धकर मर्दन करने से कच्छू, स्रावयुक्त अथवा शुष्क सभी प्रकार के पिडिकायें एक बार के ही मर्दन करने से नष्ट होती हैं ॥ १ ॥

अर्कतैलम्—

अर्कपत्ररसे पक्व रजनीकल्कसयुतम्। कटुतैलं हरेच्छीघ्रं पामाकच्छूविचर्चिकाः ॥ १ ॥

अर्क तैल—मदार के पत्तों के स्वरस को मूर्च्छित सरसों के तेल से चौगुना और हल्दी के कल्क को तेल से चतुर्थांश लेकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर लगाने से पामा, कच्छू और विचर्चिका रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

राजिकागुडयुक्तेन सैन्धवेन प्रलेपितम्। विशलं चर्मणा बद्ध नाशं चर्मदलं व्रजेत् ॥ २ ॥

चर्मदल पर लेप—राई, गुड़ और नमक प्रत्येक समान भाग लेकर पीसकर लेप करने से निर्मल शुष्क तथा चमड़े से जड़ पकड़े हुये भी चर्मदल का नाश होता है ॥ २ ॥

## अथ रसाः।

तत्राऽऽदौ विजयेश्वरी रस—

शुद्धताल मृत सूत तुल्य साम्यां चतुर्गुणाम्। भर्जिता विजया योज्या सर्वतुल्य गुड क्षिपेत् ॥
श्वेतकुष्ठहर निष्कं रसोऽयं विजयेश्वरः। दार्वीखदिरनिम्बानां क्वाथ सदनु पाययेत् ॥ २ ॥

विजयेश्वर रस—शुद्ध हरताल और पारद भस्म दोनों समान भाग और दोनों के चौगुना भूना हुआ भाग तथा सबके समान पुराना गुड़ मिलाकर घोट लेवे। यह विजयेश्वर रस प्रतिदिन एक निष्क (१ मासा) खाकर ऊपर से दारुहल्दी, खैर और नीम की छाल का क्वाथ पीवे तो श्वेत कुष्ठ (श्वित्र) का नाश होता है ॥ १-२ ॥

श्वित्राण्याह—

श्वित्रिणो हृतदोषस्य हृतरक्तस्य या सकृत्। खदिराग्रयवाशानां सुतस्य मळपूरसः ॥
सगुडः शस्यते पाने यवागूमण्डभोजिनः ॥ १ ॥

श्वित्र की चिकित्सा—श्वित्र के रोगी के दोषों का (विरेचनादि) हरण कर एक बार रक्त मोक्षण करावे और खैर के जल से सिद्ध किया जौ अन्न के बने पदार्थों का भोजन करा कर मलयू के स्वरस (कठूमर या जंगली अंजीर) में पुराना गुड़ मिलाकर पान कराने से इस रोग में यवागू तथा भात का भोजन कराना चाहिये॥ १॥

खदिरामलककषायं बाकुचिबीजान्वितं विधेयमिदम्।
शङ्खेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं हन्तीदं तच्चित्रम्॥ २॥

खदिरादि कषाय—खैर और आंवला का विधिपूर्वक क्वाथ बना कर बावची के बीजों के चूर्ण का प्रक्षेप देकर नित्य पान करने से शङ्ख, चन्द्रमा और कुन्द के पुष्प के समान भी श्वेत वर्ण के श्वित्र कुष्ठ नष्ट होता है॥ २॥

शिलापामार्गभस्मलेपाच्छ्वित्रं विनाशयेत्। किं पुनर्यदि युज्येत घनञ्जयजटात्वचा॥ ३॥

शिलादि लेप—मैनसिल और अपामार्ग के भस्म दोनों समभाग पीस कर लेप करने से श्वेत कुष्ठ नष्ट होता है। यदि इसमें अर्जुन वृक्ष की जड़ के छाल भी समान भाग मिला दिया जाय तो श्वित्र अवश्य ही नष्ट हो जाता है॥ ३॥

त्रिफला नीलिनीपत्रं लोहचूर्णं रसाञ्जनम्। श्वेतगुञ्जा दन्तिदन्तभस्म तुत्थं च मार्कवम्॥४॥
भेषीदुग्धेन सम्पिष्य स्थापयेल्लोहभाजने। हितसेकं ततो लिम्पेन्मुहुः श्वित्रेष्वनुक्रमात्॥
श्वित्राण्यनेन लेपेन निजवर्णं त्यजन्ति वै॥ ५॥

श्वित्र नाशक त्रिफलादि लेप—हरड़, बहेड़ा, आँवला, नील के पत्ते, लोहे का चूर्ण रसवत, श्वेत वर्ण की रत्तियाँ, हाथी दाँतका भस्म, तूतिया, भांगरा प्रत्येक समभाग लेकर भेड़ी के दूध के साथ पीसकर एक दिन लोहे के पात्र में रहने के पश्चात् क्रम से श्वित्र पर लेप करे तो श्वित्र अपने वर्ण (श्वेत) को त्याग देता है॥ ५॥

सायोरजः कृष्णतिलाञ्जनानि सावल्गुजान्यामलकानि दग्ध्वा।
पिष्टानि भृङ्गस्य सकृद्रसेन हन्यात्किलासं परिघृष्टलेपात्॥ ६॥

*अयोरजादि लेप—लोहे का चूर्ण, कृष्णवर्ण का तिल, रसवत, बाकुची के बीज और आँवला* प्रत्येक समान भाग जलाकर पीसकर भांगरे के स्वरस में मिलाकर किलास कुष्ठ पर घिसकर बार २ लेप करने से किलास कुष्ठ नष्ट होता है॥ ६॥

विषतैलम्—

नक्तमालो हरिद्रे द्वे अर्कं तगरमेव च। करवीरवचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम्॥ १॥
मालती सप्तपर्णं च मञ्जिष्ठा सिन्धुवारिका। एषामर्धपलान्भागान्विषस्य द्विपलं भवेत्॥२॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत्। श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः॥ ३॥
कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः। विषतैलमिदं नाम सर्वव्रणविशोधनम्॥ ४॥

विषतैल—करञ्ज के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी, मदार के पत्ते, तगर, कनेर, बच, कूठ, अपराजिता, लालचन्दन, मालती के पत्ते, छितवन की छाल, मंजीठ, सिंधुवार (सेंहुड़) प्रत्येक आधा २ पल मीठा विष दो पल लेकर विधिपूर्वक कल्क बनावे और मूर्च्छित सरसों का तेल एक प्रस्थ लेवे तथा तेल के चौगुना (४ प्रस्थ) गोमूत्र लेकर सबको मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से श्वित्र, विस्फोटक, किटिमकुष्ठ कीट, लूता, विचर्चिका, कण्डू, कच्छू के विकार और विष से दूषित होने के कारण उत्पन्न व्रण ये सभी इस विष तैल से नष्ट होते हैं और सभी प्रकार के व्रणों का इससे शोधन होता है॥ १-४॥

ज्योतिष्मतीतैलम्—

मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्रुतम्। सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गाच्छ्वित्रनाशनम्॥ १॥

ज्योतिष्मतीतैल—मालकांगनी के तेल को अपामार्ग के क्षारजल के साथ तेल पाकविधि से (तेल के चतुर्गुण क्षारोदक मिलाकर) सातबार तेल सिद्धकर मर्दन करने से श्वित्ररोग नष्ट होता है॥

शशिलेखावटी—

शुद्धसूतं समं गन्धं तुल्यं च मृतताम्रकम्। मर्दितं बाकुचीक्वाथैर्दिनैकं वटकीकृतम्॥ १॥
निष्कमात्रां सदा खादेच्छ्वित्री शशिलेखिकाम्। बाकुचीतैलकर्षैकं सक्षीरमनुपाययेत्॥

शशिशेखर वटी—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक समान भाग लेकर विधिवत् कज्जली कर उसमें एक भाग ताम्रभस्म मिलाकर मर्दन कर बाकुची के क्वाथ के साथ एक दिन भर मर्दन कर विधिवत् एक निष्क के प्रमाण की वटी बनाकर नित्य सेवन करने से यह शशिशेखर नाम की वटी श्वित्र को नष्ट करती है इस वटी को खाकर बाकुची का तेल एक कर्ष के प्रमाण से लेकर मधु मिलाकर अनुपान में देना चाहिये ॥ १-२ ॥

पथ्यापथ्यम्—

अन्नपानं हितं कुष्ठे न त्वम्ललवणोषणम् । दधिदुग्धगुडानूपतिलमाषांस्त्यजेत्तराम् ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—कुष्ठ रोग में साधारण अन्नपान करना हितकर है। परन्तु अम्लरस, लवण, मरिच, अथवा अन्य तीक्ष्ण पदार्थ, दही, दूध, गुड़, अनूप मांस, तिल, और उड़द कभी नहीं खावे ॥

इति कुष्ठश्वित्रप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ शीतपित्तोदर्दकोठनिदानम् ।

आदौ तस्य दोषत्रयजन्यत्वमाह—

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ । पित्तेन सह सम्भूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥

शीतपित्त का निदान—शीतल वायु के लग जाने से कुपित हुए कफ और वायु पित्त के साथ मिलकर त्वचा में और रक्तादि धातुओं में फैल जाते हैं, इसी से शीत पित्त रोग होता है ॥ १ ॥

तस्य पूर्वरूपमाह—

पिपासारुचिहृल्लासदाहसादाङ्गगौरवम् । रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥ २ ॥

शीत पित्त का पूर्वरूप—जब शीत पित्तादि रोग होने को होते हैं तब उसके पहले प्यास, अरुचि, उबकाई, दाह, अङ्गों की अवसन्नता और गुरुता होती है तथा नेत्र रक्तवर्ण के हो जाते हैं ॥

लक्षणमाह—

वरटीदष्टसंस्थानः शोफः सञ्जायते बहिः । सकण्डूतोदबहुलश्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥
उदर्दमिति तं विद्याच्छीतपित्तमथापरे । वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दस्तु कफाधिकः ॥ ४ ॥

उदर्द के लक्षण—जिसमें बर्रै के काटने के कारण होने वाले शोथ मण्डल के समान शोथ ( ददोरे ) चम पर हो जावें और उस शोथ ( ददोरे ) में कण्डू, सूई चुभाने के समान अधिक पीड़ा, वमन, ज्वर और दाह हो उसे उदर्द कहते हैं। कोई आचार्य इसे ही शीत पित्त कहते हैं परन्तु वात की अधिकता हो तो शीत पित्त और कफ की अधिकता हो तो उदर्द जानना चाहिये ॥

उदर्दस्य धर्मान्तरमाह—

सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः । शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥

उदर्द का धर्मान्तर लक्षण—जिस ददोरे में उसके मण्डल के किनारे उठे हुए अर्थात् गढ़े रागयुक्त ( ललाई सहित ) और कण्डू युक्त हों उसे उर्दद कहते हैं। यह शिशिर ऋतु में कफ के कोप से होने वाला रोग कहा गया है ॥ ५ ॥

स्वदोषसामान्यादत्रैव कोठः प्रोच्यते—

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः । आरनालैश्च शुक्तैश्च आसुरीलवणेन च ॥ १ ॥
वर्षाकाले प्रकुप्येत्स तथा दुष्टैश्च कारणैः । मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥ २ ॥

कोठ रोग—भलीभाँति वमन नहीं होने से ( वमन के मिथ्या प्रयोग होने से ) बढ़े हुए पित्त तथा कफ के अवरोध हो जाने से एवं अन्न के ही वमन के अवरोध ( उपस्थित वेग के रोकने ) से और कांजी के अधिक सेवन से सिरका के अधिक सेवन से आसुरी लवण (विड्लवण) के अधिक सेवन से अथवा राई और लवण के अधिक सेवन करने से तथा अन्य दूषित कारणों से वर्षाकाल में यह ( कोठरोग ) कुपित होता है इसमें जो मण्डल होते हैं उसमें कण्डू होता है और रागयुक्त ( लालिमा सहित ) बहुत से मण्डल ( गोल-कमल आदि के समान ) होते हैं उन्हें कोठ कहते हैं ॥ १-२ ॥

उत्कोठः सानुबन्धश्च कोठ इत्यभिधीयते ॥ ३ ॥

उत्कोठ के लक्षण—जिस कोठरोग में अनुबन्ध होता है उसे उत्कोठ कहते हैं। जिस कोठ में अनुबन्ध नहीं होता है वह क्षण में उत्पन्न और नष्ट होता रहता है ॥ ३ ॥

## अथ शीतपित्तादीनां चिकित्सा ।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन स्वेदश्चोष्णेन वारिणा । तथाऽऽशु वमनं कार्यं पटोलारिष्टवासकैः ॥ १ ॥

शीतपित्तादि चिकित्सा—सरसों के तेल का अभ्यङ्ग करने से, उष्ण जल से स्वेद देने से और परवल के पत्र, नीम की छाल तथा अरूसे के क्वाथ को पिला कर शीघ्र वमन कराने से शीतपित्तादिरोगों में लाभ होता है ॥ १ ॥

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्च प्रशस्यते । सर्पिः पीत्वा महातिक्तं कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥
सक्षारसिन्धुतैलैश्च गात्राभ्यङ्गं प्रयोजयेत् ॥ २ ॥

अथवा आँवला, हरड़, बहेड़ा, गुग्गुल और पीपल प्रत्येक समान भाग लेकर उसका क्वाथ पिला कर विरेचन कराना हितकर है, अथवा कुष्ठाधिकार में कहे महातिक्त घृत को पिला कर रक्तमोक्षण करावे और क्षार सेंधानमक और सरसों का तेल समान भाग लेकर शरीर में मर्दन करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

गम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः । क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खादितं पथ्यसेविना ॥ ३ ॥

गम्भारिका फलादि योग—गम्भारी के भलीभाँति पके हुए फल को जल में उबाल कर दूध के साथ खाने से और पथ्य से रहने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ३ ॥

यष्टी मधूकपुष्पं च सरास्नं चन्दनद्वयम् । निर्गुण्डी सकणाक्वाथं शीतपित्तहरं पिबेत् ॥ ४ ॥

यष्ट्यादि योग—जेठीमधु, महुआ का फूल, रास्ना, लालचन्दन, श्वेतचन्दन, निर्गुण्डी तथा पीपल को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अमृतारजनीनिम्बधन्वयासैः पृथक् शृतम् । प्राणिनां प्राणदं चैतच्छीतपित्ते समाचरेत् ॥५॥

अमृतादि योग—गुरुच, हल्दी, नीम की छाल और धमासा इनमें से किसी एक का क्वाथ बनाकर पान करावे यह जीवों को जीवन देने वाला और शीतपित्त को नष्ट करने वाला है ॥ ५ ॥

सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्याशनुभुङ्नरः । तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ॥ ६ ॥

सगुड दीप्यकयोग—गुड़ के साथ अजवायन खाने से और पथ्य सेवन करने से एक सप्ताह में सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त उदर्द नष्ट होता है ॥ ६ ॥

यवानीं पाययेद्वाऽपि सव्योषां क्षीरसंयुताम् । पिप्पलीवर्धमानं वा लशुनं वा प्रयोजयेत् ॥७॥

यवान्यादि योग—अजवायन सोंठ, मरिच, पीपल प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर दूध के साथ सेवन करने से अथवा वर्धमान पिप्पली का सेवन करने से अथवा लहसुन सेवन करने से शीतपित्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतं च सर्पिषा । शीतपित्तोदर्दकोठान्सप्ताहादेव नाशयेत् ॥ ८ ॥

अग्निमन्थ योग—अरनियार की जड़ को पीस कर घृत में मिलाकर पान करने से एक सप्ताह में शीत पित्त, उदर्द और कोठ नष्ट होता है ॥ ८ ॥

निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राण्यथवा प्रयुञ्ज्यात् ।
विस्फोटकोठक्षतशीतपित्तं कण्डूवस्रपित्तं सकलं निहन्यात् ॥ ९ ॥

निम्बपत्र योग—नीम की पत्तियों के चूर्ण को सदा घृत के साथ सेवन करने से अथवा नीम की पत्तियां और आंवले के चूर्ण को घृत में मिलाकर सेवन करने से विस्फोटक, कोठ, क्षत, शीत पित्त, कण्डू और रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

कुष्ठं हरिद्रे सुरसं पटोलं निम्बाश्वगन्धे सुरदारु शिग्रुः ।
ससर्षपं तुम्बरुधान्यकं च वन्याम्बुदावप्यूर्णानि समानि कुर्यात् ॥ १० ॥
तैलाक्तगात्रः प्रथमं शरीरं तैलाक्तमुद्वर्तयितुं यतेत ।
तथा सकण्डूः पिडिका सकोठा कुष्ठानि शोफश्च शमं व्रजन्ति ॥ ११ ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूट, हल्दी, दारुहल्दी, तुलसी, परवल, नीम, असगन्ध, देवदारु, सहिजन, सरसों, तेजबल के फल और धनियां इनमें से किसी को तथा किसी का शब्द आदि समभाग

लेकर चूर्ण कर पथ्य कर मठ्ठे के साथ पीसकर पहले शरीर पर कड़ुवा तेल लगा कर इसका उबटन करने से कण्डू, पिड़िका, कोठ, कुष्ठ और शोथ शमन हो जाते हैं ॥ १०-११ ॥

ससैन्धवेन कुष्ठेन सर्पिषा लेपमाचरेत्। सुरसास्वरसैर्वाऽथ लेपयेत्परमौषधम् ॥ १२ ॥

सैन्धवादि योग—सेंधानमक और कूठ दोनों समान लेकर चूर्ण कर घृत में मिलाकर लेप करने से अथवा तुलसी के स्वरस का शरीर पर लेप करने से शीत पित्त, उदर्द और कोठ रोग नष्ट होते हैं। यह अति उत्तम योग है ॥ १२ ॥

सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुन्नाटतिलैः सह। कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ॥ १३ ॥

सिद्धार्थादि योग—श्वेत सरसों, हल्दी, कूट, चकवड़ के बीज और तिल इनको समभाग लेकर चूर्ण कर कड़ुवा तैल में मिलाकर उबटन करने से शीत पित्तोदर्द और कोठ में लाभ होता है॥

शीतपित्ते उदर्दे च तथा कोठाभिधे गदे। कृमिदद्रुहरं कार्यं शीतपित्तेऽखिलः क्रमः ॥१४॥
स्निग्धस्विन्नस्य सशुद्धिमादौ कोष्ठे समाचरेत्। ततः कुष्ठहरं सर्वो विधेयो विधिरादरात्॥

शीत पित्तादि चिकित्सा—शीत पित्त, उदर्द और कोठ रोगो में कृमि तथा दद्रुनाशक सभी प्रयोग करने के पश्चात् स्नेहन तथा स्वेदन कर के प्रथम कोष्ठ की शुद्धि करनी चाहिये तत्पश्चात् कुष्ठ नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १५ ॥

पथ्यापथ्यम्—

शालिमुद्गकुलत्थांश्च कारवेल्लमुपोदिकाम्। वेत्राग्रं तप्तनीरं च पित्तश्लेष्महराणि च ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—शालिधान के चावल, मूंग, कुलथी, करेला, पोई शाक, बेत का अग्रभाग (पछुर), उष्ण जल और पित्त-कफ नाशक पदार्थ ये सभी शीत पित्त, उदर्द और कोठ रोग के रोगियों के लिये पथ्य कहे गये हैं॥

शीतपित्तोदर्दकोठरोगिणां पथ्यमीरितम्। स्नानमातपमम्लं च गुर्वन्नं च विवर्जयेत् ॥ २ ॥

स्नान, ताप सेवन, अम्लरस वाले पदार्थ का भोजन और गुरु अन्न यह शीतपित्तादि रोग के रोगी को त्याग देना चाहिये ॥ १-२ ॥

इति शीतपित्तोदर्दकोठरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथाम्लपित्तनिदानम्।

तस्य संप्राप्तिमाह—विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजोविदग्धम्।
पित्तं स्वहेतूपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति सन्तः ॥ १ ॥

अम्लपित्त का निदान—परस्पर विरोधी (क्षीर, मत्स्यादि) पदार्थों के, दूषित पदार्थों के, अम्ल रस वाले पदार्थों के, विदाही (दाहकारक) पदार्थों के और पित्त को कुपित करने वाले (तक्र सुरा आदि) पान और अन्न के अतिसेवन करने से विदग्ध (अम्लत्व को प्राप्त) हुआ पित्त तथा पूर्व से ही अपने कारणों से (वर्षा ऋतु में पित्तकारक जल औषध तथा अन्न आदि के अधिक सेवन से) कुपित हुआ पित्त अम्लपित्तरोग को उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

तस्य लिङ्गमाह—

अविपाकक्लमोत्क्लेशतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः। हृत्कण्ठदाहरुचिभिश्चाम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

अम्लपित्त के लक्षण—जिस रोग में अन्न नहीं पचे, क्लान्ति (बिना परिश्रम के ही थकान) हो, उबकाई आवे, तिक्त अथवा अम्लरस युक्त डकार आवे, शरीर गुरु हो, हृदय और कण्ठ में दाह हो और अन्न में अरुचि हो उसे अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ २ ॥

तस्य कदाचिदधोगतिमाह—

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम्।
हृल्लासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥

अधोगामी अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में तृषा,दाह, मूर्च्छा, भ्रम और मोह (विपरीत ज्ञान) हो, नीचे की ओर जाने वाला हो और अनेक प्रकार के हरा, पीला, काला, लाल, आदि) वर्ण का गंध युक्त गुदा के मार्ग से मल निकलता हो, हृल्लास (उबकाई) होता हो, कोठरोग हो,

मन्दाग्नि हो, रोमाञ्च हो, स्वेद हो और कभी २ अङ्ग को भी पीला कर देता हो उसे अधोगामी अम्लपित्त कहते हैं ॥ ३ ॥

कदाचिदूर्ध्वगतिमाह—

वान्तं हरितपीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभमतीव चाम्लम्।
मांसोदकाभं त्वतिपिच्छिलाच्छं श्लेष्मानुयातं विविधं रसेन ॥ ४ ॥
भुक्ते विदग्धेऽप्यथवाप्यभुक्ते करोति तिक्ताम्लवमिं कदाचित्।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजं च ॥ ५ ॥

ऊर्ध्वगामी अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में हरा, पीला, नीला, काला, थोड़ा अथवा अत्यन्त लाल, खट्टा, मांस के धोवन के समान, अत्यन्त पिच्छिल, स्वच्छ, कफयुक्त तथा अनेक ( लवण तिक्तादि ) रसयुक्त वमन हो, भोजन करने पर भोजन के विदग्ध अवस्था में अथवा भोजन नहीं करने पर भी तिक्त अथवा अम्लरस का कभी २ वमन होता हो तथा इसी प्रकार का तिक्त अम्ल रसादि युक्त डकार होता हो और कण्ठ, हृदय तथा कुक्षि स्थान में दाह हो तथा शिर में पीड़ा हो उसे ऊर्ध्वगामी अम्ल पित्त कहते हैं ॥ ४-५ ॥

कफपित्तजन्यमाह—करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम्।
जनयति कण्डूमण्डलपिडिकाचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥

कफ पित्तज अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में हाथ, पैर में दाह, ऊष्णता, अत्यन्त अरुचि, ज्वर, कण्डू, मण्डल, पिडिकायें और इसी प्रकार के शरीर पर अन्यान्य रोग उत्पन्न हों उसे कफ पित्तज अम्लपित्त कहते हैं ॥ ६ ॥

रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कष्टसाध्यः स कस्यचित् ॥ ७ ॥

साध्यासाध्यता—अम्लपित्तरोग यदि नवीन हो तो यत्न से साध्य और पुराना हो तो असाध्य होता है किन्तु हितकर आहार विहार करने वाले का पुराना भी अधिक यत्न करने से साध्य हो जाता है ॥ ७ ॥

तस्मिन्ननिलकफसंसर्गमाह—

सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत्। दोषलिङ्गेन मतिमान्भिषङ्मोहकरं हि तत् ॥ ८ ॥

वात-कफयुक्त वाला अम्लपित्त—यह अम्लपित्त वात युक्त, वात-कफ युक्त और केवल कफ युक्त भी होता है। इसे वैद्य दोषों के लक्षणों से जाने। यह रोग वैद्यों को मोह में डाल देता है क्योंकि इसमें वमन और अतीसार होने से उन्हें रोगान्तर का भ्रम होने लगता है ॥ ८ ॥

कम्पप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि। तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोदहर्षा अनिलयुते ॥

वात युक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमाहट ( चींटी काटने के समान पीड़ा ), शरीर में ग्लानि, शूल, नेत्रों में अन्धकार, भ्रम, मोह ( अज्ञान ) और हर्ष ( रोमाञ्च ) हो उसे वातयुक्त अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ ९ ॥

कफानुगतमाह—

कफनिष्ठीवनगौरवजडतारुचिशीतसादवमिलेपाः। दहनबलसादकण्डूनिद्राचिह्नं कफानुगते ॥

कफयुक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में अधिक कफ थूक में आवे, शरीर गुरु हो, स्तब्धता हो ( शरीर अकड़ जावे ), अरुचि हो, शीतलता ज्ञात हो, ग्लानि हो, वमन हो, मुख में कफ लिप्त रहे, अग्नि और बल की हानि हो, कण्डू हो और निद्रा हो उसे कफ की अधिकता वाला अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ १० ॥

वातश्लेष्मानुगतमाह—उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसम्भवे भवत्यम्ले।
कट्वम्ललवणरससेवितः कोपं भजत्ययम्। तिक्ताम्लकटूद्गारवमिहृत्कण्ठदाहकृत् ॥ ११ ॥

वात-कफयुक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में उपर्युक्त वात और कफ के मिले हुए लक्षण दिखाई दें उसे वात कफज अम्लपित्त जानना चाहिये। यह कटु-अम्ल और लवण रस के अधिक सेवन से होता है और इसमें तिक्त-अम्ल और कटु रस युक्त डकार और वमन होता है तथा हृदय और कण्ठ में दाह होता है ॥ ११ ॥

कफपित्तमाह—

भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा। प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ॥

कफ पित्त युक्त अम्लपित्त—जिस अम्लपित्त में भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, शिर में पीड़ा, लालास्राव और मुख माधुर्य (मुख का मधुर रहना) हो उसे कफ पित्त युक्त अम्लपित्त जानना चाहिये ॥ १२ ॥

## अथाम्लपित्तस्य चिकित्सा।

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवारिणा। कारयेन्मदनक्षौद्रसिन्धुयुक्तमतो भिषक् ॥
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुना त्रिफलाम्बुना ॥ १ ॥

अम्लपित्त की सामान्य चिकित्सा—अम्लपित्त में परवल के पत्र और नीम को उबाल कर उनके क्वाथ में मैनफल का चूर्ण, मधु और सेंधानमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करा कर वमन कराना चाहिये और त्रिफला के क्वाथ में निशोथ के चूर्ण और मधु का प्रक्षेप देकर पान कराकर विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

कृतवमनविरेकस्यापि दोषोपशान्तिर्भवति न यदि कार्यो रक्तमोक्षश्च युक्त्या।
कृतशिशिरविलेपस्याम्लपित्तघ्नभक्ष्यौदनसमुदितवृत्तेर्वाततस्त्रा च कार्या ॥ २ ॥

यदि वमन-विरेचन आदि कराने पर भी रोगी को शान्ति नहीं हो तो युक्ति पूर्वक रक्तमोक्षण कराना चाहिये और शीतल द्रव्यों का लेप करना चाहिये तथा अम्लपित्त नाशक भक्ष्य पदार्थों तथा चावल के भात को खिलाकर तृप्त करना चाहिये और वात से रक्षा करनी चाहिये ॥ २ ॥

लक्ष्मणोत्सवात्—ज्वलन्तमिव चाऽऽत्मानं मन्यते योऽम्लपित्तवान्।
तस्य संशोधनं पूर्वं कार्यं पश्चाच्च भेषजम् ॥ १ ॥

लक्ष्मणोत्सव की चिकित्सा—जो अम्लपित्त वाला रोगी अपने आप को जलता हुआ मानता हो (अधिक दाह जिसे होता हो) उसको प्रथम संशोधक औषधियों द्वारा संशोधन करा कर पश्चात् अन्य औषधियों का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

पूर्वं तु वमनं कार्यं पश्चान्मृदु विरेचनम्। कृतवान्तिविरेकस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ २ ॥

अम्लपित्त के रोगी को सब प्रथम वमन तत्पश्चात् मृदुवीर्य औषधियों से विरेचन और वमन विरेचन कराने के पश्चात् स्नेहन औषधियों से भलीभाँति स्निग्ध कर अनुवासन कराना चाहिये ॥

आस्थापनं चिरोत्थेऽस्मिन्देयं दोषाद्यपेक्षया। दोषसंसर्गजे कार्यमौषधाहारकल्पनम् ॥ ३ ॥

अम्लपित्त यदि पुराना हो गया हो तो उसमें आस्थापन कर्म करना चाहिये, दोषों के संसर्गज (मिलित) होने पर दोष आदि की अपेक्षा कर के उसमें औषध और आहार देना चाहिये ॥ ३ ॥

ऊर्ध्वदेहस्थिते वान्त्याऽप्यधःस्थं रेचनैर्हरेत्। पाचनं तिक्तबहुलं पथ्यं च परिकल्पयेत् ॥ ४ ॥

दोष यदि उर्ध्व देह में अधिक कुपित हो तो वमन करा कर और यदि अधोभाग में अधिक कुपित हो तो विरेचन कराकर तिक्त रस की अधिकता वाले द्रव्यों का पाचन और पथ्य सेवन कराना चाहिये ॥ ४ ॥

विकारान्यवगोधूमकृतांस्तीक्ष्णविवर्जितान्। भक्षयेल्लाजसक्तूंश्च सिताक्षौद्रयुतान्पिबेत् ॥५॥

जौ और गेहूं के बने पदार्थ और तीक्ष्ण द्रव्य (मरिच आदि) छोड़कर अन्य भक्ष्य पदार्थों को भक्षण कराना चाहिये और लाजा (धान के खील) के सत्तू में शर्करा और मधु मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ५ ॥

वृन्दात्—

अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः। गुडकूष्माण्डकं चैव तथा खण्डामलक्यपि ॥ १ ॥

वृन्द मत से चिकित्सा—अम्लपित्त रोग में कफ-पित्त नाशक क्रिया और गुड़ कुष्माण्ड तथा खंडामलकी का सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥

गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिरत्र प्रयोजयेत्। सवाते सविबन्धेऽस्मिन्हिता कंसहरीतकी ॥ २ ॥

अम्लपित्त रोग में पुराना गुड़, गौ का दूध और पीपल से विधिपूर्वक सिद्ध किया घृत और यदि इसमें विबन्ध भी हो तो 'कंसहरीतकी' का सेवन करना हितकर है ॥ २ ॥

## अथ क्वाथाः ।

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् । नाशयेदम्लपित्तं च अरुचिं च वमिं तथा ॥ १ ॥

यवादि क्वाथ—जौ, पीपल और परवल के पत्र, प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त, अरुचि और वमन नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

निस्तुषयववृषधात्रीक्वाथं त्रिसुगन्धिमधुयुतं पीत्वा ।
अपहरति चाम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूषेण ॥ २ ॥

निस्तुषयवादि क्वाथ—छिलका रहित जौ, अड़्सा और आँवला प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर उसमें त्रिसुगन्धित (दालचीनी, इलायची, तेजपात) का समान मिलित चूर्ण और मधु का प्रक्षेप देकर मूंग के यूष के साथ पान करे तो अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ २ ॥

गुडूचीचित्रकारिष्टपटोलैः क्वथितं पिबेत् । क्षौद्रयुक्तं निहन्त्येतच्छर्दिं पित्ताम्लसम्भवाम् ॥ ३ ॥

गुडूच्यादि क्वाथ—गुरुच, चीते की जड़, नीम की छाल और परवल के पत्र प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान कराने से अम्लपित्त से उत्पन्न वमन नष्ट होता है ॥ ३ ॥

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलवासामृतापर्पटमार्कवाणाम् ।
क्वाथो हरेत्क्षौद्रयुतोऽम्लपित्तं चित्तं यथा वारवधूकटाक्षैः ॥ ४ ॥

भूनिम्बादि क्वाथ—चिरायता, नीम की छाल, हरड़, बहेड़ा, आँवला, परवल के पत्र, अड़्सा, गुरुच, पित्तपापड़ा और भांगरा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान कराने से अम्लपित्त इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार युवती वेश्या के कटाक्ष से चित्त नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

पटोलत्रिफलानिम्बक्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् । अम्लपित्तं हरेच्छर्दिदाहशूलकफान्वितम् ॥ ५ ॥

पटोलादि क्वाथ—परवल के पत्र, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त, वमन, दाह, शूल और कफ का नाश होता है ॥ ५ ॥

कण्टकार्यमृतावासाकषायं मधुसंयुतम् । अम्लपित्तं जयेत्पीत्वा श्वासं कासं वमिं ज्वरम् ॥ ६ ॥

कण्टकार्यादि क्वाथ—छोटी कटेरी, गुरुच, अड़्सा प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अम्लपित्त, श्वास, कास, वमन और ज्वर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

चित्रकैरण्डमूलानि यवाश्च सयवासकाः । जलेन क्वथितं पीतं कोष्ठदाहाम्लपित्तजित् ॥ ७ ॥

चित्रकादि क्वाथ—चीते की जड़ एरण्ड की जड़ जौ और जवासा प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर पान करने से कोष्ठ का दाह और अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

एरण्डादिचूर्णम्—एलातुगाक्षीरत्वचाभयानां सग्रन्थिपाटीरदलाब्दकानाम् ।
चूर्णं सितातुल्यमपाकरोति क्षौद्राम्लपित्तं दिवसान्यगुल्मम् ॥ १ ॥

एलादि चूर्ण—इलायची के दाने, वंशलोचन, दालचीनी, आँवला (किसी टीका में हरड़ या आँवला) हरड़, पिपरामूल, चन्दन तेजपात और नागरमोथा प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर उसके समान भाग शर्करा मिलाकर मर्दन कर उचित मात्रा से प्रातःकाल सेवन करने से पुराना भी अम्लपित्त रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिकट्वाद्यं चूर्णं लेह्यः—

त्रिकटुकमकण्टकारीपर्पटधान्यकविडङ्गकचोरानाम् । सौराष्ट्रिकापटोलीशाम्बलीदारुमुस्तानाम् ॥ १ ॥
त्रिफलामृणालमण्डपकलिङ्गकैलाविशालनिकानाम् ।
मधुयष्टिविषाकेसरदीप्यकमुनिसुपीजानाम् ॥ २ ॥
चूर्णं पटपूतमिदं पीतं निशिरेण वारिणा प्रातः । चौद्रेण चाप लीढं मासमयोगतं हन्ति ॥
अतिपित्तमम्लपित्तं पथ्यभुजो वासराः कैश्चित् ॥ ३ ॥

त्रिकट्वादि चूर्ण—सोंठ, मरिच, पीपल, छोटी कटेरी, पित्तपापड़ा, इन्द्रजौ, बायबिडङ्ग,

फिटकिरी पटोलपत्र, त्रायमाणा, देवदारु, मूर्वामूल, कुटकी, कमलनाल, श्वेतचन्दन, कोरया की छाल, इलायची के दाने, चिरायता, बच, अतीस, नागकेसर, अजवाइन और मीठे सहिजन के बीज प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर कपडे में छान कर उचित मात्रा से प्रातःकाल शीतल जल के साथ पान करने से अथवा मधु के साथ लेह बनाकर चाटकर शीतल जल पीने से अधोगामी अम्लपित्त यदि विष युक्त भी हो तो कुछ ही दिनों में नष्ट होता है। इसके सेवन करते समय पथ्य से रहने से विशेष लाभ होता है ॥ १–३ ॥

द्राक्षादिगुटिका—द्राक्षापथ्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां सितां क्षिपेत्।
सकुट्याक्षद्वयमितां तत्पिण्डीं कारयेद्भिषक् ॥ १ ॥
तां खादेदम्लपित्तार्तो हृत्कण्ठदहनापहाम्। तृण्मूर्च्छाभ्रममन्दाग्निनाशिनीमामवातहाम् ॥

द्राक्षादि गुटिका—दाख और हरड़ बराबर २ लेकर उसमें दोनों के समान शर्करा मिलाकर कूट कर दो अक्ष के प्रमाण की वटी बनाकर खाने से अम्लपित्त की पीड़ा और हृदय तथा कण्ठ की दाह नष्ट होती है तथा तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, मन्दाग्नि और आमवात नष्ट होते हैं ॥ १–२ ॥

अभयावलेह—अभया पिप्पली द्राक्षा सिता धन्वयवासकम्।
मधुना कण्ठहृद्दाहमूर्च्छाश्लेष्माम्लपित्तनुत् ॥ १ ॥

अभयावलेह—हरड़, पीपल, दाख, शक्कर और जवासा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के साथ सेवन करने से कण्ठ और हृदय की दाह, मूर्च्छा और कफयुक्त अम्लपित्त नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

खण्डपिप्पल्यवलेहो योगरत्नाकरात्—

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम्। पलषोडशकं खण्डाच्छतावर्याः पलाष्टकम् ॥ १ ॥
शिवायाः स्वरसस्यापि पलषोडशकं मतम्। क्षीरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽत्र निक्षिपेत् ॥२॥
त्रिजातकाभयाजाजीधान्यमुस्तसितातुगाः। एतेषां कार्षिकं चूर्णं कर्षार्धं कृष्णजीरकम् ॥ ३ ॥
नागरं नागकं जातिफलं समरिचं हिमम्। दत्त्वा पलत्रयं क्षौद्रं स्निग्धभाण्डे विनिक्षिपेत् ॥४॥
प्रातर्यथाबलं लिह्यादम्लपित्तप्रशान्तये। हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥
शूलहृद्रोगशमनं हृद्यं चेदं रसायनम् ॥ ५ ॥

खण्डपिप्पली-अवलेह—पीपल का चूर्ण एक कुड़व (आधा मानी), गोघृत दो कुड़व, शक्कर १६ पल, शतावरी का चूर्ण ८ पल, आँवले का स्वरस १६ पल और गोदुग्ध दो प्रस्थ लेकर एकत्र कर अवलेह पाक की विधि से पाक करे। पाक आसन्न होने पर इसमें दालचीनी, इलायची, तेजपात, हरड़, जीरा, धनियाँ, नागरमोथा, इरीतकी और वंशलोचन प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष कृष्णजीरा का चूर्ण ½ कर्ष, नागकेसर, जायफल, मरिच और कपूर का चूर्ण आधा २ कर्ष मिला कर मर्दन कर उतार ले और शीतल होने पर उसमें तीन पल शहद मिलाकर घृत से स्निग्ध पात्र में रख दे। इस अवलेह को बलानुसार मात्रा में प्रातःकाल सेवन करने से अम्लपित्त हृल्लास अरुचि वमन तृषा, दाह शूल तथा हृद्रोग शमन होते हैं। यह हृदरोग के लिये विशेष हितकर और रसायन है ॥ १–५ ॥

नारिकेलखण्डपाको योगरत्नाकरात्—

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं पलपरिमितसर्पिःपाचितं तुल्यखण्डम्।
निजपयसि सदेतत्प्रस्थमात्रे विपक्वं कुडवमथ सुशीते शाणमात्रं क्षिपेच्च ॥ १ ॥
धान्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरैः साकं त्रिजातमिभकेसरयद्विचूर्ण्य।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं शूलं वमिं सकलपौरुषकारि पुंसाम् ॥ २ ॥

नारिकेल खण्ड पाक—नारियल को भलीभाँति पीसकर एक कुड़व (½ मानिका) लेवे, गोघृत एक पल लेवे और नारियल के समान शक्कर मिलाकर पकावे और इसमें एक प्रस्थ नारियल का जल मिलाकर अवलेह पाक की विधि से पाक सिद्धकर शीतल होने पर उसमें धनियाँ, पीपल, नागरमोथा, वंशलोचन, जीरा, कृष्णजीरा, दालचीनी, इलायची के दाने और नागकेसर प्रत्येक का पृथक् २ श्लक्ष्ण चूर्ण एक २ शाण (३ ३ माशा) मिलाकर रख ले इसको यथा बल मात्रा से सेवन करने पर अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल और वमन नष्ट होता है। यह पाक पुरुषों के सम्पूर्ण पुरुषार्थ (शक्ति) को देने वाला है ॥ १–२ ॥

गुडादी मोदक—

गुडपिप्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः । पित्तश्लेष्महरः प्रोक्तो मन्दाग्निं च प्रणाशयेत् ॥

गुडादि मोदक—पुराना गुड़, पीपल और हरड़ का चूर्ण समभाग लेकर विधिपूर्वक बटी बनाकर सेवन करने से पित्त-कफ और मन्दाग्नि नष्ट होता है ॥ १ ॥

खण्डकूष्माण्ड—

कूष्माण्डस्य रसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकः । रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥१॥
खण्डमिना पचेत्तावद्यावद्भवति पिण्डितम् । धात्रीतुल्या सिता योज्या पलार्द्धं भक्षयेत्तु ॥
खण्डकूष्माण्डकं ह्येतदम्लपित्तं नियच्छति ॥ २ ॥

खण्ड कुष्माण्ड—श्वेत कुष्माण्ड का स्वरस सौ पल (४०० तो०) और स्वरस के समान (१०० पल), गाय का दूध तथा आँवले का चूर्ण आठ पल सबको मिलाकर मृदु अग्नि पर अवलेह की विधि से पकावे और पाक सिद्ध हो जाने पर उसमें आँवले के चूर्ण के समान (आठ पल) शर्करा मिलाकर आधा पल के प्रमाण की मात्रा से प्रतिदिन चाटने पर यह कुष्माण्ड खण्ड अम्लपित्त को नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मधुपिप्पल्यादियोग—पिप्पली मधुसंयुक्ताऽम्लपित्तविनाशिनी ।
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥ १ ॥

मधुपिप्पल्यादि योग—पीपल के चूर्ण में मधु मिलाकर चाटने से और जमीरी नीबू के स्वरस को नित्य सायंकाल पान करने से अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ १ ॥

पिप्पलीघृतम्—

पिप्पलीक्वाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम् । पिबेत्प्रातः समुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ १ ॥

पिप्पली घृत—पीपल के क्वाथ और कल्क से घृत सिद्ध कर अर्थात् पीपल का कल्क विधिपूर्वक बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना पीपल का विधिवत् बना क्वाथ लेकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर उसे मधु के अनुपान से प्रातः नित्य सेवन करने से अम्लपित्त की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

द्राक्षादिघृतम्—द्राक्षाभयाशक्रयवोलपत्रैः सोशीरधात्रीयवधान्यकैश्च ।
त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरनेन भेषज ॥ १ ॥
भुञ्जीत मात्रां सह भोजनेन सर्वेषु पानं ह्यमृतोपमं च ॥ २ ॥

द्राक्षादि घृत—दाख हरड़ इन्द्र जौ, परवल के पत्ते, खस, आँवला, जौ, काला चन्दन, त्रायमाणा, पद्मकाठ, चिरायता और धनियाँ प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् कल्क कर जितना कल्क हो उससे चतुर्गुण मूर्च्छित गोघृत और घृत से चतुर्गुण क्वाथ जल मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर भोजन के साथ यथोचित मात्रा से सेवन करने पर अम्लपित्त नष्ट होता है। सभी अवस्थाओं में यह घृत अमृत के समान लाभदायक है ॥ १-२ ॥

शतावरीघृतम्—

शतावरीमूलकल्के घृतं प्रस्थं पयः समम् । पचेन्मृद्वग्निना सम्यक्क्षीरं दत्वा चतुर्गुणम् ॥१॥
नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तोद्भवान्गदान् । रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ २ ॥

शतावरी घृत—शतावरी मूल का कल्क ½ प्रस्थ और गोघृत एक प्रस्थ इसमें एक प्रस्थ पानी और ४ प्रस्थ गोदुग्ध मिलाकर मन्द २ अग्नि पर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से अम्लपित्त, वात-पित्त, रक्तपित्त, तृषा, मूर्च्छा, श्वास और सन्ताप (दाहादि) रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

नारायणघृतम्—

जले दशगुणे क्वाथ्यं पिप्पलीनां पलाष्टकम् । पादशेषं हरेत्क्वाथं क्वाथतुल्यं घृतं पिबेत् ॥
अम्लपित्तहरं श्रेष्ठं घृतं नारायणं महत् । गुडक्षीरसमायुक्तं सर्वदाऽग्निप्रदीपनम् ॥ २ ॥

महानारायण घृत—८ पल पीपल को कूट कर उसमें दशगुने (८० पल) जल डाल कर विधिवत् क्वाथ करे चतुर्थांश (२० पल) शेष रहने पर उतार कर छान ले। उसमें क्वाथ के

समान ( २० पल ) मूर्च्छित गोघृत मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से यह अम्लपित्त नष्ट होता है। इसमें गुड़, दूध और पीपल से पकाया हुआ घृत सेवन करना चाहिये ॥ १-२ ॥

## अथ रसा आरभ्यन्ते।

### तत्रादौ लीलाविलासो रसः—

शुद्धसूतं समं गन्धं मृतताम्राभ्ररोचनम्। तुल्यांश मर्दयेद्यामं रुद्ध्वा लघुपुटे पचेत्॥ १॥
अक्षधात्रीहरीतकीः क्रमवृद्धया विपाचयेत्। जलेऽष्टगुणेनैव ग्राह्यमष्टावशेषकम्॥ २॥
अनेन भावयेत्पूर्वं पक्वसूतं पुनः पुनः। पञ्चविंशतिवारं च तावता भृङ्गजद्रवैः॥ ३॥
शुष्कं तच्चूर्णितं खादेत्पञ्चगुञ्जं मधुप्लुतम्। रसो लीलाविलासोऽयमम्लपित्तं नियच्छति॥४॥

लीलाविलास रस—शुद्ध पारद शुद्धगन्धक, ताम्रभस्म, अभ्रकभस्म और वंशलोचन प्रत्येक समान भाग लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर सब मिलाकर एक पहर तक भलीभाँति मर्दन कर शराव सम्पुट में रख कर लघुपुट में फूक दे और बहेड़ा एक भाग, आँवला दो भाग और हर्र ३ भाग लेकर जो कुट कर अठगुने जल के साथ विधिवत् क्वाथ कर अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छान रखे तथा इस क्वाथ से विधिपूर्वक उपरोक्त पुटपक्व पारदादि को बार २ करके पचीस बार भावित करे और फिर भांगरे के स्वरस से पचीस बार भावित करे तत्पश्चात् सुखाकर चूर्णकर ले। इसको ५ रत्ती प्रमाण मात्रा से मधु के साथ मिलाकर सेवन करने से अम्लपित्त नष्ट होता है॥ १-४॥

### रसामृतम्—

त्रिकटु त्रिफला मुस्ता विडङ्गश्चित्रकं तथा। एषां सञ्चूर्णितानां तु प्रत्येकं तु पलं भवेत्॥ १॥
कर्षद्वयं गन्धकस्य तदर्धं पारदस्य च। बिडालपदमात्रं तु लिह्यात्तन्मधुसर्पिषा॥ २॥
शीतोदकं चानु पिबेत्क्रमाद्गव्यं पयस्तथा। अम्लपित्तमग्निमान्द्यं परिणामरुजं तथा॥
कामलां पाण्डुरोगं च हन्यादेतद्रसामृतम्॥ ३॥

रसामृत—सोंठ, मरिच, पीपल, हर्र, बहेड़ा, आंवला, नागरमोथा, वायविडङ्ग और चीते की जड़ का चूर्ण पृथक् २ एक २ पल लेकर इसमें शुद्ध गन्धक २ कर्ष और शुद्ध पारद १ कर्ष मिलाकर विधिपूर्वक कज्जली करके भलीभाँति मर्दन कर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से अथवा यथा बल मात्रा से मधु और गोघृत के साथ चाट कर शीतल जल का अनुपान करे पश्चात् गौ का दूध पान करे। इस क्रम से इस रसामृत सेवन करने से अम्लपित्त, मन्दाग्नि, परिणाम शूल कामला और पाण्डुरोग नष्ट होता है॥ १-३॥

### सूतशेखररस सारसंग्रहात्—

शुद्धं सूतं मृतं स्वर्णं टङ्कणं वत्सनागकम्। व्योषमुन्मत्तबीजं च गन्धकं ताम्रभस्मकम्॥ १॥
चतुर्जातं शङ्खभस्म बिल्वमज्जा कचोरकम्। सर्वं समं क्षिपेत्खल्वे मर्द्यं भृङ्गरसैर्दिनम्॥२॥
गुञ्जामात्रां वटीं कृत्वा द्विगुञ्जं मधुसर्पिषी। भक्षयेदम्लपित्तघ्नो वान्तिशूलामयापहः॥ ३॥
पञ्च गुल्मान्पञ्च कासान्ग्रहण्यामयनाशनः। त्रिदोषोत्थातिसारघ्नः श्वासमन्दाग्निनाशनः॥
उग्रहिक्कामुदावर्तं देहव्याप्यगदापहः। मण्डलान्नात्र सन्देहः सर्वरोगहरः परः॥
राजयक्ष्महरः साक्षाद्रसोऽयं सूतशेखरः॥ ५॥

सूतशेखर रस—शुद्ध पारद, स्वर्णभस्म, शुद्ध टङ्कण, शुद्ध वत्सनाग, विष, सोंठ, मरिच, पीपल शुद्ध धतूर के बीज, शुद्धगन्धक ताम्रभस्म दालचीनी, इलायची, तेजपात नागकेसर, शङ्खभस्म, कच्चे बेल की गुद्दी और कचूर प्रत्येक समभाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों का चूर्ण और भस्मादि सब लेकर एकत्र कर फिर भांगरे के स्वरस के साथ दिन भर मर्दन कर एक रत्ती के प्रमाण की विधिपूर्वक बटी बनाकर दो रत्ती मधु और घृत के साथ सेवन करने से अम्लपित्त, वमन, शूल पांचों प्रकार के गुल्म तथा कास, ग्रहणी त्रिदोषज अतीसार, श्वास, मन्दाग्नि उग्र हिक्का, उदावर्त तथा शरीर के अन्य व्याप्यरोग भी नष्ट होते हैं। एक मण्डल ( १८ दिन तक ) सेवन करने से यह सूतशेखर रस राजयक्ष्मा को भी नष्ट करता है। यह रस प्राणी के भी रोगों को नष्ट करने में महौषध है॥ १-५॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

यवगोधूममुद्गाश्च पुराणा रक्तशालयः । जलानि तप्तशीतानि शर्करा मधु सक्तवः ॥ १ ॥
कर्कोटकं कारवेल्लं रम्भापुष्पं च वास्तुकम् । वेत्राग्रं वृद्धकूष्माण्डं पटोलं दाडिमं तथा ॥ २ ॥
पानान्नानि समस्तानि कफपित्तहराणि च । अम्लपित्तामये नित्यं सेवितव्यानि मानवैः ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—जौ, गेहूं, मूंग, पुराने लाल चावल, तपा कर शीतल किया जल, शक्कर, मधु, सत्तू, ककोड़ा, करेली, केले का फूल, बथुआ का शाक, बेंत के पत्ते, पुराना श्वेत कूष्माण्ड, परवल, अनार और कफ-पित्त नाशक सभी अन्न-पानादि अम्लपित्त रोग में सेवन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

वमिवेगं तिलान्माषान्कुलत्थांस्तिलभक्षणम् । अविदुग्धं च धान्याम्लं लवणाम्लकटूनि च ॥
गुर्वन्नं दधि मद्यं च वर्जयेदम्लपित्तवान् ॥ ४ ॥

वमन का वेग, तिल, उड़द, कुलथी, तिल के बने पदार्थ, भेड़ी का दूध, धान्याम्ल ( कांजी ), लवण, अम्ल तथा कटु रस वाले द्रव्य, गुरु अन्न, दही और मद्य ये सब अम्लपित्त का रोगी त्याग देवे ॥ ४ ॥

इत्यम्लपित्तप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ विसर्पनिदानमाह ।

तस्य सम्प्राप्तिमाह—

लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवाद्दोषकोपतः । विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥

विसर्प निदान—लवण और उष्ण पदार्थ के अतिसेवन से वातादि दोष कुपित होकर सात प्रकार के विसर्परोग उत्पन्न करते हैं । यह सम्पूर्ण शरीर में फैलने वाला होने से यह विसर्परोग कहलाता है ॥ १ ॥

तस्य संख्यामाह—

वातिकः पैत्तिकश्चैव कफजः सान्निपातिकः । चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वन्द्वजास्त्रयः ॥ २ ॥

विसर्प के भेद और लक्षण—वातिक, पैत्तिक, कफज तथा सान्निपातिक और तीन प्रकार के द्वन्द्वज भेद से सात प्रकार के विसर्परोग होते हैं ॥ २ ॥

आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः । यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥ ३ ॥

द्वन्द्वज विसर्प के भेद वात और पित्त दोष के मिश्रण से आग्नेय विसर्प, वात और कफ दोष के मिश्रण से ग्रन्थि विसर्प और पित्त तथा कफ के दोष के मिश्रण से कर्दमक विसर्प होते हैं । ये तीन प्रकार के द्वन्द्वज विसर्प कठिन होते हैं ॥ ३ ॥

रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः । विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥ ४ ॥

विसर्प के कारण—विसर्प में रक्त, लसीका, त्वचा और मांस ये दूष्य हैं तथा वात, पित्त और कफ ये तीन दोष हैं । ये सातों विसर्पों की उत्पत्ति के कारण हैं ॥ ४ ॥

तत्र वातिकमाह—

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः । शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥

वातिक विसर्प—जिस विसर्परोग में वात ज्वर के समान पीड़ा, शोथ, स्फुरण ( फड़कनाहट ) तोद ( सुई चुभाने के समान पीड़ा ) और भेद फटने के समान व्यथा हो तथा जो फैलने वाला हो, पीड़ा से युक्त हो और जिसमें रोमाञ्च हो उसे वात दोष का वीसर्प जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकमाह—पित्ताद् द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः ॥

पैत्तिक विसर्प—जो विसर्प शीघ्र बढ़ने वाला हो, जिसमें पित्त ज्वर के लक्षण के समान लक्षण हों और जो अत्यन्त रक्त वर्ण का हो उसे पैत्तिक विसर्प कहते हैं ॥

कफजमाह—कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ६ ॥

कफज विसर्प—जिस विसर्प में खुजलाहट, चिकनाहट और कफ ज्वर के समान पीड़ा हो उसे कफज विसर्प कहते हैं ॥ ६ ॥

सन्निपातजमाह—

सन्निपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः । [illegible] द्विधा ॥ ७ ॥

सान्निपातिक विसर्प—जिस विसर्प में तीनों दोषों के सब लक्षण प्रकट हों उसे सान्निपातिक विसर्प कहते हैं। यह सान्निपातिक विसर्प अन्तर बाह्य भेद से दो प्रकार का होता है ॥ ७ ॥

मर्मोपतापात्संमोहादयनानां विघट्टनात्। तृष्णादियोगाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात् ॥ ८ ॥
विद्यादिविसर्पमन्तर्जमाशु चाग्निबलक्षयात्। अतो विपर्ययाद्बाह्यमन्यं विद्यात्सुलक्षणैः ॥ ९ ॥

अन्तरज और बाह्यज विसर्प—मर्म स्थानों में ताप अथवा आघात होने से, मोह होने से, अयनों अर्थात् उत्तरायण और दक्षिणायन के विघट्टन से अथवा स्रोतों के बन्द होने से, अधिक तृषा से, वेगों के उचित प्रवृत्त नहीं होने से और अग्नि बल के क्षय (मन्दाग्नि) होने से शीघ्र अन्तर्ज विसर्प हो जाता है और इससे विपरीत लक्षण होने पर बाह्यज विसर्प हो जाता है ॥८-९॥

द्वंद्वमाह—

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः। अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥ १० ॥
करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत्। यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ॥ ११ ॥
शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाऽऽशु च चीयते।
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद् द्रुतं च सः ॥ १२ ॥
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः। व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ॥
हिध्मां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना।
क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥ १४ ॥
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्भवाम्। दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥

आग्नेय विसर्प—जिस विसर्प में ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतीसार, तृषा, भ्रम, अस्थिभेद, मन्दाग्नि, तमक श्वास और अरुचि होता है और सम्पूर्ण अङ्ग ऐसे हो जाते हैं मानो जलते हुए अङ्गारे छिड़क दिये गये हों, जिस २ स्थान पर विसर्प रोग फैलता है उस २ स्थान पर ऐसा ज्ञात होता है मानो बुझाये हुए कृष्णवर्ण के अङ्गार हैं अथवा नील वर्ण के अथवा रक्त वर्ण के फफोले पड़ जाते हैं और वे फफोले शीघ्रगामी होने के कारण हृदयादि मर्मों की ओर फैलते हैं जिसके कारण वात अति बलवान हो जाता है और अङ्गों को पीड़ित तथा संज्ञा (चेतना) और निद्रा का नाश होता है, एवं श्वास और हिक्का की वृद्धि कर देता है। इस प्रकार की अवस्था होने पर मनुष्य व्याकुल होकर भूमि, शय्या तथा आसन इत्यादि किसी स्थान पर शान्ति नहीं पाता है। इस कष्ट से शान्ति मिलने की चेष्टा करने पर उसे मन-देह के थकित होने के कारण दुष्प्रबोध निद्रा अर्थात् मरण तुल्य निश्चेष्ट भाव का हो जाता है। ऐसे विसर्प को वात-पित्त के कोप का अग्नोजन विसर्प कहते हैं ॥ १०-१५ ॥

कफमारुतजग्रन्थिविसर्पमाह—

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम्। रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् ॥
दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम्। ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ॥
श्वासकासातिसारास्यशोषहिध्मावमिभ्रमैः। मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥ १८ ॥
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥

कफवातज ग्रन्थि—विसर्प जिस विसर्प में कुपित कफ से अवरोधित कुपित वायु उस कफ को अनेक प्रकार से भेदित कर अथवा बढ़े हुए रक्त वाले मनुष्य रक्त को भी भेदित कर के उसकी त्वचा, शिरा, स्नायु और मांस में स्थित रक्त को दूषित करके बड़ी, छोटी, गोल, मोटी और कठिन गाठों की माला को उत्पन्न कर देता है यह ग्रन्थियां रक्त होती हैं उनमें तीव्र पीड़ा और ज्वर होता है तथा श्वास, कास, मुख की नीरसता, शोष, हिक्का, वमन, भ्रम, मोह, विवर्णता, मूर्च्छा अङ्गों का टूटना और मन्दाग्नि आदि होते हैं उसको कफ और वायु के कोप का ग्रन्थि विसर्प कहते हैं ॥ १६-१८½ ॥

कफपित्तात्मककर्दमविसर्पमाह—

कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ॥ १९ ॥
अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः। मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् ॥२०॥
आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति। प्रायेणाऽऽमाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् ॥ २१ ॥

पिडकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः । स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोफवान्गुरुः ॥
गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते । पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुसिरागणः ॥
शवगन्धिश्च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् । अग्निकर्दमको घोरः स पित्तकफसम्भवः ॥

कफ पित्तज कर्दम विसर्प—जिस विसर्प में ज्वर, स्तम्भता, निद्रा, तन्द्रा, शिर में पीड़ा, अङ्गों में शिथिलता, विक्षेप, प्रलाप, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, अस्थि भेद (हड्डियों का टूटना), तृषा और इन्द्रियों में गुरुता हो तथा मल त्याग के समय आंव निकलता हो, नासिकादि में कफ लिपटा हुआ हो, आमाशय को ही ग्रहण कर फैलता हो, उसमें पीड़ा भी अति नहीं हो, तथा अत्यन्त पीत, लोहित और पाण्डु वर्ण की पिडिकायें व्याप्त हो गयी हों स्निग्धता हो, श्यामता हो, अञ्जन के वर्ण का वर्ण हो, मलिन हो, शोथ युक्त हो, गुरु हो, बहुत भीतर से पकने वाला हो, अत्यन्त उष्ण हो, स्पर्श करने पर आर्द्र मास हो, फटता हो, कीचड़ के समान वर्ण का सड़ा हुआ मांस निकलता हो और मांस निकल जाने से शिरा, स्नायु आदि स्पष्ट दिखाई देता हो और शव के समान गन्ध निकलता हो तो उसे कफ-पित्त के योग से होने वाला कर्दम नाम का विसर्प कहते हैं। यह भयङ्कर होता है ॥ १९–२४ ॥

क्षतजमाह—

बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयेत् । विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् ॥
स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाढ्यं श्यावलोहितम् ॥ २५ ॥

क्षतज विसर्प—क्षतज विसर्प में बाह्य आघात से क्षत हो जाने पर रक्त के अधिक स्राव होने से वायु कुपित होकर रक्त के साथ पित्त को लेकर विसर्प रोग को उत्पन्न कर देता है जिसमें विसर्प की पिडिकायें कुलथी के आकार की व्याप्त हो जाती हैं तथा शोथ, ज्वर, पीड़ा और दाह की उसमें अधिकता होती है तथा वर्ण श्याम अथवा लोहित होता है (भोज ने इस विसर्प को पित्तज विसर्प ही माना है) ॥ २५ ॥

विसर्पोपद्रवानाह—

ज्वरातिसारवमथुस्त्वङ्मांसदरणक्लमाः । अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २६ ॥

विसर्प के उपद्रव—विसर्परोग में ज्वर, अतीसार, वमन, त्वचा तथा मांस का फटना, क्लान्ति, अरुचि और अविपाक (भोजन का न पचना) आदि उपद्रव होते हैं ॥ २६ ॥

साध्यासाध्यमाह—सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ।
पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २७ ॥

विसर्प के साध्यासाध्यता—वात-पित्त और कफ के दोषों से होने वाला विसर्प साध्य है। सान्निपातिक और क्षतज विसर्प असाध्य हैं। पित्त के कारण बढ़ जाने से अञ्जन के समान कृष्ण वर्ण वाला भी विसर्प असाध्य है। मर्मस्थानों में होने वाले सभी विसर्प कष्टसाध्य होते हैं ॥

## अथ विसर्पचिकित्सा ।

पूर्वमेव विसर्पेषु कुर्याल्लङ्घनरूक्षणे । विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ॥
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ १ ॥

विसर्प चिकित्सा—विसर्परोगों में सर्वप्रथम लङ्घन और रूक्षण करें तथा विरेचन, वमन, लेप, सेक (सिंचन) और रक्तमोक्षण कराना चाहिये और दोषों के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये। विशेष कर अविदाही पदार्थों का सेवन कराना चाहिये ॥ १ ॥

विरेचनम्—

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥

विरेचन योग—आँवला, बहेड़ा के रस अथवा क्वाथ में घृत और निशोथ का चूर्ण मिलाकर प्रयोग करने से अथवा त्रिफलादि के योग से सिद्ध घृत में मिला कर सेवन करने से विरेचन हो कर विसर्प और ज्वर शमन होता है। अथवा निशोथ और हरड़ के चूर्ण के सेवन करने से भी विसर्प शोधन होता है ॥ २ ॥

वमनम्—

पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन वा । विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रयवैः सह ॥ १ ॥

वमनकारक योग—परवल और नीम की छाल का क्वाथ पान कराने से अथवा पीपल और मैनफल के चूर्ण को जल से सेवन कराने से अथवा इन्द्रजौ के चूर्ण का जल से पान कराने से विसर्परोग में वमन होता है ॥ १॥

श्लैष्मिकेऽस्र वमिः कार्या पूर्वं रेचनकं ततः। मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च ॥
एतैश्चमिर्विधातव्या विसर्पे कफसम्भवे ॥ २ ॥

कफज विसर्परोग में पहले वमन पश्चात् विरेचन कराना चाहिये। मैनफल, मुलहठी, नीम की छाल और इन्द्रजौ प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ अथवा चूर्ण बना कर सेवन करने से कफज विसर्प में वमन होकर लाभ होता है ॥ २ ॥

## अथ लेपः।

रास्ना नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बला। घृतक्षीरयुतो लेपो वातवीसर्पनाशनः ॥१॥

रास्नादि लेप—रास्ना, नीलकमल, देवदारु, रक्तचन्दन, मुलहठी, खरैटी प्रत्येक समभाग लेकर घृत और दूध के साथ पीस कर विधिपूर्वक लेप करने से वातज विसर्प नष्ट होता है ॥ १ ॥

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः। सयष्टीन्दीवरैः पैत्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपनम् ॥ २ ॥

प्रपौण्डरीकादि लेप—पुण्डरिया काठ मजीठ, पदुमकाठ, खस, रक्तचन्दन, जेठीमधु, नीलकमल प्रत्येक समभाग लेकर दूध के साथ पीसकर लेप करने से पित्तज विसर्प में लाभ होता है ॥

कसेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्राः सशैवलाः सोत्पलकर्दमाश्च।
वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥ ३ ॥

कसेर्वादि लेप—कसेरू, सिंघाड़ा, कमल, गोंदपटेर, सेवार (जल की काई), नीलकमल और कीचड़ प्रत्येक समान पीसकर गोघृत मिलाकर विधिपूर्वक लेप बना कर शीतल ही शीतल वस्त्र पर लगाकर लेप लगाने से पित्तज विसर्प में लाभ करता है ॥ ३ ॥

न्यग्रोधसप्तपर्णाब्दवासारग्वधदारुभिः। कुटन्नटैश्चयेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे ॥ ४ ॥

न्यग्रोधादि लेप—बड़, छितवन की छाल, नागरमोथा, अडूसा, अमलतास, देवदारु, अरलू (सोना पाठा) की छाल प्रत्येक समभाग पीस कर विधिपूर्वक लेप लगाने से कफज विसर्प में लाभ होता है ॥ ४ ॥

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम्। नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ ५ ॥

त्रिफलादि लेप—हरड़, बहेड़ा, आंवला, पदुमकाठ, खस, मजीठ, कनेर की जड़, नरकुल की जड़ और अनन्तमूल प्रत्येक समभाग पीस कर विधिपूर्वक लेप करने से कफज विसर्प नष्ट होता है॥

सर्पिषा शतधौतेन कृतो लेपो मुहुर्मुहुः। निहन्ति सर्ववीसर्पं सर्पं पतगराडिव ॥ ६ ॥

शतधौतसर्पिर्लेप—घृत को सौबार शीतल जल से धोकर बार २ लेप करने से सब प्रकार के विसर्प इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार गरुड़ से सर्प नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

दशाङ्गलेप—शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः।
लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो विसर्पकुष्ठव्रणशोथहारी ॥ १ ॥

दशाङ्गलेप—शिरीष की छाल, जेठीमधु तगर, रक्तचन्दन छोटी इलायची, जटामासी, हल्दी दारुहल्दी कूट, सुगन्धबाला प्रत्येक समभाग जल से पीस कर घृत मिलाकर लेप करने से विसर्प, दुष्टव्रण और शोथ (व्रण शोथ) नष्ट होते हैं। (यहां लेपविधि के अनुसार घृत सब द्रव्यों के षष्ठमांश ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥

मांस्यादिलेप—

मांसी सर्जरसो लोध्रं मधुकं सहरेणुकम्। मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमानि च ॥
एतैः प्रदेहः कथितो वह्निवीसर्पनाशनः ॥ १ ॥

मांस्यादि लेप—जटामांसी, राल, लोध, मुलहठी, रेणुका, मूर्वामूल, नील कमल (निलोफर) कमल और शिरीष के फूल प्रत्येक समभाग लेकर जल के साथ पीस कर लेप करने से अग्नि-विसर्प नष्ट होता है ॥ १ ॥

शतधौतघृतविमिश्रं कल्ककरञ्जपल्लवस्य लेपेन। बहुदाहकमुच्चैरग्निविसर्पं विनाशयति ॥

पञ्चत्वगादि लेप—सौ बार धुले हुए घृत में पञ्चवल्कल ( वट, पीपर, [ अश्वत्थ ], गूलर, पाकड़ और बेत के छाल ) के समान भाग चूर्ण को मिलाकर लेप करने से अत्यन्त दाह करने वाला और उच्च ( उठा हुआ ) अग्नि विसर्प नष्ट होता है ॥ २ ॥

न्यग्रोधपादो गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च । एतैर्लेपो विसर्पघ्नो धौताज्यसंयुतः ॥ १ ॥

न्यग्रोधपादादि लेप—वट वृक्ष की जड़, गुन्द्रा ( रुचिरा ) और केले के बीच का गूदा प्रत्येक समान भाग पीस कर सौ बार धुले हुए घृत में मिलाकर लेप करने से अग्नि विसर्प नष्ट होता है ॥

शतधौतघृतोन्मिश्रं शिरीषत्वग्भवं कृतम् । लेपः शमयति क्षिप्रं विसर्पं कर्दमाभिधम् ॥ ४ ॥

शिरीषत्वगादि लेप—सौ बार धुले हुए घृत में शिरीष की छाल के चूर्ण को मिलाकर लेप करने से कर्दम नाम का विसर्प नष्ट होता है ॥ ४ ॥

## अथ क्वाथाः ।

कनीयः पञ्चमूलस्य यवयवकल्कस्य वा । कषायः पित्तवीसर्पे पाने सेकेऽपि शस्यते ॥ १ ॥

लघुपञ्चमूलादि क्वाथ—लघुपञ्चमूल ( शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी बड़ी कटेरी, गोखरू ) और यव का छिलका समान भाग लेकर बनाया हुआ विधिपूर्वक क्वाथ में पान अथवा सिंचन करने से पित्त विसर्प में लाभ होता है ॥ १ ॥

पटोलादि—कुष्ठकपुष्पकिराततिक्तारिष्टतिक्ताकपथ्यामलकमलयजानां कौशिकाढ्य कषायः ।
सकटगदसमुत्थं हन्ति वीसर्पमुग्रं ज्वरवमिविषदाहभ्रान्तितृष्णारुजाभिः ॥ १ ॥

पटोलादि क्वाथ—परवल के पत्र, अडूसा, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी, बहेड़ा, हरड़ आँवला, चन्दन प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें शुद्ध गुग्गुल का प्रक्षेप देकर पान करने से ज्वर, वमन, विष, दाह, भ्रम, तृषा और पीड़ा युक्त कठिन रोग तथा विसर्प भी नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

गुडूच्यादि—

अमृतवृषपटोलं निम्बकल्कैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यम् ।
क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोः पादयुक्तं हरति विषविसर्पान् कुष्ठसङ्घानमाशु ॥ १ ॥

गुडूच्यादि क्वाथ—गुरुची, अडूसा, परवल पत्र, नीम की छाल, आँवला, हरड़, बहेड़ा, और अमलतास प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर उसमें चतुर्थांश शुद्ध गुग्गुल मिलाकर पान करने से विष रोग, विसर्प रोग और कुष्ठ समूह शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूनिम्बाद्य—भूनिम्बवासाकटुकापटोलफलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः ।
विसर्पदाहज्वरशोफकण्डूविस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः ॥ १ ॥

भूनिम्बादि क्वाथ—चिरायता, अडूसा, कुटकी, परवल पत्र, आँवला, हरड़, बहेड़ा, चन्दन और नीम की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पान करने से विसर्प, दाह, ज्वर, शोथ, कण्डू, विस्फोट, तृष्णा और वमन नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

दुरालभादि—

दुरालभापर्पटकं गुडूची विश्वभेषजम् । निशापर्युषितं दद्यात्तृष्णावीसर्पशान्तये ॥ १ ॥

दुरालभादि योग—जवासा, पित्तपापड़ा, गुरुची और सोंठ प्रत्येक समान भाग लेकर कूट कर जल में भिगो कर रात भर पड़ा रहने दे। प्रातःकाल छानकर पान करने से तृष्णा और विसर्प नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पटोलपिचुमन्दं च दार्वी कटुकरोहिणीम् । यष्ट्याह्वं त्रायमाणां च दद्याद्वीसर्पशान्तये ॥१॥

द्वितीय पटोलादि क्वाथ—परवल पत्र, नीम की छाल, दारुहल्दी, कुटकी, मुलेठी, त्रायमाणा प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ करके सेवन करने से विसर्प शान्त होता है ॥ १ ॥

मुस्तादि—

मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् । धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंयुतः ॥ १ ॥

मुस्तादि क्वाथ—नागरमोथा, नीम की छाल, परवल पत्र प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ पान करने से अथवा आँवला, परवल पत्र और मूँग प्रत्येक समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर घृत का प्रक्षेप देकर पान करने से विसर्प रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

## अथ घृतानि।

गौराद्यं सर्पि—

द्वे हरिद्रे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम्। मधुकं मधुपर्णी च पद्मकं पद्मकेसरम्॥ १॥
उशीरमुत्पलं मेदा त्रिफला पञ्च वल्कलम्। कल्कैरेतस्समैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ २॥
विषवीसर्पविस्फोटकीटलूताव्रणापहम्। गौराद्यमिति विख्यातं सर्पिः श्लेष्ममरुत्प्रणुत्॥ ३॥

गौरादि घृत—हल्दी, दारुहल्दी, शालिपर्णी, मूर्वामूल, सारिवा, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, मुलहठी, गुरुची अथवा गम्भार की छाल, पद्मकाठ, पद्मकेसर, खस, नीलकमल, मेदा, आँवला, हरड़, बहेड़ा और बट, अश्वत्थ, गूलर, पाकड़ तथा बेत की छाल प्रत्येक एक २ अक्ष लेकर विधिपूर्वक कल्क कर उसमें एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत और पाकार्थ जल चार प्रस्थ मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से विष, विसर्प, विस्फोटक, कीट, लूता (मकड़ी का विष) और व्रण को नष्ट करता है। यह घृत गौरादि नाम से विख्यात है तथा कफ और वायु के दोषों को नष्ट करता है॥ १-३॥

वृषादिसर्पि—वृषखदिरपटोलपत्रनिम्बं सममगृतामलकीकषायकल्के।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति सदाऽस्रविसर्पकुष्ठगुल्मान्॥ १॥

वृषादि घृत—अरूसा, खैर, परवल पत्र, नीम की छाल, गुरुची और आँवला प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गाय का नया घी और घृत से चौगुना अरूसा आदि कल्कीय द्रव्यों का प्रस्तुत क्वाथ लेकर एकत्र कर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से रक्तविसर्प, कुष्ठ तथा गुल्म शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं॥ १॥

दूर्वादिसर्पि—दूर्वावटोदुम्बरजम्बुसालसप्तच्छदाश्वत्थकषायकल्के।
सिद्धं विसर्पज्वरदाहपाकविस्फोटशोफान्विनिहन्ति सर्पिः॥ १॥

दूर्वादि घृत—दूब तथा बट, गूलर, जामुन, साल, छितवन और पीपल की छाल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत से चौगुना दूब आदि कल्कीय द्रव्यों का विधिवत् प्रस्तुत क्वाथ एकत्र कर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से विसर्प, ज्वर, दाह, पाक, विस्फोट और शोथ नष्ट होते हैं॥ १॥

करञ्जादितैलम्—करञ्जसप्तच्छदलाङ्गलीकास्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजैः।
तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचर्चिकाघ्नम्॥ १॥

करञ्जादि तैल—करञ्ज, छितवन की छाल, करियारी विष, सेंहुड़ का दूध, चीता, भांगरा, हल्दी, गोमूत्र और मीठा विष प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ जल लेकर सबको एकत्र कर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से विसर्प, विस्फोटक और विचर्चिका रोग नष्ट होते हैं॥ १॥

मञ्जिष्ठाभया—

मञ्जिष्ठा कुटजो मुस्ता गुडूची रजनीद्वयम्। कण्टकारी वचा शुण्ठी कुष्ठारिष्टपटोलकम्॥१॥
भार्गी विडङ्गकाकाची मोरटा प्लक्षदारुकम्। कलिङ्गभृङ्गत्रायन्तीपाठाकाश्मीरिका बलिः॥२॥
गायत्री त्रिफला तिक्ता सारिवा नक्तमालकः। वासोशीरमहानिम्बसोमराजीप्रियंगुकाः॥ ३॥
चन्दनं पर्पटानन्ताविशालात्रिवृता जलम्। कटुत्रिकं खुरासानं पलमेकं पृथक्पृथक्॥ ४॥
द्वाविंशतिपलां पथ्यां जलद्रोणे विपाचयेत्। अष्टावशेषं कर्तव्यं क्वाथं सद्भिषजा ततः॥५॥
वस्त्रपूता शिवा कार्या सीक्ष्णलोहेन वेधयेत्। मधुमध्ये विनिक्षिप्य त्रिः सप्तदिनसंख्यया॥६॥
विनष्टं मधु सन्त्यज्य मधु श्रेष्ठं पुनः क्षिपेत्। ततः सुस्वादुसंपक्वां प्रभाते भक्षयेच्छिवाम्॥७॥
विसर्पानाशयेत्सर्वान् कुष्ठान्यष्टादशापि च। क्षुद्रं पामां च कण्डूं च दद्रुविस्फोटविद्रधीन्॥
अन्यांस्त्वग्दोषजान्रोगांस्तथा रक्तसमुद्भवान्॥ ८॥

मञ्जिष्ठाभया—मंजीठ, कोरया की छाल, नागरमोथा, गुरुची, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी कटेरी, बच, सोंठ, कूट, नीम की छाल, परवल पत्र, बांझ ककोड़ा, बायविडंग छोटी मकोय, मझोल की जड़, पाकड़ की जड़, देवदारु, इन्द्रजौ, भांगरा, त्रायमाणा, पुरइनपाढ़ी, गम्भार की छाल, शुद्ध

गन्धक, खैर, हरड़, बहेड़ा, आंवला, कुटकी, मजीठ, करञ्ज, अरूसा, खस, अमलतास, बाकुची, बीज, प्रियंगु, रक्तचन्दन, पित्तपापड़ा, अनन्तमूल, मरोड़फली, निशोथ, सुगन्धवाला, सोंठ, पीपल, मरिच और खुरासानी अजवायन, प्रत्येक एक २ पल और हरड़, १२ पल एकत्र कर एक द्रोण ( ४ आढक ) जल के साथ क्वाथ करे अष्टमांश शेष रहने पर उतार-छानकर हरड़ को पृथक् कर लोहे के तीक्ष्ण कांटे से छेद कर २१ दिन तक मधु में रखे, २१ वें दिन जब वह मधु खराब अथवा खट जावे तब हरड़ों को उससे निकाल कर दूसरे उत्तम मधु में डुबा देवे पश्चात् उन सुरक्षित हरड़ों को नित्य प्रातःकाल भक्षण करने से सब प्रकार के विसर्प, अठारहों प्रकार के कुष्ठ और वातरक्त, पामारोग, कण्डू, दद्रु, विस्फोटक, विद्रधि और अन्यान्य त्वचा के दोष वाले रोग तथा रक्त दोष से होने वाले रोग सभी नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

त्रिदोषघ्नीं क्रियां कुर्याद्विसर्पे द्वन्द्वसम्भवे । रसायनानि कुष्ठेषु सर्पींषि क्वथनानि च ॥
चूर्णादीन्यपि सर्वाणि विसर्पेष्वपि तान्यलम् ॥ १ ॥

द्वन्द्वज विसर्प चिकित्सा—द्वन्द्वज विसर्प में त्रिदोष नाशक क्रिया करनी चाहिये तथा कुष्ठ रोग में कहे हुए रसायन योग, घृत, क्वाथ और चूर्णादि सभी विसर्प रोग में देना चाहिये अर्थात् कुष्ठ की सम्पूर्ण चिकित्सा विसर्प में करनी चाहिये ॥ १ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

विरेको वमनं लेपो लङ्घनं रक्तमोक्षणम् । पुराणयवगोधूमकङ्गुषष्टिकशालयः ॥
मुद्गा मसूराश्चणकास्तुवर्यो जाङ्गलो रसः ॥ १ ॥
नवनीतं घृतं द्राक्षा दाडिमं कारवेल्लकम् । पैत्रामं कुलकं धात्री खदिरो नागकेसरम् ॥ २ ॥
द्राक्षा शिरीषकर्पूरं चन्दनं तिललेपनम् । यथादोषं पथ्यमिदं सेवितव्यं विसर्पिभिः ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—विरेचन, वमन, लेप, लङ्घन और रक्तमोक्षण तथा पुराने जव, गेहूं, कंगनी, साठी और शालिधान के चावल, मूंग, मसूर, चना, अरहर, जांगल जीवों का मांसरस, मक्खन, घृत, दाख, अनार, करेली, खेत का ककोड़ा, परवल, आंवला, खैर, नागकेसर, मुनक्का, सिरस और कपूर का सेवन तथा चन्दन और तिल का लेप विसर्प वालों के लिये पथ्य कहा गया है ॥

व्यायाममह्नि शयनं सुरतं प्रवातं क्रोधं शुचं वमनवेगविधारणं च ।
गुर्वन्नपानमखिलं लशुनं कुलित्थान्माषांस्तिलानजाङ्गलमांसममाङ्गलं च ॥
स्वेदं विदाहिलवणाम्लकटूनि मद्यमथ धूममपि विसर्पगदी त्यजेत्तु ॥ ४ ॥

व्यायाम, दिन में सोना, मैथुन, तेज़ वायु का सेवन, क्रोध, शोक, वमन तथा अन्यान्य वेगों को भी रोकना, सब प्रकार के गुरु अन्न तथा पानादि का सेवन करना, लहसुन, कुलथी, उड़द, तिल, जांगल जीवों से अतिरिक्त सभी जीवों के मांस, स्वेदकर्म, विदाही पदार्थ, लवण, अम्ल तथा कटु रस वाले पदार्थ, मदिरा और धूम इन सबको विसर्प का रोगी त्याग देवे ॥ ४ ॥

इति विसर्पप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ विस्फोटनिदानम् ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ।
तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनादयस्तु ॥ १ ॥

विस्फोटक निदान—अत्यन्त कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, दाहकारक, रूक्ष और क्षार द्रव्य के अतिसेवन करने से तथा अजीर्ण में भोजन करने से अथवा अत्यन्त धूप के सेवन से और अध्यशन ( भोजन करने पर पुनः भोजन करने ) से, अधिक घाम ( धूप ) सेवन से, ऋतु के दोष ( शीत उष्ण आदि के अधिक होने ) से और ऋतु के विपरीत आचरण करने से वातादिक दोष कुपित होकर विस्फोट रोग को उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥

त्वचमाश्रित्य ते रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च ।
घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

विस्फोटक की सम्प्राप्ति—उपर्युक्त कारणों से कुपित वातादिक दोष त्वचा के आश्रित होकर

रक्त, मांस और अस्थि को दूषित करके ज्वर के पूर्वरूप के समान लक्षणों को करते हुए ज्वर सहित घोर विस्फोट को उत्पन्न कर देता है ॥ २ ॥

तेषां रूपमाह—

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः। क्वचित्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति संस्मृताः ॥ ३ ॥

विस्फोट के रूप—शरीर पर अग्नि से जले हुए के समान फफोले और उसके साथ २ ज्वर अथवा रक्तपित्त के कारण जो स्फोट किसी २ स्थान पर अथवा सम्पूर्ण शरीर पर हो जाते हैं वहीं विस्फोट कहते हैं ॥ ३ ॥

वातिकमाह—

शिरोरुक्शूलभूयिष्ठज्वरतृट्पर्वभेदनम्। सकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

वातिक विस्फोट—जिस विस्फोट में शिर में पीड़ा, उदर में अधिक शूल, ज्वर, तृषा, सन्धि स्थानों में भेद (टूटने के समान पीड़ा) और फफोलों का वर्ण कृष्ण हो उसे वातिक विस्फोट कहते हैं ॥ ४ ॥

पैत्तिकमाह—

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम्। पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

पैत्तिक विस्फोट—जिस विस्फोट में ज्वर दाह, पीड़ा, स्राव, पाक, तृष्णा और विस्फोट का वर्ण पीत अथवा लोहित हो उसे पित्तज विस्फोट कहते हैं ॥ ५ ॥

श्लैष्मिकमाह—

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः। अवेदनश्चिरात्पाकी स विस्फोटः कफात्मकः ॥६॥

कफज विस्फोट—जिस विस्फोट में वमन, अरुचि, जड़ता विस्फोट में कठिनता और वर्ण पाण्डु हो, पीड़ा नहीं हो और बहुत दिन में विस्फोट में पाक हो उसे कफ के कोप का विस्फोट जानना चाहिये ॥ ६ ॥

कफपैत्तिकमाह—कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ॥ ७ ॥

कफ-पित्तज विस्फोट—जिस विस्फोट में कण्डु, दाह, ज्वर और वमन हो उसे कफपित्तज कहते हैं ॥ ७ ॥

वातपित्तजमाह—वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ॥

वात-पित्तज विस्फोट—जिस विस्फोट में तीव्र वेदना हो उसे वात-पित्तज कहते हैं ॥

कफवातिकमाह—कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ८ ॥

कफ-वातज विस्फोट—जिस विस्फोट में कण्डू हो, आर्द्रता हो (भीजे हुए वस्त्र से आच्छादित हुए की भाँति हो) और गुरुता हो उसे कफ-वातज विस्फोट कहते हैं ॥ ८ ॥

त्रिदोषजमाह—

निम्नमध्य उन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकवान्। दाहरोगतृषामोहच्छर्दिमूर्च्छारुजो ज्वरः ॥
प्रलापो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यस्तु त्रिदोषजः ॥ ९ ॥

त्रिदोषज विस्फोट—जिस विस्फोट का मध्य गहरा और किनारा ऊँचा हो, तथा कठिन हो, थोड़ा पाक जिसमें हो, दाह हो, वर्ण कुछ २ लाल हो और तृषा, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीड़ा, ज्वर, प्रलाप, कम्पन, तथा तन्द्रा हो उसे त्रिदोषज विस्फोट कहते हैं। यह असाध्य होता है ॥९॥

रक्तजमाह—

रक्ता रक्तसमुत्थाना गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः। वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन च हेतुना ॥ १० ॥
न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगशतैरपि।

रक्तविस्फोट—जिस विस्फोट का वर्ण गुञ्जा के समान अथवा मूंगे के समान लाल हो उसे रक्तज विस्फोट कहते हैं। ये विस्फोट रक्त पित्त के दोष से उत्पन्न होते हैं और उत्तम सिद्धयोगों से भी नहीं छूटते हैं ॥ १०-१०½ ॥

एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ ११ ॥
सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ १२ ॥

साध्यासाध्यता—एक दोष से उत्पन्न होने वाला विस्फोट साध्य और दो दोषों से उत्पन्न

होने वाला कष्ट साध्य तथा विशेष अथवा अनेक उपद्रवों वाला कठिन विस्फोट असाध्य होता है ॥

हिक्का श्वासोऽरुचिस्तृष्णा चाङ्गमर्दो हृदि व्यथा। विसर्पज्वरहृल्लासविस्फोटानामुपद्रवाः ॥११॥

विस्फट के उपद्रव—विस्फोट रोग में हिक्का, श्वास, अरुचि, तृषा, अङ्गमर्द (शरीर का टूटना), हृदय में पीड़ा, विसर्प, ज्वर, हृल्लास (उबकाई) आदि उपद्रव कहे गये हैं ॥ ११ ॥

## अथ विस्फोटचिकित्सा ।

सम्राऽऽदौ लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम् । यथादोषं यथा बौषधं प्रोक्तं पूर्वं च रेचनम् ॥

विस्फोट चिकित्सा—विस्फोट रोग में चिकित्सा के पूर्व प्रथम लङ्घन, वमन, पथ्य सेवन और दोषबलानुसार विरेचन करना चाहिये ॥ १ ॥

द्विपञ्चमूली रास्नां च दार्व्युशीरं दुरालभाम् । सामृतं धान्यकं मुस्तं क्वाथयित्वा शृतं पिबेत् ॥
विस्फोटं वातसम्भूतं निहन्त्येतन्न संशयः ॥ १ ॥

द्विपञ्चमूलादि क्वाथ—द्विपञ्चमूल (दस मूल की पृथक् २ दसों औषधियां), रासना, दारुहल्दी खस, जवासा, गुरुचि, धनियाँ और नागरमोथा प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर कुछ उष्ण रहते ही पान करे तो वात के कोप से उत्पन्न विस्फोट अवश्य ही नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्राक्षादि—

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । कटुकालाजदुःस्पर्शैः क्वाथः शर्करया युतः ॥
विस्फोटं पित्तजं हन्ति सोपद्रवमसंशयम् ॥ १ ॥

द्राक्षादि क्वाथ—दाख, गम्भारी के फल, खजूर, परवल के पत्र, नीम की छाल, अडूसा, कुटकी, धान की खील और जवासा प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से उपद्रवों से युक्त पित्तज विस्फोट अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

भूनिम्बादि—

भूनिम्बनिम्बवासाख्यत्रिफलेन्द्रयववासकाः । पिचुमन्दं पटोली च क्वाथमेषां सशर्करम् ॥
पीत्वा विमुच्यते नूनं कफविस्फोटकाज्वरात् ॥ १ ॥

भूनिम्बादि क्वाथ—चिरायता, नीम की छाल, अडूसा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, इन्द्रजौ, जवासा, नीम की छाल, परवलपत्र प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बना उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से कफ के कोप से उत्पन्न विस्फोट अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

द्वादशाङ्ग—

किराततिक्तकारिष्टमधुयष्ट्यब्दपर्पटैः । पटोलवासककोशीरत्रिफलावत्सकैः कृतम् ॥ १ ॥
द्वादशाङ्गं नरः पीत्वा विस्फोटेभ्यो विमुच्यते । द्वन्द्वजत्रिदोषोत्थाच्च कफात् हितावहः ॥

द्वादशाङ्ग क्वाथ—चिरायता, नीम की छाल, मेठी मधु नागरमोथा, पित्तपापड़ा, परवल पत्र, अडूसा, खस, हरड़, बहेड़ा, आँवला और इन्द्रजौ प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके पीने से द्वन्द्वज, त्रिदोषज, रक्तज और आगन्तुज दोषों से उत्पन्न विस्फोट नष्ट हो जाते हैं। इसमें हितकर पथ्य करना चाहिये ॥ १-२ ॥

अमृतादिक्वाथ—

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे ।
शृतमिति च विसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डूरपनयति मसूरीं शीतपित्तज्वरं च ॥ १ ॥

अमृतादि क्वाथ—गुरुची, अडूसा परवल पत्र, नागरमोथा, छितवन की छाल, खैर, काली बेंत, नीम के पत्र हल्दी, दारुहल्दी, प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से विसर्प, कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

पटोलादिक्वाथ—

पटोलामृतभूनिम्बवासारिष्टकपर्पटैः । खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटज्वरशान्तये ॥ १ ॥

पटोलादि क्वाथ—परवल पत्र, गुरुच, चिरायता अडूसा, नीम की छाल, पित्त पापड़ा, और नागरमोथा प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से विस्फोट और ज्वर शान्त होते हैं ॥ १ ॥

निम्बादिः—

**निम्बखदिरसारो गुडूची शक्रजोऽथ वा। क्वाथो माक्षिकसंयुक्तो विस्फोटादिज्वरापहः॥**

निम्बादि क्वाथ—नीम की छाल और खैर दोनों को समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर शीतल होने पर पान करने से अथवा गुरुच और इन्द्रजौ को समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर शीतल होने पर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से विस्फोटादि ज्वर नष्ट होते हैं॥ १॥

भूनिम्बादिश्चिकित्सासारात्—

भूनिम्बवासाकटुकापटोलफलत्रिकं चन्दननिम्बसिद्धः।
विसर्पदाहज्वरशोथकण्डूविस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः॥ १॥

द्वितीय भूनिम्बादि क्वाथ—चिरायता, अडूसा, कुटकी, परवलपत्र, आँवला, हरड़, बहेड़ा, रक्तचन्दन और नीम की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से विसर्प, दाह, ज्वर, शोथ, कण्डू, विस्फोट, तृष्णा और वमन रोग नष्ट होते हैं॥ २॥

पद्मक घृतम्—

पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पस्य केशरम्। हरिद्रे द्वे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगरं तथा॥ १॥
कुष्ठं लाक्षा पत्रकं च सिक्थकं तुत्थमेव च। तोयेनाऽऽलोड्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥
यांश्च रोगाञ्जिहन्त्यादि तांश्चिबोध महामुने। सर्पकीटाखुदष्टेषु नाडीदुष्टविसर्पिषु॥ ३॥
विविधेऽपि च विस्फोटे लूतामूत्रक्षतेषु च। नाडीषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः॥
आस्तीकविहितं धन्यं पद्मकं तु महद्घृतम्॥ ४॥

पद्मक घृत—पद्मकाठ, मुलहठी, लोध, नागकेसर, हल्दी, दारुहल्दी, वायविडंग, छोटी इलायची, तगर, कूट, लाख, तेजपात, मोम और तूतिया प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क करके एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत में मिलाकर घृत से चौगुना जल में घोल कर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर रखे। आस्तीक मुनि के कहे इस घृत को सर्प दंश, कीट दंश मूषक दंश, नाड़ी व्रण, दुष्ट व्रण, विसर्प, अनेक प्रकार के विस्फोट, लूता मूत्र रोग (मकड़ी के मूत्र से उत्पन्न व्रण), क्षत, नाड़ी व्रण और गण्डमाला में तथा विशेष कर गण्डमाला के फूटने पर लगाने से ये सभी रोग दूर होते हैं॥ १-४॥

पञ्चतिक्तं घृतम्—पटोलसप्तच्छदनिम्बवासाफलत्रिकच्छिन्नरुहाविपक्वम्।
तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्यात्त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः॥ १॥

पञ्चतिक्त घृत—परवल पत्र, छितवन की छाल, नीम की छाल, अडूसा, आँवला, हरड़, बहेड़ा तथा गुरुच, प्रत्येक समभाग लेकर उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत के चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से त्रिदोषज विस्फोट, विसर्प और कण्डू नष्ट होते हैं॥ १॥

चन्दनादिलेप —

चन्दनं नागपुष्पं च तण्डुलीयकवारिणा। शिरीषवल्कलं जाती लेपः स्याद्दाहनाशनः॥ १॥

चन्दनादि लेप—लालचन्दन, नागकेसर की छाल, चमेली के पत्ते इन सबको चौराई के स्वरस से पीस कर लेप करने से दाह नष्ट होता है॥ १॥

## अथ पथ्यापथ्यम्।

**शोधिते लङ्घिते वान्ते जीर्णशालियवादिभिः। मुद्गाढकीमसूराणां रसैर्वा विश्वसंयुतैः॥ १॥**
**सुनिषण्णकवेत्राग्रतण्डुलीयकरिल्लकैः। कुलकाभीरुकैरेभिः सपर्पटसतीनकैः॥ २॥**
**टङ्कारयेस्थैः कुसुमैर्निम्बपल्लवविल्वजैः। तिक्तयूषसमायुक्तैर्भोजनं संप्रयोजयेत्॥ ३॥**

पथ्यापथ्य—रोगी को शोधन, लङ्घन, और वमन कराकर पुराने शालिधान के चावल, जौ आदि का भोजन करावे। मूंग, अरहर और मसूर के रस (यूष) में सोंठ मिलाकर पान करावे तथा सुनिषण्णक (चनपत्ती) का शाक, बेत के अगले भाग का शाक चौराई का शाक, करेली परवल, शतावर, पित्तपापड़ा और मटर के शाक, टेकारी क्षुप का शाक, वायविडंग, नीम की कोमल पत्तियाँ, बेल के फूल और तिक्त रस वाले पदार्थों के यूष से युक्त भोजन विस्फोट रोग में पथ्य है॥

तिला माषा कुलित्थाश्च लवणाम्लकटूनि च । विदाहि रूक्षमुष्णं च विस्फोटी परिवर्जयेत् ॥४॥
तिल, उड़द, कुल्थी, लवण, अम्ल, कटु, दाहकारक, रूक्ष और उष्ण पदार्थों को विस्फोट का रोगी त्याग देवे अर्थात् ये अपथ्य हैं ॥ ४ ॥

इति विस्फोटप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ स्नायुकनिदानम् ।

पूर्वरूपमाह—शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ।
भिनत्ति तत्क्षते तत्र सोष्मा स्नायुं विशोष्य च ॥ १ ॥
कुर्यात्तन्तुनिभं जीवं वृत्तं श्वेतं बहिर्गतं यदि । शनैः शनैः क्षताद्याति छेदात्कोपमुपैति सः ॥ २ ॥
तत्पाताच्छोथशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत् ।
स स्नायुकेति विख्यातः क्रियोक्तास्तु विसर्पवत् ॥ ३ ॥

स्नायु का पूर्वरूप—हाथ पैर आदि में कुपित हुए वातादि दोष त्वचा पर विसर्प के समान शोथ ( फफोले या फुंसियां ) करके उन शोथों को भेदन कर देते हैं और वहां पर उष्णता बढ़कर स्नायु को सुखा कर उसमें तन्तु के समान, गोल, श्वेत वर्ण का जीव उत्पन्न कर देते हैं, वह जीव धीरे २ क्षत से बाहर निकलता है और यदि उसका छेदन हो जाता है तो वह कुपित होकर दुःखदाई होता है उसके निकल आने से शोथ शमन हो जाता है और फिर दूसरे स्थान में होता है इस रोग को स्नायुकरोग ( नहरूआ ) कहते हैं । इसकी चिकित्सा विसर्प के समान करनी चाहिये ॥ १-३ ॥

बाह्वोर्यदि प्रमादेन जङ्घयोस्त्रुट्यति क्वचित् । सङ्कोचं खञ्जतां चैव छिन्नस्तन्तुः करोत्यसौ ॥४॥
यदि बाहुओं अथवा जङ्घाओं में उत्पन्न हुआ यह स्नायुक कदाचित् भय या असावधानी से टूट जाता है तो उससे बाहु में संकोच और पैर में खञ्जता हो जाती है ॥ ४ ॥

वातेन श्यावरूक्षः सरुगथ दहनात्पीतपीतः सदाहो
धवलेत श्लेष्मणा स्याद्गुरुरतिपृथुलोऽथ द्विदोषो द्विलिङ्गी
रक्तेनाऽऽरक्तकान्तिः समधिकदहनोऽपाक्तिदिष्टः सर्वलिङ्गो
रोगोऽसाध्यस्त्रिदोषैर्मुनिभिरभिहितः स्नायुकस्तन्तुकीटः ॥ ५ ॥

वातादि भेद से लक्षण—वात के अधिक कोप से जो स्नायुक होता है वह श्याम, रूक्ष और अधिक पीड़ायुक्त होता है । पित्त के अधिक कोप से जो स्नायुक होता है वह पित्त से दग्ध होने के कारण गौर अथवा पीला और दाहयुक्त होता है । कफ के अधिक कोप से जो स्नायुक होता है वह मोटा और भारी होता है । दो दोषों के द्वन्द्व से जो स्नायुक होता है उसमें दो दोषों के मिलित लक्षण होते हैं । रक्त के अधिक कोप से जो स्नायुक होता है उसका वर्ण कुछ लाली लिये होता है तथा उसमें दाह होता है । सन्निपात ( त्रिदोष ) के कारण जो स्नायुक होता है उसमें तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं । इस प्रकार स्नायुक रोग को मुनियों ने आठ प्रकार का कहा है तथा इसको तन्तुकीट अथवा लोक में नहरूआ कहते हैं ॥ ५ ॥

## अथ स्नायुकचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपनाहादि कर्म कुर्याद्यथाक्रमम् । अहिंसामूलगोमूत्रकल्कलेपस्तु वातजे ॥ १ ॥
स्नायुक चिकित्सा—स्नायुकरोग में स्नेहन, स्वेदन तथा पैत्तिक कर्म करना चाहिये । वातज स्नायुक रोग में कण्टकारी वृक्ष की जड़ को गोमूत्र के साथ पीस कर विधिपूर्वक लेप करना चाहिये ॥ २ ॥
पञ्चवल्कलकल्केन हितो लेपोऽत्र पित्तजे । कफजे स्नायुके लेपः प्रशस्तः काकमाचिकः ॥३॥
पित्तज स्नायुकरोग में पञ्चवल्कल ( बड़, अश्वत्थ, गूलर, पाखर और बेत की छाल ) को पीसकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर लेप करना चाहिये । कफज स्नायुकरोग में कपमार की छाल को पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥
सहाम्पादीं हन्ये लेपाः सर्वेषां सर्वजे हिताः । रक्तजे स्नायुके लेपो मरुत्पित्तप्रयो हितः ॥
विसर्पोक्ताः क्रियाः सर्वाः स्नायुके तु हिता मताः ॥ ३ ॥

द्वन्द्वज स्नायुकरोग में दो दो दोषों के नाशक द्रव्यों को मिलाकर लेप करना चाहिये। त्रिदोषज (सन्निपातज) स्नायुक रोग में तीनों दोषों की मिलित ओषधियों का लेप करना चाहिये। रक्तज स्नायुकरोग में बड़ और पाकड़ की छाल को पीस कर लेप करना चाहिये। विसर्परोग में कही हुई सभी चिकित्सा स्नायुकरोग में हितकारी है ॥ १ ॥

बब्बूलबीजादिलेप —

बब्बूलबीज गोमूत्रपिष्ट हन्ति प्रलेपनात्। स्नायुकानि समस्तानि सशोथानि सरुञ्जि च ॥१॥

बब्बूल बीजादि लेप—बबूल के बीजों को गोमूत्र में पीसकर लेप करने से सभी प्रकार के शोथ, पीड़ा युक्त स्नायुकरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिग्रुमूलादिलेप —

शिग्रुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेन ससैन्धवैः। लेपः स्नायुकरोगाणां शमनः परमः स्मृतः ॥ १ ॥

शिग्रुमूलादि लेप—सहिजन की जड़ और पत्तों को काञ्जी के साथ पीस कर उसमें सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर लेप करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है। यह स्नायुकरोग की शमन करने के लिये अति उत्तम कहा गया है ॥ १ ॥

सुधया सह लोणार शमनः परमः स्मृतः। अनेन तु प्रयोगेण त्रिदिनादेव नश्यति ॥ २ ॥

सुधादि लेप—सुधा (चूने) के साथ लोनो मिट्टी का क्षार (लवणक्षार) समान भाग मिला कर जल के साथ घोलकर लेप करने से तीन दिन में स्नायुकरोग नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

पातालगारुडीमूलं पिबेत्स्नायुकनाशनम्।

पाताल गारुडीमूल योग—पातालगारुडी की जड़ को जल के साथ पीस कर पान करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥

तिलपिण्याकलेपो वा आरनालेन पेषितः ॥ ३ ॥

तिलपिण्याक लेप—तिल की खली को कांजी के साथ पीस कर लेप करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

तक्रेण वाऽथ तैलेन ह्यश्वगन्धा प्रलेपयेत्। श्वेतविष्णुक्रान्तया वा शिग्रुमूलेन वा पुनः ॥ ४ ॥

अश्वगन्धादि लेप—मट्ठा अथवा तेल के साथ असगंध को पीस कर अथवा श्वेत अपराजिता को मट्ठे अथवा तैल के साथ पीस कर अथवा सहिजन की जड़ को मट्ठे अथवा तैल के साथ पीस कर लेप करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पुंमूत्रैः काञ्चनीं पिष्ट्वा लेपः स्नायुकजिद्भवेत्। वार्ताकमूलं पुंमूत्रे पत्रैर्वाऽश्वत्थजैश्च वा ॥
सुखोष्णैर्बन्धयेच्छीघ्रं शमयेत्स्नायुकं गदम् ॥ ५ ॥

काञ्चनी लेप—पुरुष के मूत्र के साथ कचनार की जड़ अथवा बैंगन की जड़ को पीस कर लेप करने से स्नायुक रोग नष्ट होता है अथवा पीपल के पत्तों को पुरुष के मूत्र के साथ पीस कर गरम गरम कर के स्नायुकरोग पर बाधे तो स्नायुकरोग शीघ्र नष्ट होता है ॥ ५ ॥

रामठादियोग —

रामठं टङ्कणं क्षारं प्रत्येकं शाणसम्मितम्। चूर्णयित्वा सप्तदिनं खादेत्सन्ध्याद्वये नरः ॥
अनेन योगराजेन स्नायुको नश्यति ध्रुवम् ॥ १ ॥

रामठादि योग—शुद्ध हींग, टङ्कण और यवाक्षार प्रत्येक एक १ शाण (३-३ माशा) लेकर चूर्ण कर प्रात साय दोनों सन्ध्या सात दिन तक सेवन करने से स्नायुकरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

अतिविषाद्यं चूर्णम्—अतिविषमुस्तकभार्ङ्गीविश्वौषधपिप्पलीबिभीतानाम्।
चूर्णं तन्तुकमिष्टं सुखासुखोष्णेन वारिणा पीतम् ॥ १ ॥

अतिविषादि चूर्ण—अतीस, नागरमोथा भारंगी (बभनेठी) सोंठ, पीपल और बहेड़ा प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर उष्णोदक के अनुपान से सेवन करने से स्नायुकरोग नाश होता है ॥ १ ॥

कुष्ठादिकल्क—

कुष्ठरामठशुण्ठीभिः कल्कं शिग्रुसमन्वितम्। पानलेपनयोगेन तन्तुकीटविनाशनम् ॥ १ ॥

कुष्ठादि कल्क—कूठ, हींग, सोंठ और सहिजन की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर पान और इसी कल्क का लेप करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् । पीत्वा स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥

गोघृतादि योग—गौ का घृत और निर्गुण्डी के पत्तों के स्वरस को तीन दिन पान करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ स्नायुकरोग अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

मूलं सुषव्यादिमवारिपिष्टं पानाद्दिनान्ते तु गदं प्रवृद्धम् ।
शान्तिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धा च घृतेन पीता ॥ ३ ॥

सुषवीमूलादि योग—सुषवी (काला जीरा अथवा करेला) की जड़ को हिमवारि (बरफ के जल) अथवा दूबघास के स्वरस के साथ पीस कर दिन के अन्त में (सायंकाल) पान करने से अत्यन्त बढ़ा हुआ व्रणों से युक्त स्नायुकरोग शीघ्र शमन हो जाता है। अथवा असगंध को चूर्ण कर घृत में मिलाकर पान करने से स्नायुकरोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

पारावतपुरीषस्य मधुना कल्कितस्य च । गिलिता गुटिका हन्ति स्नायुकामयमुद्धतम् ॥ ४ ॥

पारावतविष्ठा योग—कबूतर की विष्ठा को मधु के साथ कल्क कर बटी बना कर निगलने से अत्यन्त बढ़ा हुआ स्नायुकरोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

निम्बशम्याकजातीकसप्तपर्णाश्वमारकाः । पिष्टा मूत्रसंयुक्ताः सेकलेपनधावनैः ॥ ५ ॥

निम्बादि योग—नीम की छाल, अमलतास की छाल, चमेली, मदार, छितवन और कनेर प्रत्येक समभाग लेकर गोमूत्र के साथ पीस कर सिंचन, लेप और धावन (धोने) से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

वृन्ताकं भर्जितं भाण्डे कृत्वा दध्ना सहोपरि ।
बन्धयेत्स्नायुको बहिः पतति एवं सप्तदिनं कार्यम् ॥

वृन्ताकयोग—बैंगन को दही के साथ एक पात्र में रख कर भून कर स्नायुकरोग पर बांधने से स्नायुक का कीट बाहर निकल आता है। इस प्रकार की क्रिया सात दिन तक करनी चाहिये ॥

शणबीजचूर्णं भागमेकं गोधूमपिष्टं भागमेकं द्वयमेकीकृत्य घृतेन पक्वं गुडेन भक्षयेत् । एवं त्रिदिनं कार्यं स्नायुको नश्यति ।

शणबीजादि योग—सनई के बीजों का चूर्ण और गेहूं का आटा समभाग घृत में पकाकर (भून कर) पुराने गुड़ के साथ मिलाकर तीन दिन तक भक्षण करने से स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥

इति स्नायुकरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ मसूरिकानिदानम् ।

तत्रादौ मसूरिकानिदान—

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः । दुष्टनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टपवनोदकैः ॥
क्रूरग्रहेक्षणाच्चापि देशे दोषाः समुद्धताः ॥ १ ॥

जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेन संगताः । मसूराकृतिसंस्थानाः पीडकाः स्युर्मसूरिकाः ॥ २ ॥

मसूरिका रोग—अत्यन्त कड़ु, अम्ल, लवण और क्षार रस के सेवन, विरुद्ध भोजन, अध्यशन, तथा अत्यन्त दूषित सेम और पत्र शाकादि के अधिक खाने से, दूषित वायु और जल के सेवन से, क्रूर दुष्ट ग्रह (शनि आदि) की दृष्टि पड़ने से शरीर में (वातादि) कुपित होकर दूषित रक्त से मिलकर शरीर पर मसूर के आकार की जो पिडिकायें उत्पन्न कर देते हैं उन्हें मसूरिका कहते हैं ॥

तासां पूर्वरूपमाह—

तासां पूर्वं ज्वरः कण्डूर्गात्रभङ्गोऽरतिर्भ्रमः । त्वचि शोथः सवैवर्ण्यो नेत्ररागस्तथैव च ॥ ३ ॥

मसूरिका के पूर्वरूप—मसूरिका रोग होने के पहले ज्वर, कण्डू, शरीर का टूटना, अरति, भ्रम, त्वचा पर शोथ, विवर्णता और नेत्र रोग (अभिष्यन्दादि) हो जाते हैं ॥ ३ ॥

वातजामाह—

स्फोटाः श्यावारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः । कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसम्भवाः ॥
सन्ध्यस्थिपर्वणां भेदः कासकम्पारतिभ्रमाः । शोषस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ॥

वातज मसूरिका—जिस मसूरिका के फोड़े कृष्ण वर्ण के अथवा रक्त वर्ण के हों, रूक्ष हों, तीव्र पीड़ा करने वाले हों, कठिन ( स्पर्श में कठिन ) हो और बहुत देर में पकने वाले हों और सन्धि, अस्थि, तथा पर्वों में टूटने के समान पीड़ा हो और कास, कम्पन, अरति, ( विकलता ), भ्रम, तथा तालु, ओठ और जिह्वा में शोथ हो, तृष्णा हो और अरुचि हो उसे वात के कोप से उत्पन्न मसूरिका कहते हैं ॥ ४-५ ॥

पित्तजामाह—रक्ताः पीताः सिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः।
त्वरितपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ॥ ६ ॥
विड्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा। मुखपाकोऽक्षिपाकश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥७॥

पित्तज मसूरिका—जिस मसूरिका के फोड़े रक्त, पीत, अथवा श्वेत वर्ण के हों उनमें दाह हो, तीव्र पीड़ा हो और स्पर्श में मृदु ( कोमल ) हों, शीघ्र पकने वाले हों और मल पतला हो, शरीर टूटे, दाह हो, तृष्णा हो, अरुचि हो, मुख पक जावे तथा नेत्रों में पाक हो और भयङ्कर तीव्र वेग वाला ज्वर हो उसे पित्त के कोप से उत्पन्न मसूरिका कहते हैं ॥ ६-७ ॥

रक्तजामाह—रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥

रक्तज मसूरिका—जिस मसूरिका में पित्तज मसूरिका के सभी लक्षण ( विड्भेदादि ) उपस्थित हों उसे रक्तज मसूरिका कहते हैं अर्थात् पित्तज मसूरिका के समान ही रक्तज मसूरिका के लक्षण होते हैं ॥

कफजामाह—कफप्रसेकः स्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ॥ ८ ॥
हृल्लासश्चारुचिर्निद्रा तन्द्राऽऽलस्यसमन्विताः।
श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डुरा मन्दवेदनाः।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ ९ ॥

कफज मसूरिका के लक्षण—जिस मसूरिका में कफ का प्रसेक हो ( मुख से कफ गिरे ), शरीर आर्द्र रहे, शिर में पीड़ा हो, शरीर भारी रहे, हृल्लास ( वमनेच्छा ) हो, अरुचि हो, निद्रा अधिक हो, तन्द्रा हो और आलस्य हो तथा श्वेत वर्ण के स्फोट ( फोड़े ) स्निग्ध हों, अत्यन्त स्थूल हों, कण्डु युक्त हों, मन्द मन्द ( अल्प ) पीड़ा करने वाले हों और बहुत दिन में पकने वाले हों उसे कफ के कोप से उत्पन्न मसूरिका जाननी चाहिये ॥ ८-९ ॥

सन्निपातजामाह—

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः। प्रभूताश्चिरपाकाश्च पूतिस्रावास्त्रिदोषजाः ॥

*सन्निपातज मसूरिका—जिस मसूरिका का वर्ण नीला हो, आकार चिपटा और फैला हुआ* हो तथा बीच में दबा हुआ हो, पीड़ा अधिक हो, बहुत पिडिकायें हों, बहुत दिन में उनका पाक हो और दुर्गन्धित स्राव हो उसे तीनों दोष के कोप से उत्पन्न मसूरिका जाननी चाहिये ॥ १० ॥

चर्मपिडिकामाह—

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्राप्रलापारतिसंयुताः। दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥११॥

चर्म पिडिका के लक्षण—जिस पिडिकाओं के होने में कण्ठ का अवरोध, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप और विकलता होती है उनको चर्म पिडिका कहते हैं वह दुश्चिकित्स्य है ॥ ११ ॥

रोमान्तिकामाह—

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः। कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो ज्वरपूर्विकाः ॥

रोमान्तिका के लक्षण—जिस मसूरिका में पिडिकाओं का आकार रोम के समान ऊँचा हो, रागयुक्त ( कुछ लाली लिये ) हो कफ और पित्त के दोष से उत्पन्न होने वाली हो, उसमें कास और अरुचि हो तथा उसके उत्पन्न होने के पूर्व ज्वर हो उसे रोमान्तिक मसूरिका कहते हैं ॥१२॥

## अथ सप्तधातुगताः।

तत्र रसजा—

तोयबुद्बुदसङ्काशास्त्वग्गतास्तु मसूरिकाः। स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥

रसगत मसूरिका—जिस मसूरिका का आकार जल के बुल्बुले के समान हो, अल्पदोषों के कारण ही उत्पन्न हुई हो और फूटने पर उससे जल निकले ऐसी मसूरिका को रस धातु में अथवा त्वचा में प्राप्त मसूरिका कहते हैं ॥ १ ॥

रक्तजामाह—रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।
साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ २ ॥

रक्तगत मसूरिका—जिस मसूरिका का वर्ण लोहित हो, शीघ्र पकने वाली हो, त्वचा जिसकी पतली हो, जिसमें दोष अत्यन्त दूषित नहीं हो अतएव साध्य हो और फूटने पर जिससे रक्त निकले उसे रक्त धातु गत मसूरिका कहते हैं ॥ २ ॥

मांसस्थामाह—मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ।
गात्रशूलोऽतिकण्डूस्तृष्णाज्वरसमन्विताः ॥ ३ ॥

मांसगत मसूरिका—जो मसूरिका स्पर्श में कठिन, चिकनी, देर में पकने वाली और जिस की त्वचा पतली हो, उत्पत्तिकाल में शरीर में पीड़ा, बेचैनी, खुजली, तृषा, ज्वर हो उसे मांसगत मसूरिका कहते हैं ॥ ३ ॥

मेदोगतामाह—

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः । घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥
संमोहारतिसन्तापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ॥ ४ ॥

मेदोगत मसूरिका—जिस मसूरिका का आकार मण्डलाकार हो, स्पर्श में मृदु हो, कुछ उठा हुआ हो, घोर ज्वर से पीड़ित हो, पिड़िकायें स्थूल (मोटी), युक्त हों, रोगी को मोह, व्याकुलता और सन्ताप हो उसे मेदोगत मसूरिका कहते हैं। इससे कोई सौभाग्यशाली ही मुक्त होता है अर्थात् यह असाध्य है ॥ ४ ॥

अस्थिमज्जगतामाह—

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः । मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः ॥ ५ ॥
छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च । भ्रमरेणेव विद्धानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ॥

अस्थि और मज्जागत मसूरिका—जो मसूरिका छोटी आकार वाली हों, शरीर के वर्ण के समान वर्ण की हों, रूक्ष हों, चिपटी हों, कुछ ऊँची हों, अत्यन्त मोह-पीड़ा और व्याकुलता करने वाली हों, मर्मस्थानों को छेदन करने वाली हों, सब सम्पूर्ण अस्थियों को भ्रमर के काटे हुए काष्ठ की तरह कर देती हैं तथा प्राणों को शीघ्र हर लेती हैं उसे अस्थि और मज्जागत मसूरिका कहते हैं ॥ ५-६ ॥

शुक्रगतामाह—पक्वाभाः पिडकाः स्निग्धाः सूक्ष्माश्चात्यर्थवेदनाः ।
स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ ७ ॥

शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि । निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते न तु जीवितम् ॥

शुक्रगत मसूरिका—जिस मसूरिका की पिड़िकायें पकी हुई सी (पीली और नरम) हों, स्निग्ध हों, चिकनी हों, अत्यन्त पीड़ा करने वाली हों, आर्द्र हों, व्याकुलता करने वाली हों, मोह-दाह और उन्माद करने वाली हों, उसे शुक्रगत मसूरिका कहते हैं। यह असाध्य है ॥ ७-८ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह ।

दोषमिश्राश्च सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः । त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा ॥ १ ॥
श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः ।
एता विनापि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ॥ २ ॥

साध्यासाध्यत्व—वातादि दोषों के लक्षणों के अनुसार उपर्युक्त सातों प्रकार की मसूरिकाओं को यथा सम्भव दोष युक्त जानना चाहिये अर्थात् दोषों के लक्षणों को देख कर दोष का ज्ञान कर लेना चाहिये। त्वग्गत मसूरिका, रक्तज मसूरिका, पित्तज मसूरिका, कफज मसूरिका और कफ पित्तज मसूरिका, ये सब मसूरिकायें सुख-साध्य हैं। ये बिना चिकित्सा के भी स्वयं शमन हो जाती हैं ॥ १-२ ॥

वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः । कृच्छ्रसाध्यतमास्तस्माद्यत्नात्ताः समुपाचरेत् ॥ ३ ॥

वातज मसूरिका, वात-पित्तज मसूरिका और कफ-वातज मसूरिका यह कष्टसाध्य होती हैं इनकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये ॥ ३ ॥

अतोऽन्यास्तु विनिर्दिष्टा यास्तु सम्यक्‌क्रियां विना।
न सिध्यन्ति यतस्तस्मात्तास्तु यत्नादुपाचरेत् ॥ ४ ॥

इनके अतिरिक्त जो मसूरिकायें कही गयी हैं वे सभी भली भाँति चिकित्सा नहीं करने से सिद्ध नहीं होती इसलिये यत्नपूर्वक उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

असाध्याः सन्निपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम्।
प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ॥ ५ ॥
लोहजालनिभाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः। आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ॥ ६ ॥

सन्निपातज मसूरिका असाध्य होती है। कोई २ सन्निपातज मसूरिका मूंगे के सदृश होती हैं, कोई २ जामुन के फल के समान होती हैं, कोई लोह गोलक के समान कृष्ण वर्ण भी होती हैं और कोई तीसी के फल के समान होती हैं तथा दोषों के भेद से इनके और भी प्रकार के वर्ण होते हैं ॥ ५-६ ॥

कासो हिक्का प्रमोहश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः। प्रलापश्चारतिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ॥
मुखेन प्रस्रवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा। कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ ८ ॥
मसूरिकाभिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वर। लक्षणानीह दृश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ ९ ॥

जिस मसूरिकावाले को कास हो, हिक्का हो, मोह हो, तीव्रज्वर हो, दारुण प्रलाप हो, व्याकुलता हो, मूर्च्छा हो, तृषा हो, दाह हो, अत्यन्त चक्कर आती हो और मुख, कान तथा आँख से भी रक्तस्राव होता हो, कण्ठ में घुर्घुराहट होता हुआ अत्यन्त कठिन श्वास आता हो उसे वैद्य औषध नहीं देवे क्योंकि वे असाध्य हैं ॥ ७-९ ॥

मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निःश्वसेत्। स भृशं त्यजति प्राणांस्तृष्णार्तो वायुदूषितः ॥

मसूरिका के आक्रान्त जो मनुष्य वायु के दूषित होने के कारण नाक के द्वारा अत्यन्त श्वास लेवे और तृषा से अत्यन्त पीड़ित रहे वह अवश्य मर जाता है ॥ १० ॥

मसूरिकान्ते शोथः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके। तथांऽसफलके वाऽपि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ॥

मसूरिका रोग के अन्त में कूर्पर ( केहुनी ) मणिबन्ध पहुंचा और कन्धे पर कठिन शोथ का होना घोर उपद्रव है। अतः यह दुश्चिकित्स्य है ॥ ११ ॥

## अथ मसूरिकाचिकित्सामाह।

मसूरिकायां कुष्ठोक्ता लेपनादिक्रिया हिता। पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया चाऽत्र प्रशस्यते ॥

मसूरिका-चिकित्सा—मसूरिका रोग में कुष्ठ में कही हुई लेपन आदि क्रिया अथवा पित्त-कफज विसर्प रोग में कही हुई चिकित्सा हितकारी है ॥ १ ॥

सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टवासकैः। कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ २ ॥
सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्मीरसं वा हिलमोचिकम्। वान्तस्य रेचनं देयं शमनं त्वबले नरे ॥
उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिकाः ॥ ३ ॥

सब प्रकार की मसूरिकाओं में प्रथम परवल नीम तथा अडूसे के क्वाथ में वच, इन्द्र जौ, जेठी मधु, आँवला, हरड़, और बहेड़ा का कल्क मिलाकर पान करना चाहिये। अथवा ब्राह्मी के स्वरस में मधु मिलाकर अथवा हुरहुर के स्वरस पिलाना चाहिये। वमन कराये हुए रोगी को विरेचन और निर्बल रोगी को संशमन औषध देना चाहिये। वमन-विरेचन के द्वारा दोषों के हरण होने पर मसूरिका सूख जाती हैं अर्थात् नष्ट हो जाती हैं ॥ २-३ ॥

वेणुत्वगादिधूप—

वेणुत्वक्सुरसालाक्षाकार्पासास्थिमसूरिकाः। यवपिष्टं विषं सर्पिर्वचा ब्राह्मी सुवर्चला ॥ १ ॥
धूपनार्थं यथोलाभं धूपमेनं प्रयोजयेत्। आदावेव प्रयोक्तव्यो नरस्तस्मान्मसूरिकाः ॥
न गृह्णन्ति विषकेचिद्यथाऽऽस्मः श्रुतेरिह ॥ २ ॥

वेणुत्वगादि धूप—बांस की छाल, तुलसी, लाख, कपास की गिरि ( बीज ), मसूर की दाल, जौ की पीठी, मिठा विष, घी, वच ब्राह्मी और हुरहुर ( हुरहुर ) इनमें से जितने द्रव्य प्राप्त हो सकें उतने का धूप मसूरिका रोग के आरम्भ में देने से मसूरिका रोग नष्ट होता है। कोई वैद्य

विष को नहीं लेते, शेष औषधियों में ही जो प्राप्त हो जाती हैं उसीको लेकर पूरित करते हैं ॥१-२॥

श्वेतचन्दनादि—

श्वेतचन्दनकल्कश्च हिलमोचाम्बु संयुतम् । पिबेन्मसूरिकारम्भे निम्बं वा केवलं रसम् ॥ १ ॥

श्वेत चन्दनादि योग—श्वेत चन्दन के कल्क में हुरहुर का स्वरस मिलाकर अथवा मसूरिका रोग के आरम्भ में केवल नीम का स्वरस ही पिलावे तो लाभ होता है ॥ १ ॥

गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह । पाककाले प्रदातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ॥
तेन कुप्यति नो वायुः पाकं यान्ति मसूरिकाः ॥ २ ॥

गुडूच्यादि योग—गुरुच, मुलहठी, द्राक्षा और अंकोल के चूर्ण को अनार के रस में गुड़ मिलाकर मसूरिका के पकने के समय पिलाने से वायु कुपित नहीं होती और मसूरिकायें पक जाती हैं ॥ २ ॥

बृहत्पटोलादिक्वाथ—

पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी । खदिरो निम्बमन्दश्च वासा धात्री विकङ्कता ॥
पूर्वो कषायपान तु हन्ति वातमसूरिकाम् ॥ १ ॥

बृहत्पटोलादि क्वाथ—परवल के डालपत्र, सारिवालता, नागरमोथा, पुरइनपाढ़ी, कुटकी, खैर, नीम की छाल, बरियारा, आंवला और विकङ्कत ( राम बबूर ) की छाल इन सब औषधियों को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पान करने से वातज मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

दशमूलादि—

दशमूलमयो रास्ना च धात्र्युशीर दुरालभा । साम्रृत धान्यकं मुस्तं जयेद्वातमसूरिकाम् ॥१॥

दशमूलादि क्वाथ—दशमूल की दस औषधियां रास्ना, आंवला, खस, जवासा, गुरुच, धनियां, नागरमोथा प्रत्येक समान भाग का विधिपूर्वक बना क्वाथ पान करने से वातज मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

न्यग्रोधादिलेप —

न्यग्रोधप्लक्षमञ्जिष्ठाशिरीषोदुम्बरत्वचाम् । ससर्पिष्कं मसूर्यां तु वातजायां प्रलेपनम् ॥ १ ॥

न्यग्रोधादि लेप—वट और पाकड़ की छाल मजीठ, शिरीष और गूलर की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर उसमें घृत मिलाकर वातज मसूरिका में लेप करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

शोधनं पित्तजायां न कार्यं पैत्तेन जानता । तत्राऽऽदौ वमनं कार्यं लाजचूर्णैः सशर्करैः ॥

पित्तज मसूरिका चिकित्सा—पित्तज मसूरिका में शोधन क्रिया वर्जित है । उसमें धान की लाई ( लावा ) के चूर्ण और शर्करा मिलाकर रोगी को वमन के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

आदावेव मसूर्यां तु पित्तजायां प्रयोजयेत् । निम्बादिकथितं येन प्रशाम्यति मसूरिका ॥ १ ॥

पित्तज मसूरिका के आदि में ही ( निम्नोक्त ) निम्बादि क्वाथ का प्रयोग करना चाहिये इससे मसूरिका शान्त हो जाती है ॥ १ ॥

तथया—

निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलं चन्दनद्वयम् । वासा दुरालभा धात्री सेव्यं कटुकरोहिणी ॥ ४ ॥
एतेषां क्वथितं शीतं सितया मधुरीकृतम् । मसूरिकां पित्तकृतां हन्ति रक्तोत्थितामपि ॥ ५ ॥

निम्बादि क्वाथ—नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पुरइनपाढ़ी, परवल पत्र, लालचन्दन, श्वेत चन्दन, अडूसा, जवासा आंवला, खस और कुटकी प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर शीतल होने पर शर्करा मिलाकर पान करने से पित्तज और रक्तज मसूरिका भी नष्ट होती है ॥

द्राक्षादि—

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः । लाजामलकदुःस्पर्शैः क्वथितं शर्करान्वितम् ॥
मसूरिकां पित्तकृतां रक्तजां च विनाशयेत् ॥ १ ॥

द्राक्षादि क्वाथ—द्राक्षा गम्भार का फल, खजूर, परवल पत्र, नीम की छाल, अडूसा धान का लावा आंवला और जवासा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से पित्तज और रक्तज मसूरिका नष्ट होती है ॥ १ ॥

पञ्चमूलादिक्वाथ—

बृहतः पञ्चमूलस्य वृषपत्रयुतस्य च। कषायं शमयेत्पीतः कफोत्थां तु मसूरिकाम्॥ १॥

पञ्चमूलादि क्वाथ—बृहत् पञ्चमूल (बेल गम्भार, सोनापाठा, पाढ़र और गनियार की छाल) एक २ भाग और अरूसा का पत्ता एक भाग मिलाकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से कफज मसूरिका नष्ट होती है॥ १॥

वृषपत्ररसं द्द्यात्पानार्थं मधुसंयुतम्। कफजायां मसूर्यां तु कठिनायां विशेषतः॥ २॥

वृषपत्र रस योग—अरूसे के पत्तों के बने स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कठिन कफज मसूरिका नष्ट होती है॥ २॥

खदिरारिष्टपत्रैश्च शिरीषोदुम्बरत्वचाम्। कुर्यात्सलेपं कफोत्थानां मसूर्यां भिषगुत्तमः॥ ३॥

खदिरादि लेप—खैर, नीम की पत्तियां, शिरीष और गूलर की छाल प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् पीस कर लेप करने से कफज मसूरिका में उत्तम लाभ करता है। वैद्यों को यह प्रयोग करना चाहिये॥ ३॥

दुरालभादि—

दुरालभा पर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी। पिबेन्मसूर्यामेतेषां क्वाथं पित्तकफात्मनि॥

दुरालभादि क्वाथ—जवासा, पित्तपापड़ा, परवल के पत्र और कुटकी प्रत्येक को समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर पान करने से पित्त कफज (द्वन्द्वज) मसूरिका नष्ट होती है॥ ४॥

गुडूच्यादि—

गुडूचीपर्पटानन्ताकटुकाक्वथितं पिबेत्। वातपित्तमसूर्यां तु घोरोपद्रवभाजि च॥ १॥

गुडूच्यादि क्वाथ—गुरुच, पित्तपापड़ा, अनन्तमूल और कुटकी प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ कर पान करने से वात पित्तज मसूरिकायें जो अत्यन्त उपद्रव वाली भी होती हैं, वे सभी शान्त हो जाती हैं॥ १॥

नागरादि—नागरमुस्तगुडूचीधान्यकभार्ङ्गीवृषैः कृतः क्वाथः।
वातश्लेष्ममसूरीं दूरीकुरुतेऽनुपानतः सत्यम्॥ १॥

नागरादि क्वाथ—सोंठ, नागरमोथा, गुरुच, धनियां, बभनेठी और अरूसा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर पान करने से वात कफज मसूरिका अवश्य ही नष्ट हो जाती है॥ १॥

निम्बादिक्वाथ—

निम्बः पर्पटकः पाठा पटोलः कटुरोहिणी। वासा दुरालभा धात्री सोशीरं चन्दनद्वयम्॥ १॥
एषनिम्बादिकः क्वाथः पीतः शर्करयाऽन्वितः। मसूरीं सर्वजां हन्ति ज्वरवीसर्पसंयुताम्॥ २॥

निम्बादि क्वाथ—नीम की छाल, पित्तपापड़ा, पुरइनपाढ़ी, परवल पत्र, कुटकी, अरूसा, जवासा, आँवला, खस, रक्त चन्दन और श्वेत चन्दन प्रत्येक समभाग लेकर निम्बादि क्वाथ बनावे। इसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार के ज्वर, वीसर्प आदि से युक्त भी मसूरिका नष्ट हो जाती है॥ १-२॥

काञ्चनारादिक्वाथ—

काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णावचूर्णितः। निर्गत्यान्तः प्रविष्टां तु मसूरीं बाह्यतो नयेत्॥ १॥

काञ्चनारादि क्वाथ—कचनार की छाल का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें स्वर्ण माक्षिक भस्म मिलाकर पान करने से निकल कर पुनः अन्दर बैठ गयी हुई मसूरिका की पिडिका बाहर निकल आती हैं और दोष शमन होकर मसूरिका रोग नष्ट हो जाता है॥ १॥

पटोलादि—

पटोलकुण्डलीमुस्तावृषधन्वयवासकैः। भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम्॥ १॥
मसूरीं शमयेदामां पक्वां चैव विशोषयेत्। नातः परतरं किंचिद्विस्फोटज्वरशान्तये॥ २॥
दाहे ज्वरे विसर्पे च व्रणे पित्ताधिकेऽपि च। मसूर्यां रक्तजायां च यान्ति शोणितमोक्षणे॥

पटोलादि क्वाथ—परवल के पत्र, गुरुच, नागरमोथा, अरूसा, जवासा, चिरायता, नीम की छाल, कुटकी और पित्तपापड़ा प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक पान करने से आम (अपक्व)

मसूरिका शमन हो जाती है और पकी मसूरिका शुद्ध हो जाती है। इससे उत्तम और कोई योग शीतलाज्वर ( मसूरिका ) को शमन करने के लिये नहीं है। मसूरिका के दाह में, ज्वर में, विसर्प में, व्रण में और पित्त की अधिकता में भी यह पटोलादि क्वाथ उत्तम है। रक्तज मसूरिका रक्तमोक्षण कराने से ( सिंगी आदि लगवाने से ) नष्ट हो जाती है ॥ १-३ ॥

धात्रीफल समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम्। मुखे कण्ठे व्रणे जाते गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥ ४ ॥

कण्ठस्थ मसूरिका चिकित्सा—आँवले और मुलहठी के क्वाथ में मधु मिलाकर गण्डूष धारण करने से मुख और कण्ठ के व्रण नष्ट हो जाते हैं ॥ ४ ॥

अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना। मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वीत्वङ् नीलमुत्पलम् ॥
उशीरलोध्रमञ्जिष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने हिताः। नयनरक्षणेन ह्यनया मसूर्यो न भवन्ति च ॥ ५-६ ॥

नेत्रस्थित मसूरिका-चिकित्सा—आँख में यदि मसूरिका हो जावे तो उसे गवेधुका ( धान में होनेवाले पौधे का फल ) और मुलहठी के क्वाथ से सिंचन करना चाहिये और मुलहठी, आँवला, हरड़, बहेड़ा, मूर्वामूल, दारुहल्दी, दालचीनी, नीलकमल ( निलोफर ), खस, लोध और मजीठ प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर लेप करने से अथवा इन ओषधियों को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर आश्चोतन ( आँखों में प्रक्षेप ) करने से आँखों में उत्पन्न हुई मसूरिकायें नष्ट हो जाती हैं। अगर पहले से ही इसका प्रयोग किया जावे तो आँखों में मसूरिकायें होती ही नहीं हैं ॥ ५-६ ॥

अञ्जनम्—शम्बूकमांसस्वरसेन नेत्रे समञ्जयेत्तेन मसूरिकाभयः।
न जायते तत्र भवन्ति नैताः प्रजातास्तु शमं प्रयान्ति ॥ १ ॥

अञ्जन—शम्बूक ( घोंघा ) के मांस का स्वरस नेत्रों में डालने से मसूरिकायें नहीं होती हैं विशेष कर नेत्रों में मसूरिका होने का भय नहीं रहता है और यदि मसूरिका उत्पन्न हो भी गयी होती हैं तो वे शमन हो जाती हैं ॥ १ ॥

प्रलेप चक्षुषोर्दद्यादुदुम्बरस्य वल्कलः।

नेत्र लेप—नेत्रों की मसूरिका में गूलर की छाल को पीसकर लेपन करना चाहिये॥

पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवधूलयेत् ॥ १ ॥

व्रणपूरण—जिस मसूरिका में अधिक क्लेद ( रासादि ) निकलता हो उस पर पञ्चवल्कल ( वट, पीपल, पाकड़ गूलर और बेत की छाल ) का समान भाग लिया चूर्ण छिड़कना चाहिये। इससे व्रण सूखकर नष्ट हो जाते हैं॥ १ ॥

भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना।

कोई २ वैद्य गोबर की भस्म और कोई सूखे गोबर का चूर्ण व्रण पर छिड़कते हैं। इससे लाभ होता है॥

निम्बामृतापटोलाककोशातकीवत्सकक्वथः ॥ २ ॥

व्रण धावन योग—नीम, मालकांगनी, अपराजिता, गिलोय और वच के क्वाथ प्रत्येक समभाग लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर मसूरिका के व्रणों को धोने से व्रण नष्ट हो जाते हैं॥ २ ॥

पञ्चतिक्त प्रयोक्तव्य मसूरीमपनयने। राजहिङ्गुगोमेध धूपयेत मसूरिकाः ॥
कृमयो न पतन्त्यस्य जाताः शाम्यन्ति ते लघु ॥ ३ ॥

राजादि धूप—राल हींग और गूगल प्रत्येक समभाग लेकर चूर्ण कर आग पर जला कर इसकी धूनी देने से मसूरिका के व्रणों में कीड़े नहीं पड़ते, यदि पड़ गये रहते हैं तो वे शमन हो जाते हैं॥ ३ ॥

## अथ मसूरिकाभेदस्य शीतलाया अधिकारः।

तत्र शीतलाया लक्षणमाह भावप्रकाशः—

पृथ्वी शीतलयाऽऽक्रान्ता मसूर्येव हि शीतला। यथा यथा मुक्ताभिरिव विनश्यति ॥

शीतला निदान—जिस प्रकार बड़े पत्थरों ( मुक्ता मोतियों ) से आच्छादित पृथ्वी पर किस प्रकार होता है उसी प्रकार शीतला आदि सफेद मुक्ताफल जैसे दाने शरीर पर निकलते हैं मसूरिका उत्पन्न हो जाती है वह शीतला कहलाती है ॥ १ ॥

सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्ष्महे। ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत्॥
यह शीतला रोग सात प्रकार के होते हैं अब उनके भेदों को कहते हैं। जिस शीतला में पहले ज्वर और पुनः बड़े २ स्फोट ( फफोले ) हों उसे बृहती शीतला ( बड़ी माता ) कहते हैं ॥२॥

सप्ताहानि सरत्येषा सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत्। सततृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति त्वचम्॥३॥
बृहती शीतला एक सप्ताह में निकलती है और एक सप्ताह में इसके फफोले भर जाते हैं तथा तीसरे सप्ताह में यह सूख जाती है और इसकी त्वचायें गिर जाती हैं अर्थात् तीन सप्ताह में यह शीतला नष्ट हो जाती है॥ ३॥

तासां मध्ये यदा काश्चित्पाकं गत्वा स्रवन्ति च। तत्रावधूलनं कुर्याद्वनगोमयभस्मना॥ ४॥
उपचार—बृहती शीतला की फुन्सियां यदि पाक होकर स्रवित होने लगें तो उस पर जंगली उपलों ( गोहठी ) की राख छिड़कना चाहिये॥ ४॥

निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत्। जलं च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तप्तकम्॥ ५॥
मसूरिका ( शीतला ) के व्रणों पर बैठती हुई मक्खियों को नीम और कमल पत्रों से उड़ाता रहना चाहिये। ज्वर होने पर भी इस रोग में रोगी को शीतल जल ही पीने को देना चाहिये। उष्ण जल कदापि नहीं दे॥ ५॥

स्थापयेत्स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले। नाशुचि संस्पृशेत्तं तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत्॥६॥
शीतला के रोगी को पवित्र, रमणीय, एकान्त और शीतल स्थान में सुलाना चाहिये। अपवित्र मनुष्य उस रोगी का स्पर्श नहीं करे और न उसके निकट रहे॥ ६॥

बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि। केचित्प्रयोजयन्त्येव मतं तेषामथो ब्रुवे॥ ७॥
बहुत से वैद्य इसमें औषध नहीं देते और बहुत देते भी हैं। उनके मत के अनुसार आगे औषध कहते हैं॥ ७॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यक् चिञ्चोत्थबीजसहितां रजनीं पिबन्ति।
तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे पीडाकरा जगति शीतलिकाविकाराः॥ ८॥
चिंचाबीजादि योग—जो शीतल जल के साथ इमली के बीज और हल्दी पीसकर पीते हैं उनके शरीर में कभी भी पीडा करनेवाले शीतला के विकार नहीं होते॥ ८॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनं ये वासारसेन मधुकं मधुकेन वाऽथ।
आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं ते नाऽऽप्नुवन्ति भुवि शीतलिकाविकारम्॥९॥
मोचारसादि योग—जो शीतला के आदि में केले के रस के साथ श्वेत चन्दन को चूर्ण कर पीते हैं अथवा घिसकर जो अडूसे के स्वरस के साथ मुलहठी के चूर्ण अथवा मुलहठी के स्वरस के साथ मुलहठी के चूर्ण पीते हैं उन्हें शीतला के विकार नहीं होते॥ ९॥

शीतलासु क्रिया कार्या शीतलारूपया सह। बध्नीयान्निम्बपत्राणि परितो भवनान्तरे॥१०॥
शीतलारोग में उपयुक्त चिकित्सा के साथ घर के भीतर बाहर चारो ओर नीम की पत्तियाँ बाँधनी चाहिये॥ १०॥

कदाचिदपि ना कार्यमस्पृश्यस्य प्रवेशनम्। स्फोटेष्वधिकदाहेषु रक्षारेणूत्करो हितः॥ ११॥
तेन ते शोपमायान्ति प्रकोपं न भजन्ति च।
अस्पृश्य के निषेध—जिस स्थान में शीतला का रोगी हो वहाँ अस्पृश्य मनुष्य का प्रवेश नहीं होना चाहिये। शीतला के फफोलों में अधिक दाह होने से उस पर वन उपलों की भस्म छिड़कने से फफोले की व्यथा शान्त होती है और फफोले सूख जाते हैं॥ ११½॥

चन्दनं वासको मुस्तं गुडूची द्राक्षया सह॥
एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरनाशनः॥ १२॥
चन्दनादि कषाय—चन्दन, अरूसा, नागरमोथा, गुरुच और दाख प्रत्येक समभाग का विधि पूर्वक क्वाथ सेवन करने से शीतला ज्वर नष्ट होता है॥ १२॥

जपहोमोपहारैश्च दानस्वस्त्ययनार्चनैः। विप्रगोशम्भुगौरीणां पूजनैस्सा शमं भवेत्॥ १३॥
जपादि क्रिया—शीतलारोग में जप, होम, उपहार, दान, स्वस्त्ययन, पूजन और ब्राह्मण, गौ शिव तथा गौरी की पूजा करने से शीतला शान्त होती है॥ १३॥

स्तोत्रं च शीतलादेव्याः पठेच्छीतलिकोऽग्रिके ।
ब्राह्मणः श्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ १४ ॥

शीतला के रोगी के निकट शीतला देवी का स्तोत्र श्रद्धा पूर्वक ब्राह्मण के द्वारा पाठ कराने से शीतला शान्त होती है ॥ १४ ॥

शीतलाया भेदानाह—

कफमारुतसम्भूतः कोद्रवो नामतो गदः । अपाकः कोद्रवाकारः सूचीनिस्तोदकारकः ॥ १ ॥
जडयुक्तः स्याद्धेतु विष्फोटीव विशेषतः । सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा शान्तिं याति विनौषधैः ॥ २ ॥
यदि वा भेषजं दद्यात्खदिराष्टकनिर्मितम् । कषायं हि तदा दद्यात्कोद्रवस्य प्रशान्तये ॥ ३ ॥

कोद्रव शीतला—कफ वायु के कोप से उत्पन्न कोद्रव नाम की मसूरिका या शीतला होती है उसमें पाक नहीं होता । यह कोदों के आकार का स्फोट होता है और उसमें सुई चुभाने के समान पीड़ा होती है । जड़ युक्त फोड़े के समान अंगों को भीगता रहता है । सात अथवा दस दिन में बिना औषधि के ही यह रोग शमन हो जाता है । अथवा यदि इसमें औषधि देनी हो खदिराष्टक कषाय मात्र देवे इससे कोद्रव नाम की शीतला शान्त हो जाती है ॥ १-३ ॥

खदिरत्रिफलानिम्बपटोलामृतवासकैः । अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठकण्डूविस्फोटकानि च ॥ ४ ॥
विसर्पपामाकिटिभं शीतपित्तमसूरिके ।

खदिराष्टक क्वाथ—खैर, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नीम की छाल, परवल पत्र, गुरुच और अडूसा प्रत्येक समभाग का पान करने से कुष्ठ, कण्डू, विस्फोट, विसर्प, पामा, किटिभ, शीतपित्त और मसूरिका ये सब रोग नष्ट होते हैं ॥ ४-४½ ॥

काश्चिद्विनाऽपि यत्नेन सुखं सिध्यन्ति शीतलाः ॥ ५ ॥
दुःसाध्याः कष्टतः काश्चित्सिध्यन्ति च न वा ।
काश्चिन्नैव तु सिध्यन्ति यत्नतोऽपि चिकित्सिताः ॥ ६ ॥

साध्यासाध्यता—कोई शीतला बिना यत्न किये ही सुखसाध्य होती है और कोई दुःसाध्य शीतला कष्ट से सिद्ध होती है । कोई सिद्ध भी होती है और नहीं भी होती है और कोई तो चिकित्सकों के यत्न करते रहने पर भी सिद्ध नहीं होती है । इस प्रकार की कृच्छ्र और असाध्य शीतला होती है ॥ ५-६ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम् ।

शीर्णाः षष्टिकशालयोऽपि चणका मुद्गा मसूरा यवाः
सर्वेऽपि मधुराः कपोतचटकाश्चैणादयो जाङ्गलाः ।
कर्कोटं कटुकं च तिक्तकुष्माण्डं द्राक्षाफलं दाडिमं
सैन्धवं पुंनागमदनमथितं कोशातकी मांसो रसाः ॥ १ ॥
अक्ष्णोः सेकविधौ गवेधुमधुकोदुम्बरं सुशीतोदकं
जम्बूकोटरकोटरीरपि वा कर्पूरचूर्णोऽपि वा ।
वक्त्रे मुद्गरसोऽपि सङ्कलरसो दाडिमं सार्द्रं पूर्णं
पूरे सोमसमस्तपुष्पमपि वा यथा मर्षणक्रिया ॥ २ ॥
दुग्धं सप्तदशा त्रिभागविहितं पथ्यं यथारोचकम् ।
संयुक्तं गुडगन्धमोक्ति सितया पुष्टे मसूरीगदे ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—पुराने साठी और शालि धान्य के चावल, चना, मूँग, मसूर, जौ, सभी प्रकार के मधुर (चोंच से कुरेद कर खानेवाले) पक्षी (कबूतर आदि) का मांस रस, ककोड़ा, कटुक (कुटकी), [illegible], [illegible], मुनक्का, अनार तथा सेंधानमक और [illegible] सभी प्रकार के [illegible], बेर फल, [illegible], आदि पथ्य हैं । इस रोग में [illegible] और गुलर के क्वाथ से आँखों का सिंचन करना चाहिये [illegible] कर्पूर का चूर्ण आँखों में देना चाहिये, [illegible] लगाना चाहिये, [illegible] दूध, मूँग का रस (यूष), [illegible] दाडिम [illegible], [illegible], गुड़, [illegible]

उपलों की भस्म छिड़कना तथा उपर्युक्त प्रणीक चिकित्सा करनी चाहिये। इस प्रकार सभी दृष्टि से विचार करके दोष के अनुसार मसूरिका रोग में पथ्य देने से लाभ होता है॥ १-३॥

**वातं स्वेदं श्रमं तैलं गुर्वन्नं क्रोधमातपम्। कट्वम्लं वेगरोधं च मसूरीगदवांस्त्यजेत्॥ ४॥**

वायु सेवन, स्वेदकर्म परिश्रम, तेल, गुरु अन्न, क्रोध, धूप या अग्नितप, कटु और अम्लरस वाले पदार्थ, वेगावरोध आदि को मसूरिका का रोगी त्याग दे। ये सब उसके लिये अपथ्य हैं॥४॥

इति मसूरिकाशीतलारोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ क्षुद्ररोगनिदानम्।

ते समासेन चतुश्चत्वारिंशत्क्षुद्ररोगा भवन्ति, तद्यथा

अजगल्लिका—

**स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसन्निभा। कफवातोत्थिता ज्ञेया बालानामजगल्लिका॥**

क्षुद्ररोग-निदान—संक्षेप से क्षुद्ररोग ४४ होते हैं। (वैसे तो इनकी संख्या असंख्य है परन्तु इस ग्रन्थ में ४४ प्रकार के ही लिये गये हैं।

अजगल्लिका के लक्षण—बालकों को जो पिडिका चिकनी, त्वचा के वर्ण के समान रंग वाली गांठदार, पीड़ारहित और मूंग के आकार की कफ-वात प्रकोप से उत्पन्न होती है उसे अजगल्लिका कहते हैं॥ १॥

यवप्रख्यामाह—

**यवाकारा सुकठिना ग्रथिता मांससंश्रिता। पिडिका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सोच्यते॥**

यवप्रख्या के लक्षण—जो पिडिका जौ के आकार की, कठिन, गांठदार तथा मांस के आश्रय होने वाली और कफवात के मिलित प्रकोप से उत्पन्न होती है उसे यवप्रख्या कहते हैं॥ २॥

अन्धालजीमाह—

**घनामवक्त्रां पिडिकामुन्नतां परिमण्डलाम्। अन्धालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम्॥**

अन्धालजी के लक्षण—जो पिडिका मुखरहित अर्थात् अल्प या सूक्ष्म मुखवाली, उठी हुई, मण्डलाकार (गोल) और अल्प पूय वाली हो उसे कफ वात के प्रकोप से उत्पन्न अन्धालजी पिडिका कहते हैं॥ ३॥

विवृतामाह—

**विवृतास्यां महादाहां पक्वोदुम्बरसन्निभाम्। विवृतामिति तां विद्यात्पित्तोत्थां परिमण्डलाम्॥**

विवृता के लक्षण—जो पिडिका खुले मुखवाली अत्यन्त दाह करने वाली पके हुए गूलर के फल के आकार की और मण्डलाकार (गोल) हो उसे पित्त प्रकोप से उत्पन्न विवृता नाम की पिडिका कहते हैं॥ ४॥

कच्छपिकामाह—**ग्रथिताः पञ्च वा षड्वा दारुणाः कच्छपोन्नताः।**
**कफानिलाभ्यां सम्भूता ज्ञेयाः कच्छपिका बुधैः॥ ५॥**

कच्छपिका के लक्षण—जो पिडिका ग्रथित (गठीली) परस्पर मिली हुई एक साथ पांच अथवा छै उत्पन्न हों, अत्यन्त कठिन हों और कछुए के समान हों उसे वायु के कोप से उत्पन्न कच्छपिका पिडिका कहते हैं॥ ५॥

वल्मीकमाह—**ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे सन्धौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः।**
**ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः प्रवृद्धिम्॥ ६॥**
**मुखैरनेकैः स्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः।**
**वल्मीकमाहुर्भिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात्॥ ७॥**

वल्मीक के लक्षण—जो पिडिका गर्दन, कन्धा, कौख, हाथ, पैर, सन्धियों तथा गले में गांठदार वल्मीक के समान उत्पन्न हो जाती है और क्रिया (चिकित्सा) नहीं करने से जो वृद्धि होती जाती है एवं अनेक मुखों वाली होकर स्रावित होती रहती है तथा सुई चुभाने के समान पीड़ा होती है और यह ऊँचे मुख वाली विसर्प के समान फैलती है इसे वल्मीक कहते हैं। यह असाध्य है विशेष कर पुराना हो जाने पर अत्यन्त असाध्य हो जाती है॥ ६-७॥

इन्द्रवृद्धामाह—

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिडकां पिडकाचिताम्। इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक्॥

इन्द्र वृद्धा के लक्षण—कमल की गट्टियों (दानों) की भाँति चारों तरफ से पिड़काओं से घिर कर मध्य में एक बड़ी पिड़िका हो, उसे वात-पित्त के कोप से उत्पन्न इन्द्र वृद्धा नाम की पिड़का कहते हैं ॥ ८ ॥

गर्दभिकामाह—

मण्डलं वृत्तमुत्सन्नं सरक्तं पिडकाचितम्। रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥९॥

गर्दभिका के लक्षण—जो पिड़िका मण्डलाकार (गोल), उठा हुआ, रक्तवर्ण की हो तथा अन्य पिड़िकाओं से घिरी हो और पीड़ा करने वाली हो उसे वात पित्त के प्रकोप से उत्पन्न गर्दभिका नाम की पिड़िका कहते हैं ॥ ९ ॥

पाषाणगर्दभमाह—

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसन्धिजः। स्थिरो मन्दरुजः स्निग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः॥

पाषाण गर्दभ के लक्षण—जो शोथ (पिड़िका) हनु की सन्धि में उत्पन्न, स्थिर (अचल) मन्द २ पीड़ा करने वाली और स्निग्ध (चिकनी) हो उसे वात-कफ के कोप से उत्पन्न पाषाण गर्दभ नामक शोथ (पिड़िका) कहते हैं ॥ १० ॥

पनसिकालक्षणमाह—

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिडकामुग्रवेदनाम्। स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम्॥

पनसिका के लक्षण—जो पिड़िका कान के भीतर उत्पन्न, अत्यन्त पीड़ा करने वाली स्थिर (अचल) और भीतर से पकने वाली हो उसे पनसिका पीड़िका कहते हैं ॥ ११ ॥

जालगर्दभमाह—

विसर्पवत्सर्पति यः शोफस्तनुरपाकवान्। दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ॥

जालगर्दभ के लक्षण—जो शोथ, विसर्परोग की भाँति फैलने वाली पतली, पाकरहित तथा दाह और ज्वर करने वाली हो उसे पित्त प्रकोप से होने वाली जालगर्दभ पिड़िका कहते हैं ॥१२॥

इरिवेल्लिकामाह—

पिडकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाज्वराम्। सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम्॥

इरिवेल्लिका के लक्षण—जो पिड़िका उत्तमाङ्ग (सिर) में उत्पन्न, गोल अत्यन्त कठिन पीड़ा करने वाली ज्वर युक्त तीनों दोष के कोप से उत्पन्न और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त हो उसे इरिवेल्लिका कहते हैं ॥ १३ ॥

कक्षालक्षणमाह—

बाहुपार्श्वांसकक्षासु कृष्णस्फोटां सवेदनाम्। पित्तप्रकोपसम्भूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥१४॥

कक्षा के लक्षण—जो पिड़िका बाहु, कोख, कंधा और काँखियों में कृष्णवर्ण के फफोलों से युक्त तथा पीड़ा करने वाली हो वह पित्त प्रकोप से उत्पन्न कक्षा नाम की पिड़िका कही है ॥ १४ ॥

एकामेतादृशीं दृष्ट्वा पिडकां स्फोटसन्निभाम्। त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनाम्नीं प्रचक्षते ॥१५॥

गन्धनाम्नी के लक्षण—जो पिड़िका कक्षा के समान फफोलायुक्त त्वचा के ऊपर एक ही स्थित हो उसे पित्त प्रकोप से उत्पन्न गन्धनाम्नी कहते हैं ॥ १५ ॥

अग्निरोहिणीलक्षणमाह—

कक्षाभागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारुणाः। अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसन्निभाः ॥ १६ ॥
सप्ताहाद्वा दशाहाद्वा पक्षाद्वा हन्ति मानवम्। तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां सन्निपाततः ॥

अग्निरोहिणी के लक्षण—जो पिड़कायें काँख के भागों में मांस को विदीर्ण करने वाली तथा मांस को विदीर्ण कर उत्पन्न होती हैं तथा जिनमें अन्तर्दाह, ज्वर और कठोर होते हैं और वे जलते हुए अङ्गारे के समान होते हैं उसे अग्निरोहिणी पिड़िका कहते हैं। यह सात, दश, अथवा पन्द्रह दिन में मनुष्य को मार डालती है ॥ १६-१७ ॥

चिप्पलक्षणमाह—

नखमांसमधिष्ठाय पित्तं वातश्च वेदनाम्। करोति दाहपाकौ च तं व्याधिं चिप्पमादिशेत्॥

चिप्य के लक्षण—जो मनुष्यों के नख के नीचे के मांस में वात-पित्त कुपित होकर दाह और पाक उत्पन्न कर देते हैं उस व्याधि को चिप्य कहते हैं ॥ १८ ॥

कुनखस्य लक्षणमाह—

अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षासितः खरः। भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीनमिति संज्ञितम् ॥

कुनख के लक्षण—किसी प्रकार के आघात आदि से जो नख दूषित होकर रूक्ष, कृष्ण और कठोर हो जाते हैं उन्हें कुनख कहते हैं। इसकी संज्ञा कुलीन भी है ॥ १९ ॥

अनुशयीलक्षणमाह—

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरि स्थिताम्। पादस्यानुशयीं तां तु विद्यादन्तःप्रपाकिनीम् ॥

अनुशयी के लक्षण—जो पिडिका अन्त प्रपाक के कारण गम्भीर हो, अल्पशोथ वाली हो, उसका वर्ण त्वचा के वर्ण के समान हो तथा पाद के ऊपर मस्तक पर स्थित हो और भीतर ही भीतर पकने वाली हो उसे अनुशयी नाम की पिडिका कहते हैं ॥ २० ॥

विदारिकालक्षणमाह—

विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षावङ्क्षणसन्धिषु। विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ॥ २१ ॥

विदारिका के लक्षण—जो पिडिका विदारीकन्द की भाँति गोल, काँख और वंक्षण की सन्धियों में रक्तवर्ण की हो सब दोषों के मिलित प्रकोप से उत्पन्न हो और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त हो उसे विदारिका कहते हैं ॥ २१ ॥

शर्करार्बुदस्य लक्षणमाह—

प्राप्य मांसं सिरास्नायुर्मेदः श्लेष्मा तथाऽनिलः।
ग्रन्थिं करोत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २२ ॥

शर्करा के लक्षण—कफ और वात जब मांस, सिरा, स्नायु और मेद में जाकर दूषित होते हैं तब ग्रन्थि (गांठ) उत्पन्न कर देते हैं और जब वह गांठ फूटती है तो उससे मधु, घृत और वसा के समान स्राव होता है तथा स्राव अत्यन्त होने से पूर्वोक्त कुपित वात और भी बढ़कर मांस को सुखाकर गांठ वाला शर्करा (अश्मशर्करा) उत्पन्न कर देता है। इस अवस्था को शर्करा कहते हैं ॥

स्रवत्यास्रवमत्यर्थं तत्र वृद्धिं गतोऽनिलः। मांसं विशोष्य ग्रथितां शर्करां जनयेत्ततः ॥ २३ ॥

दुर्गन्धि क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः सिराः। स्रवन्ति सहसा रक्तं तं विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥

शर्करार्बुद के लक्षण—उपर्युक्त शर्करा में सिरायें जब दुर्गन्धि और अत्यन्त क्लेद युक्त तथा अनेक वर्णों के रक्त को सहसा गिराने लगती हैं तब उसे शर्करार्बुद कहते हैं ॥ २४ ॥

पाददार्या लक्षणमाह—

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः। पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ॥ २५ ॥

पाददारी के लक्षण—अधिक भ्रमण करने वाले बिना जूते के पैदल चलने वाले के पावों के तलवे में वायु कुपित होकर तलवों को रूक्षकर उसमें दरार उत्पन्न कर देता है और उसमें पीड़ा होती है। इस रोग को पाददारी कहते है ॥ २५ ॥

कदरस्य लक्षणमाह—

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः। ग्रन्थिः कीलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् ॥२६॥

कदर के लक्षण—पैर के तलवे रेत, बालू, तथा कङ्कड़ आदि से पीड़ित अथवा काँटे आदि से क्षत विक्षत हो जाने से उसमें बेर के समान जो ग्रन्थि उत्पन्न हो जाती है उसको कदर कहते हैं। (यदा कदा यह रोग हाथ में भी उत्पन्न होता है) लोक में इसे गोखरू रोग भी कहते हैं तथा शास्त्र में शर्कराकन्टर और वात कण्टक कहते हैं, इसमें वायु और कफ कुपित होते हैं ॥ २६ ॥

अलसस्य लक्षणमाह—

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरौ पादौ कण्डूदाहरुजान्वितौ। दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ॥ २७ ॥

अलस के लक्षण—पैर की अङ्गुलियों के मध्य में निरन्तर आर्द्र रहने से अथवा दूषित कीचड़ आदि के लगते रहने से पैर की अङ्गुलियां सड़ जाती हैं और उनमें कण्डू दाह और पीड़ा होती है उसे अलसरोग कहते हैं ॥ २७ ॥

इन्द्रलुप्तस्य लक्षणम्—

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्च्छितम् । प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ॥ रुणद्धि रोमकूपांस्तु ततोऽन्येषामसम्भवः । तदिन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते ॥ २८-२९ ॥

इन्द्रलुप्त के लक्षण—रोमकूपों में गया हुआ पित्त वात से मूर्च्छित होकर रोमों को गिरा देता है। पश्चात् कफ रक्त के साथ मिलकर रोमकूपों को बन्द कर देता है जिससे बालों के गिर जाने पर पुनः उनकी उत्पत्ति नहीं होती। इस रोग को इन्द्रलुप्त, खालित्य और रुज्या कहते हैं। यह रोग स्त्रियों को कम होता है ॥ २८-२९ ॥

दारुणकस्य लक्षणमाह—

दारुणा कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपाट्यते । कफमारुतकोपेन विद्याद्दारुणकं तु तत् ॥ ३० ॥

दारुणक के लक्षण—जिस रोग में बाल जमने की जगह कफ वायु के कोप से कठिन (खुजली) युक्त और रूक्ष तथा फट जावे या उस स्थान पर पपड़ियाँ जमने लगे उस रोग को दारुणक कहते हैं ॥ ३० ॥

अरुंषिकालक्षणमाह—

अरूंषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्धनि । कफासृक्कृमिकोपेन तानि विद्यादरुंषिकाम् ॥ ३१ ॥

अरुंषिका के लक्षण—मस्तक में अनेक मुखों और बहुत क्लेद वाली (अतिस्राव करने वाली) जो पिडिकायें कफ, रक्त और कृमियों के कोप से उत्पन्न हो जाती हैं उन्हें अरुंषिका रोग कहते हैं ॥

पलितस्य निदानसम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह—

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः । पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ॥ ३२ ॥

पलित के निदान—क्रोध, शोक और परिश्रम के कारण उत्पन्न शरीर की ऊष्मा तथा पित्त सिर में जाकर केशों को पका देते हैं उससे पलित रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ३२ ॥

वातिकं विषमं रूक्षं पीतं पित्तासितं कफात् । सर्वरूपान्वितं विद्यात्सन्निपातसमुत्थितम् ॥

पलित के लक्षण—अधिक वात प्रकोप के कारण जो पलित होता है उसमें बाल विषम (न्यूनाधिक) रूप से पकते हैं, पित्त प्रकोप के कारण जो पलित होता है उसमें बाल पीले होते हैं और कफ प्रकोप के कारण जो पलित होता है उसमें केश श्वेत हो जाते हैं। तथा सन्निपात के कारण जो पलित होता है उसमें तीनों दोषों के मिश्रित रूप होते हैं ॥ ३३ ॥

यौवनपिडिकालक्षणमाह—

शाल्मलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः । जायन्ते पिडका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ॥

यौवन पिडिका के लक्षण—जो सेमल के काँटे के समान कफ-वायु और रक्त के प्रकोप से युवा पुरुषों के मुख के सौन्दर्य को दूषित कर देती हैं उन्हें मुख दूषिका या यौवनपिडिका कहते हैं ॥

पद्मिनीकण्टकमाह—

कण्टकैराचितं वृत्तं कण्डूमत्पाण्डुमण्डलम् । पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ॥ ३५ ॥

पद्मिनी कण्टक के लक्षण—जो पिडिका कमलिनी के काँटों के सदृश काँटों से घिरी हुई, गोलाकार, कण्डूयुक्त, पाण्डु वर्ण की होती है उसे पद्मिनी कण्टक कहते हैं यह कफ और वात के प्रकोप से उत्पन्न होता है ॥ ३५ ॥

जतुमणिमाह—

समुत्सन्नमरुक् श्लक्ष्णं मण्डलं कफरक्तजम् । सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिस्तु सः ॥ ३६ ॥

जतुमणि (लहसन) के लक्षण—जो मण्डल कुछ ऊँचा, पीड़ा रहित और चिकना होता है उसे जतुमणि कहते हैं यह कफ और रक्त के प्रकोप से होता है। कोई २ आचार्य इसे जन्म से उत्पन्न होने वाला [illegible] लक्षण मानते हैं। इसे लोक में लहसन कहते हैं ॥ ३६ ॥

[illegible]—

कृष्णः [illegible] जतुमणिर्नीरुजो [illegible] । [illegible] ॥

[illegible] के [illegible] कृष्ण वर्ण का [illegible] और पीड़ा रहित [illegible] शरीर पर उत्पन्न होता है उसे [illegible] कहते हैं। कोई (दूसरे) [illegible] वर्ण का और [illegible] मानते हैं ॥ ३७ ॥

माषमाह—

अवेदन स्थिरं चैव यस्मिन्गात्रे प्रदृश्यते। माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३८ ॥

माष के लक्षण—जो शरीर के किसी भाग में पीड़ा रहित, स्थिर ( अचल ) माष ( उड़द ) के समान आकार का, कृष्ण वर्ण और उठा हुआ मांसाङ्कुर दिखाई देता है वह वायु के कोप से उत्पन्न होता है। उसे माष ( मस्सा ) कहते हैं ॥ ३८ ॥

तथा च भोज —

वातेरिते त्वचि यदा दूष्येते कफमेदसी। श्लक्ष्णं मृदु सवर्णं च कुर्यात्तं माषकं वदेत् ॥३९॥

वात से प्रेरित कफ और मेद जब त्वचा में जाकर दूषित हो जाते हैं तब चिकना, कोमल, माष के समान अथवा त्वचा के समान वर्ण का मांसाङ्कुर उत्पन्न कर देते हैं। भोज के मत से उसे माषक ( मस्सा ) कहते हैं ॥ ३९ ॥

तिलकालकमाह—

कृष्णानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च। वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥

तिलकालक के लक्षण—त्वचा के ऊपर तिल के प्रमाण कृष्णवर्ण के, पीड़ा रहित, त्वचा की ही समता में वात, पित्त तथा कफ के कोप से जो चिह्न उत्पन्न होते हैं उन्हें तिलकालक कहते हैं, लोक में इसे तिल कहते हैं ॥ ४० ॥

न्यच्छमाह—महद्वा यदि वा चाल्पं श्यावं वा यदि वा सितम्।

नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ४१ ॥

न्यच्छ के लक्षण—शरीर में मुख के अतिरिक्त किसी भी भाग में बड़ा अथवा छोटा, कृष्ण अथवा धूसर वर्ण का, पीड़ा रहित जो मण्डल हो जाता है उसे न्यच्छ ( लाञ्छन या लक्षण ) कहते हैं। यह भी जतुमणि ( लहसन ) के भाँति ही माना जाता है ॥ ४१ ॥

मुखव्यङ्गस्य लक्षणमाह—

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः। मुखमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ॥ ४२ ॥

नीरुजं तनुकं श्यावं मुखव्यङ्गं तमादिशेत् ॥

मुख व्यंग के लक्षण—क्रोध परिश्रम आदि से कुपित हुआ वात, पित्त मुख पर सहसा मण्डल बना देता है जो पीड़ा रहित, पतला और श्याम ( धूसर ) वर्ण का होता है उसे व्यङ्ग कहते हैं। लोक में इसे झांई या छाईं कहते हैं ॥ ४२ ॥

नीलिकामाह—कृष्णमेवं गुणं गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ॥ ४३ ॥

नीलिका के लक्षण—उपरोक्त व्यङ्ग के गुणों वाला ही चिह्न यदि कृष्णवर्ण का शरीर अथवा मुख पर हो तो उसे नीलिका कहते हैं। ( लोक में इसे नीली झांई कहते हैं यह न्यच्छ तथा व्यङ्ग दोनों से अधिक कृष्णवर्ण की होती है ) ॥ ४३ ॥

परिवर्तिकामाह—

मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि तथैवाप्यभिघाततः। मेढ्रचर्म यदा वायुर्भजते सर्वतश्चरन् ॥ ४४ ॥

तदा वातोपसृष्टत्वाच्चर्म तत्परिवर्तते। सवेदनं सदाहं च पाकं च व्रजति क्वचित् ॥ ४५ ॥

मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते। सरुजां वातसम्भूतां विद्यात्तां परिवर्तिकाम्।

सकण्डूः कठिना चापि सैव श्लेष्मसमुत्थिता ॥ ४६ ॥

परिवर्तिका के लक्षण—लिङ्ग को अत्यन्त मर्दन अधिक दबानेसे अथवा इसी प्रकार के अन्यान्य आघातादि से शरीरों में चलने वाला कुपित व्यान वायु शिश्न के चर्म में प्रवेश कर चर्म को उलट देता है जिससे वेदना, दाह और कदाचित पाक भी हो जाता है और लिंग मुण्ड के नीचे मांसकोश ग्रन्थि ( गांठ ) के रूप में लटक जाता है इस रोग को वात से उत्पन्न पीड़ायुक्त परिवर्तिका कहते हैं। यदि इस रोग में और ग्रन्थि में काठिन्य हो तो कफ के प्रकोप से उत्पन्न परिवर्तिका जाननी चाहिये। ( इसमें पित्तविकार भी स्थित रहता है जिससे दाह पाकादि होते हैं पर विशेष वात और कफ ही दूषित रहते हैं ) ॥ ४४-४६ ॥

अवपाटिकालक्षणमाह—

अल्पीयस्यां यदा हर्षाद्बालाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः। हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्वर्तिते बलात् ॥

मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि शुक्रवेगविघाततः । यस्यावपाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४८ ॥

अवपाटिका के लक्षण—अल्प संकुचित ( छोटी ) योनि में हर्ष अथवा बलपूर्वक मैथुन करने से अथवा हाथ आदि के द्वारा अभिघात ( हस्तमैथुन ) से अथवा हाथ से बलपूर्वक लिङ्ग के मुख को खोलने से अथवा मर्दन करने से अथवा दबाने से अथवा निकलते हुए वीर्य को रोकने से जो लिङ्ग मुंड के चर्म फट जाते हैं उसे अवपाटिका कहते हैं । इसमें वातादि दोषों का पृथक् २ कोप रहता है । उसे दोषों के लक्षणानुसार जानना चाहिये ॥ ४७-४८ ॥

निरुद्धप्रकशस्य लक्षणमाह—

वातोपसृष्टे मेढ्रे वै चर्म संश्रयते मणिम् । मणिश्चर्मावनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥ ४९ ॥
निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् । मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ॥
निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसम्भवम् ॥ ५० ॥

निरुद्ध प्रकश के लक्षण—लिङ्गेन्द्रिय में वायु के कुपित होने से लिङ्ग के मुख पर का चर्म लिंगमुंड पर चढ जाता है और मणि के चर्म से आच्छादित हो जाने से मूत्र का स्रोत अवरुद्ध हो जाता है उसे निरुद्ध प्रकश कहते हैं । इस निरुद्ध प्रकशरोग में मन्द २ धार से पीड़ारहित मूत्र निकलता है और लिंगमुंड नहीं खुलता है । इसे पीड़ा युक्त होने से वात से उत्पन्न निरुद्ध प्रकश जानना चाहिये ॥ ४९-५० ॥

संनिरुद्धगुदस्य लक्षणमाह—

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदमाश्रितः । निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ॥ ५१ ॥
मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति । संनिरुद्धगुदं व्याधिमेवं विद्यात्सुदुस्तरम् ॥

सन्निरुद्धगुद के लक्षण—मलादि वेग को रोकने से गुदा में स्थित अपान वायु कुपित होकर मलमार्ग को अवरुद्ध कर सूक्ष्म द्वार कर देता है । जिससे मल का निकलना कष्ट से होता है । इस प्रकार के कठिन व्याधि को सन्निरुद्ध गुद जानना चाहिये ॥ ५१-५२ ॥

अहिपूतनस्य लक्षणमाह—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्भवेत् । स्विन्ने वा स्नाप्यमानेऽस्य कण्डू रक्तकफोद्भवा ॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते । एकीभूतं व्रणं घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ॥ ५४ ॥

अहि पूतन के लक्षण—बालकों के मल मूत्रादि युक्त गुदा को नहीं धोने से अथवा स्वेदादि के गुदा में आ जाने से अथवा बालकों को स्नान नहीं कराने से रक्त और कफ से गुदा में कण्डू उत्पन्न हो जाती है और उससे शीघ्र ही गुदा में फफोले पड़ जाते हैं तथा स्राव होने लगता है और कदाचित् वे सब फफोले एकत्र होकर बड़े कठिन व्रण के रूप में हो जाते हैं । उस घोर व्रण को अहिपूतन कहते हैं । ( बच्चों को ये रोग अस्वच्छता एवं दूषित दूध के पान से भी होता है ) ॥ ५३-५४ ॥

वृषणकच्छूलक्षणमाह—

स्नानोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंश्रितः । यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कण्डूं संजनयेत्तदा ॥ ५५ ॥
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटः स्रावश्च जायते । प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥५६॥

वृषण कच्छू के लक्षण—जो स्नान आदि नहीं करते अथवा उबटन आदि नहीं लगाते हैं उनके वृषण में स्थित मल स्वेदादि से आर्द्र होकर कण्डू उत्पन्न कर देता है उस कण्डू से और हो पिड़िकायें हो जाती हैं और उनसे स्राव होने लगता है । इस रोग को वृषण कच्छू कहते हैं । इसमें जो पिड़िकायें होती हैं उनमें कफ और रक्तदोष का प्रकोप होता है ॥ ५५-५६ ॥

गुदभ्रंशस्य लक्षणमाह—

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदं यदि । रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ॥ ५७ ॥

गुदभ्रंश के लक्षण—रूक्ष और दुर्बल शरीर वाले के प्रवाहण करने से ( बलपूर्वक मल निकालने से ) और अतीसार से जो गुदा की नाड़ी बाहर निकल आती है उसे गुदभ्रंश रोग कहते हैं ॥ ५७ ॥

सूकरदंष्ट्रस्य लक्षणमाह—

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः । कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्यात्सूकरदंष्ट्रकः ॥ ५८ ॥

सूकर दंष्ट्र के लक्षण—जो व्रण सूअर के दाढ़ के आकार का दाह युक्त, रक्त वर्ण के किनारों वाला, त्वचा को पकाने वाला, तीव्र पीड़ा करने वाला, कण्डू करनेवाला और ज्वर करने वाला होता है उसे सूकर दंष्ट्र कहते हैं॥ ५८॥

## अथातः क्षुद्ररोगचिकित्सा।

अजगल्लिकाचिकित्सा—

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत्। शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चाऽऽलेपयेन्मुहुः॥

अजगल्लिका चिकित्सा—अजगल्लिका जब पकी नहीं हो तब उसमें जोंक लगाकर रक्त निकलवा देना चाहिये और सीप तथा फिटकिरी और यवाक्षार प्रत्येक समभाग लेकर विधि पूर्वक कल्क बनाकर बार २ लेप लगाने से अजगल्लिका रोग नष्ट होता है॥ १॥

कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम्। श्यामालाङ्गलिकामूर्वाकल्कैरपि विलेपयेत्॥
पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत्॥ २॥

जो अजगल्लिका कठिन हो उसे क्षार द्रव्यों के प्रयोग से द्रवित करना ( बहाना ) चाहिये और श्यामालता, कलिहारी विष, मूर्वामूल प्रत्येक समान लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर लेप करते रहना चाहिये। जब अजगल्लिका पक जावे तब व्रण प्रकरण में कही हुई विधि के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये॥ २॥

यवप्रख्यान्धालजीचिकित्सा—

अन्धालजीं यवप्रख्यां पूर्वं स्वेदैरुपाचरेत्। मनःशिलादेवदारुकुष्ठकल्कैः प्रलेपयेत्॥
पक्वां व्रणविधानेन यथोक्तेन प्रसाधयेत्॥ १॥

अन्धालजी और यवप्रख्या की चिकित्सा—अन्धालजी और यवप्रख्या को पहले स्वेदन करना चाहिये। पश्चात् मैनशिल, देवदारु और कूठ तीनों समभाग लेकर विधिवत् कल्क बनाकर लेप करना चाहिये। इनके पक जाने पर जैसी व्रण की चिकित्सा कही गयी है वैसी चिकित्सा करनी चाहिये॥ १॥

विवृतेन्द्रवृद्धागर्दभिकाजालगर्दभानां चिकित्सा—

विवृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम्। पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया साधयेद्भिषक्॥१॥
पाके तु रोपयेदाज्यैः पक्वैर्मधुरभेषजैः। नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम्॥
जालगर्दभरूपं तु सद्यो हन्ति सवेदनम्॥ २॥

विवृतादि की चिकित्सा—विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभिका और जालगर्दभ रोगों में पित्तज विसर्प में कही चिकित्सा करनी चाहिये। पक जाने पर मधुर वर्ग की ओषधियों द्वारा सिद्ध किये हुए घृत से रोपण तथा नील और परवल की जड़ को समान भाग पीसकर उसमें घृत मिलाकर लेप करना चाहिये। इस प्रयोग से जालगर्दभ यदि पीड़ा सहित भी हो तो शीघ्र नष्ट हो जाता है॥ १-२॥

कच्छपिकाचिकित्सा—

कच्छपीं स्वेदयेत्पूर्वं ततः एभिः प्रलेपयेत्। कल्कीकृतैर्निशाकुष्ठशिलातालकदारुभिः॥
तां पक्वां साधयेच्छीघ्रं भिषग्व्रणचिकित्सया॥ १॥

कच्छपिका चिकित्सा—कच्छपिका को पहले स्वेदन करके हल्दी, कूट, मैनशिल, हरताल और देवदारु प्रत्येक समभाग कर विधिपूर्वक कल्क बनाकर लेप करना चाहिये और पक जाय तो शीघ्र ही व्रण की चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिये॥ १॥

वल्मीकचिकित्सा—

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत्। विधानेनार्बुदोक्तेन शोधयित्वा च रोपयेत्॥
वल्मीकं तु भवेद्यस्य नातिवृद्धममर्मणि। तत्र संशोधनं कृत्वा शोणितं मोक्षयेद्भिषक्॥ २॥
कुलत्थकानां शूकैश्च गुडूच्या लवणेन च। आरग्वधस्य मूलैश्च दन्तिमूलैस्तथैव च॥ ३॥
श्यामामूलैः सपलाशैः सक्तुमिश्रैः प्रलेपयेत्। सुस्निग्धैश्च सुखोष्णैश्च भिषक्समुपनाहयेत्॥४॥

वल्मीक-चिकित्सा—वल्मीक को शस्त्र से काट छीलकर क्षार और अग्नि से प्रसाध्य तथा अर्बुद रोग में कही हुई विधि से शोधन और रोपण करना चाहिये। जिसका वल्मीक छोटा हो

और मर्मस्थान में नहीं हो उस रोगी का पहले वमन विरेचन द्वारा संशोधन कराकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये। कुल्थी की जड़ से गुरुच और सेंधानमक से अथवा श्यामालता की जड़ से अथवा सत्तू मिला हुआ तिल कल्क से लेप करके सुस्निग्ध अर्थात् घृत या तैल से चिकना करके सुखोष्ण अर्थात् थोड़ा २ उपनाह करना चाहिये॥ १-४॥

मनःशिलादितैलम्—

मनःशिलालकमयल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः। जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्॥ १॥
वल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुव्रणम्। पाणिपादोपरिष्टात्तच्छिद्रैर्बहुभिरावृतम्॥
वल्मीकं यत्सशोफं स्याद्वर्ज्यं तद्धि विजानता॥ २॥

मनःशिलादि तैल—मैनशिल, हरताल, मिलावा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन और चमेली के पत्तों को समभाग लेकर विधिवत् कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित नीम का तैल और पाकार्थ चौगुना जल देकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लगाने से यह तैल वल्मीक रोग को नष्ट करता है चाहे वह वल्मीक रोग बहुत छिद्रों वाला अथवा बहुत व्रणों वाला भी न हों, किन्तु जो वल्मीक रोग हाथ पैरों के ऊपर हो, उसमें बहुत से छिद्र हो गये हों और शोथयुक्त हो उसकी चिकित्सा वैद्य नहीं करे क्योंकि वह असाध्य है॥ १-२॥

पाषाणगर्दभचिकित्सा—

सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत्। कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे॥ १॥

पाषाणगर्दभ-चिकित्सा—पाषाण गर्दभ रोग में पहले स्वेदन करके देवदारु, मैनशिल और कूठ इनको समान भाग लेकर विधिवत् कल्क बनाकर लेप करना चाहिये। यह लेप पाषाण गर्दभ रोग में कफ, वातज शोथ को नष्ट करने वाला है॥ १॥

पनसिकाचिकित्सामाह—

भिषक्पनसिकां पूर्वं स्वेदनैरपतर्पणैः। जयेद्विदारिवल्लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः॥ १॥

पनसिका चिकित्सा—पनसिका रोग में पहले स्वेदन और अपतर्पण कराकर विदारी की चिकित्सा के समान सहिजन और देवदारु के विधिवत् बने कल्क का लेप करना चाहिये॥ १॥

इरिवेल्लिकाचिकित्सा—

पैत्तिकस्य विसर्पस्य या चिकित्सा प्रकीर्तिता। तयैव भिषगेतां च चिकित्सेदिरिवेल्लिकाम्॥

इरिवेल्लिका चिकित्सा—पैत्तिक विसर्प की जो चिकित्सा (लेप सेकादि) कही गयी है वही चिकित्सा इरिवेल्लिका की भी करनी चाहिये॥ १॥

कक्षागन्धयोश्चिकित्सा—

कक्षां च गन्धनां तां च चिकित्सेत चिकित्सकः। पैत्तिकस्य विसर्पस्य क्रियया पूर्वमुक्तया॥

कक्षा और गन्ध चिकित्सा—कक्षा और गन्ध की चिकित्सा पूर्वोक्त पैत्तिक विसर्प चिकित्सा के समान ही करनी चाहिये॥ १॥

अग्निरोहिणीचिकित्सा—

पित्तवीसर्पविधिना साधयेदग्निरोहिणीम्। रोहिण्यां लङ्घनं कुर्याद्रक्तमोक्षणरूक्षणम्॥ १॥
शरीरस्य च संशुद्धिं तां तु वृद्धां परित्यजेत्॥ २॥

अग्नि रोहिणी चिकित्सा—पित्तज विसर्प की चिकित्सा से अग्निरोहिणी को सिद्ध (नष्ट) करके लङ्घन, रक्तमोक्षण, रूक्षण और शरीर की शुद्धि कराना चाहिये। किन्तु यदि अग्निरोहिणी अधिक बढ़ जावे तो उसे असाध्य समझ कर त्याग देवें॥ १-२॥

चिप्पकुनखयोश्चिकित्सा—

चिप्पं रुधिरमोक्षेण शोधनेनाप्युपाचरेत्। यतोष्माशमयेन तु सेचयेदुष्णवारिणा॥ १॥

चिप्प चिकित्सा—चिप्प रोग में रक्तमोक्षण और शोधन कराकर जब वह ऊष्मा रहित हो जाय तब उसे उष्ण जल से सिंचन कराना चाहिये॥ १॥

शस्त्रेणापि यथायोग्यमुच्छिद्य क्षारयेत्ततः। व्रणोक्तेन विधानेन रोपयेत्तु विचक्षणः॥ २॥

अवसर आने पर शस्त्र से भी चिप्प का छेदन कर क्षार कराकर व्रण रोग में कही हुई विधि से व्रण रोपक उपचार करना चाहिये॥ २॥

स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृत्वाऽऽयसेऽभयाम्। घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्पं पुनः पुनः॥

लोहे के पात्र में हरड़ को रखकर उसमें हल्दी के स्वरस को डाल कर घिसने से जो कल्क बने उसका लेप बार २ करना चाहिये॥ ३॥

काश्मर्याः सप्तभिः पत्रैः कोमलैः परिवेष्टितः। अङ्गुलीवेष्टकः पुंसां चिप्पमाशु प्रशाम्यति॥ ४॥

गम्भार के सात कोमल पत्तों को लेकर चिप्प रोग वाली उंगली पर लपेट दे तो इससे शीघ्र ही चिप्प रोग निश्चय नष्ट हो जाता है॥ ४॥

श्लेष्मविद्रधिकल्पेन कुनखं समुपाचरेत्। नखकोटिप्रविष्टेन टङ्कणेन न शाम्यति॥
कुनखश्चेत्तदा शैलः सलिले प्लवतेऽपि च॥ ५॥

कुनख-चिकित्सा—कफज विद्रधि में कही हुई चिकित्सा के अनुसार कुनख की चिकित्सा करनी चाहिये। 'कुनख रोग टंकण (सुहागा) से निश्चय छूट जाता है।' यदि नख के कोने में प्रविष्ट सुहागे से भी कुनख रोग शान्त न हो तो मानो पत्थर भी जल में तैरने लगेगा? अर्थात् जैसा जल में पत्थर का तैरना असंभव है वैसा सुहागे के प्रयोग से कुनख रोग का नहीं छूटना भी असम्भव है॥ ५॥

दाडिमकुसुमयवासैरभया सुश्लक्ष्णचूर्णिता लेपात्।
नखकोटिप्रतिभाव्य शमयति शूलं च तत्क्षणादेव॥ ६॥

अनार के फूल, जवासा और हरड़ तीनों समान भाग का श्लक्ष्ण चूर्ण बनाकर लेप करने से नख के कोने का सड़ा हुआ अंश नष्ट हो जाता है और पीड़ा भी शीघ्र ही नष्ट हो जाती है॥ ६॥

अनुशयीचिकित्सा—हरेदनुशयीं वैद्यः क्रियया श्लेष्मविद्रधेः॥ १॥

अनुशयी-चिकित्सा—अनुशयी रोग से कफज विद्रधि में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये॥

विदारिकाचिकित्सा—

विदारिकायां प्रथमं जलौकायोजनं हितम्। पाटा च विपकायां ततो व्रणविधिः स्मृतः॥
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः॥ १॥

विदारिका-चिकित्सा—विदारिका रोग में पहले जोंक लगाकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये। यदि विदारिका पक गयी हो तो उसे चिराकर व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये। सहिजन की छाल और देवदारु दोनों को समान भाग पीस कर लेप करने से विदारिका नष्ट होती है॥१॥

शर्करार्बुदस्य चिकित्सा—मेदोऽर्बुदविधानेन साधयेच्छर्करार्बुदम्॥ १॥

शर्करार्बुद-चिकित्सा—मेदोऽर्बुद चिकित्सा के अनुसार शर्करार्बुद की चिकित्सा करनी चाहिये।

पाददार्याश्चिकित्सा—पाददार्यां शिरां प्राज्ञो मोक्षयेत्तत्र शोधिनम्।
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ वा लेपयेन्मुहुः॥ १॥

मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतैः क्षारविमिश्रितैः। सर्जोत्थसिन्धूत्थपयःपूर्णं मधुघृतप्लुतम्॥
निम्बस्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रभाजने॥ २॥

पाददारी-चिकित्सा—पाददारी रोग में तत्शोधनी शिरा का मोक्षण और पैरों को स्नेहन स्वेदन करा कर मोम, वसा, मज्जा, घृत और यवक्षार प्रत्येक समान भाग मिलाकर लेप करना चाहिये तथा राल सेंधानमक, मधु और घृत प्रत्येक समान भाग और सरसों का तेल एक भाग मिलाकर बार बार लगाना चाहिये॥ १-२॥

मधुसिन्धवकर्षैर्घवघृतगुडमहिषाक्षशालनिर्यासैः। गैरिकसहितैर्लेपः पादस्फुटनापहः सिद्धः॥

मधु, सेंधानमक, घृत गुड़, गुग्गुल, शाल का निर्यास (गोंद) और गेरु प्रत्येक सममाग को पीसकर लेप लगाने से पैर का फटना (पाददारी रोग) अवश्य नष्ट होता है॥ ३॥

उपोदिकासर्षपनिम्बमोचकर्कारुकैर्वारुकभस्मतोयैः।
तैलं विपक्वं लवणेन युक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात्॥ ४॥

उपोदिकादि तैल—उपोदिका (पोई शाक), सरसो, नीम की छाल अथवा पत्ती, मोचरस ककड़ी और खीरा के बीज प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक जलाकर भस्म को जल में घोल देवे पश्चात् उस क्षारोदक में चतुर्थांश मूर्च्छित सरसों का तैल मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर उसमें सेंधानमक मिलाकर लेप करने से पाददारी रोग नष्ट होता है॥ ४॥

मदन च तथा सिक्थं सामुद्रलवणं तथा । महिषीनवनीतेन सततं लेपनं हितम् ॥ १ ॥
सप्ताहात्स्फुटितौ पादौ जायेते कमलोपमौ ।

मदन फलादि लेप—मैनफल, मोम और सामुद्र लवण को सममाग लेकर पीसकर भैंस के मक्खन में मिलाकर निरन्तर लेप करना चाहिये। इस मदन फलादि लेप के सात दिन लगातार लगाने से फटे हुये पैर कमल के समान कोमल और सुन्दर हो जाते हैं ॥ १ ॥

सैन्धव चन्दन राळं मधु सर्पिः पुरो गुड ॥
गैरिका स्फुटितौ पादौ लिप्तौ स्तः पङ्कजोपमौ ॥ २ ॥

सैन्धवादि लेप—सेंधानमक, रक्त चन्दन, राल, मधु, घृत, गुग्गुल, गुड़ और गेरु प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से फटे हुए पैर कमल के समान हो जाते हैं ॥ २ ॥

मदनसैन्धवगुग्गुलुगैरिकाज्यमधुराळगुडांघ्रिविलेपनात् ।
स्फुटितमप्यखिलं चरणद्वयं विकचतामरसप्रतिमं भवेत् ॥ ३ ॥

मदनादि योग—मैनफल, सेंधानमक, गुग्गुल, गेरु, घृत, मधु राल, गुड़ प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से फटे हुए पैर खिले हुए कमल के समान हो जाते हैं ॥ ३ ॥

कदरस्य चिकित्सा—उद्धृत्य कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ १ ॥

कदर-चिकित्सा—कदर को उखाड़ खुरच कर तैल से अथवा अग्नि से जलाना चाहिये ॥१॥

मलसस्य चिकित्सा—

पादौ सिक्त्वाऽऽरनालेन लेपनं त्वलसे हितम् । पटोलकुनटीनिम्बरोचनामरिचैस्तिलैः ॥१॥

अलस-चिकित्सा—अलस रोग में पैर को कांजी से सिंचन कर पटोल पत्र, मैनसिल, नीम, वंशलोचन, मरिच और तिल प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

क्षुद्रस्वरससिद्धेन कटुतैलेन लेपयेत् । ततः कासीसकुनटीतिलचूर्णैर्विचूर्णयेत् ॥ २ ॥

छोटी कटेरी के स्वरस में चतुर्थांश मूर्च्छित सरसों का तैल विधिपूर्वक सिद्ध कर लेप करके कासीस, मैनसिल और तिल प्रत्येक समान भाग का चूर्ण छिड़कने से यह अलस रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

करञ्जबीजरजनी कासीसं पद्मकं मधु । रोचना हरितालं वा लेपोऽयमलसे हितः ॥ ३ ॥

करञ्ज के बीज, हल्दी, कासीस, पदुम काठ, मधु, वंशलोचन और हरताल प्रत्येक समान भाग पीसकर लेप करने से अलस रोग में लाभ होता है ॥ ३ ॥

इन्द्रलुप्तस्य चिकित्सा—

इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः । गुञ्जामूलं फलं वाऽपि भल्लातककरसोऽपि वा ॥ १ ॥
लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी । हस्तिदन्तमषीं कृत्वा छागदुग्धं रसाञ्जनम् ॥
रोमाण्येतेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ २ ॥

इन्द्रलुप्त-चिकित्सा—बड़ी कटेरी के स्वरस में मधु मिलाकर लेप करने से अथवा गुञ्जा (रत्ती) की जड़ किंवा फल को पीसकर लेप करने से अथवा भिलावे के स्वरस का लेप करने से अथवा मक्खन के साथ श्वेत वर्ण के घोड़े के खुर को अन्तर्धूम विधि से भस्म कर मसी बनाकर लेप करने से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट हो जाता है। तथा हाथी के दाँत को अन्तर्धूम विधि से भस्म कर मसी बनाकर रसवत और बकरी के दूध में मिलाकर लेप करने से हाथ के तल में भी रोम उत्पन्न हो जाते हैं अर्थात् इस लेप से इन्द्रलुप्त रोग नष्ट होकर उस स्थान पर पीछे निश्चय जम जाते हैं। इन्द्रलुप्त रोग का यह महौषधि है ॥ १-२ ॥

तिक्तपटोलीपत्रस्वरसैर्घृष्टा शमं याति । चिरकालजाऽपि निरुजा नियतं दिवसत्रयेणैव ॥ ३ ॥

कडुवा पटोल पत्र के स्वरस को इन्द्रलुप्त पर मर्दन करने से पुराना भी पीड़ा रहित इन्द्रलुप्त रोग तीन दिन में अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

गोक्षुरतिलपुष्पाणि तुल्ये च मधुसर्पिषी । शिरः प्रलेपितं तेन केशैः समुपचीयते ॥ ४ ॥

गोखरू, तिल के फूल मधु और घृत प्रत्येक सममाग पीसकर शिर पर लेप करने से इन्द्रलुप्त नष्ट होकर केश जम जाते हैं ॥ ४ ॥

जातीकरञ्जवरुणकरवीराग्निपाचितम्। तैलमभ्यञ्जनाद्धन्यादिन्द्रलुप्तं न संशयः॥ ५॥

जात्यादि तैल—चमेली के पत्ते, करञ्ज के पत्ते, वरुणा की छाल, कनेर और चित्रकमूल प्रत्येक सममाग का विधिपूर्वक कल्क बनाकर कल्क के चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से इन्द्रलुप्त रोग अवश्य नष्ट हो जाता है॥ ५॥

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गली विषम्। अजामूत्रं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी॥
सिद्धार्थकस्तीक्ष्णगन्धा सम्यगेभिर्विपाचितम्। तैलं भवति नियमात्खालित्यव्याधिनाशनम्॥

स्नुही दुग्धादि तैल—थूहर का दूध, मदार का दूध, भांगरा, करिआरी विष, बत्सनाभ विष, बकरी का मूत्र, गाय का मूत्र, रत्तियाँ, माहरि, सफेद सरसों और बच प्रत्येक सममाग का विधिपूर्वक कल्क बनाकर कल्क के चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना जल मिलाकर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर नित्य नियमपूर्वक लगाने से खालित्य (इन्द्रलुप्त) रोग अवश्य नष्ट हो जाता है॥ ६-७॥

दारुणस्य चिकित्सा—

कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः। प्रियालबीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः॥ १॥
काञ्जिकैस्तु त्रिसप्ताहं लेपो दारुणकापहः। आम्रबीजस्य चूर्णं तु शिवाचूर्णं समं द्वयम्॥
दुग्धपिष्टप्रलेपोऽयं दारुणं हन्ति दारुणम्॥ २॥

दारुण चिकित्सा—दारुणरोग में प्रियाल के बीज (चिरौंजी), मुलहठी, कूठ, सेंधानमक तथा कांजी प्रत्येक सममाग पीसकर मधु मिलाकर शिर में लेप करने से दारुण रोग तीन सप्ताह (२१ दिन) में नष्ट हो जाता है तथा आम के गुठली और हरड़ के बीजों का चूर्ण समान लेकर दूध के साथ पीस कर लेप करने से कठिन से कठिन दारुणरोग नष्ट हो जाता है॥ १-२॥

भृङ्गराजतैलम्—

भृङ्गराजरसेनैव लोहकिट्टं फलत्रिकम्। सारिवां च पचेत्कल्कैस्तैलं दारुणनाशनम्॥
अकालपलितं कण्डूमिन्द्रलुप्तं च नाशयेत्॥ १॥

भृङ्गराज तैल—भांगरे का रस ४ सेर, तिल का तेल १ सेर और लोहे की मैल, आँवला, हरड़, बहेड़ा और सारिवा प्रत्येक समान भाग का कल्क १ पाव लेकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर इस तैल की मालिश से दारुण रोग अकाल में हुआ पलित (असल में केशों का पकना) कण्डू और इन्द्रलुप्त नष्ट होते हैं॥ १॥

गुञ्जातैलम्—

गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन च। कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम्॥ १॥

गुञ्जा तैल—गुञ्जा फल (रत्तियाँ) का विधिवत् बना कल्क एक पाव, तिल का तेल एक सेर और भांगरे का स्वरस चार सेर मिलाकर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मालिश करने से कण्डू दारुणरोग, कुष्ठ तथा शिर की सभी व्याधियां नष्ट होती हैं॥ १॥

दुग्धेन खाखस बीज प्रलेपाद्दारुणं हरेत्। कण्टकारीफलरसैस्तुल्यं तैलं विपाचयेत्॥
जपोपुष्परसैर्वाऽपि तल्लेपो दारुणप्रणुत्॥ २॥

खसखस के बीजों को दूध के साथ पीसकर लेप करने से तथा छोटी कटेरी के फलों के स्वरस के साथ अथवा जपापुष्प (ओड़उल) के स्वरस के साथ विधिपूर्वक तिल तेल सिद्धकर लेप करने से दारुणरोग नष्ट होता है॥ २॥

अरुंषिकायाश्चिकित्सा—

नीलोत्पलस्य किञ्जल्को धात्रीफलसमन्वितः। यष्टीमधुकसंयुक्तश्च लेपाद्धन्यादरुंषिकाम्॥ १॥

अरुंषिका चिकित्सा—नील कमल केसर, आँवला और जेठीमधु तीनों समान भाग पीस कर लेप करने से अरुंषिका रोग नष्ट होता है॥ १॥

त्रिफलाद्यतैलम्—

त्रिफलाया रजो यष्टी मार्कवोत्पलसारिवा। सैन्धवं पक्वमेतत्तु तैलं हन्यादरुंषिकाम्॥ १॥

त्रिफलादि तैल—आँवला, हरड़ बहेड़ा, जेठीमधु, भांगरा, नीलकमल सारिवा लता और

सेंधानमक प्रत्येक समान भाग के कल्क का चौगुना मूर्च्छित तिल तैल और तैल से चौगुना पाकार्थ जल देकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मालिश करने से अरुंषिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अरुंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते शिराव्यधेनाथ जलौकया वा ।
निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो देयश्च वर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ २ ॥

अरुंषिका रोग में शिरावेध अथवा जोंक से रक्तमोक्षण कराकर नीम के पत्तों के क्वाथ से शिर का सिंचन और गोबर के रस में सेंधानमक मिलाकर लेप करना चाहिये। इससे अरुंषिका रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च । मूत्रपिष्टं प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंषिकाम् ॥ ३ ॥

पुरानी पिण्याक ( तिल की खरी ) और मुर्गे की विष्ठा को गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से अरुंषिका शीघ्र नष्ट होती है ॥ ३ ॥

हरिद्राद्य तैलम्—

हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः । पक्वतैलमरुंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ १ ॥

हरिद्राद्य तैल—हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, आँवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल और रक्तचन्दन प्रत्येक समभाग कल्क का चौगुना तिल का तैल और तैल के चौगुना पाकार्थ जल देकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से अरुंषिका रोग नष्ट होता है ) ॥ १ ॥

खदिरारिष्टजम्बूनां त्वग्भिर्वा मूत्रसंयुतैः कुटजत्वक् सैन्धवं वा लेपाद्धन्यादरुंषिकाम् ॥ २ ॥

खैर की, नीम, और जामुन की छाल तीनों समान भाग गोमूत्र के साथ पीस कर लेप करने से अथवा कुटज ( कोरैया ) की छाल और सेंधानमक पीस कर लेप करने से अरुंषिका रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

पलितस्य चिकित्सा—

अयोरजो भृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका । स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात्पलितं जयेत् ॥ १ ॥

पलित चिकित्सा—लोहचूर्ण, भांगरा, हरड़, बहेड़ा, आँवला और काली मिट्टी प्रत्येक समान भाग को पीस कर गन्ने के रस में मिलाकर एक मास तक रखा रहने दे पश्चात् उस रस का लेप करने से पलित रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

धात्रीफलद्वयं पथ्ये द्वे तथैकं बिभीतकम् । पञ्चाम्रमज्जो लोहस्य कर्षमेकं च प्रदीयते ॥ २ ॥
पिष्ट्वा लोहमये भाण्डे स्थापयेदुषितं निशि । लेपोऽयं हन्ति नचिरादकालपलितं महत् ॥३॥

आँवला दो नग, हरड़ दो नग बहेड़ा एक नग, आम की गुठली की गिरी ५ कर्ष और लोहे का चूर्ण एक कर्ष लेकर भलीभाँति पीसकर लोहे के पात्र में रखकर उसमें जल डाल कर रात भर पड़ा रहने दे प्रातः केशों पर मलने से शीघ्र ही महान् अकाल पलितरोग नष्ट हो जाता है ॥२-३॥

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्यं विधेयं विधिना यथावत् ।
मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य चिरात्मभूतं पलितं निहन्ति ॥ ४ ॥

शुद्ध नीम के तैल का नस्य लेने से तथा पथ्य में गोदुग्ध ही केवल भोजन करने से एक मास में पुराना से पुराना पलितरोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

काश्मर्यं मूलमाद्यौ सहचरकुसुमं केतकस्यापि मूलं
लौहं चूर्णं सभृङ्गं त्रिफलजलयुतं तैलमेभिः पचेयुः ।
कृत्वा लोहस्य भाण्डे क्षितितलनिहितं स्थापयेन्मासमेकं
केशाः काशप्रकाशा अपि मधुपनिभा अस्य योगाद्भवन्ति ॥ ५ ॥

काश्मर्यादि तैल—गम्भार की जड़, ऋतु के आदि ( बसन्त ) में ही निकले हुए आम के फूल ( मञ्जरी ) केवड़े की जड़, लोह का चूर्ण और भांगरा प्रत्येक समभाग का विधिपूर्वक बना कल्क जितना हो उससे चौगुना तिल-तैल और तैल से चौगुना पाकार्थ त्रिफला का जल ( क्वाथ या स्वरस ) मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर लोहे के पात्र में भर कर भूमि में गाड़ दे और एक मास के पश्चात् निकाल कर केशों पर लगाने से काश के पुष्प के समान भी श्वेत केश भौंरे के समान काले हो जाते हैं ॥ ५ ॥

त्रिफला नीलिकापत्रं भृङ्गराजो ह्ययोरजः। अविमूत्रेण सम्पिष्टं लेपात्कृष्णाकरं परम् ॥ ६ ॥

हरड़, बहेड़ा, आँवला, नील के पत्ते, भांगरा और लोहचूर्ण प्रत्येक समभाग लेकर भेड़ के मूत्र के साथ पीस कर लेप करने से केश काले हो जाते हैं ॥ ६ ॥

यौवनपिटिका-न्यच्छमुखव्यङ्गनीलिकाचिकित्सामाह—

यौवनपिटिकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः। शिरोवेधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा ॥ १ ॥

यौवन पिटिकादि चिकित्सा—यौवन पिटिका, न्यच्छ, नीलिका, व्यङ्ग और शर्करा रोग शिरा वेध, प्रलेप और अभ्यङ्ग (तैल मर्दन) से नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

जातीफलं चन्दनं च मरिचं सह पेषितम्। मुखलेपेन हन्त्याशु पिटिकां यौवनोद्भवाम् ॥२॥

जायफर, लालचन्दन और काली मिरीच को घिस कर मुख पर लेप करने से यौवनपीडिका शीघ्र नष्ट हो जाती हैं ॥ २ ॥

लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटिकापहः। तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ॥ ३ ॥

लोध, धनियाँ और वच तीनों समभाग पीस कर अथवा गोरोचन और मरिच दोनों समान भाग पीस कर लेप करने से यौवन पिडिका नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम्। गव्येन चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका ॥ ४ ॥

कण्टकं शाल्मलीयं च क्षीरपिष्टं प्रलेपयेत्। मुखे तस्यापि पिटिकाः सद्यश्च यान्त्यसंशयम् ॥

श्वेत सरसों, वच लोध और सेंधानमक प्रत्येक समभाग पीस कर अथवा गाय के दूध के साथ अर्जुन की छाल को पीसकर अथवा मजीठ को मधु के साथ पीसकर अथवा सेमल के काँटों को दूध के साथ पीस कर लेप करने से मुख पर की पिडिका नष्ट हो जाती है ॥ ४-५ ॥

त्रिभुवनविजयापत्रं मूलं स्थविरस्य शिंशपा चैभिः।
उद्वर्तनं विरचितं न्यच्छव्यङ्गापहं सिद्धम् ॥ ६ ॥

भांग के पत्ते, विधारा की जड़ और शीशम की जड़ को पीसकर उबटन करने से न्यच्छ और व्यंग रोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

वटाङ्कुरा मसूराश्च प्रलेपाद्व्यङ्गनाशनाः। व्यङ्गे मञ्जिष्ठया लेपः प्रशस्तो मधुयुक्तया ॥ ७ ॥

वटवृक्ष के अङ्कुर (बरोह) और मसूर को पीस कर लेप करने से तथा मजीठ को पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से व्यंग रोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वृषमाक्षिकैः। लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी ॥ ८ ॥

व्यङ्ग रोग में अर्जुन वृक्ष की छाल, मजीठ और अरूसा प्रत्येक समान भाग पीस कर मधु मिलाकर लेप करने से अथवा श्वेत वर्ण के घोड़े के खुर को अन्तधूम विधि से भस्म बना मक्खन मिलाकर लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

व्यङ्गानां लेपनं शस्तं शशस्य रुधिरेण वा। वरुणस्य कषायेण मुखं प्रक्षाल्य लेपयेत् ॥ ९ ॥

वटस्य पाण्डुपत्राणि मालती रक्तचन्दनम्। कुष्ठं कालीयकं लोध्रमेभिर्लेपं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

यौवनपिटिकानां तु व्यङ्गानां च विनाशनम्। मातुलुङ्गजटा सर्पिः शिला गोशकृतो रसः ॥

मुखकान्तिकरो लेपः पिटिकाव्यङ्गकालजित्। जातीफलस्य लेपस्तु हरेद्व्यङ्गं च नीलिकाम् ॥

शशक के रक्त का लेप करने से व्यङ्ग रोग नष्ट होता है और वरुणा के क्वाथ से मुख धोकर वट के पीले पत्ते, चमेली के पत्ते, रक्त चन्दन, कूट, अगर और लोध को पीस कर लेप करने से यौवन पिटिका और व्यङ्ग रोग नष्ट होते हैं तथा बिजौरे नीबू की जड़, गोघृत मैनशिल और गोबर के रस को पीस कर मुख पर लेप करने से मुख की कान्ति बढ़ती है और पिडिका तथा व्यङ्ग का नाश होता है और जायफर को पीसकर लेप करने से भी व्यङ्ग और नीलिका नष्ट होती है ॥

अर्कक्षीरहरिद्राभ्यां मर्दयित्वा प्रलेपयेत्। मुखकार्ष्ण्यं शमं याति चिरकालोद्भवं ध्रुवम् ॥१३॥

मदार के दूध और हलदी को मर्दन (पीस) कर (अथवा दूध में हलदी घिस कर) लेप करने से पुराना भी मुखकार्ष्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

मसूरैः क्षीरसम्पिष्टैर्लिप्तमास्यं घृतान्वितैः। सप्तरात्राद्भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलोपमम् ॥ १४ ॥

मसूर को दूध के साथ पीस कर घृत मिलाकर लेप करने से सात दिन में ही मुख कमल पत्र के समान स्वच्छ हो जाता है ॥ १४ ॥

कुङ्कुमाद्य तैलम्—

कुङ्कुमं चन्दनं लोध्रं पतङ्गं रक्तचन्दनम् । मालीयकमुशीरं च मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ॥ १ ॥
पत्रकं पद्मकं पद्मं कुष्ठं गोरोचनं निशा । लाक्षा दारुहरिद्रा च गैरिकं नागकेशरम् ॥ २ ॥
पलाशकुसुमं चापि प्रियङ्गुश्च वटाङ्कुरा । मालती च मधूच्छिष्टं सर्षपा सुरभिर्वचा ॥ ३ ॥
चतुर्गुणपय पिष्टैरेतैरक्षमितैः पृथक् । पचेन्मन्दाग्निना वैद्यस्तैलं प्रस्थद्वयोन्मितम् ॥ ४ ॥
वदनाभ्यञ्जनादेतद्व्यङ्गं नीलिकया सह । तिलकं माषकं न्यच्छं नाशयेन्मुखदूषिकाम् ॥५॥
पद्मिनीकण्टकं चाऽपि हरेज्जतुमणिं तथा । विदध्याद्वदनं पूर्णचन्द्रमण्डलसुन्दरम् ॥ ६ ॥

कुङ्कुमादि तैल—केशर, श्वेतचन्दन, लोध, पतङ्ग ( पतङ्ग काठ ), रक्तचन्दन, मखर, खस मजीठ जेठीमधु, तेजपात, पद्मकाठ, कमल, कूट, गोरोचन, हल्दी, लाख, दारुहल्दी, गेरु नागकेसर, पलाश पुष्प, फूल प्रियङ्गु, वट के अङ्कुर ( बरोह ), मालती के फूल, मोम, श्वेत सरसों शिलाजीत और वच प्रत्येक एक २ कर्ष चौगुने दूध में पीसकर कल्क बनाकर उसमें दो प्रस्थ तिल का तेल और ८ प्रस्थ पाकार्थ जल देकर तेल पाक की विधि से मन्द २ अग्नि पर तेल सिद्धकर इस तेल को मुख पर मर्दन करने से व्यङ्ग, नीलिका, तिल मासा, न्यच्छ, मुखदूषिका, पद्मिनी कण्टक, जतुमणि आदि सभी रोग नष्ट होते हैं और मुख पूर्णचन्द्र-मण्डल के समान स्वच्छ एवं सुन्दर हो जाता है ॥ १-६ ॥

मञ्जिष्ठाद्य तैलं योगतरङ्गिण्या —

मञ्जिष्ठ मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम् । कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥ १ ॥
आजं पयस्तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । नीलिकापिडिकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ २ ॥
मुखं प्रसादोपचितं वलीपलितवर्जितम् । सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसन्निभम् ॥ ३ ॥

मञ्जिष्ठादि तैल—मजीठ, मुलहठी लाख ( लाही ) बिजौरे नीबू की जड़ और जेठीमधु प्रत्येक एक २ कर्ष का कल्क तथा तिल का तेल एक कुडव ( आधासानी ) और बकरी का दूध दो कुडव मिलाकर तैल पाक की विधि से मन्द २ अग्नि पर तैल सिद्ध कर मर्दन करने से नीलिका, पिडिका ( यौवन पीडिका ) और व्यङ्ग आदि रोग नष्ट होते हैं और मुख प्रसन्न तथा उपचित रहता है अर्थात् यह तेल मुख को पिचकने नहीं देता वलीपलित रोग से बचाता है । केवल सात दिन के प्रयोग से मुख सुवर्ण के समान सुन्दर हो जाता है ॥ १-३ ॥

पद्मिनीकण्टक चिकित्सा—

पद्मिनीकण्टके रोगे छर्दयेन्निम्बवारिणा । तेनैव सिद्धं सक्षौद्रं सर्पिः पातुं प्रदापयेत् ॥ १ ॥

पद्मिनी कण्टक की चिकित्सा—पद्मिनी कण्टक रोग में नीम के क्वाथ को पिला कर वमन कराना चाहिये और नीम के कल्क से विधिपूर्वक सिद्ध किया घृत मधु मिलाकर पान करने को देना चाहिये ॥ १ ॥

निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम् । चतुर्गुणेन निम्बोत्थपत्रक्वाथेन गोघृतम् ॥ २ ॥
पचेत्ततस्तु निम्बस्य कृतमालस्य पत्रयोः । कल्कैर्मूर्च्छ पचेत्सिद्धं तत्पिबेत्पलसम्मितम् ॥
पद्मिनीकण्टकाद्रोगान्मुक्तो भवति नान्यथा ॥ ३ ॥

नीम और अमलतास के पत्तों को पीस कर कल्क बनाकर बार २ उबटन करना चाहिये और नीम के पत्तों का क्वाथ चार भाग, मूर्च्छित गोघृत एक भाग और नीम तथा अमलतास के पत्तों का समान मिलित प्रस्तुत कल्क घृत से चतुर्थांश लेकर घृत पाक विधि से मन्द २ अग्नि पर घृत सिद्ध कर एक पल ( चार कर्ष ) के प्रमाण की मात्रा से पान करना चाहिये इससे पद्मिनी कण्टक रोग अवश्य नष्ट हो जाता है । यह अनुभूत प्रयोग है ॥ २-३ ॥

चिप्पकादिमाषजतुमणीनां चिकित्सा—

चर्मकीलं जतुमणिं माषकांस्तिलकालकान् । उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥ १ ॥

चर्मकीलादि-चिकित्सा—चर्मकील, जतुमणि, माष और तिलकालक आदि रोगों को शस्त्र से उखाड़ कर क्षार तथा अग्नि से जला देना चाहिये ॥ १ ॥

अहिपूतनिकाचिकित्सामाह—

स्वेदोपनाहौ परिवर्तिकायां कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात् ।
प्रदेशयत्त्वमं शनैः प्रविष्टे मांसः सुस्निग्धैरुपनाहयेत्तम् ॥ १ ॥

परिवर्तिका-चिकित्सा—परिवर्तिका रोग में पहले स्वेद देवे पश्चात् उपनाह करे फिर घृत लगाकर धीरे धीरे चर्म को भीतर प्रवेश कर उड़द की पिट्ठी को गरम कर उससे उपनाह करे ॥ १ ॥

भावप्रकाशात्—

परिवर्तिं घृताभ्यक्तां सुस्विन्नामुपनाहयेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा वातघ्नैः शाल्वणादिभिः ॥१॥
ततोऽभ्यज्य शनैश्चर्म पीडयेत्पीडयेन्मणिम् । प्रविष्टे चर्मणि मणौ स्वेदयेदुपनाहयेत् ॥
दद्याद्वातहरान्वस्तीन्स्निग्धं चान्नादि भोजयेत् ॥ २ ॥

परिवर्तिका रोग में घृत स्वेदन कर वातघ्न शाल्वण आदि स्वेदों से तीन अथवा पांच रात पर्यन्त उपनाह करे पश्चात् घृत लगाकर धीरे २ मणि (लिंगमुण्ड) को दबाकर चर्म को भीतर प्रविष्ट करावे जब चर्म प्रविष्ट हो जाय तब चर्म और मणि को स्वेद तथा उपनाह करे और वात नाशक बस्ति का प्रयोग करे तथा स्निग्ध अन्न भोजन करावे। इससे परिवर्तिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ १-२ ॥

अवपाटिकाचिकित्सा—स्नेहस्वेदैरिमां वैद्यश्चिकित्सेदवपाटिकाम् ॥ १ ॥

अवपाटिका-चिकित्सा—वैद्य, स्नेहन और स्वेदन क्रिया करके अवपाटिका की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

निरुद्धप्रकशस्य चिकित्सा—

निरुद्धप्रकशे नाडीं लौहीमुभयतोमुखीम् । दारवीं वा जतुकृतां घृताक्तां सम्प्रवेशयेत् ॥ १ ॥
परिषिञ्चेद्वसां मज्जां शिशुमारवराहयोः । चक्रतैलं तथा योज्यं वातघ्नद्रव्यसंयुतम् ॥ २ ॥
त्र्यहात्स्थूलतरां सम्यङ् नाडीं गर्भे प्रवेशयेत् । स्रोतो विवर्धयेदेवं स्निग्धमन्नं च भोजयेत् ॥
भित्त्वा वा सीवनीं मुक्त्वा सद्यः क्षतवदाचरेत् ॥ ३ ॥

निरुद्धप्रकश-चिकित्सा—निरुद्धप्रकश रोग में दोनों ओर छिद्रवाली लोहे की काठ की अथवा लाख की बनी सलाई को घृत से लिप्त कर मूत्र स्थान में प्रवेश करावे और शिशुमार (नक्र) अथवा वाराह की मज्जा अथवा वसा से सिंचन करता रहे अथवा वातघ्न द्रव्यों से युक्त करके चक्र तैल का प्रयोग करे। इस प्रकार तीन दिन करने पर चौथे दिन उससे मोटी सलाई को इसी भाँति प्रविष्ट करावे। इस प्रकार धीरे २ मूत्रस्रोत को बढ़ा देवे और स्निग्ध अन्न भोजन करावे अथवा सीवनी को छोड़कर शस्त्र से भेदन करे और सद्योव्रण के समान उसकी चिकित्सा करे ॥

सन्निरुद्धगुदस्य चिकित्सा—

सन्निरुद्धगुदे तैलैः सेको वातहरैर्हितः । तथा निरुद्धप्रकशक्रिया या कथिता हिता ॥ १ ॥

सन्निरुद्ध गुद चिकित्सा—सन्निरुद्ध गुद रोग में वातनाशक तैलों से सिंचन और निरुद्ध प्रकशरोग की ही चिकित्सा हितकर है ॥ १ ॥

अहिपूतनचिकित्सा—

तत्र संशोधनैः पूर्वं धात्रीस्तन्यं विशोधयेत् । त्रिफलाखदिरक्वाथैर्व्रणानां क्षालनं हितम् ॥१॥

अहिपूतन चिकित्सा—इस रोग में पहले संशोधन करने वाली औषधों के द्वारा धात्री के दूध को शुद्ध करना चाहिये। तदुपरान्त हरड़, बहेड़ा, आँवला और खैर प्रत्येक समभाग का क्वाथ बना कर उससे व्रण को धोना चाहिये ॥ १ ॥

शङ्खसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपः कार्योऽहिपूतने । पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ॥
पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ २ ॥

शङ्ख, सौवीराञ्जन और जेठी मधु तीनों समान पीस कर अहिपूतन में लेप करना चाहिये और पटोल पत्र, हरड़, बहेड़ा, आँवला और रसवत् प्रत्येक समभाग का कल्क कर उसमें चौगुना गोघृत और घृत से चौगुना जल मिलाकर विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर पान करना चाहिये। इससे कष्टसाध्य भी अहिपूतना रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

वृषणकच्छूचिकित्सा—सर्जाम्रकुष्ठसैन्धवसितसिद्धार्थैः प्रकल्पितो योगः ।
उद्वर्तनेन नियतं शमयति वृषणस्य कण्डूतिम् ॥ १ ॥

वृषण कच्छू चिकित्सा—राल कूट, सेंधानमक और श्वेत सरसों प्रत्येक समभाग पीस कर उबटन करने से वृषण कच्छू अर्थात् अण्डकोषों के कण्डुरोग अवश्य नष्ट होता है ॥ १ ॥

भिषग्वृषणकच्छू तु चिकित्सेत्पामरोगवत्। अहिपूतननिर्दिष्टक्रिययाऽपि च तां हरेत्॥ २॥

वृषणकच्छू रोग में पामा और अहिपूतन की चिकित्सा के समान ही चिकित्सा करनी चाहिये॥

कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः। अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं मुष्ककण्ड्वहिपूतने॥ ३॥

कासीस, गोरोचन, तूतिया, हरताल और रसवत प्रत्येक सममाग कांजी के साथ पीस कर लेप करने से वृषण कण्डू (वृषण कच्छू) और अहिपूतन दोनों का नाश होता है॥ ३॥

गुदभ्रंशे—

गुदभ्रंशे गुदं स्विन्नं स्नेहेनाक्त प्रवेशयेत्। प्रविष्टं रोधयेद्यानाद्गव्यसच्छिद्रचर्मणा॥ १॥

गुदभ्रंश चिकित्सा—गुदभ्रंश रोग में गुदा को स्वेदन करके घृत से चुपड़ कर अन्दर प्रविष्ट कर दे और गौ के चमड़े में छिद्र करके गुदा पर रखकर बाँध दे॥ १॥

पद्मिन्याः कोमलं पत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः॥२॥

कमलिनी के कोमल पत्तों को चूर्ण कर उसमें शर्करा मिलाकर जो मनुष्य खाता है उसकी गुदा निश्चय ही बाहर नहीं निकलती है॥ २॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपयेत्। स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम्॥ ३॥

चूहे की वसा को गुदभ्रंश पर लेप करने से अथवा चूहे के मांस को तपाकर गुदा पर सेक करने से गुदभ्रंश नष्ट होता है॥ ३॥

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम्। घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम्॥ ४॥

चाङ्गेरी बेर, दही, कांजी, सोंठ और यवाखार प्रत्येक समान भाग का कल्क बना कर उसके चौगुना पाकार्थ जल मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से गुदभ्रंश की पीड़ा नष्ट होती है॥ ४॥

वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम्। तक्रेण शीलयेत्पायुर्भ्रंशार्तोऽनलदीपनम्॥ ५॥

वृक्षाम्ल (कोकम), चित्रकमूल चाङ्गेरी (अम्लोनी), बेल, पुरइनपाढ़ी और यवाखार प्रत्येक सममाग लेकर चूर्ण कर तक्र के अनुपान से सेवन करने पर अग्नि दीप्त होती है और गुदभ्रंश नष्ट होता है॥ ५॥

मूषक तैलम्—

मूषकान्दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम्। तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं पयोन्वितम्॥ १॥

अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति। विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभगन्दराः॥ २॥

मूषक तैल—चूहे का मांस एक भाग, दशमूल की मिलित औषधियाँ एक भाग लेकर विधिवत् कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना तिल का तेल और तेल के चौगुना इन्हीं कल्क द्रव्यों का क्वाथ लेकर सबको मिलाकर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर मर्दन करने से गुदभ्रंश और गुदशूल और भगन्दर रोग भी नष्ट होता है॥ १-२॥

गुदं च गव्यपयसा वेशयेद्विदाह्निशः। दुष्प्रयशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः॥

गुदा की नाड़ी जो बाहर निकल गयी हो उसको गाय के दूध से तरल कर निःशङ्क होकर प्रविष्ट करा दे इस योग से कठिन भी गुदभ्रंश शीघ्र ही अन्दर प्रविष्ट हो जाता है। इस रोग में विशेष कर रसवत का पान और लेप हितकर होता है॥ १॥

शूकरदंष्ट्रस्य चिकित्सा—

भृङ्गराजकमूलस्य रजन्या सहितस्य च। चूर्णं तु सहसा लेपाद्वाराहद्विजनाशनम्॥ १॥

शूकर दंष्ट चिकित्सा—भांगरे की जड़, हल्दी दोनों के सममाग का चूर्णकर लेप लगाने से सहसा (हठात्) शूकर दंष्ट रोग नष्ट होता है॥ १॥

राजीवमूलकल्कः पीतो गव्येन सर्पिषा प्रातः। शमयति शूकरदंष्ट्रं दंष्ट्रोद्भूतं ज्वरं घोरम्॥

कमल की जड़ का कल्क बनाकर गौ घृत के अनुपान से प्रातःकाल पान करने से शूकर दंष्ट्र रोग तथा इससे उत्पन्न भयङ्कर ज्वर भी शमन होता है॥ २॥

रजनी मार्कवं मूलं पिष्टं शीतेन वारिणा। तल्लेपाद्धन्ति वीसर्पं वाराहदशनाह्वयम्॥ ३॥

हल्दी और भांगरे की जड़ को समान लेकर शीतल जल के साथ पीस कर लेप करने से वीसर्प रोग और शूकर दंष्ट रोग नष्ट होता है॥ ३॥

पथ्यापथ्यम्—

क्षुद्ररोगेषु सर्वेषु नानारोगानुकारिषु। दोषान्दूष्यानवस्थां च निरीक्ष्य मतिमान्भिषक् ॥१॥
तस्य तस्य च रोगस्य पथ्यापथ्यानि सर्वदा। यथादोषं यथादूष्यं यथावस्थं प्रकल्पयेत् ॥२॥

पथ्यापथ्य—सभी प्रकार के क्षुद्र रोगों में जो प्राय अनेक रोगों के पीछे हो जाया करते हैं उनमें बुद्धिमान् वैद्य दोष, दूष्य, रोग तथा रोगी की अवस्था देखकर रोगों के अनुसार पथ्यापथ्य का विचार करे ॥ १-२ ॥

इति क्षुद्ररोगप्रकरण समाप्तम्

---

## अथ मुखरोगाणां निदानान्याह।

तत्र मुखस्य स्वरूपमाह—

ओष्ठौ च दन्तमूलानि दन्ता जिह्वा च तालु च। गलो गलादि सकलं सप्ताङ्गं मुखमुच्यते ॥

मुख का स्वरूप—दोनों ओठ, दाँतों के मूल ( मसूड़े जबड़े ) दाँत, जीभ, तालु और गला ये सातों अंग मिलकर मुख कहे जाते हैं ॥ १ ॥

आनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात्। मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोत्तराः ॥२॥

मुख रोग की सम्प्राप्ति—आनूप देश के जीवों का मांस, दूध, दही तथा उड़द आदि के अधिक सेवन करने से कफादि दोष कुपित होकर मुख में रोग उत्पन्न कर देते हैं ॥ २ ॥

मुखरोगाणां संख्यामाह—

स्युरष्टावोष्ठयोर्दन्तमूलेषु दश षट् तथा। दन्तेष्वष्टौ च जिह्वायां पञ्च स्युर्नव तालुनि ॥ ३ ॥
कण्ठे त्वष्टादश प्रोक्तास्त्रय सर्वसराः स्मृताः। एवं मुखामयाः सर्वे सप्तषष्टिर्मता बुधैः ॥ ४ ॥

मुख रोग की संख्या—ओठों में आठ दन्तमूल में सोलह, दाँतों में आठ, जिह्वा में पाँच, तालु में नौ, कण्ठ में अठारह और सम्पूर्ण मुख में विचरने वाले तीन, इस प्रकार मुख के सब रोग मिलकर ६७ होते हैं ॥ ३-४ ॥

तत्रौष्ठरोगास्तेषां निदानपूर्विकां संख्या चाऽऽह—

पृथग्दोषैः समस्तैश्च रक्तजो मांसजस्तथा। मेदोजश्चाभिघातोत्थ एवमष्टौष्ठजा गदाः ॥ १ ॥

ओष्ठ रोग—ओठ पर होने वाले रोग आठ प्रकार के होते हैं वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, मांसज, मेदोज और अभिघातज ॥ १ ॥

तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

कर्कशौ परुषौ स्तब्धौ कृष्णौ तीव्ररुजान्वितौ। दाल्येते परिपाट्येते ह्योष्ठौ मारुतकोपतः ॥

वातिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ कर्कश ( शाक पत्र के समान खर स्पर्श ), परुष ( कठिन ), स्तब्ध ( निश्चल ) काला, तीव्र पीड़ा युक्त और फट जावे, चिर जावे उसे वायु के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ २ ॥

पैत्तिकमाह—

चीयेते पिटिकाभिस्तु सरुजाभिः समन्ततः। सदाहपाकपिटिकौ पीताभासौ च पित्ततः ॥३॥

पैत्तिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठ पीड़िकाओं से युक्त हो जावे और उसमें पीड़ा तथा दाह हो, पाक हो और पिड़िकाओं का वर्ण पीत हो उसे पित्त के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ३ ॥

श्लैष्मिकमाह—

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिटिकाभिरवेदनौ। कण्डूमन्तौ कफाच्छूनौ शीतलौ पिच्छिलौ गुरू ॥

कफज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठ पर ओठ के वर्ण के समान वर्ण की पिड़िकायें उत्पन्न हो जावें और उनमें वेदना कम हो, कण्डू हो पिड़िकाओं का वर्ण श्वेत हो, शीतलता हो, पिच्छिलता हो और गुरुता हो उसे कफ के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ४ ॥

सान्निपातिकमाह—

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्वेतौ तथैव च। सन्निपातेन विज्ञेयावनेकपिटिकाचितौ ॥ ५ ॥

सान्निपातिक ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में कभी कृष्ण, कभी पीत और कभी श्वेत वर्ण की ओठ हो जावें और अनेक प्रकार की पिड़िकाओं से युक्त तथा अनेक वर्ण की पिड़िकायें हो जावें उसे सन्निपात के कोप का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ५ ॥

रक्तजमाह—

खर्जूरफलवर्णाभिः पिटिकाभिर्निपीडितौ । रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवतः शोणितप्रभौ ॥ ६ ॥

रक्तज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठों पर खजूर फल के समान वर्ण की पिड़िकायें हों और उससे पीड़ित होने से ओठ का वर्ण रक्त के समान हो जावे तथा उससे रक्त का स्राव हो, उसे रक्त के कोप का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ६ ॥

मांसजमाह—

मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिण्डवदुद्गतौ । जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतो मुखात् ॥ ७ ॥

मांसज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओष्ठ गुरु, स्थूल, मांस के पिण्ड के समान उभरे हुए हों और मुख के छिद्र के दोनों ओर ( सृक्कणी प्रदेश में ) कृमि उत्पन्न हो जावें उसे मांस के कोप का ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ७ ॥

मेदोजमाह—

सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू । स्वच्छं स्फटिकसंकाशमास्रावं स्रवतो भृशम् ॥८॥

मेदोज ओष्ठ रोग—जिस ओष्ठ रोग में ओठ का वर्ण घृत के मण्ड के समान हो, कण्डु युक्त हो, मृदु हो और उससे स्वच्छ स्फटिक के समान अधिक स्राव होता हो उसे मेद के कोप से उत्पन्न ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अभिघातजमाह—

क्षताभौ विदीर्येते पीड्येते चाभिघाततः । ग्रथितौ च समाख्यातावोष्ठौ कण्डूसमन्वितौ ॥

अभिघातज ओष्ठरोग—आघात आदि से ओठ जब क्षत होने के आकार के अर्थात् रक्तवर्ण के हो जाते हैं, फट जाते हैं, पीड़ित हो जाते हैं, ग्रथियुक्त हो जाते हैं और उसमें कण्डु होने लगते हैं तब उसे अभिघातज ओष्ठ रोग जानना चाहिये ॥ ९ ॥

तन्त्रान्तरे—

क्षतावभिहतौ चापि रक्ताभावोष्ठौ सवेदनौ । भवतः सपरिस्रावौ रक्तपित्तप्रदूषितौ ॥ १० ॥

क्षत अथवा आघात होने से ओष्ठ रक्तवर्ण के हो जाते हैं तथा पीड़ा और स्राव होता है, इसमें रक्त और पित्त दूषित होते हैं । भोज के मत में अभिघातज ओष्ठरोग के ये लक्षण हैं ॥१०॥

## अथ दन्तवेष्टरोगाः ।

तत्र दन्तवेष्टरोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

शीतादो गदितः पूर्वं दन्तपुप्पुटकस्ततः । दन्तवेष्टः सौषिरश्च महासौषिर एव च ॥ १ ॥

ततः परिदरः प्रोक्तस्ततस्तूपकुशः स्मृतः । वैदर्भश्च ततः प्रोक्तः खलिवर्धन एव च ॥ २ ॥

अधिमांसकनामा च दन्तनाड्यश्च पञ्च च । दन्तविद्रधिरप्येवं दन्तवेष्टेषु षोडश ॥ ३ ॥

दन्तवेष्ट रोगों के नाम—शीताद, दन्तपुप्पुट, दन्तवेष्ट, सौषिर, महासौषिर, परिदर, उपकुश, वैदर्भ, खलिवर्धन, अधिमांसक, पांच दाँत की नाड़ियां और दन्तविद्रधि इन नामों से दन्तवेष्टरोग ( दाँत के मसूड़ों के रोग ) १६ प्रकार के होते हैं इनमें पांच तो दन्तनाड़ी ही होती हैं ॥ १-३ ॥

तत्र शीतादस्य लक्षणमाह—

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते । दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ॥४॥

दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् । शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ॥

शीताद के लक्षण—जिस रोग में मसूड़ों से अकस्मात् रक्त निकलने लगे मसूड़े दुर्गन्धयुक्त, कृष्ण वर्ण के, क्लेद ( गीला ) और कोमल हो जावें तथा दाँत की जड़ के मांस सड़ जावें और परस्पर पक जावें उस रोग को कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न होने वाला शीतादरोग जानना चाहिये ॥ ४-५ ॥

दन्तपुप्पुटकमाह—

दन्तयोस्त्रिषु वा यस्य श्वयथुर्जायते महान् । दन्तपुप्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ॥६॥

दन्तपुप्पुट के लक्षण—जिस रोग में दो-तीन दाँतों के मूल में शोथ उत्पन्न हो जावे उस रोग को कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न दन्तपुप्पुट रोग जानना चाहिये। इसमें पीड़ा और लालास्रावादि नहीं होते हैं॥ ६॥

दन्तवेष्टमाह—

**स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च। दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः॥ ७॥**

दन्तवेष्ट के लक्षण—जिस रोग में दन्तमूल से पूय और रक्त निकलते हों दाँत हिलते हों उसे दूषित रक्त के दोष से उत्पन्न दन्तवेष्ट रोग जानना चाहिये॥ ७॥

सौषिरमाह—

**श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफवातजः। लालास्रावी सकण्डूश्च स ज्ञेयः सौषिरो गदः॥ ८॥**

शौषिर के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल में शोथ, पीड़ा, लालास्राव और कण्डू हो उसे कफ और वात के दोष से उत्पन्न सौषिर रोग जानना चाहिये॥ ८॥

महासौषिरमाह

**दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते। यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः॥९॥**

सप्तरात्रान्मारकश्चायम्, यत आह भोजः—

**सदाहो दन्तमूलेषु शोथः पित्तकफानिलात्। महासौषिर इत्येष सप्तरात्राद्धिनस्त्यसून्॥१०॥**

महासौषिर के लक्षण—जिस रोग में दाँत हिलने लगें और तालु फट जावे उसे त्रिदोषों से उत्पन्न महासौषिर रोग जानना चाहिये। यह महासौषिर रोग सात दिन में मार देने वाला है। जैसा कि भोज ने कहा है कि दाँतों के मूल में पित्त और वात-कफ के कोप से उत्पन्न होने वाला दाह सहित जो शोथ होता है वह महासौषिर कहा जाता है और यह सात रात्रि में प्राणों को नष्ट कर देता है॥ ९-१०॥

परिदरमाह—

**दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्स्रवति चाप्यसृक्। पित्तासृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः॥**

परिदर के लक्षण—जिस रोग में दाँत की जड़ के मांस फट जावें और उससे रक्त निकले उसे पित्त-रक्त तथा कफ के दोष से उत्पन्न परिदर रोग कहते हैं॥ ११॥

उपकुशमाह—

**वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च। आघट्टिताः प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनम्॥**
**आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते। यस्मिन्नुपकुशः स स्यात्पित्तरक्तसमुद्भवः॥१३॥**

उपकुश के लक्षण—जिस रोग में मसूढ़ों में दाह और पाक हो तथा इसी दाह-पाक के कारण दाँत हिलने लगें, तथा दाँतों में अत्यन्त पीड़ा हो एवं थोड़ी २ पीड़ा के साथ रक्त निकले और मसूढ़े फूल जायें तथा मुख से दुर्गन्ध आने लगे वह पित्त और रक्त के दोष से उत्पन्न होने वाला उपकुश नामक रोग कहा जाता है॥ १२-१३॥

वैदर्भमाह—

**घृष्टेषु दन्तमूलेषु संरम्भो जायते महान्। चलन्ति च रदा यस्मिन्स वैदर्भोऽभिघातजः॥**

वैदर्भ के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल दन्तधावन आदि से घिस जाने के कारण महान् शोथ, पीड़ा अथवा पाक युक्त हो जावे और दाँत हिलने लगें वह वैदर्भ नामक अभिघातज रोग कहलाता है॥ १४॥

खलिवर्धनमाह—

**मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः। खलिवर्धनसंज्ञोऽसौ संजाते रुक्प्रशाम्यति॥ १५॥**

खलिवर्धन के लक्षण—कभी २ किसी मनुष्य को वायु के कोप से जितने दाँत होने चाहिये उससे अधिक एक दाँत उत्पन्न होने लगता है उसमें बड़ी पीड़ा होती है और जब वह दांत निकल आता है तब पीड़ा शान्त हो जाती है उसको खलिवर्धक नामक रोग कहते हैं॥ १५॥

अधिमांसकमाह—

**हानव्ये पश्चिमे दन्ते महान् शोथो महारुजः। लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः॥**

अधिमांसक के लक्षण—जिस रोग में हनु के कोने में अन्तिम जो दांत है उसमें महान् शोथ

हो जाता है, उससे पीड़ा और लालास्राव होता है उसे कफ के कोप से उत्पन्न अधिमांसक रोग जानना चाहिये ॥ १६ ॥

पञ्च दन्तनाडीराह—दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ १७ ॥

पञ्चदन्त नाड़ी के लक्षण—दाँतों के मूल में पाँच प्रकार की नाड़ियाँ होती हैं उन्हें प्रथम कहे हुए नाड़ी व्रण के अनुसार वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुज जानना चाहिये। इसमें सन्निपातज दन्तनाड़ी असाध्य है ॥ १७ ॥

दन्तविद्रधिमाह—

दन्तमांसमलैः सास्रैर्बाह्यतः श्वयथुर्महान्। सदाहरुक्स्रवेद्भिन्नः पूयास्रं दन्तविद्रधिः ॥ १८ ॥

दन्तविद्रधि के लक्षण—जिस रोग में दाँतों के मूल के मल आदि अथवा वातादि दोषों के साथ रक्त कुपित होकर बाहर की ओर महान् शोथ उत्पन्न कर देता है जिसमें दाह तथा पीड़ा होती है और उसके फूटने पर पूय तथा रक्त बहते हैं उसे दन्त विद्रधि कहते हैं ॥ १८ ॥

## अथ दन्तरोगाः।

तत्र दन्तरोगाणां नामानि सङ्ख्यां चाऽऽह—

दालनः कथितः पूर्वं कृमिदन्तक एव च। भञ्जनको दन्तहर्षो वै दन्तशर्करा ॥ १ ॥

कपालिकाऽत्र कथिता श्यावदन्तक एव च। करालसंज्ञा ह्यष्टौ दन्तरोगाः प्रकीर्तिताः ॥ २ ॥

दाँत के रोगों के नाम—दालन, कृमिदन्त, भञ्जनक, दन्तहर्ष, दन्तशर्करा, कपालिका, श्याव दन्तक और कराल ये आठ प्रकार के दन्तरोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र दालनस्य लक्षणमाह—

दीर्यमाणेष्विव रुजा यत्र दन्तेषु जायते। दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ३ ॥

दालन के लक्षण—जिस रोग में दाँतों में फटने के समान पीड़ा हो वह वायु के कोप से उत्पन्न दालन नाम का रोग है ॥ ३ ॥

कृमिदन्तमाह—

कृष्णच्छिद्रश्चलः स्रावी ससंरम्भो महारुजः। अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः कृमिदन्तकः ॥ ४ ॥

कृमिदन्तक के लक्षण—जिस दन्त रोग में दाँतों में कृष्ण वर्ण के छिद्र हो, दाँत हिलने लगें, स्राव, शोथ और अत्यन्त पीड़ा हो उसे वायु के कोप से उत्पन्न कृमिदन्तक रोग जानना चाहिये ॥

भञ्जनकमाह—

वक्त्रं वक्रं भवेद्यस्य दन्तभङ्गश्च जायते। कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनक उच्यते ॥ ५ ॥

भञ्जनक के लक्षण—जिस दन्त रोग में मुख टेढ़ा हो जावे और दाँत टूट जावें उसे कफ-वात के कोप से उत्पन्न भञ्जनक रोग जानना चाहिये ॥ ५ ॥

दन्तहर्षमाह—

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहा द्विजाः। यत्र स्युः पित्तवाताभ्यां दन्तहर्षः स कीर्तितः ॥ ६ ॥

दन्त हर्ष के लक्षण—जिस दन्तरोग में शीत, रूक्ष, वायु और अम्लरस का स्पर्श दाँतों में नहीं सहा जावे उसे वात और पित्त के कोप से उत्पन्न होने वाला दन्तहर्ष रोग जानना चाहिये ॥ ६ ॥

दन्तशर्करामाह—

मलो दन्तगतो यस्तु कफवातानिलशोषितः। शर्करेव खरस्पर्शो सा ज्ञेया दन्तशर्करा ॥ ७ ॥

दन्तशर्करा के लक्षण—जिस दन्तरोग में दाँतों का मैल कफ और वायु से शोषित होकर शर्करा (बालू) की भाँति खर स्पर्श हो जाता है उसे दन्तशर्करा रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

कपालिकामाह—

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तेषु समलेषु च। कपालिकेति विज्ञेया दन्तविध्वंसकारिका ॥ ८ ॥

कपालिका के लक्षण—जिस दन्त रोग में दन्तशर्करा होने के पश्चात् दाँत कपाल (ठीकरे) की भाँति विशीर्ण हो जावें उसे कपालिका रोग कहते हैं। यह रोग दाँतों को नष्ट कर देता है ॥ ८ ॥

श्यावदन्तकमाह—

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः। श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः स श्यावदन्तकः ॥

श्यावदन्तक के लक्षण—जिस दन्तरोग में रक्त पित्त कुपित होने से दाँत सम्पूर्ण दग्ध होकर श्याम अथवा नीलवर्ण के हो जाते हैं उसे श्यावदन्तक रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

करालमाह—

शनैः शनैः प्रकुपितो यत्र दन्ताश्रितोऽनिलः। करालान्विकटान्दन्तान्स करालो न सिध्यति॥

कराल के लक्षण—जिस दन्तरोग में दाँतों के आश्रय में रहने वाला वायु धीरे २ कुपित होकर दाँतों को कराल (विषम) और भयङ्कर (ऊँचा, नीचा, टेढ़ा मेढ़ा विकृत) कर देता है उसे कराल कहते हैं। यह असाध्य है॥ १०॥

हनुमोक्षमाह—

वातेन तैस्तैर्भावैस्तु हनुसन्धिर्विसंहितः। हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षण॥ ११॥

हनुमोक्ष के लक्षण—जिस रोग में वात कुपित होकर हनु की सन्धि को ढीली कर देता है इसे हनुमोक्ष जानना चाहिये। यह रोग अर्दित रोग के लक्षणों वाला होता है। इसकी चिकित्सा अर्दित के समान करनी चाहिये॥ ११॥

तन्त्रान्तरे—

भाराभिघाताज्जन्तोश्च हनुसन्धिर्विमुच्यते। निरस्तजिह्वः कृच्छ्रेण भाषितुं तत्र गच्छति॥
सकृच्छ्रमनिलव्याधिं हनुमोक्षं विनिर्दिशेत्॥ १२॥

तन्त्रान्तर से हनुमोक्ष के लक्षण—अत्यन्त भार आदि के ढोने से अथवा आघातादि से मनुष्य की हनुसन्धि ढीली होकर छूट जाती है जिससे उसकी जिह्वा असमर्थ हो जाती है और वह कष्ट से बोलता है वह कष्टदायक वात व्याधि हनुमोक्ष कही जाती है॥ १२॥

## अथ जिह्वारोगाः।

तत्र जिह्वारोगाणां निदानं नामानि सङ्ख्यां चाऽऽह—

वातजः पित्तजश्चापि कफजोऽलाससञ्ज्ञकः। उपजिह्विका च तदा जिह्वायां पञ्च कीर्तिताः॥१॥

जिह्वा रोगों के नाम—वातज, पित्तज, कफज, अलास और उपजिह्विका ये पांच जिह्वा के रोग कहे गये हैं॥ १॥

वातजमाह—जिह्वाऽनिलेन स्फुटिका प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा॥

वातज जिह्वा रोग—इस रोग में वायु के कोप से जिह्वा फटी, रसादि ज्ञान शून्य और शाक के पत्तों की तरह रूक्ष रहती है॥

पित्तजमाह—पित्तात्सदाहैरुपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरपि कण्टकैश्च॥ २॥

पित्तज जिह्वा रोग—इस रोग में पित्त के कोप से जिह्वा दाह-युक्त और बड़े २ रक्तवर्ण के कण्टकों से युक्त रहती है॥ २॥

कफजमाह—कफेन गुर्वी बहुलाचिता च मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाभैः॥ ३॥

कफज जिह्वा रोग—इस रोग में कफ के कोप से जिह्वा गुरु स्थूल और सेमल के काँटों के समान मांसाङ्कुरों से व्याप्त रहती है॥ ३॥

अलासमाह—जिह्वातले यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससञ्ज्ञः कफरक्तमूर्तिः।
जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम्॥ ४॥

अलास जिह्वा रोग—जिस जिह्वा रोग में जिह्वा के नीचे कफ और रक्त के कोप से कठिन शोथ उत्पन्न हो उसे अलास नामक जिह्वा रोग कहते हैं। इसमें जिह्वा स्तम्भित (कार्य में असमर्थ) हो जाती है और शोथ बढ़ जाने पर जिह्वा के मूल भाग में अत्यन्त पाक हो जाता है॥ ४॥

उपजिह्विकामाह—जिह्वाग्ररूपः श्वयथुर्हि जिह्वामुन्नम्य जातः कफरक्तयोनिः।
प्रसेककण्डूपरिदाहयुक्तः प्रकथ्यते सा उपजिह्विकेति॥ ५॥

उपजिह्वा रोग—इस रोग में जिह्वा के नीचे जिह्वा के अग्रभाग के आकार का शोथ हो जाता है जिससे जिह्वा उठी हुई रहती है और उसमें लालास्राव कण्डू और दाह होता है। यह कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न होता है। इसको वैद्य लोग उपजिह्वा रोग कहते हैं॥ ५॥

## अथ तालुरोगाः।

तालुरोगाणां नामानि संख्या चाऽऽह—

गलशुण्डीतुण्डिकेर्यध्रुषाः कच्छप एव च। तालवर्बुदश्च कथितो मांससंघात एव च॥ १॥

तालुपुप्पुटनामा च तालुशोषस्तथैव च। तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव॥ २॥

तालु रोगों के नाम—गलशुण्डी तुण्डिकेरी, अध्रुष, कच्छप, तालवर्बुद, मांससंघात, तालुपुप्पुट, तालुशोष और तालुपाक ये नौ प्रकार के तालु रोग होते हैं॥ १-२॥

तत्र गलशुण्डीलक्षणमाह—

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोफो ध्मातबस्तिप्रकाशः।
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना॥ ३॥

गलशुण्डी के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न तालु के मूल से उठकर बढ़ी हुई लम्बी शोथ जो वायु से पूर्ण चमड़े की कुप्पी के समान हो और उसमें तृष्णा, कास और श्वास हो उसे कण्ठशुण्डी अथवा गलशुण्डी रोग कहते हैं॥ ३॥

तुण्डीकेरीमाह—शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु॥

तुण्डकेरी के लक्षण—जिस रोग में पूर्व कथित कफ और रक्त के कोप से तुण्डिकेरी (बन कपास के फल) के समान तालु मूल से उत्पन्न शूल युक्त, सुई चुभाने के समान पीड़ा, दाह और पाक करने वाला शोथ उत्पन्न होता है उसे तुण्डिकेरी कहते हैं॥

अध्रुषलक्षणमाह—शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोत्थो ज्ञेयोऽध्रुषः सज्वरस्तीव्ररुक्च॥ ४॥

अध्रुष के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में रक्त के कोप से स्तब्ध और लोहित वर्ण का शोथ हो जावे और उसमें ज्वर तथा तीव्र पीड़ा हो, उसे अध्रुष तालु रोग कहते हैं॥ ४॥

कच्छपमाह—कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा च॥

कच्छप के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में कफ के कोप से कछुए के आकार का उठा हुआ पीड़ा रहित एवं चिरकाल में उत्पन्न होने वाला शोथ हो उसे कच्छप तालु रोग कहते हैं॥

तालवर्बुदमाह—पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम्॥ ६॥

तालवर्बुद के लक्षण—जिस रोग में तालु के मध्य में कमल के आकार का रक्त कोप से शोथ हो उसे पूर्व कथित अर्बुद रोग के लक्षणों के समान लक्षणों वाला तालवर्बुद रोग जानना चाहिये॥

मांससंघातमाह—दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च तालुन्यन्तः स्यान्मांससंघातमाहुः॥

मांस संघात के लक्षण—जिस रोग में कफ के कोप से तालु के मध्य में दूषित मांस शोथ की भाँति हो जाता है और उसमें पीड़ा नहीं होती है उसे मांस संघात रोग कहते हैं॥

तालुपुप्पुटमाह—नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तात्पुप्पुटस्तालुदेशे॥ ६॥

तालु पुप्पुट के लक्षण—जिस रोग में कफ [illegible] शोथ [illegible] पीड़ा रहित, स्थिर, बेर के फल के प्रमाण का शोथ हो जा[illegible] है॥ ६॥

तालुशोषमाह—शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि त[illegible] ॥

तालु शोष के लक्षण—जिस रोग में ता[illegible] है तथा उसमें श्वास भी [illegible] यह वायु कोप से [illegible]

तालुपाकमाह[illegible]

तालु पा[illegible] रोग में पित्त [illegible]
जाता है उसे [illegible] हैं॥ ७॥

अथ

रोहिणी पञ्चधा [illegible] च।
ततो वृन्द[illegible]

गलरोगों के न[illegible]
वृन्दक, वृन्द शतघ्नी,
कण्ठ देश में अठारह

तत्र

गलेऽनिलः [illegible]

गलोपसंरोधकरैस्तथाङ्कुरैर्निहन्त्यसून् व्याधिरयं तु रोहिणी ॥ ३ ॥

रोहिणी की सम्प्राप्ति—गले में वात, पित्त, कफ कुपित होकर मांस और रक्त को दूषित करके गले को रोकने वाले मांसाङ्कुरों को उत्पन्न कर गले को रोक देते हैं जिससे प्राणों का नाश हो जाता है इस व्याधि को रोहिणी कहते हैं ॥ ३ ॥

तत्र वातजलक्षणमाह—

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधना स्युः ।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ ४ ॥

वातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर अत्यन्त पीडायुक्त कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले मांस के अङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं और वात के कोप के सभी उपद्रव अतिवेग से उत्पन्न हो जाते हैं उसे वातज रोहिणी कहते हैं ॥ ४ ॥

पित्तजमाह—क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥

पित्तज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर शीघ्र उत्पन्न होने वाले, शीघ्र दाह करने वाले, शीघ्र पाक होने वाले और तीव्र ज्वर करने वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं तथा कण्ठ को अवरुद्ध कर देते हैं उसे पित्तज रोहिणी कहते हैं ॥

श्लेष्मजामाह—स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुर्वी स्थिरा सा कफसम्भवा तु ॥ ५ ॥

कफज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर कण्ठ के स्रोतों को रोकने वाले, मन्दपाक वाले गुरु और स्थिर (अचल) मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे कफजरोहिणी कहते हैं॥

संनिपातजामाह—गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिता सा ॥

सान्निपातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर मांस के अङ्कुर कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले गम्भीर (अन्दर तक) पकने वाले, चिकित्सा से शमन नहीं होने वाले और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त उत्पन्न हो जाते हैं उसे त्रिदोषज रोहिणी कहते हैं ॥

रक्तजामाह—स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ ६ ॥

रक्तजरोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के चारों ओर कण्ठको अवरुद्ध करने वाले छोटे २ फफोलों से युक्त और पित्तज रोहिणी के लक्षणों के समान लक्षण वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे रक्तज रोहिणी कहते हैं ॥ ६ ॥

सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहात्कफसमुद्भवा । पञ्चाहात्पित्तसम्भूता सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥ ७ ॥

असाध्य रोहिणी की मर्यादा—त्रिदोषज रोहिणी रोगी को शीघ्र मार डालती है और कफज रोहिणी तीन दिन में पित्तज रोहिणी पांच दिन में तथा वातज रोहिणी सात दिन में रोगी को मार डालती है ॥ ७ ॥

कण्ठशालूकमाह—कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः ।
खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ ८ ॥

कण्ठशालूक के लक्षण—जिस रोग में गले में बेर की गुठली के प्रमाण की (शोथ) गांठ उत्पन्न हो जाती है और कण्टक या जल शूक कीट के समान गले का अवरोध कर लेती है वह गांठ कठिन, स्थिर और शस्त्र कर्म में (चीर फार करने में) साध्य होती है उसे कफज कण्ठ शालूक रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

अधिजिह्वमाह—जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादसृजैव मिश्रात् ।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ९ ॥

अधिजिह्वा के लक्षण—जिस रोग में जिह्वा पर जिह्वा के अग्रभाग के समान कफ के कोप से और रक्त के कोप से शोथ हो जाता है उसे अधिजिह्व जानना चाहिये। इस रोग में जब पाक हो जावे तब इसकी चिकित्सा त्याग देनी चाहिये (असाध्य हो जाता है) ॥ ९ ॥

वलयमाह—बलास एवाऽऽयतमुन्नतं च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।
स सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यो विवर्जनीयो वलयं वदन्ति ॥ १० ॥

वलय के लक्षण—जिस गल रोग में कफ कुपित होकर अन्न वहन करने वाली नाडी के मार्ग का अवरोध कर विस्तृत और उन्नत शोथ उत्पन्न कर देता है वह रोगी के सहने के सामर्थ्य से

तालुपुप्पुटनामा च तालुशोषस्तथैव च । तालुपाकश्च कथितास्तालुरोगा अमी नव ॥ २ ॥

तालु रोगों के नाम—गलशुण्डी तुण्डिकेरी, अध्रुष, कच्छप, तालवर्बुद, मांससंघात तालु पुप्पुट, तालुशोष और तालुपाक ये नौ प्रकार के तालु रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र गलशुण्डीलक्षणमाह—

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो दीर्घः शोफो ध्मातबस्तिप्रकाशः ।
तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ॥ ३ ॥

गलशुण्डी के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोप से उत्पन्न तालु के मूल से उठकर बढ़ी हुई लम्बी शोथ जो वायु से पूर्ण चमड़े की कुप्पी के समान हो और उसमें तृष्णा, कास और श्वास हो उसे कण्ठशुण्डी अथवा गलशुण्डी रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

तुण्डीकेरीमाह—शोथः स्थूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मता तु ॥

तुण्डिकेरी के लक्षण—जिस रोग में पूर्व कथित कफ और रक्त के कोप से तुण्डिकेरी (वन कपास के फल) के समान तालु मूल से उत्पन्न शूल युक्त सुई चुभाने के समान पीड़ा, दाह और पाक करने वाला शोथ उत्पन्न होता है उसे तुण्डिकेरी कहते हैं ॥

अध्रुषलक्षणमाह—शोथः स्तब्धो लोहितः शोणितोत्थो ज्ञेयोऽध्रुषः सज्वरस्तीव्ररुक् च ॥ ४ ॥

अध्रुष के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में रक्त के कोप से स्तब्ध और लोहित वर्ण का शोथ हो जावे और उसमें ज्वर तथा तीव्र पीड़ा हो, उसे अध्रुष तालु रोग कहते हैं ॥ ४ ॥

कच्छपमाह—कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा च ॥

कच्छप के लक्षण—जिस रोग में तालु स्थान में कफ के कोप से कछुए के आकार का उठा हुआ पीड़ा रहित एवं चिरकाल में उत्पन्न होने वाला शोथ हो उसे कच्छप तालु रोग कहते हैं ॥

तालवर्बुदमाह—पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम् ॥ ६ ॥

तालवर्बुद के लक्षण—जिस रोग में तालु के मध्य में कमल के आकार का रक्त कोप से शोथ हो उसे पूर्व कथित अर्बुद रोग के लक्षणों के समान लक्षणों वाला तालवर्बुद रोग जानना चाहिये ॥

मांससंघातमाह—दुष्टं मांसं श्लेष्मणा नीरुजं च ताल्वन्तःस्थं मांससंघातमाहुः ॥

मांस संघात के लक्षण—जिस रोग में कफ के कोप से तालु के मध्य में दूषित मांस शोथ की भाँति हो जाता है और उसमें पीड़ा नहीं होती है उसे मांस संघात रोग कहते हैं ॥

तालुपुप्पुटमाह—नीरुक्स्थायी कोलमात्रः कफात्स्यान्मेदोयुक्तात्पुप्पुटस्तालुदेशे ॥ ६ ॥

तालु पुप्पुट के लक्षण—जिस रोग में कफ और मेद के कोप से उत्पन्न शोथ पीड़ा रहित, स्थिर, बेर के फल के प्रमाण का शोथ हो जाता है उसे तालु पुप्पुट नामक रोग कहते हैं ॥ ६ ॥

तालुशोषमाह—शोषोऽत्यर्थं दीर्यते चापि तालु श्वासो वाताच्चालुशोषोऽयमुक्तः ॥

तालु शोष के लक्षण—जिस रोग में तालु अत्यन्त सूखता रहता है और फट जाता है तथा उसमें श्वास भी बढ़ जाता है यह वायु कोप से उत्पन्न तालु शोष रोग कहा जाता है ॥

तालुपाकमाह—पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं तालुन्येनं तालुपाकं वदन्ति ॥ ७ ॥

तालु पाक के लक्षण—जिस रोग में पित्त के कोप से तालु में अत्यन्त कठिन पाक उत्पन्न हो जाता है उसे तालुपाक रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

## अथ गलरोगाः ।

तत्र गलरोगाणां नामानि संख्यां चाह—

रोहिणी पञ्चधा प्रोक्ता कण्ठशालूक एव च । अधिजिह्वश्च वल्योऽस्यासस्तथैकवृन्दकः ॥ १ ॥
ततो वृन्द शतघ्नी च शिलायु कण्ठविद्रधिः । गलौघश्च स्वरघ्नश्च मांसतानस्तथैव च ॥
विदारी कण्ठदेशे तु रोगा अष्टादश स्मृताः ॥ २ ॥

गलरोगों के नाम—पाँच प्रकार की रोहिणी, कण्ठशालूक, अधिजिह्व, वलय, अलास, एक वृन्दक, वृन्द शतघ्नी शिलायु कण्ठविद्रधि, गलौघ, स्वरघ्न, मांस तान और विदारी नाम के कण्ठ देश में अठारह रोग होते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र प्रधानामपि रोहिणीनां सामान्यं लक्षणमाह—

गलेऽनिलः पित्तकफौ च मूर्च्छितौ प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।

**गलोपसंरोधकरैस्तथाङ्कुरैर्निहन्त्यसून् व्याधिरियं तु रोहिणी ॥ ३ ॥**

रोहिणी की सम्प्राप्ति—गले में वात, पित्त, कफ कुपित होकर मांस और रक्त को दूषित करके गले को रोकने वाले मांसाङ्कुरों को उत्पन्न कर गले को रोक देते हैं जिससे प्राणों का नाश हो जाता है इस व्याधि को रोहिणी कहते हैं ॥ ३ ॥

तत्र वातजलक्षणमाह—

**जिह्वासमन्तात्भृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधना स्युः ।**
**सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ ४ ॥**

वातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर अत्यन्त पीडायुक्त कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले मांस के अङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं और वात के कोप के सभी उपद्रव अतिवेग से उत्पन्न हो जाते हैं उसे वातज रोहिणी कहते हैं ॥ ४ ॥

**पित्तजमाह—क्षिप्रोद्गमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजाता ॥**

पित्तज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर शीघ्र उत्पन्न होने वाले, शीघ्र दाह करने वाले, शीघ्र पाक होने वाले और तीव्र ज्वर करने वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं तथा कण्ठ को अवरुद्ध कर देते हैं उसे पित्तज रोहिणी कहते हैं ॥

**श्लेष्मजमाह—स्रोतोनिरोधिन्यपि मन्दपाका गुरुः स्थिरा सा कफसम्भवा तु ॥ ५ ॥**

कफज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर कण्ठ के स्रोतों को रोकने वाले, मन्दपाक वाले गुरु और स्थिर (अचल) मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते है उसे कफजरोहिणी कहते हैं॥

**संनिपातजमाह—गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गा त्रितयोत्थिता सा ॥**

सान्निपातज रोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के निकट चारों ओर मांस के अङ्कुर कण्ठ को अवरुद्ध करने वाले गम्भीर (अन्दर तक) पकने वाले, चिकित्सा से शमन नहीं होने वाले और तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त उत्पन्न हो जाते हैं उसे त्रिदोषज रोहिणी कहते हैं ॥

**रक्तजामाह—स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गाऽसाध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ ६ ॥**

रक्तजरोहिणी—जिस रोग में जिह्वा के चारों ओर कण्ठको अवरुद्ध करने वाले छोटे २ स्फोटों से युक्त और पित्तज रोहिणी के लक्षणों के समान लक्षण वाले मांसाङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं उसे रक्तज रोहिणी कहते हैं ॥ ६ ॥

**सद्यस्त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहात्कफसमुद्भवा । पञ्चाहात्पित्तसम्भूता सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥ ७ ॥**

असाध्य रोहिणी की मर्यादा—त्रिदोषज रोहिणी रोगी को शीघ्र मार डालती है और कफज रोहिणी तीन दिन में पित्तज रोहिणी पांच दिन में तथा वातज रोहिणी सात दिन में रोगी को मार डालती है ॥ ७ ॥

**कण्ठशालूकमाह—कोलास्थिमात्रः कफसम्भवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः ।**
**खरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ ८ ॥**

कण्ठशालूक के लक्षण—जिस रोग में गले में बेर की गुठली के प्रमाण की (शोथ) गांठ उत्पन्न हो जाती है और कण्टक या जल शूक कीट के समान गले का अवरोध कर देती है यह गांठ कठिन, स्थिर और शस्त्र कर्म से (चीर फार करने से) साध्य होती है उसे कफज कण्ठ शालूक रोग कहते हैं ॥ ८ ॥

**अधिजिह्वमाह—जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफात्तु जिह्वोपरिष्टादपि रक्तमिश्रात् ।**
**ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विवर्जयेदागतपाकमेनम् ॥ ९ ॥**

अधिजिह्वा के लक्षण—जिस रोग में जिह्वा पर जिह्वा के अग्रभाग के समान कफ के कोप से और रक्त के कोप से शोथ हो जाता है उसे अधिजिह्व जानना चाहिये । इस रोग में जब पाक हो जावे तब इसकी चिकित्सा त्याग देनी चाहिये (असाध्य हो जाता है) ॥ ९ ॥

**वलयमाह—बलास एवाऽऽयतमुन्नतं च शोथं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।**
**तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं वलयं वदन्ति ॥ १० ॥**

वलय के लक्षण—जिस गल रोग में कफ कुपित होकर अन्न वहन करने वाली नाड़ी के मार्ग का अवरोध कर विस्तृत और उन्नत शोथ उत्पन्न कर देता है यह रोगी के सहने के सामर्थ्य से

बाहर होता है उसकी चिकित्सा त्याग देनी चाहिये ( असाध्य है ) इस रोग को वलय कहते हैं।

अलासमाह—गले तु शोथं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुरलाससंज्ञं भिषजो विकारम् ॥ ११ ॥

अलास के लक्षण—जिस गल रोग में बढ़े हुए कुपित कफ और वात श्वास और पीड़ा युक्त मर्मच्छेदक कठिन ( दुःसाध्य ) शोथ को गले में उत्पन्न कर देते हैं उस रोग को अलास कहते हैं ॥११॥

एकवृन्दमाह—वृत्तोन्नतोऽन्तःश्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नाम्नैकवृन्दः परिकीर्तितोऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ १२ ॥

एकवृन्द के लक्षण—जिस रोग में कफ रक्त के कोप से गले के अन्दर गोलाकार उठा हुआ, दाह युक्त, कण्डूयुक्त, पाकरहित वा थोड़ा पकने वाला, कठिन, अथवा थोड़ा मृदु और गुरु शोथ उत्पन्न हो जाता है उसे एक वृन्द नामक रोग कहते हैं ॥ १२ ॥

वृन्दमाह—समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ।
तच्चापि पित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदं पवनात्मकं तु ॥ १३ ॥

वृन्द के लक्षण—जिस रोग में पित्त और रक्त के कोप से गले में अधिक उठा हुआ, गोल, तीव्रदाह तथा तीव्र ज्वर करने वाला शोथ उत्पन्न हो जाता है उसे वृन्द नामक रोग कहते हैं। इसी रोग में यदि सूई चुभाने के समान पीड़ा हो तो उसमें वात की प्रधानता रहती है ॥ १३ ॥

शतघ्नीमाह—वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।
अनेकरुक्प्राणहरा त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नीसदृशी शतघ्नी ॥ १४ ॥

शतघ्नी के लक्षण—जिस गल रोग में त्रिदोष के कोप से गले में बत्ती के आकार की, घनी, कण्ठ को अवरुद्ध करने वाली, मांसाङ्कुरों से अत्यन्त घिरी हुई, अनेक प्रकार के प्राणनाशक तोद दाह, कण्डू आदि तीनों दोषों की कठिन पीड़ा युक्त शतघ्नी ( लोहे के कांटों से घिरी हुई महान् शिला को शतघ्नी कहते हैं ) के समान ( असाध्य ) रोग जानना चाहिये ॥ १४ ॥

गिलायुमाह—ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः स्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः ।
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ १५ ॥

गिलायु के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोप से गले में आँवले की गुठली की भाँति स्थिर ( अचल ), अल्प पीड़ा करने वाली और भोजन किया पदार्थ गले में रुका है ऐसा प्रतीत होता है उसे गिलायु नामक रोग कहते हैं। यह शस्त्र साध्य होता है।

गलविद्रधिमाह—

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः शोफो रुजः सन्ति च यत्र सर्वाः ।
स सर्वदोषैर्गलविद्रधिस्तु तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ १६ ॥

गलविद्रधि के लक्षण—जिस रोग में त्रिदोष के कोप से सम्पूर्ण गले में व्याप्त शोथ उत्पन्न हो जावे और उसमें सब दोषों ( वात-पित्त-कफ ) की मिश्रित पीड़ायें ( तोद दाह कण्डु आदि ) होवें उसे सब दोषों से होने वाली गलविद्रधि कहते हैं। इसे सन्निपातज विद्रधि के समान जानना चाहिये किन्तु इसकी चिकित्सा भिन्न होती है। इसी कारण इसकी गणना सन्निपातज विद्रधि से पृथक् की गयी है ॥ १६ ॥

गलौघमाह—शोफो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघः परिकीर्त्यतेऽसौ ॥ १७ ॥

गलौघ के लक्षण—जिस रोग में कफ और रक्त के कोप से गले में महान् शोथ उत्पन्न हो जाने से अन्न जल का अवरोध हो जाता है अर्थात् शोथ से गले का छिद्र और उसमें तीव्र ज्वर तथा उस शोथ के कारण उदान वायु की गति भी रुक जाती है ( उद्गार आदि का अवरोध हो जाता है ) उस रोग को गलौघ कहते हैं ॥ १७ ॥

स्वरघ्नमाह—यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः स रोगः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ १८ ॥

स्वरघ्न के लक्षण—जिस रोग में वायु के अधिक कोप के कारण गले में महान् शोथ होने से

जिससे रोगी अन्धकार के समान देखता हुआ अथवा मूर्च्छित होता हुआ निरन्तर श्वास लेता है और उसका स्वर भंग हो जाता है, गला शुष्क रहता है एवं अपने कार्य में स्वाधीन नहीं रहता (अन्नादि को निगलने में असमर्थ रहता है) तथा वायु के स्रोतों में कफ भर कर उसे अवरुद्ध कर देता है जिससे श्वास आदि कष्ट से आते हैं इस रोग को स्वरघ्न कहते हैं॥ १८॥

मांसतानमाह—प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण।
स मांसतानः प्रथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः॥ १९॥

मांसतान के लक्षण—जिस रोग में त्रिदोष के कोप से सम्पूर्ण गले में पसरी हुई महाकष्टदायक शोथ उत्पन्न होकर क्रम से गले का अवरोध कर लटकती रहती है उसे मांसतान रोग कहते हैं यह प्राण का नाशक है॥ १९॥

विदारीलक्षणमाह—सदाहतोदं श्वयथुं प्रसक्तमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम्।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते॥ २०॥

विदारी के लक्षण—जिस रोग में पित्त के कोप से गले के भीतर जिस पार्श्व में मनुष्य विशेष सोता है उस पार्श्व में शोथ उत्पन्न हो जाती है और उसमें दाह सुई चुभाने के समान पीड़ा और गले का मांस दुर्गन्धित एवं विशीर्ण (फटा हुआ या सड़ा हुआ) हो जाता है उसे विदारी रोग कहते हैं यह कभी २ दूसरे पार्श्व में भी हो जाता है॥ २०॥

## अथ समस्तमुखरोगाः।

तत्र तेषां निदानं संख्या चाऽऽह—

पृथग्दोषैस्त्रयो रोगा समस्तमुखजा स्मृताः॥ १॥

समस्त मुख रोगों के निदान—वातादि दोषों से होने वाले समस्त मुखरोग तीन प्रकार के (वातिक पैत्तिक और कफज) कहे जाते हैं॥ १॥

तत्र वातिकस्य लक्षणमाह—

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याऽऽचितं सर्वसरः स वातात्॥

वातिक सर्वसर—जिसमें ओष्ठादि सातों स्थानों के सहित सम्पूर्ण मुख सुई चुभाने के समान पीड़ा युक्त फफोलों से भर जावे उसे वातज सर्वसर रोग, कहते हैं॥

पैत्तिकमाह—रक्तैः सदाहैः पिडकैः सपीतैर्यस्याचितं चाऽपि स पित्तकोपात्॥ १॥

पैत्तिक सर्वसर—जिस रोग में मुख रक्तवर्ण दाह युक्त पिडिकाओं से अथवा पीतवर्ण दाह युक्त पिडिकाओं से भर जावे उसे पित्तज सर्वसर रोग कहते हैं॥ १॥

श्लैष्मिकमाह—अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याचितं चाऽपि स वै कफेन॥

कफज सर्वसर—जिस रोग में मुख पीड़ा रहित अथवा अल्प पीड़ाकारक कण्डूयुक्त और मुख की त्वचा के वर्ण की पिडिकाओं से व्याप्त हो उसे कफज सर्वसर कहते हैं॥

केश्चिन्मुखपाकरोग एक एव प्रदिष्ट—

रक्तेन पित्तोदित एक एव कैश्चित्प्रदिष्टो मुखपाकरोगः॥ २॥

कई आचार्यों ने मुखपाक रोग को एक ही माना है और कई आचार्यों ने रक्त के कोप से भी उत्पन्न मुखपाक रोग माना है। इसके लक्षण पित्तज मुखपाक के समान ही होते हैं। मुख के ओष्ठादि सातों स्थानों में होने के कारण इस रोग को सर्वसर कहते हैं॥ २॥

मुखरोगेष्वसाध्यानाह—

ओष्ठप्रकोपे वर्ज्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजा। दन्तवेष्टेषु वर्ज्यौ तु त्रिलिङ्गगतिसौषिरौ॥ १॥

मुखरोग की असाध्यता—ओष्ठ रोगों में मांसज रक्तज और त्रिदोषज ओष्ठरोग असाध्य हैं। दन्तवेष्ट (दन्तमूल) के रोगों में त्रिदोषज नाड़ी और महासौषिर रोग असाध्य हैं॥ १॥

दन्तेषु च न सिद्ध्यन्ति श्यावदालनभञ्जनाः। जिह्वारोगे चलासस्तु तालुजेष्वर्बुदं तथा॥२॥

दन्तरोगों में श्यावदन्त दालन और भञ्जन संज्ञक रोग असाध्य हैं। जिह्वारोगों में अलास और तालुरोगों में अर्बुदरोग असाध्य हैं॥ २॥

स्वरघ्नो वलयो वृन्दो बलास सविदारिकः। गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले॥३॥

गलरोगों में स्वरघ्न, वलय, वृन्द, बलास, विदारी गलौघ, मांसतान, एकघ्नी और रोहिणी संज्ञक रोग असाध्य हैं ॥ ३ ॥

असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा दश नवोत्तराः। तेषु चापि क्रियां वैद्य प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥

इस प्रकार मुख रोगों में १९ रोग असाध्य हैं। इनमें याप्यनार्थ यदि वैद्य को चिकित्सा करनी भी हो तो असाध्य कह कर चिकित्सा करे ॥ ४ ॥

## अथ मुखरोगाणां चिकित्सा।

तत्रौष्ठरोगेषु—

गलदन्तमूलदशनच्छदेषु रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः। तस्माद्देतेष्वसकृद्रुधिरं विस्रावयेद्दुष्टम् ॥

गलादि रोग चिकित्सा—गला, दन्तमूल और ओष्ठ में प्राय कफ और रक्त के कोप से रोग उत्पन्न होते हैं। इस लिये इनमें से बार २ दूषित रक्त का स्राव कराना चाहिये ॥ १ ॥

वातजे—स्नेहास्तापोष्णाम्बुपरिषेकलेपान्घृतस्य पानं रसभोजनं च।
अभ्यञ्जनस्वेदनलेपनं सदोष्ठे विदध्याद्यनलाभिभूते ॥ १ ॥

वातज ओष्ठरोग चिकित्सा—वातज ओष्ठरोग में स्नेह, तथा उष्ण परिषेक और लेप आदि तथा पान मांसादि रसों का भोजन, अभ्यङ्ग ( मर्दन ) स्वेदन और लेपन करना चाहिये ॥ १ ॥

तैलं घृतं सर्जरसं ससिक्थं रास्नागुडं सैन्धवगैरिकं च।
पक्त्वा समांशं दशनच्छदानां त्वग्भेदहन्तृ व्रणरोपणं च ॥ २ ॥

तैलादि योग—तिल का तैल, गाय का घृत, राल, मोम, रास्ना, गुड़, सैंधानमक और गेरू प्रत्येक समभाग मिलाकर विधिपूर्वक पकाकर ओठों पर लगाने से यह ओठ की फटी हुई त्वचा को नष्ट करता है और व्रण का रोपण करता है इस तैलादि योग की विधि में रास आदि का कल्क कर विधिपूर्वक घृत अथवा तैल सिद्ध कर लगाना अति उत्तम योग है ॥ २ ॥

राल मधूच्छिष्टगुडेन पक्वं तैलं घृतं वा विनिहन्ति लेपात्।
त्वक्तोदपारुष्यरुजोऽधरस्य पूयास्रसंस्रावमपि प्रसह्य ॥ ३ ॥

रालादि तैल वा घृत—राल, मोम, गुड़ तीनों समान भाग का कल्क बनाकर कल्क के चौगुना तिल तैल अथवा घृत और उसके चौगुना जल मिलाकर पाक करके लेप करने से त्वचा में सुई चुभाने के समान होने वाली पीड़ा, कठोरता और ओठ की पीड़ायें नष्ट होती हैं तथा पूय और रक्त का स्राव होना भी बन्द होता है ॥ ३ ॥

पित्तजे—वेधं सिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च।
शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ १ ॥

पित्तज ओष्ठ रोग चिकित्सा—पित्तज ओष्ठ रोग में शिरा मोक्षण कराना, वमन और विरेचन कराकर तिक्त रस वाली औषधियों से सिद्ध पेय ( क्वाथ घृतादि ) मांस रसादि, शीतल लेप और परिषेक करना चाहिये इससे पित्तज ओष्ठ रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

कफजे—

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवल एव च। हृते रक्ते प्रयोक्तव्य ओष्ठकोपे कफात्मके ॥ १ ॥

कफज ओष्ठ रोग चिकित्सा—कफज ओष्ठ रोग में रक्तमोक्षण, शिरोविरेचन ( नस्य कर्म ), धूमपान स्वेद कर्म और कवल धारण कराना चाहिये। इससे कफज ओष्ठ रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः। प्रियङ्गु त्रिफला लोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ॥

मेदोज ओष्ठ रोग चिकित्सा—मेदोज ओष्ठ रोग में स्वेदन, भेदन, शोधन करने के बाद और पश्चात् कवल धारण करे और फिर प्रियङ्गु, आँवला, हरड़, बहेड़ा, लोध प्रत्येक समभाग का चूर्ण कर मधु मिलाकर धीरे २ प्रतिसारण ( मर्दन ) करना चाहिये ॥ १ ॥

प्रतिसारणस्य विधिमाह—

दन्तजिह्वामुखानां यच्चूर्णं स्वल्पकावलेहकैः। घर्षणैर्मधुयुक्तया मधुरतः प्रतिसारणम् ॥ १ ॥

प्रतिसारण की विधि—दाँत, जिह्वा और ओठ मुख इन स्थानों में चूर्ण, कल्क अथवा अवलेह ( यथा उचित ) को धीमे २ अंगुलियों से घर्षण करने को प्रतिसारण कहते हैं ॥ १ ॥

ओष्ठरोगेष्ववशेषेषु दृष्ट्वा दोषमुपाचरेत् । तेषु व्रणत्वं यातेषु व्रणवत्समुपाचरेत् ॥ २ ॥

अवशिष्ट ओष्ठ रोगों की चिकित्सा—शेष ओष्ठ रोगों में दोषादिकों को देखकर यथोचित चिकित्सा करनी चाहिये । ओष्ठ में जब व्रण हो जाय तब व्रण के समान उनकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

दन्तमूलरोगाणां चिकित्सा—

दन्तमूलसमुत्थेषु दन्तोत्थेषु गदेषु च । रक्तमोक्षं प्रशंसन्ति जलौकालाबुशृङ्गकैः ॥ १ ॥

दन्तमूल चिकित्सा—दन्तमूल ( मसूड़े ) में होने वाले तथा दाँतों में होने वाले रोगों में जौंक, तुम्बी अथवा सिंगी आदि के द्वारा रक्तमोक्षण कराना लाभदायक है ॥ १ ॥

शीतादस्य चिकित्सा—

शीतादेऽसृस्रुतिं कुर्यात्तथा गण्डूषधारणम् । शुण्ठीपर्पटक्वाथैः कवोष्णैश्च मुहुर्मुहुः ॥ १ ॥

शीताद चिकित्सा—शीताद दन्त रोग में रक्त निकलवा कर सोंठ और पित्तपापड़ा के उष्ण क्वाथ से बार २ गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

शीतादे हृतरक्ते तु तोये नागरसर्षपान् । निष्क्वाथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥ १ ॥

भावप्रकाश के मत से शीताद रोग में रक्तमोक्षण कराकर सोंठ, सरसो, हरड़, बहेड़ा और आँवला के क्वाथ का गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

कासीसलोध्रकृष्णामनःशिलाप्रियङ्गुतेजोह्वाः । एषां चूर्णं मधुयुक् शीतादे पूतिमांसहरम् ॥

कासीस, लोध, पीपल, शुद्ध मैनसिल, प्रियगू और तेज बल प्रत्येक समभाग के चूर्ण को मधु मिलाकर मसूड़ों पर लगाने से दुर्गन्धित ( सड़े हुए ) मसूड़े के मांस को नष्ट करता है ॥ १ ॥

तैलं घृतं वा वातघ्नं शीतादे सम्प्रशस्यते ॥ २ ॥

शीताद रोग में वात नाशक तैल अथवा घृत का व्यवहार लाभदायक होता है ॥ २ ॥

दन्तपुप्पुटकस्य चिकित्सा—

दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् । सपञ्चलवणक्षारैः सक्षौद्रैः प्रतिसारणम् ॥ १ ॥

दन्तपुप्पुट चिकित्सा—नवीन, दन्त पुप्पुट रोग में रक्त मोक्षण कराकर पाँचो लवण और यवक्षार आदि क्षारों को मधु में मिलाकर अङ्गुलियों से मसूड़ों पर शनैः २ मर्दन करना चाहिये ॥

दन्तवेष्टस्य चिकित्सा—

दन्तवेष्टे विधिः कार्यो रक्तपित्तनिबर्हणः । शिरोविरेकश्च हितो नस्यं स्निग्धं च भोजनम् ॥१॥

दन्तवेष्ट चिकित्सा—दन्तवेष्ट रोग में रक्त पित्त नाशक विधि करनी चाहिये । शिरोविरेचन, नस्य कर्म और स्निग्ध भोजन करना चाहिये ॥ १ ॥

विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत् । लोध्रपत्तङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधुप्लुतैः ॥ २ ॥

दन्तवेष्ट रोग में रक्तमोक्षण कराकर लोध, पतङ्ग काठ मुलहठी और लाख प्रत्येक समान भाग का चूर्ण मधु मिलाकर व्रण पर अङ्गुलियों से शनैः २ मर्दन करना चाहिये ॥ २ ॥

गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः । चलदन्तस्थैर्यकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ॥ ३ ॥

गण्डूष धारण करने के लिये क्षीरी ( पञ्चवल्कल ) वृक्षों के क्वाथ में मधु, घृत एवं शर्करा का प्रक्षेप देकर प्रयोग करना चाहिये और ( मौलसरी ) की छाल अथवा फल का चर्वण करना चाहिये । इससे हिलते हुए दाँत बैठ जाते हैं ॥ ३ ॥

भद्रमुस्तादिवटिका—

भद्रमुस्ताभयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः । गोमूत्रपिष्टैर्गुटिका छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ १ ॥

तां निधाय मुखे स्वप्याच्चलदन्तातुरो नरः । नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य भेषजम् ॥ २ ॥

भद्रमुस्तादि वटिका—भद्रमोथा, हरड़, सोंठ, मरिच, पीपल, वायविडंग और नीम के पत्र प्रत्येक समभाग गोमूत्र के साथ पीस कर विधिपूर्वक वटी बनाकर छाया में सुखा कर रख लेवे । इस वटी को जिसके दाँत हिलते हो वह मुख में रख कर सो जावे तो इससे दाँत बैठ जाते हैं । चल दन्त की यह सर्वोत्तम औषधि है ॥ १-२ ॥

सहाचरादितैलम्—तुलां घृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसः संश्रपयेद्यथावत् ।

यष्टीमधुर्मांसरसे तु तैलं पचेच्छनैरर्धपलप्रमाणैः ॥ १ ॥

कफकैरलम्बातदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम्।
तथैलमारयेव घृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ २ ॥

सहचरादि तैल—नीली कटसरैया एक तुला ( १०० पल ) लेकर एक द्रोण ( चार आढ़क ) जल में डालकर विधिपूर्वक क्वाथ करे जब चतुर्थांश शेष रह जावे तब उतार कर छान लेवे और उसमें चतुर्थांश ( एक प्रस्थ ) तिल का तेल तथा अनन्तमूल, खैर, विट्खदिर, जामुन की छाल, मुलैठी और नील कमल प्रत्येक आधा २ पल लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर सबको एकत्र कर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर उस तैल को मुख में धारण करने से दाँतों को शीघ्र ही स्थिर करता है ॥ १-२ ॥

जीरकाद्यं चूर्णम्—

जरणलवणपथ्याताप्यमाक्षीकण्टकानामनुदिनमनुघृष्टं दन्तमूलेषु चूर्णम्।
व्रणदरणदशाचलक्षयशोथानपनयति विवस्वान् घकारानिवाऽऽशु ॥ १ ॥

जीरकादि चूर्ण—जीरा, सेंधानमक, हरड़, तथा समर के काँटे प्रत्येक समभाग का विधिपूर्वक चूर्णकर प्रतिदिन दन्तमूल में घिसने से मसूढ़ों के व्रण, मसूढ़ों का फटना, पीड़ा, रक्तस्राव, दाँतों का हिलना और शोथ शीघ्र ही इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार अन्धकार को सूर्य नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

कणाद्यं चूर्णम्—

कणासिन्धूत्थजरणचूर्णं चूर्णं व्यपोहति। घर्षणाद्दन्तचालव्यथास्रशोथास्रसंस्रवान् ॥ १ ॥

कणादि चूर्ण—पीपल, सेंधानमक और जीरा प्रत्येक समभाग चूर्ण कर दाँतों तथा मसूढ़ों पर घिसने से शीघ्र ही दाँतों का हिलना, पीड़ा, शोथ तथा रक्तस्राव बन्द हो जाते हैं ॥ १ ॥

दशमूलादितैलघृते—

दशमूलीकषायेण तैलं वा घृतमेव वा। विपक्वं केवलं धार्यं सक्षौद्रं दन्तचालने ॥ १ ॥

दशमूलादि तैल वा घृत—दशमूल की औषधियों को पृथक् २ लेकर विधिपूर्वक उनका क्वाथकर उसमें चतुर्थांश तिल का तैल अथवा घृत मिलाकर सिद्ध कर उसमें मधु मिलाकर लगाने से दाँतों का हिलना बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

शौषिरस्य चिकित्सा—

शौषिरे हृतरक्ते तु लोध्रमुस्तारसाञ्जनैः। सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ १ ॥

शौषिर-चिकित्सा—शौषिर रोग में रक्तमोक्षण कराकर लोध, नागरमोथा और रसवत के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर लेप करने से और क्षीरी वृक्षों के क्वाथ विधिपूर्वक बनाकर गण्डूष धारण करने से लाभ होता है ॥ १ ॥

परिदरोपकुशयोश्चिकित्सा—

क्रिया परिदरे कुर्याच्छीतादोक्तां विचक्षणः। संशोध्योभयतः कार्यं शिरश्चोपकुशे तथा ॥ १ ॥

परिदर और उपकुश की चिकित्सा—परिदर और उपकुश रोग में शीताद में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये और वमन-विरेचन आदि से शरीर का शोधन और नस्यादि से शिर शोधन प्रथम ही कर लेना चाहिये ॥ १ ॥

काकोदुम्बरिकापत्रैर्मन्दं विस्रावयेद्भिषक्। व्योषणैः सक्षौद्रयुतैश्च सव्योषः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥

कठूमर के पत्तों से दाँत को घिस कर रक्त का स्राव कराकर पश्चात् सेंधानमक, सोंठ, मरिच और पीपल समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर उस पर अङ्गुलियों से धीरे २ मर्दन करे, इससे परिदर और उपकुश रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

वैदर्भाधिमांसनाडीदन्तकाधिदन्तशिरोरोगाणां चिकित्सामाह—

शस्त्रेणोत्कृत्य वैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत्। ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ १ ॥

वैदर्भादि रोग चिकित्सा—वैदर्भ रोग को शस्त्र से काट कर मसूढ़ों को शुद्ध करना चाहिये। पश्चात् क्षार का उस पर प्रयोग करना चाहिये तथा सम्पूर्ण शीतल क्रियाओं को करना चाहिये ॥ १ ॥

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत्। कृमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥२॥

अधिकदन्त ( राजिवर्दन ) रोग में अधिक दांत को उखाड़ देना चाहिये और दन्तमूल को अग्नि से दाग कर क्रिमिदन्त रोग में कही हुई चिकित्सा के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥२॥

छित्त्वाऽधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत्। वचातेजोवतीपाठास्वर्जिकायावशूकजैः ॥ ३ ॥
क्षौद्रद्वितीयपिप्पल्यः कवले चात्र कीर्तिताः। पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावनः ॥ ४ ॥

अधिमांस रोग में अधिमांस को काट कर उस पर वच, तेजबल, पुरइनपाढ़ी, सज्जीखार और यवाखार के समान मिलित चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर लगाना चाहिये तथा पीपल के साथ में मधु मिलाकर कवल धारण और पटोलपत्र, निम्बपत्र, हरड़, बहेड़ा, तथा आँवला का विधिपूर्वक क्वाथ कर उससे अधिमांस को धोना चाहिये ॥ ३-४ ॥

विद्रध्युक्तं च विधिवद्विद्ध्याद्दन्तविद्रधौ। शस्त्रकर्म नरस्तत्र कुशलेनैव कारयेत् ॥ ५ ॥

दन्तविद्रधि रोग में कही हुई चिकित्सा और कुशल वैद्य से शस्त्रकर्म कराना चाहिये ॥ ५ ॥

नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत्। यद्दन्तमध्ये जायेत नाडीदन्तं समुद्धरेत् ॥ ६ ॥

दन्तनाड़ी चिकित्सा--नाड़ीव्रण नाशक चिकित्सा दन्तनाड़ी रोग में करनी चाहिये और जिस दाँत में नाड़ी उत्पन्न हो जावे उसे उखाड़ देना चाहिये ॥ ६ ॥

छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यदि नोपरमो भवेत्। उद्धृत्य च दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥७॥

शस्त्र से मांस को छील देने पर भी यदि शान्ति नहीं होवे तो दाँत को उखाड़ कर क्षार से अथवा अग्नि से उस व्रण स्थान को जला देना चाहिये ॥ ७ ॥

भिनत्त्युपेक्षिते दन्ते हनु सास्थिगतिर्ध्रुवम्। उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं प्रस्रवेद्विवि ॥ ८ ॥

दाँत की उपेक्षा करने से वह दाँत अस्थि की गति के साथ २ हनु को भी भेद देता है ऊपर के दाँत को उखाड़ने से अत्यन्त रक्त का स्राव होता है ॥ ८ ॥

रक्तातिसेकात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति हि। काणः संजायते जन्तुरर्दितं तस्य जायते ॥९॥
चलमप्युत्तरं दन्तमतो नैवोद्धरेद्भिषक्। समूलं दशनं दस्मादुद्धरेद्भग्नमस्थि च ॥ १० ॥

रक्त के अधिक स्राव होने से ( अनेक प्रकार के ) भयङ्कर रोग होते हैं। इससे मनुष्य काना हो जाता है तथा उसे अर्दित रोग हो जाता है इसलिये ऊपर के दाँत यदि हिलते भी हों तो वैद्य उन्हें नहीं उखाड़े। दाँत को मूलसहित और टूटी हुई हड्डी सहित उखाड़ना चाहिये ॥ ९-१० ॥

जात्यादितैलम्—

कषायैर्जातिमदनकण्टकीस्वादुकण्टकैः। मञ्जिष्ठालोध्रखदिरयष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ॥
तैलं यस्साधितं तच्च हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ १ ॥

जात्यादि तैल--चमेली के पत्र, मैनफल, छोटी कटेरी और विकंकत को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर जितना प्रस्तुत क्वाथ हो उसके चतुर्थांश तिलका तेल और तेल के चतुर्थांश मजीठ, लोध, खैर तथा जेठीमधु का समान मिलित कल्क मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर सेवन करने से दाँत की नाड़ी नष्ट होती है ॥ १ ॥

दन्तरोगाणां चिकित्सा—

दन्तरोगेषु सर्वेषु शस्तो वातहरो विधिः। पक्वं तैलं कवोष्णं च शस्तं कवलधारणे ॥ १ ॥

दन्तरोग-चिकित्सा--सम्पूर्ण दन्तरोगों में वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् वात-नाशक औषधियों द्वारा वातनाशक सिद्धतैलतैल को कुछ उष्णकर कवल धारण करना चाहिये इससे दन्तरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं कृमिदन्तकम्। तथाऽवपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः ॥ २ ॥

क्रिमिदन्त-चिकित्सा--अचल कृमिदन्त में स्वेद देकर विस्रावण कराना चाहिये और वातनाशक अवपीडन नस्य देकर एवं वातनाशक स्नेहों का गण्डूष धारण करा कर कृमिदन्त को नष्ट करना चाहिये ॥ २ ॥

भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः। कृमिदन्तापहं कोष्णं हिङ्गु दन्तान्तरे स्थितम् ॥

भद्रदार्वादि गण की औषधियों तथा पुनर्नवा को पीस कर लेप करने से, स्निग्ध पदार्थों के भोजन करने से स्निग्ध पथ्य सेवन करने से और कोष्ण ( कुछ गरम २ ) हींग को दाँतों में रखने से कृमिदन्त रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

बृहतीभूमिकदम्बीपञ्चाङ्गुलकण्टकारिकाक्वाथः । गण्डूषस्तैलयुक्तः कृमिदन्तकवेदनानाशकः ॥ ४ ॥

बड़ी कटेरी, गोरखमुण्डी, एरण्डमूल और छोटी कटेरी को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर इसमें तेल का प्रक्षेप देकर गण्डूष धारण करने से कृमिदन्त की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

नीलीवायसजङ्घाकटुतुम्बीमूलमेकैकम् । सञ्चूर्ण्य दशनविधृतं दशनक्रिमिपातनं प्राहुः ॥ ५ ॥

नील की जड़, काकजङ्घा और कड़वी तरोई की जड़, इनमें से किसी एक को लेकर चूर्ण कर दाँतों में रखने से दाँत के कीड़े गिर जाते हैं ॥ ५ ॥

पिष्ट्वा च सारिवापर्णं दृढं दन्तेषु धारयेत् । पतन्ति दन्तकीटाश्च चाञ्चल्यं हरति क्षणात् ॥ ६ ॥

सारिवा के पत्तों को पीस कर दृढ़ता के साथ दाँतों में धारण करने से दांत के कीड़े गिर जाते हैं और दाँतों का हिलना भी शीघ्र ही बन्द हो जाता है ॥ ६ ॥

कासीसं हिङ्गु सौराष्ट्री देवदारु समं जलैः । गुटिकां धारयेद्दन्तकृमिशूलहरां पराम् ॥ ७ ॥

कासीस, हींग, फिटकिरी और देवदारु इनको समभाग लेकर जल के साथ वटी बनाकर दाँतों में धारण करने से दन्त कृमि और दन्तशूल नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

दन्तहर्षचिकित्सा—

स्नेहानां कवलाः कोष्णाः सर्पिषस्त्रिवृतस्य च । निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ १ ॥

दन्तहर्ष चिकित्सा—दन्तहर्ष रोग में स्नेह पदार्थों को कुछ २ उष्ण करके उनका कवल धारण तथा निशोथ के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ घृत का व्यवहार करना चाहिये और वात नाशक द्रव्यों के बने हुए क्वाथ का सेवन करना चाहिये । इससे दन्तहर्ष रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

स्नैहिकोऽत्र हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च । रसा रसयवाग्वश्च क्षीरं सन्तानिकाघृतम् ॥
शिरोबस्तिर्हितश्चापि क्रमो यश्चानिलापहः ॥ २ ॥

दन्तहर्ष रोग में स्नेह प्रभृति युक्त धूम और स्नैहिक नस्य तथा रस युक्त भोज्य पदार्थ, मांसरस और रस युक्त यवागू, दूध मलाई और घृत देना चाहिये तथा शिरोबस्ति और वातनाशक सभी उपाय करना चाहिये ॥ २ ॥

आच्छिद्य दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् । लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत् ॥ ३ ॥

दन्तशर्करा चिकित्सा—दन्त शर्करा रोग में मसूड़ों को बिना छेदन किये ही दांत की शर्करा को उखाड़ देवे और पश्चात् लाख के चूर्ण में मिलाकर दाँतों पर शनैः शनैः अङ्गुलियों के द्वारा मर्दन करे ॥ ३ ॥

दन्तहर्षक्रिया चात्र कुर्यान्निरवशेषतः ।

दन्तशर्करा रोग में दन्तहर्ष रोग की सम्पूर्ण चिकित्सा करे ॥ ३ ॥

कपालिका कृच्छ्रतमा तत्राप्येषा क्रिया हिता ॥ ४ ॥

कपालिका-चिकित्सा—कपालिका रोग कष्ट साध्य है उसमें भी दन्तशर्करा रोग की चिकित्सा लाभदायक होती है ॥ ४ ॥

सामान्यचिकित्सा—

अरिमेदत्वचः क्षुण्णां पचेच्छतपलोन्मिताम् । जलद्रोणेन तत्क्वाथं गृह्णीयात्पादशेषितम् ॥ १ ॥
तैलस्यार्धाढकं दत्त्वा कल्कैः कर्षमितैः पचेत् । अरिमेदलवङ्गाभ्यां गैरिकागुरुपद्मकैः ॥ २ ॥
मञ्जिष्ठालोध्रमधुकैर्लाक्षान्यग्रोधमुस्तकैः । त्वग्जातीफलकर्पूरकङ्कोलखदिरैस्तथा ॥ ३ ॥
पतङ्गधातकीपुष्पसूक्ष्मैलानागकेसरैः । कट्फलेन च संसिद्धं तैलं मुखरुजं जयेत् ॥ ४ ॥
प्रदुष्टमांसं चलितं दन्तवृन्दं च सौषिरम् । शीतादं दन्तहर्षं च विद्रधिं कृमिदन्तकम् ॥
दन्तस्फुटनदौर्गन्ध्यं निहन्त्यास्यगतं ध्रुवम् ॥ ५ ॥

अरिमेदादि तैल—विट्खदिर की हरी छाल ५ सेर को कूट चूर्ण कर एक द्रोण ( आठ आढक ) जल में मिलाकर क्वाथ करे चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छान कर उसमें आधा आढक ( २ प्रस्थ ) तिल का तैल और विट्खदिर, लवंग, गेरू, अगर, पद्माकाठ, मंजीठ, लोध, मुलहठी, लाख, बरगद की छाल, नागरमोथा, दालचीनी, जायफल, कपूर, कङ्कोल मरिच, खैर, पतङ्ग काठ, धाय के फूल, छोटी इलायची, नागकेशर और कायफल प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक कल्क कर उसको एकत्र मिलाकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर, व्यवहार में लाने से मुख

ही पीड़ा नष्ट होती है, मसूड़े के दूषित मांस, हिलते हुए दाँत सड़े हुए दांत, सौषिर, शीताद, दन्तहर्ष, दन्तविद्रधि, कृमिदन्त, दन्तस्फुटन, दौर्गन्ध्य, जिह्वा की पीड़ा, तालु की पीड़ा और ओष्ठ की पीड़ा इन सबको यह तेल नष्ट करता है ॥ १–५ ॥

लाक्षादितैलम्—

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थमितं पचेत्। द्रव्यैः पलमितैरेतैः क्वाथैश्चापि चतुर्गुणैः ॥ १ ॥
लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेसरपद्मकैः। चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गण्डूषे धृतम् ॥ २ ॥
दालनं दन्तचाल्यं च दन्तमोक्षकपालिकाम्। शीतादं पूतिवक्त्रं च विरुचिं विरसास्यताम् ॥
हन्यादाशु गदानेतान्कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान्। लाक्षादिकमिदं तैलं दन्तरोगेषु पूजितम् ॥४॥

लाक्षादि तैल—तिल का तैल, लाख का स्वरस, गोदुग्ध प्रत्येक एक २ प्रस्थ और लोध, कायफर, मजीठ, कमल केसर, पद्मकाठ, रक्तचन्दन, नील कमल और जेठी मधु प्रत्येक एक २ पल (४-४ कर्ष) लेकर विधिपूर्वक कल्क कर लेवे तथा इन्हीं लोध आदि द्रव्यों का विधिपूर्वक बना प्रस्तुत क्वाथ ४ प्रस्थ लेवे (लोध आदि समान मिलित सो पल और जल एक द्रोण मिलाकर क्वाथ करे चतुर्थांश अर्थात् एक आढ़क या ४ प्रस्थ रहने पर उतार कर छान लेवे), इन सब (तैल, लाख के रस, दूध, कल्क और क्वाथ आदि) को एकत्र कर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर मुख में धारण करने से दालन, दन्तचाल, दन्तमोक्ष, कपालिका, शीताद, पूतिवक्त्र, अरुचि और मुख की विरसता आदि शीघ्र नष्ट होते हैं और दांतों को भी स्थिर करता है। यह लाक्षादि नामक तैल दांत के रोगों के लिये अति उत्तम माना गया है ॥ १–४ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च।
चूर्णं शस्तं घर्षणे तद्द्विजानां रक्तस्रावं हन्ति कण्डूरुजं च ॥ १ ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूठ, दारुहलदी, लोध, नागरमोथा, मजीठ, पुरइनपाढ़ी, कुटकी, वच अथवा माल कांगनी, हलदी, प्रत्येक समान भाग का चूर्ण बनाकर दांतों पर घिसने से रक्त स्राव, कण्डू और पीड़ा आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

सौराष्ट्रीत्रिफलामदग्रुटिकृमिघ्निर्तुत्थपत्राङ्गकं
कासीसं खदिरस्य सारममलं मायाफलं चाऽऽयसम्।
जीमूतं च समांशकं द्विसकलं सकुटय वस्त्रे मृदा
पूतं तोययुतं रदेषु रदरुग्विध्वंसिशुद्धिप्रदकम् ॥ २ ॥

सौराष्ट्र्यादि योग—फिटकिरी, हरड़, बहेड़ा, आंवला, सुपारी, इलायची, वायविडंग, तूतिया, पतंग नामक लकड़ी, कासीस, खैर, माजूफल और लोहकिट्ट तथा नागरमोथा प्रत्येक समभाग लेकर कूट पीसकर वस्त्र में छान कर जल में मिलाकर दांतों पर घिसने से दांतों की पीड़ा नष्ट होती है और दांत स्वच्छ होता है ॥ २ ॥

छिन्नया पिष्टया धारा दन्तशूलो विनश्यति। स्वेदिता रवितोयेन चलतां नाशयेद् ध्रुवम् ॥

दन्तशूल नाशक योग—गुरुच को पीसकर मकोय का रस मिलाकर दांतों पर लगाने से दांत की पीड़ा नष्ट होती है और आक के दूध में मकोय का रस मिलाकर स्वेदन करने से दांतों का हिलना अवश्य ही नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

जातीपत्रादिचूर्णम्—जातीपत्रपुनर्नवागजकणाकोरण्टकुष्ठं वचा
शुण्ठीदीप्यहरीतकीतिलसमं श्लक्ष्णं मृदा चूर्णयेत्।
तच्चूर्णं वदने धृतं विजयते दौर्गन्ध्यदन्तव्यथा
चाञ्चल्यव्रणमतिशोथपृथुरुक्कण्डूकृमिव्यापदः ॥ १ ॥

जातीपत्रादि चूर्ण—चमेली के पत्ते, पुनर्नवा, गजपीपरि, पेर की छाल, कूट, वच, सोंठ अजवाइन, हरड़ और तिल प्रत्येक समभाग का श्लक्ष्ण चूर्ण मुख में धारण करने से दुर्गंधि, दांतों की पीड़ा, दांतों का हिलना, व्रण, शोथ, पीड़ा, कण्डू और कृमिदन्त आदि सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम्। तथाऽतिकठिनं भक्ष्यं दन्तरोगी विवर्जयेत् ॥

दन्तरोग में अपथ्य—अम्लरस, शीतल जल, रूक्ष अन्न, दन्त धावन तथा अत्यन्त कठिन (कड़ा) पदार्थ दांत का रोगी त्याग दे॥ २॥

## अथ जिह्वारोगाणां चिकित्सामाह।

जिह्वागतविकाराणां शस्तं शोणितमोक्षणम्। गुडूचीपिप्पलीनिम्बकषायः कटुभिः सह॥१॥

जिह्वा रोग चिकित्सा—जिह्वा रोगों में रक्तमोक्षण कराकर गुरुच, पीपल, नीम की छाल तथा त्रिकुटा (सोंठ, मरिच, पीपल) प्रत्येक समभाग का क्वाथ बनाकर कवलधारण करना लाभदायक है॥

ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक्चिकित्सितम्। कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु॥२॥

वातज जिह्वा रोग चिकित्सा—वातज ओष्ठरोग में चिकित्सा पहले कही गयी है वही चिकित्सा वातज जिह्वा रोग अर्थात् वात के कोप से जो जिह्वा में कांटे के समान रोग होता है उसमें करनी चाहिये॥ २॥

पित्तजेषु विघृष्टेषु निःसृते दुष्टशोणिते। प्रतिसारणगण्डूषं नस्यं च मधुरं हितम्॥ ३॥

पित्तज जिह्वारोग चिकित्सा—पित्तज जिह्वारोग में जिह्वा के कण्टकों को घिसकर दूषित रक्त निकाल कर मधुर औषधियों के योग से प्रतिसारण, गण्डूष, नस्य और मधुर द्रव्यों का सेवन कराना चाहिये। इससे लाभ होता है॥ ३॥

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत्। शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत्॥ ४॥
व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम्। उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेभिस्तैलं च पाचयेत्॥ ५॥

उपजिह्वा रोग चिकित्सा—उपजिह्वा रोग में खुरच कर क्षार से प्रतिसारण अर्थात् क्षार उस पर लगाना चाहिये और शिरोविरेचन, गण्डूषधारण तथा धूमपान कराना चाहिये और सोंठ, मरिच, पीपल, क्षार, हरड़, चित्रकमूल प्रत्येक समभाग के चूर्ण को उपजिह्वा पर घिसना चाहिये अथवा इन्हीं औषधियों के कल्क के साथ विधिपूर्वक तैल सिद्धकर सेवन करने से उपजिह्वा रोग शमन होता है॥ ४-५॥

गृहधूमारनालेन क्वाथ समधुसैन्धवम्। पाणिना मर्दयेच्चाऽस्य उपजिह्वाप्रशान्तये॥ ६॥

गृहधूम (झाला) और कांजी का क्वाथ बना कर उसमें मधु और सेंधानमक मिलाकर अङ्गुलियों से मर्दन करने से उपजिह्वा नष्ट होती है॥ ६॥

निर्गुण्डी मुसलीकल्कं चर्वयेदुपजिह्विकम्। काञ्चनारत्वचः क्वाथ प्रातरास्य धृतः ध्रुवम्।
कुर्यात्सप्तदिनो जिह्वादरणोन्मूलनं ध्रुवम्॥ ७॥

निर्गुण्डी योग—निर्गुण्डी और मूसली का कल्क चबाने से उपजिह्वा नष्ट होती है और कचनार की छाल का क्वाथ बनाकर उसमें घी मिलाकर प्रातःकाल बार २ मुख में धारण करने से जिह्वा का स्फुटन (फटना) नष्ट होता है॥ ७॥

गलशुण्डीचिकित्सा—

पुष्पयाकर दर शुण्ड्यां रस गण्डूषधारणे। कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैः सह॥ १॥

गलशुण्डी चिकित्सा—गलशुण्डी रोग में कफनाशक औषधियों के रस का गण्डूष धारण कराकर कूठ, मरिच, वच, सेंधानमक, पीपल, पुरवाप दी और नागरमोथा प्रत्येक समभाग के चूर्ण को मधु मिलाकर गलशुण्डी रोग पर लगाना चाहिये॥ १॥

सर्वैरेभिश्च कार्यं गलशुण्डीप्रघर्षणम्। अङ्गुष्ठाङ्गुलिसंदंशेनाकृष्य गलशुण्डिकाम्॥२॥
छेदयेन्मण्डलाग्रेण जिह्वोपरि तु संस्थिताम्। अतिच्छेदात्स्रवेद्रक्तं तस्माद्धन्यात्स्रियेत च॥ ३॥
हीनच्छेदात्तु शोफो लालाप्रसेकस्तथा भ्रमः। तस्मात्सम्यक् प्रयत्नेन छेदकर्मा विशारदः॥ ४॥

अंगूठे और अंगुली से संडसी (चिमटी) से पकड़ कर गलशुण्डी को खींच कर जिह्वा पर स्थित गलशुण्डी को मण्डलाग्र शस्त्र से सावधानी के साथ छेदन करे। क्योंकि अत्यन्त छेदन करने से अधिक रक्त का स्राव होता है जिससे रोगी मर जाता है और कम छेदन करने से शोथ, लालास्राव और भ्रम रोग आदि होते हैं। इसलिये सावधानीपूर्वक छेदनादि कर्म वही कुशल वैद्य करे जो कभी यह कार्य कर चुका हो॥ २-४॥

गलशुण्डीं तु संछिद्य कुर्यात्... कवलम्। ...शिवाकुष्ठवचामरिचनागरैः॥ ५॥
क्षौद्रयुक्तैः ...तत्। प्रतिसारयेत्। ...धूम ... गलशुण्डे॥ ६॥

एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि । तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥

गलशुण्डी का छेदन करके पीपल, अतीस, कूट, वच, मरिच, सोंठ तथा नमक प्रत्येक समभाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर उसमें मधु मिलाकर गलशुण्डी पर अँगुलियों से शनै २ मर्दन करे। तुण्डिकेरी, अध्रुव अथवा अध्रुषरोग, कच्छप, संघात और तालु पुप्पुट इन सब रोगों में इसी विधि से शस्त्र कर्म करना चाहिये ॥ ६ ॥

स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ॥ ७ ॥

तालुपाक रोग में पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। तालु शोषरोग में स्नेहन, स्वेदन कर्म करके वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

रोहिणी चिकित्सा—

रोहिणीनां तु साध्यानां हितं शोणितमोक्षणम् । वमनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥१॥

रोहिणी चिकित्सा—साध्यरोहिणी रोग में रक्तमोक्षण और वमन, धूमपान, गण्डूषधारण और नस्यकर्म करना चाहिये ॥ १ ॥

वातजां तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् । सुखोष्णान्स्नेहगण्डूषान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ॥२॥

वातरोहिणी चिकित्सा—वातजरोहिणी में रक्तमोक्षण कराकर लवण से प्रतिसारण और बार बार सुखोष्ण स्नेह का गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

विस्राव्य पित्तसम्भूतां सिताक्षौद्रप्रियङ्गुभिः । सर्पयेत्कवलो द्राक्षापरूषैः क्वथितैर्हितः ॥ ३ ॥

पित्तज रोहिणी चिकित्सा—पित्तज रोहिणी रोग में रक्तमोक्षण कराकर शकरा, मधु और प्रियङ्गु के चूर्ण का कल्क बनाकर उससे घर्षण और दाख तथा फालसे के क्वाथ या कवल धारण करना चाहिये ॥ ३ ॥

अगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् । श्वेताविडङ्गदन्तीषु तैलं सिद्धं ससैन्धवम् ॥ ४ ॥

कफज रोहिणी चिकित्सा—कफजरोहिणी में रक्तमोक्षण कराकर गृहधूम (झाला), सोंठ, मरिच और पीपल प्रत्येक समान भाग का कल्क बनाकर उससे प्रतिसारण कराकर श्वेत अपरा जिता या फिटकिरी बायविडङ्ग और दन्तीमूल द्वारा सिद्ध किया तैल में सेंधानमक के चूर्ण का प्रक्षेप देकर नस्य लेना चाहिये और इसी तैल का कवलधारण करना चाहिये ॥ ४ ॥

नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोत्थिते । पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ॥ ५ ॥

रक्तजरोहिणी की चिकित्सा पित्तजरोहिणी के समान ही करनी चाहिये ॥ ५ ॥

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् । एककाले यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ॥

कण्ठशालूक चिकित्सा—कण्ठशालूक रोग में रक्तमोक्षण कराकर तुण्डिकेरी के समान चिकित्सा करनी चाहिये और उसमें एक ही समय स्निग्ध तथा अल्प प्रमाण में यवान्न का पथ्य देना चाहिये ॥ ६ ॥

उपजिह्विकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकम् ।

अधिजिह्वक रोग की चिकित्सा—अधिजिह्वक रोग की चिकित्सा उपजिह्वकरोग के समान करनी चाहिये ॥

एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ॥ ७ ॥

एकवृन्द-चिकित्सा—एक वृन्द रोग में रक्तमोक्षण कराकर शोधन करना चाहिये ॥ ७ ॥

एकवृन्दमिव प्रायो वृन्दं च समुपाचरेत् ।

वृन्द-चिकित्सा—एकवृन्द के समान ही वृन्द रोग की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ॥

गिलायु रोग चिकित्सा—गिलायु रोग को शस्त्र से चीर फार कर व्रणवत् चिकित्सा करनी चाहिये ॥

अमर्मस्थं सुसम्पक्वं भेदयेद्गलविद्रधिम् ॥ ८ ॥

गलविद्रधि चिकित्सा—गल विद्रधि जो मर्मस्थान में नहीं हो और भली भाँति पक गयी हो उसका शस्त्र से छेदन कर व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

सामान्यानां गलरोगाणां चिकित्सा—

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च । चिकित्सकश्चिकित्सां तु कुशलोऽत्र समाचरेत् ॥

गल रोगों की सामान्य चिकित्सा—गल रोगों में कुशल वैद्य रक्तमोक्षण कराकर शोधन नस्यादि कर्म करे ॥ १ ॥

**क्वाथं कृत्वाथ दार्वीत्वङ्निम्बतार्क्ष्यकलिङ्गजम् । हरीतकीकषायो वा हितो माक्षिकसंयुतः ॥ २ ॥**

दार्व्यादि क्वाथ—दारुहल्दी, दालचीनी, नीम की छाल, रसौत और इन्द्रजौ प्रत्येक सममाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर पिलावे अथवा हरीतकी का क्वाथ बनाकर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करावे ॥ २ ॥

**कटुकातिविषादारुपाठामुस्ताकलिङ्गकाः । गोमूत्रक्वथिताः पीताः कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ३ ॥**

कट्वादि क्वाथ—कुटकी, अतीस, दारुहल्दी, पुरइनपाढ़ी, नागरमोथा और इन्द्रजौ प्रत्येक सममाग लेकर गोमूत्र के साथ क्वाथ करके पान करने से कण्ठरोग नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

**मृद्वीकाकटुकाव्योषं दार्वीत्वक्त्रिफलाघनम् । पाठा रसाञ्जनं दूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ॥ ४ ॥**
**क्षौद्रयुक्तं विधातव्यं गलरोगे महौषधम् । योगास्त्वेते त्रयः प्रोक्ता वातपित्तकफापहाः ॥ ५ ॥**

त्रिदोष नाशक योग—मुनक्का, कुटकी, सोंठ, मरिच और पीपल के सममाग चूर्ण को शहद में मिलाकर या गोली बनाकर गले में धारण करे तो वातिक गलरोग नाश होता है। दारुहल्दी, दालचीनी, हरड़, बहेड़ा, आँवला, नागरमोथा के सममाग चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटने से पित्तज गलरोग नाश होता है। पुरइनपाढ़ी, रसौत, दूब और तेजबल के सममाग चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर मुख में धारण करे अथवा चाटे तो कफज गल रोग नष्ट होते हैं ॥

**यवाग्रजं तेजवतीं सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् ।**
**क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ ६ ॥**

यवाग्रजादि वटी—जवाखार, तेजबल, पुरइनपाढ़ी, रसौत, दारुहल्दी और पीपल प्रत्येक सममाग लेकर चूर्ण कर मधु मिलाकर विधिपूर्वक वटी बनाकर सेवन करने से सब प्रकार के गलरोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

समस्तमुखरोगाणां चिकित्सा—

**वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् । तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलगण्डूषयोः ॥ १ ॥**

वातज सर्वसर चिकित्सा—वातज सर्वसर रोग में वातनाशक औषधियों के चूर्ण में सेंधानमक मिलाकर प्रतिसारण करके वातनाशक औषधियों से सिद्ध किये तैल का नस्य देना और कवल धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

**पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः । सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ २ ॥**

पित्तज सर्वसर चिकित्सा—पित्तज सर्वसर रोग में वमन-विरेचन से शरीर को शुद्ध कराकर सब प्रकार की पित्तनाशक, मधुर तथा शीतल चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २ ॥

**प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च । कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ॥ ३ ॥**

कफज सर्वसर चिकित्सा—कफज सर्वसर रोग में कफनाशक औषधियों से प्रतिसारण गण्डूष, धूमपान और वमन, विरेचनादि चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

**मुखपाके सिरावेधः शिरसश्च विरेचनम् । मधुमूत्रघृतक्षीरैः शीतैश्च कवलग्रहः ॥ १ ॥**

मुखपाक रोग चिकित्सा—मुखपाक रोग में शिरावेध कराकर शिरोविरेचन देना चाहिये और मधु, गोमूत्र, गोघृत, गोदुग्ध और अन्य शीतल पदार्थों का कवल धारण करना चाहिये ॥ १ ॥

**जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः । क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ २ ॥**

जातीपत्रादि क्वाथ—चमेली के पत्र, गुरुच, दाख, जवासा, दारुहल्दी, हरड़, बहेड़ा और आँवला प्रत्येक सममाग का क्वाथ बनाकर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर गण्डूष धारण करने से मुखपाक रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

**कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ ३ ॥**

मुखपाक रोग में चमेली के पत्तों को नित्य अनेक बार चबाना चाहिये ॥ ३ ॥

**कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवचर्वणतस्त्र्यहात् । मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ ४ ॥**

कृष्णजीरकादि योग—कृष्णजीरा, कूठ, इन्द्रजौ और इनको तीन दिन तक चबाने से मुखपाक, व्रण, क्लेद ( लालस्राव ) और मुख दौर्गन्ध्य नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवैः। पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ ५ ॥

मुखधावन योग—परवल, नीम, जामुन, आम और मालती के पत्ते को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर सेवन करने से मुखरोग दूर होता है ॥ ५ ॥

पञ्चपल्लवजः क्वाथस्त्रिफलासम्भवोऽथ वा। मुखपाके प्रयोक्तव्यः सक्षौद्रो मुखधावने ॥ ६ ॥

उपर्युक्त पञ्च पल्लव का बना क्वाथ अथवा हरड़, बहेड़ा और आंवला का बना हुआ क्वाथ शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर मुखपाक रोग में प्रयोग करना चाहिये ॥ ६ ॥

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया। सक्षौद्रो मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहः ॥ ७ ॥

रसाञ्जन योग—दारुहल्दी का क्वाथ बनाकर गाढ़ा कर रस क्रिया द्वारा रसवत बनाकर उसमें मधु मिलाकर मुख में धारण करने से मुख रोग, रक्तदोष और नाड़ी व्रण ये सभी नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

सप्तच्छदो शीरपटोलमुस्ताहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ ८ ॥

सप्तच्छदादि योग—छितवन की छाल, खस, परवल के पत्र नागरमोथा, हरड़, कुटकी, जेठीमधु, अमलतास की गुद्दी और रक्त चन्दन को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ सिद्धकर पान करने से मुखपाक रोग नष्ट होता है ॥ ८ ॥

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृतानाम्।
पीतः कषायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चाऽऽस्यगदानशेषान् ॥ ९ ॥

पटोलादि योग—परवल के पत्र, सोंठ, हरड़, बहेड़ा, आंवला, माहरि, त्रायमाणा, कुटकी, हलदी, दारुहल्दी और गुरुच को समभाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अथवा मुख में धारण करने से सब प्रकार के मुख रोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च। सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः ॥१०॥

दग्धमुख चिकित्सा—तिल, नील कमल, घृत, शर्करा और दूध तथा लोध इन सबको पीसकर गण्डूष धारण करने से दग्ध मुख का दाह नष्ट होता है ॥ १० ॥

हरिद्रातैलम्—

हरिद्रां निम्बपत्राणि मधुकं नीलमुत्पलम्। तैलमेभिर्विपक्वञ्च मुखपाकहरं परम् ॥ १ ॥

हरिद्रा तैल—हल्दी, नीम के पत्ते, मुलहठी और नीलकमल समान भाग का कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना पाकार्थ जल देकर विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर सेवन करने से मुखपाक नष्ट करने में उत्तम है ॥ १ ॥

यष्टीमध्वादितैलम्—

यष्टीमधुपलमेकं त्रिंशन्नीलोत्पलस्य तैलस्य। प्रस्थं तद्द्विगुणपयो विधिना पक्वं तु नस्येन ॥
निशि वदनस्य स्रावं क्षपयति गात्रस्य दोषसङ्घातम्।
वपुःस्वर्णसवर्णं क्रमशोऽभ्यङ्गेन मनुजानाम् ॥ २ ॥

यष्टीमध्वादि तैल—जेठी मधु एक पल, नीलकमल तीस पल दोनों का विधिपूर्वक कल्क करे और मूर्च्छित तिल का तेल एक प्रस्थ तथा तेल के दुगुना ( २ प्रस्थ ) गोदुग्ध और चौगुना ( पाकार्थ ) जल लेकर सबको एकत्र कर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर रात्रि में इस तेल का नस्य लेने से मुखस्राव तथा मुख के अनेक रोग समूह नष्ट होते हैं। यदि मनुष्य इस तेल का नित्य अभ्यङ्ग ( मर्दन ) करे तो शरीर स्वर्ण के समान कान्ति वाला अवश्य हो जाता है ॥ १-२ ॥

खदिरादिगुटिका—

खदिरस्य तुलां तोयद्रोणे पक्त्वाऽष्टशेषिते। जातीकोशेन्दुपूगैश्च चातुर्जातमृगाण्डजैः ॥ १ ॥
पृथक्कर्षमितैः पिष्टैर्मेलयित्वा घनोपमाम्। गुटीं कृत्वा मुखे धार्या सा निहन्त्यखिलान्गदान् ॥
जिह्वौष्ठदन्तवदनगलतालुसमुद्भवान् ॥ २ ॥

खदिरादि गुटिका—खैर की छाल एक तुला ( १०० पल ) और जल एक द्रोण ( ४ आढक ) लेकर क्वाथ की विधि से पाक करे, जब अष्टमांश ( २ प्रस्थ ) शेष रहे तब उतार-छानकर उसे

फिर औटा कर गाढ़ाकर उसमें जावित्री, कपूर, सुपारी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर और कस्तूरी पृथक् २ एक २ कर्ष चूर्ण मिलाकर खरल में मर्दन कर चने के प्रमाण की बटी बना कर मुख में धारण करने से जीभ, ओठ, दाँत, मुख, गला और तालु के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥

अन्यच्च—

पृथक् खदिरसारस्य खेर्वा चूर्णं विनिक्षिपेत् । जातीकङ्कोलकर्पूरक्रमुकाणां विचक्षणः ॥
गुटिकास्तु प्रकर्तव्या मुखे स्थाप्याः सदैव हि ॥ १ ॥

जावित्री, कङ्कोल मरिच, कपूर तथा सुपारी को पृथक् २ समान भाग का चूर्णकर चूर्ण के समान खैर का चूर्ण मिलाकर मर्दन कर जल के साथ विधिपूर्वक बटी बनाकर नित्य मुख में धारण करने से मुख के समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

ताम्बूलमध्यस्थितचूर्णकेन दग्धं मुखं यस्य भवेत्कथंचित् ।
तैलेन गण्डूषमसौ विदध्यादम्लारनालेन पुनः पुनर्वा ॥ २ ॥

पान के चूने से जले मुख की चिकित्सा—पान में लगे हुए चूने से यदि किसी का मुख जल (कट) जावे तो बार २ तैल अथवा अम्लकांजी का गण्डूष धारण करना चाहिये ॥ २ ॥

पथ्यापथ्यविधि—

स्वेदो विरेको वमनं गण्डूषः प्रतिसारणम् । कवलोऽसृक्स्रुतिर्नस्यं धूमः शस्त्राग्निकर्मणि ॥१॥
तृणधान्यं यवा मुद्गाः कुलत्था जाङ्गलो रसः । बालमूलकं परोलं बालमूलकम् ॥ २ ॥
कर्पूरनीरं ताम्बूलं सतामु खदिरो घृतम् । कटुतिक्तौ च वर्गोऽयं मिश्रं स्यान्मुखरोगिणाम् ॥

पथ्यापथ्य—स्वेद कर्म, विरेचन, वमन, गण्डूषधारण, प्रतिसारण, कवलधारण रक्तस्राव (रक्तमोक्षण), नस्यकर्म, धूम्रपान, शस्त्रकर्म (चीर-फाड़) और अग्निकर्म (आग का जलाना) ये सभी क्रियायें तथा तृणधान्य, जौ, मूग, कुलथी, जांगलजीवों का मांसरस, मूसली करैली, परवल, छोटी मूली, कपूर का पानी, पान, उष्णोदक, खैर, घृत, कटुरस द्रव्य और तिक्तरस वाले द्रव्य ये सभी मुखरोग वाले के लिये पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

दन्तकाष्ठं स्नानमम्लं मत्स्यमानूपमामिषम् । दधि क्षीरं गुडं माषं रूक्षान्नं कठिनाशनम् ॥४॥
अधोमुखेन शयनं गुर्वभिष्यन्दकारि च । मुखरोगेषु सर्वेषु दिवानिद्रां च वर्जयेत् ॥ ५ ॥

दँतवावन, स्नान, अम्ल रस वाले पदार्थ, मछली, आनूप जीवों का मांस, दही, दूध, गुड़, उड़द, रूक्ष अन्न, कठिन (चबाने वाले) पदार्थ का भक्षण, नीचे मुँह करके सोना, गुरु तथा अभिष्यन्दी पदार्थ तथा दिन का सोना ये सब मुखरोग में अपथ्य हैं ॥ ४-५ ॥

## अथ कर्णरोगाधिकारः ।

अवश्यायजलक्रीडाकर्णकण्डूयनैरपि । मिथ्यायोगेन शस्त्रस्य कुपितोऽन्यैश्च कोपनैः ॥ १ ॥
प्राप्य स्रोतःसिरा कुर्यात्पृथक् स्रोतसि मारुतः । ते वै कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥

कर्ण रोग निदान—ओस में अधिक रहने से, जल में अधिक क्रीड़ा करने से, कान को अधिक खुजलाने से और व्यर्थ शस्त्र प्रयोग करने से अथवा अन्य प्रकार के कुपित होने वाले कारणों से कर्ण रोग उत्पन्न हो जाता है। ये कान में उत्पन्न होने वाले रोग २८ प्रकार के कहे गये हैं ॥ १-२ ॥

तत्र कर्णरोगाणां नामानि संख्यां चाह—

कर्णशूलं प्रणादश्च बाधिर्यं क्ष्वेड एव च । कर्णस्रावः कर्णकण्डूः कर्णगूथकमेव च ॥ ३ ॥
प्रतिनाहो कृमिकर्णो विद्रधिर्द्विविधस्तथा । कर्णपाकः पूतिकर्णस्तथैवार्शश्चतुर्विधम् ॥ ४ ॥
तथार्बुदं सप्तविधं शोफाश्च चतुर्विधाः । एते कर्णगता रोगा अष्टाविंशतिरीरिताः ॥ ५ ॥

कर्ण रोगों के नाम—कर्ण शूल, प्रणाद, बाधिर्य, क्ष्वेड, कर्णस्राव, कर्णकण्डू, कर्णगूथ, प्रतिनाह, कृमिकर्ण, दो प्रकार की विद्रधि, कर्णपाक, पूतिकर्ण, चार प्रकार के अर्श, सात प्रकार के अर्बुद रोग और चार प्रकार के शोथ इस प्रकार कर्ण रोग २८ होते हैं ॥ ३-५ ॥

तेषु कर्णशूलस्य सम्प्राप्तिपूर्वकं लक्षणमाह—

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।
करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः स कर्णशूलः कथितो दुरासदः ॥ १ ॥

कर्णशूल की सम्प्राप्ति—जिस कर्ण रोग में अपने कुपित होने वाले कारणों से कुपित प्रति लोमचारी वायु अन्य कुपित दोषों ( अपने २ कुपित होने वाले कारणों से कुपित रक्त कफादि ) से युक्त होकर कान में प्रवेश करके चारों ओर कान में वातादि दोषानुरूप अत्यन्त शूल उत्पन्न कर देता है उसे कर्ण शूल कहते हैं। कर्णशूल कष्ट साध्य है ॥ १ ॥

मूर्च्छाद्युपद्रवसमन्वितकर्णशूलस्यासाध्यतां चाह—

मूर्च्छा दाहो ज्वरः कास क्लमोऽथ वमथुस्तथा। उपद्रवा कर्णशूले भवन्त्येते मरिष्यतः ॥

कर्णशूल की असाध्यता—जिस कर्णशूल में मूर्च्छा, दाह, ज्वर, कास, क्लान्ति और वमन हो मरने वाले के लिये यह कर्णशूल हुआ है ऐसा जानना चाहिये अर्थात् ये कर्णशूल असाध्य हैं ॥२॥

कर्णनादस्य लक्षणमाह—

कर्णस्रोतःस्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान्। भेरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनाद स उच्यते ॥३॥

कर्णनाद के लक्षण—जब कुपित वायु कर्णस्रोतों में प्रवेश कर जाने से कान में भेरी ( नगाड़ा ) मृदङ्ग और शङ्ख आदि अनेक प्रकार के बाजों का शब्द निरन्तर सुनाई पड़ता है तब उसे कर्णनाद रोग कहते हैं ॥ ३ ॥

बाधिर्यमाह—यदा शब्दवह वायु स्रोत आवृत्य तिष्ठति।

शुद्ध श्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ४ ॥

बाधिर्य के लक्षण—जिस कर्णरोग में कुपित वायु कफ युक्त अथवा रक्तपित्त युक्त होकर अथवा अकेले जब शब्द वह स्रोत को घेर कर बैठ जाती है तब उससे बधिरता होती है। ( उसे बाधिर्य कहते हैं ) ॥ ४ ॥

कर्णक्ष्वेडमाह—वायु पित्तादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपम स्वनम्।

करोति कर्णयोः क्ष्वेड कर्णक्ष्वेड स उच्यते ॥ ५ ॥

कर्णक्ष्वेड के लक्षण—जिस कर्णरोग में कुपित वायु पित्तादि दोषों से युक्त होकर कर्णस्रोतों में स्थित होती है तब उसमें स बंशी के शब्द के समान अथवा फटे बाँस के छिद्रों में वायु प्रवेश-करने से जो शब्द होता है उसके समान शब्द कानों में निरन्तर करता है उसे कर्णक्ष्वेड कहते हैं ॥

कर्णस्रावमाह—

शिरोभिघातादथवा निमज्जतो जले प्रपाकादथ वाऽपि विद्रधेः।

स्रवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलार्दित स कर्णज स्राव इति प्रकीर्तितः ॥ ६ ॥

कर्णस्राव के लक्षण—जिस रोग में शिर में आघात लगने से अथवा जल में डूबने से अथवा कान में हुई विद्रधि के पक जाने से वायु के कोप से पीड़ित कान से पूय का स्राव होवे उसे कर्ण स्रावरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

कर्णकण्डूमाह—मारुतः कफसंयुक्त कर्णे कण्डूं करोति हि ॥

कर्णकण्डू के लक्षण—जिस रोग में कुपित वायु कफ से युक्त होकर कान में कण्डू उत्पन्न करे उसे कर्णकण्डू कहते हैं ॥

कर्णगूथमाह—पित्तोष्मशोषितः श्लेष्मा कुरुते कर्णगूथकम् ॥ ७ ॥

कर्णगूथ के लक्षण—जिस रोग में पित्त की उष्मा से कान में प्राप्त हुआ कफ अधिक प्रमाण में सूख जाता है उसे कर्णगूथ ( कान की मैल या खूंट ) कहते हैं ॥ ७ ॥

प्रतिनाहमाह—

सकर्णगूथो द्रवतां यदा गतो विलायितो घ्राणमुखं प्रपद्यते।

तदा स कर्णप्रतिनाहसञ्ज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥ ८ ॥

प्रतिनाह के लक्षण—उपरोक्त कर्णगूथ जब स्नेह ( तेल आदि के कान में छोड़ने से ) तथा स्वेदादि से द्रवित हो जाता है और विलीन हो जाता है तब नासिका और मुख में प्राप्त होता है। उसे कर्ण प्रतिनाह नामक रोग कहते हैं। इस प्रतिनाह के कारण सिर में अर्धावभेद रोग उत्पन्न हो जाता है ॥ ८ ॥

कृमिकर्णमाह—यदा तु मूर्च्छन्त्यथवाऽपि जन्तवः सृजन्त्यपत्यान्यथवाऽपि मक्षिकाः।

तदञ्जनत्वाच्छ्रवणो निरुच्यते भिषग्भिराद्यैः कृमिकर्णको गदः ॥ ९ ॥

कृमिकर्ण के लक्षण—जिस कर्णरोग में जब ( मांस रक्तादि के कोथ होने पर ) कानों में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं अथवा कानों में जब मक्खियाँ बैठकर कृमि उत्पन्न कर देती हैं तब कृमिरोग के लक्षणों से युक्त इस रोग को कृमिकर्णक कहते हैं ॥ ९ ॥

पतङ्गादिषु कर्णप्रविष्टेषु लक्षणमाह—

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि । अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥१०॥
कर्णो निस्तुद्यते तस्य तथा फरफरायते । कीटे चरति रुक्तीव्रा निष्पन्दे मन्दवेदना ॥ ११ ॥

कानों में कीटादि प्रविष्ट के लक्षण—जब कीट पतङ्गादि कान के स्रोतों में किसी प्रकार प्रवेश कर जाते हैं तब उससे व्याकुलता और कान में सुई चुभाने के समान पीड़ा तथा फरफराहट होती है तथा जब वह नहीं चलता है तब पीड़ा मन्द हो जाती है । इस प्रकार के लक्षण जब उत्पन्न हों तब कानों में कीट प्रवेश किया है ऐसा जानना चाहिये ॥ १०-११ ॥

द्विविधं कर्णविद्रधिमाह—

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्भवेत्तथा दोषकृतोऽपरः पुनः ।
स रक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ १२ ॥

कर्ण विद्रधि के लक्षण—कानों में क्षत और अभिघात से तथा वातादि दोषों के कारण भी विद्रधि उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार कानों में दो प्रकार की विद्रधि उत्पन्न होती है । इनमें रक्त पीत और अरुण वर्ण स्राव होता है, तथा सुई चुभाने के समान पीड़ा, धूमोद्गमन के समान होने वाली पीड़ा, दाह तथा चोष ( चूसने के समान पीड़ा ) होता है ॥ १२ ॥

कर्णपाकमाह—कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविक्लेदकृद्भवेत् ॥

कर्णपाक के लक्षण—पित्त दोष के अधिक कोप से कान के भीतर पाक हो जाता है जिसमें कोथ होता है और आर्द्रता रहती है ॥

पूतिकर्णमाह—

कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् । पूयं स्रवति वा पूति स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ॥१३॥

पूति कर्ण के लक्षण—कान में उत्पन्न हुई विद्रधि के पक जाने से अथवा कान में जल भर जाने से जो दुर्गन्धित पूय का स्राव होता रहता है उसे पूतिकर्ण कहते हैं ॥ १३ ॥

कर्णगतानां शोफार्बुदार्शसां लक्षणान्याह—

कर्णशोफार्बुदार्शांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १४ ॥

कान में होने वाले शोफादि के लक्षण—शोफ, अर्बुद और अर्शरोग के लक्षण जो पहले निदान में कह आये हैं उसीके अनुसार जानना चाहिये । केवल स्थान का भेद होता है अर्थात् उपरोक्त रोगों के लक्षणों के समान इनके भी लक्षण हैं ॥ १४ ॥

इदानीं चरकोक्तकर्णरोगचतुष्टयं वातपित्तकफसन्निपातजमाह—

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः स्रावस्तनुश्चाश्रवणं च वातात् ।

वातज कर्णरोग—वायु के कोप से जो कर्णरोग होता है उसमें नाद ( अनेक प्रकार के शब्द ) होता है, अत्यन्त पीड़ा होती है, कान का मल ( मैल ) सूख जाता है, स्राव अल्प होता है और सुनाई नहीं पड़ता है ॥

शोफः सरागो दरणं विदाहः सपूतिपीतस्रवणं च पित्तात् ॥ १५ ॥

पित्तज कर्णरोग—पित्त के कोप से जो कर्णरोग होता है उसमें शोथ होता है शोथ का वर्ण लालिमा युक्त होता है, फटने के समान पीड़ा होती है दाह होती है और पीतवर्ण का दुर्गन्धित स्राव होता है ॥

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्लस्निग्धस्रुतिः श्लेष्मभवाल्परुक् च ।

कफज कर्णरोग—कफ के कोप से जो कर्णरोग उत्पन्न होता है उसमें उलटा-पुलटा सुनाई देता है अर्थात् कहे कुछ और सुने कुछ, कान में कण्डू होती है, स्थिर ( निश्चल ) शोथ होता है, श्वेत वर्ण का तथा स्निग्ध स्राव ( स्रुति ) होता है और पीड़ा अल्प होती है ॥

सर्वाणि रूपाणि च सन्निपातात्स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १६ ॥

सन्निपातज कर्णरोग—सन्निपात से जो कर्णरोग होता है उसमें वातादि सभी दोषों के लक्षणों से युक्त और सभी दोषों के वर्णों से युक्त अधिक स्राव होता है तथा जिस दोष की बाहुल्यता होती है उसके प्रत्यक्ष लक्षण और वर्ण भी दीखाई पड़ते हैं ॥ १९ ॥

## अथ कर्णपालीरोगनिदानम्।

तत्र परिपोटलक्षणमाह—

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसैवातिवर्धिते। कर्णपाल्यां भवेच्छोथः सरुजः परिपोटवान्॥ १॥
कृष्णारुणनिभः स्तब्धः स वातात्परिपोटकः॥

परिपोट के लक्षण—सुकुमारता के कारण कान के छिद्रों को बहुत दिनों तक उपेक्षा करने से और एकाएक उसे अत्यन्त बढ़ाने से कर्णपाली में शोथ हो जाता है, उसमें पीड़ा होती है परिपोट होता है, वर्ण उसका कृष्ण या अरुण वर्ण का स्तम्भ (निश्चल) होता है उसे परिपोट कहते हैं, यह वात के कोप से होता है ॥ १½ ॥

उत्पातमाह—गुर्वाभरणसंयोगात्ताडनाद्घर्षणादपि ॥ २ ॥
शोथः पाल्यां भवेच्छ्यावो दाहपाकरुजान्वितः। रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः॥

उत्पात के लक्षण—कान में गुरु आभूषण के अधिक पहनने से, कान पर मारने से अथवा घर्षण होने से कर्णपाली में शोथ हो जाता है जिसका वर्ण श्याव होता है उसमें दाह होती है, पाक होता है और पीड़ा होती है तथा वर्ण रक्त भी होता है। इस रोग को उत्पात रोग कहते हैं, यह रक्त और पित्त के कोप से होता है ॥ २-३ ॥

उन्मन्थकमाह—

कर्णं बलाद्वर्धयतः पाल्यां वायुः प्रकुप्यति। कफं संगृह्य कुरुते शोथं स्तब्धमवेदनम्॥
उन्मन्थकः सकण्डूको विकारः कफवातजः॥ ४॥

उन्मन्थ के लक्षण—बलपूर्वक कान को बढ़ाने से कर्ण पाली में वायु कुपित हो जाती है और कफ को लेकर शोथ उत्पन्न कर देता है यह शोथ निश्चल, पीड़ा रहित अथवा अल्प पीड़ा युक्त होता है और उसमें कण्डू भी होता है। उसे उन्मथक रोग कहते हैं। यह वात और कफ के कोप से होता है ॥ ४ ॥

दुःखवर्धनमाह—संवर्ध्यमाने दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः।
शोथो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्धनः ॥ ५ ॥

दुःखवर्धन के लक्षण—कान को बढ़ाते हुए यदि उसमें दुर्विद्ध हो जावे (दैवकृत छिद्र के अतिरिक्त बीध कर बढ़ाने का यत्न किया जावे) तब उसमें कण्डू, दाह और पीड़ा युक्त शोथ हो जाता है तथा उसमें पाक भी होता है। उसे दुःखवर्धन कहते हैं। यह त्रिदोष के कोप से होता है ॥ ५ ॥

परिलेहिनमाह—कफासृक्कृमयः क्षुद्राः सर्षपाभा विसर्पिणः।
कुर्वन्ति पिडिकाः पाल्यां कण्डूदाहरुजान्विताः॥ ६॥
कफासृक्कृमिसम्भूता स विसर्पन्नितस्ततः। विलिह्यात्सकलां पालीं परिलेही च स स्मृतः॥७॥

परिलेहिन के लक्षण—कफ और रक्त के कृमि जो सरसों के समान इधर उधर पसरने वाले होते हैं। वे कुपित होकर कर्णपाली में पिडिका उत्पन्न कर देते हैं उसमें कण्डू, दाह और पीड़ा होती है। वह कफ-रक्त के कृमियों से उत्पन्न पिडिका इधर-उधर पसरती है और सम्पूर्ण पाली को चाट लेती है (पाली के मांस को नष्ट कर देती है) उसे परिलेही कहते हैं ॥ ६-७ ॥

## अथ कर्णरोगाणां चिकित्सा।

कर्णपूरणविधि—

स्वेदयेत्कर्णदेशं तु किञ्चिन्नुः पार्श्वशायिनः। मूत्रैः स्नेहैः रसैः कोष्णैस्तच्च स्रोतः प्रपूरयेत्॥१॥

कर्णपूरण विधि—कर्ण रोग के रोगी को एक करवट सुलाकर उसके कर्ण प्रदेश को पहले स्वेदन करके पश्चात् गोमूत्र, स्नेह पदार्थ (घृत तैलादि) और औषधियों के स्वरस को थोड़ा गरम कर उससे कान के स्रोत को पूरा करना चाहिये ॥ १ ॥

कर्णे च पूरितं रक्षेच्छतं पञ्च शतानि च । सहस्रं वाऽपि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ २ ॥

कान के रोगों में कान में पूरण ओषधियों को भरकर एक सौ की मात्रा तक भरा रहने देवे अर्थात् आगे जो मात्रा का प्रमाण कहेंगे उसके अनुसार १०० मात्रा की अवधि तक ओषधि को कान में रहने देवे । कण्ठ के रोगों में जो कर्ण पूरण करे उसे ५०० मात्रा की अवधि तक ओषधि को कान में रहने देवे और शिर रोगों में जो कर्ण पूरण करे उसे १००० मात्रा की अवधि तक ओषधि को कान में रहने देवे ॥ २ ॥

स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् । एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैव विनिश्चयः ॥ ३ ॥

मात्रा का प्रमाण—अपने जानु के पास चुटकी बजाते हुए हाथ को ले जावे, इसमें जितना समय लगे उसे एक मात्रा कहते हैं ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये ॥ ३ ॥

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्रागिष्यते । तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ४ ॥

कर्ण पूरण का समय—ओषधियों के रस ( स्वरस ) आदि से यदि कर्ण पूरण करना हो तो भोजन के पहले करना चाहिये और यदि ओषधि सिद्ध तैलादि से कर्णपूरण करना हो तो सूर्यास्त होने पर करना चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । चतुर्ष्वपि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ५ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और कर्णक्ष्वेड रोग में सामान्य ओषधि का व्यवहार कराना चाहिये ॥

शृङ्गवेररसं क्षौद्रं सैन्धवं तैलमेव च । कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ६ ॥

कर्णशूल की चिकित्सा—अदरक का स्वरस, मधु, सेंधानमक और सरसों का तैल गरम कर कान में डालना चाहिये । इससे कान की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां वारुण्या मूलकस्य च । कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ७ ॥

लहसुन, अदरक, सहिजन की छाल, मदार की जड़ और केले के थम्भ के स्वरस को थोड़ा उष्ण करके कान में डालने से कर्णशूलादि नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अर्काङ्कुरानम्लपिष्टांस्तैलाक्तांल्लवणान्वितान् । सन्निदध्यात्स्नुहीकाण्डे कोरिते मृत्स्नयाऽऽवृते ॥

पुटपाकक्रियास्विन्नं पीडयेदारसागमात् । सुखोष्णं तद्रसं कर्णे प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ९ ॥

अर्काङ्कुरादि योग—मदार के अङ्कुरों को काञ्जी के साथ पीसकर उसमें ( सरसों का ) तैल और सेंधानमक मिलाकर थूहर के डंठे में छिद्र बनाकर उसमें भरकर मिट्टी से बन्दकर फिर उस पर विधिपूर्वक पुटपाक की क्रिया से मिट्टी का लेप करके पाक कर स्वरस निकाल लेवे । उस स्वरस को सुखोष्ण करके कान में छोड़ने से कर्णशूल नष्ट होता है ॥ ८-९ ॥

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखिनोपतप्तम् ।
आपीड्य तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरतेऽतिशूलम् ॥ १० ॥

मदार के पके हुए पीले पत्ते को लेकर उस पर घृत लगा कर अंगोरे पर गरम कर उसको मसल कर रस निचोड़ कर उस सुखोष्ण स्वरस को कान में छोड़ने से अत्यन्त उग्र कर्ण शूल भी नष्ट होता है ॥ १० ॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि । बस्तमूत्रं क्षिपेत्कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥ ११ ॥

बस्तमूत्र योग—तीव्र कर्ण शूल जिसमें शब्द होता हो, पाक हो गया हो उसमें बकरी के मूत्र में सेंधानमक मिलाकर किञ्चित् गरम कर कान में छोड़ने से शब्द पाक युक्त कर्णशूल भी अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

तैलं श्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ विधिना पचेत् । हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥

श्योनाक तैल—श्योनाक की जड़ के कल्क के साथ तैल पाक की विधि से तैल को मन्द अग्नि पर पाक कर कर्ण पूरण करने से त्रिदोषज कर्ण शूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हिङ्गुतुम्बुरुशुण्ठीभिस्तैलं सार्षपमेव वा । विपक्वं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १३ ॥

हिङ्ग्वादि तैल—हींग, तुम्बरु और सोंठ के कल्क के साथ तैल पाक की विधि से सरसों का तैल पकाकर कर्णपूरण करने से कर्ण शूल अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । पूर्वं कटुतैलेन हितं मात्रामतोऽपरम् ॥ १४ ॥

कर्णशूल कर्णनाद, बाधिर्य और कर्णक्ष्वेड रोग में सामान्यतः ओषधियों के कल्क के साथ तैल

पाक की विधि से सरसों के तेल को पकाकर कर्णपूरण करने से उपर्युक्त चारों रोगों को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

अपामार्गतैलम्—अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम्।
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ १ ॥

अपामार्ग तैल—अपामार्ग क्षार के जल में चतुर्थांश मूर्च्छित तिल का तेल और तेल के चतुर्थांश अपामार्ग क्षार का कल्क मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर कर्णपूरण करने से कर्णनाद तथा बाधीयता भी नष्ट होती है ॥ १ ॥

बिल्वतैलम्—

गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। सजलं च सदुग्धं च तद्बाधिर्यहरं परम् ॥ १ ॥

बिल्व तैल—गोमूत्र के साथ कच्चे बेल को पीस कर कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तैल के चौगुना जल और गोदुग्ध समान मिलाकर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से बाधिर्य रोग नष्ट होता है ॥ १ ।

चत्वारितैलम्—तैलं काञ्जिकबीजपूरकरसक्षौद्रैः समूत्रैः शृतं
स्यात्क्षौद्रार्द्रकशिग्रुमूलकदलीकन्दद्रवैर्वा समम् ॥
शुण्ठीतुम्बरुहिङ्गुभिः शृतमपि स्यात्कर्णशूलापहं
सिद्धं बिल्वगरेण साजपयसा मूत्रेण बाधिर्यजित् ॥ १ ॥

चत्वारि तैल—काञ्जी, बिजौरे नीबू का रस, मधु और गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पकाया हुआ तेल अथवा मधु, आर्द्रक का रस, सहिजन की जड़ का रस और केले की जड़ का स्वरस इनके साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा सोंठ, तेजबल के फल और हींग के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा बेलगिरि को गोमूत्र के साथ पीसकर कल्क कर उसमें चौगुना मूर्च्छित तिल का तल और बकरी का दूध मिलाकर तलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर इन चारों योगों में से किसी एक योग युक्त तैल को कान में डालने से बधिरता और कर्णशूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादितैलम्—

हिङ्गुवचन्ददारुमिसिमूलकमसमभूर्जयवक्षारसिन्धुरुचकोद्भिदशिग्रुविश्वैः ।
सस्वर्जिकाविडवचाञ्जनमातुलुङ्गैरम्भारसैः समधुसूक्तमिदं विपक्वम् ॥ १ ॥
तैलं प्रसिद्धमिति तच्छ्रवणामयघ्नं कर्णप्रणादबधिरत्वहरं नाराणाम् ।
मूर्धरुजकश्रवणशष्कुलिकान्तरालशूलापहं चरकसुश्रुतपूजितं च ॥ २ ॥

हिङ्ग्वादिक्षार तैल—हींग, नागरमोथा, दारुहल्दी, सौंफ, मूली का भरस, भोजपत्र, यवाखार, सेंधानमक, रुचक नमक, उद्भिद् नमक सहिजन की छाल, सोंठ, सज्जी विड्लवण, वच, अञ्जन ( कृष्णाञ्जन ) अथवा रसवत और बिजौरे नीबू के रस को समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना केले का स्वरस और मधु सूक्त ( आगे मधुसूक्त बनाने की विधि कहेंगे ) एकत्र कर तलपाक की विधि से तेल सिद्धकर कान में डालने से कर्णप्रणाद बाधि॑ तथा मूर्द्देश, मस्तक, कानों की शष्कुली के अन्दर होने वाले शूल आदि रोग नष्ट होते हैं। इस प्रसिद्ध तैल को चरक और सुश्रुत ने भी श्रेष्ठ माना है।

मधुसूक्तम्—

जंबीराणां फलरसं प्रस्थैकं कुडवोन्मितम्। माक्षिकं सम्प्रदातव्यं पिप्पली च पलोन्मिता ॥
घृतभाण्डे निधायैतद्धान्यराशौ विधारयेत्। मासेन तज्जातरसं मधुसूक्तं प्रजायते ॥ २ ॥

मधुसूक्त की विधि—जम्बीरी नीबू के रस एक प्रस्थ, मधु एक कुड़व ( १६ कर्ष ) और पीपल का चूर्ण एक पल लेकर सबको एकत्र कर घृतभाण्ड में रख कर मुखमुद्रण करके धान्यराशि में रख देवे, एक मास के पश्चात् जब उसमें रस हो जावे तब उसे निकाल कर छान कर रख लेवे। इसे मधुसूक्त कहते हैं ॥ १-२ ॥

दीपिकातैलम्—

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च। क्षौमेणाऽऽवेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १ ॥
यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत्। ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं कुष्ठदेवतरोस्तथा ॥ २ ॥

कर्णं च पूरितं रक्षेच्छतं पञ्च शतानि च । सहस्रं वाऽपि मात्राणां श्रोत्रकण्ठशिरोगदे ॥ २ ॥

कान के रोगों में कान में पूरण औषधियों को भरकर एक सौ की मात्रा तक भरा रहने देवे अर्थात् आगे जो मात्रा का प्रमाण कहेंगे उसके अनुसार १०० मात्रा की अवधि तक औषधि को कान में रहने देवे । कण्ठ के रोगों में जो कर्णपूरण करे उसे ५०० मात्रा की अवधि तक औषधि को कान में रहने देवे और शिर रोगों में जो कर्णपूरण करे उसे १००० मात्रा की अवधि तक औषधि को कान में रहने देवे ॥ २ ॥

स्वजानुनः करावर्तं कुर्याच्छोटिकया युतम् । एषा मात्रा भवेदेका सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ ३ ॥

मात्रा का प्रमाण—अपने जानु के पास चुटकी बजाते हुए हाथ को ले जावे, इसमें जितना समय लगे उसे एक मात्रा कहते हैं ऐसा सर्वत्र जानना चाहिये ॥ ३ ॥

रसाद्यैः पूरणं कर्णे भोजनात्प्राक्प्रशस्यते । तैलाद्यैः पूरणं कर्णे भास्करेऽस्तमुपागते ॥ ४ ॥

कर्णपूरण का समय—औषधियों के रस ( स्वरस ) आदि से यदि कर्णपूरण करना हो तो भोजन के पहले करना चाहिये और यदि औषधि सिद्ध तैलादि से कर्णपूरण करना हो तो सूर्यास्त होने पर करना चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । चतुर्ष्वपि च रोगेषु सामान्यं भेषजं स्मृतम् ॥ ५ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और कर्णक्ष्वेड रोग में सामान्य औषधि का व्यवहार कराना चाहिये ॥

शृङ्गवेररसं क्षौद्रं सैन्धवं तैलमेव च । कदुष्णं कर्णयोर्धार्यमेतत्स्याद्वेदनापहम् ॥ ६ ॥

कर्णशूल की चिकित्सा—अदरक का स्वरस, मधु, सेंधानमक और सरसों का तेल गरम कर कान में डालना चाहिये । इससे कान की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ६ ॥

लशुनार्द्रकशिग्रूणां वारुण्या मूलकस्य च । कदल्याः स्वरसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥ ७ ॥

लहसुन, अदरक, सहिजन की छाल, माहरि की जड़ और केले के खम्भ के स्वरस को थोड़ा गरम करके कान में डालने से कर्णशूलादि नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

अर्काङ्कुरानम्लपिष्टान्सतैलांल्लवणान्वितान् । सन्निदध्यात्सुधाकाण्डे कोरिते मृत्स्नयाऽऽवृते ॥
पुटपाकक्रियास्विन्नं पीडयेद्रसमागतम् । सुखोष्णं तद्रसं कर्णे प्रक्षिपेच्छूलशान्तये ॥ ९ ॥

अर्काङ्कुरादि योग—मदार के अङ्कुरों को काँजी के साथ पीसकर उसमें ( सरसों का ) तेल और सेंधानमक मिलाकर इसे थूहर के डंठे में छिद्र बनाकर उसमें भरकर मिट्टी से बन्द कर फिर उस पर विधिपूर्वक पुटपाक की विधि से मिट्टी का लेप करके पाक कर स्वरस निकाल लेवे । उस स्वरस को सुखोष्ण करके कान में छोड़ने से कर्णशूल शमन होता है ॥ ८-९ ॥

अर्कस्य पत्रं परिणामपीतमाज्येन लिप्तं शिखियोगतप्तम् ।
आपीड्य तस्याम्बु सुखोष्णमेव कर्णे निषिक्तं हरतेऽतिशूलम् ॥ १० ॥

मदार के पके हुए पीले पत्तों को लेकर उस पर घृत लगा कर अंगारे पर तपाकर उसको मसल कर रस निचोड़ कर उस सुखोष्ण स्वरस को कान में छोड़ने से अत्यन्त तीव्र कर्णशूल भी नष्ट होता है ॥ १० ॥

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि । छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ११ ॥

छागमूत्र योग—तीव्र कर्णशूल जिसमें स्राव होता हो, पाक हो गया हो उसमें बकरी के मूत्र में सेंधानमक मिलाकर किञ्चित् उष्ण कर कान में छोड़ने से स्राव पाक युक्त कर्णशूल भी अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

तैलं स्योनाकमूलेन मन्देऽग्नौ विधिना शृतम् । हरेदाशु त्रिदोषोत्थं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥

स्योनाक तैल—स्योनाक की जड़ के कल्क के साथ तैल पाक की विधि से तैल को मन्द अग्नि पर पाक कर कर्णपूरण करने से त्रिदोषज कर्णशूल शीघ्र नष्ट होता है ॥ १२ ॥

हिङ्गुसैन्धवशुण्ठीभिस्तैलं सर्षपसम्भवम् । विपक्वं हरतेऽवश्यं कर्णशूलं प्रपूरणात् ॥ १३ ॥

हिंग्वादि तैल—हींग सेंधानमक और सोंठ के कल्क के साथ तैल पाक की विधि से सरसों का तेल पकाकर कर्णपूरण करने से कर्णशूल अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्ष्वेड एव च । पूरणं कटुतैलेन हितं वातहरौषधम् ॥ १४ ॥

कर्णशूल, कर्णनाद, बाधिर्य और कर्णक्ष्वेड रोग में वातनाशक औषधियों के कल्क के साथ तेल

पाक की विधि से सरसों के तेल को पकाकर कर्णपूरण करने से उपर्युक्त चारों रोगों को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

अपामार्गतैलम्—अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम्।
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ १ ॥

अपामार्ग तेल—अपामार्ग क्षार के जल में चतुर्थांश मूर्च्छित तिल का तेल और तेल के चतुर्थांश अपामार्ग क्षार का कल्क मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर कर्णपूरण करने से कर्णनाद तथा बाधीर्यता भी नष्ट होती है ॥ १ ॥

बिल्वतैलम्—

गवां मूत्रेण बिल्वानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत्। सजलं च सदुग्धं च तद्बाधिर्यंहरं परम् ॥ १ ॥

बिल्व तेल—गोमूत्र के साथ कच्चे बेल को पीस कर कल्क बनाकर जितना हो उससे चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तल के चौगुना जल और गोदुग्ध समान मिलाकर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से बाधिर्य रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

चत्वारितैलम्—तैलं काञ्जिकबीजपूरकरसक्षौद्रैः समूत्रैः शृतं
स्यात्क्षौद्रार्द्रकशिग्रुमूलकदलीकन्दद्रवैर्वा समम् ॥
शुण्ठीतुम्बरुहिङ्गुभिः शृतमपि स्यात्कर्णशूलापहं
सिद्धं बिल्वगरेण साजपयसा मूत्रेण बाधिर्यजित् ॥ १ ॥

चत्वारि तैल—कांजी, बिजौरे नीबू का रस, मधु और गोमूत्र के साथ विधिपूर्वक पकाया हुआ तेल अथवा मधु, आर्द्रक का रस, सहिजन की जड़ का रस और केले की जड़ का स्वरस इनके साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा सोंठ, तेजबल के फल और हींग के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल अथवा बेलगिरि को गोमूत्र के साथ पीसकर कल्क कर उसमें चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और बकरी का दूध मिलाकर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर इन चारों योगों में से किसी एक योग युक्त तेल को कान में डालने से बधिरता और कर्णशूल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

हिङ्ग्वादितैलम्—

हिङ्गुवन्ददारुमिसिमूलकभस्मभूर्जयवक्षारसिन्धुरुचकोद्भिदशिग्रुविश्वैः।
सस्वर्जिकाबिडवचाञ्जनमातुलुङ्गरम्भारसैः समधुसूक्तमिदं विपक्वम् ॥ १ ॥
तैलं प्रसिद्धमिति सच्छ्रवणामयघ्नं कर्णप्रणादबधिरत्वहरं नराणाम्।
भ्रूमस्तकश्रवणशष्कुलिकान्तरालशूलापहं चरकसुश्रुतपूजितं च ॥ २ ॥

हिंग्वादिक्षार तेल—हींग, नागरमोथा, दारुहल्दी, सौंफ, मूली का भस्म, भोजपत्र, यवाखार, सेंधानमक, रुचक नमक, उद्भिद् नमक, सहिजन की छाल, सोंठ, सज्जी, बिड्लवण, वच, अञ्जन (कृष्णाञ्जन) अथवा रसवत और बिजौरे नीबू के रस को समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर जितना हो उससे चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल से चौगुना केले का स्वरस और मधुयुक्त (आगे मधुयुक्त बनाने की विधि कहेंगे) एकत्र कर तैलपाक की विधि से तेल सिद्धकर कान में डालने से कर्णप्रणाद, बाधि ' तथा भ्रूदेश, मस्तक, कानों की शष्कुली के अन्दर होने वाले शूल आदि रोग नष्ट होते हैं। इस प्रसिद्ध तेल को चरक और सुश्रुत ने भी श्रेष्ठ माना है।

मधुसूक्तम्—

जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोन्मितम्। माक्षिकं तत्र दातव्यं पिप्पली च पलोन्मिता ॥
घृतभाण्डे निधायतद्धान्यराशौ विधारयेत्। मासेन तज्जातरसं मधुसूक्तं प्रजायते ॥ २ ॥

मधुसूक्त की विधि—जम्बीरी नीबू के रस एक प्रस्थ, मधु एक कुडव (१६ कर्ष) और पीपल का चूर्ण एक पल लेकर सबको एकत्र कर घृतभाण्ड में रख कर मुखमुद्रण करके धान्यराशि में रख देवे, एक मास के पश्चात् जब उसमें रस हो जावे तब उसे निकाल कर छान कर रख लेवे। इसे मधुसूक्त कहते हैं ॥ १–२ ॥

दीपिकातैलम्—

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च। क्षौमेणाऽऽवेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १ ॥
यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तेन पूरयेत्। ज्ञेयं तद्दीपिकातैलं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ २ ॥

दीपिका तैल—महत्पञ्चमूल ( बेल, गम्भार, गनियार, पाढर और सोनापाठा ) की आठ-आठ अङ्गुल की लम्बी लकड़ियों को लेकर रेशमी वस्त्र से लपेट कर तेल में भिगोकर जला देवे उससे जो तैल चूवे उस सुखोष्ण ( थोड़े २ गरम ) तेल से कर्ण पूरण करने से कर्णरोग नष्ट होते है। इसको दीपिका तैल कहते हैं। इसी प्रकार कूठ और देवदारु का भी तेल निकाल कर कर्णपूरण करने से कर्ण रोगों में लाभ होता है ॥ १–२ ॥

निर्गुण्ड्यादितैलम्—

निर्गुण्डिजातिरविभृङ्गरसोनरम्भाकार्पासशिग्रुसुरसार्द्रककारवेल्लयः।
एषां रसे तिलभवं सविषं सुकर्णबाधिर्यनादकृमिवेदनपूययुक्ते ॥ १ ॥

निर्गुण्ड्यादि तैल—निर्गुण्डी के पत्र, चमेली के पत्ते, आक के पत्र, भांगरा, लहसुन, केला, कपास, सहिजन, तुलसी, अदरक और करेली इन सब औषधियों के क्वाथ अथवा स्वरस को समान मिश्रित लेवे और उसमें चतुर्थांश मूर्च्छित तिल का तेल और तेल के चतुर्थांश वत्सनाभ विष का कल्क मिलाकर तेल पाक की विधि से सिद्धकर कान में डालने से बधिरता, कर्णनाद, कृमि, पीड़ा तथा पूय युक्त कर्णरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

नागरादितैलम्—

नागरसैन्धवमागधिमुस्ता हिङ्गुवचालशुनं तिलतैलम्।
अर्कसुपक्वपलाशरसेन कर्णरुजं बधिरं विनिहन्ति ॥ १ ॥

नागरादि तैल—सोंठ, सेंधानमक, पीपल, नागरमोथा, हींग, बच और लहसुन को समभाग लेकर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तेल और तेल के समान आक और पलास के पके हुए पत्तों का स्वरस मिलाकर तैल पाक की विधि से तेल सिद्ध कर कान में डालने से कान की पीड़ा और बधिरता नष्ट होती है ॥ १ ॥

कर्णस्रावपूतिकर्णकृमिकर्णानां चिकित्सामाह--

कर्णस्रावे पूतिकर्णे तथैव कृमिकर्णके। सामान्यं कर्म कुर्वीत योगान् वैशेषिकानपि ॥ १ ॥

कर्णस्रावादि चिकित्सा—कर्णस्राव, पूतिकर्ण और कृमिकर्ण रोग में सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये और विशेष योग भी करना चाहिये। जिसे आगे लिखते हैं ॥ १ ॥

स्वर्जिकाचूर्णसंयुक्तं बीजपूररसं क्षिपेत्। कर्णस्रावरुजादाहास्तेन नश्यन्त्यसंशयम् ॥ २ ॥

सज्जी के चूर्ण में बिजौरे नीबू का रस मिलाकर कान में छोड़ना चाहिये। इससे कर्णस्राव, और दाह अवश्य नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

समुद्रफेनचूर्णम्—

समुद्रफेनचूर्णं तु न्यस्तं श्रवणमध्ये। पूयस्रावं मलं सान्द्रं हन्ति ध्वान्तमिवांशुमान् ॥ १ ॥

समुद्रफेन चूर्ण—समुद्रफेन के चूर्ण को कान के छिद्रों में छोड़ने से पूय का स्राव होना तथा मल भी इस प्रकार नष्ट होते हैं जिस प्रकार सूर्य से अन्धकार ॥ १ ॥

सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः। मधुसम्मिश्रितः साधुः कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ २ ॥

सर्जत्वगादि योग—सर्ज (राल) की त्वचा का चूर्ण, कपास के फल का रस और मधु मिलाकर कान के स्राव में छोड़ना चाहिये। इससे लाभ होता है ॥ २ ॥

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं कपित्थकार्पासफलं च सान्द्रम्।
क्षुत्वा रसं तन्मधुना विमिश्रं स्रावापहं सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥
एतैः सृतं निम्बकरञ्जतैलं ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥

जम्ब्वाम्रपत्र योग—जामुन और आम के कोमल पत्र कैथ का फल और कपास इनके पत्ते का रस निकाल कर उसमें मधु मिलाकर कान में डालने से कर्णस्राव नष्ट होता है और इन्हीं ( जामुन-आम के पत्तों आदि ) के स्वरस अथवा क्वाथ से नीम का तेल, अथवा करञ्ज का तेल अथवा सरसों का तेल विधिपूर्वक सिद्ध कर कान में डालने से भी कर्ण स्राव नष्ट होता है ॥ १ ॥

आम्राद्यं तैलं पूत्याह—

आम्रजम्बूप्रवालानि मधुकस्य वटस्य च। एभिस्तु साधितं तैलं पूतिकर्णगदं हरेत् ॥
जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥ १ ॥

जम्ब्वाद्य तैल—आम और जामुन के पत्ते, मुलहठी तथा बट के पत्ते का क्वाथ अथवा स्वरस के साथ विधिपूर्वक सिद्ध किया तेल कान में डालने से पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है। इसी प्रकार चमेली के पत्तों के स्वरस के साथ सिद्ध किया तैल भी कान में डालने से पूति कर्ण रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कर्णप्रक्षालने पञ्चकषाय—

कर्णप्रक्षालने शस्तं कवोष्णं सुरभीजलम्। पथ्यामलकमञ्जिष्ठालोध्रतिन्दुककाथश्च वा ॥ १ ॥

पञ्चकषाय—कर्ण प्रक्षालन के लिये गोमूत्र थोड़ा गरम करके कान में डालना चाहिये अथवा हरड़, आँवला, मजीठ, लोध और तिन्दुक (तेंदू) का क्वाथ करके इससे कान धोना चाहिये ॥ १ ॥

अन्यच्च—राजवृक्षादितोयेन सुरसादिजलेन वा।
कर्णप्रक्षालनं कुर्याच्चूर्णैरेतैश्च पूरणम् ॥ १ ॥

अमलतास के क्वाथ से अथवा सुरसादि गण की औषधियों के क्वाथ से कर्ण प्रक्षालन करने से और इन्हीं के चूर्ण को कान में छोड़ने से कर्ण स्रावादि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

रसाञ्जनादियोग—

घृष्ट रसाञ्जनं नार्याः क्षीरेण क्षौद्रसंयुतम्। प्रशस्यते चिरोत्थे सास्रावे पूतिकर्णके ॥ १ ॥

रसाञ्जनादि योग—रसवत को स्त्री के दूध के साथ घिसकर उसमें मधु मिलाकर कान में छोड़ने से पुराने स्राव युक्त पूतिकर्ण रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कुष्ठादितैलम्—

कुष्ठ हिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः। पूतिकर्णापहं तैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ॥ १ ॥

कुष्ठादि तैल—कूठ, हींग, बच, दारुहल्दी, सोंफ, सोंठ तथा सेंधानमक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तेल और तेल से चौगुना बकरे का मूत्र मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्धकर कान में डालने से पूतिकर्ण नष्ट होता है ॥१॥

शम्बूकतैलम्—

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत्। तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ १ ॥

शम्बूक तैल—शम्बूक (घोंघे) के मांस के साथ तेल पाक की विधि से सरसों का तेल सिद्ध कर कर्णपूरण करने से कर्ण नाड़ी नष्ट होती है ॥ १ ॥

गन्धकतैलम्—

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीभवेन शुल्वपलकेन कटुतैलपलाष्टकं तु।
धत्तूरपत्ररसतुल्यमिदं विपक्वं नाडीं जयेच्चिरभवामपि कर्णजाताम् ॥ १ ॥

गन्धक तैल—गन्धक, मैनसिल और हल्दी का समान भाग चूर्ण कर कल्क बनाकर आठपल सरसों के तेल में मिलावे और तेल के समान धतूरे के पत्ते का रस मिलाकर तेल पाक की विधि से तेल सिद्धकर कान में डालने से पुराना कर्ण नाड़ी रोग भी नष्ट होता है ॥ १ ॥

कृमिकर्णविनाशाय कृमिघ्नीं कारयेत्क्रियाम्। वार्ताकधूमश्च हितः सार्षपः स्नेह एव च ॥ २ ॥

कृमिकर्ण चिकित्सा—कृमि कर्णरोग में कृमिनाशक क्रिया करनी चाहिये। बैगन का धूआँ कान में देना चाहिये तथा सरसों का तेल कान में डालना चाहिये ॥ २ ॥

पूरितं हरितालेन गव्यमूत्रयुतेन च। धूपने कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलु श्रेष्ठ उच्यते ॥ ३ ॥

गौ के मूत्र में हरताल का चूर्ण मिलाकर कान में भरना चाहिये इससे कृमिकर्ण रोग नष्ट होता है तथा कर्ण दौर्गन्ध्य रोग में गुग्गुल का धूप देना उत्तम है ॥ ३ ॥

कृमिकर्णे योगचतुष्टयम्—

सूर्यावर्तकस्वरसं रसं वा सिन्दुवारजम्। लाङ्गलीमूलतोयं वा त्र्यूषणं वाऽपि चूर्णितम् ॥१॥
एते योगास्तु चत्वारः पूरणात्कृमिकर्णके। कृमीन्निमूलयन्त्याशु शतपद्यष्टपादिकान् ॥ २ ॥

कृमिकर्ण में योग चतुष्टय—सूर्यमुखी अथवा निर्गुण्डी का स्वरस अथवा कलिहारी के मूल का स्वरस अथवा सोंठ, मरिच और पीपल का समान मिलित चूर्ण इन चारों योगों में से किसी एक योग को कान में डालने से कृमिकर्णक रोग के शतपदी, अष्टपादी आदि कृमि शीघ्र नष्ट होते हैं ॥

गोमक्षिकायां योगः—

गुञ्जेन घर्षयेन्मूलं नन्द्यावर्तपलाशयोः । तत्क्षाराम्बुपूरिते कर्णे ध्रुवं गोमक्षिका व्रजेत् ॥ १ ॥

गोमक्षिका नाशक योग—तगर और पलास की जड़ को दाँतों से चबाकर उससे बने क्षार को कान में डालने से गोमक्षिका (गौ के ऊपर की मक्षिका जो कान में प्रवेश कर जाती है वह) अवश्य नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

कृमिकर्णे योगः—

हलिनिविषासिंह्योपकुल्या अहिकवचाये द्रुक्ष्या । वसनान्तरे रसेन श्रवणे परिपूरयेद्युक्त्या ॥१॥

कर्णजलौका नियतं कृमिकीटपिपीलिकास्तथाऽन्येऽपि ।

निपतन्ति निरवशेषाः काण्डाश्चापि शुण्डरयाः ॥ २ ॥

कृमिकर्ण योग—लाङ्गली (कलिहारी), सर्पमुखी, सोंठ, मरिच और पीपल को समान लेकर एकत्र कूटकर कपड़े में बाँधकर युक्ति पूर्वक इनका रस निचोड़ कर कान में डालने से कान की जलौका (कान खजूरे), कृमि, कीट, पिपीलिका तथा अन्य शिर भाग में होने वाले काण्ड कृमि सभी नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

कर्णकण्डूकर्णगूथप्रतिनाहकर्णविद्रधिकर्णपाकानां चिकित्सामाह—

स्नेहः स्वेदोऽथ वमनं धूमो मूर्ध्नि विरेचनम् । विधिश्च कफहा सर्वः कर्णे कण्डूमतीष्यते ॥१॥

कर्णकण्डू आदि की चिकित्सा—कर्णकण्डू रोग में स्नेहन कर्म, स्वेदन, वमन, धूमपान, शिरोविरेचन और कफ नाशक क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

प्रक्लिद्य धीमांस्तैलेन प्रविलाप्य च शोधनम् । कर्णगूथे तु मतिमान् भिषगजशलाकया ॥

कान में तेल डालकर मैल को क्लेदित (गीला) करके सलाई से उसे निकाल कर शोधन करे । इससे लाभ होता है और कर्णगूथ रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् । ततो विरक्तशिरसः क्रियां प्रोक्तां समाचरेत् ॥३॥

कर्ण प्रतिनाह रोग में स्नेहन, स्वेदन और शिरोविरेचन करके आगे की कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

विद्रधौ वा प्रकुर्वन्ति विद्रध्युक्तं चिकित्सितम् । कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यादग्निविसर्पवत् ॥४॥

कर्ण विद्रधि रोग में विद्रधि रोग में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये और कर्णपाक रोग में अग्निविसर्प के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

कर्णशोथकर्णार्शःकर्णार्बुदानां चिकित्सा—

चिकित्सा कर्णशोथानां तथा कर्णार्शसामपि । कर्णार्बुदानां कुर्वीत शोथार्शोऽर्बुदवद्भिषक् ॥१॥

कर्णशोथ, कर्णार्श और कर्णार्बुद चिकित्सा—कर्णशोथ, कर्णार्श और कर्णार्बुद रोग की चिकित्सा शोथ, अर्श और अर्बुद की भाँति करनी चाहिये अर्थात् कर्णशोथ को शोथ के समान, कर्णार्श को अर्श के समान और अर्बुद को कर्णार्बुद के समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

रास्नाद्यो गुग्गुलुः—रास्नामृतैरण्डसुराह्वविश्वं तुल्यं पुरेणोपविमृश्य खादेत् ।

वाताामयी कर्णशिरोगदी च नाडीव्रणी चापि भगन्दरी च ॥ १ ॥

रास्नादि गुग्गुलु—रास्ना, गुरुच, एरण्डमूल की छाल, देवदारु और सोंठ प्रत्येक १-१ भाग और सबके बराबर शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर मर्दन कर खाने से वात के रोगी, कान और शिर के रोगी, नाडीव्रण के रोगी और भगन्दर रोग के रोगी रोग मुक्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

## अथ कर्णपाल्यामयविकाराणां चिकित्सा ।

पालीसंशोषणे कुर्यादातकर्णसमाः क्रियाः । स्वेदयेद्यत्नतस्तां तु स्निग्धां स्वर्णपयोविधैः ॥ १ ॥

पालीसंशोषण चिकित्सा—पाली के सूख जाने पर वातिक कर्णशूल में कही हुई चिकित्सा करनी चाहिये तथा यत्नपूर्वक कर्णपाली का स्वेदन करना चाहिये और स्नेहन के पश्चात् तिल को गाढ़ कर कर्णपाली को बढ़ाना चाहिये ॥ १ ॥

शाल्मिनवनीतयुतं ससार्द्रं धान्यराशिकुपितम् ।

मधमुसलिकमूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ २ ॥

नवीन मूसलीकन्द के चूर्ण को भैंस के मक्खन में मिलाकर पात्र का मुखमुद्रण कर एक सप्ताह तक धान्यराशि में रख देवे पश्चात् निकाल कर उसे कर्णपाली पर लगाने से कर्णपाली की वृद्धि होती है ॥ २ ॥

शतावरी तैलम्—

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः। तैलं विपक्वं सक्षीरं पालीं सवर्धयेत्सुखम् ॥ १ ॥

शतावरी तैल—शतावरी, असगन्ध, क्षीरविदारी और एरण्ड के बीजों को समान लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और तैल के चौगुना गोदुग्ध मिलाकर तैलपाक विधि से तैल सिद्धकर मलने से सुखपूर्वक कर्णपाली बढ जाती है ॥ १ ॥

जीवनीय तैलम्—शीतैर्लेपैर्जलौकाभिरुत्पातं समुपाचरेत्।

उत्पात चिकित्सा—कर्णपाली में होने वाले उत्पात रोग में शीतल लेप लगावे और जलौका से रक्तमोक्षण करावे। इससे उत्पात नष्ट होता है ॥

जीवन्त्याश्वगन्धार्कबाकुचीबीजसैन्धवैः ॥ १ ॥

हलिनीसुरसाभ्यां च गोधाकङ्कवसान्वितम्। तैलं विपक्वमभ्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद् ध्रुवम् ॥२॥

जीवनीय तैल—जीवन्ती, असगन्ध, मदार, बाकुची के बीज, सेंधानमक कलिहारी और तुलसी को समानभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और गोह तथा चील्ह की वसा तैल के समान मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर मर्दन करने से कर्णपाली में होने वाला उन्मथरोग अवश्य नष्ट होता है ॥ १–२ ॥

दुःखवर्धनकं सिक्त्वा जम्ब्वाम्राश्वत्थपत्रजैः। क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णैश्चावधूलयेत् ॥३॥

दुःखवर्धन चिकित्सा—दुःखवर्धन नामक कर्णपाली रोग को जामुन, आम और अश्वत्थ के पत्तों के क्वाथ से धोना चाहिये और इन्हीं के क्वाथों से विधिवत् तैल सिद्ध कर उसमें सिंचन करना चाहिये और इन्हीं के चूर्ण का अवधूलन करना चाहिये। इस प्रकार की क्रिया से दुःखवर्धनरोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

बहुशो गोमयैस्तप्तैः स्वेदितं परिलेहितम्। घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः ॥ ४ ॥

परिलेहिन चिकित्सा—कर्णपाली के परिलेहित रोग में गोबर को बहुत बार तपा २ कर स्वेदन करना चाहिये और बकरी के मूत्र में कपूर को पीस कर कल्क बना कर लेप करना चाहिये इससे परिलेही रोग नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

पथ्यापथ्यम्—

स्वेदो विरेको वमनं नस्यं धूमः शिराव्यधः। गोधूमाः शालयो मुद्गा यवाश्च प्रतनं हविः ॥

लावो मयूरो हरिणस्तित्तिरो वनकुक्कुटः। पटोलं शिग्रु वार्ताकं सुनिषण्णं कठिल्लकम् ॥ २ ॥

रसायनानि सर्वाणि ब्रह्मचर्यमभाषणम्। उपयुक्तं यथादोषमिदं कर्णामये हितम् ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्य—स्वेद, विरेचन, वमन, नस्य, धूमपान शिरामोक्षण (रक्तमोक्षण) आदि कर्म और गेहूं, शालीधान का चावल, मूंग, जौ, पुरानाघृत, लावापक्षी, मोर, हरिण, तित्तिर और वन कुक्कुट का मांस, परवल, सहिजन बैगन, सुनिषण्णक शाक, करैला, सभी प्रकार के रासायनिक औषधियाँ, ब्रह्मचर्य और अल्पभाषण ये सभी कर्णरोग में पथ्य कहे गये हैं ॥ १–३ ॥

दन्तकाष्ठं शिरःस्नानं व्यायामं श्लेष्मलं गुरु। कण्डूयनं तुषारं च कर्णरोगी परित्यजेत् ॥ ४ ॥

काष्ठ का दतुअन करना, शिर से स्नान करना, व्यायाम करना, कफकारक और गुरुपदार्थ का भोजन करना, कान को खुजलाना और तुषार (ओस) सेवन इन सबको कान का रोगी त्याग देवे ॥ ४ ॥

इति कर्णरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ नासारोगाधिकारः।

अवश्यायानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः। नीचात्युच्चोपधानेन पीतेनान्येन वारिणा ॥१॥

अत्यम्बुपानरमणैश्छर्दिबाष्पग्रहादिभिः। क्रुद्धा वातोल्बणा दोषा नासायां स्यानतां गताः ॥

नासारोग निदान—ओस में अधिक रहने से, वायु के अधिक सेवन करने से, धूल अधिक

नासा में प्रवेश करने से, अत्यन्त भाषण करने से, अत्यन्त सोने और जागने से, नीचे ऊँचे तकिये पर सोने से, अनुचित ( नासा आदि ) से जल पीने से, अत्यन्त जल पीने से, अत्यन्त मैथुन करने से, वमन और अश्रु आदि के वेग को रोकने से कुपित हुए वातादि दोष नासिका में बढ़ कर नासारोग को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १-२ ॥

तत्र नासारोगाणां नामानि सङ्ख्यां चाह—

आदौ च पीनसं प्रोक्तं पूतिनासस्ततः परम् । नासापाकोऽत्र गदितः पूयशोणितमेव च ॥ क्षवथुर्भ्रंशथुर्दीप्तः प्रतिनाहः परिस्रवः । नासाशोषः प्रतिश्यायाः पञ्च सप्तार्बुदानि च ॥ ४ ॥ चत्वार्यर्शांसि चत्वारः शोथास्त्वत्वारि तानि च । रक्तपित्तानि नासायां चतुस्त्रिंशद्गदाः स्मृताः॥

नासारोगों के नाम—पहले पीनस रोग कहा गया है पश्चात् पूतिनास, नासापाक, पूयशोणित क्षवथु, भ्रंशथु, दीप्त, प्रतिनाह, परिस्रव, नासा शोष, पांच प्रकार के प्रतिश्याय, सात प्रकार के अर्बुद, चार प्रकार के अर्श, चार प्रकार के शोथ और चार प्रकार के रक्तपित्त इस प्रकार नासिका में होने वाले ३४ रोग कहे गये हैं ॥ ३-५ ॥

तेषु पीनसस्य लक्षणमाह—

आनह्यते शुष्यति यस्य नासा प्रक्लेदमायाति च धूप्यते ।
न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्तु पीनसेन ॥
तं चानिलश्लेष्मभवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ॥ ६ ॥

पीनस के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका ( नासारन्ध्र ) वात अथवा पित्त के द्वारा शोषित कफ से आबद्ध होती हो अर्थात् कफ आकर नासारन्ध्र को आबद्ध कर लेता हो और उससे श्वास का अवरोध हो जाता हो और नासिका सूख जाती हो, क्लेदित ( आर्द्र ) रहती हो तथा संताप युक्त रहती हो एवं गन्ध और रस का ज्ञान जिसमें नहीं रह गया हो उसे पीनस रोग कहते हैं । इस रोग को वात और कफ के मिश्रित कोप से उत्पन्न जानना चाहिये तथा इसके लक्षण प्रतिश्याय के समान जानना चाहिये ॥ ६ ॥

पूतिनासमाह—दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूलात्सन्दूषितो यस्य समीरणस्तु ।
निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनासं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ७ ॥

पूतिनासा के लक्षण—जिस नासारोग में कफ, पित्त और रक्त के विदग्ध होने से गला और तालुमूल से दूषित हुआ वायु दुर्गन्ध युक्त होकर मुख और नासिका से बाहर निकलता है उसे पूतिनासा रोग कहते हैं ॥ ७ ॥

नासापाकमाह—

घ्राणाश्रितं पित्तमरूंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ।
तं नासिकापाक इति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावथ वाऽपि यत्र ॥ ८ ॥

नासापाक के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका में रहने वाला पित्त कुपित होकर नासिका में छोटी २ फुंसियों को उत्पन्न कर देता है और उसमें पाक भी अधिक हो जाता है तथा आर्द्रता रहती है और कोथ ( दुर्गन्ध ) भी रहता है उसे नासिका पाक कहते हैं ॥ ८ ॥

पूयरक्तमाह—

दोषैर्विदग्धैरथ वाऽपि जन्तोर्ललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ।
नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ॥ ९ ॥

पूयरक्त के लक्षण—जिस नासारोग में दोषों के विदग्ध होने से अथवा ललाट में आघात होने से नासिका से रक्त मिश्रित पूय का स्राव होता है उसे पूयरक्त ( पूयशोणित ) रोग कहते हैं ॥ ९ ॥

क्षवथुमाह, तत्रादौ दोषजमाह—

घ्राणाश्रिते मर्मणि सम्प्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकया निरेति ।
कफानुयातो बहुशोऽथ शब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ॥ १० ॥

दोषज क्षवथु के लक्षण—जिस नासा रोग में घ्राणेन्द्रिय के आश्रित जो मर्म ( नासिका, नेत्र और भ्रुकुटि का मध्य भाग ) है उसमें दूषित हुआ वायु कफ से मिलकर अत्यन्त शब्द करता हुआ नासिका के द्वारा निकलता है उसे क्षवथु ( छींकना ) रोग कहते हैं ॥ १० ॥

अथाऽऽगन्तुजमाह—

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भवान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा ।
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ॥ ११ ॥

आगन्तुज क्षवथु के लक्षण—तीक्ष्ण द्रव्यों के भक्षण करने से, कटु, सोंठ, मरिच आदि पदार्थों के अति सूंघने से, सूर्य को देखने से और सूत्र, तृणादि से नासिका की तरुणास्थि के मर्म ( शृंगाटक नामक मर्म ) को उद्वेगित करने से जो क्षवथु उत्पन्न हो जाती है उसे आगन्तुज क्षवथु कहते हैं ॥ ११ ॥

भ्रंशथुमाह—प्रभ्रश्यते नासिकया हि यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ।
प्राक्सञ्चितो मूर्धनि पित्ततप्तस्तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ॥ १२ ॥

भ्रंशथु के लक्षण—जिस नासारोग में पूर्व ही से शिर स्थान में सञ्चित हुआ कफ पित्त से तप्त होकर घना, विदग्ध और लवण रस युक्त नासिका से गिरता है उसे भ्रंशथु रोग कहते हैं ॥

दीप्तमाह—घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः ।
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ॥ १३ ॥

दीप्त के लक्षण—जिस नासा रोग में नासिका अत्यन्त दाह युक्त हो और नाक से जो श्वास निकले वह धूम की भाँति हो तथा नासिका निरन्तर जलती हुई प्रतीत हो उसे दीप्तरोग कहते हैं ॥

प्रतीनाहमाह—

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥

प्रतीनाह के लक्षण—जिस नासारोग में कफ वायु से युक्त होकर उच्छ्वास मार्ग का अवरोध कर देता हो उसे प्रतीनाह रोग कहते हैं ॥

स्रावमाह—घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥ १४ ॥

स्राव के लक्षण—जिस नासारोग में नासिका से पीत वर्ण का अथवा श्वेत वर्ण का गाढ़ा अथवा पतला कफ का स्राव हो उसे स्राव रोग कहते हैं ॥ १४ ॥

नासाशोषमाह—घ्राणाश्रिते श्लेष्मणि मारुतेन पित्तेन गाढं परिशोषिते च ।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन्स नासापरिशोष उक्तः ॥ १५ ॥

नासा शोष के लक्षण—जिस नासा रोग में नासिका में स्थित कफ, वायु और पित्त के कोप से अधिक सूख जाता है जिससे मनुष्य को श्वासोच्छ्वास में कष्ट होता है उस रोग को नासा परिशोष कहते हैं ॥ १५ ॥

प्रतिश्यायमाह—तस्य निदानं द्विविधम्—एकं सद्योजनकं तद्बलवत्त्वेन चयं नापेक्षते । यत उक्तम्—

न केवलं चयं प्राप्य दोषाः कुप्यन्ति देहिनाम् ।
अन्यथाऽपि हि कुप्यन्ति हेतुबाहुल्यतोरणात् ॥ १ ॥

प्रतिश्याय के निदान—प्रतिश्याय का निदान दो प्रकार का है एक प्रतिश्याय सद्योजनक होता है जो शीघ्र उत्पन्न हो जानेवाला होता है वह बलवान होने के कारण चय ( एकत्र ) होने की अपेक्षा नहीं करता । जैसे कहा गया है कि वातादि दोष मनुष्यों के शरीर में केवल संचय को प्राप्त होकर ही कुपित नहीं होते हैं अन्य भी अनेक कारणों की बहुलता से कुपित हो जाते हैं ॥१॥

चयादिक्रमशोषजनकमपरम् । तथा च—

सञ्चयं सञ्चयात्प्रकोपं प्रकोपात्प्रसरं, प्रसरात्स्थानसंश्रयस्ततो व्यक्तिस्ततो भेद इति ।

चयादि क्रम से शोष जनक दूसरा जो होता है उसे कहते हैं उसमें पहले दोषों का सञ्चय होता है, उससे कोप होता है और कोपहोने पर उसका प्रसार होता है प्रसार होने पर एक स्थान में दोष का आश्रय ( निवास ) होना है और तदनन्तर रोग की उत्पत्ति होती है और उत्पत्ति के पश्चात् उनमें भेद होता है अर्थात् अनेक रूपों और लक्षणों से युक्त होकर पृथक् २ नामों से वह विख्यात होता है ॥

तत्र प्रतिश्यायस्य सद्योजनकनिदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह—

सन्धारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः ।
प्रजागरातिस्वप्नतवाम्बुशीतावश्यायमैथुनबाष्पशोकैः ॥ १६ ॥

सस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत् ॥

प्रतिश्याय की सम्प्राप्ति—मलमूत्रादि के वेगों को रोकने से, अजीर्ण रोग से, धूल आदि के नाक में प्रवेश हो जाने से, अत्यन्त बोलने से, अत्यन्त कोप करने से, ऋतु के विपरीत आहार विहारादि करने से, शिर के संतप्त होने से (धूआँ और घाम आदि के शिर में लगने से), अधिक जागने से, अधिक सोने से, नवीन जल के पीने से, अधिक शीत के सेवन से, ओस, तुषार आदि के लगने से, अधिक मैथुन करने से, अधिक अश्रुपात होने से, शोक से और दोष (कफ) के शिर में अत्यन्त भर जाने से-वायु बढ़कर प्रतिश्याय रोग उत्पन्न कर देता है ॥ १६- ॥

चयादिक्रमशो जनकनिदानपूर्विकां संप्राप्तिमाह—

चयं गता मूर्धनि मारुतादयः पृथक्समस्ताश्च तथैव शोणितम् ।
प्रकुप्यमाणा विविधैः प्रकोपनैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ॥ १७ ॥

शिर में वात, पित्त, कफ पृथक् २ तथा समस्त तीनों मिलित त्रिदोष और रक्त ये पांचो संचित होकर अनेक प्रकार से अपने कुपित होने पर प्रतिश्याय को उत्पन्न कर देते हैं ॥ १७ ॥

पूर्वरूपमाह—

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभिपूर्णता स्तम्भोऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ।
उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ १८ ॥

प्रतिश्याय होने के पूर्व छींक, कफ से शिर भारी, स्तम्भ, शरीर का जकड़ना, देह का टूटना, रोमाञ्च और अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं ॥ १८ ॥

वातिकस्य प्रतिश्यायस्य स्वरूपमाह—

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी । गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तथा ॥ १९ ॥
भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ॥

वातिक प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका आनद्ध (भरी हुई) हो और बन्द हो, पतला और अधिक स्राव होता हो, गला, तालु और ओठ सूखते हों, शङ्ख देश में सुई चुभाने के समान पीड़ा होती हो और स्वरभङ्ग हो उसे वात के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ १९ ॥

पैत्तिकमाह—उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके ॥ २० ॥
कृशोऽपि पाण्डुः सन्तप्तो भवेत्तृष्णाभिपीडितः । नासया तु सधूमाग्निं वमतीव स मानवः ॥

पैत्तिक प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका से उष्ण और पीत वर्ण का स्राव होता हो और शरीर अत्यन्त कृश और पाण्डु वर्ण का हो, मन संतप्त और तृष्णा से अत्यन्त पीड़ित हो तथा नासिका से ऐसा श्वास निकलता हो मानो धूमयुक्त अग्नि का वमन होता हो, उसे पित्त के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २०-२१ ॥

श्लैष्मिकमाह—

घ्राणात्कफकृतः श्वेतः कफः शीतः स्रवेद्बहु । शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः ॥
गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरतिपीडितः ॥ २२ ॥

कफज प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका से श्वेत वर्ण का, शीतल और बहुत सा कफ गिरता हो, कान्ति श्वेत हो, नेत्रों में शोथ हो शिर भारी हो और गला, तालु ओठ और शिर में कण्डू होती हो उसे कफ के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २२ ॥

सान्निपातिकमाह—भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्मात्सन्निवर्तते ।
सम्पक्वो वाऽप्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ॥ २३ ॥

सान्निपातिक प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय में प्रतिश्याय बार बार २ बढ़े और घटे तथा अकस्मात् पक्व अथवा अपक्व किसी भी अवस्था में हो जावे उसे सन्निपात के कोप का प्रतिश्याय जानना चाहिये ॥ २३ ॥

दुष्टप्रतिश्यायलिङ्गमाह—

प्रक्लिद्यते मुहुर्नासा पुनश्च परिशुष्यति । पुनरानह्यते चापि पुनर्विव्रियते तथा ॥ २४ ॥
निःश्वासो वापि दुर्गन्धो नरो गन्धांश्च वेत्ति न । एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥

दुष्ट प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका बारबार क्लेदित ( आर्द्र ) हो और फिर २ सूख जावे, नासिका में कफ भरकर बन्द हो जावे और फिर खुल भी जावे तथा श्वास अति दुर्गंधित निकले और नासिका में गन्ध का ज्ञान नहीं रहे उसे दुष्ट प्रतिश्याय कहते हैं। यह कष्ट साध्य है॥ २४-२५॥

रक्तजमाह—

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते। पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिङ्गैश्चापि समन्वितः॥ २६॥
ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरुरोघातप्रपीडितः। दुर्गन्धोच्छ्वासवक्त्रश्च गन्धानपि न वेत्ति सः॥

रक्तज प्रतिश्याय—जिस प्रतिश्याय रोग में नासिका से रक्त का स्राव होता हो और पित्तज प्रतिश्याय के सभी लक्षण उसमें सम्मिलित रहते हों, उस रोगी के नेत्र ताम्रवर्ण के हों तथा उरोघात रोग से पीड़ित हो, श्वास तथा मुँह में दुर्गन्ध हो किन्तु नासिका में गन्ध का ज्ञान नहीं रहता हो। उसे रक्त के कोप का प्रतिश्याय कहते हैं॥ २६-२७॥

असाध्या भवन्तीत्याह—सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकारिणः।

दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च॥ २८॥

प्रतिश्याय की असाध्यता—मनुष्य के सभी प्रकार के प्रतिश्याय प्रतिकार ( चिकित्सा ) नहीं करने से कुछ दिनों में दूषित हो जाते हैं और असाध्य हो जाते हैं॥ २८॥

प्रतिश्यायेषु कृमयोऽपि भवन्तीत्याह—

मूर्च्छन्ति कृमयश्चात्र श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः।
कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनात्र लक्षणम्॥ २९॥

प्रतिश्याय में कृमि की उत्पत्ति—प्रतिश्याय रोग की उचित चिकित्सा नहीं होने से तथा रक्त के दोष से होने वाले प्रतिश्याय में कृमि उत्पन्न हो जाते हैं जो श्वेत वर्ण के, स्निग्ध ( चिकने ) और सूक्ष्म होते हैं उनके सब लक्षण कृमिज शिरोरोग के समान जानना चाहिये॥ २९॥

प्रतिश्याया अपरानपि विकारान्कुर्वन्तीति तानाह—

बाधिर्यमान्ध्यमघ्रत्वं घोरांश्च नयनामयान्। शोफाग्निसादकासांश्च वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः॥

प्रतिश्याय से रोगान्तर की उत्पत्ति—प्रतिश्याय-पीनस की जब उचित चिकित्सा नहीं होती है तब यह बढ़कर बाधिर्य, अन्धापन, घ्राण शक्ति नाश, घोर ( कठिन ) नेत्ररोग, शोथ, मन्दाग्नि और कासरोग को उत्पन्न कर देते हैं॥ ३०॥

पीनसमारभ्य प्रतिश्यायपर्यन्तं पञ्चदशोक्ता। अपरांश्चतुर्विंशतिसंख्यापूरणायाऽऽह—

अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम्। चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः॥ ३१॥

सात प्रकार के अर्बुद, चार प्रकार के शोथ, चार प्रकार के अर्श और चार प्रकार के रक्तपित्त ये १९ रोग जिस प्रकार पहले कहे हैं उसी प्रकार नासिका में भी इन्हें समझें अर्थात् ये १९ रोग नासिका में भी होते हैं। एवं च १५×१९=३४ रोग नासिका में होते हैं ऐसा समझना चाहिये॥

चिकित्साभेदात्पीनसस्याऽऽमस्य लक्षणमाह—

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुस्वरः। क्षामः ष्ठीवति चाभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम्॥३२॥

आम पीनस के लक्षण—पीनस रोग में शिर का भारी रहना, अरुचि होना, नासिका से स्राव होते रहना, स्वर का क्षीण हो जाना, रोगी का दुर्बल होना और बार २ थूकना यह लक्षण जब तक रहे तब तक पीनस रोग आम है यह जानना चाहिये॥ ३२॥

पक्वपीनसस्य लक्षणमाह—

आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति। स्वरवर्णविशुद्धिश्च पक्वपीनसलक्षणम्॥

पक्व पीनस के लक्षण—पीनस रोग में जब आम लक्षणों वाला कफ गाढा हो जावे और इन्द्रियों में ही लुप्त हो जावे तथा रोगी के स्वर और वर्ण रोग के पूर्व की अवस्था के अनुसार हो जावें तो पीनस पक्व हो गया यह जानना चाहिये॥ ३३॥

## अथ नासारोगाणां चिकित्सा।

तत्राऽऽदौ पीनसस्य चिकित्सामाह—

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातागारगो भवेत्। शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नस्यैर्मन्दोष्णभोजनैः॥
वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत्॥ १॥

पीनस रोग चिकित्सा—सब प्रकार के पीनस रोगी को निवात स्थान में रहना चाहिये, शिर में तैल मर्दन करना चाहिये, स्वेदन करना चाहिये, नस्य लेना चाहिये, कुछ २ उष्ण भोजन करना चाहिये, वमन करना चाहिये, घृतपान करना चाहिये और यथा दोष अन्यान्य उपचार भी करना चाहिये ॥ १ ॥

सर्जार्जुनोदुम्बरवत्सकानां त्वक्काकषाय परिधावनेन ।
कषायकल्कैरपि चैभिरेव सिद्धं घृतं घ्राणविपाकनाशि ॥ २ ॥

सर्जादि कषाय—सर्ज ( चील ) वृक्ष, अर्जुन वृक्ष, गूलर और कुटज की छाल समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बना कर उससे नासिका धोना चाहिये और इन्हीं औषधियों के कषाय और कल्क में घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सेवन करने से नासापाक नष्ट होता है ॥ २ ॥

मरीचादियोग —

सर्वेषु सर्वकाल पीनसरोगेषु जातमात्रेषु । मरिच गुडेन दध्ना भुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ १ ॥

मरिचादि योग—सब प्रकार के पीनस रोग उत्पन्न होते ही मरिच का चूर्ण पुराना गुड और दही मिलाकर भोजन करे तो अधिक लाभ होता है ॥ १ ॥

पञ्चमूल्यादियूष —

पञ्चमूलीयुतं क्षीरं किंवा स्याच्चित्रकाभया । सर्पिर्गुडो विडङ्गश्च यूषं पीनसशान्तये ॥ १ ॥

पञ्चमूल्यादि यूष—पञ्चमूल से विधिपूर्वक क्षीर सिद्ध कर पिलावे अथवा चित्रकमूल और हरड़ को समान भाग लेकर चूर्ण या क्वाथ बना कर सेवन करे अथवा घृत, पुराना गुड़ और विडङ्ग का यूष विधिपूर्वक बना कर सेवन करे तो इससे पीनसरोग शमन होता है ॥ १ ॥

गुडाद्यो योग —

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकामं हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ।
यदि तु सघृतमन्नं श्लक्ष्णगोधूमचूर्णैः कृतमुपहरतेऽसौ तत्कुतोऽस्यावकाशः ॥ १ ॥

गुडादि योग—पुराना गुड़ और मरिच का चूर्ण दही में मिलाकर इच्छापूर्वक पान करने से कठिन पीनसरोग भी शीघ्र नष्ट होता है और यदि घृत के साथ गेहूं के उत्तम चूर्ण का पूआदि बनाकर सेवन किया जावे तो इससे भी पीनसरोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

वेल्लगोधूमयोगो—

वेल्लगोधूमभोजी च निद्राकाले च शीतलम् । जलं पिबति यो रोगी पीनसान्मुच्यते नरः ॥

वेल्लगोधूम योग—जो पीनस का रोगी वायविडंग का चूर्ण और गेहूं का चूर्ण मिलाकर रोटी आदि बनाकर भोजन करे और सोने के समय शीतल जल पी कर सोवे तो वह पीनसरोग से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

व्योषादिवटी—

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतसम् । सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ १ ॥
व्योषादिकमिदं चूर्णं पुराणगुडमिश्रितम् । पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ २ ॥

व्योषादि वटी—सोंठ, मरिच, पीपल, चित्रकमूल, तालीस पत्र, इमली, अम्लवेत, चव और जीरा का समान भाग चूर्ण लेवे और इलायची के दाने, दालचीनी और तेजपात चौथाई २ भाग लेवे और सम्पूर्ण चूर्ण जितने हों उसके दुगुना पुराना गुड़ मिलाकर विधिपूर्वक वटी बना कर या चूर्ण ही सेवन करने से पीनस, श्वास और कास नष्ट होते हैं तथा भोजन में रुचि होती है और स्वर बढ़ता है ॥ १-२ ॥

कट्फलादिचूर्ण क्वाथ—

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी व्योषं यासश्च कारवी । एषां चूर्णं कषायं वा दद्यादार्द्रकजैः रसैः ॥ १ ॥
पीनसे स्वरभेदे च तमके सहलीमके । सन्निपाते कफे वाते कासे श्वासे च शस्यते ॥ २ ॥

कट्फलादि चूर्ण और क्वाथ—कायफर, पुष्करमूल, काकड़ासिंगी, सोंठ मरिच, पीपल, जवासा और कृष्णजीरा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण अथवा क्वाथ बना कर उसमें अदरक का स्वरस मिलाकर सेवन करने से पीनस स्वरभेद, तमकश्वास, हलीमक, सन्निपात, कफ, वात, कास और श्वास में लाभ करता है ॥ १-२ ॥

पाठादितैलम्—

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः । दन्तिना च सैलं ससिद्धं नस्यतः पीनसापहम् ॥ १ ॥

पाठादि तैल—पुरवापाठी, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वामूल, पीपल और चमेली के कोमल पत्ते को समान भाग लेकर विधिवत् कल्क बनाकर यथा प्रमाण मूर्च्छित तिल के तेल में मिलाकर तैलपाक की विधि से तेल सिद्ध कर नस्य लेने से पीनस रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

षड्बिन्दुघृतम्—भृङ्गं लवङ्गं मधुकं च शुण्ठं सनागरं गोघृतमिश्रितं च ।

षड्बिन्दु नासास्थितं च पीनसं शिरोगतं रोगशतं च हन्ति ॥ १ ॥

षड्बिन्दु घृत—भांगरा, लवंग, मुलहठी, कूट और सोंठ को समान भाग लेकर विधिवत् कल्क कर यथा प्रमाण मूर्च्छित गोघृत में मिलाकर घृतपाक विधि से घृत सिद्ध कर इस षड्बिन्दु घृत को नाक में डालने से पीनस और शिर में होने वाले सैकड़ों रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

कलिङ्गाद्यवपीडः—

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः । कुष्ठोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ १ ॥

कलिङ्गादि अवपीडक—कलिङ्ग ( इन्द्रजौ ), हींग, मरिच, लाखका स्वरस, कायफल, कूट, बच, सहिजन और वायविडङ्ग को समान भाग पीस कर इसका अवपीडनस्य लेने से पीनस रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कफघ्नमन्नं वार्ताकं कुलत्थाढकिमुद्गजाः । यूषाः ससैन्धवव्योषाः शस्ताश्चोष्णास्तु पीनसे ॥२॥

पीनसरोग में पथ्य—कफनाशक अन्न, बैंगन, कुलथी अरहर और मूंग का यूष सैंधानमक और सोंठ-मरिच-पीपल का चूर्ण मिला उष्ण पान करने से पीनस रोग में लाभ करता है ॥ २ ॥

अपररोगाणां चिकित्सा, व्याघ्रीतैलम्—

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसिन्धुजैः । सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासागदापहम् ॥ १ ॥

व्याघ्री तैल—छोटी कटेरी, दन्तीमूल, बच, सहिजन, तुलसी, सोंठ, मरिच, पीपल और सेंधा नमक के कल्क के साथ विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नासिका में डालने से पूतिनासारोग ( नाक की दुर्गन्धि ) नष्ट होता है ॥ १ ॥

शिग्र्वादितैलम्—

शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः । बिल्वपत्ररसे सिद्धं तैलं स्यात्पूतिनस्यनुत् ॥१॥

शिग्र्वादि तैल—सहिजन के बीज, छोटी कटेरी, दन्ती के बीज, सोंठ, मरिच, पीपल और सैंधानमक के कल्क और बिल्वपत्र के स्वरस के साथ विधिपूर्वक तेल सिद्ध कर नाक में डालने से पूतिनस्य रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

नासापाके पित्तनाशं विधानं कार्यं सर्वं बाह्यमाभ्यन्तरं च ।

हत्वा रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च योज्याः सेके सघृताश्च प्रलेपाः ॥ २ ॥

नासापाक चिकित्सा—नासापाक रोग में पित्तनाशक सभी बाह्य और आभ्यन्तर चिकित्सा करनी चाहिये और रक्तमोक्षण तथा क्षीरिवृक्ष की त्वचा ( पञ्चवल्कल ) के कषाय से सिञ्चन करना चाहिये और इन्हीं ( पञ्चवल्कल ) के कल्क में घृत मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पूयास्रे रक्तपित्तघ्नाः कषाया नावनानि च । पाकदाहादिरोगेषु शीता लेपादिकाः क्रियाः ॥३॥

पूयास्र चिकित्सा—पूयास्र ( पूयरक्त ) रोग में रक्तपित्त नाशक कषाय और नस्यादि देना चाहिये । पाक दाहादि रोगों में ( नासा पाक-दाह में ) शीतल लेप आदि क्रिया ( चिकित्सा ) करनी चाहिये ॥ ३ ॥

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य सिक्थकस्य प्रयत्नतः । धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नं च निर्दिशेत् ॥ ४ ॥

क्षवथु-भ्रंशथु चिकित्सा—घृत, गुग्गुलु और मोम को मिलाकर यत्नपूर्वक नासिका में धूम देने से क्षवथु और भ्रंशथु रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् । तैलं पक्वमथाऽऽज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥५॥

क्षवथुनाशक तैल घृत—सोंठ, कूट, पीपल, बेल की गुदी और दाख इनके कल्क और कषाय से विधिपूर्वक तेल अथवा घृत सिद्ध कर नस्य लेने से क्षवथुरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

नस्य हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनमल्पशस्तु ।
नस्ये कृते क्षीरजलावसेकान् शमन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः ॥ ६ ॥

दीप्तरोग चिकित्सा—दीप्तरोग में नीम और रसवत का नस्य शिर में अल्प स्वेद और नस्य देने के पश्चात् दूध और जल से सिंचन करना चाहिये तथा मूंग के यूष के साथ भोजन करना चाहिये । इससे दीप्तरोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

नासानाहे कर्तव्यं पानं गव्यस्य सर्पिषः ।

नासानाह चिकित्सा—नासानाह ( नासाबन्ध ) रोग में घृत का पान करना चाहिये ॥

नासाशोषे क्षीरपानं ससितं च प्रशस्यते ॥ ७ ॥

नासाशोष चिकित्सा—नासाशोष रोग में शर्करा मिश्रित दूध पिलाना चाहिये ॥ ७ ॥

नासास्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं नाड्या देयं येऽवपीडाश्च पथ्याः ।
तीक्ष्णाम्धूमान्देवदारुग्निकाभ्यां मांसं चाऽऽजं पथ्यमाशाऽऽदिशन्ति ॥८॥

नासास्राव चिकित्सा—नासास्राव रोग में नाकों में पूर्वकथित लाभदायक चूर्णों को नाड़ीयन्त्र द्वारा देना चाहिये अवपीडन नस्य तथा देवदारु चित्रकमूलादि से युक्त तीक्ष्ण धूमों को देना चाहिये और बकरी का मांस आदि पथ्य देना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रतिश्यायप्रतीकार —

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम् । वस्त्रेण गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ १ ॥

प्रतिश्याय चिकित्सा—सब प्रकार के प्रतिश्यायों में वातरहित गृह में रहना चाहिये और गुरु तथा उष्णवस्त्र से शिर को वेष्टित करना चाहिये ॥ १ ॥

बालमूलकयोर्यूषः कुलत्थयोश्च पूजितः । स्वेदोष्णं च हिमं भोज्यं पाचनाय प्रशस्यते ॥ २ ॥
ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः ।

छोटी मूली और कुलथी का यूष पिलाना चाहिये, स्वेद देना चाहिये, शीतल भोजन करना चाहिये, पश्चात् जब कफ पका हुआ ज्ञात हो तब शिरोविरेचन देकर कफ को निकाल देना चाहिये ॥ २ ॥

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च ॥ ३ ॥
अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः ।

पिप्पल्यादि नस्य—पीपल, सहिजन के बीज, वायविडंग और मरिच को समान भाग का श्लक्ष्ण चूर्णकर अवपीडन नस्य देने से प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

वातिके च प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमम् ॥ ४ ॥
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च ।

वातिक प्रतिश्याय चिकित्सा—वातिक प्रतिश्याय रोग में पांचों नमक के कल्क से सिद्ध किया घृत अथवा वातनाशक गण की ओषधियों से विधिपूर्वक सिद्ध किया घृत यथाक्रम से पान करना चाहिये, इससे वातिक प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रक्तपित्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम् ॥ ५ ॥

परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान् । हितं पित्तप्रतिश्याये पाचनार्थं शृतं पयः ॥ ६ ॥

रक्तपित्तज प्रतिश्याय चिकित्सा—रक्तपित्त से उत्पन्न प्रतिश्याय में मधुर गण की ओषधियों से सिद्ध घृत का पान करना चाहिये और शीतल द्रव्यों का प्रलेप ( लेप ) और सिंचन करना चाहिये । पित्तज प्रतिश्याय के पाचन के लिये दूध में घृत मिलाकर पिलाना चाहिये ॥५-६॥

शृङ्गवेरेण पयसा शृङ्गवेरमथापि वा ।

अदरख या सोंठ को दूध में पकाकर पिलाना चाहिये अथवा केवल अदरख का स्वरस या सोंठ का क्वाथ पिलाना चाहिये । इससे पित्तज प्रतिश्याय का पाचन होता है ॥

सर्पिषा भृष्टया धात्र्या शिरसो लेपतः क्षणात् ॥ ७ ॥
नासायां संप्रवृत्तं च रुधिरं च निरस्यति ।

धात्री लेप—आंवले को पीसकर घृत में भूनकर शिर पर लेप करने से क्षण भर में नासिका से बहता हुआ रक्त ( बन्द ) हो जाता है ॥ ७ ॥

कफजे सर्पिषो स्निग्धं तिलमाषविपक्वया ॥ ८ ॥
यवाग्वा वामयित्वा तु श्लेष्मघ्नं क्रममाचरेत्।

कफज प्रतिश्याय चिकित्सा—कफज प्रतिश्याय में तिल और उड़द की यवागू घृत से स्निग्ध पिलाकर वमन कराकर कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८ ॥

दार्वीङ्गुदीनिकुम्भैश्च किणिह्या सरलेन च। वर्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि ॥

दार्व्यादिवर्ति—दारुहल्दी, हिंगोट, दन्ती, अपामार्ग और सरल काष्ठ को पीसकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर धूमपान करने से प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ९ ॥

विडङ्गं सैन्धवं हिङ्गु गुग्गुलुः समनः शिलः। प्रतिश्याये यथायुक्त शक्त्या धूमं पिबेन्नरः ॥ १ ॥
एतच्चूर्णं समाघ्रातं प्रतिश्यायं विनाशयेत्।

विडङ्गादि धूप—वायविडङ्ग, सेंधानमक, हींग, गुग्गुल, मैनसिल और बच को समान भाग पीसकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर शक्ति के अनुसार धूमपान करना चाहिये और इन्हीं उपरोक्त ओषधियों के चूर्ण का नस्य लेना चाहिये। इससे प्रतिश्याय रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

घृततैलसमायुक्तं सक्तुधूमं पिबेन्नरः ॥ २ ॥
स धूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहिक्काहरः परः।

सघृत सक्तुधूम—घृत और तेल को सत्तू में मिलाकर विधिपूर्वक धूमपान करने से प्रतिश्याय, कास और हिक्का रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वं गव्यसमायुतम् ॥ ३ ॥

धूमयोग—प्रतिश्याय में सब प्रकार के धूमों में गोघृत मिलाकर पान करना चाहिये ॥ ३ ॥

चातुर्जातकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजीरकम्। प्रतिश्यायेषु सशिरःपीडेषु नवसागरम् ॥ ४ ॥

चातुर्जातक नस्य—दालचीनी, इलायची के दाने, तेजपात और नागकेसर का समान भाग श्लक्ष्ण चूर्ण कर नस्य लेने से अथवा कृष्ण जीरा के चूर्ण का नस्य लेने से प्रतिश्याय और शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

समानं कलिकाचूर्णं सूक्ष्मं सपूर्णितं द्वयम्। गुञ्जामात्रं तु तच्चूर्णं नस्यं प्रधमनं चरेत् ॥
नश्यन्त्यनेन नस्येन प्रतिश्यायशिरोरुजः। प्रतिश्यायेषु सशिरःपीडेषु नवसागरम् ॥ ५ ॥

कलिका नवसागर नस्य—नौसादर और चूना के चूर्ण को समान भाग लेकर गुञ्जा के प्रमाण की मात्रा से प्रधमन नस्य देने से प्रतिश्याय और शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४-५ ॥

वचाचूर्णमाघ्रातं वाससा पोट्टलीकृतम्। कारवी वस्त्रबद्धा वा प्रतिश्यायमपोहति ॥ ६ ॥

वचादि पोटली—बच के चूर्ण को कपड़े की पोटली में बाँधकर सूँघने से अथवा कृष्ण जीरा के चूर्ण को कपड़े में बाँधकर सूँघने से प्रतिश्याय नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शटीधात्रीकीव्योषचूर्णं सर्पिर्गुडान्वितम्। हरेद्घोरं प्रतिश्यायं पार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ७ ॥

शट्यादि चूर्ण—कचूर, गुड़ आँवला सोंठ, मरिच और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर उसमें घृत और पुराना गुड़ मिलाकर खाने से घोर प्रतिश्याय, पार्श्वशूल, हृदयशूल और बस्तिशूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पुटपक्वं जयापत्रं तैलं सैन्धवसंयुतम्। प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ८ ॥

जयापत्र योग—भाग के पत्ते को पुटपाक की विधि से पाक कर उसमें तेल और सेंधानमक मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार के प्रतिश्याय रोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

चित्रकहरीतकी—चत्वार्यत्र शतानि चित्रकजटायुक्पञ्चमूलामृता।
धात्रीणामुदकार्मणे त्रिभिरपां द्रोणैश्च सक्वाथयेत् ॥
पादस्थे क्वथने गुडस्य च शतं पथ्याढकेनान्वितं
पक्त्वार्ध्यं श्रतशीतले च मधुनः प्रस्थार्धमात्रं क्षिपेत् ॥ १ ॥
व्योषस्य त्रिसुगन्धकस्य च पलान्यत्रैव षट् प्रक्षिपे
त्क्षारस्याधपलं रसायनमिदं संसेव्यते सर्वदा।
शोषाधासमलावकासवमथुश्लेष्मप्रतिश्यायिभि
र्क्षीणोरःक्षतहिक्किभिः कफशिरोरुग्भिः मनष्टाग्निभिः ॥ २ ॥

चित्रक हरीतकी—चित्रकमूल, दोनों पंचमूल ( समान मिलित दशमूल ) गुरुच और कौंच को ४०० पल अर्थात् प्रत्येक एक एक सौ पल लेकर जौ कुटकर तीन द्रोण ( १२ आढ़क ) जल में देकर क्वाथ की विधि से क्वाथ कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ एक सौ पल मिला विधिवत् घोल कर हरीतकी एक आढ़क ( चार प्रस्थ ) का चूर्ण उसमें डाल कर अवलेह पाक की विधि से अवलेह सिद्ध कर उसमें आधा प्रस्थ मधु डालकर सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक का समान मिलित श्लक्ष्ण चूर्ण छे पल तथा जवाखार आधा पल मिलाकर रख लेवे । इस रसायन को सवदा सेवन करे तो शोष, श्वास, मलावरोध, वमन, कफज प्रतिश्याय, क्षीणरोग, उरःक्षत रोग, कफ रोग, शिरो रोग ( शिर की पीड़ा ) और मन्दाग्नि रोग नष्ट होते हैं ॥ १–२ ॥

*हिङ्ग्वादितैल चिकित्साकलिकात —*

हिङ्गुव्योषविडङ्गकट्फलवचाकुष्ठैलागन्धैर्युतै
र्लाक्षाश्वेतपुनर्नवाब्दकुटजैः पुष्पोत्करैः सौरसैः ।
द्रव्यैभिः कटुतैलमेतदमले मन्त्रे समूत्रं शृत
पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयिभ्यो हितम् ॥ १ ॥

हिंग्वादि तैल—हींग सोंठ, मरिच, पीपल, वायविडंग, कायफल, वच, कूट, छोटी इलायची, लाख, श्वेत पुनर्नवा नागरमोथा, कुटज और तुलसी के पुष्प को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित सरसों का तैल के समान भाग गोमूत्र मिलाकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर नासिका द्वारा पान करने से नासिका रोग में लाभदायक होता है ॥ १ ॥

कृमिघ्ना ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्यै कृमिषु योजयेत् ।
घ्रायमानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ १ ॥

नासाकृमि चिकित्सा—कृमिरोग की चिकित्सा में कृमिनाशक जो चिकित्सा कही गयी है वे सभी नासाकृमि में करें और कृमिनाशक द्रव्यों के क्वाथ से नासिका प्रक्षालन करे तो इससे नासाकृमि नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

रक्ताम्रस्वरसः शुद्धस्तस्तेन सह नस्यतः । तस्य पर्णानि पिष्ट्वा च बध्नीयान्नासिकामुखे ॥ २ ॥
पतन्ति कीटकाः सद्यो योगोऽयं त्रिदिनैर्हितः । पीनसान्मुच्यते रोगी शतशोऽनुमितं चिरम् ॥

रक्ताम्रस्वरस योग—रक्तवर्ण के आम ( सेंदुरिया आम ) का शुद्ध स्वरस जल में मिलाकर नस्य देने से और उसी आम के पत्तों को पीसकर नाक के मुँह पर बांधने से शीघ्र नाक के कीड़े गिर जाते हैं, इस प्रयोग को तीन दिन करना चाहिये तथा इस योग से रोगी पीनस रोग से मुक्त हो जाता है, यह सैकड़ों बार का अनुभूत योग है ॥ २–३ ॥

रक्तपित्तानि शोथांश्च तथाऽर्शांस्यर्बुदानि च । नासिकायां स्युरेतेषां स्व स्वं कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

रक्तपित्तादि चिकित्सा—रक्तपित्त रोग, शोथ रोग, अर्श रोग और अर्बुद रोग यदि नासिका में उत्पन्न हों तो उनकी रक्तपित्तादि चिकित्सा—रक्तपित्त, शोथ अर्श तथा अर्बुद रोग यदि नासिका में हों तो इनकी चिकित्सा जैसे पहले इन रोगों के प्रकरणों में कह आये हैं वैसे ही करें ॥

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः । सिद्धं सिक्तार्थबीजैश्च तैलं नासार्शसे हितम् ॥ १ ॥

गृह धूमादि तैल—रसोई घर का धूम ( झाला ) पिप्पली, दारुहल्दी, यवाक्षार बड़े करंज के बीज सेंधानमक, अपामार्ग के बीज प्रत्येक समभाग का विधिपूर्वक पका हुआ तैल नासार्श में हितकर होता है ॥ १ ॥

रक्तकरवीरपुष्पं जात्या वा तथा मल्लिकायाः । पुष्पैः समं सिद्धतैलं नासार्शोनाशनं परमम् ॥

करवीर पुष्प तैल—लाल कनेर का फूल, चमेली या जूही का फूल इनके समान तिल का तैल डालकर पकाया हुआ तैल नासार्श रोग में परम लाभ दायक होता है ॥ १ ॥

नासाशोषे क्षीरसर्पिः प्रधानं तैलं सिद्धं चाणुकल्केन नस्यम् ।
सर्पिष्पानं भोजनं चाप्युपैतं स्नेहाद्यैश्च स्नैहिकश्चात्र धूमः ॥ १ ॥

नासाशोफ चिकित्सा—नासिका में सूजन होने पर दूध, घृत तथा अणुधान के कल्क से पकाया हुआ तेल नस्य में देना चाहिये तथा घृत खाने को दे और कलिहारी का बना तेल नासिका में लगाकर स्नेहन तथा लांगली का स्वेदन देवे और स्नेहयुक्त धूम पान करावे ॥ ४ ॥

क्षारोऽर्बुदेऽर्शमांसे च क्रियाशेषेऽप्यवेक्ष्य च । स्थितिर्निर्वातनिलये मनाडोष्णीषधारणम् ॥
गण्डूषो लङ्घनं नस्यं धूमच्छर्दिः शिरोव्यधः ॥

सामान्य चिकित्सा—नासार्बुद तथा नासार्श रोग में क्षार का प्रयोग करे तथा शेष नासारोग में विचार कर चिकित्सा करे और रोगी वातरहित स्थान में रहे, भारी पगड़ी सिर में लपेटे रहे, गण्डूष धारण करे, लङ्घन, नस्य, धूम, वमन तथा शिरावेध करावे ॥ १ ॥

पथ्यापथ्यम्—

स्वेदः शिरोऽभ्यङ्गः पुराणा यवशाल्य स्नेहः । कुलित्थमुद्गयोर्यूषो ग्राम्या जाङ्गलजा रसा ॥
वार्ताकं कुलकं शिग्रु कर्कोटं बाल्यमूलकम् । लशुनं दधि सखाम्बु वारुणी च कटुत्रयम् ॥ २ ॥
कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं च लघु भोजनम् । नासारोगे पीनसादौ सेव्यमेतद्यथामलम् ॥३॥

नासारोग में पथ्य—स्नेहन, स्वेदन, सिर पर तैलाभ्यंग, पुराना जौ, शालिधान्य, कुलथी और मूंग का यूष, ग्राम्य तथा जांगल जीवों का मांसरस, बैंगन, परवल, सहिजना, ककोड़ा, नरम मूली, लहसुन, दही, उष्णजल, वारुणी ( मद्य ), त्रिकुटा, कटु, अम्ल, लवण स्निग्ध उष्ण तथा हलका भोजन ये सब पीनसादि नासा रोगों में दोषानुसार सेवन करना चाहिये ॥ १-३ ॥

स्नानं क्रोधं शकृन्मूत्रवातवेगान्शुचं द्रवम् । भूमिशय्यां च यत्नेन नासारोगी परित्यजेत् ॥

नासारोग में अपथ्य—स्नान, क्रोध तथा मल, मूत्र और अधोवायु के वेगों को रोकना, शोक, द्रव पदार्थों का अशन और भूमि पर शयन करना नासारोगी यत्नपूर्वक छोड़ देवे ॥ ४ ॥

इति नासारोगप्रकरण समाप्तम्

---

## अथ शिरोरोगनिदानम् ।

धूमातपतुषारम्बुक्रीडातिस्वप्नजागरैः । उत्स्वेदातिपुरोवातबाष्पनिग्रहरोदनैः ॥ १ ॥
अत्यम्बुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः । उपधानमृजाभ्यङ्गद्वेषाच्च प्रतसेवणैः ॥ २ ॥
असात्म्यगन्धदुष्टामभाष्याद्यैश्च शिरोगतैः । शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ ३ ॥
सन्निपातेन रक्तेन क्षयेण कृमिभिस्तथा । सूर्यावर्तानन्तवातशङ्खकार्धावभेदिकाः ॥
एकादशविधस्यास्य लक्षणानि प्रचक्षते ॥ ४ ॥

शिरोरोग निदान—अत्यन्त धूम लगने से, अत्यन्त आतप ( घाम ) के लगने से, अत्यन्त शीत लगने से, अत्यन्त जल में क्रीड़ा करने से, अत्यन्त सोने से, अत्यन्त जागने से, शोथ से, सम्मुख अथवा पुरवैया वायु के अत्यन्त सेवन करने से, आंसुओं के रोकने से, अत्यन्त रोने से, अत्यन्त जल पीने से, अत्यन्त मद्य पीने से, कृमि के दोष से, मल मूत्रादि के वेगों को रोकने से ऊँचे तकिये पर शिर रख कर सोने से, अत्यन्त तैलादि मर्दन कराने से, द्वेष करने से, निरन्तर देखते रहने से, असात्म्य ( दूषित या प्रतिकूल ) गन्ध सूंघने से, दूषित अन्न खाने से और अत्यन्त बोलने से शिर में रहने वाले वात-पित्त तथा कफ तीनों दोष कुपित होकर, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, क्षयज, कृमिज तथा सूर्यावर्त, अनन्तवात, शङ्खक और अर्धावभेदक नाम के ११ प्रकार के शिरोरोग को उत्पन्न कर देते हैं जिनके लक्षण ( आगे ) कहते हैं ॥ १-४ ॥

अथ चोक्तम्—

सर्व एव शिरोरोगाः सन्निपातसमुद्भवाः । औत्कट्यात्कीर्तितास्ते हि दशकश्च क्षयेण च ॥ १ ॥

शिरो रोगों का सन्निपातजत्व—सभी प्रकार के शिरोरोग प्रायः सन्निपात से ही उत्पन्न होते हैं परन्तु दोषों की उत्कटता ( उत्कटता ) के कारण विद्वानों ने दोषानुसार दस प्रकार की संज्ञा की है और एक क्षय से होने वाला कहा है इस प्रकार सब मिलाकर ग्यारह प्रकार के शिरोरोग होते हैं । जिसमें सन्निपात ही प्रधान है ॥ १ ॥

वातिकस्य लक्षणमाह—

यस्यानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।

बन्धोपतापैः प्रशमश्च यत्र शिरोभितापः स समीरणेन ॥ ५ ॥

वातज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में मनुष्य के शिर में अकारण ही तीव्र पीड़ा होने लगती है तथा रात्रि में वह पीड़ा और भी अधिक हो जाती है और शिर को बांधने अथवा सेकादि करने से शान्त होती है उस शिरोरोग को वात के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकमाह—यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो दह्यति चाक्षिनासम् ।

शीतेन रात्रौ च भवेच्छमश्च शिरोभितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ६ ॥

पित्तज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर जलते हुए अङ्गारों से व्याप्त की भांति दाह हो आँखों और नासिकाओं में दाह हो और वह दाह शीत के कारण रात्रि में अथवा शीतल क्रिया से शमन हो उस शिरोरोग को पित्त के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ६ ॥

श्लैष्मिकमाह—

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिष्टब्धमथो हिमं च ।

शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोभितापः स कफप्रकोपात् ॥ ७ ॥

कफज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर कफ से आच्छादित हो, भारी हो, जकड़ा हुआ हो, शीतल हो और नेत्र, नासिका और मुँह पर शोथ हो उस शिरोरोग को कफ के कोप से उत्पन्न जानना चाहिये ॥ ७ ॥

सान्निपातिकमाह—

शिरोभितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि समुत्पतन्ति ॥

सान्निपातिक शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर में तीनों दोषों के सब लक्षण एकत्र उपस्थित हो जाते हैं उसे त्रिदोष के कोप का शिरोरोग जानना चाहिये ( इसमें वायु के कोप से शूल-भ्रम और कम्प, पित्त के कोप से दाह-मद और तृषा तथा कफ के कोप से गुरुता और तन्द्रा आदि होते हैं ) ॥

रक्तजमाह—रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ८ ॥

रक्तज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में पित्तज शिरोरोग के लक्षणों के समान लक्षणों वाला कष्ट हो और शिर का स्पर्श सहन नहीं हो उसे रक्त के कोप का शिरोरोग जानना चाहिये ॥ ८ ॥

क्षयजमाह—वसाबलासक्षतसम्भवानां शिरोगतानामतिसंक्षयेण ।

क्षयप्रवृत्तः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ ९ ॥

संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ॥

क्षयज शिरोरोग—जिसके शिर में रहने वाले वसा कफ और रक्त अत्यन्त क्षय हो जाते हैं उसे क्षयज शिरोरोग उत्पन्न होता है वह कष्टसाध्य अथवा कष्टसाध्य होता है, उसमें अत्यन्त कठिन पीड़ा होती है और स्वेद देने से, वमन कराने से बढ़ पड़ता है अर्थात् इससे और क्षय होता है और पीड़ा बढ़ती है इस प्रकार के शिरोरोग को क्षयज जानना चाहिये ॥ ९ ॥

कृमिजमाह—

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं सम्भक्ष्यमाणं स्फुटतीव चान्तः ।

घ्राणाच्च गच्छेद्रुधिरं सपूयं शिरोभितापः कृमिभिः स घोरः ॥ १० ॥

कृमिज शिरोरोग—जिस शिरोरोग में शिर में अत्यन्त तोद ( सुई चुभाने के समान पीड़ा ) हो, शिर के भीतर भाग में खाया जाता हुआ ( कीड़े काटने के समान पीड़ा ) और फूटता हुआ ज्ञात हो तथा नासिका से रक्त और पूय निकलता हो उसे कृमि के कोप से उत्पन्न शिरोरोग जानना चाहिये, यह अत्यन्त कठिन होता है ॥ १० ॥

सूर्यावर्तमाह—सूर्योदयं या प्रति मन्दमन्दमक्षिभ्रुवौ रुक्समुपैति गाढम् ।

विवर्धते चांशुमता सहैव सूर्यापवृत्तौ विनिवर्तते च ॥ ११ ॥

शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाच्च ।

सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्यावर्तं तं कथयन्ति केचित् ॥ १२ ॥

सूर्यावर्त के लक्षण—जिस शिरोरोग में शिर में सूर्योदय होते ही आँखों और भौंहों में मन्द मन्द पीड़ा आरम्भ होकर इस प्रकार बढ़ती हो जिस प्रकार सूर्य बढ़ते हो अर्थात् जैसे-जैसे दिन

बढ़ता हो वैसे वैसे पीड़ा बढ़ती जाती हो और जैसे-जैसे सूर्य घटते हों पीड़ा भी उसी प्रकार घटती जाती हो और कभी शीत क्रिया से उसमें शान्ति आती हो कभी उष्ण क्रिया से शान्ति आती हो, उस सब दोषों से उत्पन्न कष्टदायक शिरोरोग को सूर्यावर्त अथवा सूर्यावर्त कहते हैं ॥

अनन्तवातमाह—

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां सम्पीड्य गाढं सरुजां सुतीव्राम् ।
कुर्वन्ति साक्षिभ्रुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ॥ १३ ॥
गण्डस्य पार्श्वे च करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च विकारान् ।
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ॥ १४ ॥

अनन्तवात के लक्षण—जिस शिरोरोग में वातादिक तीनों दोष कुपित होकर मन्या नामक शिराओं को पीड़ित कर शिर के पिछले भाग (ग्रीवा) में दारुण पीड़ा उत्पन्न हो और वह पीड़ा विशेष कर आँख, भौंह और शङ्ख देश में स्थित हो तथा यही नेत्रादि स्थानों को पीड़ित करती हो और कपोल के समीप एक भाग में कम्प होता हो, हनुग्रह हो और नेत्ररोग हो उसे अनन्त वात नामक शिरोरोग कहते हैं। इसमें तीनों दोष प्रबल रहते हैं ॥ १३-१४ ॥

शङ्खकमाह—

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे विमूर्च्छिताः । तीव्ररुग्दाहरागं हि शोथं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १५ ॥
स शिरो विषवद्वेगान्निरुध्याशु गलं तथा । त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नाम नामतः ॥
त्र्यहं जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ॥ १६ ॥

शङ्खक के लक्षण—जिस शिरोरोग में पित्त, रक्त और वायु दूषित होकर शङ्खदेश में स्थित होकर तीव्र पीड़ा दाह तथा भयानक शोथ उत्पन्न हो और वह शोथ विष के वेग की भाँति बढ़ कर शीघ्र शिर और गले को अवरुद्ध कर तीन ही रात्रि में जीवन को नष्ट कर दे उसका नाम शङ्खकरोग है। इसमें रोगी तीन ही दिन जीवित रहता है, इसलिये वैद्य इस रोग की चिकित्सा असाध्य समझकर करे यदि रोगी, वैद्य, परिचारक और औषध ये चारों ईश्वर की कृपा से अनुकूल हो जावे तो रोगी बच भी जाता है ॥ १५-१६ ॥

अर्धावभेदकमाह—

रूक्षाशनादध्यशनात्प्राग्वातावश्यमैथुने । वेगसन्धारणायासव्यायामैः कुपितोऽनिलः ॥ १७ ॥
केवलः सकफो वाऽर्धं गृहीत्वा शिरसो बली । मन्याभ्रूशङ्खकर्णाक्षिललाटार्धेषु वेदनाम् ॥ १८ ॥
शस्त्रारणिनिभां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः । नयनं वाऽथ वा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥

अर्धावभेद के लक्षण—जिस शिरोरोग में रूक्ष पदार्थों के भक्षण करने से, अध्यशन करने से, पुरवैया वायु के अधिक सेवन करने से अतिशीत के सेवन से, अतिमैथुन करने से वात-मलादि के वेगों को धारण करने से, अति परिश्रम करने से और अधिक व्यायाम करने से बलवान् वायु कुपित होकर वायु स्वयं अथवा कफ के सहित मिलकर आधे शिर को ग्रहण कर मन्या भौं, शङ्ख देश, कर्ण, नेत्र और आधे ललाट में पीड़ा उत्पन्न कर देता है। वह पीड़ा इतनी तीव्र होती है जितनी शस्त्र अथवा वज्र से काटने के समान होती है अर्थात् काटने चीरने के समान तीव्र पीड़ा होती है, उसको अर्धावभेदक नाम का शिरोरोग कहते हैं। यह रोग जब अत्यन्त बढ़ जाता है तब नेत्र अथवा कान को नष्ट कर देता है ॥ १७-१९ ॥

## अथ शिरोरोगाणां चिकित्सा।

वातिकस्य चिकित्सामाह—

वातजातशिरोरोगे स्नेहस्वेदनमर्दनम् । पानाहारोपनाहांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १ ॥

वातिक शिरोरोग चिकित्सा—वातज शिरोरोग में स्नेहन, स्वेदन और मर्दन करना चाहिये तथा वातनाशक पान, आहार और उपनाह कर्म करना चाहिये अर्थात् भोजन, पानादि सभी वातनाशक करना चाहिये ॥ १ ॥

कुष्ठमेरण्डमूलं च नागरं तक्रपेषितम् । कदुष्णं च शिरःपीडां भाललेपनतो हरेत् ॥ २ ॥

कुष्ठादि लेप—कूठ, एरण्डमूल की त्वचा और सोंठ समान भाग लेकर तक्र के साथ पीस कर लेप बनाकर थोड़ा गरम करके ललाट पर लेप करने से वातज शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ २ ॥

रसः श्वासकुठारो यस्तस्य नस्यं विशेषतः । शिरःशूलं हरत्येव विधेयं नात्र संशयः ॥ ३ ॥

श्वासकुठार रस नस्य—श्वासरोग की चिकित्सा में कहा हुआ जो श्वासकुठार रस है उसका नस्य लेने से विशेष करके वातिक शिरःशूल नष्ट होता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिये ॥३॥

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् । सकाञ्जिकः स्नेहयुक्तो लेपो वातशिरोर्त्तिनुत् ॥ ४ ॥

देवदार्व्यादि लेप—देवदारु या धूप, तगर, कूट, जटामासी और सोंठ समान भाग लेकर काञ्जी के साथ पीस कर उसमें स्नेह (घृत) मिलाकर शिर पर लेप करने से वातजन्य शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ४ ॥

कुष्ठमेरण्डमूलं च लेपः काञ्जिकपेषितः । शिरोर्त्तिं वातजां हन्यात्पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥५॥

कुष्ठादि लेप—कूट और एरण्डमूल की त्वचा को समान भाग लेकर काञ्जी के साथ पीस कर शिर पर लेप करने से अथवा मुचकुन्द के पुष्प को काञ्जी के साथ पीस कर शिर पर लेप करने से वातजन्य शिर की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ५ ॥

शिरोवस्तिविधि —आशिरोव्यापि चर्माथ षोडशाङ्गुलमुच्छ्रितम् ।
तेनाऽऽवेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ॥ १ ॥
निश्चलस्योपविष्टस्य तैलं कोष्णं प्रपूरयेत् । धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्धमेव वा ॥ २ ॥
शिरोवस्तिर्हरत्येष शिरोरोगं मरुद्भवम् । हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मूर्धकम्पनम् ॥ ३ ॥

शिरोवस्ति विधि—शिर पर लपेटने के योग्य लम्बा तथा सोलह अङ्गुल का चौड़ा चमड़ा लेकर शिर पर लपेट देवे और उसके नीचे भाग में उड़द के कल्क से लेप कर मुद्रण कर देवे पश्चात् रोगी को भलीभाँति निश्चल बैठा कर उस सोलह अंगुल गहरे शिर पर के चमड़े की टोपी में कुछ उष्ण तैल भर देवे तथा उसे जब तक पीड़ा शान्त नहीं हो तब तक धारण किये रक्खे। यह शिरोवस्ति वात के कोप से उत्पन्न शिरोरोग को नष्ट करती है और हनु, मन्या, आँख और कान की पीड़ा को नष्ट करती है तथा अर्दितरोग और शिर कम्प को नष्ट करती है ॥ १-३ ॥

विना भोजनमेवैष शिरोवस्तिः प्रयुज्यते । पञ्चाहं वाऽपि सप्ताहं षडहं वा समाचरेत् ॥ ४ ॥
ततोऽपनीतस्नेहस्तु मोचयेद्वस्तिबन्धनम् । शिरोललाटवदनग्रीवांसादीन्विमर्दयेत् ॥
सुखोष्णेनाम्भसा गात्रं प्रक्षाल्याद्यात्ततो हितम् ॥ ५ ॥

इस शिरोवस्ति क्रिया को बिना भोजन किये ही पाँच दिन अथवा सात दिन अथवा छै दिन तक लगातार करनी चाहिये पश्चात् उस स्नेह (तैल) को निकाल कर वस्ति की सन्धियों को छुड़ा कर शिर, ललाट, मुख, ग्रीवा और कन्धों का मर्दन करे और सुखोष्ण जल से अङ्गों को धोकर हितकारी (पथ्य) भोजन करे ॥ ५ ॥

पैत्तिकचिकित्सामाह—

पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत् । मृद्वीकात्रिफलाचूर्णैः रसैः क्षीरघृतैरपि ॥ १ ॥
शर्कराक्षीरसलिलैः शिरश्च परिषेचयेत् । सर्पिषा शतधौतस्य शिरसा धारणं हितम् ॥ २ ॥

पैत्तिक शिरोरोग चिकित्सा—पैत्तिक शिरोरोग में रोगी को स्नेहन देकर स्निग्ध करके मुनक्का त्रिफला, हरड़, बहेड़ा और आँवला के चूर्ण ईख के रस, दूध और घृत विरेचन के लिये देना चाहिये तथा शक्कर, दूध और जल से शिर का सिंचन करना चाहिये और सौ बार का धोया हुआ घृत शिर में लगाना चाहिये। इससे लाभ होता है ॥ १-२ ॥

निमज्जनं च शिरसः शीतले सलिलेऽम्भसि । कुमुदोत्पलपद्मानां शीतानां चन्दनाम्बुभिः ॥
स्पर्शाः सुखाश्च पवनाः सेव्या दाहार्तिशान्तये ।

शिर को शीतल जल में डुबाना चाहिये। कुमुद (कुमुदनी), नील कमल और पद्म (रक्त कमल) से युक्त चन्दन के द्वारा शीतल किये जल के स्पर्श (सिंचन) से और सुख कारक (शीतल-मन्द सुगन्ध) वायु के लगने से दाह और पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः ॥ ४ ॥
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्यात्शृतैर्वा परिषेचनम् । [illegible] हितं मतम् ॥ ५ ॥

चन्दन, खस, जेठीमधु, खरेटी, व्याघ्रनख और नील कमल दूध के साथ पीसकर लेप करना चाहिये अथवा इन द्रव्यों को दूध में पका कर शीतल कर (शिर पर) सिंचन करना

चाहिये। इससे पित्तज शिरो रोग नष्ट होता है। अथवा जेठीमधु, चन्दन और अनन्तमूल को समान भाग लेकर कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित गोघृत और घृत के चौगुना गौदुग्ध मिलाकर पाक की विधि से घृत सिद्ध कर नस्य लेने से पैत्तिक शिरोरोग में लाभ होता है॥

नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वाऽपि पित्तजे।

अथवा शर्करा, द्राक्षा और मुलहठी के द्वारा विधिवत् सिद्ध घृत का नस्य पित्तज शिरो रोग में देना चाहिये॥

धात्रीकसेरुह्रीवेरपद्मपद्मकचन्दनैः॥ ६॥

दूर्वोशीरनलानां च मूलैः कुर्यात्प्रलेपनम्। शिरोर्तिं पित्तजां हन्यात्रक्तपित्तरुजं तथा॥ ७॥

धात्र्यादि लेप—आंवला, कसेरू, हाउवेर (सुगन्धवाला), कमल, पदुम काठ, चन्दन, दूब, खस और नलमूल समान भाग पीसकर शिर पर लेप करना चाहिये। इससे पित्त से उत्पन्न शिर की पीड़ा तथा रक्तपित्त से उत्पन्न शिर की पीड़ा नष्ट होती है॥ ६-७॥

रसः श्वासकुठारोऽल्पः कर्पूरः कुङ्कुमं नवम्। सिता छागीपयः सर्वं चन्दनेनानुघर्षयेत्॥८॥

सद्य नस्यं मिपग्दद्यात्पित्तजायां शिरोरुजि।

श्वास कुठारादि नस्य—श्वास कुठार रस (श्वास रोग की चिकित्सा में कहा हुआ), थोड़ा कपूर और नवीन केसर, मिश्री, बकरी के दूध से चन्दन घिस कर नस्य देवे तो पित्तज शिरोरोग नष्ट होता है॥ ८॥

किन्तु मस्तकशूलेषु सर्वेष्वेष हितं मतम्। गुडनागरकल्कस्य नस्यं मस्तकशूलनुत्॥ ९॥

सब प्रकार के शिरःशूल में यह योग लाभदायक है। गुड़ तथा सोंठ के कल्क का नस्य शिर के शूल को नष्ट करता है॥ ९॥

श्लैष्मिक चिकित्सा—

श्लैष्मिके लङ्घनं रूक्ष लेपस्वेदादि कारयेत्।

कफज शिरो रोग चिकित्सा—कफज शिरो रोग में लङ्घन, रूक्षण, लेपन और स्वेदन करना चाहिये॥

हरेणुतगरशैलेयमुस्तैलागुरुदारुभिः॥ १॥

मांसीरास्नोरुबूकैश्च कोष्णो लेपः कफार्तिनुत्।

हरेण्वादि लेप—रेणुका या सम्भालू के बीज, तगर, शैलज, नागरमोथा, इलायची, अगर, देवदारु, जटामासी, रास्ना और एरण्डमूल त्वचा को समान भाग पीसकर विधिपूर्वक लेप बनाकर थोड़ा गर्म कर लेप करने से कफज शिरो रोग नष्ट होता है॥ १॥

शुण्ठीकुष्ठप्रपुन्नाटदेवकाष्ठैः समाहितैः। मूत्रपिष्टैः सुखोष्णैश्च लेपः श्लेष्मशिरोर्तिनुत्॥ २॥

शुण्ठ्यादि लेप—सोंठ, कूट, पनवाड़ (चकवड़) और देवदारु, समभाग लेकर भैंस के मूत्र के साथ पीसकर थोड़ा गर्म कर लेप करने से कफज शिरःशूल नष्ट होता है॥ २॥

सांनिपातिकचिकित्सा—

सन्निपातसमुत्थेऽस्मिन् घृतं तैलं च यत्नतः। धूमनस्यशिरोरेकलेपस्वेदाद्यमाचरेत्॥

पुराणसर्पिषः पानं विशेषेण दिशन्ति हि॥ १॥

सान्निपातिक शिरोरोग चिकित्सा—सन्निपात से होनेवाले शिरोरोग में घृत और तेल का प्रयोग, बस्तिकर्म, धूम्रपान, नस्य कर्म, शिरोविरेचन और लेप लगाना चाहिये तथा स्वेदादि कर्म कराना चाहिये और विशेष कर पुराने घृत को पिलाना चाहिये॥ १॥

स्मरफलादिप्रधमनम्—

स्मरफलतिलपर्णीबीजसंयुक्तमूर्तां कुशदलघटबीजत्वग्रजाऽर्धोशतुल्यम्।

प्रधमनविधिना तद्दत्तमाशु शिरोरुक्प्रलपनकफतन्द्रासन्निपातं निहन्यात्॥ १॥

स्मरफलादि प्रधमन—मैनफल तिलपर्णी, लाल चन्दन के बीज कुश के पत्ते, जमालगोटे के बीज के छिलके इन सबको एक २ भाग और आधाभाग तुतिया लेकर चूर्ण उत्तम बनाकर प्रधमन नस्य देवे तो अतिशीघ्र शिर की पीड़ा, प्रलाप, कफ, तन्द्रा और सन्निपात रोग नष्ट हो जाते हैं॥ १॥

स्वेदन, नस्य, धूमपान, विरेचन, लेपन, सिंचन, लङ्घन, शिरोवस्ति, रक्तमोक्षण, अग्निकर्म (दाहादि कर्म) उपनाह तथा पुराना घृत, शालिधान और साठीधान का चावल, यूष, दूध, धन्व जीवों के मांस, परवल सहिजन, दाख, बथुआ करेली, आम, आँवला, अनार, बिजौरा नीबू, तैल, तक्र, कांजी, नारियल, हरड़ कूठ भांगरा, घृतकुमारी, नागरमोथा, खस, चन्द्रमा की किरण, चन्दन तथा कपूर ये सभी शिर के रोगों में मनुष्यों को यथादोष सेवन करना चाहिये अर्थात् दोषानुसार ये सभी पथ्य हैं ॥ १-२ ॥

अपथ्यम्—क्षवजृम्भामूत्रवाष्पनिद्राविड्वेगमञ्जनम् ।
दुग्धं नीलं विरुद्धान्न विशुद्धजलमज्जनम् । दन्तकाष्ठं दिवानिद्रां शिरोरोगी परित्यजेत् ॥ १ ॥

अपथ्य—छींक जम्हाई, मूत्र, आंसू, निद्रा और मल के वेग को रोकना और दूध, पानी, विरुद्ध भोजन, जल में विरुद्ध डुबकी लगाना अर्थात् शिर नीचा करके छलांग आदि मारना, लकड़ी का दन्तधावन करना और दिन में सोना इन सबको शिरो रोगी त्याग देवे ॥ १ ॥

इति शिरोरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ नेत्ररोगाणामधिकारः ।

नेत्रस्य प्रमाणमाह—विद्याद् द्व्यङ्गुलबाहुल्यं स्वाङ्गुष्ठोदरसम्मितम् ।
द्व्यङ्गुलं सर्वतः सार्धं भिषङ् नयनमण्डलम् ॥ १ ॥

नेत्र का प्रमाण—नेत्र गोलक को वैद्य अपने अंगूठे के मध्य भाग के समान दो अंगुल के प्रमाण वाला जाने और नेत्र के चारों ओर से या लम्बाई चौड़ाई में इसका प्रमाण वर्त्ममण्डल को लेकर ढाई अंगुल जाने अर्थात् वर्त्ममण्डल को छोड़कर नेत्र की लम्बाई दो अंगुल प्रमाण की अंगुष्ठोदर के समान है और वर्त्ममण्डल सहित ढाई अंगुल है ॥ १ ॥

नेत्रस्याङ्गान्याह—

पक्ष्मवर्त्मश्वेतकृष्णदृष्टीनां मण्डलानि तु । अनुपूर्वं तु ते मध्याश्चत्वारोऽन्त्या यथोत्तरम् ॥२॥

नेत्र के अङ्ग—नेत्र में पक्ष्म, वर्त्म, श्वेत, कृष्ण तथा दृष्टि ये अङ्ग होते हैं इनमें सबसे मध्य में दृष्टि होती है, फिर दृष्टि सहित कृष्ण मण्डल शेष श्वेतादि अंगों के मध्य में होते हैं फिर कृष्ण सहित श्वेत भाग वर्त्मादि अंगों के मध्य में होते हैं और श्वेत भाग सहित वर्त्म पक्ष्म के मध्य में होता है ॥ २ ॥

तत्र नेत्रमण्डलेऽष्टसप्ततिर्व्याधयो भवन्तीत्याह—

द्वादश व्याधयो दृष्टौ तत्रैवान्यौ तथापरौ । कृष्णभागे तु चत्वारः शुक्लभागगताः ॥
वर्त्मन्येकोनविंशतिश्च पक्ष्मजौ द्वौ प्रकीर्तितौ । नव सन्धिषु सर्वस्मिन्नपि सप्तदशादिताः ॥३॥
एवं नेत्रे समस्ताः स्युरष्टसप्ततिरामयाः ।

नेत्रमण्डल में रोग—दृष्टि में १२ प्रकार के रोग होते हैं और इसी (दृष्टि) में दो और भी रोग होते हैं जो अनिमित्तज और सनिमित्तज होते हैं, इस प्रकार दृष्टिगत १४ रोग हुए तथा कृष्ण भाग में ४ रोग होते हैं, शुक्ल भाग में ११ रोग होते हैं, वर्त्म में २१ रोग होते हैं, पक्ष्म में २ प्रकार के रोग होते हैं, नेत्र की सन्धियों में ९ प्रकार के रोग होते हैं और सम्पूर्ण नेत्रों में १७ रोग होते हैं। इस प्रकार सब मिलकर ७८ प्रकार के नेत्र में रोग होते हैं ॥ ३-४ ॥

सुश्रुतोक्तमष्टसप्ततिर्नेत्ररोगानाह—

वाताद्दश तथा पित्तात्कफाच्चैव त्रयोदश ॥ ५ ॥
रक्तात्षोडश विज्ञेयाः सर्वजाः पञ्चविंशतिः । बाह्यौ पुनर्द्वौ नयने रोगाः षट्सप्ततिः स्मृताः ॥

सुश्रुत के मत से वात दोष से १०, पित्त से १० और कफ के दोष से १३, रक्तदोष से १६, त्रिदोष से २५ और पुनः नेत्र के बाहर भाग में दो २ रोग होते हैं इस प्रकार सब मिलकर ७६ प्रकार के नेत्र में रोग होते हैं ॥ ५-६ ॥

नेत्ररोगाणां सामान्यतो निदानं सम्प्राप्तिं च निरूपयति—

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ।
स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ ७ ॥

प्रयाघपानातिनिषेवणाच्च विण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च।
प्रसक्तसंरोदनशोकतापाच्छिरोऽभिघातादतिमद्यपानात्॥ ८॥
तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभितापादतिमैथुनाच्च।
बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराञ्जनयन्ति दोषाः॥ ९॥

नेत्र रोगों के निदान—उष्मा से अभितप्त होकर अर्थात् धूप अग्नि आदि से, शीतल जल में प्रवेश करने से, दूर तक दृष्टि दौड़ाने से, सोने में विपरीत आचार करने से (दिन में सोने और रात्रि में जागने से), नेत्र में स्वेद धूल और धूम रहने से, वमन के वेग का अवरोध करने से वा अवरोध होने से अत्यन्त वमन होने से, अत्यन्त द्रव अन्न तथा पेय पदार्थों के अति सेवन करने से, मल, मूत्र और अधोवायु के वेग को क्रम से निरन्तर रोके रहने से, निरंतर शोक करने से, ताप अधिक लगने से, शिर में आघात हो जाने से, अत्यन्त मद्य पीने से, ऋतु के विपरीत कार्य (आहार विहार आदि ऋतुचर्या) करने से, क्लेश (मानसिक क्लेश) के अधिक होने से, मानसिक ताप के अधिक होने से अत्यन्त मैथुन करने से, नेत्र के बाष्प (आनन्द वा शोक के कारण नेत्रों में उत्पन्न हुए आँसू को वा अश्रुवेग) को रोकने से, अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ को प्रयास करके देखने से, वातादिक दोष कुपित होकर नेत्र में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देते हैं॥

नयनरोगसंप्राप्तिः सुश्रुते पठ्यते—

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः। जायन्ते नेत्रभागेषु रोगाः परमदारुणाः॥
नेत्रभागेषु नेत्रस्य दृष्ट्याद्यवयवेषु च॥ १०॥

शिराओं के अनुसार चलने वाले वातादि दोष जब विगुणित (दूषित वा कुपित) होकर नेत्र के ऊपर हो जाते हैं तब कठिन २ रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अर्थात् नेत्र के भिन्न २ भागों में तथा नेत्र की दृष्टि आदि जो अवयव हैं उनमें रोगों को उत्पन्न कर देते हैं॥ १०॥

आदौ दृष्टिरोगानाह, तत्र दृष्टिलक्षणम्—

मसूरदलमात्रां तु पञ्चभूतप्रसादजाम्। खद्योतविस्फुलिङ्गाभां सिद्धां तेजोभिरव्ययैः॥ ११॥
आवृतां पटलेनाक्ष्णोर्बाह्येन विवराकृतिम्। शीतसात्म्यां नृणां दृष्टिमाहुर्नयनचिन्तकाः॥१२॥

दृष्टि के लक्षण—मसूर के दाने के प्रमाण पञ्चभूतों के (पृथ्वी आदि महाभूतों के) प्रसाद (अंश) से उत्पन्न हुई खद्योत के प्रकाश तथा अङ्गारे के समान अक्षय तेज से निर्मित आँखों के बाहर के पटलों से घिरी (ढकी) हुई विवर (छिद्र) की आकृति वाली शीतसात्म्य (शीतल से सात्म्य रहने वाली) जो वस्तु नेत्र में है उसे दृष्टि कहते हैं॥ ११–१२॥

तत्र पटलानि चत्वारि भवन्ति तान्याह—

तेजोजलाश्रितं बाह्यं तेष्वन्यत्पिशिताश्रितम्।
मेदस्तृतीयं पटलमाश्रितं त्वस्थि चापरम्। पञ्चमांशसमं दृष्टेस्तेषां बाहुल्यमिष्यते॥ १३॥

दृष्टिपटल प्रथम पटल नेत्र के बाहर का है वह तेज तथा जल के आश्रय है, (यहाँ पर तेज से रक्त और जल से रस ग्रहण करना चाहिये अर्थात् प्रथम पटल रक्त और रस के आश्रय है) द्वितीय पटल मांस के आश्रय है, तृतीय पटल मेद के आश्रय है और चतुर्थपटल अस्थि (काचक नाम की अस्थि) के आश्रय है। इनमें प्रत्येक का विस्तार दृष्टि के पांचवें अंश के समान जानना चाहिये॥ १३॥

तत्र प्रथमपटलगतस्य दोषस्य स्वभावमाह—

प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थितः। अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिदथ पश्यति॥

पटलगत दोष—प्रथम पटल में जब दोष कुपित होते हैं तब मनुष्य कभी कभी अव्यक्त अस्पष्ट वा दोषों के अनुसार नीले, काले, पीले, श्वेत और चित्रित (क्रम से वात, पित्त-कफ और सन्निपात के कोप के अनुसार) रूपों को देखता है और जब दोषों के कोप में न्यूनता होती है तब स्पष्ट भी देखता है॥ १४॥

दृष्टेरभ्यन्तरे दोषा पटले समधिष्ठिताः। एकैकमनुपद्यन्ते पर्यायात्पटलान्तरम्॥ १५॥

दृष्टि के भीतर की ओर पटल में स्थित हुए दोष क्रम से एक पटल के बाद दूसरे पटल में यथा क्रम से प्राप्त हो जाते हैं॥ १५॥

द्वितीयपटलगतदोषस्वभावमाह—

दृष्टिर्भृशं विह्वलति द्वितीयं पटलं गते । मक्षिकामशकान्केशाञ्जालकानीव पश्यति ॥ १६ ॥
मण्डलानि पताकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च । परिप्लवांश्च विविधान्वर्षमभ्रं तमांसि च ॥
दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते च समीपतः । समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ १७ ॥
यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ।

द्वितीय पटल गत दोष—जब दोष मनुष्य की दृष्टि के दूसरे पटल में प्राप्त हो जाते हैं तब दृष्टि अत्यन्त व्याकुल हो जाती है जिससे मक्खी, मच्छर, केश और जाल आदि की भाँति नेत्रों के सामने निरन्तर दिखाई देते हैं और मण्डल, पताका, किरण, कुण्डल, अनेक प्रकार के परिप्लव ( मेंढक आदि का कूदना फाँदना आदि ) दिखाई देना, अनेक प्रकार के वर्षा मेघ और अन्धकार आदि का दिखाई देना, दूर की वस्तुओं का समीप दिखाई देना और समीप की वस्तुओं का दूर दिखाई देना ऐसा दृष्टि में भ्रम हो जाता है तथा अत्यन्त यत्न करने पर भी सूई के छिद्र को नहीं देखता है ॥ १६-१८ ॥

तृतीयपटलगतदोषमाह—

ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ॥ १९ ॥
महान्त्यपि च रूपाणि च्छादितानीव चाम्बरैः । कर्णनासादिरूपाणि विकृतानीव पश्यति ॥

तृतीय पटलगत दोष—जब दोष मनुष्य की दृष्टि के तीसरे पटल में प्राप्त हो जाते हैं तब वह मनुष्य ऊपर की वस्तु को देखता है और नीचे की वस्तु को नहीं देखता और महान् अथवा बड़ी वस्तु को भी वस्त्र अथवा मेघादि से आच्छादित की भाँति देखता है तथा दूसरे मनुष्य के मुख को देखकर उसके कान-नाक और आँख के रूप ( आकार ) को विकृत देखता है ॥ १९-२० ॥

रागप्राप्तिमाह—

यथादोषं तु रज्येत दृष्टिर्दोषे बलीयसि । अधःस्थे तु समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ २१ ॥
पार्श्वस्थिते पुनर्दोषे पार्श्वस्थानि न पश्यति । समन्ततः स्थिते दोषे सङ्कुलानीव पश्यति ॥
दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं प्रपश्यति । दोषे दृष्टिस्थिते तिर्यगेकं वै मन्यते द्विधा ॥ २२ ॥
द्विधा स्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा चानवस्थिते ॥

राग प्राप्ति—दृष्टि में जो दोष ( वातादिक ) बलवान होते हैं उनके अनुसार उस वर्ण का दृष्टि के सामने रूप दिखाई देता है अर्थात् यदि वात का कोप अधिक होता है तो अरुण वर्ण दिखाई देता है, पित्त का कोप अधिक होता है तो पीतवर्ण दिखाई देता है और कफ का कोप अधिक होता है तो श्वेत वर्ण दिखाई देता है। जब दोष, नेत्र मण्डल के नीचे भाग में कुपित होते हैं तब समीप की वस्तुयें नहीं दिखाई देती हैं और जब दोष ऊपर के भाग में कुपित होते हैं तब दूर की वस्तुयें नहीं दिखाई देती हैं और जब दोष नेत्र के दोनों पार्श्व भाग में कुपित होते हैं तब अगल बगल की वस्तुयें नहीं दिखाई देती हैं तथा जब दोष नेत्रमण्डल के चारों ओर कुपित होते हैं तब मिश्रित या अन्यान्य रूपों की वस्तुयें दिखाई पड़ती हैं अर्थात् उचित रूप नहीं दिखाई पड़ता है। जब दृष्टि के मध्य में दोष कुपित होते हैं तब बड़ा पदार्थ भी छोटा दिखाई पड़ता है। दोष जब दृष्टि में तिरछा कुपित होते हैं तब एक वस्तु दो दिखाई देता है। दोष जब दृष्टि में तिरछे दो भागों में कुपित होते हैं तो एक वस्तु तीन भागों में विभक्त दिखाई देता है और यदि दोष अनवस्थित ( अनिश्चित ) स्थान में कभी यहाँ या कभी कहीं नेत्र में कुपित होते हैं तब अनेक प्रकार का रूप दिखाई देता है ॥ २१-२३ ॥

चतुर्थपटलगतदोषमाह—

तिमिराख्यः स वै दोषश्चतुर्थं पटलं गतः ॥ २४ ॥
रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाश इति क्वचित् । अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ २५ ॥
चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः । निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥

चतुर्थपटल गत दोष—जब दोष नेत्र मण्डल के चतुर्थपटल में कुपित होते हैं तब तिमिररोग उत्पन्न करते हैं। इससे चारों ओर की दृष्टि रुक जाती है। कोई २ [illegible] रोग भी कहते हैं इस महारोग के अत्यन्त प्रबल नहीं होने पर अन्धकार मात्र होने [illegible] इस अवस्था

अवस्था में भी चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र, आकाश का विद्युत, निर्मल तेज और दीप्त तेजों को देखता है ॥ २४-२६ ॥

स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिका काचसंज्ञितः ॥

वही लिङ्गनाश रोग नीलिका और काच भी कहा जाता है।

दृष्टिरोगाणां संख्यां नामानि चाऽऽह—

दृष्ट्याश्रयाः षट् च षडेव रोगाः षड्लिङ्गनाशा हि भवन्ति तत्र।

वातेन पित्तेन कफेन सर्वै रक्तात्परिम्लाय्यभिधश्च षष्ठः ॥ २७ ॥

दृष्टि के रोगों की संख्या—दृष्टि के आश्रित छै रोग होते हैं और अन्य भी छै लिङ्गनाश होते हैं इस प्रकार बारह रोग कहते हैं। उनमें वात, पित्त, कफ, त्रिदोष, रक्त और परिम्लायी भेद से छै प्रकार का लिङ्गनाश होता है ॥ २७ ॥

तथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्तथ धूमदर्शी।

यो ह्रस्वजात्यो नकुलान्ध्यसंज्ञो गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥ २८ ॥

मनुष्य की दृष्टि पित्त से विदग्ध होती है तथा कफ से कफविदग्ध दृष्टि, धूमदर्शी, ह्रस्वजाड्य, नकुलान्ध्य और गंभीर नामक दृष्टि के छै रोग होते हैं। इस प्रकार लिङ्गनाश और दृष्टि के मिलकर बारह रोग होते हैं ॥ २८ ॥

तत्रैव द्वावन्यावाह—तत्रैवान्यौ गदौ द्वौ च सन्निपातनिमित्तकौ ॥

इसी प्रकार सन्निपात के कारण दो अन्य और भी दृष्टिरोग होते हैं ॥

तेषु वातजस्य लिङ्गनाशस्य लक्षणमाह—

वातेन खलु रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति ॥ २९ ॥

आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः।

वातज लिङ्गनाश—वात का कोप जिस लिङ्गनाश में होता है उसमें रोगी रूपों को घूमता हुआ देखता है और मलिन अरुण आभायुक्त तथा कुटिल रूपों को देखता है ॥ २९ ॥

पैत्तिकमाह—पित्तेनाऽऽदित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गुणान् ॥ ३० ॥

नृत्यतश्चैवशिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ॥

पैत्तिक लिंगनाश—पित्त के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी सूर्य, खद्योत (जुगनू) इन्द्रधनुष तथा विद्युत (बिजली) आदि के रूपों को देखता है अर्थात् उसके नेत्रों में इन सब पदार्थों की आभा अनायास हुआ करती है और उसे नाचते हुए मोर की भाँति एवं सब वस्तुओं का रूप नील वर्ण का दिखाई देता है ॥ ३०½ ॥

श्लैष्मिकमाह—कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ॥ ३१ ॥

सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ॥

कफज लिङ्गनाश—कफ के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी स्निग्ध और श्वेत रूपों को देखता है और जल में डूब कर सब पदार्थ गीले हो गये हैं इस प्रकार के भीगे हुए वर्ण के रूपों को देखता है ॥ ३१ ॥

संनिपातजमाह—सन्निपातेन चित्राणि विप्लुतानि च पश्यति ॥ ३२ ॥

बहुधाऽपि द्विधा चाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः।

हीनाधिकाङ्गान्यथ वा ज्योतींष्यपि च भूयसा ॥ ३३ ॥

सन्निपातज लिङ्गनाश—सन्निपात के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी चित्रविचित्र और विपरीत या विकृत रूपों को देखता है एवं सभी प्रकार की वस्तुओं को अनेक प्रकार के रूपों से युक्त देखता है और प्राय करके अच्छे रूप को भी हीनाङ्ग या अधिकाङ्ग देखता है अथवा ज्योतियों (नक्षत्रादिकों) को देखता है (इस प्रकार के रूपों की आभा उसके सामने चमका करती है) ॥ ३२-३३ ॥

रक्तजमाह—

पश्येद्रक्तेन रक्तानि तमांसि विविधानि च। हरितान्यथ कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ॥

रक्तज लिङ्गनाश—रक्त के कोप से जो लिङ्गनाश होता है उसमें रोगी रक्त वर्ण का ही सब

प्रकार की वस्तुओं का रूप देखता है और अनेक प्रकार के अन्धकारों को देखता है तथा हरे, कृष्णवर्ण के तथा पीत वर्ण के भी रूपों को देखता है ( उसको सब वस्तु लाल, काली, हरी, पीली दिखाई पड़ती है ॥ ३४ ॥

परिम्लायिनमाह—

रक्तेन मूर्च्छितं पित्तं परिम्लायिनमावहेत्। तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥३५॥
विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजांसि चैव हि ॥

परिम्लायी लिङ्गनाश—दूषित रक्त से मूर्च्छित हुआ पित्त परिम्लायी नामक लिङ्गनाश रोग को उत्पन्न कर देता है। परिम्लायी लिङ्गनाश का रोगी दिशाओं को उदय होते हुये सूर्य के समान पीतवर्ण का देखता है और वृक्षों को खद्योतों ( जुगनुओं ) से व्याप्त देखता है एवं तेजों को विकीर्ण ( छितराया हुआ ) देखता है ॥ ३५ ॥

नेत्रवर्णं षड्विधं लिङ्गनाशमाह—

वातादिजनितैर्नेत्रवर्णैरपि च षड्विधम् ॥ ३६ ॥
लिङ्गनाशे विनिर्दिष्टो वर्णो वातादिजो यथा ॥

लिङ्गनाश के भेद—वातादि दोष से उत्पन्न हुए नेत्रों के वर्ण के अनुसार छै प्रकार का लिङ्गनाश कहा गया है। उसमें नेत्र का वर्ण वातादि दोष के वर्णों के समान ( जो आगे कहा जायेगा ) होता है ॥ ३६ ॥

रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात्।
कफात्सितः शोणितजः सरक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ३७ ॥

वात के कोप से नेत्र का वर्ण अरुण होता है, परिम्लायी और पित्त से म्लायी ( पीत नील मिश्रित ) और नीलवर्ण नेत्र का होता है, कफ से नेत्र का वर्ण श्वेत होता है, रक्त स नेत्र का वर्ण श्वेत होता है, रक्त से नेत्र का वर्ण रक्त होता है और सब दोषों ( त्रिदोषों ) से चित्र विचित्र ( अनेक वर्ण का ) नेत्र का वर्ण हो जाता है इन वर्णों के अनुसार भी नेत्र में छै प्रकार के लिङ्गनाश होते हैं ॥ ३७ ॥

वातादिना हेतुभूतेन जनिते नेत्रमण्डले रूपविशेषमाह—

अरुणं मण्डलं वाताच्चञ्चलं परुषं तथा। पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ॥ ३८ ॥
श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम्। चलत्पद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः ॥
सङ्कुचत्यातपेऽत्यर्थं छायायां विस्तृतो भवेत्। मृज्यमाने तु नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ४० ॥

वातादि दोषों के कारण नेत्र मण्डल के विशेष लक्षण—वात के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में नेत्र का मण्डल अरुणवर्ण का, चञ्चल और कठोर ( खरस्पर्श ) होता है। पित्त के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टि मण्डल ईषत् नीलवर्ण काँसे के वर्ण का ( पीतता युक्त पाण्डु ) अथवा पीत वर्ण का हो जाता है। कफ के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल घना या अत्यन्त मोटा स्निग्ध, शङ्ख के समान या कुन्द के पुष्प समान श्वेत तथा चन्द्रमा के समान या अथवा हिलते हुए कमल के पत्र पर स्थित जल बिन्दु के समान श्वेत वर्ण का हो जाता है तथा वह मण्डल धूप में अत्यन्त सङ्कुचित हो जाता है और छाया में फैल जाता है एवं आँख के मलने पर वह मण्डल इधर-उधर फैल जाता है ॥ ३८-४० ॥

मण्डलं तु भवेच्चित्रं लिङ्गनाशे त्रिदोषजे। प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ॥ ४१ ॥

त्रिदोष के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल चित्र-विचित्र वर्ण का हो जाता है। रक्त के कोप से होने वाले लिङ्गनाश में दृष्टि मण्डल प्रवाल ( मूँगे ) के वर्ण का अथवा रक्तकमल दल के वर्ण का हो जाता है ॥ ४१ ॥

रक्तजे मण्डलं दृष्टौ स्थूलं काचारुणप्रभम्। परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लानं नीलं च मण्डलम् ॥
दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदाचित्स्यात्तु दर्शनम् ॥

दृष्टि में रक्त के प्रसार या वेग से उत्पन्न मण्डल स्थूल ( मोटा ) रक्तवर्ण के काँच की प्रभा का हो जाता है। परिम्लायी नामक लिङ्गनाश में दृष्टिमण्डल म्लान ( पीत-नील मिश्रित वर्ण का ) और नीलवर्ण का हो जाता है और कभी ये दोषों के क्षीण हो जाने से आप से आप ( स्वतः )

सब पदार्थों का रूप दिखाई देने लगता है अर्थात् इस रोग में कभी २ दृष्टि विना चिकित्सा के भी ठीक हो जाती है ॥ ४२ ॥

अनुक्तव्ययादाद्गौरवादिदोषलिङ्गसङ्ग्रहार्थमाह—

यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ४३ ॥

सभी प्रकार के लिङ्गनाशों में दोषों के अपने २ लक्षण प्रकट होते हैं ॥ ४३ ॥

पित्तेन दुष्टेन गतेन, दृष्टिं पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ।

पीतानि रूपाणि च तेन पश्येत्स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ४४ ॥

पित्त से विदग्ध दृष्टि के लक्षण—जिस मनुष्य की दृष्टि कुपित होकर बढ़े हुए पित्त के कारण पीतवर्ण की हो जाती है उसे सभी वस्तुयें पीतवर्ण की ही दिखाई देती हैं। उस मनुष्य की दृष्टि को पित्त विदग्ध दृष्टि कहते हैं ॥ ४४ ॥

तस्मिन्नेव पित्ते दुष्टे तृतीयं पटलं गते रूपविशेषेण दिवान्धलक्षणमाह—

प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्निशि वीक्षते स ।

रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्पभावादपि तानि पश्येत् ॥ ४५ ॥

दिवान्ध के लक्षण—जिस मनुष्य की दृष्टि पित्त से विदग्ध हो जाती है और वह दूषित दोष जब तृतीय पटल में प्राप्त हो जाता है तब उसे दिन में नहीं दिखाई देता, रात्रि में दिखाई देता है और रात्रि में शीत (दृष्टि के पित्त के शमन करने में) सहायक होता है इसीसे रात्रि में उसे दिखाई देता है तथा पित्त के अल्प हो जाने से उसे सभी वस्तु दिखाई देता है ॥ ४५ ॥

श्लेष्मविदग्धदृष्टिलिङ्गमाह—

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि हि मन्यते तु ।

श्लेष्म विदग्ध दृष्टि के लक्षण—उसी प्रकार कफ के कुपित होकर बढ़ जाने से दृष्टि कफ से दूषित हो जाती है, उसमें मनुष्य सभी प्रकार के रूपों को श्वेतवर्ण का ही देखता है। इस नेत्ररोग को कफ विदग्ध दृष्टि कहते हैं ॥

नक्तान्ध्यमाह—त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ॥ ४६ ॥

दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्तु रूपाणि कफाल्पभावात् ।

नक्तान्ध्य के लक्षण—जब दोष (कफ) तीनों पटलों में स्थित हो जाता है तब नक्तान्ध्य रोग को उत्पन्न कर देता है अर्थात् रात्रि में उसे नहीं दिखाई देता है। दिन में सूर्य के तेज से कफ की अल्पता होती है इसलिये दिन में सभी प्रकार के रूपों को देखता है। इस रोग का प्रचलित नाम रतौंधी है। (दिवान्ध्य में दिन को नहीं दिखाई देता है, नक्तान्ध्य में रात्रि में नहीं दिखाई देता है। दिवान्ध्य में पित्त दूषित होता है, नक्तान्ध्य में कफ दूषित होता है। दिवान्ध्य में तृतीय पटल में पित्त दूषित होता है, नक्तान्ध्य में तीनों पटल में कफ दूषित होता है। यद्यपि दिवान्ध्यमें तृतीय पटल में पित्त का दूषित होना कहा है किन्तु प्रथम द्वितीय पटल के दूषित हुए बिना तृतीय में दोष प्राप्त होना असम्भव है। अतः इन दोनों में प्रतिकूल समता है ऐसा जानना चाहिये) ॥४६॥

धूमदर्शिनमाह—

शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ॥ ४७ ॥

धूम्रांस्तु यः पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ।

धूमदर्शी के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि शोक, ज्वर, परिश्रम, शिरोव्यथा आदि कारणों से पीड़ित होती है और वह सम्पूर्ण द्रव्यों को धूम के समान ही देखता है उसे धूमदर्शी कहते हैं अर्थात् धूमदर्शी के ये लक्षण हैं। इसमें भी पित्त दोष का ही कोप रहता है और दिन में ही जब पित्त का प्रकोप रहता है तभी धूम के वर्ण की सभी वस्तुयें दिखाई देती हैं रात्रि में नहीं। आचार्य गदाधर के मत से यह रोग बाह्य (प्रथम) पटल में होता है और आचार्य कार्तिक के मत से तृतीय पटल में, किन्तु पित्त का प्रकोप सभी मानते हैं और निदान भी पित्त प्रकोप के ही हैं। अतः पैत्तिक मानना चाहिये ॥ ४७ ॥

ह्रस्वजात्यमाह—यो वासरे पश्यति कष्टतोऽयं रूपं महद्यपि निरीक्षतेऽल्पम् ॥ ४८ ॥

रात्रौ पुनर्यं प्रकृतानि पश्येत्स ह्रस्वजाड्यो मुनिभिः प्रदिष्टः ।

ह्रस्वजाड्य के लक्षण—जो मनुष्य दिन में कठिनता से देखता है और महान् वस्तु को भी अल्प ( लघु ) देखता है और रात्रि में सभी वस्तुओं के उचित रूप देखता है उस मनुष्य के नेत्र दोष को ह्रस्वजाड्य रोग कहते हैं। यह भी पैत्तिक रोग है और इसमें दोष की स्थिति दृष्टि के मध्य में होती है ॥ ४८॥

तन्त्रान्तरे—दृष्टिमध्यस्थिते दोषे महद्ध्रस्वं च पश्यति ।
रात्रौ पित्ताल्पभावाच्च तानि रूपाणि पश्यति ॥

ह्रस्वजाड्य के लक्षण—जब मनुष्य की दृष्टि के मध्य में दोष स्थित होता है तब वह महान् रूप को ह्रस्व ( लघु ) देखता है और रात्रि में पित्त की अल्पता होने से उन्हीं रूपों को ( स्पष्ट ) देखता है ॥

नकुलान्ध्यमाह—

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥ ४९ ॥
चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत् स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ।

नकुलान्ध्य के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि दोषों ( त्रिदोषों ) से व्याप्त होकर नकुल की दृष्टि के समान वर्ण और प्रतिभा वाली हो जाती है और वह मनुष्य दिन में अनेक प्रकार के वर्णों ( तीनों दोषों के वर्णों ) का रूप देखता है उस रोग को नकुलान्ध्य कहते हैं ॥ ४९ ॥

गम्भीरिकामाह—

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकोचमभ्यन्तरतस्तु याति ॥ ५० ॥
रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।

गम्भीर दृष्टि के लक्षण—जिस नेत्र रोग में मनुष्य की दृष्टि वायु से दूषित होकर विरूप ( विकृत ) हो जाती है और भीतर की ओर संकुचित हो जाती है तथा अत्यन्त पीड़ा करती है उसे गम्भीरिका कहते हैं ॥ ५०॥

बाह्यौ निमित्तानिमित्तसंज्ञौ लिङ्गनाशावाह—

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ५१ ॥
निमित्ततस्तत्र शिरोऽभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैः सः ।
सुरर्षिगन्धर्वमहोरगाणां संदर्शनेनापि च भास्वतां च ॥ ५२ ॥
हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ।

बाह्य लिङ्गनाश के लक्षण—बाह्य अर्थात् आगन्तुक लिङ्गनाश रोग दो प्रकार का और भी होता है, एक निमित्तज ( कारण से होनेवाला ) और दूसरा अनिमित्तज ( अकारण ही हो जाने वाला ) इनमें जो निमित्त से होता है वह शिरोभिताप ( मस्तक पीड़ा ) से होता है, अर्थात् विषाक्त पुष्पादि ( विषैले वृक्षों के पुष्पादि ) के सूंघने से या विषाक्त वायु के लगने से उत्पन्न समस्त शिर में जो संताप ( अभिताप या पीड़ा ) होता है उससे नेत्रगत रक्त दूषित होता है और दृष्टि शक्ति नष्ट हो जाती है तथा अभिष्यन्द रोग के लक्षणों के समान इस लिङ्गनाश के भी लक्षण होते हैं और अनिमित्तज जो होता है वह देवता, ऋषि, गन्धर्व, बड़े २ सर्प (नागादि) और सूर्यादि के दर्शन, प्रत्यक्ष से होता है अर्थात् इनके साथ मनुष्य की दृष्टि टकरा जाती है तब मनुष्य की दृष्टि नष्ट हो जाती है इसे अनिमित्तज कहते हैं। पर यहां शङ्का होती है कि इसे अनिमित्तज क्यों कहा गया? इसका उत्तर यह है कि निमित्त शब्द से यहां लौकिक प्रत्यक्ष कारण लिये जाते हैं और इन देवादिकों के दर्शन लौकिक प्रत्यक्ष कारण नहीं होने से यह अनिमित्तज है ॥ ५१-५२ ॥

अनिमित्तो लिङ्गनाशस्य लक्षणमाह—

तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णं विमला च दृष्टिः ॥ ५३ ॥

अनिमित्तज लिङ्गनाश में नेत्र के रूप—अनिमित्तज लिङ्गनाश में नेत्र स्पष्ट ( निर्मल ) एवं वैदूर्यमणि के समान निर्मल वर्ण वाले ( ठीक स्वस्थ आंख का सा रूप ) दिखाई देते हैं। ( पर दृष्टि शक्ति नष्ट हो गई रहती है ) ॥ ५३ ॥

दृष्टिमण्डलप्रत्यासन्नतया कृष्णगतविकारानाह—

सव्रणं शुक्रमथाव्रणं च पाकात्ययं चाप्यजका तथैव ।
चत्वार एते नयनामयास्तु कृष्णप्रदेशे नियता भवन्ति ॥ ५४ ॥

दृष्टि मण्डल प्रत्यासन्नतया कृष्णगत विकार—'सव्रण शुक्र' नाम का नेत्र रोग, 'अव्रणशुक्र' नाम का नेत्र रोग, 'पाकात्यय' नाम का नेत्र रोग और 'अजका' नाम का नेत्र रोग नेत्र के कृष्ण प्रदेश ( कृष्णमण्डल या कृष्ण भाग ) में ही उत्पन्न होते हैं अर्थात् इनके होने का नियत स्थान कृष्ण मण्डल ही है ॥ ५४ ॥

तत्र सव्रणशुक्रलक्षणमाह—

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूच्येव विद्धं प्रतिभाति यद्वै ।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च तत्सव्रणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ ५५ ॥

सव्रण शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में निमग्न हुआ शुक्र ( फूल-कुछ निम्न अर्थात् थोड़ा गहरा ) दिखाई देवे तथा सूई से कुछ बींधा हुआ सा ज्ञात होवे और जिससे अत्यन्त दूषित स्राव ( आँसू आदि ) होवे उसे सव्रण शुक्र कहते हैं ॥ ५५ ॥

विदेहेऽप्युक्तम्—रक्तराजिनिभं कृष्णे छिद्राभं यत्र दृश्यते ।
सूच्यग्रेणेव तच्छुक्रमुष्णास्रुस्रावि सव्रणम् ॥

विदेह के मत से सव्रण शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में ,नेत्र के कृष्ण भाग में रक्तवर्ण की राई के समान दिखाई देवे और सूई के अग्रभाग से छिदा हुआ प्रतीत हो तथा उससे अत्यन्त उष्णस्राव हो उसे सव्रण शुक्र कहते हैं ॥

अथास्य साध्यासाध्यलक्षणमाह—

दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेच्च ।
अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं तत्सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ ५६ ॥

सव्रणशुक्र के साध्यासाध्य लक्षण—जो सव्रणशुक्र नेत्र के दृष्टिभाग के समीप नहीं होता है, तथा जो गम्भीर मूल वाला नहीं होता है, तथा जो अधिक स्राव करनेवाला नहीं होता है, तथा जिसमें पीड़ा नहीं होती है, तथा जो शुक्र युग्म ( दो शुक्र एकत्र ) नहीं होता है वह सव्रण शुक्र कदाचित् सिद्ध हो जाता है नहीं तो प्राय असाध्य ही होता है ॥ ५६ ॥

अव्रणशुक्रमाह—

स्यन्दात्मकं कृष्णगतं तु शुक्रं शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् ।
वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशं तं चाव्रणं साध्यतमं वदन्ति ॥ ५७ ॥

अव्रण शुक्र के लक्षण—जिस नेत्र रोग में नेत्र के कृष्ण भाग में अभिष्यन्द के कारण उत्पन्न हुआ शुक्र ( फूल ) शङ्ख, चन्द्रमा और कुन्द के पुष्प के समान श्वेत वर्ण का होता है, एवं आकाश में स्थित तनु ( निर्मल स्वच्छ ) प्रकाश वाले बादल के समान श्वेत वर्ण का होता है ( वैहायसाभ्र कहने का तात्पर्य यह है कि जल वाले बादल पर्वतीय कहे जाते हैं, उनका वर्ण नील होता है, और यहाँ श्वेत मेघ की उपमा देनी है इसलिये सजलाभ्र के छेदन के लिये स्पष्टीकरण किया गया है ऐसा कार्तिकेय का मत है ) उसे अव्रण शुक्र कहते हैं और यह साध्यतम ( सुखसाध्य ) होता है । ( साध्यतम कहने का तात्पर्य सुखसाध्यता प्रतिपादन करने का है यदि यह नहीं होता तो कृच्छ्र साध्यता की भ्रान्ति हो जाती क्योंकि गम्भीरजातम् और स्यन्दात्मकम् इन दोनों में कृच्छ्रसाध्यता ही समझी जाती इसी से यह दिया गया है ) ॥ ५७ ॥

साध्यतमस्याप्यवस्थाभेदेन कष्टसाध्यतामाह—

गम्भीरजातं बहुलं च शुक्रं चिरोत्थितं चापि वदन्ति कृच्छ्रम् ।

साध्यतम शुक्र जो शुक्र गम्भीर मूल वाला ( दो तीन पटलों तक पहुँचा हुआ ), हो बहुल ( स्थूल एवं वृहत् अथवा सूक्ष्म बादलों के समान नहीं होकर घने बादलों के समान ) हो तथा जो चिरकाल से उत्पन्न हो वह अव्रण शुक्र कष्ट-साध्य कहा जाता है ॥

असाध्यतां चाऽऽह—

विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं वा चलं सिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ॥ ५८ ॥

अक्लिन्नवर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक बार २ धोने पर भी अथवा नहीं धोने पर आपस में सटा करें और वर्त्म में किसी प्रकार का पाक भी नहीं हो, उसे अक्लिन्न वर्त्म मानना चाहिये ॥ ८९ ॥

वातहतवर्त्माऽऽह—

विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य निमील्यते । तद्वातनिहतं वर्त्म जानीयादक्षिचिन्तकः ॥९०॥

वातहत वर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलक वर्त्मयुक्त गत संधि के स्थान भ्रष्ट हो जाने से निश्चेष्ट ( क्रियाहीन ) होकर बन्द हो जाते हैं उसे वातनिहित ( वातहत ) वर्त्म कहते हैं ॥ ९० ॥

वर्त्मार्बुदमाह—

वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् । आचक्षतेऽर्बुदमिति सरक्तमवलम्बितम् ॥ ९१ ॥

वर्त्मार्बुद के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों के अन्दर विषम ( असमान या ऊँचा नीचा, टेढ़ा मेढ़ा ) और बिना पीड़ा के या अल्पपीड़ा रक्तवर्ण की तथा शीघ्र उत्पन्न होनेवाले ग्रन्थि सी उत्पन्न हो जाती है उसे वर्त्मार्बुद कहते हैं ॥ ९१ ॥

निमेषमाह—

निमेषणीः सिरा वायुः प्रविष्टः संधिसंश्रयः । सञ्चालयति वर्त्मानि निमेषः स न सिध्यति ॥

निमेष के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के वर्त्मयुक्त की संधि में होनेवाली निमेषिणी ( सञ्चालित करनेवाली ) शिराओं से व्यान वायु प्रवेश करके ( दूषित होकर ) पलकों को निरन्तर सञ्चालित किया करे ( पलक बराबर भापते चलते रहें ) उस निमेष रोग कहते हैं यह असाध्य है ॥ ९२ ॥

शोणितार्शोलक्षणमाह—

वर्त्मस्थो यो विवर्धेत लोहितो मृदुरङ्कुरः । तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं चाऽपि विवर्धते ॥९३॥

शोणितार्श के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में लोहित वर्ण के कोमल मांसाङ्कुर उत्पन्न होवें और बढ़ते जावें, वे रक्त के दोष से होनेवाले होते हैं, उन्हें शोणितार्श कहते हैं और वे काटने पर भी बढ़ते ही रहते हैं ॥ ९३ ॥

तथा च विदेहः—वायुः शोणितमादाय सिराणां प्रमुखस्थितः ।

जनयत्यङ्कुरं ताम्रं वर्त्मनि स्निग्धलोहितम् । तच्छोणितार्शोऽसाध्यं स्यात्पुनः पुनरथ रुक्करम् ॥

जिस रोग में नेत्र के पलकों में वायु कुपित होकर शोणित ( रक्त ) को लेकर शिराओं के सम्मुख स्थित होकर ( मुख में आकर ) ताम्र ( लाल ) वर्ण के मांसाङ्कुर को उत्पन्न कर देता है वे अङ्कुर काटने पर पुनः उत्पन्न हो जाते हैं और उनमें से स्राव नहीं होता है यह रुक्कर है इसे विदेह के मत से शोणितार्श कहते हैं और यह असाध्य है। पाठान्तर में 'रुक्करम्' के स्थान पर 'नीरुजम्' है जिससे यह अर्थ होता है कि इस रोग में पीड़ा नहीं होती है ९४ ॥

लगणमाह—

अपाकी कठिनः स्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवोऽरुजः । सकण्डूः पिच्छिलः कोलप्रमाणो लगणः स्मृतः ॥

लगण के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में पाक रहित, कठिन, स्थूल पीड़ा रहित कण्डूयुक्त, पिच्छिल और कोल ( बदरी ) फल के समान की ग्रन्थि उत्पन्न हो उसे लगण कहते हैं। यह कष्ट होता है ॥ ९५ ॥

बिसवर्त्माऽऽह—

त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनाम् । प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं बिसवद्बिसवर्त्म तत् ॥

बिसवर्त्म के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों में तीनों दोष कुपित होकर पलकों के बाहर ( ऊपर ) शोथ उत्पन्न कर देते हैं और भीतर की ओर बिस ( मृणाल ) के छिद्रों के समान छिद्रों को कर देते हैं तथा उन छिद्रों से लगातार स्राव होता रहता है उसे बिसवर्त्म कहते हैं ( यह शोथ भीतर ही से होता है जो बाहर दिखाई देता है ) और यह असाध्य है ॥ ९६ ॥

कुञ्चनमाह—

वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति मला यदा । तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥९७॥

कुञ्चन के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों को वातादि दोष (त्रिदोष) कुपित होकर सङ्कुचित कर देते हैं, देखने की शक्ति नहीं रह जाती है। उस वर्त्म सङ्कोचन को कुञ्चन नामक रोग कहते हैं ॥ ९७ ॥

## अथ पक्ष्मरोगौ।

तत्रत्ययो रोगयोर्नामनी आह—

पक्ष्मकोपः पक्ष्मशातो रोगौ द्वौ पक्ष्मसंश्रयौ।

पक्ष्म रोगों के नाम—पक्ष्म (वर्त्म लोम वा बरौनी) में होने वाले रोग दो प्रकार के होते हैं जिनमें एक को पक्ष्मकोप और दूसरे को पक्ष्मशात कहते हैं ॥

तत्र पक्ष्मकोपमाह—

प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि। असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि ॥
घृष्यन्त्यपि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च। पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥

पक्ष्मकोप के लक्षण—जिस रोग में वायु से प्रचालित किये हुए पलकों के लोम आंख के भीतर की ओर प्रवेश करते हैं और वे लोम नेत्र के कृष्ण भाग और श्वेत भाग में लगते रहते हैं (जिससे नेत्र में कष्ट होता है) और मूल कोश (बरौनी) से गिर भी जाते हैं अथवा नहीं भी गिरते हैं। उनके घर्षण से नेत्र के कृष्ण और श्वेत भाग में शोथ उत्पन्न हो जाता है। उसे पक्ष्मकोप रोग कहते हैं, यह अत्यन्त कठिन रोग है ॥ ९८-९९ ॥

पक्ष्मशातमाह—

वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत्। कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥१००॥

पक्ष्मशात के लक्षण—जिस रोग में नेत्र के पलकों के लोम के स्थान में जाकर कुपित हुआ पित्त पलकों के लोमों को गिरा देता है और उसमें कण्डू तथा दाह उत्पन्न कर देता है उसे पक्ष्मशात रोग कहते हैं। लोक में इसे बफनी कहते हैं ॥ १०० ॥

## अथ सन्धिरोगाः।

संधयः षडुत्ताह—पक्ष्मवर्त्मगतः संधिर्वर्त्मशुक्लगतोऽपरः।

शुक्लकृष्णगतस्त्वन्यः कृष्णदृष्टिगतोऽपि च ॥

ततः कनीनिकगतः षष्ठश्चापाङ्गसंश्रितः ॥ १०१ ॥

नेत्र की सन्धियां—पहली सन्धि पक्ष्म तथा वर्त्म में होती है, दूसरी वर्त्म तथा नेत्र के शुक्ल भाग में होती है, तीसरी नेत्र के शुक्ल भाग तथा कृष्ण भाग के मध्य में होती है, चौथी कृष्ण भाग तथा दृष्टि (पुतली) के मध्य में होती है, पांचवी सन्धि कनीनिकाओं (नाक के निकट के नेत्र भाग में होती है और छठवीं सन्धि नेत्र के अपाङ्ग भाग (नेत्र के पुच्छ भाग या अन्तिम कोने) में होती है। इस प्रकार नेत्र में छै सन्धियां होती हैं ॥ १०१ ॥

तत्रत्यानां रोगाणां नामानि संख्यां चाऽऽह—

पूयालसः सोपनाहः स्रावाश्चत्वार एव च। पर्वणीकाऽलजी जन्तुग्रन्थिः संधौ नवाऽऽमयाः ॥

सन्धियों में होने वाले रोग—पूयालस, उपनाह, चार प्रकार के स्राव पर्वणिका, अलजी और जन्तुग्रन्थि इस प्रकार नौ रोग सन्धि में होते हैं ॥ १०२ ॥

तेषु पूयालसमाह—

पक्वः शोथः संधिजो यः सतोदः स्रवेत्पूयं पूति पूयालसाख्यः।

पूयालस के लक्षण—जिस सन्धिरोग में नेत्र के कनीनिका में (नाक के निकट के कोने में) उत्पन्न हुआ शोथ पक जाता है और उसमें सुई चुभाने के समान पीड़ा होती है तथा उसमें से दुर्गन्धित पूय का स्राव होता है उसे पूयालस रोग कहते हैं। यह रोग सन्निपातज, साध्य एवं भेद्य है ॥

उपनाहमाह—

ग्रन्थिर्नाल्पो दृष्टिसंधावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजश्चोपनाहः ॥ १०३ ॥

उपनाह के लक्षण—जिस सन्धिरोग में कृष्णमण्डल और दृष्टि की सन्धि में ग्रन्थि उत्पन्न हो और वह छोटी नहीं हो अर्थात् बड़ी हो, उसमें पाक नहीं हो अथवा थोड़ा पाक हो तथा

जिसमें कण्डु हुआ करे और पीड़ारहित अथवा अल्प पीड़ा वाली हो उसे उपनाहरोग कहते हैं यह कफज रोग है और साध्य एवं भेद्य है ॥ १०३ ॥

स्रावाणां सम्प्राप्तिमाह—

गत्वा सन्धीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावान् रुग्विहीनान् स्वलिङ्गान्।
तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चैके तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्धा ॥ १०४ ॥

सन्धि के स्राव रोगों की सम्प्राप्ति—वातादि दोष अश्रुवाहिनी धमनियों के मार्ग से नेत्र के सन्धियों में जाकर अपने २ लक्षणों के अनुसार स्रावों को उत्पन्न कर देते हैं। इसी स्राव को कोई २ वैद्य नेत्रनाड़ीरोग भी कहते हैं। उन्हीं स्रावों के चार प्रकार के लक्षण होते हैं जिसे आगे कहेंगे। चतुर्धाशब्द से सान्निपातिक, रक्तज, कफज और पित्तज स्राव ग्रहण किया गया है। व्याधि के स्वभाव से (पित्तज गण्डूपद की भाँति) वातज स्राव नहीं होता है ॥ १०४ ॥

पैत्तिकस्रावमाह—

हरिद्राभं पीतमुष्णं जलं वा पित्तास्रावः संस्रवेत्सन्धिमध्यात् ॥

पैत्तिक स्राव—जिस सन्धि रोग में हल्दी के वर्ण का (पीत लोहित) अथवा केवल पीत वर्ण का और उष्ण एवं केवल जल के समान नेत्र की सन्धियों से स्राव हो उसे पैत्तिक स्राव कहते हैं। यह असाध्य है ॥

श्लेष्मस्रावमाह—

श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत्तु श्लेष्मास्रावोऽसौ विकारः प्रदिष्टः ॥ १०५ ॥

कफज स्राव—जिस सन्धि रोग में नेत्र की सन्धियों से श्वेत वर्ण का, घना (गाढ़ा) और पिच्छिल स्राव हो उसे कफ के कोप का स्राव कहते हैं यह भी असाध्य होता है ॥ १०५ ॥

सन्निपातस्रावमाह—

शोथः सन्धौ संश्रयेद्यस्तु पक्वः पूयं स्रावं सर्वजः सम्मतः सः ॥

सन्निपातज स्राव—जिस सन्धि रोग में नेत्र की सन्धियों में शोथ होकर पाक होवे और उससे पूय का स्राव हो उसे त्रिदोष के कोप का स्राव कहते हैं। कोई २ इसे पूयस्राव भी कहते हैं। यह भी असाध्य है ॥

रक्तस्रावमाह—रक्तास्रावः शोणिताख्यो विकारो गच्छेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ॥ १०६ ॥

रक्तस्राव के लक्षण—जिस सन्धि रोग में नेत्र की सन्धियों से दूषित एवं अत्यधिक मात्रा में रक्त का स्राव होता है उसे रक्त के कोप का रक्तस्राव कहते हैं। यह भी असाध्य है ॥ १०६ ॥

पर्वणीलक्षणमाह—

ताम्रा तन्वी दाहपाकोपपन्ना रक्ताज्ज्ञेया पर्वणी वृत्तशोफा।

पर्वणी रोग के लक्षण—जिस नेत्र सन्धि रोग में कृष्ण तथा शुक्ल भाग की सन्धि में रक्त दोष के कोप से ताम्र वर्ण की सूक्ष्म (छोटी) दाह और पाक से युक्त, वृत्त (गोल) एवं शोथ युक्त पिड़िका उत्पन्न हो जाती है उसे पर्वणी रोग कहते हैं ॥

जाता सन्धौ कृष्णशुक्लेऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ १०७ ॥

अलजी के लक्षण—जिस नेत्र सन्धि रोग में वही (कृष्ण श्वेत भाग की) सन्धि में उत्पन्न होने वाली और पूर्वकथित पर्वणी के लक्षणों से युक्त (किन्तु सूक्ष्म नहीं स्थूल अथवा प्रमेह रोग में पहले कहे हुए अलजी के लक्षणों से युक्त) पिड़िका उत्पन्न हो जाती है उसे अलजी कहते हैं। यह भी असाध्य है ॥ १०७ ॥

कृमिग्रन्थिमाह—

क्रिमिग्रन्थिर्वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युः क्रिमयः सन्धिजाताः।
नानारूपा वर्त्मशुक्लस्य सन्धौ चरन्तोऽन्तर्नयनं दूषयन्ति ॥ १०८ ॥

कृमि ग्रन्थि के लक्षण—जिस नेत्र सन्धि रोग में वर्त्म तथा पक्ष्म (बरौनी) की सन्धि स्थान में ग्रन्थि उत्पन्न होकर उसमें कण्डु करने वाले अनेक रूपों के कृमि उत्पन्न हो जाते हैं और वे ही कृमि वर्त्म तथा शुक्ल भाग के मध्य की सन्धि में विचरते हुए नेत्र को भीतर से दूषित कर देते हैं उसे कृमि ग्रन्थि कहते हैं यह रोग सन्निपातज एवं असाध्य है ॥ १०८ ॥

## अथ समस्तनेत्रजा रोगाः ।

तेषां नामानि संख्यां चाऽऽह—

स्यन्दाश्चतुष्का इह सर्वदिष्टाश्चत्वार एवेह तथाऽधिमन्थाः ।
पाकः सशोथः स च शोफहीनो हताधिमन्थोऽनिलपर्ययश्च ॥ १ ॥
शुष्काक्षिपाकस्त्वथ कीर्तितश्च तथाऽन्यतो वात उदीरितश्च ।
दृष्टिस्तथाऽम्लाध्युषिता शिराणामुत्पातहर्षौ च समस्तनेत्रे ॥ २ ॥
एवं समस्तनेत्रे स्युरामया दश सप्त च । तेषामिह पृथग्वक्ष्ये यथावल्लक्षणान्यपि ॥ ३ ॥

समस्त नेत्र रोगों के नाम—चार प्रकार के (वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और रक्तज) अभिष्यन्द, चार प्रकार के ( वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और रक्तज ) अधिमन्थ, दो प्रकार के सशोथ पाक और अशोथ पाक, एवं हताधिमन्थ, अनिल पर्यय या वातपर्यय, शुष्काक्षिपाक, अन्यतोवात, अम्लाध्युषित दृष्टि, शिरोत्पात और शिराहर्ष ये १७ रोग समस्त नेत्र में होते हैं जिनके पृथक् २ लक्षण आगे कहे जाते हैं ॥ १-३ ॥

तत्राभिष्यन्दाश्चत्वार इत्याह—

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः । प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वात के कोप से, पित्त के कोप से, कफ के कोप से और रक्त के कोप से (वातज, पित्तज, कफज और रक्तज ) चार प्रकार के अभिष्यन्द रोग होते हैं ये प्रायः कठिन एवं सभी नेत्ररोगों को उत्पन्न करने वाले होते हैं ॥ ४ ॥

तेषु वातिकमभिष्यन्दमाह—

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोभितापाः ।
विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ५ ॥

वातिक अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में सुई चुभाने के समान पीड़ा जड़ता रोमाञ्च और नेत्र के पलकों में घर्षण होता है, रूक्षता होती है, शिर में पीड़ा होती है, नेत्र में शुष्कता होती है नेत्र में मल ( कीचड़ ) नहीं होते हैं और शीतल अश्रु का स्राव होता है, उसे वात के कोप का अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकमभिष्यन्दमाह—

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

पैत्तिक अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में दाह और अत्यन्त पाक होता है तथा शीतल स्पर्श की इच्छा होती है धूमोद्गमन होता है, बाष्प ( अश्रु ) बाहुल्यता और उष्णाश्रुता ( उष्ण आँसुओं का निकलना ) होती है और नेत्र के वर्ण पीत हो जाते हैं उसे पैत्तिक अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ६ ॥

श्लैष्मिकमभिष्यन्दमाह—

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोथः कण्डूपदेहौ सितशीतता च ।
स्रावो मुहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

कफज अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र में उष्णता ( गरमी ) लगने पर आनन्द हो और नेत्र में गुरुता, शोथ, हो तथा कण्डु हो कफ से लिप्त नेत्रमल की बहुलता हो, नेत्र अत्यन्त शीतल रहें, स्राव अधिक हो और पिच्छिलता रहे, उसे कफज अभिष्यन्द कहते हैं ॥ ७ ॥

रक्तजमभिष्यन्दमाह—

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च ।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

रक्तज अभिष्यन्द—जिस अभिष्यन्द रोग में नेत्र से ताम्रवर्ण के अश्रु निकलते हों, नेत्र लोहित वर्ण के हो गये हों, नेत्रों में चारों ओर रक्तवर्ण की रेखायें दिखाई देती हों और पित्तज अभिष्यन्द के जो लक्षण हैं दाह-पाकादि उनसे भी युक्त हो तो उसे रक्तज अभिष्यन्द जानना चाहिये ॥ ८ ॥

अधिमन्थानामभिष्यन्दजन्यत्वमाह—

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम्। तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः॥९॥

अधिमन्थों की उत्पत्ति—अभिष्यन्द रोग होने पर यदि उसकी चिकित्सा नहीं होती तो वही बढ़कर अधिमन्थ रोग हो जाता है और यह अधिमन्थ नेत्र में तीव्र पीड़ा करने वाला होता है। ( अभिष्यन्द ही के समान अधिमन्थ रोग में भी वातादि दोषों का कोप तथा निस्तोदादि वेदनायें होती हैं और अभिष्यन्द के कारण होने से अधिमन्थ भी चार प्रकार का होता है )॥९॥

अधिमन्थानां सामान्यं लक्षणम्

उत्पाट्यत इवात्यर्थं तथा निर्मथ्यतेऽपि च। शिरसोऽर्धं तु तं विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः॥१०॥

अधिमन्थों के सामान्य लक्षण—जिस नेत्ररोग में ऐसा ज्ञात हो कि मानो शिर को कोई उखाड़ रहा है तथा मथ रहा है ( मथानी मथने की भाँति ज्ञात हो ) उसे अपने लक्षणों से युक्त ( वातादि दोष से होने वाले अभिष्यन्द के लक्षणों से युक्त ) अधिमन्थ रोग का सामान्य लक्षण जानना चाहिये॥१०॥

सचाधिमन्थो यत्कारणको यावता कालेन मिथ्याचाराद्दृष्टिं हन्ति तमाह—

हन्याद्दृष्टिं श्लेष्मजः सप्तरात्रादधिमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात्।
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव॥११॥

अधिमन्थ यदि कफ के दोष से ( कफज ) होता है तो ( मिथ्याचार अर्थात् प्रतिकूल आहार विहारादि करने से ) सात दिन में दृष्टि को नष्ट कर देता है तथा यदि रक्तज होता है तो वह कठिन दोष ( मिथ्याचार से ) पाँच दिन में दृष्टि को नष्ट कर देता है एवं यदि वातज होता है तो वह ( मिथ्याचार से ) छै दिन में दृष्टि को नष्ट कर देता है और यदि पैत्तिक अधिमन्थ होता है तो मिथ्याचार से सद्य ( त्रिरात्र अर्थात् तीन दिन में ) दृष्टि को नष्ट कर देता है॥११॥

सशोफं पाकमाह—

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसन्निभः। संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकः सशोफकः॥१२॥

शोथ युक्त नेत्रपाक के लक्षण—जिस नेत्रपाक में नेत्र कण्डूयुक्त, नेत्र मल और जल से युक्त और पके हुए गूलर के फल के समान रक्तवर्ण एवं शोथान्वित होकर पकते हैं उसे सशोथ नेत्रपाक कहते हैं॥१२॥

अशोफपाकमाह—शोफहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोफके॥

अशोथ नेत्रपाक के लक्षण—उपर्युक्त लक्षणों से युक्त केवल शोथ रहित जो पाक हो उसे अशोथ नेत्र पाक कहते हैं॥

हताधिमन्थमाह—उपेक्षणादक्षि यदाऽधिमन्थो वातात्मकः सादयति प्रसह्य।

रुजाभिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः॥१३॥

हताधिमन्थ के लक्षण—जब वातिक अधिमन्थ की चिकित्सा यथाभाँति नहीं की जाती है तब वह वातात्मक अधिमन्थ अत्यन्त पीड़ा करता हुआ नेत्र को सुखा देता है ( नष्ट कर देता है ) उसी का नाम हताधिमन्थ है। यह असाध्य है ( वाताधिमन्थ होने पर उचित चिकित्सा नहीं करने पर कुपित वायु अभ्यन्तरिक सिराओं में प्रवेश कर के दृष्टि को सुखा देता है )॥१३॥

वातपर्ययमाह—

वारं वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः। रुजाश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः॥१४॥

वातपर्यय के लक्षण—जिस रोग में वायु बार बार पर्याय क्रम से ( बारी बारी से ) नेत्र और भ्रूभाग में घूमा करता है अर्थात् कभी नेत्र में कभी भ्रूभाग में चला जाता है और तीव्र पीड़ा करता रहता है उसे वातपर्यय रोग कहते हैं॥१४॥

शुष्काक्षिपाकमाह—कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदृश्यते चाविलदर्शनं यत्।

सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि॥१५॥

शुष्काक्षिपाक के लक्षण—जिस रोग में नेत्र बन्द करने या खोलने में कठिन एवं कष्ट प्रतीत हो।

नेत्र में दाह हो, धुंधला दिखाई देता हो और नेत्र खोलने में अधिक कठिनाई हो उसे शुष्काक्षिपाक नामक रोग जानना चाहिये इसमें रक्तान्वित वात का कोप रहता है ॥ १५ ॥

अन्यतोवातमाह—

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोऽन्यतो वा।
कुर्याद्रुजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १६ ॥

अन्यतोवात के लक्षण—जिस रोग में ग्रीवा के पीछे का भाग, कान, शिर, हनु और मन्या (ग्रीवा के दोनों पार्श्व की शिरा) अथवा अन्यत्र (पीठ आदि में स्थित वायु अर्थात् इन स्थानों की वायु बढ़कर भ्रूभाग और नेत्रों में पीड़ा करती है उसे अन्यतोवात कहते हैं ॥ १६ ॥

विदेहेनाप्युक्तम्—

मन्यानामन्तरे वायुरस्थित पृष्ठतोऽपि वा। करोति भेदं निस्तोदं शङ्खे चाक्ष्णोर्भ्रुवोस्तथा ॥
तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ १८ ॥

जिस नेत्र रोग में मन्याओं अथवा पीठ में से उत्थित वायु शङ्ख देश, नेत्र और भ्रूभाग में भेदने के समान तथा सूई चुभाने के समान पीड़ा करता है उसे अन्यतोवात रोग कहते हैं ॥

अम्लाध्युषितमाह—

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वमक्षि प्रपच्यते। सदाहशोथं सास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १९ ॥

अम्लाध्युषित के लक्षण—जिस रोग में सम्पूर्ण नेत्र किञ्चित् नीलवर्ण के और अन्त में लोहित वर्ण के हो जाते हैं अर्थात् किनारे २ लाल और बीच में किञ्चित् नील वर्ण के हो जाते हैं, नेत्रों में पाक दाह, शोथ और स्राव होता है उसे अम्लाध्युषित रोग कहते हैं यह अम्ल पदार्थों के सेवन से कुपित दोषों से उत्पन्न होता है ॥ १९ ॥

शिरोत्पातमाह—अवेदना वाऽपि सवेदना वा यस्याशिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः।
मुहुर्विरज्यन्ति च याः स ताहग्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ २० ॥

शिरोत्पात के लक्षण—जिस रोग में नेत्र की शिरायें पीड़ा रहित अथवा पीड़ा सहित (वा अल्प पीड़ा युक्त) ताम्र वर्ण की हो जावे और बार २ उनका वर्ण अधिकाधिक रक्त वर्ण का होता जावे उसे शिरोत्पात कहते हैं ॥ २० ॥

शिराप्रहर्षमाह—मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः।
ताम्राममस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २१ ॥

शिराप्रहर्ष के लक्षण—भ्रम वश शिरोत्पात रोग होने पर उसकी उपेक्षा करने से (चिकित्सा नहीं करने से) जो रोग उत्पन्न होता है उसे शिराप्रहर्ष कहते हैं उसमें ताम्रवर्ण का अत्यन्त गाढ़ा स्राव होता है और वह मनुष्य देख नहीं सकता ॥ २१ ॥

नेत्रस्य सामतालक्षणमाह—

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागशोफसमन्वितम्। घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ २२ ॥

नेत्र रोग के आम लक्षण—जिस नेत्र रोग में अत्यन्त पीड़ा होती हो, राग (लोहितादि वर्ण) और शोथ हो गये हों घर्ष (किरकिराहट) सूई चुभाने के समान पीड़ा, शूल (अन्य प्रकार की पीड़ा) और अश्रु स्राव होते हों उसे आमान्वित नेत्र रोग (नेत्र रोग की सामावस्था) जानना चाहिये ॥ २२ ॥

नेत्रस्य निरामतालक्षणमाह—

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता। प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोर्निरामस्य च लक्षणम् ॥ २३ ॥

नेत्र रोग के निराम (पक्व) लक्षण—जिस रोग में नेत्रों में पीड़ा मन्द हो गयी हो, कण्डू होता हो, शोथ और अश्रु में शान्ति आगयी हो और नेत्रों के वर्ण प्रसन्न (स्वच्छ) हो गये हों उसे निराम (पक्व) नेत्र रोग जानना चाहिये ॥ २३ ॥

## अथ नेत्ररोगाणां चिकित्सा।

तथा च तन्त्रान्तरे—

सेको दिनानि चत्वारि लङ्घनं भोजने रसः। स्वादुस्तिक्तश्च लेपश्च बाष्पस्वेदनमेव च ॥
एतानि नेत्ररोगाणां सामानां पाचनानि हि ॥ १ ॥

साम नेत्र रोग की चिकित्सा—लेप, चार दिन लङ्घन, मधुर तथा तिक्त पदार्थ का भोजन, लङ्घन और भाफ द्वारा स्वेद देना चाहिये। ये छः कर्म नेत्र रोग की साम अवस्था में पाचन के लिये करना चाहिये ॥ १ ॥

अञ्जनं सर्पिषः पानं कषायं गुरुभोजनम्। नेत्ररोगेषु सामेषु स्नानं च परिवर्जयेत् ॥ २ ॥

साम नेत्र रोग में वर्जित कर्म—नेत्र रोग की साम अवस्था में अञ्जन लगाना, घृत पान, कषाय पान, गुरु पदार्थ का भोजन और स्नान करना त्याग देना चाहिये ॥ २ ॥

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः। पञ्चैते पञ्चरात्रेण रोगा नश्यन्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

लङ्घन की व्यवस्था—नेत्र रोग, उदर रोग, प्रतिश्याय, व्रण और ज्वर रोग प्रारंभ में पाँच रात के लङ्घन से नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

षट्सप्ततिर्लोचनजा विकारास्तेषामभिष्यन्दमनुद्भवानाम्।
श्लेष्माधिकत्वादिह लङ्घनं प्राक् शस्यते मुद्गरसौदनं च ॥ ४ ॥

नेत्र के रोग ७६ हैं इनमें अभिष्यन्द से जो उत्पन्न होते हैं उनमें श्लेष्मा का आधिक्य होने से (कफान्वित होने से) पहले लङ्घन कराना उचित है पथ्य में मूंग का रस और भात देना चाहिये ॥

अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते। आ चतुर्थाद्दिनादाममभिष्यन्देऽपि लोचनम् ॥ ५ ॥

सामनेत्र में निषिद्ध कर्म—नेत्र रोग की साम अवस्था में अञ्जन करना, पूरण करना (औषध छोड़ना) और क्वाथ पीना निषिद्ध है। अभिष्यन्द में भी चार दिन तक नेत्र की सामावस्था ही रहती है ॥ ५ ॥

गण्डूषधारणनस्यादिहीनानां कफक्षयेत। षट्सप्ततिर्नेत्ररोगा दुःसहाः समुपेक्षिताः ॥ ६ ॥

नेत्र रोग की सम्भावना—गण्डूष धारण, अञ्जन, और नस्य नहीं लेनेवालों को कफ के कोप से और इन कर्मों की उपेक्षा करने से ७६ प्रकार के नेत्र के भयङ्कर रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥

सेकाश्च्योतनपिण्डी विडालस्तर्पणं तथा। पुटपाकोऽञ्जनं चैभिः कल्पैर्नेत्रमुपाचरेत् ॥ ७ ॥

नेत्र रोग के उपचार—नेत्र रोग में यथास्थान सेक सिंचन, आश्चोतन, पिण्डी, बिडाल, तर्पण, पुटपाक और अञ्जन के द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

दृष्टिगतरोगचिकित्सामाह—

वर्जयेदुपसर्गोत्थं गम्भीरां ह्रस्वसञ्ज्ञिताम्। कार्यास्तु याप्यसर्वाक्षिकुलान्यं तथैव च ॥

दृष्टिगत रोग चिकित्सा—नेत्र रोगों में उपसर्ग (किसी बाह्य कारणों) से उत्पन्न गम्भीरा नामक नेत्र रोग को और ह्रस्व नामक नेत्र रोग को त्याग देना चाहिये अर्थात् ये असाध्य होते हैं इनकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये। और सब प्रकार के याप्य रोग को तथा नकुलान्ध्य रोग को भी याप्य समझकर चिकित्सा करनी चाहिये ॥

तिमिरं नेत्ररोगेषु कष्टं यत्नतो हरेत् ॥ १ ॥

नेत्र रोगों में तिमिर रोग को कष्टसाध्य समझ कर यत्न से नष्ट करना चाहिये ॥ १ ॥

मूलं दृष्टिविनाशस्य तिमिरं समुदाहृतम्। ऋषिभिस्तूदितं तस्मात्तस्य कुर्याच्चिकित्सितम् ॥

ऋषियों ने दृष्टि को नष्ट करनेवाला मूल रोग तिमिर को ही कहा है इसलिये इसकी चिकित्सा यत्नपूर्वक करनी चाहिये ॥ २ ॥

वातिकतिमिरचिकित्सामाह—

स्निग्धानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटपाकास्तर्पणं च।
घृतस्य पानान्यथ बस्तिकर्म कुर्यादभीक्ष्णं तिमिरेऽनिलोत्थे ॥ १ ॥

वातिक तिमिर रोग की चिकित्सा—वात के कोप से उत्पन्न तिमिर रोग में स्निग्ध नस्य, अञ्जन शोधन, पुटपाक, तर्पण, घृत पान और बस्ति कर्म बार बार करना चाहिये ॥ १ ॥

दशमूलत्रिफला पक्वं घृतं दुग्धचतुर्गुणम्। त्रिफलाकल्कसंयुक्तं तिमिरे वातजे पिबेत् ॥ २ ॥

दशमूल घृत—त्रिफला का कल्क एक भाग, गोघृत, ४ भाग, गोदुग्ध १६ भाग और दशमूलादि क्वाथ १६ भाग इन सबको एकत्र कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्ध कर वातज तिमिर रोग में पीना चाहिये ॥ २ ॥

रास्नाक्षीरबलाक्वाथे दशमूलरसे शृतम्। सक्षौद्रं जीवनीयानां घृतं तिमिरनाशनम् ॥ ३ ॥

रास्नादि घृत—रास्ना, आँवला, हरड़, बहेड़ा को समान भाग लेकर क्वाथ की विधि से क्वाथ कर जितना हो उसके समान भाग (समान मिलित) दशमूल का विधिपूर्वक बना हुआ क्वाथ लेवे और रास्नादि क्वाथ के चतुर्थांश मूर्च्छित गोघृत लेवे और जीवनीय गण की ओषधियों को समान लेकर विधिपूर्वक कल्क करे घृत से चतुर्थांश यह कल्क मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्धकर सेवन करने से वातज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

वातिके तिमिरे पक्व दशमूलीरसे घृतम्। त्रिवृच्चूर्णसमायुक्तं विरेकार्थं प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

दूसरा दशमूल घृत—वातिक तिमिर रोग में दशमूल के रस में घृत पका कर उसमें निशोथ का चूर्ण मिलाकर विरेचन के लिये देना चाहिये अर्थात् दशमूल का रस १६ भाग, मूर्च्छित गोघृत ४ भाग और निशोथ का कल्क १ भाग लेकर सबको एकत्र घृतपाक की विधि से सिद्ध कर सेवन करने से वातिक तिमिर रोग में विरेचन होता है और तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

त्रिफलादशमूलानां निर्यूहं दुग्धमिश्रितम्। गन्धर्वतैलसंयुक्तं प्रयुञ्जीत विरेचनम् ॥ ५ ॥

त्रिफलादि योग—त्रिफला और दशमूल के समान मिलित क्वाथ में दूध मिलाकर उसमें एरण्ड तैल मिलाकर उचित मात्रा से विरेचन के लिये वातिक तिमिर रोग में प्रयोग कराना चाहिये ॥ ५ ॥

पैत्तिकतिमिरचिकित्सा—

शीताञ्जनाश्चोतनतर्पणैश्च नस्यैर्विरेकैर्मृदुभिर्घृतैश्च।
तिक्तप्रधानैस्तिमिरं निहन्याद्पित्तात्मकं शोणितमोक्षणैश्च ॥ १ ॥

पैत्तिक तिमिर रोग की चिकित्सा—पित्तज तिमिर में शीतल ओषधियों के अञ्जन, आश्चोतन तर्पण, नस्य विरेचन तथा मृदु वीर्य ओषधियों द्वारा सिद्ध घृत पिलाने से तिक्तरस प्रधान पदार्थों के सेवन करने से और रक्तमोक्षण करने से पित्त के कोप से उत्पन्न तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

तिमिरे पित्तजे सर्पिर्जीवनीयवराश्रृतम्। पायियित्वा शिरां विध्येत्सितैलाकुम्भसैन्धवैः ॥ २ ॥
चूर्णैर्माक्षिकसंयुक्तै रेचनं कारयेन्नरः।

पित्तज तिमिर रोग में जीवनीय गण की ओषधियों और त्रिफला के द्वारा विधिपूर्वक सिद्ध गोघृत को पिलाकर शिरावेध करना चाहिये और छोटी इलायची, निशोथ और सेंधानमक का विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु मिलाकर चटाना चाहिये ॥ २ ॥

बलाशतावरीक्षीरासितासैलेयकैः पचेत् ॥ ३ ॥
त्रिफलासहितं सर्पिस्तिमिरघ्नमनुत्तमम्।

बलादि घृत—खरैंटी, शतावरी, पृश्नपर्णी, श्वेत निशोथ और शैलेय (शिलारस) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना गोघृत और घृत से चौगुना त्रिफला का क्वाथ लेकर घृतपाक की विधि से सिद्ध कर सेवन करने से तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सारिवात्रिफलोशीरमुस्ताचन्दनपद्मकैः। पिष्टं वर्तीकृतं हन्ति पित्तोत्थं तिमिरं नृणाम् ॥ ४ ॥

सारिवादिवर्ति—सारिवा, आँवला, हरड़, बहेड़ा, खस, रास्ना, लाल चन्दन और पदुमकाठ प्रत्येक समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर वर्तिकाकार बनाकर छाया में सुखा लेवे, इस वर्ति को जल में घिसकर नेत्र में लगाने से पित्तज तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

श्लैष्मिकतिमिरचिकित्सामाह—

तीक्ष्णानि नस्याञ्जनशोधनानि पाकाः पुटानामपतर्पणञ्च।
घृतानि वासात्रिफलापटोलसंज्ञानि कुर्यात्तिमिरे कफोत्थे ॥ १ ॥

कफज तिमिर रोग की चिकित्सा—तीक्ष्ण ओषधियों के नस्य, अञ्जन, शोधन और पुटपाक, अपतर्पण तथा वासा घृत त्रिफला घृत और पटोल घृत का यथायोग उपयोग करने से कफज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

कफोत्थे वराचव्यश्रृते क्वाथे श्रृतं हविः। पाययित्वा शिरां विध्येद्रेचनं तिमिरे भिषक् ॥ २ ॥

कफज तिमिर रोग में त्रिफला और चव्य के क्वाथ में चतुर्थांश गोघृत मिलाकर घृतपाक

की विधि से सिद्ध घृत पिलाकर शिरोवेध करना चाहिये । इस घृत से कफज तिमिर में रेचन होता है ॥ २ ॥

यूथी पथ्या कणा शुण्ठी कुसुम्भरसगिरिनिर्झरा । गोमूत्रक्वथिता शुण्ठी त्रिवृत्तिरिदा विरेचनम् ॥

जूही, हरड़, पीपल, सोंठ, कसुम फूल का रस, पहाड़ी झरने का जल, गोमूत्र में पकाई हुई सोंठ और त्रिवृता को नेत्र में डालने से कफज तिमिर में विरेचन होकर कफ का नाश होता है ॥

नस्यं मरीचयष्ट्याह्वविडङ्गामरदारुभिः ।

मरिचादि नस्य—कफज, तिमिर रोग में मरिच जेठी मधु, वायविडंग और देवदारु को पीस कर विधिपूर्वक नस्य बनाकर देने से उत्तम लाभ होता है ॥

नेपालत्रिफलाशङ्खकान्ता व्योषं च पेषितम् । वर्तीकृतं जलासोऽयमञ्जनं तिमिरापहम् ॥ ४ ॥

नेपालादि वर्त्यञ्जन—तवि का शुद्ध चूर्ण, हरड़, बहेड़ा, आँवला, शुद्ध शङ्ख चूर्ण, रेणुका, सोंठ, मरिच और पीपल को समान भाग लेकर पीस कर विधिपूर्वक वर्तिका कार बना कर छाया में सुखा कर जल के साथ घिस कर अञ्जन करने से कफज तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

सान्निपातिकतिमिर चिकित्सा—

संसर्गे सन्निपाते च यथादोषोदयक्रियाम् । धात्री रसाञ्जन क्षौद्र सर्पिर्भिस्तु रसक्रिया ॥ १ ॥
पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा । दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ॥ २ ॥
तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं घने ततः । शीते चास्मिन्हितमिदं सर्वजे तिमिरे हितम् ॥३॥

संसर्गज और सान्निपातिक तिमिर रोग चिकित्सा—संसर्गज और सान्निपातिक तिमिर रोग में दोषों के अनुसार अर्थात् जैसे २ दोष हों ( वात-पित्त, पित्त-कफ वा कफ-वात अथवा तीनों मिश्रित ) उन २ दोषों को नष्ट करने वाले प्रयोगों की चिकित्सा करनी चाहिये । अर्थात् आँवला, रसवत, मधु और घृत को मिलाकर रस क्रिया करने से पित्त-वात दोष से ( पित्त-वात के द्वन्द्व दोष से ) उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट होते हैं और तिमिर के पटल रोग का नाश होता है । खस के क्वाथ में सेंधा नमक का चूर्ण मिलाकर जितना हो उसके चतुर्थांश गोघृत मिलावे और घृत के समान मधु मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर जब घन ( गाढा ) हो जावे तब उतार कर शीतल हो जाने पर नेत्र में लगाने से संनिपातज तिमिर रोग में लाभ करता है ॥ १-३ ॥

वातपित्तकफसन्निपातजां नेत्रयोर्बहुविधामपि व्यथाम् ।
शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः शिग्रुपल्लवरसः समाक्षिकः ॥ ४ ॥

शिग्रुपल्लवरस योग—सहिजन के कोमल पत्तों के स्वरस में मधु का प्रक्षेप देकर आँख में डालने से वातज, पित्तज, कफज और संनिपातज सभी प्रकार के नेत्र रोग एवं विविध प्रकार की पीड़ा शीघ्र नष्ट होती है ॥ ४ ॥

## अथ तिमिरे सामान्यचिकित्सा ।

अञ्जनविधि —

अथ सपक्वदोषस्य प्राप्तमञ्जनमाचरेत् । अञ्जनं क्रियते येन तद्द्रव्यं चाञ्जनं स्मृतम् ॥ १ ॥

अञ्जनविधि—जब नेत्र रोग के दोष परिपक्व हो जावें तब अञ्जन वाली औषधि करनी चाहिये । जिन द्रव्यों से अञ्जन किया जाता है उन्हें भी अञ्जन ही कहते हैं ॥ १ ॥

तद्यथा—गुटिकारसचूर्णानि त्रिविधान्यञ्जनानि तु ।
कुर्याच्छलाकयाऽङ्गुल्या हीनानि च यथोत्तरम् ॥ २ ॥

अञ्जन के भेद—गुटिका, रस और चूर्ण के भेद से तीन प्रकार के अञ्जन होते हैं । ये सलाका अथवा अंगुली से ही नेत्रों में लगाये जाते हैं । ये तीनों प्रकार के अञ्जन एक दूसरे से गुण में हीन होते हैं अर्थात् गुटिका से हीनगुण रस में और रस से हीन गुण चूर्ण वाले अञ्जन में होता है ॥२॥

स्नेहनं रोपणं चापि लेखनं त्रिविधं पृथक् । मधुरं स्नेहसम्पन्नमञ्जनं स्नेहनं मतम् ॥ ३ ॥
कषायतिक्तसंयुक्तसस्नेहं रोपणं स्मृतम् । अञ्जनं क्षारतीक्ष्णाम्लरसैर्लेखनमुच्यते ॥ ४ ॥

अञ्जन के अन्य भेद—अञ्जन में तीन भेद और हैं जो स्नेहन, रोपण और लेखन कहे जाते हैं मधुररस वाली और स्नेह मिली हुई ( घृतादि से युक्त ) औषधियों के योग से जो अञ्जन प्रस्तुत किया जाता है उसे स्नेहन अञ्जन कहते हैं । कषाय तथा तिक्तरस वाली और स्नेह मिली औष

धियों के योग से प्रस्तुत किया हुआ अञ्जन रोपण अञ्जन कहा जाता है। क्षार, तीक्ष्ण और अम्ल रस वाली ओषधियों के योग से प्रस्तुत किया हुआ अञ्जन लेखन अञ्जन कहा जाता है ॥ ३-४ ॥

हरेणुमात्रां कुर्वीत वर्तिं तीक्ष्णाञ्जने भिषक्। प्रमाणं मध्यमे सार्धं द्विगुणं तु मृदौ भवेत् ॥५॥

अञ्जन वर्त्ति का प्रमाण—तीक्ष्णाञ्जन के लिये वैद्य को हरेणु अर्थात् बड़े चने अथवा मटर के प्रमाण की मोटी वर्त्ति बनानी चाहिये और मध्यम ( मध्यवीर्य ओषधि से बने ) अञ्जन के लिये डेढ़ी अर्थात् उपरोक्त डेढ़ो मोटी तथा मृदु अञ्जन ( मृदु वीर्य ओषधियों से बने अञ्जन ) के लिये दुगुनी मोटी वर्त्तिका बनानी चाहिये ॥ ५ ॥

रसक्रिया सूत्तमा स्यात्त्रिविडङ्गमिता हिता। मध्यमा द्विविडङ्गा सा हीना स्यैकविडङ्गिका ॥६॥

रस क्रिया का प्रमाण—तीन विडङ्ग के प्रमाण की ( तीन विडङ्ग के दानों के समान पदार्थ से ) जो रस क्रिया की जाती है वह उत्तम होती है। दो विडङ्ग के प्रमाण की जो रस क्रिया ( दो विडङ्ग के दानों के प्रमाण की ओषधि से ) की जाती है वह मध्यम होती है और एक विडङ्ग के प्रमाण की ओषधि से जो रस क्रिया की जाती है वह हीन होती है ॥ ६ ॥

शलाकाः स्नेहने चूर्णे चतस्रः प्राहुरञ्जने। रोपणे तास्तु तिस्रः स्युर्लेखने उभे लेखने स्मृते ॥७॥

शलाका प्रमाण—स्नेहन और चूर्ण वाले अञ्जन में चार शलाकायें ओषधि आँख में लगानी चाहिये। रोपण अञ्जन में तीन शलाकायें ओषधि आँख में लगानी चाहिये और लेखन ओषधि के अञ्जन में दो शलाका ही अञ्जन लगाना चाहिये ॥ ७ ॥

मुखयोः कुण्ठिता श्लक्ष्णा शलाकाऽष्टाङ्गुलोन्मिता।
अश्मजा धातुजा या स्यात्कलायपरिमण्डला ॥ ८ ॥

शलाका के लक्षण—शलाका नेत्र में अञ्जन करने के लिये जो बनाई जावे उसके दोनों ओर के मुख कुण्ठित ( पतले ) हों और बीच में मोटी हो, चिकनी हो ( शलाका में किसी प्रकार की रूक्षता नहीं हो ) तथा आठ अङ्गुल प्रमाण की बड़ी हो। वह पत्थर की अथवा किसी धातु की बनानी चाहिये और उसके मध्य भाग की स्थूलता ( मोटाई ) कलाय ( मटर ) के मण्डल के प्रमाण की होनी चाहिये ॥ ८ ॥

सुवर्णरजतोद्भूता शलाका स्नेहने स्मृता। ताम्रलोहाश्मसञ्जाता शलाका लेखने मता ॥
अङ्गुलिस्तु मृदुत्वेन रोपणे कथिता बुधैः ॥ ९ ॥

सुवर्ण और चाँदी की बनी शलाका स्नेहन अञ्जन के लिये प्रयोग करना चाहिये। ताम्र, लोह और पत्थर की बनी शलाका लेखन अञ्जन के लिये प्रयोग करना चाहिये और अङ्गुली का ही रोपण अञ्जन में प्रयोग कराना चाहिये अर्थात् शलाका से नहीं लगाकर अङ्गुली से ही रोपण अञ्जन लगाना चाहिये क्योंकि अंगुली मृदु होती है ॥ ९ ॥

अञ्जने केवलमपि शलाकाविशेषमाह—

त्रिफलाभृङ्गशुण्ठीनां रसैस्तद्वच्च सर्पिषा। गोमूत्रमध्वजाक्षीरैः सिक्तो नागः प्रतापितः ॥१॥
तच्छलाका हरत्येव सकलान्नयनामयान्।

शलाका की विशेषता—नाग अर्थात् शीशा को अग्नि में तपा-तपाकर त्रिफला के क्वाथ में, भांगरे के स्वरस में, सोंठ के क्वाथ अदरख के स्वरस में, घृत में, गोमूत्र में, मधु में और बकरी के दूध में क्रम से बुझावे ( अलग २ सब में तपा-तपा कर बुझावे ) पश्चात् ओषधियों से सिक्त शीशे की यह शलाका ही घिसने से नेत्र के सम्पूर्ण रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

कृष्णभागादधः कुर्यादपाङ्गं यावदञ्जनम् ॥ २ ॥

अञ्जन लगाने की विधि—नेत्र में कृष्ण गोलक से नीचे अपांग तक अर्थात् नेत्र के इस कोने से उस कोने तक अञ्जन लगाना चाहिये ॥ २ ॥

प्रथमं सव्यमक्ष्णीयात्पश्चाद्दक्षिणमञ्जयेत्। शलाकया साञ्जनया न च संस्पृशेत् ॥ ३ ॥

पहले बाँई आँख में अञ्जन युक्त अथवा ओषधि परिसिक्त शलाका से अञ्जन करना चाहिये पश्चात् दाहिनी आँख में अञ्जन करना चाहिये और अञ्जन लगाने के बाद नेत्रों का स्पर्श नहीं करना चाहिये ॥ ३ ॥

हेमन्ते शिशिरे वाऽपि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते । पूर्वाह्णे वाऽपराह्णे वा ग्रीष्मे शरदि चेष्यते ॥
वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते च सदैव हि । प्रातः सायं च तत्कुर्यान्न च कुर्यात्सदैव हि ॥४-५॥

अञ्जन लगाने का समय—हेमन्त तथा शिशिर ऋतु में मध्याह्नकाल में अञ्जन करना चाहिये। ग्रीष्म और शरद ऋतु में दिन के पूर्वभाग अथवा अपराह्न ( तीसरे पहर ) में अञ्जन लगाना चाहिये। वर्षा ऋतु में जिस समय बादल न घिरे हों उस समय अञ्जन लगाना चाहिये। और वसन्त ऋतु में जब अधिक उष्णता नहीं हो तब सदा ही प्रातः समय अञ्जन लगाना चाहिये। किन्तु जब वर्षा में बादल हों, वसन्त में अधिक उष्णता हो गयी हो तो अञ्जन नहीं लगाना चाहिये ॥ ४-५ ॥

श्रान्ते प्ररुदिते भीते पीतमद्ये नवज्वरे । अजीर्णे वेगघाते च नाञ्जनं सम्प्रशस्यते ॥ ६ ॥

अञ्जन निषेध—जो थके हुए हों, जो रोये हों ( दुःख से जिन्हें अधिक अश्रुपात हुआ हो ), भयभीत हों, मद्य पीये हों, नवीन ज्वर वाले हों, अजीर्णरोग वाले हों और जिन्हें वेगाघात करना पड़ा हो उन्हें अञ्जन लगाना उचित नहीं है ॥ ६ ॥

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत् । पञ्चरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थं रसाञ्जनम् ॥ ७ ॥

नित्य सौवीराञ्जन लगाना आँखों के लिये हितकर परन्तु पांच या आठ रात पर स्रावण के लिये रसाञ्जन ( रसवत ) अथवा ओषधियों के रसों का अञ्जन करना चाहिये ( इससे नेत्र से अश्रुपात होकर नेत्र शुद्ध होते हैं ) ॥ ७ ॥

मुक्तादिमहाञ्जनं भावप्रकाशात्—

मुक्ताकर्पूरकाचागुरुमरिचकणासैन्धवं शैलवालं
शुण्ठीकङ्कोलकांस्यत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाभ्यभ्रतुत्थम् ।
दृगाण्डत्वक् च साक्षं तदनु शिवाक्लीतकं राजवर्तं
जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजमस्यास्तथैव ॥ १ ॥
पूतीकनिम्बाञ्जनमब्दयुक्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ।
प्रत्येकमेषां खलु माषकैकं पलेन पिष्ट्वा मधुनाऽतिसूक्ष्मम् ॥ २ ॥
भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् ।
विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनाऽनेन महाञ्जनेन ॥ ३ ॥

मुक्तादि महाञ्जन—शुद्ध मोती, कपूर, कांच ( काच लवण या शुद्ध शीशा ), अगर, मरिच, पीपल, सेंधानमक, छरीला या तेजबल के बीज, सोंठ, कंकोल, मरिच, शुद्ध कांसा, शुद्ध रांगा, हल्दी, शुद्ध मैनसिल, शुद्ध शङ्खनाभि, शुद्ध अभ्रक, शुद्ध तूतिया, कुक्कुटाण्ड की त्वचा, बहेड़ा, काश्मीरी केसर, हरीतकी, मुलहठी, लाजावर्त, चमेली के पुष्प, तुलसी के नूतन पुष्प और बीज, करञ्ज के बीज, नीम के पत्ते, सौवीराञ्जन, नागरमोथा, लालचन्दन और रसवत इन सब ओषधियों को एक २ माशा लेकर विधिपूर्वक श्लक्ष्ण चूर्ण कर इसमें एक पल मधु मिलाकर भलीभाँति मर्दन कर रख देवे। इस अञ्जन से नेत्रों के रोग जो अत्यन्त उल्वण हो गये हों अवश्य शान्त हो जाते हैं। इस महाञ्जन का नाम मुक्तादि महाञ्जन है ॥ १-३ ॥

नयनशाणनामाञ्जनम्—

कणा सलवणोषणा सहरसाञ्जना साञ्जना सरित्पतिकफः शिफा सितपुनर्नवासंभवा ।
रजन्यरुणचन्दनं मधुकतुत्थपथ्याः शिला अरिष्टदलशावरस्फटिकशङ्खनाभीन्दवः ॥ १ ॥
इमानि तु विचूर्णयेद्विधिवदासससा शोधयेत्ततोऽपि च विमर्दयेत्समधुनाश्मखण्डेन तत् ।
इदं मुनिभिरीरितं नयनशाणनामाञ्जनं करोति तिमिरक्षयं पटलपुष्पनाशं बलात् ॥ २ ॥

नयन शाण नामक अञ्जन—पीपल, सेंधानमक, मरिच, रसवत, सौवीराञ्जन, समुद्रफेन, श्वेतपुनर्नवा की जड़, हल्दी, रक्तचन्दन, मुलहठी, शुद्ध तूतिया, हरीतकी, शुद्ध मैनशिल, नीम के पत्ते, लोध फिटकिरी, शुद्ध शङ्ख नाभि और कपूर को समान भाग लेकर विधिवत् श्लक्ष्ण चूर्णकर सघन वस्त्र में छान लेवे, फिर इस चूर्ण को लोहे के खरल में रख कर उसमें यथायोग्य मात्रा से मधु मिलाकर तवि के मुद्गर से भलीभाँति मर्दन करे। इस अञ्जन को मुनियों ने नयन शाण नामक अञ्जन कहा है। यह अञ्जन तिमिर रोग को नष्ट करता है, पटल रोग तथा नेत्र पुष्प ( फुली ) रोग को बलपूर्वक अर्थात् अवश्य नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

चन्द्रोदयावर्ति —

शङ्खनाभिर्बिभीतस्य मज्जापथ्या मनःशिला। पिप्पली मरिच कुष्ठं वचा चेति समांशकम्॥
छागक्षीरेण सपिष्य वर्तीं कुर्याद्यवोन्मिताम्। हरेणुमात्रां सघृष्य जलेनाञ्जनमाचरेत्॥ २॥
तिमिरं मांसवृद्धिं च काचं पटलमर्बुदम्। रात्र्यन्धं वार्षिकं पुष्पं वर्तिश्चन्द्रोदया हरेत्॥ ३॥

चन्द्रोदयावर्ति—शुद्ध शङ्खनाभि चूर्ण, बहेड़े की गुठी, हरड़, शुद्ध मैनसिल, पीपल, मरिच, कूठ और बच को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर यव के समान बटी बना लेनी चाहिये। इस बटी को चना अथवा रेणुका के बीज के प्रमाण जल में घिस कर नेत्र में अञ्जन लगाने से तिमिर रोग, मांस वृद्धि, काच, पटल, अर्बुद, रात्र्यन्ध (रतौंधी), एक वर्ष तक का फूला आदि रोग नष्ट होते हैं॥ १-३॥

चन्द्रप्रभावर्ति —

रजनी निम्बपत्राणि पिप्पली मरिचानि च। विडङ्गं भद्रमुस्तं च सप्तमी स्त्वभया स्मृता॥
अजामूत्रेण सपिष्य छायायां शोषयेद्वटीं। वारिणा तिमिरं हन्ति गोमूत्रेण तु पिष्टिकाम्॥२॥
मधुना पटलं हन्ति नारीक्षीरेण पुष्पकम्। एषा चन्द्रप्रभा वर्ति स्वयं रुद्रेण निर्मिता॥३॥

चन्द्रप्रभावर्ति—हल्दी, नीम की पत्तियाँ, पीपल, मरिच, वायविडंग, नागरमोथा और हरड़ समान भाग लेकर बकरी के मूत्र के साथ घोट कर बटी बना कर छाया में सुखा लेवे। इस बटी को जल में घिस कर लगाने से तिमिररोग नष्ट होते हैं, गोमूत्र में घिस कर लगाने से पिष्टिका (पिष्ट रोग) नष्ट होता है, मधु में घिस कर लगाने से पटलरोग नष्ट होता है और स्त्री के दूध में घिस कर लगाने से पुष्पक रोग अर्थात् फूलारोग नष्ट होता है। इसका नाम चन्द्रप्रभा वटी है और इसको स्वयं रुद्रदेव ने बनाया था॥ १-३॥

शशिकलावर्ति —

स्फटिकजलजनाभि पौरतुत्थं समांशं वसनगलितमेतन्निम्बुनीरेण पिष्टम्।
हरति शशिकलेयं वर्तिरभ्यञ्जिताऽक्ष्णोस्तिमिरकुसुमकण्डूस्रावरागार्मपिल्लान्॥१॥

शशिकलावर्ति—फिटकरी, शुद्ध शङ्खनाभि, शुद्ध नली और शुद्ध तूतिया इन सब औषधियों को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्णकर कपड़े में छानकर नीबू के स्वरस में घोट कर बटी बना लेवे। इस बटी का अञ्जन नेत्रों में लगाने से तिमिररोग, फूला, नेत्र कण्डू, स्राव, नेत्रराग (नेत्रों में रक्तपीत आदि वर्ण होना), अर्म तथा पिल्लरोग नष्ट होते हैं॥ १॥

लोचनशुल्घ्नी पोट्टली—

कृत्वाऽजसुराष्ट्रजाहिफेन रुचिरं नागजशाल्वोत्थचूर्णम्।
सुकुमार्युदकेन शुल्वपात्रे मृदितं हरिदृग् जयेत्पटस्थलम्॥ १॥

लोचन शुल्घ्नी पोट्टली—खस, फिटकरी, अफीम, केशर काश्मीरी, सिन्दूर और लोध का चूर्ण समान लेकर चमेली के फूलों के स्वरस के साथ ताम्र पात्र में खरल कर एक कपड़े में रख कर पोटली बना कर नेत्रों पर फेरने से नेत्र की पीड़ा नष्ट होती है॥ १॥

नयनामृतम्—

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम्। सूततुर्यांशकर्पूरमञ्जनं नयनामृतम्॥ १॥
तिमिरं पटलं काचं शुक्रमर्मार्जुनानि च। क्रमात्पथ्याशिनो हन्ति तथाऽन्यानपि दृग्गदान्॥

नयनामृत अञ्जन—शुद्ध पारद तथा शुद्ध शीशा एक २ भाग लेवे और इन दोनों से दुगुना (४ चार भाग) सौवीराञ्जन लेवे और पारद के चतुर्थांश ¼ भाग कपूर लेकर एकत्र खरल कर वस्त्र में छान कर रख लेवे। इस अञ्जन को नेत्र में लगाने से तिमिररोग, पटलरोग, काचरोग, शुक्ररोग (नेत्र शुक्र) अर्मरोग, अर्जुनरोग तथा अन्य नेत्ररोग भी नष्ट हो जाते हैं॥ १-२॥

रोपणी कुसुमिकावर्ति—

तिलपुष्पाण्यशीतिः स्युः षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः। जात्याः कुसुमपञ्चाशन्मरिचानि च षोडश॥
सूक्ष्मपिष्टा जलैर्वर्तिः कृता कुसुमिकाभिधा। तिमिरार्जुनशुक्राणां नाशनी मांसवृद्धिनुत्॥
एतस्याञ्जने मात्रा प्रोक्ता साधहरेणुका॥ २॥

कुसुमिका वर्ति—तिल के पुष्प संख्या में ८०, पीपल के दाने ( पीपल के फल के फोड़ने से जो दाने राई के समान निकलते हैं वे दाने ) संख्या में ६०, चमेली के फूल संख्या में ५० और मरिच के दाने संख्या में १६ लेकर जल के साथ उत्तम रीति से पीस कर वटी बना लेवे। इस वटी का नाम कुसुमिका वटी है। इस वटी के अञ्जन से तिमिर रोग, अर्जुनरोग, नेत्र शुक्र आदि रोग नष्ट होते हैं और नेत्र की मास वृद्धि नष्ट होती है। इसके अञ्जन करने की मात्रा डेढ़ चने अथवा डेढ़ रेणुका के बराबर कही गयी है ॥ १–२ ॥

दार्व्याद्यञ्जनम्—

दार्वीवरामधुकमम्भसि नारिकेले पक्त्वाऽष्टभागपरिशिष्टरसं पुनस्तम् ।

सान्द्रं विपाच्य शशिसैन्धवमाक्षिकाढ्यं युञ्ज्याद्व्रणातितिमिरास्रिषु पित्तजेषु ॥ १ ॥

दार्व्यादि अञ्जन—दारुहल्दी, आँवला, हरड़, बहेड़ा और मुलहठी को समान भाग लेकर सोलहगुने नारियल के जल में क्वाथ की विधि से क्वाथ कर अष्टमांश शेष रहने पर उतार-छान कर पुनः पाककर घना ( गाढ़ा ) करे और गाढ़ा हो जाने पर उसमें कपूर का चूर्ण सेंधानमक का चूर्ण और मधु मिलाकर रख लेवें। इस अञ्जन का प्रयोग पैत्तिक नेत्र व्रण में और पैत्तिक तिमिर रोग में करना चाहिये ॥ १ ॥

शङ्खादिवटी—

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धेन मनःशिला। मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन पिप्पली ॥ १ ॥
सर्वमेकत्र समर्द्य गुटिकां कारयेत्ततः। वारिणा तिमिरं हन्ति चार्बुदं हन्ति मस्तुना ॥
पिच्चटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तथाऽर्जुनम् ॥ २ ॥

शङ्खादिवटी—शुद्ध शङ्ख चार भाग और उसके आधा ( दो भाग ) शुद्ध मैनसिल और मैनसिल के आधा ( एकभाग ) मरिच का चूर्ण और मरिच के चूर्ण के आधा ( ½ भाग ) पीपल का चूर्ण लेकर एकत्र मर्दन कर जल के संयोग से वटी बना लेवे। इस वटी को जल के साथ घिसकर लगाने से तिमिर रोग नष्ट होता है, दही के पानी के साथ घिसकर लगाने से नेत्र का अर्बुद नष्ट होता है, मधु के साथ घिसकर लगाने से नेत्र के पिच्चिट रोग नष्ट होता है और स्त्री के दूध के साथ घिसकर लगाने से नेत्र के अर्जुन रोग नष्ट होता है ॥ १–२ ॥

पुनर्नवाद्यञ्जनम्—

दुग्धेन कण्डूं क्षौद्रेण नेत्रस्रावं च सर्पिषा। पुष्पं तैलेन तिमिरं काञ्जिकेन निशान्धताम् ॥
पुनर्नवा हरत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १ ॥

पुनर्नवाञ्जन—पुनर्नवा के चूर्ण या स्वरस में दूध मिलाकर अञ्जन करने से नेत्र कण्डू नष्ट होता है, मधु मिलाकर अञ्जन करने से नेत्रस्राव नष्ट होता है, घृत मिलाकर अञ्जन करने से फूला नष्ट करता है, तैल मिलाकर अञ्जन करने से तिमिर रोग नष्ट करता है, काँजी मिलाकर अञ्जन करने से रात्र्यन्ध ( रतौंधी ) नष्ट करता है, इस प्रकार से प्रयोग करने से पुनर्नवा इन ५ रोगों को इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूर्य देव अन्धकार को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥

गुडूच्याद्यञ्जनम्—

गुडूचीस्वरसः कर्षं क्षौद्रं स्यान्माषकोन्मितम्। सैन्धवं क्षौद्रतुल्यं स्यात्सर्वमेकत्र मर्दयेत् ॥
अञ्जयेन्नयनं तेन पिल्लार्मतिमिरं जयेत्। काचं कण्डूं लिङ्गनाशं शुक्लकृष्णगतान्गदान् ॥ १ ॥

गुडूच्याद्यञ्जन—गुरुच का स्वरस एक कर्ष ( १ तो० ) मधु एक मासा और मधु के समान ( १ मासा ) सेंधानमक का चूर्ण लेकर एकत्र मर्दन कर नेत्र में अञ्जन करने से पिल्ल रोग, अर्म रोग तथा तिमिर रोग, काच रोग, नेत्र कण्डू रोग लिङ्गनाश रोग एवं शुक्ल मण्डलगत तथा कृष्ण मण्डल गत सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ १–२ ॥

कतकफलादि—

कतकस्य फलं घृष्ट्वा मधुना नेत्रमञ्जयेत्। ईषत्कर्पूरसहितं तत्स्यान्नेत्रप्रसादनम् ॥ १ ॥

कतकफलादि योग—निर्मली के बीज को मधु के साथ घिसकर उसमें किञ्चित् कर्पूर मिलाकर अञ्जन करने से नेत्रों का प्रसादन होता है अर्थात् नेत्र निर्मल हो जाते हैं ॥ १ ॥

अन्यच्च—

कतकस्य फलं शङ्खः सैन्धवं त्र्यूषणं सिता। फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला।
कण्डूपक्लेदार्बुदा हन्ति मलं वा सुसुखावहम् ॥ २ ॥

निर्मली के बीज, शुद्ध शङ्ख, सेंधानमक, सोंठ, मरिच, पीपल, शर्करा समुद्रफेन, रसवत, मधु, वायविडंग और शुद्ध मैनसिल को समान भाग लेकर चूर्ण कर स्त्री के दूध के साथ भली भाँति मर्दन कर नेत्रों में लगाने से तिमिर रोग, पटल रोग, काच रोग, अर्म रोग और नेत्र शुक्र रोग नष्ट होते हैं और नेत्र कण्डू, क्लेद, अर्बुद तथा नेत्र मल नष्ट होते हैं एवं नेत्र को सुख होता है ॥ १-२ ॥

पिप्पल्याद्यञ्जनम्—

पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोध्रकं च ससैन्धवम्। भृङ्गराजरसे पिष्टं गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥
अर्मं सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तथाऽर्जुनम्। अञ्जनं नेत्रजान्रोगानिहन्त्येव न संशयः ॥२॥

पिप्पल्याद्यञ्जन—पीपल, आँवला, हरड़, बहेड़ा, लाख, लोध और सेंधानमक को समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर भांगरे के स्वरस के साथ मर्दन कर (घोटकर) बटी बनाकर अञ्जन करे। इस अञ्जन के प्रयोग से अर्म रोग, तिमिर रोग, काच रोग, नेत्र कण्डू, नेत्रशुक्र तथा अर्जुन रोग नष्ट होते हैं और इससे नेत्र में होनेवाले अन्यान्य रोग अवश्य नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

गुञ्जामूलाञ्जनम्—

गुञ्जामूलं छागमूत्रेण पिष्टं निघृष्टं वा वारिणा भद्रमुस्ता।
आन्ध्यं सद्यस्तैमिरं हन्ति पुंसामत्युद्गाढं नेत्रयोरञ्जनेन ॥ १ ॥

गुञ्जामूलाञ्जन—गुञ्जा (रत्ती) की जड़ को बकरी के मूत्र के साथ पीसकर नेत्र में अञ्जन करे, अथवा नागरमोथे को जल के साथ पीसकर नेत्र में अञ्जन करे तो इन अञ्जनों से आन्ध्यरोग (दिखाई नहीं देना) और तिमिर रोग अत्यन्त प्रगाढ़ (अत्यन्त बढ़े हुए) भी हों तो शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

तुलस्यादि—

तुलस्या बिल्वपत्रस्य रसो ग्राह्यः समांशकः। साम्यं तुल्यं पयो नार्याः क्षिप्त्वा कांस्यपात्रके ॥
नागवल्ल्या द्रवं मर्द्य ताम्रेण प्रहरं पुनः। कज्जलत्वं समुत्पाद्य तेनाञ्जितविलोचनः ॥
सद्यो नेत्ररुजं हन्ति सशूलां पाकसम्भवाम् ॥ २ ॥

तुलस्यादि योग—तुलसी के पत्तों का स्वरस और बेल के पत्तों का स्वरस समान लेकर उसमें दोनों के समान भाग स्त्री का दूध लेवे और इन तीनों औषधियों को कांसे के पात्र में रखकर उसमें पान का रस (एक भाग अर्थात् तुलसी के स्वरस के समान) मिलाकर ताम्रखण्ड (पैसे आदि) से एक पहर तक भलीभाँति मर्दन करे, मर्दन करने पर जब कज्जल के समान हो जावे तब उसका नेत्र में अञ्जन करे तो इस अञ्जन से नेत्र की पीड़ा शीघ्र नष्ट हो जाती है और नेत्र का शूल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है चाहे नेत्र पीड़ा और शूल से पकने के समान क्यों न हो गये हों ॥ १-२ ॥

महावासादि क्वाथ—

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक्।
कलिङ्गदार्वीदहनं सनागरं भूनिम्बधात्री द्वाभया विभीतकम् ॥ १ ॥
तथा यवक्वाथमथाष्टमांशं विबेदिमं पूर्वदिने कषायकम्।
तैमिर्यकण्डूपटलार्बुदं च शुक्रं तथा सव्रणमव्रणं च।
दाहं सरागं सरुजं सपिच्छं हन्यात्समस्तानपि नेत्ररोगान् ॥ २ ॥

महावासादि क्वाथ—अड़ूसा, नागरमोथा, नीम की छाल, परवल के पत्ते, कुटकी, गुरुच, लालचन्दन, कुटज (कोरैया) की छाल, इन्द्रजौ दारुहल्दी, चीते की जड़, सोंठ, चिरायता, आँमला, हरड़, बहेड़ा और जौ समान भाग लेकर क्वाथ की विधि से क्वाथ कर अष्टमांश शेष रहने पर दिन के पूर्व भाग में अर्थात् प्रातःकाल इस कषाय (क्वाथ) को पान करने से तिमिर रोग, नेत्रकण्डू, पटल रोग, नेत्र के अर्बुद, नेत्र शुक्र, सव्रण नेत्र शुक्र अथवा अव्रण नेत्र शुक्र दोनों

में कोई अथवा दोनों, नेत्र का दाह, नेत्र में राग होना ( नेत्र का रक्तादि वर्ण हो जाना ), नेत्र पीड़ा, नेत्र के पिल्ल रोग तथा अन्यान्य नेत्र के समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

त्रिफलाक्वाथ —

अय स्थ त्रिफलाक्वाथ सर्पिषा सह योजितम् । भुक्तोपरि पिबेत्सायं मासेनान्धोऽपि पश्यति ॥

त्रिफला क्वाथ—लोहे के पात्र में विधिपूर्वक बनाया त्रिफला का क्वाथ रख कर उसमें गोघृत का प्रक्षेप देकर सायंकाल भोजन के पश्चात् एक मास तक पान करने से अन्धा मनुष्य भी देखने लगता है अर्थात् इस त्रिफलादि क्वाथ के सेवन से एक मास में नेत्ररोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

चित्रकादिक्वाथ —चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेदम्भः ।
सघृतं निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हन्ति ॥ १ ॥

चित्रकादि क्वाथ—चित्रक की जड़, आँवला, हरड़, बहेरा, परवल के पत्ते और जौ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर उसमें गोघृत का प्रक्षेप देकर रात्रि में पान करने से नेत्रों का हित होता है अर्थात् नेत्र में रोग नहीं होने पाते। विशेषतः तिमिर रोग को यह क्वाथ नष्ट करता है ॥ १ ॥

## अथ चूर्णानि ।

तत्रादौ त्रिफलाचूर्णम्—

त्रिफलात्र्यूषणमायसं च चूर्णं समयष्टीमधुकं त्रिसप्तरात्रम् ।
मधुना सह सर्पिषा दिनान्ते पुरुषो निष्परिहारमाददीत ॥ १ ॥
तिमिरार्बुदरक्तराजिकण्डूव्रणदाध्यामयदाहशूलतोदान् ।
पटलं च सशुक्लकाचपिल्लं शमयत्येव निषेवितः प्रयोगः ॥ २ ॥

त्रिफला चूर्ण—आमला, हरड़, बहेड़ा, लोहभस्म और जेठी मधु के चूर्ण को समान लेकर मधु और गोघृत के अनुपान से दिन के अन्त में अर्थात् सायंकाल २१ दिन तक जो मनुष्य सेवन करता है उसके तिमिर रोग, अर्बुद, नेत्रों के रक्तवर्ण की रेखा, कण्डू, रात्र्यन्ध रोग, दाह, शूल, तोद, पटल, शुक्ल, काच पिल्ल आदि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

न च केवलमेव लोचनानां विहितो रोगनिबर्हणाय योगः ।
वदनश्रवणोर्ध्वजत्रुजानां प्रशमे हेतुरयं महामयानाम् ॥ ३ ॥
गुदजानि भगन्दरप्रमेहान् सकुष्ठानि हलीमकं किलासम् ।
पलितानि विनाशयेत्तथाऽग्निं चिरनष्टं कुरुते रविप्रचण्डम् ॥ ४ ॥
प्रमदाभिरयं जराभिरूढः स्फुटचन्द्राभरणासु यामिनीषु ।
सुरतानि पदे पदे निषेवेत्पुरुषो योगमिमं निषेवमाणः ॥ ५ ॥
स्मृतिविक्रमबुद्धिशक्तियुक्तः शरदां जीवति वै शतं समग्रम् ॥ ६ ॥
मुखेन नीलोत्पलगन्धधारिणा शिरोरुहैरञ्जनमेचकप्रभैः ।
भवेच्च गृध्रस्य समानलोचनस्थिरं नरोऽयं शतवत्तु जीवति ॥ ७ ॥

यह योग केवल नेत्र रोग को ही नष्ट करने वाला नहीं कहा गया है, प्रत्युत इससे दांत, कान और ऊर्ध्वजत्रु के जितने भी महान् रोग हैं सभी नष्ट होते हैं तथा इसके सेवन से अर्श रोग के अङ्कुर, भगन्दर, प्रमेह, कुष्ठ, हलीमक, किलास और पलित आदि रोग नष्ट होते हैं तथा बहुत दिनों की नष्ट हुई अग्नि को भी सूर्य के समान प्रचण्ड (तीव्र) कर देता है वृद्ध पुरुष भी इसको नित्य सेवन करने से शुक्ल पक्ष की रात्रि में स्त्रियों के साथ प्रतिदिन मैथुन कर सकता है अर्थात् यह जरा निवारण योग है और इसके नित्य सेवन करने से स्मृति, पराक्रम, बुद्धि और शक्ति सम्पन्न होकर मनुष्य पूर्ण सौ वर्ष तक जीवित रह सकता है तथा इसके सेवन से मुख में नील कमल के गन्ध के समान सुगन्ध आती है और सिर के केश अंजन के समान कृष्णवर्ण के हो जाते हैं एवं दृष्टि गिद्ध पक्षी की दृष्टि के समान तीव्र हो जाती है ॥ १-७ ॥

लोहचूर्णम्—

मधुकत्रिफलाचूर्णं लोहचूर्णं समं लिहेत् । मधुसर्पियुतं सम्यग्गव्यक्षीरं पिबेदनु ॥ १ ॥

छर्दि सतिमिर शूलमम्लपित्तं ज्वरं क्लमम्। आनाहं मूत्रसङ्गं च शोथं चैव निहन्ति हि ॥ २॥

मधुकादि लोहचूर्ण—मुलहठी, आँवला, हरड़ और बहेड़ा के चूर्ण को समान भाग लेकर सब के समान लोहभस्म मिलाकर (यथाबल प्रमाण से) मधु और घृत के साथ मिलाकर (घोटकर) सेवन करे और गोदुग्ध का अनुपान करे अर्थात् इन ओषधियों को मधु और घृत में मिलाकर चाट कर ऊपर से गोदुग्ध पीवे तो इस योग के सेवन करने से वमन, तिमिर रोग, शूल, अम्लपित्त ज्वर, क्लम (क्लान्ति), आनाह, मूत्रावरोध और शोथ ये सभी रोग नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

शतावर्यादिचूर्णम्—

शतावरी सूर्यसमा प्रदेया एला तथा रावणमूर्धतुल्या।
देयं विडङ्गं वसुभिः समानमृतौ समं चाऽऽमलकास्थिबीजम् ॥ १ ॥
विष्णोर्भुजैस्तुल्यगुणं मरीचं तद्वित्रिभागाधिका प्रदेया।
चूर्णं समध्वाज्यकमर्धकर्षमदयामयानां विनिवारणार्थम् ॥ २ ॥
कण्डूं सधूमं तिमिरं सुघोरमर्माणि काचं पटलं त्रिदोषम्।
ये चापरे रक्तभवा विकारास्तेषामयं चूर्णवरो निहन्ता ॥ ३ ॥

शतावर्यादि चूर्ण—शतावरी का चूर्ण १२ भाग, छोटी इलायची के दानों का चूर्ण दस भाग बायविडंग का चूर्ण ८ भाग, आंवले की गुठली के बीजों का चूर्ण ६ भाग, मरिच का चूर्ण ४ भाग और पीपल का चूर्ण तीन भाग लेकर एकत्र मर्दन कर आधे कर्ष के प्रमाण की मात्रा से मधु और घृत के अनुपान से नत्रकण्डू, धूम के समान दिखाई देना, तिमिररोग, अर्म रोग, काच, पटल और त्रिदोष नष्ट होते हैं तथा अन्य भी जो रक्त के दोष से उत्पन्न हुए रोग हैं उन सबको यह चूर्ण नष्ट करता है ॥ १-३ ॥

द्वितीयं त्रिफलादिचूर्णं वृन्दसेनात्—

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे।
समीरणे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥ १ ॥

त्रिफलादि चूर्ण—आँवला, हरड़ और बहेड़ा का विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर पित्तज तिमिर रोग में गोघृत के साथ, वातज तिमिर रोग में तिल के साथ और कफज तिमिर रोग में मधु के साथ सेवन करने से तीनों प्रकार के तिमिर रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

## अथ घृतानि।

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः। पक्वमेभिर्घृतं सर्वान्शिरोगान्व्यपोहति ॥ १ ॥

विभीतकादि घृत—बहेड़ा, हरड़, आँवला, परवल के पत्ते, नीम की छाल और अरूसा इनके समान मिलित बने कल्क में चौगुना मूर्च्छित गोघृत मिलावे और घृत से चौगुना जल मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से नेत्र के सभी रोग नष्ट होते हैं ॥

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च। वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ २ ॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा। प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ ३ ॥
कल्कः कणासिताद्राक्षात्रिफला नीलमुत्पलम्। मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥
तत्साधु सिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत्। ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्ये पानं च शस्यते ।५॥
यावन्तो नेत्रजा रोगास्तान्सर्वानपकर्षति। सरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते वा विस्तुते तथा ॥ ६ ॥
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे। अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥७॥
नेत्ररोगेषु सर्वेषु दोषत्रयकृतेष्वपि। परं हितमिदं प्रोक्तं त्रिफलाद्यं महाघृतम् ॥ ८ ॥

महात्रिफलादि घृत—त्रिफला का क्वाथ एक प्रस्थ, भांगरे का स्वरस एक प्रस्थ, अरूसे का स्वरस एक प्रस्थ, शतावरी का स्वरस एक प्रस्थ, बकरी का दूध, गुरुच का स्वरस और आवले का स्वरस एक एक प्रस्थ लेकर एक प्रस्थ मूर्च्छित गोघृत के साथ घृत पाक की विधि से पाक करे और इसमें आगे लिखी हुई ओषधियों का कल्क समान मिलित घृत से चतुर्थांश मिलाकर घृत सिद्ध करे अर्थात् उपरोक्त ओषधियों के स्वरसों के पाक होते समय पीपल, शर्करा, दाख, हरड़, बहेड़ा, आंवला, नीलकमल, मुलहठी, क्षीर काकोली, मुलहठी और छोटी कटेरी इन सबको समान लेकर कल्क कर घृत के चतुर्थांश मिलाकर घृत सिद्ध करे, जब भलीभाँति सिद्ध हुआ जान लेवे

तब उतार-छानकर एक उत्तम पात्र में रख लेवे। इस घृत को भोजन के पूर्व ( प्रात ) दोपहर और सायंकाल पान करना उत्तम है। इससे जितने प्रकार के नेत्र रोग हैं सभी नष्ट हो जाते हैं। नेत्र के रक्तनेत्र रोग, रक्तदुष्ट नेत्र रोग, रक्तस्राव युक्त नेत्र राग, नक्ताध्य रोग, तिमिर रोग, कांच रोग, नीलिका रोग, अर्बुद रोग, अभिष्यन्द रोग, कठिन पक्ष्मरोग एवं सभी प्रकार के नेत्र रोगों तथा त्रिदोषज नेत्र रोगों में भी यह त्रिफलादि महाघृत अत्यन्त हितकर है॥ २-८॥

द्वितीय त्रिफलाद्यं घृतम्—

शतमेकं हरीतक्या द्विगुणं च बिभीतकम्। चतुर्गुणं स्वामलकं भृङ्गमार्कवयोः समम्॥ १॥
चतुर्गुणोदकं दत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत्। भागं चतुर्थं संस्थाप्य क्वाथं समवतारयेत्॥ २॥
शर्करा मधुकं द्राक्षा मधुयष्टी निदिग्धिका। काकोली क्षीरकाकोली त्रिफला नागकेशरम्॥
पिप्पली चन्दनं मुस्तं त्रायमाणा सयोत्पलम्। घृतप्रस्थं समं क्षीरं कल्कैरेतैः शनैः पचेत्॥
हन्त्यासतिमिरं काचं नक्ताध्यं शुक्रमेव च। तथा स्रावं च कण्डूं च श्वयथुं च कषायताम्॥
कलुषत्वं च नेत्रस्य विट्वर्त्मपटलान्वितम्। बहुनाऽत्र किमुक्तेन सर्वान्नेत्रामयान्हरेत्॥ ६॥

द्वितीय त्रिफलाद्य घृत—बड़ी हरड़ १००, बहेड़ा २०० और आमला ४०० लेकर इनके छिलके निकाल ले और सबको एकत्र कर चौगुने जल में क्वाथ बनावें, चतुर्थांश शेष रहने पर बासे का तथा भांगरे का स्वरस १-१ प्रस्थ और शक्कर, मुलहठी दाख, बेठीमधु, छोटी कटेरी, काकोली, क्षीर काकोली, आवला, हरड़, बहेड़ा, नागकेशर, पीपल, चन्दन, नागरमोथा, त्रायमाण और नीलकमल प्रत्येक समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर घृत से चतुर्थांश लेकर मिलावे और घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन करने से तिमिर रोग, काच रोग, नक्ताध्य ( रतौंधी ), नेत्रशुक्र, नेत्रस्राव नेत्र कण्डू, नेत्र शोथ, नेत्र का कषाय वर्ण का होना, नेत्र का कलुषित होना, नेत्र मल, वर्त्म और पटल आदि नेत्रों में होनेवाले सभी रोग नष्ट होते हैं॥ १-६॥

यस्य चोपहता दृष्टिः सूर्याग्निभ्यां प्रपश्यतः। तस्मै तत्सेव्यमोक्तं मुनिभिः परमं हितम्॥७॥
मार्जितं दर्पणं यद्वत्परां निर्मलतां व्रजेत्। तद्वदेतेन पीतेन नेत्रं निर्मलतामियात्॥
वारि द्रोणद्वयं चात्र भृङ्गमार्कवयोस्तुले॥ ८॥

जिस मनुष्य की दृष्टि सूर्य और अग्नि को देखने से नष्ट हो गयी हो उसके लिये यह अत्युत्तम हितकर औषध है। जिस प्रकार दर्पण मांज देने पर निर्मल हो जाता है उसी प्रकार इस घृत के सेवन करने पर नेत्र निर्मल हो जाते हैं। इस योग में अडूसा और भांगरे को एक एक तुला अर्थात् एक एक सौ पल लेना चाहिये और दो द्रोण जल में सबको पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छान कर अन्यान्य औषधियों को मिलाकर विधिपूर्वक घृत सिद्ध करना चाहिये॥

लघुत्रिफलाघृतम्—

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं घृतम् शृतम्। तिमिराण्यचिराद्धन्यात्पीतमेतन्निशामुखे॥

लघु त्रिफलादि घृत—त्रिफला को लेकर अठगुन जल के साथ विधिपूर्वक क्वाथ कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छान कर उसमें चतुर्थांश मूर्छित गोदुग्ध और घृत से चतुर्थांश त्रिफला का कल्क मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर सायंकाल में पान करने से तिमिर रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं॥ १॥

भृङ्गराजतैलम्—

भृङ्गरसं तैलात्कुडवं तथा पलं च मधुकस्य। क्षीरप्रस्थविपक्वं गतमपि चक्षुर्निवर्तयते॥१॥

भृंगराज तेल—भांगरे का स्वरस एक प्रस्थ, तिल का तैल एक कुडव और मुलहठी का कल्क एक पल लेकर उसमें गोदुग्ध एक प्रस्थ देकर तैल पाक की विधि से तैल सिद्ध कर सेवन करने से नष्ट हुई दृष्टि भी पुनः हो जाती है॥ १॥

स्नानम्—

स्नानं कृष्णतिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलापहम्। सगुडामलकस्नानं पित्तघ्नं तिमिरापहम्॥ १॥

स्नान प्रयोग—तिल का कल्क शिर में लगा कर स्नान करने से नेत्र में लाभ होता है और

वायुदोष नष्ट होता है तथा मुलहठी और आँवले के कल्क को शिर में लगा कर स्नान करने से पित्तदोष और तिमिर रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पथ्याक्षैः स्नानमिच्छन्ति श्लेष्मघ्नं तिमिरापहम्। आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥

बड़ आमि के स्वरस से शिर धोने से अथवा कल्क शिर में लगा कर स्नान करने से कफ दोष और तिमिर रोग नष्ट होता है। और निरन्तर आँवले का कल्क शिर में लगाकर स्नान करने से नेत्र की दृष्टि और बल में वृद्धि होती है यह अत्यन्त उत्तम योग है ॥ २ ॥

त्रिफलायाः कषायस्तु धावनान्नेत्ररोगजित्। कवलान्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ ३ ॥

त्रिफला के क्वाथ से नेत्र को धोते रहने से नेत्र में होने वाले सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार त्रिफला के क्वाथ का मुख में कवल धारण करने से मुख के रोग और त्रिफला के क्वाथ को पीने से कामला रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते। अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ४ ॥

भोजन के पश्चात् हाथ धोकर हथेली को परस्पर घिसकर नेत्रों पर नित्य फेरने से तिमिर रोग नष्ट होते हैं अथवा तिमिर रोग होते ही नहीं है ॥ ४ ॥

## अथ काचोपक्रमः।

काचे रक्तं जलौकाभिर्हृत्वा पूर्वोक्तमाचरेत्। शाणार्धं मरिचं द्वौ च पिप्पल्यर्णवफेनयोः ॥१॥
शाणार्धं सैन्धवाच्छाणा नव सौवीरकाञ्जनात्। पिष्टं सुसूक्ष्मं चित्रायां चूर्णाञ्जनमिदं शुभम् ॥
कण्डूकाचकफार्तानां मलानां च विशोधनम् ॥ २ ॥

काच रोग का उपक्रम—काच रोग में जोंक के द्वारा रक्तमोक्षण कराकर पूर्व कथित व्रण नाशक चिकित्सा करनी चाहिये। काली मरिच आधा शाण ( २ माशा ), पीपल दो शाण ( ८ माशा ), समुद्रफेन दो शाण ( ८ माशा ) सेंधानमक आधा शाण ( २ माशा ) और शुद्ध सौवीराञ्जन ९ शाण ( ३६ माशा वा ३ तो० ) लेकर विधिपूर्वक चित्रानक्षत्र में चूर्ण कर एकत्र मिला मर्दन कर अञ्जन करने से नेत्रकण्डू, काच रोग, कफज नेत्र रोग और नेत्र के मल नष्ट होते हैं ॥ १-२ ॥

समेषशृङ्ग्यञ्जनभागसमिश्रः शङ्खोऽञ्जनात्काचमलं व्यपोहति ॥ १ ॥

मेषशृङ्ग्याद्यञ्जन—मेढ़ासिंगी शुद्ध सौवीराञ्जन और शुद्ध शंख को समान भाग लेकर विधिवत् श्लक्ष्ण चूर्ण कर नेत्र में अञ्जन करने से नेत्र के काच रोग और नेत्रमल नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

शिलारसैन्धवकासीसत्र्यूषणोपरसाञ्जनैः। सक्षौद्रैः काचशुक्रार्मतिमिरघ्नी रसक्रिया ॥ २ ॥

शिलारसादि रस क्रिया—शुद्ध मैनशिल, सेंधानमक, कसीस, शुद्ध शंख, सोंठ, मरिच, पीपल और रसवत को समान भाग लेकर विधिवत् श्लक्ष्ण चूर्णकर मधु में मिलाकर नेत्रों में अञ्जन लगाने से काच रोग, नेत्र शुक्र, अर्मरोग और तिमिर रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

पित्तविदग्धदृष्टेश्चिकित्सा—

रसाञ्जनं घृतक्षौद्रतालीसस्वर्णगैरिकैः। गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ १ ॥

पित्तविदग्ध दृष्टि चिकित्सा—रसवत, गोघृत, मधु, तालीस पत्र और स्वर्ण गेरु को समभाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर गोबर के रस में खरल कर नेत्र में लगाने से पित्तविदग्ध दृष्टि ( पित्त के कारण पीतवर्ण के देखनेवाले नेत्र रोग ) नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

काश्मरीपुष्पमधुकदार्वीलोध्ररसाञ्जनैः। सक्षौद्रमञ्जनं कुर्यात्पित्तव्याधिप्रशान्तये ॥ २ ॥

काश्मर्यादि अञ्जन—गम्भार के फूल, मुलहठी दारुहल्दी लोध और रसवत को समान भाग लेकर विधिपूर्वक सूक्ष्म चूर्ण कर मधु मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करने से नेत्र में होनेवाली पित्तज व्याधि नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

श्लेष्मविदग्धदृष्टेश्चिकित्सा—

हरेणुमगधाबीजमज्जानं यकृदन्वितम्। शकृद्रसेनाञ्जनं वा श्लेष्मोपहतदृष्टये ॥ १ ॥

श्लेष्मविदग्ध दृष्टि चिकित्सा—रेणुका, पीपल और बिजौरे नीबू के बीज की मज्जा को समान भाग लेकर बकरे के यकृत् के रस अथवा गौ के गोबर के रस के साथ खरल कर नेत्र में अञ्जन करने से कफ के कोप से दूषित दृष्टि या कफ विदग्ध दृष्टि रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

दिवा नक्तान्ध्ययोश्चिकित्सामाह—

नलिनोत्पलकिञ्जल्कगैरिकं सयकृद्रसम् । गुटिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ १ ॥

दिवान्ध और रात्र्यन्ध रोग चिकित्सा—कुमुदिनी और नीलोत्पल (निलोफर) दोनों का केसर और गेरू को समान (एक २ भाग) लेकर विधिवत् चूर्ण कर बकरे के यकृत् के रस के साथ खरल कर बटी बनाकर अञ्जन लगाने से दिवान्ध और रात्र्यन्ध (रतौंधी) नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

नदीजशङ्खत्रिकटून्यथाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे गवां शकृत् ।
सचन्दनेयं गुटिकाऽम्बु पिष्टा प्रणाशयेद्रात्रिदिने न पश्यताम् ॥ २ ॥

नदीजादि गुटिका—सौवीराञ्जन, शुद्ध शङ्ख, सोंठ, मरिच, पीपल, रसवत, शुद्ध मैनशिल हल्दी और दारुहल्दी तथा लालचन्दन को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर गोबर के रस के साथ खरल कर बटी बनाकर अञ्जन लगाने से रात्र्यन्ध (रतौंधी) और दिवान्ध रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

सूर्यादिदर्शनैर्दग्धे तत्र शीतं प्रयोजयेत् । हेमघृष्टं घृतोपेतमञ्जनं चापि शस्यते ॥ ३ ॥

सूर्य आदि तीक्ष्ण वस्तुओं के देखने के कारण जिसकी दृष्टि विदग्ध हो गयी हो उसके लिये शीतोपचार करना चाहिये और सुवर्ण को घिस कर गोघृत में मिलाकर अञ्जन लगाना चाहिये इससे सूर्यादि के देखने से दग्ध हुई दृष्टि ठीक हो जाती है ॥ ३ ॥

केवलरात्र्यन्धचिकित्सा—

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मालती निम्बपल्लवाः । गोशकृद्रससंयुक्ता वटी नक्तान्ध्यनाशनी ॥
एतस्याश्चाञ्जने मात्रा प्रोक्ता सार्धहरेणुका ॥ १ ॥

रात्र्यन्ध रोग चिकित्सा—रसवत, हल्दी, दारुहल्दी, मालती (चमेली के फूल) और नीम के पत्तों को समान भाग पृथक् २ लेकर विधिवत् चूर्ण कर गोबर के रस के साथ खरल कर अञ्जन करने से नक्तान्ध्य (रतौंधी) रोग नष्ट होता है। इसके अञ्जन करने की मात्रा डेढ़ रेणुका या डेढ़ चना कहा गया है अर्थात् डेढ़ चने के बराबर दवा घिस कर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ १ ॥

कणा छागशकृन्मध्ये पक्वा तद्रसपेषिता । अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्यं तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥

कणादि गुटिका—पीपल को बकरी के पुरीष में मिलाकर पकावे और फिर बकरी के पुरीष ही के रस से पीस कर नेत्रों में लगावे तो शीघ्र ही नक्तान्ध्य रोग नष्ट होता है। (कहीं २ 'छ शकृन्मध्ये' के स्थान पर छागयकृन्मध्ये है यहां भी इसी प्रकार मरिच के श्लक्ष्ण चूर्ण को मधु मिलाकर अञ्जन करने से नक्तान्ध्य रोग नष्ट होता है) ॥ २ ॥

करञ्जपद्मकिञ्जल्कचन्दनोत्पलगैरिकैः । गोशकृद्रससंपिष्टैर्नक्तान्ध्ये हितमञ्जनम् ॥ ३ ॥

करञ्जादि बटी—करञ्ज के बीज, कमलकेसर, रक्तचन्दन, नीलकमल और गेरू को सम भाग चूर्णकर गोबर के रस के साथ मर्दन कर नेत्र में अञ्जन लगाने से नक्तान्ध्य रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

रसाञ्जनं शिला दारु जातीपत्ररसो मधु । नक्तान्ध्यं जयेदेतदञ्जनं साधु योजितम् ॥ ४ ॥

रसाञ्जनादि अञ्जन—रसवत, शुद्ध मैनशिल, दारुहल्दी, चमेली के पत्तों का स्वरस और मधु में उपरोक्त समान मिश्रित श्लक्ष्ण चूर्ण लेकर उसमें जातीपत्र स्वरस और मधु मिलाकर मर्दन कर अञ्जन करने से नक्तान्ध्यता नष्ट होती है ॥ ४ ॥

क्षौद्रं च मालतीपत्रं निशाद्वयरसाञ्जनैः । नक्तान्ध्यमञ्जनं हन्यात्कृष्णा वा गोमयान्विता ॥५

मधु, चमेली के पत्तों का स्वरस, हल्दी, दारुहल्दी और रसवत को समान भाग लेकर चूर्ण योग्य औषधियों का श्लक्ष्ण चूर्ण बनाकर स्वरस और मधु के साथ मर्दन कर अञ्जन करने से नक्तान्ध्यरोग नष्ट होता है। अथवा पीपल के श्लक्ष्ण चूर्ण को गोबर के रस के साथ मर्दन कर अञ्जन करने से नक्तान्ध्य नष्ट होता है ॥ ५ ॥

दध्ना घृष्टं मरीचं वा रात्र्यन्ध्याञ्जनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

दधि मरिचयोग—दही के साथ मरिच को घिसकर अञ्जन करने से रात्र्यन्ध नष्ट हो जाता है ॥

नकुलान्ध्यरोगस्य तथ रक्तस्य चिकित्सा—

वचा त्रिवृच्च घनकुष्ठं च भूनिम्बनिम्बौ रजनी सवासा ।

प्रस्थं जलस्य च पिबेदष्टभागं पिबेत्सुजीर्णे नकुलान्ध्यरोगे ॥ १ ॥

नकुलान्ध्य रोग चिकित्सा—वच, निशोथ, लालचन्दन, गुरुच, चिरायता, नीम की छाल, हल्दी और अडूसा को समान भाग लेकर क्वाथ की विधि से जल में पकावे, अष्टमांश शेष रहने पर उतार कर छान लेवे और भोजन के पच जाने पर पीवे तो नकुलान्ध्य रोग नष्ट होता है ॥१॥

## अथ कृष्णगतरोगचिकित्सा।

तत्रादौ सव्रणशुक्रप्रतीकारमाह—

सव्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं पञ्चाङ्गं गुग्गुलुं पचेत्। शिरसश्चाऽऽहरेद्रक्तं जलौकाभिश्च लोचनात् ॥ १ ॥

सव्रण शुक्र का प्रतीकार—सव्रण शुक्र की शान्ति के लिये पञ्चाङ्ग गुग्गुलु बनाकर खिलावे और शिर तथा नेत्रों से जलौका ( जोंक ) द्वारा रक्तमोक्षण करा देवे ॥ १ ॥

ससैन्धवं त्रिवृत्क्वाथे क्षीरत्रिधारा पाचयेद् घृतम्। पीत्वा सर्वेषु शुक्रेषु शीघ्रं कुर्याच्चिराव्यधम् ॥

त्रिवृतादि घृत—निशोथ के विधिवत् बने क्वाथ में चतुर्थांश मूर्च्छित गोदुग्ध और गोघृत से चतुर्थांश सेंधा नमक का कल्क मिलाकर तीन बार पका कर ( सिद्धकर ) इस घृत को पिलाकर सभी नेत्र शुक्रों में शिराव्यध शीघ्र कर देना चाहिये ॥ २ ॥

यष्ट्याद्याश्च्योतनम्—

यष्ट्याह्वदार्व्युत्पलपद्मलाक्षा प्रपौण्डरीकं नलदाम्बुना च।
आश्च्योतनं क्षीरपयसा विपक्वं निहन्ति सासव्रणदाहशुक्रम् ॥ १ ॥

यष्ट्यादि आश्च्योतन—मेठी मधु, दारुहल्दी, नीलकमल, रक्तकमल, लाख, पुण्डरिया काष्ठ और खस का स्वरस और स्त्री का दूध सबको एकत्र पाक कर नेत्र में आश्च्योतन करने से व्रण तथा दाहयुक्त नेत्रशुक्र रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

लामज्जकाद्यञ्जनम्—

लामज्जकोत्पलसितासारिवाचन्दनद्वयैः। कार्षिकैः सारिवाप्रस्थं क्वाथयेत्सलिलाढके ॥ १ ॥
पादशेषं परिस्राव्य पचेदादर्विलेपनात्। भाजने लोहशैले वा प्रातस्तत्सायमञ्जनम् ॥ २ ॥
प्रधानमेतच्छुक्राणां व्रणशुक्रं शमं नयेत्। श्यामामूलकषायं वा मधुना व्रणशुक्रिणाम् ॥ ३ ॥

लामज्जकादि अञ्जन—लामज्जक तृण विशेष अर्थात् पीतवर्ण का खस, नीलकमल, शर्करा, सारिवा, श्वेतचन्दन और रक्तचन्दन एक एक कर्ष और सारिवा एक प्रस्थ लेकर क्वाथ की विधि से जौ कुट कर एक आढक जल के साथ क्वाथ कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छानकर पुनः पाक करे और तब तक पाक करे जब तक कि वह क्वाथ करछुल में लिपटने लग जाय अर्थात् गाढ़ा हो जाय तब उतार लेवे तथा इसे लोहे अथवा पत्थर के पात्र में पाक करे। इस योग का अञ्जन प्रातः और सायंकाल नेत्र में लगावे तो प्रधानतः यह नेत्रशुक्र को और व्रणशुक्र को शमन ( नष्ट ) करता है। अथवा श्यामा ( कृष्णसारिवा ) की जड़ का विधिवत् क्वाथ बनाकर शीतल कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से और नेत्र में आश्च्योतन करने से व्रणशुक्र नष्ट होता है ॥ १-३ ॥

चन्दनादिवर्ति—

चन्दनं गैरिकं लाक्षा मालतीकलिकाचिता। व्रणशुक्रहरीवर्तिः शोणितस्य प्रसादनी ॥ १ ॥

चन्दनादि वर्ति—रक्तचन्दन, गेरुमिट्टी, लाख और चमेली की कली को समान भाग लेकर पीस कर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर नेत्र में अञ्जन लगाने से व्रणशुक्र रोग नष्ट होता है और इसके खाने से रक्त शुद्ध होता है ॥ १ ॥

आश्च्योतनम्—

जात्याः प्रवालं मधुकं च सर्पिर्भृष्टं सुखोष्णाम्बुसुशीतलं च।
आश्च्योतनं शुक्रहरं प्रदिष्टं शुक्रापहं क्षीरपयसा महाहम् ॥ १ ॥

अव्रण शुक्र चिकित्सा—चमेली की कली ( जिसका मुंह खुला नहीं रहे ) और मुलहठी को समान भाग लेकर घृत के साथ भून लेवे और पानी के साथ तपाकर शीतल कर छानकर नेत्रों में आश्च्योतन करे ( चुआवे ) तो नेत्र के शुक्र ( अव्रण शुक्र ) नष्ट होते हैं। इस योग के साथ यदि स्त्री का दूध भी मिलाकर आश्च्योतन किया जाय तो नेत्रशुक्र में विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥

धात्रीफलादिसेचनम्—

धात्रीफल निम्बकपित्थपत्र यष्ट्याह्वलोध्र खदिर तिलाश्च।
क्वाथ सुशीतो नयनेऽभिषिक्त सर्वप्रकार विनिहन्ति शुक्रम् ॥ १ ॥

धात्रीफलादि सेचन—आँवला, नीम की पत्तियाँ, कैंथ की पत्तियाँ, जेठीमधु, लोध खैर और तिल को समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर उससे नेत्रों का सिंचन करने से सभी प्रकार के नेत्र शुक्र नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

वर्तयः—

पलाशपुष्पस्वरसैर्बहुशः परिभाविता। करञ्जबीजवर्तिस्तु हन्ये पुष्प व्यपोहति ॥ १ ॥

वर्तिप्रयोग—करञ्ज के बीज की गुद्दी को पलाश के पुष्प के स्वरस से अनेक बार (७ या ९ बार) भावित कर बत्ती बनाकर नेत्र में अञ्जन करने से दृष्टि पुष्प (नेत्र के फूला) रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

समुद्रफेनसिन्धूत्थशङ्खसद्गाण्डत्वक्कृतै। शिग्रुबीजयुतैर्वर्ति शुक्रादो शस्त्र वल्लिखेत् ॥ २ ॥

समुद्रफेन वर्ति—समुद्रफेन सेंधानमक, शुद्ध शङ्ख, कुक्कुट (मुर्गा) के अण्डों की त्वचा और सहिजन के बीज को समान भाग लेकर विधिवत् पीसकर बत्ती बनाकर नेत्र में अञ्जन करने से यह वर्ति नेत्रशुक्र आदि रोगों को इस प्रकार नष्ट कर देता है जिस प्रकार शस्त्र से लेखन कर दिया जाय (खुरच कर हटा दिया जाय) ॥ २ ॥

चन्द्रोदयावर्ति—

रसाञ्जन सशैलेय कुङ्कुम समनःशिलम्। शङ्खं सश्वेतमरिच शर्करा चेति सप्तमम् ॥ १ ॥
एषा चन्द्रोदया नाम वर्तिर्वैदेहनिर्मिता। हन्ति पित्त च कण्डू च शुक्र सतिमिरार्बुदम् ॥२॥

चन्द्रोदयावर्ति—रसवत, शुद्ध शिलाजीत, काश्मीरी केशर, शुद्ध मैनशिल, शुद्ध शङ्ख, श्वेत मरिच और शक्कर को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर नेत्र में अञ्जन करने से पित्तरोग नेत्रकण्डू, नेत्रशुक, तिमिर और अर्बुद रोग नष्ट होते हैं। इस वर्ति का नाम चन्द्रोदयावर्ति है, इसे विदेह ने बनाया था। (यह योग अत्यन्त लाभदायक है) ॥ १-२ ॥

अञ्जनम्—

वटक्षीरेण संयुक्त सूक्ष्म कर्पूरज रजः। क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति कुसुम तु द्विमासिकम् ॥ १ ॥

अञ्जन—कपूर के चूर्ण में बरगद का दूध मिलाकर भलीभाँति मर्दन कर नेत्र में अञ्जन करने से दो मास का उत्पन्न नेत्र पुष्प (फूला) शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

संघृष्य पिप्पली चूर्ण सफेन कांस्यभोजन। समौद्र सैन्धवोपेतमञ्ज्न शुक्रनाशनम् ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि अञ्जन—पीपल का चूर्ण समुद्रफेन, मधु और सेंधा नमक को समान लेकर कांसे के पात्र में भलीभाँति मर्दन (खरल) कर अञ्जन बनाकर नेत्र में लगाने से नेत्र शुक्र नष्ट होता है ॥

साप्य मधूकसारो वा बीज चाक्षस्य सैन्धवम्। मधुनाऽञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रनाशनाः ॥

शुक्रनाशक चार योग—शुद्ध स्वर्ण माक्षिक, महुए का स्वरस, बहेड़े के बीज की मज्जा और सेंधानमक इनमें से किसी एक के साथ मधु मिलाकर अञ्जन करने से शुक्र नष्ट होते हैं, ये चारो नेत्र शुक्र को नष्ट करते हैं ॥ ३ ॥

कुक्कुटाण्डकपालानि शङ्खः काचोऽथ चन्दनम्। सैन्धवार्धांशसंयुक्तमञ्जनं शुक्रलेखनम् ॥

कुक्कुटाण्डआदि अञ्जन—कुक्कुट के अण्डे का छिलका शुद्ध शङ्ख काच लवण और रक्त चन्दन प्रत्येक एक १ भाग और सेंधानमक आधा भाग लेकर विधिपूर्वक कूट पीसकर अञ्जन बनाकर नेत्र में लगाने से नेत्र शुक्र का लेखन होता है ॥ ४ ॥

लोहादिगुग्गुलु—अयश्च यष्टीत्रिफलाकणानां चूर्णानि तुल्यानि पुरेण नित्यम्।
सर्पिर्मधुभ्यां सह भक्षितानि सर्वाणि शुक्राणि निहन्ति शीघ्रम् ॥ १ ॥

लोहादि गुग्गुलु—लोहभस्म, जेठीमधु, आमला, हरड़, बहेड़ा तथा पीपल को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर सब मिलाकर जितना हो उसके समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर विधिपूर्वक बटी बनाकर मधु घृत के अनुपात से भक्षण करने से सभी प्रकार के नेत्रशुक्र शीघ्र नष्ट होते हैं ॥

पटोलाद्यं घृतम्—

पटोलं कटुकां दार्वीं निम्बवासाफलत्रिकम्। दुरालभां पर्पटकं त्रायन्तीं च पलोन्मितम्॥ १॥
प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि। तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ २॥
कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः। सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोजितम्॥ ३॥
घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम्। कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालापहं परम्॥ ४॥

पटोलादि घृत—पटोल पत्र, कुटकी, दारुहल्दी, नीम की छाल, अडूसा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, जवासा, पित्तपापड़ा और त्रायमाण प्रत्येक द्रव्य एक-एक पल, आँवला एक प्रस्थ लेकर एक द्रोण जल के साथ क्वाथ की विधि से पाक कर चतुर्थांश शेष रहने पर उतार-छानकर उसमें मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ मिलाकर पाक करे और इसमें चिरायता, कोरैया की छाल, नागरमोथा, जेठीमधु, रक्तचन्दन और पीपल का समान मिश्रित कल्क बनाकर घृत के चतुर्थांश मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत मन्द २ अग्नि पर पाक कर सेवन करने से नेत्र शुक्र और नाक, कान, आँख, वर्त्म, त्वचा, मुख आदि के रोग तथा व्रण रोग एवं कामला, ज्वर, विसर्प और गण्डमाला रोग नष्ट होते हैं॥ १-४॥

कृष्णाद्यं तैलम्—

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्मविश्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः।
तैलं व्रणतिमिरशुक्रशिरोऽक्षिवर्त्मपाकात्ययाञ्जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम्॥ १॥

कृष्णादि तैल—पीपल, वायविडंग, जेठीमधु, सेंधानमक और सोंठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना हो उसके चौगुना मूर्च्छित तिल का तैल और तैल से चौगुना बकरी का दूध लेकर एकत्र कर तैल पाक की विधि से तैल पकाकर इसका नस्य लेने से नेत्रव्रण, तिमिररोग, नेत्र शुक्र, शिरोरोग, नेत्ररोग, वर्त्म, पाकात्यय (अक्षिपाकात्यय) आदि रोग नष्ट होते हैं॥ १॥

अक्षिपाकात्ययचिकित्सामाह—

पयोदं पुण्डरीकं च गव्यं क्षीरावशेषितम्। रागाश्रुवेदनां हन्यादक्षिपाकात्ययं तथा॥ १॥

अक्षिपाकात्यय चिकित्सा—चकड़ी के बीज और पुण्डरीक समान लेकर दोनों मिलकर जितना हो उसके सोलहगुना गाय के दूध और दूध से चौगुना जल मिलाकर पाक करे और दूध मात्र शेष रहने पर उतार-छानकर उस दूध को नेत्र में डालने से नेत्र रोग (नेत्र की लाली आदि), अश्रुपात, पीड़ा और अक्षिपाकात्यय रोग नष्ट होते हैं॥ १॥

अजकाचिकित्सामाह—

मूर्धाक्षिकर्णभ्रूगण्डशङ्खवर्माश्रिताऽजका। आयते व्यथते नेत्रं मथ्यमानमिवान्तरा॥ १॥
उष्णमश्रु स्रवत्यक्षि दूषितं क्लिद्यते भृशम्। असाध्यरोगसम्भूतां दृष्टिजां च विवर्जयेत्॥२॥

अजका की साध्यासाध्यता—शिर, नेत्र कान, भ्रूभाग कपोल शंख देश और वर्त्म इन स्थानों में उत्पन्न अजका रोग में नेत्र में पीड़ा होती है और बीच-बीच में नेत्र मथित होता हुआ ज्ञात होता है। नेत्र से उष्ण अश्रु का प्रवाह होता है, नेत्र दूषित रहते हैं और क्लेद युक्त रहते हैं। यह अजका यदि असाध्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई हो और दृष्टि में उत्पन्न हुई हो तो उसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये अर्थात् यह अजका असाध्य है॥ १-२॥

स्वयं प्रवृद्धां कठिनां चिरकालोत्थितामपि। साध्यरोगसमुत्पन्नां कृष्णजां त्वजकां जयेत्॥३॥

अजका यदि स्वयं बढ़े, कठिन हो, बहुत दिनों के भी हो परन्तु साध्य रोगों के कारण उत्पन्न हुई हो तो कृष्णमण्डल की अजका की भी चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् यह अजका साध्य होती है॥ ३॥

अजकायां शिरां मुक्त्वा त्रिवृच्चूर्णैर्विरेचयेत्। घृतं वातहरैः सिद्धमजकायां प्रयोजयेत्॥
सेके पाने तथाऽभ्यङ्गे भोज्ये दृष्टिविदां वरः॥ ४॥

चिकित्सा—अजका में शिरा वेध करे, निशोथ के चूर्ण के योग से विरेचन करावे और वातनाशक औषधियों के योग से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर उससे सिंचन, पान, मर्दन तथा भोजन करावे अर्थात् इस प्रकार घृत के प्रयोग करने से अजका नष्ट हो जाती है॥ ४॥

पक्ववटपत्रपुटके निधाय मासं धवलकर्कटकान् ।
पुटपाकविधिं पक्त्वा तद्रससेको जयेदजकाम् ॥ ५ ॥

वटके पके पत्तों का पुटक अर्थात् बन्द मुंह का दोना बनाकर उसमें श्वेत कर्कटों (केकड़ों) को एक मास तक रखकर पुटपाक की विधि से पाक कर उसका रस निकाल कर उसे आंख में डालने से अजका नष्ट होती है ॥ ५ ॥

गवामस्थिरवचं कांस्ये विनिघृष्य सुखाम्बुना । पूरयेदक्षि तेनाऽऽशु प्रशाम्यत्यजकामयः ॥६॥

गौ की अस्थि के ऊपर के अंश को कांसे के पात्र में सुखोष्ण जल के साथ घिस कर नेत्र में भर देने से शीघ्र अजका शान्त हो जाती है ॥ ६ ॥

अङ्गारपक्वशम्बूकरसेनाऽऽश्च्योतनाञ्जनम् । कर्पूरचूर्णयुक्तेन नाश्यते त्वजकामयः ॥ ७ ॥

निर्धूम अग्नि पर शम्बूक ( घोंघा ) के मांस का पाक कर रस निकाल कर उसमें कर्पूर का श्लक्ष्ण चूर्ण मिलाकर उसको नेत्र में चुआने से और अञ्जन करने से अजका रोग का शमन हो जाता है ॥ ७ ॥

सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमायुतम् । शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ८ ॥

सेंधानमक का चूर्ण, असगन्ध की जड़ का चूर्ण, गोरोचन चूर्ण और लसोड़े की छाल के रस को समान भाग मिलाकर नेत्र में भरने से अजका नष्ट होती है ॥ ८ ॥

शशकादिघृतम्—

शशकस्य कषाये तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् । कल्कं दद्यात्तु सक्षीरं यष्टीकाह्वकर्षसम्मितान् ॥१॥
सारिवा मधुकं लाक्षा चन्दनं नीलमुत्पलम् । बला चातिबला चैव मृणालं पत्रकं तथा ॥२॥
कार्षिकं सविषं लोध्रं जीवनीयगणान्वितम् । घृतमेतत्प्रयोक्तव्यं पाने नस्ये च पूरणे ॥ ३ ॥
अजकामर्जुनं काचं पटलं शुक्रमेव च । तथाऽक्षिरोगान्सकलान्वातपित्तोत्तराञ्जयेत् ॥ ४ ॥

शशकादि घृत—शशक ( खरहे ) के मांस का क्वाथ ( चार प्रस्थ ), मूर्च्छित गोघृत एक प्रस्थ और गोदुग्ध ( एक प्रस्थ ) लेवे और सारिवा, मुलहठी, लाख, रक्तचन्दन, नील कमल, बरियारा, अतिबला ( कंघी ) मृणाल ( कमल नाल ) और तेजपात एक-एक कर्ष लेवे तथा शुद्ध वत्सनाभ विष एक कर्ष, लोध एक कर्ष और जीवनीय गण की ओषधियाँ समान मिलित एक कर्ष लेकर विधिपूर्वक कल्क कर उसमें घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर पान करने से, नस्य लेने से, नेत्र में डालने से अजका, अर्जुन, काच, पटल, नेत्र शुक्र और सम्पूर्ण वात पित्त के कोप से उत्पन्न नेत्र के रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

अथ शुक्लजाः—

प्रस्तार्यर्माथ स्नाय्वर्म तथैवार्माधिमांसकम् । लोहितार्म सशुक्लार्म शुक्लभागानि वेदयेत् ॥
अमवाश्च दधिनिभं नीलं रक्तमथापि वा । धूसरं तनु यच्चाऽऽशु शुक्रवत्समुपाचरेत् ॥ २ ॥

शुक्ल भाग में होने वाले अर्मों के नाम—प्रस्तार्यर्म, स्नाय्वर्म, अधिमांसार्म, लोहितार्म और शुक्लार्म ये शुक्ल भाग में होने वाले अर्म हैं। जो अर्म-दही के समान श्वेतवर्ण के, नीलवर्ण के, रक्तवर्ण के और धूसर ( मटमैला ) तथा पतले होते हैं और जो शीघ्र उत्पन्न होने वाले होते हैं उनकी चिकित्सा नेत्र शुक्र की भाँति करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

कृष्णादिपुटपाकः—

कृष्णालोहरजस्ताम्रशङ्खविद्रुमसिन्धुजैः । समुद्रफेनकासीसस्रोतोजदधिमस्तुभिः ॥
लेखने वा कृते तस्य परं धारणमिष्यते ॥ १ ॥

कृष्णादि पुटपाक—पीपल का चूर्ण, शुद्ध लोह चूर्ण, शुद्ध ताम्र चूर्ण, शुद्ध शङ्ख चूर्ण, शुद्ध मूंगे का चूर्ण, सेंधानमक का चूर्ण, समुद्रफेन चूर्ण, कासीस चूर्ण और सौवीराञ्जन के चूर्ण को समान भाग लेकर दही के मस्तु के साथ विधिपूर्वक घोटकर नेत्र में अञ्जन करने से लेखन और धारण होता है ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिगुटिकाञ्जनम्—

पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोहचूर्णं ससैन्धवम् । भृङ्गराजरसे पिष्टं गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ १ ॥
अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रमथार्जुनम् । अजकां नेत्ररोगांश्च हन्त्याशुप्रियदर्शनः ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि गुटिकाञ्जन—पीपल चूर्ण, दारु, बहेड़ा, आँवला, लाख, शुद्ध लौह चूर्ण और सेंधानमक का चूर्ण कर भांगरे के रस के साथ घोट कर विधिवत् वटी बनाकर नेत्र में अञ्जन लगाने से अर्म, तिमिर, काच, नेत्रकण्डू, नेत्रशुक्र, अर्जुन, अञ्जका तथा अन्यान्य नेत्ररोग को समूल नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

मरिचादिलेप —

**सचूर्ण्य मरिचाक्षे च रजन्या रसमर्दिते। लेपनादर्मणां नाशं करोत्येष प्रयोगराट् ॥ १ ॥**

मरिचादि लेप—मरिच और बहेड़े को समान लेकर चूर्ण कर कच्ची हल्दी के स्वरस के साथ मर्दन कर लेप करने से यह प्रयोगराट् अर्मरोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

पुष्पाक्षादिरसक्रिया—

**पुष्पाक्षताक्ष्यंजसितोदधिफेनशङ्खसिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः।**

**पिष्टैस्तु माक्षिकरसेन रसक्रियेयं हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ १ ॥**

पुष्पाक्षादि रसक्रिया—पुष्पाक्ष ( रसाञ्जन ) अथवा तिल का पुष्प, बहेड़ा, रसवत, शर्करा, समुद्रफेन, शुद्ध शंख, सेंधानमक, गेरू, शुद्ध मैनशिल और मरिच को समान लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु के साथ मर्दन कर नेत्र में लगाने से अर्मरोग, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मरोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

**क्रिया शुक्लामये कार्या पित्ताभिष्यन्दजिच्च या। बलासग्रथपिष्टे तु कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥**

नेत्र के शुक्ल भाग के रोगों में पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् पित्ताभिष्यन्द की जो चिकित्सा है वही नेत्र के शुक्लपटल गत रोगों में करनी चाहिये। बलास और पिष्टरोगों में रक्तमोक्षण कराना चाहिये और कफाभिष्यन्द नाशक सभी उपायों को करना चाहिये। कायफल, सोंठ, मरिच और पीपल के सूक्ष्म चूर्ण, बिजौरा नीबू के स्वरस और रसवत के चूर्ण को समान लेकर एकत्र मर्दन कर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ २ ॥

**कफाभिष्यन्दजित्सर्वं क्रमं कुर्याद्विचक्षणः। अञ्जनं कट्फलव्योषबीजपूररसाञ्जनैः ॥**

**अर्जुने शर्करामस्तुक्षौद्रैराश्च्योतनं हितम् ॥ ३ ॥**

अर्जुन रोग में शर्करा, दही का पानी और मधु को समान लेकर एकत्र कर नेत्र में छोड़ना चाहिये। इससे अर्जुन रोग शमन ( नष्ट ) होता है ॥ ३ ॥

**शङ्खः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा। सितयाऽर्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ ४ ॥**

शङ्खाद्यञ्जन—शुद्ध शङ्ख का चूर्ण और मधु मिलाकर आँख में लगाने से अथवा निर्मली के फल के चूर्ण और सेंधानमक के चूर्ण को समान मिलाकर आँख में लगाने से अथवा शर्करा और समुद्रफेन को समान मिलाकर नेत्र में लगाने से ( अञ्जन करने से ) अर्जुनरोग नष्ट होता है ॥४॥

## अथ वर्त्मपक्ष्मजाः।

**उत्सङ्गिनी बहलकर्दमवर्त्मनी च श्यावं च यच्च पठितं त्विह बद्धवर्त्म।**

**क्लिष्टं च पोथकियुतं खलु वर्त्म यच्च कुम्भीकिनी च सह शर्करया च लेख्याः ॥**

**श्लेष्मोपनाहलगणं च बिसं च भेद्या। ग्रन्थिश्च यः कृमिकृतोऽञ्जननामिका च ॥ १ ॥**

वर्त्मपक्ष्मज रोगों की चिकित्सा—वर्त्मपक्ष्म में होने वाले उत्सङ्गिनी, बहलवर्त्म, कर्दमवर्त्म, श्याववर्त्म, अर्शोवर्त्म, क्लिष्टवर्त्म, पोथकी, कुम्भीकिनी या कुम्भीका और वर्त्मशर्करा नामक सभी रोग लेखन क्रिया के योग्य हैं। अर्थात् इनका लेखन करना चाहिये और कफ के कारण फूले हुए लगण रोग तथा बिसवर्त्म भेद्य ( भेदन क्रिया के योग्य ) हैं अर्थात् इनका भेदन करना चाहिये और कृमि के कारण (कृमिकृत) ग्रन्थि तथा अञ्जननामिका रोगों को भी भेद्य (भेदन) क्रिया के योग्य ही जानना चाहिये अर्थात् इन्हें भी भेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

**स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम्।**

**शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ २ ॥**

अञ्जननामिका चिकित्सा—'अञ्जननामिका' को पहले स्वेदन करे फिर उसका पीड़न करे अर्थात् चारों ओर से दबावे फिर पक्ष्म पर उत्पन्न पिडिकाओं का भेदन करे। फिर भेदन की हुई अञ्जननामिका में शुद्ध मैनसिल, छोटी इलायची, तगर और सेंधानमक को लेकर चूर्ण बनाकर

मधु के साथ मर्दन कर इससे प्रतिसारण करे अर्थात् इस कल्क को भेदित अञ्जननामिका पर अङ्गुलियों द्वारा घर्षण करे ॥ २ ॥

**रसाञ्जनमधुभ्यां वा भित्वा शस्त्रेण वर्त्मवित्। प्रतिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्याद्दुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ॥३॥**

वर्त्मरोगों को जानने वाला चिकित्सक अञ्जननामिका को भेदन कर रसवत और मधु को एकत्र मर्दन कर अङ्गुली के द्वारा प्रतिसारण (घर्षण) करे, अथवा जो प्रतिसार्याञ्जन दीपक की शिखा (ज्योति) पर सेंक कर बनाये गये हों उनसे प्रतिसारण करे ॥ ३ ॥

**स्वेदयेद् घृष्टयाऽङ्गुल्या हरेद्रक्तं जलौकया। करे सङ्घृष्य दुर्धर्षमञ्जयेल्लोचने मुहुः ॥ ४ ॥**

अञ्जननामिका को अङ्गुली से घिस कर सेक करे अर्थात् अङ्गुली घिसने से जो उष्णता उत्पन्न हो उससे (उस उष्ण अङ्गुली से) अञ्जननामिका को सेंके। जलौका (जोंक) के द्वारा रक्तमोक्षण करावे और एलवालुक को हाथ पर घिस कर बारबार अञ्जन करे तो इस प्रयोग को दो बार अथवा तीन बार करने से कण्डू दोष युक्त भी अञ्जननामिका नष्ट हो जाती है ॥ ४ ॥

**द्वित्रिवाराच्छमयति कण्डूदोषान्वितवाञ्जनम्। रसाञ्जनं व्योषयुतं सपिष्टं वटकीकृतम् ॥ ५ ॥**
**कण्डूपाकान्वितं हन्ति नूनमञ्जननामिकाम्।**

रसाञ्जनादि वटी—रसवत, सोंठ, मरिच, पीपल और पिष्टभस्म (सीसा भस्म) को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक वटी बनाकर अञ्जन करे तो इससे कण्डू और पाक से युक्त अञ्जननामिका रोग नष्ट हो जाता है ॥ ५ ॥

**रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ॥ ६ ॥**
**प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगणे इष्यते। निमेषं चाश्मयापि सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ ७ ॥**

गोरोचनादि योग—गोरोचन, यवाक्षार, शुद्ध तूतिया और पीपल इनमें से एक २ द्रव्य के चूर्ण के साथ मधु मिलाकर भिन्न अर्थात् फूटे हुए लगण पर लगाकर प्रतिसारण करने से लगण रोग और निमेष रोग भी नष्ट होता है। इन्हीं ओषधियों के द्वारा विधिपूर्वक घृत सिद्धकर नेत्र में पूरण करना चाहिये ॥ ६-७ ॥

**स्वेदयित्वा बिसग्रन्थि छिद्राण्यस्य निराश्रयेत्। पक्वं भित्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेन प्रपूरयेत् ॥**

बिसग्रन्थि चिकित्सा—प्रथम बिसग्रन्थि रोग को स्वेदन करके इसके छिद्रों को छील देवे और जो पक गये हों उन्हें शस्त्र से भेदन कर उसमें सेंधानमक पीसकर पूरण करे ॥ ८ ॥

*क्लिष्टवर्त्म—*

**भाङ्गर्याक्षवधाः पीष्टा सुरसापत्रवारिणा। छायाशुष्का कृता वर्तिः क्लिष्टवर्त्मनिवारणी ॥१॥**

क्लिष्टवर्त्म चिकित्सा—शुद्ध हरताल, दारुहल्दी और वच को समान भाग लेकर तुलसी के पत्ते के स्वरस के साथ पीसकर अथवा पीसकर विधिपूर्वक बत्ती बनाकर छाया में सुखा लेवे इस वटी के अञ्जन लगाने से क्लिष्टवर्त्म नष्ट होता है ॥ १ ॥

**रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला। समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥ २ ॥**
**एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि। अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ॥ ३ ॥**

रसाञ्जनाद्यञ्जन—रसवत, राल, चमेली के फूल, शुद्ध मैनसिल, समुद्रफेन, सेंधानमक, गेरू और मरिच को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के साथ मिलाकर अञ्जन लगाने से प्रक्लिन्नवर्त्म रोग नष्ट होता है। इस अञ्जन के लगाने से क्लेद और कण्डू भी नष्ट होते हैं और पलकों पर के गिरे हुए बाल उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २-३ ॥

पिल्लम्—पित्तश्लेष्मप्रकोपेण वर्त्मान्तः सम्प्रकुप्यति।
भान्त्याऽतिलोमशं चाऽपि पिच्छिलं पिल्लमेव च ॥ १ ॥

पिल्लरोग के लक्षण—पित्त और कफ के कोप से पक्ष्म (वर्त्म) के भीतर का भाग जब कुपित हो जाता है तब उसको अतिलोमश अथवा कष्टसाध्य पिल्ल रोग कहते हैं ॥ १ ॥

**वर्त्मावलेख्यं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम्। पुनः पुनर्विरेकं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ २ ॥**

पिल्ल रोग चिकित्सा—पिल्लरोग में वर्त्म का बहुत बार अवलेखन करे अर्थात् बहुत बार खुरचे और रक्तमोक्षण करावे तथा रोगी को बार २ विरेचन ओषधियों का सेवन करावे ॥ २ ॥

**पिल्ली स्निग्धो वमेत्पूर्वं क्रियाभ्यश्चाऽऽयसेऽग्नि। शिफासाञ्जनयोगोदि विरेचैर्विरञ्जमम् ॥ ३ ॥**

पिल्लरोग में प्रथम रक्तमोक्षण करावे और स्नेहन देकर वमन करावे पश्चात् शुद्ध मैनसिल, रसवत, सोंठ, मरिच, पीपल और गोपित्त (गोरोचन) समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक वर्ति बनाकर अञ्जन लगावे तो इससे पिल्ल रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

पिल्लघ्नं छागमूत्रेण भावितं देवदारु च। हरितालवचादारुसुरसारसपेषितम् ॥
अभयारससम्पिष्टं तगरं पिल्लनाशनम् ॥ ४ ॥

देवदारु के श्लक्ष्ण चूर्ण को बकरी के मूत्र में भावित कर नेत्र में लगाने से पिल्लरोग नष्ट होते हैं तथा शुद्ध हरताल, वच और दारुहल्दी को समान भाग लेकर तुलसी के पत्ते के स्वरस के साथ पीस कर अथवा घोटकर आँख में लगाने से पिल्लरोग नष्ट होता है। एवं हरड़ के रस के साथ तगर पीसकर आँख में लगाने से पिल्लरोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम्। आरनालेन सङ्घृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम् ॥५॥

गुहा (सिंहपुच्छी या सरिवन) की जड़, सेंधानमक और मरिच को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर तामे के पात्र में काँजी के साथ मर्दन कर अञ्जन करने से पिल्लरोग नष्ट होता है ॥

तुत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः। त्रिंशता काञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥
पिल्लानपिल्लान्कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि। तत्सेकेनोपदेहेन कण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥ ७ ॥

शुद्ध तुतिया एक पल, श्वेत मरिच संख्या में २० और कांजी तीस पल लेकर पीस कर तामे के पात्र में रख देवे। इस योग का अञ्जन लगाने से बहुत वर्षों के पुराना पिल्लरोग भी नष्ट हो जाता है और आँख में डालने और लेप करने से नेत्र के कण्डू और शोथ भी नष्ट होते हैं ॥६-७॥

पक्ष्मरोगयोश्चिकित्सा—

पक्ष्मोपरोधे दहेत्पक्ष्म तप्तलोहशलाकया। पक्ष्मकोपे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसम्भवः ॥ १ ॥

पक्ष्मरोग चिकित्सा—पक्ष्मरोग में लोहे के सलाके को तपाकर नेत्र को बचाते हुए पक्ष्म को दहन करना चाहिये इस क्रिया से लोम कभी नहीं उत्पन्न होते हैं अर्थात् लोम कूप जल जाते हैं जिससे पक्ष्मरोग होने की सम्भावना नहीं रहती है ॥ १ ॥

पुष्पकासीसचूर्णं वा सुरसारसभावितम्। ताम्रे दशाहं तद्योज्यं पक्ष्मशातनलेपनम् ॥ २ ॥

पुष्पकासीस का चूर्ण तुलसी के स्वरस से तामे के पात्र में भावित कर दस दिन तक पड़ा रहने देवे पश्चात् पक्ष्मशातन (नेत्र के पलकों के बाल गिरने के) रोग में इसका लेप करे तो पक्ष्मरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ २ ॥

## अथ सन्धिजाना चिकित्सामाह—

तत्र पूयालसचिकित्सा—

पूयालसे शिरां भित्वा लेपोपनाहकर्मभिः। नेत्रपाकविधिं कुर्यात्परमुक्ताञ्जनं हितम् ॥ १ ॥

पूयालस की चिकित्सा—पूयालस रोग में शिरा का भेदन कर लेप और उपनाह कर्म करना चाहिये तथा नेत्रपाक विधि में कहे हुए अञ्जन को लगाना चाहिये ॥ १ ॥

आर्द्रकस्वरसैर्घृष्टं सिन्धुकासीससम्मितम्। छायाशुष्कां वर्तीं कुर्यात्पूयालसे हितमञ्जनम् ॥२॥

सेंधानमक और कासीस को समान लेकर अदरक के स्वरस में घिस कर वटी बनाकर छाया में सुखाकर पूयालस रोग में अञ्जन लगाना हितकर है ॥ २ ॥

उपनाहालज्योश्चिकित्सा—

हितोपनाहे स्वलजे पिप्पलीमधुसैन्धवैः। विलिखेन्मण्डलाग्रेण छेदयेद्वा समन्ततः ॥ १ ॥

उपनाह और अलजी चिकित्सा—उपनाह और अलजी रोग में पीपल मधु और सेंधानमक के चूर्ण को एकत्र मर्दन कर इससे लेखन करना चाहिये अथवा चारो ओर से मण्डलाग्र शस्त्र से छेदन करना चाहिये ॥ १ ॥

स्रावा—

स्रावेषु त्रिफलाकार्थं यथादोषं प्रयोजयेत्। क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्येच्छिरां तथा ॥

नेत्रस्राव चिकित्सा—नेत्रस्राव रोग में दोषानुसार त्रिफला के क्वाथ में मधु, गोघृत और पीपल के चूर्ण का क्रम से प्रक्षेप मिलाकर पिलाना चाहिये और शिरावेध कराना चाहिये ॥ १ ॥

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजैस्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्तिम्।

तथाञ्जयेद्व्रणमतिप्रवृद्धमदरोहरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ २ ॥

पथ्यादिवर्ति—हरड़, बहेड़ा और आमला के बीज का गूदा क्रम से तीन, दो और एक भाग लेकर ( हरड़ का तीन भाग, बहेड़े का दो भाग और आंवले का एक भाग लेकर ) जल के साथ पीसकर वर्ति बनाकर आँखों में अञ्जन करने से अत्यन्त बढ़े हुए स्रावों को नष्ट करता है और कष्टदायक अन्य भी नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

कार्पासीफलजम्ब्वाम्रजलैर्घृष्टं रसाञ्जनम् । मधुयुक्तं चिरोत्थं च चक्षुःस्रावमपोहति ॥ ३ ॥

कार्पासाद्यञ्जन—कपास के फल, जामुन तथा आम के स्वरस में रसवत को घिसकर उसमें मधु मिलाकर अञ्जन करने से पुराना भी नेत्रस्राव रोग नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥

पर्वणी—

पर्वणीपिटकां संधिभागे छिन्द्यादसंशयम् । हितमाश्च्योतनं तत्र योजयेन्मधुसैन्धवैः ॥ १ ॥

पर्वणी चिकित्सा—पर्वणी पिटिका के संधिभाग में निःशङ्क होकर छेदन करना चाहिये और मधु में सेंधानमक के चूर्ण को मिलाकर नेत्र में चुआना चाहिये इससे पर्वणी रोग नष्ट होता है ॥

जन्तुग्रन्थि—

त्रिफलामृतकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः । रसक्रियां कृमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥१॥

जन्तुग्रन्थि चिकित्सा—आमला, हरड़, बहेड़ा, गुरच, काशीस और सेंधानमक तथा रसवत की रसक्रिया विधिपूर्वक करके ( रसक्रिया की विधि से ) कृमिग्रन्थि में लगावे और जब कृमि ग्रन्थि फूट जावे तब प्रतिसारण किया करे ॥ १ ॥

## अथ समस्तनेत्ररोगचिकित्सामाह ।

तत्र सेकविधि—

सेकस्तु सूक्ष्मधाराभिः सर्वस्मिन्नयने हितः । मीलिताक्षस्य मर्त्यस्य प्रदेयश्चतुरङ्गुलः ॥ १ ॥

सेकविधि—सभी प्रकार के नेत्र रोगों में आँख बन्द कराकर चारअंगुल के फासले से सूक्ष्म धाराओं से सिंचन करना चाहिये इससे विशेष लाभ होता है ॥ १ ॥

सर्वोऽपि स्नेहनो वाते रक्ते पित्ते च रोपणः । लेखनश्च कफे कार्यस्तत्र मात्राऽधुनोच्यते ॥ २ ॥

वात के कोप वाले नेत्र रोग में सभी प्रकार के स्नेहन कर्म करना चाहिये। रक्त और पित्त के कोप वाले नेत्र रोग में रोपण कर्म करना चाहिये और कफ के कोप वाले नेत्र रोग में लेखन कर्म करना चाहिये। इस कार्य को कितने समय तक करना चाहिये इसका प्रमाण आगे कहते हैं ॥ २ ॥

षड्वाक्शतैः स्नेहनेषु चतुर्भिश्चैव रोपणे । वाक्शतैश्च त्रिभिः कार्यः सेको लेखनकर्मणि ॥

स्नेहन कर्म करने में ६०० संख्या गिनने में जितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये। रोपण कर्म करने में ४०० संख्या गिनने में जितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये और लेखन कर्म करने में ३०० संख्या गिनने में जितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये ॥

कार्यस्तु दिवसे सेको रात्रौ चाऽऽत्ययिके गदे ॥ ३ ॥

सेक कर्म दिन में ही करना चाहिये किन्तु रोग की अवस्था के अनुसार ( रोग की वृद्धि जब अत्यधिक हो गयी हो तब ) रात्रि में भी किया जा सकता है ॥ ३ ॥

आश्च्योतनविधिः—

अथाश्च्योतनं कार्यं निशायां न कदाचन । उन्मीलितेऽक्ष्णि दृङ्मध्ये बिन्दुभिर्द्व्यङ्गुलादितम् ॥

आश्च्योतन विधि—आश्च्योतन कर्म रात्रि में कभी नहीं करना चाहिये। आश्च्योतन करने के लिये आँख को खोलकर दृष्टि के बीच में नेत्र से दो अङ्गुल ऊपर की ऊँचाई से औषधि डालनी चाहिये ॥ १ ॥

बिन्दवोऽष्टौ लेखनेषु स्नेहने दश बिन्दवः । रोपणे द्वादश प्रोक्तास्ते शीते कोष्णरूपिणः ॥२॥

आश्च्योतन के औषधियों की मात्रा—लेखन करने वाली औषधियों का आठ बूँद, स्नेहन करने वाली औषधियों की दस बूँद और रोपण करने वाली औषधियों की बारह बूँद नेत्र में डालना चाहिये और शीतल ऋतु में इन ( आश्च्योतन की ) औषधियों को किञ्चित् उष्ण करके आँख में डालना चाहिये ॥ २ ॥

उष्णे च शीतरूपाः स्युः सर्वत्रैवेव निश्चयः। वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम्॥
तिक्तोष्णरूक्षं च कफे क्रमादाश्चोतनं हितम्। आश्चोतनानां सर्वेषां मात्रा स्याद्वाक्शतोन्मिता॥

उष्ण ऋतु में आश्चोतन की ओषधियों को शीतल करके डालना चाहिये। यह शीत उष्ण की क्रिया सब स्थानों के लिये समझनी चाहिये। वातज नेत्र रोग में तिक्त तथा स्निग्ध ओषधियों का आश्चोतन करना चाहिये। पित्तज नेत्र रोग में मधुर तथा शीतल ओषधियों का आश्चोतन करना चाहिये और कफज नेत्र रोग में तिक्त उष्ण तथा रूक्ष ओषधियों का आश्चोतन करना चाहिये। यही क्रम आश्चोतन में लाभ दायक होता है। सभी प्रकार के आश्चोतनों में एक सौ तक गिनने में जितना समय लगे उतना समय लगाना चाहिये॥ १-४॥

निमेषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्योश्छोटिकाऽथ वा। गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः॥५॥

वाक् अथवा संख्या की मात्रा का प्रमाण—मनुष्य जितने समय में आँख खोले और बन्द करे उतने समय का अथवा दो अंगुलियों से एक बार चुटकी बजाने के समय का अथवा गुरु (दीर्घ) अक्षर के उच्चारण में जितना समय लगे उतने समय को वाक् की मात्रा विद्वानों ने कहा है। (इसी के अनुसार सौ तक, अथवा छे सौ, चार सौ, दो सौ आदि ऊपर कही हुई मात्रा वाक् गणना माननी चाहिये। आधुनिक एक सेकण्ड की भी मात्रा उतनी ही होती है॥ ५॥

पिण्डिकाविधि—

पिण्डी कवलिका प्रोक्ता बध्यते पत्रपट्टकैः। नेत्राभिष्यन्दयोग्या सा व्रणेष्वपि निगद्यते॥१॥

पिण्डिका की विधि—पिण्डी का नाम कवलिका भी है। यह वस्त्र के पट्टियों पर बांधा जाता है (यथा काल योग्य लिखित ओषधियों को कपड़े के टुकड़ों पर लपेट कर पोटली बना कर नेत्रादि के रोगों पर फेरा जाता है) और नेत्राभिष्यन्द रोग में उसके अनुकूल ओषधियों से युक्त कर तथा व्रणों में भी उसके अनुकूल ओषधियों से युक्त कर पोटली बनाकर नेत्र तथा व्रणों पर फेरा जाता है॥ १॥

बिडालकविधि—

बिडालको बहिर्लेपो नेत्रे पक्ष्मविवर्जिते। तस्य मात्रा परिज्ञेया मुखलेपविधानवत्॥ १॥

बिडालक की विधि—जो लेप नेत्रों के बाहर (पलकों पर) नेत्र पक्ष्म (पलकों के बालों) को छोड़ कर लगाया जाता है उसे बिडालक कहते हैं। उसकी मात्रा मुख लेप विधि की मात्रा के समान (मुख पर लगाने वाले लेपों के समान) जानना चाहिये॥ १॥

तर्पणविधि—

अथ तर्पणकं वक्ष्मि नेत्रतृप्तिकरं परम्। यच्चक्षुः परिशुष्कं च नेत्रं कुटिलमाविलम्॥ १॥
शीर्णपक्ष्मशिरोत्पातकृच्छ्रोन्मीलनसंयुतम्। तिमिरार्जुनशुक्राद्यैरभिष्यन्दाधिमन्थकैः॥ २॥
शुष्काक्षिपाकशोथाभ्यां युतं वातविपर्ययैः। तच्चेत्रं तर्पणे योज्यं नेत्ररोगविशारदैः॥ ३॥

तर्पण विधि—नेत्रों को अत्यन्त तृप्त करने वाले तर्पण विधि को अब कहते हैं—जो नेत्र शुष्क हो, कुटिल (टेढ़) तथा आविल (मलिन) हो, शीर्णपक्ष्म अर्थात् जिसमें पलकों के बाल गिर गये हों उस रोग में शिरोत्पात में, कृच्छ्रोन्मीलन अर्थात् कष्ट से जिसमें नेत्र खोले और बन्द किये जावें हों उस रोग में तथा तिमिर, अर्जुन, नेत्र शुक्रादि रोगों में, अभिष्यन्द रोग में अधिमन्थ में, शुष्काक्षिपाक, शोथयुक्त अथवा अशोथ युक्त नेत्र पाक रोग में और वातविपर्यय रोग युक्त नेत्रों में, तर्पण क्रिया (चिकित्सा) करनी चाहिये॥ १-३॥

दुर्दिनात्युष्णशीतेषु चिन्तायासभ्रमेषु च। अशान्तोपद्रवे चाक्ष्णि तर्पणं न प्रशस्यते॥ ४॥

तर्पण के अयोग्य काल—दुर्दिन में (मेघवातादि संयुक्त दिन में), अत्यन्त उष्ण दिन में और अत्यन्त शीत दिन में तथा चिन्तायुक्त अवस्था में, आयास (श्रान्त) अवस्था में और भ्रम की अवस्था में एवं आंखों के रोगों के उपद्रवों के शान्त नहीं रहने में तर्पण नहीं करना उचित है॥४॥

वातातपरजोहीने देशे चोत्तानशायिनः। आधारौ माषचूर्णेन क्लिन्नेन परिमण्डलौ॥ ५॥
समौ दृढावसंबाधौ कर्तव्यौ नेत्रकोशयोः। पूरयेद् घृतमण्डेन विलीनेन सुखोदकैः॥ ६॥

तर्पण करने की विधि—वायु, धूप और धूल आदि से रहित स्थान में रोगी उत्तान (ऊपर मुंह करके) सुला कर उड़द के चूर्ण को जल के साथ मर्दन कर नेत्र मण्डल के आधार भूत

अस्थियों के चारों ओर से लगा देवे (जिससे तर्पण करने पर औषध इधर उधर गिर न जावे) वे पिट्ठी के घेरे (दोनों) ऊपर से समान हों और नीचे से दृढ़ हों जिससे द्रव का स्राव न हो सके (छिद्ररहित हों)। पश्चात् नेत्र के उस घेरे को प्रथम तरल घृत से पूर्ण कर जब घृत उसी में विलीन हो जावे तब उसको सुखोष्ण जल से पूर्ण कर देवे॥ ५-६॥

अथ वा शतधौतेन सर्पिषा क्षीरजेन वा। निमग्नान्यक्षिपक्ष्माणि यावत्ता तावदेव हि॥ ७॥
पूरयेन्मीलिते नेत्रे तत उन्मीलयेच्छनैः। धारयेद्वर्त्मरोगेषु वाङ्मात्राणां शतं बुधः॥ ८॥

अथवा सौ वार (जल से) धोया हुआ घृत या दूध से निकला मक्खन को लेकर वहाँ तक भर देवे जहां तक अक्षिपक्ष्म (नेत्र के बाल) डूब जावें और इस पूरण के समय नेत्र को बन्द रखे, पश्चात् धीरे २ नेत्रों को खोल देवे। इस पूरक औषध को वर्त्म रोगों में १०० तक की संख्या गिनने में जितना समय लगे उतने समय तक बुद्धिमान् वैद्य को धारण कराना चाहिये॥ ७-८॥

स्वच्छे कफे सन्धिरोगे मात्रापञ्चशतं हितम्। शुक्ले च षट्शतं कृष्णरोगे सप्तशतं मतम्॥९॥

सन्धिरोगों में कफ के स्वच्छ हो जाने पर (हट जाने पर) ५०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये। शुक्ल पटल गत रोगों में ६०० तक की सख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये। कृष्ण पटल गत रोगों में ७०० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये॥

दृष्टिरोगेष्वष्टशतमधिमन्थे सहस्रकम्। सहस्रं वातरोगेषु धार्यमेवं हि तर्पणम्॥ १०॥

दृष्टि रोगों में ८०० तक की सख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये, अधिमन्थ रोग में १००० तक की सख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक धारण करना चाहिये और वात रोगों में भी १०१० तक की संख्या कहने में जितना समय लगे उतने समय तक तर्पण की औषधि धारण करनी चाहिये॥ १०॥

एकाहं वा त्र्यहं वाऽपि पञ्चाहं चेष्यते परम्। तर्पणातृप्तिलिङ्गानि नेत्रस्यैतानि लक्षयेत्॥

एक दिन अथवा तीन दिन अथवा अधिक से अधिक पांच दिन तक तर्पण करना चाहिये। तर्पण करने से तृप्त हुए नेत्र के ये लक्षण (आगे) कहे जाते हैं॥ ११॥

सुखस्वप्नावबोधत्वं वैशद्यं वर्णपाटवम्। निर्वृतिर्व्याधिविध्वंसः क्रियालाघवमेव च॥ १२॥

तृप्त नेत्र के लक्षण—तर्पण के पश्चात् जब सुखपूर्वक निद्रा आवे, सुखपूर्वक जागरण हो, आँख विशद हों (स्पष्ट हों), नेत्र की वर्ण में पटुता हो (वर्ण उत्तम हो जावे) व्याधि के विध्वंस हो जाने से शान्ति मालूम हो और नेत्र की क्रिया में लघुता (नेत्र के कार्य में स्फूर्ति) मालूम हो तब तर्पण से नेत्र तृप्त हो गये हैं अर्थात् भलीभाँति तर्पण हुआ है ऐसा जानना चाहिये॥१२॥

अथ साश्रु गुरु स्निग्धं नेत्रं स्यादतितर्पितम्। रूक्षमाविलं रूक्षं नेत्रं स्याद्धीनतर्पितम्॥
रूक्षस्निग्धोपचाराभ्यामेतयोः स्यात्प्रतिक्रिया॥ १३॥

अतितर्पणादि के लक्षण—तर्पण के पश्चात् नेत्र यदि आँसुओं से युक्त हों, गुरु हों और स्निग्ध हों तो तर्पण मात्रा अति हुई है यह जानना चाहिये और तर्पण के पश्चात् यदि नेत्र रूक्ष हों, मलिन या अश्रुयुक्त हों एवं अत्यन्त रूक्ष हों तो तर्पण की मात्रा हीन हुई है यह जानना चाहिये। अति तर्पण में रूक्ष उपचारों द्वारा और हीन तर्पण में स्निग्ध उपचारों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये॥ १३॥

अभिष्यन्दचिकित्सामाह-तेषु वातिकाभिष्यन्दचिकित्सा—

एरण्डत्वक्पत्रमूलैः अजक्षीरं पयो हितम्। सुखोष्णं सेचनं नेत्रे वाताभिष्यन्दनाशनम्॥

सेक विधि—एरण्ड की छाल, पत्र और जड़ को बकरी के दूध के साथ पका कर कुछ उष्ण रहते नेत्रों पर सिंचन करने से वातज अभिष्यन्द नष्ट होता है॥ १॥

परिषेके हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम्। रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम्॥
वाताभिष्यन्दशमनं हितं मारुतपर्यये॥ २॥

बकरी के दूध को किंचित् उष्ण करके उसमें सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर नेत्रों में सिंचन करने से अथवा दारुहल्दी से सिद्ध किये बकरी के दूध में सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर नेत्र में सिंचन करने से वातज अभिष्यन्द नष्ट होता है॥ २॥

अथाऽऽश्चोतनम्—

बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः। क्वाथआऽऽश्चोतन कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशन ॥१॥

आश्चोतन विधि—बिल्वादि पञ्चमूल (बेल, गम्भार, गनियार, सोनापाठा और पाढ़र की छाल), बड़ी कटेरी, एरण्ड मूल और सहिजन की छाल को समान भाग लेकर क्वाथ की विधि से सिद्ध कर कुछोष्ण रहते ही नेत्रों में सिंचन करने से वाताभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

अम्बुपिष्टैर्निम्बपत्रैस्त्वच लोध्रस्य लेपयेत्। प्रताप्य वह्निना पिष्ट्वा तद्रसो नेत्रपूरणात् ॥

वातोत्थं रक्तपित्तोत्थमभिष्यन्दं विनाशयेत् ॥ २ ॥

नीम के पत्ते और लोध की छाल को जल के साथ पीसकर आग पर गरम करे पुन पीसकर निचोड़ कर आँखों में डालने से वातज अभिष्यन्द नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पिण्डिका—वाताभिष्यन्दशान्त्यर्थं स्निग्धोष्णा पिण्डिका भवेत्।

एरण्डपत्रमूलत्वङ्निर्मिता वातनाशिनी ॥ १ ॥

पिण्डक विधि—वाताभिष्यन्द की शान्ति के लिये स्निग्ध तथा उष्ण पिण्डिका बनाकर व्यवहार करना चाहिये। एरण्ड के पत्ते, मूल और त्वचा को लेकर कूटपीस कर विधिपूर्वक पिण्डी बना कर स्निग्ध तथा उष्ण कर (घृत मिलाकर उष्ण कर) नेत्रों पर फेरने से लाभ होता है ॥ १ ॥

अञ्जनम्—

हरिद्रा मधुकं पथ्या देवदारु च पेषयेत्। आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम् ॥ १ ॥

अञ्जन—हल्दी, मुलहठी, हरड़ और देवदारु एक साथ घोटकर विधिवत् अञ्जन बनाकर नेत्रों में अंजन करने से अभिष्यन्द रोग में उत्तम लाभ करता है ॥ १ ॥

पित्ताभिष्यन्दचिकित्सा, सेक —

चन्दनारिष्टपत्राणि यष्टीदार्व्यौ ससैन्धवे। पिष्ट्वाऽम्भसा भवेत्सेकः पित्ते क्षौद्रसमन्वितः ॥१॥

सेक विधि—रक्तचन्दन, नीम के पत्ते, जेठीमधु, दारुहल्दी और सेंधानमक को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर मधु मिलाकर नेत्रों पर सिंचन करने से पित्ताभिष्यन्द नष्ट होता है ॥

आश्चोतनम्—

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं स्वेद्योऽग्निना चूर्णमथापि कल्कम्।

आश्चोतनं मानुषदुग्धमिश्रं पित्तास्रवातापहमग्र्यमुक्तम् ॥ १ ॥

आश्चोतन—नीम के पत्तों को पीसकर लोध पर लेप कर अग्नि पर स्वेदित कर रस निकाल कर वस्त्र में छानकर नेत्र में चुआने से अथवा इन उपरोक्त ओषधियों का विधिवत् चूर्ण बनाकर अथवा कल्क बनाकर स्त्री के दूध में मिलाकर वस्त्र में छानकर नेत्र में चुआने से पित्तज, रक्तज और वातज अभिष्यन्द रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः। प्रातराश्चोतनं पथ्यं दाहशूलाक्षिरोगजित् ॥ २ ॥

द्राक्षा, मुलहठी, मजीठ और जीवनीय गण की ओषधियों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक दूध में पकाकर छान कर उस दूध को प्रातःकाल आँख में चुआना लाभदायक है। इससे नेत्र के दाह, शूल और राग अर्थात् लालिमा आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पिण्डिका—पित्ताभिष्यन्दनाशाय धात्रीपिण्डी सुखावहा।

महानिम्बदलोद्भूता पिण्डिका पित्तनाशनी ॥ १ ॥

पिण्डिका प्रयोग—पित्ताभिष्यन्द रोग में आँवले की विधिपूर्वक पिण्डिका बनाकर नेत्र पर फेरना हितकर है और महानिम्ब (बकायन) के पत्तों की विधि पूर्वक बनाई हुई पिण्डिका नेत्रों पर फेरने से पित्त को नष्ट करती है ॥ १ ॥

बिडालक —

पैत्तिके चन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिर्बिडालकः। कार्यः सपद्मयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा ॥ १ ॥

बिडालक प्रयोग—पित्ताभिष्यन्द रोग में लालचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ से तथा कमल, जेठी मधु जटामांसी तथा दारुहल्दी से बिडालक प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

चन्दनं मधुकं लोध्रं जातीपुष्पाणि गैरिकम्। प्रलेपो दाहरोगघ्नस्तोदाभिष्यन्दनाशनः ॥ २ ॥

लालचन्दन, मुलहठी, लोध, चमेली के फूल और गेरू को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीस कर लेप करे तो दाहरोग नष्ट होता है और तोद ( सुई चुभाने के समान पीड़ा ) तथा अभिष्यन्द को नष्ट करता है ॥ २ ॥

श्लैष्मिकाभिष्यन्दचिकित्सामाह—

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तादिभोजनम्। तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैश्चैवोपनाहनम्॥
रूक्षतीक्ष्णविरेकैश्च मलं सम्यग्विनिर्हरेत्॥ १ ॥

कफज अभिष्यन्द चिकित्सा—कफज अभिष्यन्द में लङ्घन नस्य कर्म तिक्तरस युक्त भोजन, और तीक्ष्ण ओषधियों से प्रधमन नस्य देना चाहिये तथा तीक्ष्ण ओषधियों द्वारा उपनाह करना चाहिये एवं रूक्ष तथा तीक्ष्ण विरेचक ओषधियों से विरेचन देकर मल को भलीभाँति बाहर निकाल देना चाहिये ॥ १ ॥

सेक—

निम्बार्कपत्रसंपक्वं लोध्रं भागचतुष्टयम्। धूपं सर्पिःपयोभागौ कफे सेकः सुखाम्बुना॥ १ ॥

सेक प्रयोग—नीम तथा मदार के पत्तों द्वारा आवेष्टित कर पकाया हुआ लोध ( पुटपक्व लोध ) चार भाग घृत एक भाग और दूध ( बकरी का ) एक भाग एकत्र मिलाकर थोड़े उष्ण जल में मिलाकर सेक करने से अथवा इन ओषधियों का धूप देने से कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥१॥

आश्च्योतनम्—ससैन्धवं लोध्रमथाऽऽज्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम्।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्कण्डूं च दाहं च रुजां च हन्यात्॥ १ ॥

आश्च्योतन प्रयोग—सैंधानमक के सहित लोध को घृत के साथ भून लेवे पश्चात् सौवीर (कांजी) के साथ उसे पीस कर श्वेत वस्त्र में रख कर नेत्रों में आश्च्योतन करे इससे नेत्र के कण्डू दाह तथा पीड़ा आदि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

पिण्डिका—शिग्रुपत्रकृता पिण्डी श्लेष्माभिष्यन्दहारिणी।
शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डी सुखोष्णा स्वल्पसैन्धवा॥
धार्या चक्षुषि संयोगाच्छोथकण्डूव्यथापहा॥ १ ॥

पिण्डिका प्रयोग—सहिजन के पत्तों को पीस कर विधिपूर्वक पिण्डी बनाकर नेत्रों पर धारण करने से ( फेरने से ) कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है और सोंठ, नीम के पत्ते और सैंधानमक की विधिपूर्वक बनाई हुई पिण्डी थोड़ा सा उष्ण ( सुखोष्ण ) करके नेत्रों पर धारण करने या फेरने से नेत्र के शोथ, कण्डू और व्यथा ( पीड़ा ) नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

बिडालक—

रसाञ्जनेन वा लेपः पथ्याविश्वदलैरपि। वचाहरिद्राविश्वैर्वा तथा नागरगैरिकैः॥ १ ॥

बिडालक प्रयोग—रसवत को पीस कर नेत्रों पर लेप करे अथवा हर्र और आदक के पत्तों को या सोंठ और तेजपात को पीस कर लेप करे अथवा वच, हलदी और सोंठ को पीस कर लेप करे अथवा सोंठ और गेरू को पीस कर लेप करे तो कफाभिष्यन्द रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

स्वेदनम्—फणिज्जकास्फोतकबिल्वपत्रपत्तूरभङ्गार्जुनपत्रयोगैः।
स्वेदं विदध्यादथ वा प्रलेपं सलोध्रशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः॥ १ ॥

स्वेदन प्रयोग—फणिज्जक ( गन्ध तुलसी ) अपराजिता, बेल, लाल धतूरा, भांग और अर्जुन के पत्तों को एकत्र कर इनका स्वेद देने से अथवा लोध, सोंठ, देवदारु और कूठ को समान भाग लेकर पीस कर नेत्रों पर लेप करने से कफाभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

सामान्योपचार—

घर्षकल्कः पारिजातस्य तैलसैन्धवकाञ्जिकम्। कफजाभिष्यन्दशूलघ्नं सद्यो कुलिशो यथा॥ १ ॥

सामान्य उपचार—पारिजात वृक्ष की छाल तेल, सैंधानमक और कांजी को एकत्र कांजी से पीस कर उसमें तेल और सैंधानमक का चूर्ण मिलाकर नेत्र पर लगाने से कफज नेत्र शूल इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार वज्र या बिजली से वृक्ष नष्ट होता है ॥ १ ॥

सौवीरं सैन्धवं तैलं मूर्वामूलं तथैव च। कांस्यपात्रे विघृष्टं स्यादक्ष्णोः शूलनिवारणम्॥ १ ॥

सौवीर, कांजी, सैंधानमक, तेल और मूर्वा की जड़ को कांसे के पात्र में घिस कर नेत्र में अञ्जन करने से नेत्र का शूल नष्ट होता है ॥ १ ॥

सलवणपटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे निहितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ।
सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥ ३ ॥

सेंधानमक, कड़वा तेल और काञ्जी को कांसे के पात्र में रखकर पत्थर से पिस कर गोबर के कण्डे की अग्नि पर तपाकर इसका धूंआ देने से नेत्रों के वात-कफ प्रकोप नष्ट होता है और इस उपरोक्त योग को बकरी के दूध में मिलाकर नेत्रों पर सिंचन करने से नेत्रशूल, स्राव, शोथ और नेत्र की लाली आदि नष्ट होती है ॥ ३ ॥

स्यन्दाधिमन्थे क्रममाचरेच्च सर्वेषु चैतेषु सदा प्रशस्तम् ॥ ४ ॥

अभिष्यन्द रोग और अधिमन्थ रोग में ये सभी पूर्व कथित उपचार क्रम से यथा अवसर करना चाहिये। अन्य नेत्र रोगों में भी पूर्वोक्त क्रम से ही चिकित्सा प्रशस्त है ॥ ४ ॥

रक्तजाभिष्यन्दचिकित्सामाह, सेकः—

त्रिफलालोध्रयष्टीभिः शर्करामद्रमुस्तकैः। पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥१॥

रक्ताभिष्यन्द में सेक—हरड़, बहेड़ा, आँवला, लोध, जेठीमधु, शर्करा और नागरमोथा को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीस कर नेत्र में सिंचन करने से रक्ताभिष्यन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

आश्चोतनम्—

स्त्रीस्तन्याश्चोतनं नेत्रे रक्तपित्तानिलार्तिजित्। क्षीरसर्पिघृतं वाऽपि रक्तपित्तरुजं जयेत् ॥ १ ॥

आश्चोतन—स्त्री के दूध का नेत्र में आश्चोतन करने से रक्त, पित्त और वात से उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट हो जाते हैं और दूध तथा घी मिलाकर नेत्र में लगाने से अथवा घी को ही केवल नेत्र में लगाने से रक्त और पित्त से उत्पन्न नेत्र के रोग नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लोध्रचूर्णं घृते घृष्टं रुजमाश्चोतनैर्हरेत्। शर्करात्रिफलाचूर्णमिदमाश्चोतनं परम् ॥ २ ॥

लोध के चूर्ण को घृत के साथ मर्दन कर नेत्र में आश्चोतन करने से नेत्र की पीड़ा नष्ट होती है और शर्करा तथा समान मिश्रित त्रिफला के चूर्ण को जल में मर्दित कर नेत्र में आश्चोतन करना नेत्र के लिये अत्यन्त लाभदायक है ॥ २ ॥

अञ्जनम्—

श्रीपर्णीपाटलाधात्रीधातकीशिरवकार्जुनात्। पुष्पाण्यथ बृहत्याश्च बिम्बी लोध्रं च तुल्यशः ॥
मञ्जिष्ठं चापि मधुना पिष्ट्वाऽपीक्षुरसेन वा। रुधिरस्यन्दशान्त्यर्थमेतदञ्जनमिष्यते ॥ २ ॥

अञ्जन—गम्भार, पाढ़र, आँवला, धाय के फूल, लोध, अर्जुन की छाल बड़ी कटेरी का फूल, बिम्बी फल लोध और मजीठ को समान भाग लेकर चूर्ण कर मधु अथवा ईख के स्वरस में मिला कर नेत्र में अञ्जन लगाने से रक्तजाभिष्यन्द रोग नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

वासादिक्वाथ—

आटरूषामयानिम्बधात्रीमुस्तकमूलकैः। रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥ १ ॥

वासादि क्वाथ—अरूसा, हरड़, नीम की छाल, आँवला और नागरमोथा की जड़ को समान भाग लेकर क्वाथ की विधि से क्वाथ बनाकर पान करने से तथा नेत्र में आश्चोतन करने से रक्तस्राव तथा कफदोष नष्ट होता है। नेत्रों के लिये यह अधिक हितकर है ॥ १ ॥

अधिमन्थान्यतोवातयोश्चिकित्सा—

अधिमन्थेषु सर्वेषु ललाटे व्यधयेच्छिराम्। अशान्ते सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ १ ॥

अधिमन्थादि चिकित्सा—सभी प्रकार के अधिमन्थ रोग में ललाट पर की शिरा का वेध छेदन करना चाहिये और यदि अधिमन्थ रोग किसी प्रकार शान्त नहीं हो तो भ्रूभाग के ऊपर दाह करना (जलाना या दागदेना) चाहिये ॥ १ ॥

अभिष्यन्देषु याः प्रोक्ताश्चतुर्ष्वपि प्रतिक्रिया। ता सर्वा अधिमन्थेषु प्रयोज्याश्च भिषग्वरैः ॥

चारो प्रकार के अभिष्यन्दों में कही हुई चिकित्सा जो है वह सभी वैद्य अधिमन्थ रोगों में व्यवहृत करे अर्थात् चारो अभिष्यन्द की सभी चिकित्सा चारो अधिमन्थ में लाभ करती हैं—वही करनी चाहिये ॥ २ ॥

सर्व एव विधिः सर्वमन्यादिष्वपि चेष्यते। तथा चाप्यन्यतो वाते सामान्यो वक्ष्यते विधिः ॥

सब प्रकार की चिकित्सा ( अभिष्यन्दों के समान ही ) सब प्रकार के अधिमन्थों में भी कह चुके हैं और अन्यतो वात में भी सामान्य विधि कहते हैं ॥ ३ ॥

यष्टीं गुडूचीं त्रिफलां सदार्वीमभयामये सर्वभवे पिबेद्वा ।
आश्च्योतनं सान्द्ररसेन दार्व्या शस्तं सदा क्षौद्रयुतं नराणाम् ॥ ४ ॥

यष्ट्यादि क्वाथ—जेठीमधु, गुरुच, हरड़, बहेड़ा, आँवला और दारुहल्दी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर सब प्रकार के नेत्र रोगों में पिलाना चाहिये और दारुहल्दी के गाढ़े स्वरस में मधु मिलाकर नेत्र में निरन्तर आश्च्योतन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोगों में लाभ होता है ॥ ४ ॥

गुडूचीत्रिफलाक्वाथो मधुना सह योजितः । पीतः सर्वाक्षिरोगघ्नः कृष्णाचूर्णावचूर्णितः ॥ ५ ॥

गुडूची त्रिफलादि क्वाथ—गुरुच, हरड़, बहेड़ा और आँवला को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर उसमें मधु और पीपल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से सब प्रकार का नेत्र रोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वदार्वीलोध्रैः सचन्दनैः । एरण्डाम्बुयुतैः सेकः सर्वनेत्ररुजापहः ॥ ६ ॥

सेक विधि—पुण्डरीक, जेठीमधु, दारुहल्दी, लोध, लालचन्दन, एरण्डमूल और सुगन्धबाला को समान भाग लेकर क्वाथ की विधि से क्वाथ कर नेत्रों पर सिञ्चन करने से सभी प्रकार के नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥

श्वेतलोध्रं घृते भृष्टं चूर्णितं ताप्यतुत्थकम् । कृष्णाम्बुना विमृदितं सेकः शूलहरः परः ॥ ७ ॥

श्वेत घृत भूना हुआ लोध शुद्ध स्वर्णमाक्षिक और शुद्ध तूतिया के चूर्ण प्रत्येक समान भाग को पीपल के स्वरस अथवा क्वाथ के साथ भलीभाँति मर्दन कर नेत्रों पर सिञ्चन करने से नेत्रशूल में परम लाभदायक होता है ॥ ७ ॥

यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदार्वीतार्क्ष्यैः समांशकैः । जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्रामयापहः ॥ ८ ॥

यष्ट्यादि लेप—जेठीमधु, गेरू, सेंधानमक, दारुहल्दी और रसवत को समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर नेत्र के बाहर बाहर लेप करने से सभी प्रकार के नेत्ररोग नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

दग्ध्वा ससैन्धवं लोध्रं मधूच्छिष्टयुते घृते । पिष्टमञ्जनलेपाभ्यां सद्यो नेत्ररुजापहम् ॥ ९ ॥

सैन्धव लोध्रादि लेपाञ्जन—सेंधानमक के सहित लोध को मोम युक्त घी में जला देवे, पश्चात् उसे पीसकर नेत्रों पर लेप और अञ्जन करने से नेत्र के सभी रोग शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

लोहस्य पात्रे सघृष्टो रसो निम्बुफलोद्भवः । किञ्चिद्घनो बहिर्लेपान्नेत्रव्याधिं व्यपोहति ॥ १० ॥

निम्बुरस योग—लोहे के पात्र में नीबू के रस को घिसे, जब घिसते २ कुछ गाढ़ा हो जावे तब उसे नेत्र के बाहर २ लेप करने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

निम्बस्य लोध्रोदुम्बरवल्कलस्य एरण्डयष्टीमधुचन्दनस्य ।
पिण्डो विधेयो नयनप्रकोपे कफेन पित्तेन समीरणेन ॥ ११ ॥

निम्बादि पिण्ड—नीम की छाल, गूलर की छाल, एरण्डमूल, जेठीमधु और लालचन्दन को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक पिण्डी बनाकर नेत्र रोगों में प्रयोग करने से कफज, पित्तज और वातज नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

शोथपाकयोश्चिकित्सा—

जलौकापातनं स्नेह नेत्रपाके विरेचनम् । शिराव्यधं वा कुर्वीत सेकलेपौ च शुक्रवत् ॥ १ ॥

नेत्र के शोथ और पाक चिकित्सा—नेत्र पाक रोग में जोंक लगवाना, नेत्र विरेचन देना, शिराव्यध करना, सिञ्चन करना और लेप आदि करना ये सभी कर्म ( चिकित्सा ) नेत्र शुक्र ( फूला ) रोग के भाँति ही करना चाहिये ॥ १ ॥

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः । क्वाथो गुग्गुलुसंयुक्तः शोथशूलाक्षिरोगनुत् ॥ २ ॥

बहेड़ा, हरड़ आँवला, पटोलपत्र, नीम के पत्र और अडूसा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें शुद्ध गुग्गुल का प्रक्षेप देकर पान करने से शोथ शूल युक्त नेत्र रोग नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

वातविपर्ययशुष्काक्षिपाकयोश्चिकित्सा—

वाताभिष्यन्दवच्चात्र वातमारुतपर्यये। अनेनैव विधानेन भिषक्चैवाभिसाधयेत् ॥ १ ॥

वातविपर्यय और शुष्काक्षिपाक चिकित्सा—वाताभिष्यन्द रोग के भांति ही वातज नेत्र रोग तथा वात विपर्यय रोग की चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

पूर्वं सत्र हितं सर्पिः क्षीरं वाऽप्यथ भोजनम्। परिषेको हितं नेत्रे पयः कोष्णं ससैन्धवम् ॥

पहले इस वात विपर्यय रोग में घृत अथवा दूध का भोजन करावे पश्चात् दूध को कुछ उष्ण कर उसमें सेंधानमक घोलकर नेत्रों पर सिञ्चन करे इससे वात विपर्यय में लाभ होता है ॥ २ ॥

रजनीदारुसिद्धं वा सैन्धवेन समन्वितम्। वाताभिष्यन्दशमनं हितं मारुतपर्यये ॥ ३ ॥

शुष्काक्षिपाके च सदा दुग्ध सेचनकं हितम्।

अथवा हल्दी और दारुहल्दी मिलाकर पकाये हुए दूध में सेंधानमक मिलाकर नेत्रों पर सिञ्चन करने से वाताभिष्यन्द नष्ट होता है और वातविपर्यय तथा शुष्काक्षिपाक रोग में भी इस योग के सिञ्चन से सदा लाभ होता है ॥ ३ ॥

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसे घृतम् ॥ ४ ॥

स्तन्योदकाभ्यां कुर्वीत शुष्कपाके तदञ्जनम्। शुष्काक्षिपाके हविषः पानमक्ष्णोश्च तर्पणम् ॥

घृतेन जीवनीयेन नस्यं तैलेन योजयेत् ॥ ५ ॥

सेंधानमक, देवदारु और सोंठ का समान मिलित कल्क और कल्क के चौगुना बिजौरे नीबू का रस और गोघृत लेवे और घृत से चौगुना स्त्री का दूध और जल मिलाकर लेवे और इन सब द्रव्यों से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर अञ्जन करने से शुष्काक्षिपाक रोग में लाभ होता है। शुष्काक्षिपाक रोग में घृत पान करना तथा जीवनीय गण की औषधियों से सिद्ध घृत से नेत्रों में तर्पण करना एवं औषध सिद्ध तैल का नस्य लेना लाभदायक होता है ॥ ४-५ ॥

अम्लाध्युषितमाह—

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम्। अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्यात्लेपान्सुशीतलान् ॥

अम्लाध्युषित चिकित्सा—तिक्त द्रव्यों के योग से सिद्ध घृत को पान करने से और अनेक बार या बार २ नेत्र विरेचन देने से तथा बनाये हुए शीतल लेपों के लगाने से अम्लाध्युषित रोग शान्त होता है ॥ १ ॥

त्रिफलाकं त्रिफलां सर्पिर्जीर्णं वा केवलं पिबेत्। शिराव्यध विना कार्यं पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥

बेल, हरड़, बहेड़ा और आंमला के योग से विधिपूर्वक घृत सिद्ध कर अथवा केवल पुराना घृत ही पिलाने से और शिराव्यध के अतिरिक्त शेष सभी चिकित्सा पित्ताभिष्यन्द की भांति ही अम्लाध्युषित रोग में करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

शिरोत्पातशिराहर्षयोश्चिकित्सा—

शिरोत्पात शिराहर्षमन्यांश्चास्रमयान्गदान्। स्निग्धस्य कोष्णेनाऽऽज्येन शिरावेधैः शमं नयेत् ॥

शिरोत्पात और शिराहर्ष तथा अन्य रक्तज रोगों में कुछ २ उष्ण किया घृत पिलाकर रोगी को स्निग्ध कर शिरावेध करके रोग को शमन करे अर्थात् इन रोगों में स्नेहन कर शिराव्यध करने से रोग शान्त हो जाते हैं ॥ १ ॥

सर्पिः क्षौद्रं चाञ्जनं स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम्। तद्वत्सैन्धवकासीसस्तन्यपिष्टं च पूजितम् ॥

घृत और मधु मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करने से शिरोत्पात रोग नष्ट होता है। इसी प्रकार सेंधानमक और कासीस दोनों को समान लेकर स्त्री के दूध से विधिवत् पीसकर अञ्जन करने से शिरोत्पात रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

शिराहर्षेऽञ्जनं कार्यं फाणितं मधुसंयुतम्। मधुना तार्क्ष्यशैलं च कासीसं वा समाक्षिकम् ॥

शिराहर्ष रोग में फाणित (ईख के रस का राब) को मधु में मिलाकर आंखों में अञ्जन करना चाहिये। अथवा कासीस को मधु में पीसकर अञ्जन करना चाहिये। इससे लाभ होता है ॥

वेतसाम्लं स्तन्ययुतं फाणितं तु ससैन्धवम्। पित्ताभिष्यन्दशमनं विधिं चात्रापि योजयेत् ॥

अम्लवेत को नारी के दूध में विधिपूर्वक मिलाकर अञ्जन बनाकर नेत्रों में लगाना चाहिये अथवा फाणित को सेंधानमक के साथ मर्दन कर नेत्रों में अञ्जन करना चाहिये। इससे शिराहर्ष

रोग नष्ट होता है । पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा भी शिरोहर्ष रोग में करनी चाहिये ॥ ४ ॥

अथ यान्तरे नयनाभिघातस्य निदानचिकित्से—

श्वयथुश्च यन्नेत्र घृत लोहितराजिभिः । निमेषोन्मेषणाशक्त सशल्य तं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥

नयनाभिघात रोग—जिस नेत्र से अश्रुपात होता रहता हो, लोहित वर्ण की रेखाओं से नेत्र घिरा हुआ हो, पलक बन्द होने में और खुलने में अशक्त हो उसे आघात के कारण हुआ नेत्र रोग जानना चाहिये ॥ १ ॥

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्चोतनं हितम् । पुनर्नवामूलकल्कात्पिण्डी लेपे कुचन्दनम् ॥

अन्त स्त्रीस्तन्यसेकश्च रक्तमोक्षश्च शस्यते ॥ २ ॥

इस प्रकार के अभिहत नेत्र रोग में शीतल द्रव्यों का आश्चोतन करने से, पुनर्नवा के मूल का विधिपूर्वक कल्क कर पिण्डी बनाकर नेत्र पर फेरने से, पीले चन्दन का लेप लगाने से, नेत्र के अभ्यन्तर स्त्री के दूध का सिंचन करने से और रक्तमोक्षण करने से लाभ होता है ॥ २ ॥

दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।

स्वेदाग्निधूमभयशोकरुजाभितापैरप्याहतामपि तथैव भिषक्चिकित्सेत् ॥ ३ ॥

स्निग्ध, शीतल और मधुर प्रयोगों से दृष्टि प्रसादन का उपयोग करना चाहिये । इसी प्रकार के उपायों से स्वेद, अग्नि, धूम, भय, शोक, रुजादि तापों से नष्ट हुई दृष्टि वालों की भी चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् इन कारणों से उत्पन्न नेत्र रोगों की भी स्निग्ध, शीतल और मधुर क्रिया से ही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

सूर्योपरागानलविद्युदादिविलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।

सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि कार्यं सायं निषेव्यस्त्रिफलाप्रयोगः ॥ ४ ॥

सूर्य की किरणों, दिशाओं तथा आकाश की विद्युत आदि के देखने से, जिनकी दृष्टि नष्ट हो गयी हो उनकी स्निग्ध तथा शीतल वस्तुओं से संतर्पण आदि क्रिया द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये तथा सायंकाल त्रिफला के प्रयोगों का सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

निशाब्दत्रिफलादार्वी सितामधुसमन्विता । अभिघातादिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ५ ॥

हल्दी, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा आंवला, दारुहल्दी, शर्करा और मधु को समान भाग लेकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर नारी के दूध में मिलाकर नेत्रों में पूरण करने से नेत्र का अभिघात तथा नेत्रों का शूल नष्ट होता है ॥ ५ ॥

सावरं मधुकं तुल्यं घृतभृष्टं सुचूर्णितम् । छागक्षीरेऽथवा सेकः पित्तरक्ताभिघातजित् ॥ ६ ॥

सावर लोध या श्वेत लोध और मुलहठी को समान भाग लेकर घृत में भूनकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर बकरी के दूध में मिलाकर आंखों में सिंचन करने से पित्तरक्त से उत्पन्न और अभिघात से उत्पन्न नेत्र रोग नष्ट होता है ॥ ६ ॥

घोटकमुखलालासंघृष्टैर्मरिचैर्नेत्रमञ्जयेत् । अतिनिद्रा शमं याति तमः सूर्योदयादिव ॥ १ ॥

अतिनिद्रादोष चिकित्सा—घोड़े के मुंह की लार में काली मरिच को घिस कर उसमें मधु मिलाकर नेत्रों में अञ्जन करने से अतिनिद्रा दोष इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार सूर्य के उदय होने से अन्धकार नष्ट होता है ॥ १ ॥

जातीपुष्पं प्रवालं च मरिचं कटुका वचा । सैन्धवं बस्तमूत्रेण पिष्टं तन्द्राघ्नमञ्जनम् ॥ २ ॥

तन्द्रा नाश के उपाय—चमेली के फूल, मूंगा, मरिच, कुटकी, वच और सेंधानमक को समान भाग लेकर बकरे के मूत्र में पीसकर अञ्जन करने से तन्द्रा का नाश होता है ॥ २ ॥

नेत्ररोगे चोपसेनीकर्पूर —

शुद्धसोमसुभागाः स्युरेला भागद्वयं तथा । चन्दनं वाजिफेनं च बीजं कतकसम्भवम् ॥ १ ॥

रसाञ्जनं मदमुस्तं प्रत्येकं कर्षसम्मितम् । सर्वं चूर्णं विमर्द्याथ पिण्डं गर्भमनिष्टवत् ॥ २ ॥

कृत्वा पात्रे निधायाथ पिधेत्पात्रं तथोपरि । अथ प्रज्वालयेद्वह्निं यावद्यामचतुष्टयम् ॥ ३ ॥

एवं प्रहरपर्यन्तं वह्निं कुर्याच्च बुद्धिमान् । पात्रस्योपरिभागे तु शीतलं स्वेदयेद्बुधः ॥ ४ ॥

ततःऽऽग्रपेक्षरन्धेन शीतलेन च वारिणा । स्वाङ्गशीतं ततो ज्ञात्वा पश्चात्कर्पूरमाहरेत् ॥ ५ ॥

[illegible] प्रयोजयेत् ॥ ६ ॥

नेत्ररोग में भीमसेनी कपूर—देशी कपूर ८ भाग, छोटी इलायची के दाने २ भाग, लाल चन्दन, समुद्रफेन, निर्मली के बीज, रसवत और नागरमोथा प्रत्येक का चूर्ण एक २ कर्ष लेकर सबको दूध में खरल कर गेहूं के गूधे हुए आटे के पिण्ड के समान पिण्डी बनावे। फिर बड़े शकोरे या परई में रख कर ऊपर से दूसरा पात्र रख कर शराव सम्पुट की विधि से उसका मुखमुद्रण कर ( सन्धि बन्द कर ) उसके नीचे अगूठे के समान बत्ती बनाकर तेल में भिंजा कर जलाकर लगा देवे अर्थात् बत्ती से आँच देवे। इस प्रकार एक प्रहर ( ३ घंटे ) तक आँच देवे और ऊपर के पात्र को सदा शीतल रखे। सदा भिंगे हुए कपड़े को ऊपर के पात्र पर रखे और जल से उसे भिंजाता रहे। जब एक पहर आँच लग जावे तब बत्ती बुझा देवे और स्वांगशीत होने पर ऊपर के पात्र में सटा हुआ श्वेत कपूर को निकाल लेवे। स्फटिक के समान अत्यन्त स्वच्छ, श्वेतहीरक मणि के समान प्रभा वाला इस भीमसेनी नामक कपूर को सभी ओषधियों में ( जहाँ आवश्यकता हो ) प्रयुक्त करे। अर्थात् यह भीमसेनी कपूर है इसकी जहाँ २ आवश्यकता पड़े व्यवहार में लाना चाहिये ॥ १-६ ॥

## अथ पथ्यापथ्यम्।

आश्चोतनं लङ्घनमञ्जनं च स्वेदो विरेकः प्रतिसारणं च।
प्रपूरणं नस्यमसृग्विमोक्षः शस्त्रक्रिया लेपनमाज्यपानम् ॥ १ ॥
सेको मनोनिर्वृतिरङ्घ्रिपूजा मुद्गा यवा लोहितशालयश्च।
कौम्भं हविस्तस्य कुलत्थयूषः पेया विलेपी सुरणं पटोलम् ॥ २ ॥
वार्ताककर्कोटककारवेल्लं नवीनमोचं नवमूलकं च।
पुनर्नवामार्कवकाकमाचीपथूरशाकानि कुमारिका च ॥ ३ ॥
द्राक्षा च कुस्तुम्बुरु माणिमन्थो रोध्रं वरा क्षौद्रमुपानहश्च।
नारीपयश्चन्दनमिन्दुखण्डं तिक्तानि सर्वाणि लघूनि चापि ॥ ४ ॥
यथाबलं पथ्यमिदं प्रयुक्तं यथामलं नेत्रगदं निहन्ति।

पथ्यापथ्य—आश्चोतन, लङ्घन, अंजन, स्वेदन, विरेचन, प्रतिसारण, प्रपूरण, नस्य, रक्तमोक्षण, शस्त्रक्रिया, लेप, घृतपान, सिंचन, मन की शान्ति, गुरुजनों की पादपूजा, मूंग, जौ, रक्त वर्ण के शालिधान्य के चावल, सौ वर्ष का पुराना घृत के साथ कुल्थी का यूष, पेया, विलेपी, सूरनकन्द, परवल आदि का शाक, बैंगन, ककड़ी, करेला, नया ( कच्चा ) केला, नवीनमूली, पुनर्नवा, भांगरा, मकोय, पथूर शाक, घीकुआर, द्राक्षा, धनियां, सैंधानमक, लोध, त्रिफला, मधु, उपनाह कर्म, स्त्री का दूध, चन्दन, कपूर, सभी तिक्त तथा लघु पदार्थ नेत्ररोग में पथ्य कहे गये हैं। वैद्य को दोषानुसार यथायोग्य इन पथ्यों का प्रयोग कराना चाहिये ॥ १-४ ॥

क्रोधं शुचं मैथुनमश्रु वायुविण्मूत्रनिद्रावमिवेगरोधम् ॥ ५ ॥
सूक्ष्मेक्षणं दन्तविघर्षणं च स्नानं निशाभोजनमातपं च।
प्रजल्पनं छर्दनमम्बुपानं मधूकपुष्पं दधि पत्रशाकम् ॥ ६ ॥
कालिङ्गपिण्याकविरूढकानि मत्स्यं सुरा मांसमजाङ्गलं च।
ताम्बूलमम्लं लवणं विदाहि तीक्ष्णं कटूष्णं गुरु चान्नपानम्।
नरो न सेवेत हिताभिलाषी सर्वेषु रोगेषु दृगाश्रयेषु ॥ ७ ॥

क्रोध, शोक, मैथुन तथा आँसू, वायु, मल, मूत्र निद्रा और वमन के वेगों को रोकना, सूक्ष्म को ध्यान से विलम्ब तक देखते रहना, बहुत विलम्ब तक दाँतों को घिसते रहना, स्नान करना, रात को भोजन करना, धूप या ताप में रहना, बहुत बोलना वमन कर्म जलपान, महुए का फूल, दही, पत्रशाक, तरबूजा, तिलकल्क, अङ्कुरित धान्य, मत्स्य, सुरा, जो जीव जाङ्गल नहीं हो उनका मांस, ताम्बूल, अम्लद्रव्य, नमक, तीक्ष्णद्रव्य, कटु-उष्ण और गुरु अन्न-पान सभी नेत्र रोगों में अपथ्य कहे गये हैं। इनका सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ५-७ ॥

शालितण्डुलगोधूममुद्गसैन्धवगोघृतम्। गोपयश्च सिता क्षौद्रं पथ्यं नेत्रगदे स्मृतम् ॥ ८ ॥

शालीधान का चावल, गेहूं मूंग, सैंधानमक, गौ का घी गौ का दूध, शर्करा और मधु ये सभी द्रव्य नेत्र रोगों में पथ्य कहे गये हैं ॥ ८ ॥

सर्वं शाकमचक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकम् । जीवन्ती वास्तुमत्स्याक्षी मेघनादः पुनर्नवा ॥९॥

सभी प्रकार के पत्र शाक नेत्र रोगों में अपथ्य हैं केवल पांच प्रकार के पत्रशाक पथ्य हैं १ जीवन्ती, २ बथुआ, ३ मछेछी, ४ चौराई और ५ पुनर्नवा ॥ ९ ॥

माषारनालकटुतैलजलावगाहधूम्राक्षुरैश्च सुरतैर्निशि जागरैश्च ।
शाकाम्लमत्स्यदधिफाणितवेसवारैश्चक्षु क्षयं व्रजति सूर्यविलोकनाच्च ॥ १० ॥

दृष्टिनाशक—उड़द, कांजी, सरसों का तैल, जल में डूब कर स्नान, छोटी कंदेरी, साक मखाना, मैथुन, रात्रिजागरण, पत्रशाक, अम्ल द्रव्य, मत्स्य, दही, फाणित ( राब ) और वेसवार के सेवन तथा सूर्य को ओर देखने से नेत्रक्षय अर्थात् दृष्टि का नाश होता है ॥ १० ॥

इति नेत्ररोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

तत्राऽऽदौ प्रदरस्य निदानमाह—

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ।
यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनाद्दिवा च ॥ १ ॥
स श्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुः प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ २ ॥

प्रदर निदान—विरुद्ध आहार ( संयोग विरुद्ध, मात्रा विरुद्ध आदि ) करने से, मद्यपान करने से, अध्यशन करने से, अजीर्ण रोग से, गर्भपात होने से, अधिक मैथुन करने से, अधिक सवारी पर चलने से, अधिक मार्ग चलने, शोक करने से, अत्यन्त उपवास आदि करने के कारण धातुओं के क्षीण हो जाने से, अत्यन्त भार उठाने से, आघात लगने और दिन में अधिक सोने से कफज, पित्तज, वातज, और सन्निपातज प्रदर चार प्रकार के होते हैं ॥ १-२ ॥

प्रदरस्य सामान्यलक्षणमाह—

असृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ।

प्रदर के सामान्य लक्षण—सभी प्रदर रोगों में सामान्यतः अङ्ग टूटना और पीड़ा होती है ॥

श्लैष्मिकस्य लक्षणमाह—

आमं सपिच्छाप्रतिमं सपाण्डु पुलाकतोयप्रतिमं कफात्तु ॥

कफज प्रदर—कफ के कोप से जो प्रदर होता है उसमें आमरस युक्त पिच्छिल ( शाल्मली निर्यास की भांति ), पाण्डुवर्ण का और गेहूं के धोवन की भांति या मांस के धोवन की भांति अथवा क्षुद्रधान्य के चावलों के धोवन की भांति योनिस्राव होता है ।

पैत्तिकमाह—सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं भृशवेगि पित्तात् ॥ ३ ॥

पित्तज प्रदर—पित्त के कोप से जो प्रदर होता है उसमें पीत, नील, कृष्ण, रक्त और उष्ण तथा पित्त दोष की पीड़ाओं ( दाह-चिमचिमाहट ) से युक्त एवं अत्यन्त वेग वाला स्राव होता है ॥

वातिकमाह—रूक्षारुणं फेनिलमल्पमल्पं वातार्तमेतत् पिशितोदकाभम् ॥

वातज प्रदर—वात के कोप से जो प्रदर होता है उसमें रूक्ष, अरुण वर्ण का, फेन युक्त, थोड़ा २, एवं धुमाने के समान पीड़ा करने वाला और मांस धोये हुए जल के समान स्राव होता है ॥

सान्निपातिकमाह—सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ।
तं चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत भिषक्चिकित्साम् ॥ ४ ॥

सन्निपातज प्रदर—त्रिदोष के कोप से जो प्रदर होता है उसमें मधु मिले हुए घृत के समान, हरिताल के वर्ण का, मज्जा के समान और मुर्दे के दुर्गन्ध के समान गन्धवाला स्राव होता है। इसे विद्वान् वैद्य असाध्य कहते हैं ॥ ४ ॥

रक्तस्यातिप्रवृत्तावुपद्रवानाह—

तस्यातिवृत्तौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्च्छा मदस्तृषा ।
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ॥ ५ ॥

प्रदर रोग के उपद्रव—रक्त के अत्यन्त प्रवृत्त होने से ( प्रदर के बढ़ जाने से ) दुर्बलता,

भ्रम, मूर्च्छा, मद, तृष्णा, दाह, प्रलाप, पाण्डुता, तन्द्रा और अनेक प्रकार के वातज रोग आदि उपद्रव उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ५ ॥

असाध्यां प्रदरव्याधिमतीमाह—

शश्वत्स्रवन्तीमास्राव तृषादाहज्वरान्विताम्। दुर्बलां क्षीणरक्तां च तामसाध्यां विवर्जयेत् ॥

असाध्य प्रदर—जिस प्रदर रोग में निरन्तर योनि से स्राव होता रहे, तृष्णा, दाह, ज्वर और दुर्बलता हो तथा रक्त क्षीण हो गया हो उसे असाध्य जान कर त्याग देना चाहिये ॥६॥

चिकित्सानिवृत्त्यर्थं शुद्धार्तवलक्षणमाह—

मासान्निष्पिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च। नैवातिबहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ॥७॥

शुद्धार्तव के लक्षण—मास २ के पश्चात् होने वाला, पिच्छिलता विहीन, दाह और पीड़ा रहित, पांच दिन तक रहनेवाला, न अधिक और न कम होने वाला इस प्रकार का जो रजस्राव होवे उसे शुद्ध जानना चाहिये ॥ ७ ॥

शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम्। तदार्तवं प्रशंसन्ति यच्चाप्सु न विरज्यते ॥८॥

जो रज शशक के रक्त के समान वर्ण वाला अथवा लाख के रस के समान वर्ण वाला और जिसका रज से युक्त वस्त्र जल में धोने से पुनः उसमें रक्तवर्ण रह जाय उसे विशुद्ध रज समझना चाहिये ॥ ८ ॥

## अथ प्रदरचिकित्सा।

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम्। पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरशान्तये ॥ १ ॥

वातज प्रदर चिकित्सा—सौवर्चल ( सोंचर ) नमक, श्वेत जीरा, मुलहठी और नीलकमल ( निलोफर ) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु मिलाकर गाय का दही के अनुपान से पीवे तो वातज प्रदर नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

नागरं मधुकं तैलं सिता दधि च तत्समम्। खजेनोन्मथितं पीतं वातप्रदरनाशनम् ॥ २ ॥

सोंठ, मुलहठी, तिल का तेल, शर्करा और गाय का दही समान भाग लेकर एकत्र कर मथानी से मथकर पान करने से वातज प्रदर नष्ट होता है ॥ २ ॥

एलामंशुमतीं द्राक्षामुशीरं तिक्तरोहिणीम्। चन्दनं कृष्णलवणं सारिवालोध्रसंयुतम् ॥ ३ ॥

वातासृग्दरशान्त्यर्थं पिबेद्वा सहदध्ना। पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं सक्षौद्रं एलया पिबेत् ॥ ४ ॥

इलायची, शालपर्णी, द्राक्षा, खस, कुटकी, लालचन्दन, सौवर्चल नमक सारिवा और लोध को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर गाय के दही के साथ योग्य मात्रा से पान करने से वातज प्रदर नष्ट होता है और यदि इसी चूर्ण को मधु के साथ पान करे तो पित्त प्रदर तथा रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ३-४ ॥

वासकस्य गुडूच्या वा रसं किं वा शतावरम्। मधुके कर्षमेकं तु चतुष्कर्षा सिता तथा ॥

तण्डुलोदकसंपिष्टं लोहिते प्रदरे पिबेत् ॥ ५ ॥

रक्तप्रदर चिकित्सा—अडूसे का स्वरस अथवा गुर्च का स्वरस अथवा शतावरी का स्वरस और मुलहठी का चूर्ण एक कर्ष और शर्करा चार कर्ष इनको तण्डुलोदक ( चावल के धोवन ) के साथ रक्तप्रदर में पान करना चाहिये। इससे रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन संयुतं पीतम्।

कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम् ॥ ६ ॥

बलामूल ( बरियारे की जड़ ) को गोदुग्ध में पीसकर पान करने से अथवा कुश और बलामूल को समान भाग लेकर चूर्ण कर तण्डुलोदक से पान करने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ ६ ॥

बलाकङ्कतिकाख्या सा तस्य मूलं सुचूर्णितम्। लोहितप्रदरे खादेच्छर्करामधुसंयुतम् ॥ ७ ॥

अतिबला की जड़ को चूर्ण कर शर्करा और मधु के साथ मिलाकर खाने से रक्त प्रदर नष्ट होता है ॥ ७ ॥

मद्यैर्निम्बगुडूच्योश्च रोहितस्याथ वा रसम्। कफप्रदरनाशाय पिबेद्वा मलयूरसम् ॥ ८ ॥

कफज प्रदर चिकित्सा—नीम का स्वरस, गुर्च का स्वरस अथवा रोहितक का स्वरस अथवा काकोदुम्बरिका का स्वरस मद्य के साथ पान करने से कफज प्रदर नष्ट होता है ॥ ८ ॥

काकजङ्घामूलरसं मधुना सह भामिनी। सलोध्रचूर्णमापीय कफप्रदरकं जयेत् ॥ ९ ॥

काकजङ्घा की जड़ का स्वरस, मधु और लोध का चूर्ण मिलाकर यदि स्त्री को पिलाया जाय तो कफ प्रदर नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

पथ्यामलकबिभीतकविश्वौषधदारुरजनीनाम्। सक्षौद्रलोध्रचूर्णक्वाथो हन्त्येव सर्वजं प्रदरम् ॥

सन्निपातज प्रदर चिकित्सा—हरड़, आंवला, बहेड़ा, सोंठ और दारुहल्दी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके उसमें मधु और लोध के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से त्रिदोषज प्रदर नष्ट होता है ॥ १० ॥

रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम्।
असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति श्वासं च भार्ङ्गी सह नागरेण ॥ ११ ॥

रसवत और चौराई शाक की जड़ को चूर्ण कर मधु में मिलाकर तण्डुलोदक से पान करने से सन्निपातज प्रदर नष्ट होता है। इसी प्रकार भार्गी चूर्ण में सोंठ का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से श्वास रोग नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अशोकवल्कलक्वाथशृतं दुग्धं सुशीतलम्। यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥१२॥

अशोक की छाल का क्वाथ तथा औटाकर शीतल किया गौ का दूध दोनों को मिलाकर बल के अनुसार प्रातःकाल पान करने से तीव्र प्रदर रोग नष्ट करता है ॥ १२ ॥

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना। एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदरात्परिमुच्यते॥ १३ ॥

कुश की जड़ को तण्डुलोदक से पीसकर तीन दिन तक पिलाने से स्त्री प्रदर रोग से मुक्त हो जाती है ॥ १३ ॥

क्षौद्रयुतं फलरसं काष्ठोदुम्बरजं पिबेत्। असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक् ॥ १४ ॥

काकोदुम्बरिका के फलों के स्वरस में मधु मिलाकर पान और दूध-शर्करा से युक्त अन्न का सेवन करने से रक्तप्रदर नष्ट होता है ॥ १४ ॥

मलयूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च। मधुना मोदकं कृत्वा सोऽपि प्रदरनाशनम् ॥ १५ ॥

काकोदुम्बरी (जंगली अञ्जीर) के फलों का चूर्ण मधु और शर्करा मिलाकर मोदक बनाकर सेवन करने से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिराततिक्तबिल्वमल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः।
पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ १६ ॥

दार्व्यादि क्वाथ—दारुहल्दी, रसवत, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता कच्चे बेल की गूदी और शुद्ध भिलावा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से अत्यन्त प्रबल प्रदर जो शूल सहित पीला, काला, तथा रक्तवर्ण का हो, रक्त प्रदर हो, नील प्रदर हो या श्वेत प्रदर हो सब नष्ट हो जाते हैं ॥ १६ ॥

भूम्यामलकमूलं तु पीतं तण्डुलवारिणा। द्वित्रैरेव दिनैर्नार्याः प्रदरं दुस्तरं जयेत् ॥ १७ ॥

भुईं आंवला की जड़ को चावल के धोवन के साथ पीसकर अथवा चूर्ण कर तण्डुलोदक के अनुपान से पान करने से तीन दिन में ही भयंकर प्रदर को जीत लेती है। अर्थात् इस योग से प्रदर रोग नष्ट होता है ॥ १७ ॥

शुण्ठीतिन्तिडीकयोश्चूर्णं भुक्तं सघृतशर्करम्। प्रवर्द्धं प्रदरं हन्ति नार्या वा कुटजाष्टकम् ॥ १८ ॥

अन्यान्य योग—सोंठ और लोध के चूर्ण को घृत और शर्करा के अनुपान से खिलाये अथवा कुटजाष्टक चूर्ण घृत शर्करा के अनुपान से खिलावे तो अत्यन्त बढ़ा हुआ भी प्रदररोग नष्ट होता है॥

धातक्याश्च तथा पूगीकुसुमानां पिबेच्छृतम्। नाशयेत्प्रदरं सद्यस्त्रिदिनात्पोषितो ध्रुवम् ॥१९॥

धाय के फूल तथा सुपारी के फूलों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके तीन दिन तक पान करने से प्रदररोग नष्ट होता है ॥ १९ ॥

मांसो पुरीषं पयसा निपीय यद्वैकदाहं त्र्यहमह्नयं वा।
स्त्रियो त्र्यहं वा प्रदरं प्रयत्नात् प्रसह्य पारं परमाप्नुवन्ति ॥ २० ॥

मूष की विष्ठा को गौ के दूध के साथ अग्निबल के अनुसार एक दिन दो दिन अथवा तीन दिन पान करने से कठिन से कठिन प्रदररोग से भी मुक्त हो जाती है ॥ २० ॥

अशोकवल्कलं पिष्ट्वा सतार्क्ष्यं तण्डुलाम्भसा। सक्षौद्रं सद्रसं पीत्वा प्रदरान्मुच्यतेऽङ्गना॥
अशोक की छाल और रसवत को समान भाग लेकर तण्डुलोदक से पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से प्रदररोग नष्ट होता है॥ २१॥

शुचिस्थाने व्याघ्रनख्या मूलमुत्तरदिग्भवम्। नीतमुत्तरफाल्गुन्यां कटिबद्धं हरेदसृक्॥ २२॥
व्याघ्रनखी मूल योग—पवित्र स्थान में उत्पन्न हुई व्याघ्रनखी की उत्तर दिशा में गयी हुई मूल को उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उखाड़ कर कमर में बांधने से प्रदररोग नष्ट होता है॥ २२॥

पुष्यानुग चूर्णम्—

पाठा रसाञ्जनं मुस्तं मज्जा जम्ब्वाम्रयोस्तथा। अम्बष्ठकी शिलोद्भेदं समङ्गा पद्मकेसरम्॥१॥
बिल्वं मोचरसं लोध्रं केशरं गैरिकं तथा। विश्वौषधं कट्फलं च मरिचं रक्तचन्दनम्॥ २॥
कट्वङ्गं धातकी द्राक्षाऽनन्ता मधुकमर्जुनम्। वासकातिविषा चेति पुष्येणोद्धृत्य बुद्धिमान्॥
तुल्यभागानि सर्वाणि सूक्ष्माणि च विचूर्णयेत्। तच्चूर्णं माक्षिकोपेतं पीतं तण्डुलवारिणा॥
जयेदर्शांस्यतीसारं तथा रक्तप्रवाहिकाम्। बालानां कृमिरोगांश्च योनिदोषांश्च योषिताम्॥
रजोदोषं तथा सर्वान्प्रदरान्दुस्तरानपि। पीतनीलारुणश्वेतान्सर्वानेव विनाशयेत्॥
चूर्णं पुष्यानुगं नाम्नाऽपूर्वमात्रेयभाषितम्॥ ६॥

पुष्यानुग चूर्ण—पाठा (पुरइनपाढ़ी), रसवत, नागरमोथा, पके जामुन के फल के बीज की गुठी आम के गुठली की मज्जा, अम्बष्ठकी (पाठा अर्थात् पुरइनपाढ़ी या लक्ष्मणा मूल), पाषाण भेद (पत्थरचूर) मजीठ कमलकेसर, कच्चे बेल के फल का सूखा गूदा, मोचरस, लोध, केसर, गेरु, सोंठ कायफल, मरिच, रक्तचन्दन, सोनापाठा की छाल, धाय के फूल, दाख, अनन्तमूल, मुलहठी, अर्जुन की छाल, कुटज की छाल और अतीस को पुष्य नक्षत्र में उखाड़ कर सभी को एकत्र कर उत्तमरीति से श्लक्ष्ण चूर्ण बनाकर योग्य मात्रा से मधु में मिलाकर चाटकर तण्डुलोदक का अनुपान करे तो इससे सम्पूर्ण अर्श, अतीसार तथा रक्तप्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं और बालकों के कृमिरोगों को और स्त्रियों के योनिरोगों को, रजोदोष को तथा सभी प्रकार के भयंकर पीत, नील, रक्त श्वेत आदि वर्णों के प्रदर को नष्ट करता है। इस चूर्ण का नाम पुष्यानुग है। इसे पहले पहल आत्रेय मुनि ने कहा था॥ १-६॥

जीरकावलेह—

जीरकं प्रस्थमेकं तु क्षीरं दद्यात्चतुर्गुणमेव च। प्रस्थार्धं लोध्रघृतयोः पचेन्मन्देन वह्निना॥ १॥
लेहीभूतेऽथ शीते च सिताप्रस्थं विनिक्षिपेत्। चातुर्जातकणाविश्वाजाजी मुस्तवालकम्॥
दाडिमं रसजं धान्यं रजनी षड्वालकम्। वंशजं च वचक्षीरी प्रत्येकं शुक्तिमितम्॥ ३॥
जीरकस्यावलेहोऽयं प्रमेहप्रदरापहः। ज्वरादौर्बल्यारुचिश्वासतृष्णादाहक्षयापहः॥ ४॥

जीरकावलेह—श्वेतजीरा एक प्रस्थ, गोदुग्ध दो आढ़क (८ प्रस्थ) लोध और घृत (दोनों समान मिलित) आधा २ प्रस्थ लेकर विधिपूर्वक जीरा और लोध पीस कर सबको एकत्र कर अग्निपर चढ़ा कर मन्द २ आँच से अवलेह की विधि से पाक करे जब अवलेह सिद्ध हो जावे तब उतार कर उसमें १ प्रस्थ शर्करा मिलावे और दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, पीपल, सोंठ, जीरा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, अनारदाना या अनार की त्वचा, रसवंत, धनियां, हल्दी कटसरैया, वंशलोचन और तवाशीर का श्लक्ष्ण चूर्ण एक २ शुक्ति अर्थात् आधा २ पल लेकर उसमें भलीभाँति मिलाकर रख देवे। यह जीरकावलेह है इसे सेवन करने से प्रमेह, प्रदर ज्वर, दुर्बलता, अरुचि, श्वास, तृष्णा, दाह और क्षय का नाश होता है॥ १-४॥

निष्कमैन्द्रयवं चूर्णं सिताद्विगुणितं भवेत्। उषितेन जलेनैव पीतं प्रदरनाशनम्॥ ५॥
इन्द्रयवादि योग—इन्द्रजौ का चूर्ण एक निष्क लेकर उसमें दुगुना शर्करा मिलाकर पर्युषित जल से पान करने से प्रदर का नाश होता है॥ ५॥

मुद्राद्यं घृतम्—

मुद्गमाषस्य निर्यूहे रास्नाचित्रकमुस्तकैः। सिद्धं सपिप्पलीबिल्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे॥ १॥
मुद्गाद्य घृत—मूंग और उड़द का विधिपूर्वक बना क्वाथ (४ सेर) में रास्ना, चीते की

जड़, नागरमोथा, पीपल और कच्चे बेल की गुद्दी का समान मिलित विमिश्रित बना कल्क (८८ पाव) और मूर्च्छित गोघृत (एक सेर) मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करके पान करे तो प्रदर रोग के नाश करने में यह योग उत्तम कहा है ॥ १ ॥

शाल्मलीघृतम्—

शाल्मलीपुष्पनिर्यासः पृश्निपर्णी तथैव च। काश्मरी चन्दन चैषां कल्केन स्वरसेन वा ॥१॥
गव्य पचेद् घृतप्रस्थं तत्सिद्धं तरुणी पिबेत्। सर्वप्रदरनाशाय बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ २ ॥

शाल्मलीघृत—सेमर के फूलों का स्वरस, पृष्ठपर्णी, गम्भार के फल और लालचन्दन के कल्क अथवा स्वरस के योग से घृत पाक की विधि से एक प्रस्थ गौ का घृत सिद्ध करके (कल्क से चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण स्वरस आदि जो घृत पाक की विधि है उस विधि से मन्दाग्नि पर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करके) युवती (स्त्री) को प्रदर के नाश होने के लिये और बल, वर्ण तथा अग्नि वृद्धि के लिये पिलावे अर्थात् इस घृत से सब प्रकार के प्रदर का नाश होता है और बल-वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

शीतकल्याणकं घृत वृन्दात्—

कुमुदं पद्मकोशीर गोधूमो रक्तशालयः। मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ १ ॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्। विदारी शतपुष्पी च शालिपर्णी सजीविका ॥ २ ॥
त्रिफला त्रापुसं बीजं प्रत्यग्रं कदलीफलम्। पृथगक्षपलान्भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
पानीयं द्विगुणं कृत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्। प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ४ ॥
अरोचके ज्वरेऽजीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे। तरुणी स्वल्पपुष्पा या या या गर्भं न विन्दति ॥५॥
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम्। शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ ६ ॥

शीतकल्याणक घृत—कुमुदनी, पदुमकाठ, खस, गेहूँ, रक्तवर्ण का चावल, मुद्गपर्णी की जड़ और अतिबला की जड़, नीलकमल, ताड़ का मस्तक, बिदारीकन्द, सौंफ, शालिपर्णी (सरिवन), जीवक, हरड़, बहेड़ा, आँवला, खीरे का बीज और नया कच्चा केला को आधा २ पल पृथक् २ लेकर कल्क करके चार सेर गौ का दूध और दो सेर जल को एक सेर गोघृत में मिलाकर घृत पाक विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन कराने से प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, अरुचि, अजीर्ण, ज्वर, पाण्डुरोग, मद रोग, भ्रमरोग आदि में लाभ होता है और जिस स्त्री का मासिक अल्प होता हो या जिसका गर्भ स्थिर नहीं होता हो इसे प्रतिदिन सेवन करने से स्त्रियों को यह प्रीतिदायक होता है अर्थात् मासिक दोष शुद्ध करता है और गर्भधारण कराता है। इस घृत का नाम शीतकल्याणक घृत है, यह अत्यन्त रसायन कहा गया है ॥ १-६ ॥

रक्तपित्ताधिकारोक्तं कूष्माण्डखण्डं च प्रदरे देयम्।

रक्तपित्ताधिकार में कहा हुआ कूष्माण्ड खण्ड नाम का योग भी प्रदर में देना चाहिये। इससे भी प्रदर का नाश होता है ॥

## अथ रसाः।

रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसजं समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोध्रं हि सकलैः।
हिम पिष्टं मात्रा प्रदररिपुरेषोऽपहरति द्विवल्लो क्षौद्रेण प्रदरमतिदुःसाध्यमपि च ॥ १ ॥

प्रदररिपु रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और सीसे का भस्म एक २ भाग लेकर जितना हो उसके समान भाग रसवत लेवे और इन चारों के बराबर लोध का चूर्ण लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर उसमें भस्म, रसवत और लोध के चूर्ण को मिलाकर मर्दन कर चावल के साथ एक दिन (चार पहर) मर्दन कर दो वल्ल (२ रत्ती) के प्रमाण की विधिपूर्वक बटी बनाकर मधु के अनुपान से सेवन करने से यह प्रदररिपु नाम का रस अत्यन्त असाध्य प्रदर रोग को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

बोलपर्पटी—सूतगन्धकमुत्थजटिकायाः पर्पटी समगुणा समभागाम्।
बोलपूर्वविहितं प्रतियाप्यं स्यादसृग्दरगदापहारी ॥ १ ॥

बोलपर्पटी—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कज्जली करके

कज्जली के समान भाग बोल (मुरब्बर) का चूर्ण मिलाकर पर्पटी की विधि से पर्पटी बनाकर सेवन करने से यह रस सभी प्रकार के रक्त सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वल्लयुग्ममुपयुक्तं प्रतिदेयं शर्करामधुयुतः किल दत्तः।
रक्तपित्तगुदजाद्गनियोनिस्रावमाशु विनिवारयतीशः ॥ २ ॥

इस रस को दो वल्ल (६ रत्ती) से लेकर शर्करा और मधु मिलाकर रोगी को देने से रक्तस्रुति (अर्श से मस्सों के द्वारा रक्तस्राव) योनिस्राव आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥

इति प्रदररोगप्रकरणं समाप्तम्

## अथ सोमरोगाधिकार।

तत्र सोमरोगस्य निदानपूर्विका संप्राप्तिमाह—

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाच्चापि श्रमादपि। अतिसारकयोगाद्वा गरदोषात्तथैव च ॥ १ ॥

आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च।
तस्यास्ता प्रच्युता स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

सोमरोग का निदान—स्त्रियों के साथ अधिक प्रसंग करने से, अधिक चिन्ता करने से, अधिक परिश्रम करने से, अतिसार उत्पन्न करनेवाले योगों अथवा सारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से तथा विषदोष से सम्पूर्ण शरीर में स्थित जल क्षुभित और प्रस्रवित होते हैं। इसलिये वे जलीय अंश अपने २ नियत स्थानों से च्युत होकर मूत्र मार्ग की ओर जाते हैं ॥ १-२ ॥

तस्य लक्षणमाह—प्रसन्ना विमला शीता निर्गन्धा नीरुजा सिताः।
स्रवन्ति चातिमात्रं ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ३ ॥

वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित्। शिरः शिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥
मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः। भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥५॥

सोमरोग के लक्षण—सोमरोग में जो स्राव होता है वह प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ अथवा बिना किसी दुष्टि के निर्मल, शीतल, गन्धरहित पीड़ा सहित, श्वेत होता है। और जब स्राव अत्यन्त बढ़ जाता है तब इससे स्त्री दुर्बल हो जाती है और वेग को वह नहीं रोक सकती उसे सुख नहीं होता है, स्त्री के शिर में शिथिलता (स्तम्भ) हो जाती है। मुंह और तालु सूखने लगते हैं, मूर्च्छा, जंभाई तथा प्रलाप होता है, त्वचा अत्यन्त रूक्ष हो जाती है, भक्ष्य, भोज्य तथा पेय पदार्थों से तृप्ति नहीं होती है ॥ ४-५ ॥

संधारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसंज्ञिता। ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥

शरीर के सन्धारण करने के कारण इन जलों की सोम संज्ञा है। इस सोम के क्षय होने से ही स्त्रियों के इस रोग को सोमरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मात्सोमक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा। स एव सरुजः सोमो मूत्रेण स्रवते मुहुः ॥ ७ ॥

इसी कारण सोम के क्षय हो जाने से शरीर निश्चेष्ट बना रहता है। वही सोम पीड़ायुक्त होकर बारबार मूत्र के साथ स्रवित होता है ॥ ७ ॥

सोमलक्षणसंसृष्टः कालातिक्रान्तयोगतः। सोमक्रान्तिक्रमेणैव स्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णशः ॥
मूत्रातिसार इत्येव समाहुर्बलनाशनम् ॥ ८ ॥

सोम के लक्षणों से युक्त तथा काल के अति क्रमण होने से (पुराना हो जाने से) उस सोम धातु के निकलने के क्रम से ही बार २ मूत्र का स्राव होता रहता है। इसी को मूत्रातिसार कहते हैं। इससे बल का नाश होता है ॥ ८ ॥

## अथ सोमरोगस्य चिकित्सा।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु। शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

सोमरोग चिकित्सा—केला, आंवले का स्वरस मधु तथा शर्करा मिलाकर खावे तो सोम के धारण करने के लिये यह उत्तम योग है अर्थात् इस योग से सोम या जलीय धातु का बहना अथवा सोमरोग कम होता है ॥ १ ॥

माषचूर्णं समधुकं विदारीमधुशर्कराम्। पयसा पाययेत्प्रातः सोमधारणमुत्तमम् ॥ २ ॥

जड़, नागरमोथा, पीपल और कच्चे बेल की गुद्दी का समान मिलित विधिवत् बना कल्क (एक पाव) और मूर्च्छित गोघृत (एक सेर) मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करके पान करें तो प्रदर रोग के नाश करने में यह योग उत्तम कहा है ॥ १ ॥

शाल्मलीघृतम्—

शाल्मलीपुष्पनिर्यासः पृश्निपर्णी तथैव च। काश्मरी चन्दनं चैषां कल्केन स्वरसेन वा ॥१॥
गव्यं पचेद् घृतप्रस्थं तत्सिद्धं तरुणी पिबेत्। सर्वप्रदरनाशाय बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ २ ॥

शाल्मलीघृत—सेमर के फूलों का स्वरस, पृष्ठपर्णी, गम्भार के फल और लालचन्दन के कल्क अथवा स्वरस के योग से घृत पाक की विधि से एक प्रस्थ गौ का घृत सिद्ध करके (कल्क के चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण स्वरस आदि जो घृत पाक की विधि है उस विधि से मन्दाग्नि पर एक प्रस्थ घृत सिद्ध करके) युवती (स्त्री) को प्रदर के नाश होने के लिये और बल, वर्ण तथा अग्नि वृद्धि के लिये पिलावे अर्थात् इस घृत से सब प्रकार के प्रदर का नाश होता है और बल-वर्ण तथा अग्नि की वृद्धि होती है ॥ १-२ ॥

शीतकल्याणक घृत वृन्दात्—

कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमो रक्तशालयः। मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ १ ॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्। विदारी शतपुष्पी च शालिपर्णी सजीवका ॥ २ ॥
त्रिफला त्रापुसं बीजं प्रत्यग्रं कदलीफलम्। एषामर्धपलान् भागान् गव्यक्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
पानीयं द्विगुणं दत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्। प्रदरे रक्तगुल्मे च रक्तपित्ते हलीमके ॥ ४ ॥
अरोचके ज्वरेऽजीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे। तरुणी स्वल्पपुष्पा या या वा गर्भं न विन्दति ॥५॥
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम्। शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ ६ ॥

शीतकल्याणक घृत—कुमुदनी, पदुमकाठ, खस, गेहूं, रक्तवर्ण का चावल, मुद्गपर्णी की जड़ और अतिबला की जड़, नीलकमल, ताड़ का मस्तक, विदारीकन्द, सौंफ, शालिपर्णी (सरिवन), जीवक, त्रिफला, खीरे का बीज और नया कच्चा केला को आधा २ पल पृथक् २ लेकर कल्क करके चार सेर गौ का दूध और दो सेर जल को एक सेर गोघृत में मिलाकर घृत पाक विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर सेवन कराने से प्रदर, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, हलीमक, अरुचि, अजीर्ण, ज्वर, पाण्डुरोग, मद रोग, भ्रमरोग आदि में लाभ होता है और जिस स्त्री का मासिक अल्प होता हो या जिसका गर्भ स्थिर नहीं होता दो इसे प्रतिदिन सेवन करने से स्त्रियों को यह प्रीतिदायक होता है अर्थात् मासिक दोष शुद्ध करता है और गर्भधारण कराता है। इस घृत का नाम शीतकल्याणक घृत है, यह अत्यन्त रसायन कहा गया है ॥ १-६ ॥

रक्तपित्ताधिकारोक्तं कूष्माण्डखण्डं च प्रदरे देयम्।

रक्तपित्ताधिकार में कहा हुआ कुष्माण्ड खण्ड नाम का योग भी प्रदर में देना चाहिये। इससे भी प्रदर का नाश होता है ॥

## अथ रसाः।

रस गन्ध सीस मृतमिति समं तैस्तु रसजं समानं सर्वैः स्याल्लुलितमपि लोध्रं वृषरसैः।
दिनं पिष्टं माध्वा प्रदररिपुरेषोऽपहरति द्विपल्ला क्षौद्रेण प्रदरमतिदुःसाध्यमपि च ॥ १

प्रदररिपु रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक और सीसे का भस्म एक २ भाग लेकर इसके समान भाग रसवत लेवे और इन चारों के बराबर लोध का चूर्ण लेकर प्रथम की कज्जली कर उसमें नागभस्म, रसवत और लोध के चूर्ण को मिलाकर मधु के साथ एक दिन (चार पहर) मर्दन कर दो वल्ल (६ रत्ती) के प्रमाण की वटी बनाकर मधु के अनुपान से सेवन करने से यह प्रदररिपु नाम का रस अत्यन्त प्रदर रोग को भी नष्ट करता है ॥ १ ॥

बोलपर्पटी—सूतगन्धकसुकज्जलिकायाः पर्पटी समयुता सममागम्।
बोलचूर्णविहिता प्रतिवार्यं स्याद्रसोऽयमसृगामयहारी ॥ १ ॥

बोलपर्पटी—शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक

कज्जली के समान भाग बोल (मुसब्बर) का चूर्ण मिलाकर पर्पटी की विधि से पर्पटी बनाकर सेवन करने से यह रस सभी प्रकार के रक्त सम्बन्धी रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

वल्लयुग्मयुगुल प्रतिदेय शर्करामधुयुतः किल दत्त ।
रक्तपित्तगुदजास्रुतियोनिस्रावमाशु विनिवारयतीशः ॥ २ ॥

इस रस को दो वल्ल (६ रत्ती) से लेकर शर्करा और मधु मिलाकर रोगी को देने से रक्तस्रुति (अर्श से मस्सों के द्वारा रक्तस्राव), योनिस्राव आदि शीघ्र नष्ट हो जाते हैं ॥

इति प्रदररोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ सोमरोगाधिकार ।

तत्र सोमरोगस्य निदानपूर्विका संप्राप्तिमाह—

स्त्रीणामतिप्रसङ्गाद्वा शोकाच्चापि श्रमादपि । अतिसारकयोगाद्वा गरदोपात्तथैव च ॥ १ ॥
आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।
तस्यास्ता प्रच्युताः स्थानान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

सोमरोग का निदान—स्त्रियों के साथ अधिक प्रसंग करने से, अधिक चिन्ता करने से, अधिक परिश्रम करने से, अतिसार उत्पन्न करनेवाले योगों अथवा सारक पदार्थों के अधिक सेवन करने से तथा विषदोष से सम्पूर्ण शरीर में स्थित जल क्षुभित और प्रस्रवित होते हैं। इसलिये वे जलीय अंश अपने २ नियत स्थानों से च्युत होकर मूत्र मार्ग की ओर जाते हैं ॥ १-२ ॥

तस्य लक्षणमाह—प्रसन्ना विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिता ।
स्रवन्ति चातिमात्र ताः सा न शक्नोति दुर्बला ॥ ३ ॥

वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित् । शिरः शिथिलता तस्या मुखं तालु च शुष्यति ॥
मूर्च्छा जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः । भक्ष्यैर्भोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥५॥

सोमरोग के लक्षण—सोमरोग में जो स्राव होता है वह प्रसन्न अर्थात् स्वच्छ अथवा बिना किसी दुष्टि के निर्मल शीतल, गन्धरहित पीड़ा सहित, श्वेत होता है। और जब स्राव अत्यन्त बढ़ जाता है तब इससे स्त्री दुर्बल हो जाती है और वेग को वह नहीं रोक सकती, उसे सुख नहीं होता है, स्त्री के शिर में शिथिलता (स्तम्भ) हो जाती है। मुंह और तालु सूखने लगते हैं, मूर्च्छा, जंभाई तथा प्रलाप होता है, त्वचा अत्यन्त रूक्ष हो जाती है, भक्ष्य, भोज्य तथा पेय पदार्थों से तृप्ति नहीं होती है ॥ ४-५ ॥

सधारणाच्छरीरस्य ता आपः सोमसञ्ज्ञिताः । ततः सोमक्षयात्स्त्रीणां सोमरोग इति स्मृतः ॥

शरीर के सन्धारण करने के कारण इन जलों की सोम संज्ञा है। इस सोम के क्षय होने से ही स्त्रियों के इस रोग को सोमरोग कहते हैं ॥ ६ ॥

तस्मात्सोमक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा । स एव सरुजः सोमो मूत्रेण स्रवते मुहुः ॥ ७ ॥

इसी कारण सोम के क्षय हो जाने से शरीर निश्चेष्ट बना रहता है। वही सोम पीड़ायुक्त होकर बारबार मूत्र के साथ स्रवित होता है ॥ ७ ॥

सोमलक्षणसंसृष्टं कालातिक्रान्तयोगतः । सोमक्रान्तिक्रमेणैव स्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णशः ॥
मूत्रातिसार इत्येव समाद्दुर्बलनाशनम् ॥ ८ ॥

सोम के लक्षणों से युक्त तथा काल के अतिक्रमण होने से (पुराना हो जाने से) उस सोम धातु के निकलने के क्रम से ही बार २ मूत्र का स्राव होता रहता है। इसी को मूत्रातीसार कहते हैं। इससे बल का नाश होता है ॥ ८ ॥

## अथ सोमरोगस्य चिकित्सा ।

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु । शर्करासहितं खादेत्सोमधारणमुत्तमम् ॥ १ ॥

सोमरोग चिकित्सा—केला, आंवले का स्वरस, मधु तथा शर्करा मिलाकर खावे तो सोम के धारण करने के लिये यह उत्तम योग है अर्थात् इस योग से सोम या जलीय धातु का बहना सोमरोग कम होता है ॥ १ ॥

माषचूर्णं समधुकं विदारीमधुशर्कराम् । पयसा पाययेत्प्रातः

उड़द का चूर्ण, मुलहठी का चूर्ण, विदारीकन्द का चूर्ण, मधु और शर्करा को समान लेकर प्रात दूध के अनुपान से पान करने से सोम का वेग धारण होता है अर्थात् सोम रोग नष्ट होता है ॥ २ ॥

जलेनाऽऽमलकीबीजकल्कं समधुशर्करम्। पिबेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥

श्वेत प्रदर चिकित्सा—आँवले के बीज को जल के साथ पीसकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर उसमें मधु और शर्करा मिलाकर तीन दिन तक पीने से श्वेत प्रदर नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सक्षौद्रनाहाररता सम्पिबेन्नागकेशरम्। त्र्यहं तक्रेण सपिष्टं श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ४ ॥

मट्ठा और भात का आहार करती हुई, तक्र के साथ नागकेसर को पीसकर ३ दिन तक जो स्त्री पीती है उसका श्वेत प्रदर नष्ट होता है ॥ ४ ॥

चूर्णं तु पद्मवासस्य तिलतैलेन लेहयेत्। सप्तरात्रेण योषाणां श्वेतप्रदरनाशनम् ॥ ५ ॥

कटसरैया का चूर्ण तिल के तेल में मिलाकर सात दिन तक चाटने से स्त्रियों का श्वेतप्रदर नष्ट होता है ॥ ५ ॥

अत्रैव मूत्रातिसारस्य चिकित्सामाह—

स एव सततं सोमः स्रवेन्मूत्रेण चेन्मुहुः। सत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्तरुणीं सुराम् ॥ १ ॥

मूत्रातिसार चिकित्सा—वही पीड़ा करता हुआ सोम यदि मूत्र के साथ बार बार आवे तो इलायची के दाने और तेजपात के चूर्ण का प्रक्षेप देकर स्त्री को सुरा पिलाना चाहिये, इससे मूत्रातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

तालकन्दं च खर्जूरं मधुकं च विदारिकाम्। सितामधुयुतां खादेन्मूत्रातीसारनाशनम् ॥ २ ॥

तालवृक्ष का कन्द, खजूर, मुलहठी और विदारीकन्द को समान भाग लेकर चूर्ण कर शर्करा और मधु के साथ खाने से मूत्रातिसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

चक्रमर्दकमूलं तु सपिष्टं तण्डुलाम्बुना। प्रभातसमये पीतं जलप्रदरनाशनम् ॥ ३ ॥

चकवड़ के मूल को तण्डुलोदक के साथ पीस कर प्रातःकाल पान करने से जल प्रदर (मूत्रातिसार) नष्ट होता है ॥ ३ ॥

कदलीघृतम्—

कदलीकन्दनिर्यासद्रोणे शतपलान्वितम्। कदलीकुसुमं पक्त्वा क्वाथं पादावशेषितम् ॥ १ ॥
घृतप्रस्थं पयस्तुल्यं पिप्पल्येलालवङ्गकम्। कपित्थस्य फलं मांसी कदलीकन्दचन्दनम् ॥
न्यग्रोधादिगणैः सार्धं सर्वान्वारिसमुद्भवान्। सर्वं समं कर्षमात्रं कल्कीकृत्वा पचेच्छनैः ॥३॥
घृतं क्वाथं च कल्कं च पक्त्वा चैवावतारयेत्। प्रातःकाले पिबेन्नित्यं सेवयेत्कर्षमात्रकम् ॥४॥
सोमरोगं हरेद्दाहं मूत्रकृच्छ्राश्मरीं तथा। प्रमेहान्विंशतिं हन्यात्प्रमेहगजकेसरी ॥ ५ ॥
मूत्रातिसारमप्यन्यं व्याधिं विध्वंसयेद् ध्रुवम्। कदलीकन्दनामेदं घृतं सर्वरुजापहम् ॥ ६ ॥

कदली घृत—केले की जड़ का स्वरस १ द्रोण (चार आढक) लेकर इसमें केले का फूल सौ पल मिलाकर विधिपूर्वक क्वाथ करे चौथाई शेष रहने पर उतार छान लेवे और गोघृत एक प्रस्थ, गोदुग्ध एक प्रस्थ, पीपल, इलायची के दाने, लवंग कैथ का फल, जटामासी, केले का कन्द, लालचन्दन न्यग्रोधादि गण की ओषधियाँ और सभी प्रकार के कमल को एक २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक कल्क कर उपरोक्त सभी द्रव्य घृत, क्वाथ तथा कल्कादि को धीमे २ मन्दाग्नि पर घृत पाक की विधि से पाक कर उतार लेवे। इस घृत को नित्य प्रातःकाल एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से सेवन करना चाहिये। इससे सोमरोग नष्ट होता है दाह, मूत्रकृच्छ्र अश्मरी तथा बीसों प्रकार के प्रमेह रोग नष्ट होते हैं। यह औषध प्रमेहरूपी हाथी के लिये सिंह के समान है अर्थात् इससे प्रमेह अवश्य नष्ट होते हैं तथा मूत्रातिसार आदि अन्य रोगों को भी अवश्य नष्ट करता है यह कदलीकन्द नामक घृत सब प्रकार की पीड़ा (रोग) को नष्ट करता है ॥ १-६ ॥

रस—

कूष्माण्डपत्रस्वरसैः पक्वं पारदनिष्ककम्। द्विनिष्कं गन्धकं कृत्वा उष्णते कज्जलीकृतम् ॥
असौ समरिचः सोमरोगातिसारविनाशनः ॥ १ ॥

शुद्ध पारद को एक निष्क (चार माशा) लेकर श्वेतकूष्माण्ड के पत्तों के स्वरस में दबावे

जब स्वरस गल जावे तब उसमें २ निष्क शुद्ध गन्धक मिलाकर अग्नि पर ही कज्जली करके इसमें मरिच का चूर्ण मिलाकर सेवन करने से सोमरोग तथा मूत्रातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

इति सोमरोगमूत्रातिसारप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ योनिरोगाधिकारः ।

तत्र योनिव्यापद्रोगाणां निदानान्याह—

विंशतिर्व्यापदो योनेर्निर्दिष्टा रोगसंग्रहे । मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनाऽऽर्तवेन च ॥
जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाद्वा शृणु ताः पृथक् ॥ १ ॥

योनिव्यापद् निदान—रोग संग्रह में २० प्रकार के योनि (व्यापद्) रोग कहे गये हैं। ये रोग स्त्रियों को मिथ्या आहार विहार के कारण, आर्तव के दूषित होने के कारण, बीज दोष के कारण अथवा दैव दोष से (पूर्व जन्म के फलस्वरूप) उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

रोगिणीनां योनीनां नामान्याह—

उदावर्ता तथा वन्ध्या विप्लुता च परिप्लुता । वातला योनिरुज्ज्ञेया वातदोषेण पञ्चधा ॥२॥

योनिरोगों का नाम—उदावर्ता वन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता और वातला ये पांच प्रकार के योनिरोग वात के दूषित होने से होते हैं ॥ २ ॥

पञ्चधा पित्तदोषेण सप्ताऽऽद्यौ लोहितक्षया । प्रस्रंसिनी वामिनी च पुत्रघ्नी पित्तला तथा ॥३॥

लोहितक्षया, प्रस्रंसिनी, वामिनी, पुत्रघ्नी और पित्तला ये पाच प्रकार के योनि रोग पित्त के दोष से होते हैं ॥ ३ ॥

अत्यानन्दा कर्णिनी च चरणानन्दपूर्विका । अतिपूर्वाऽपि सा ज्ञेया श्लेष्मला च कफादिमा ॥

अत्यानन्दा, कर्णिनी, आनन्दचरणा, अचरणा और श्लेष्मला ये पांच प्रकार के योनिरोग कफ के दोष से होते हैं। आनन्दचरणा की ही अतिचरणा भी संज्ञा है ॥ ४ ॥

षण्ढषण्ढिनी च महती सूचीवक्त्रा त्रिदोषिणी । पञ्चैता योनयः प्रोक्ता सर्वदोषप्रकोपतः ॥

षण्ढी, अण्डिनी, महती, सूचीवक्त्रा और त्रिदोषिणी ये पांच प्रकार के योनिरोग त्रिदोष के कोप से होते हैं ॥ ५ ॥

तासां लक्षणमाह—

या फेनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति । सा तु योनि कफेनैवमार्तवं च विमुञ्चति ॥ ६ ॥

वातजा के लक्षण—योनि में फेनयुक्त रज कठिनता पूर्वक निकले उसे उदावर्ता कहते हैं ॥६॥

वन्ध्या नष्टार्तवा ज्ञेया विप्लुता नित्यवेदना । परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥

जिस योनि से आर्तव (रज) नहीं आता हो उसे नष्टार्तवा (वन्ध्या) और जिस योनि में नित्य पीड़ा होती हो उसे विप्लुता तथा जिस योनि में मैथुन के समय अत्यन्त पीड़ा होती है उसे परिप्लुता कहते हैं ॥ ७ ॥

वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता । चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु भवन्त्यनिलवेदना ॥

जो योनि कर्कश (रूक्ष) स्तब्ध (कठिन) और शूल एवं तोद (सुई चुभाने के समान पीड़ा से युक्त होती है उसे वातला कहते हैं। इनमें (उदावर्ता, वन्ध्या, विप्लुता और परिप्लुता में) वात की पीड़ायें होती हैं ये वातज योनिरोग हैं ॥ ८ ॥

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षया । प्रस्रंसिनी स्रंसते च क्षोभिता दुःप्रजायिनी ॥९॥

पित्तजा के लक्षण—जिस योनि से दाहयुक्त रक्त का क्षय होता रहे उसे लोहितक्षया और जो योनि क्षुभित होने में (मैथुन के घर्षण से) अपने स्थान से बाहर निकल आती है और कष्टपूर्वक जिससे प्रसव होता है उसे प्रस्रंसिनी कहते हैं ॥ ९ ॥

सवातमुद्गिरेद्बीजं वामिनी रजसा युतम् । स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंक्षयात् ॥१०॥

जो अपानवायु के विगुण होने से बीर्य सहित आर्तव को बाहर निकाल देती है उसे वामिनी और जो योनि वायु द्वारा आर्तव के क्षीण हो जाने पर बार बार स्थित हुए गर्भ को नष्ट कर देती है उसे पुत्रघ्नी कहते हैं ॥ १० ॥

अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता । चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥

जिस योनि में अत्यन्त दाह, पाक और ज्वर रहता है (तथा नील, पीत और कृष्ण वर्ण का

आर्तव निकलता है और अधिक उष्णता रहती है ) उसे पित्तला कहते हैं इन चारों योनियों में अर्थात् लोहितक्षया, प्रस्रंसिनी, वामिनी तथा पुत्रघ्नी में पित्तदोष के लक्षण प्रबल होते हैं ॥ ११ ॥

अत्यानन्दा न सन्तोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति । कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मासृग्भ्यां प्रजायते ॥

कफजा के लक्षण—जिस योनि में मैथुन करने से सन्तोष नहीं होता उसे अत्यानन्दा और जिस योनि में कफ और रक्त के दोष से कर्णिका अर्थात् मांसकन्द के आकार की ग्रन्थि हो जाती है ( जो स्त्री पूर्ण युवावस्था से पूर्व ही गर्भ धारण कर लेती है, उसके गर्भ से रुका हुआ वायु कफ तथा रक्त से मिलकर योनि में एक प्रकार की ग्रन्थि उत्पन्न कर देता है, जिससे रक्त ( आर्तव ) का मार्ग रुक जाता है ) उसे कर्णिनी योनि कहते हैं ॥ १२ ॥

मैथुनेऽचरणापूर्वं पुरुषादतिरिच्यते । बहुशश्चातिचरणा तयोर्बीजं न विन्दति ॥ १३ ॥

जो योनि मैथुन के समय पुरुष से पूर्व ही स्खलित हो जाती है उसे अचरणा कहते हैं ( यह रोग अल्पावस्था में मैथुन करने से स्त्रियों को हो जाता है इस कारण, यह स्त्री वीर्य ग्रहण नहीं करती है और इस रोग में पीठ, जङ्घा, उरु तथा वङ्क्षण में पीड़ा होती है ) और जो योनि बहुत मैथुन करने पर स्खलित होती है, उसे अतिचरणा कहते हैं , ये दोनों ( अचरणा और अतिचरणा ) वीर्य नहीं ग्रहण करती हैं । ( यह रोग बहुत मैथुन करने के दोष से उत्पन्न होता है ) ॥ १३ ॥

श्लेष्मला पिच्छिला योनिः कण्डूग्रस्ताऽतिशीतला ।
स्वासुष्वपि चाऽऽस्वासु श्लेष्मलिङ्गोऽत्स्थ्यो भवेत् ॥ १४ ॥

जिस योनि में पिच्छिलता, कण्डु और अत्यन्त शीतलता हो उसे श्लेष्मला कहते हैं । इन चारों योनियों में अर्थात् अत्यानन्दा, कर्णिनी, चरणा वा अचरणा और अतिचरणा में कफज लक्षण प्रबल होते हैं ॥ १४ ॥

अनार्तवाऽस्तनी षण्ढी खरस्पर्शा च मैथुने । अतिकायगृहीतायास्तरुण्या अण्डिनी भवेत् ॥

त्रिदोषजा के लक्षण—जिस योनि में आर्तव न हो, जिस स्त्री को स्तन नहीं हो और उसके साथ मैथुन करने से अत्यन्त कर्कश प्रतीत हो उसे षण्ढी कहते हैं जो स्त्री बड़े लिङ्ग वाले पुरुष के साथ मैथुन करे और उसकी योनि अण्डे के समान बाहर लटके जावे उसे अण्डिनी कहते हैं ॥ १५ ॥

विवृता तु महायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता । सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १६ ॥

जिस योनि का मुख अत्यन्त फैला हुआ हो उसे विवृता कहते हैं । इसे ही पूर्व में महती कहा गया है जिस योनि का मुख अत्यन्त संवृत ( संकुचित ) हो उसे सूचीवक्त्रा कहते हैं ॥ १६ ॥

स्वासुष्वपि चाऽऽस्वासु सर्वलिङ्गनिदर्शनम् । पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥१७॥

षण्ढी, अण्डिनी, विवृता और सूचीवक्त्रा में सभी दोषों का प्रकोप होता है । ये सर्वदोषज पाँचों योनियाँ ( व्यापत्तियाँ ) असाध्य होती हैं ॥ १७ ॥

योनिकन्दस्य निदानमाह—

दिवा स्वप्नादतिक्रोधादायासादतिमैथुनात् । क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता मलाः ॥
पूयशोणितसंकाशं लकुचाकृतिसन्निभम् । जनयन्ति यदा योनौ नाम्ना कन्दं तु योनिजम् ॥

योनिकन्द रोग का निदान—दिन में अधिक सोने से, अत्यन्त क्रोध करने से, अधिक व्यायाम करने से, अत्यन्त मैथुन करने से, नख दन्त तथा अन्य छेदक पदार्थों से क्षत हो जाने से, वातादि दोष कुपित होकर पूय तथा रक्त के सदृश बड़हल फल के समान आकार की ग्रन्थि योनि में उत्पन्न कर देते हैं उसे योनिकन्द रोग कहते हैं ॥ १-२ ॥

रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विनिर्दिशेत् । दाहरागज्वरयुतं विद्यात्पित्तात्मकं तु तम् ॥३॥

जो योनिकन्द रूक्ष, विवर्ण तथा स्फुटित हो उसे वातिक जानना चाहिये और जिस योनिकन्द में दाह हो, राग ( विशिष्ट रक्तवर्ण ) हो और ज्वर हो उसे पैत्तिक जानना चाहिये ॥ ३ ॥

नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम् । सर्वलिङ्गसमायुक्तं सन्निपातात्मकं वदेत् ॥ ४ ॥

जिस योनिकन्द रोग में योनिकन्द का वर्ण नीले पुष्प ( अलसी आदि के पुष्प ) के समान हो तथा कण्डू हो उसे कफज जानना चाहिये और जिस योनिकन्द में सब दोषों के लक्षण हों उसे त्रिदोषज जानना चाहिये ॥ ४ ॥

## अथ योनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा।

वन्ध्याचिकित्सा—

आर्तवादर्शने नारी मत्स्यान्सेवेत नित्यशः। काञ्जिकं च तिलान्माषानुदश्चित् तथा दधि॥

वन्ध्या चिकित्सा—जिस स्त्री को ऋतु नहीं होता हो उसे नित्य मछली खाना चाहिये और कांजी सेवन करना चाहिये, तिल, उड़द, मट्ठा तथा दही पीना चाहिये॥ १॥

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रराजिकोग्रासनं त्र्यहम्। शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद् ध्रुवम्॥२॥

ज्योतिष्मती (मालकांगनी) के पत्ते, राई, अजवाइन, असन या विजैसार को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर तीन दिन तक पान करने से अवश्य आर्त्तव आना आरम्भ हो जाता है॥ २॥

सगुडः श्यामतिलानां क्वाथः प्रातः सुशीलितो नार्या।
जनयति कुसुमं सहसा गतमपि सुचिरं निरातङ्कम्॥ ३॥

कृष्ण तिलों का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें गुड़ का प्रक्षेप देकर (शीतल होने पर) प्रातः काल सेवन करने से बहुत दिनों का रुका हुआ भी आर्त्तव सहसा बिना कष्ट के आरम्भ हो जाता है॥ ३॥

तिलशेलुकारवीणां क्वाथं पीत्वा च गतरजा महिला।
सगुडं शिशिरं त्रिदिनाज्जनयति कुसुमं न सन्देहः॥ ४॥

कृष्ण तिल लसोढ़ा और कालाजीरा (कलौंजी) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बना कर उसमें गुड़का प्रक्षेप देकर पान करने से तीनदिन में रज आना निःसन्देह आरम्भ हो जाता है॥

इक्ष्वाकुबीजदन्ती चपलागुडमदनकिण्वयवशूकैः।
सस्नुकक्षीरैर्वर्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी॥ ५॥

माहरि का बीज, दन्तीमूल, पीपल, गुड़, मैनफल, सुराबीज, यवाखार और सेहुड़ के दूध को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर बत्ती बनाकर योनि में धारण करने से रज आना आरम्भ हो जाता है॥ ५॥

वन्ध्याया गर्भप्रदभेषजमाह—

बला सिता सातिबला मधूकं वटस्य शृङ्गं गजकेशरं च।
पुतः मधुक्षीरघृतैर्निपीय वन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते॥ १॥

गर्भप्रद भेषज—श्वेतबला (बरियारा) अतिबला, महुआ, वटका अङ्कुर (बरोह) और नागकेसर को समान भाग लेकर विधिपूर्वक पीसकर या चूर्ण कर घृत और मधु में मिलाकर गोदुग्ध के अनुपान करने से वन्ध्या को गर्भधारण होकर उत्तम पुत्र उत्पन्न होता है॥ १॥

अश्वगन्धाकषायेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम्। ऋतुस्नाताऽङ्गना प्रातः पीत्वा गर्भं दधाति हि॥

असगन्ध के कषाय से क्षीरपाक विधि से गोदुग्ध सिद्ध कर उसमें गोघृत भी मिलाकर ऋतु स्नान के पश्चात् प्रातः काल स्त्री यदि पीवे तो उसे गर्भधारण होता है॥ २॥

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं दुग्धेन कन्यया। पिष्टं पीत्वा ऋतुस्नाता गर्भं धत्ते न संशयः॥ ३

पुष्य नक्षत्र में उखाड़े हुए लक्ष्मणा के मूल को कुमारी कन्या से गोदुग्ध में पिसवा कर ऋतु से स्नान की हुई स्त्री यदि पीवे तो उसे अवश्य गर्भधारण होता है॥ ३॥

कुरण्टमूलं धातक्या कुसुमानि वटाङ्कुराः। नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं ध्रुवम्॥ ४॥

पियावासा या कटसरैया की जड़, धाय का पुष्प, वट वृक्ष के अङ्कुर नील कमल को समान भाग लेकर गोदुग्ध में पीसकर पान करने से गर्भधारण होता है॥ ४॥

याऽबला पिबति पारसपिप्पलजीरकेण सहितं हिताशना।
श्वेतया विशिखपुङ्खया सुतं सा सुतं जनयतीह नान्यथा॥ ५॥

जो स्त्री पारस पीपल को जीरा के चूर्ण के सहित श्वेत सरपुंखा को मिलाकर पीती है और हितकर पदार्थ भोजन करती है उसे अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है॥ ५॥

पत्रमेकं पलाशस्य पिष्ट्वा दुग्धेन गर्भिणी। पीत्वा पुत्रमवाप्नोति वीर्यवन्तं न संशयः॥ ६॥

जो गर्भिणी स्त्री पलास के एक पत्ते को गोदुग्ध में पीसकर नित्य पान करती है उस पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होता है इसमें संशय नहीं है। अर्थात् गर्भस्थिर होने पर यह योग प्रयोग में लाने से अवश्य पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ६ ॥

शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलस्य सपयस्कम्।
पीत्वाऽथोभयलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥ ७ ॥

सुअरासेम या केवाच की जड़ और कैथ का गूदा दूध के साथ पीसकर पीवे अथवा ईश्वरलिंगी के बीज को दूध के साथ पीसकर पीवे तो स्त्री कन्या नहीं उत्पन्न करती अर्थात् गर्भधारण के पश्चात् इस योग के सेवन से पुत्र अवश्य उत्पन्न होता है ॥ ७ ॥

क्षीरेण श्वेतबृहतीमूलं नासापुटे पिबेत्। पुत्रार्थं दक्षिणा नासा वामया कन्यकार्थिनी ॥ ८ ॥

श्वेत पुष्प की बड़ी कटेरी की जड़ को गोदुग्ध के साथ पीसकर पुत्र की इच्छा से दक्षिण नासा से पान करना चाहिये और कन्या की इच्छा से वाम नासा से पान करना चाहिये इससे सन्तान अवश्य होती है ॥ ८ ॥

लक्ष्मणा क्षीरसंयुक्ता नस्ये पाने प्रदाप्यताम्। तेन साऽपि लभेद्गर्भं पुत्रो विद्याधरो भवेत् ॥

लक्ष्मण को गोदुग्ध में पीसकर नस्य लेने से और पान करने से वन्ध्या को भी गर्भ होता है और विद्वान पुत्र उत्पन्न होता है ॥ ९ ॥

वामनाड्या भवेत्कन्या पुत्रो दक्षिणया भवेत्। रक्तेऽधिके भवेत्कन्या पुत्रः शुक्रेऽधिके भवेत् ॥

पुत्र और पुत्री का कारण—गर्भ यदि गर्भाशय के वाम नाड़ी में स्थित होता है तो कन्या होती है और दक्षिण नाड़ी में स्थित होता है तो पुत्र उत्पन्न होता है, तथा स्त्री का रज यदि अधिक हो तो कन्या और वीर्य अधिक हो तो पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १० ॥

शुक्रशोणितमिश्रेण भवेद्योऽसौ नपुंसकः। एरण्डस्य तु बीजानि मातुलुङ्गस्य चैव हि ॥
सर्पिषा परिपिष्टानि पिबेद्गर्भदानि च ॥ ११ ॥

वीर्य और रज के समान मिश्रण से जो संतान होती है वह नपुंसक होती है। एरण्ड के बीज और बिजौरे नीबू के बीज को समान लेकर गोघृत के साथ पीसकर पान करने से गर्भ धारण होता है ॥ ११ ॥

लङ्काकारं लक्ष्मणायाश्च मूलं कण्ठे बद्धं सर्पिषा नस्ययोगात्।
पीत्वा सूते पुत्रमत्यन्तवीर्यं पश्चादन्यानप्यमन्दाङ्गयष्टिः ॥ १२ ॥

लङ्का के आकार की लक्ष्मणा के मूल को लेकर कण्ठ में बांधने से तथा गाय के घी के साथ इसके चूर्ण को मिलाकर नासाद्वारा पान करने से स्त्री को अत्यन्त पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होता है तथा उसका शरीर भी क्षीण नहीं होता पश्चात् भी अन्यान्य अनेक पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १२ ॥

तिलतैलदुग्धफाणितदधिघृतमेकत्र पाणिना मथितम्।
पीतं सपिप्पलीकं जनयति पुत्रं परं महिला ॥ १३ ॥

तिल का तेल, गोदुग्ध, फाणित, दही और घी इन सबको एकत्र कर हाथ से मथ कर इसमें पीपल का चूर्ण मिलाकर पान करने से स्त्री उत्तम पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ १३ ॥

एकस्य मातुलुङ्गस्य बीजानि सकलान्यपि। ऋत्वन्ते दुग्धपिष्टानि पीत्वाऽऽप्नोत्यबला सुतम् ॥

एक बिजौरा नीबू के बीजों को लेकर गोदुग्ध के साथ पीसकर ऋतु के अन्त में (चतुर्थ दिवस) पान करने से स्त्री को पुत्र उत्पन्न होता है ॥ १४ ॥

फलघृतम्—

मञ्जिष्ठा मधुकं कुष्ठं त्रिफला शर्करा बला। मेदे पयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ १ ॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे प्रियङ्गुः कटुरोहिणी। उत्पलं कुमुदं द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ २ ॥
एतेषां कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्। शतावरीरसं क्षीरं घृताद्देयं चतुर्गुणम् ॥ ३ ॥
सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते। पुत्राञ्जनयते वीराम्मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ४ ॥
या चैवास्थिरगर्भा स्याद्या पुत्रं वा जनयेन्मृतम्। अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्यां प्रसूयते ॥
योनिरोगे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते। प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ६ ॥
नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम्। अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ॥

जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतं त्वत्र प्रयुज्यते। आरण्यगोमयेनेह वह्निज्वाला च दीयते ॥ ८ ॥

फलघृत—मजीठ, मुलहठी, कूठ, दरद, बहेड़ा, आँवला, शर्करा ( चीनी ), बरियारा, मेदा, महामेदा, क्षीरकाकोली, काकोली, असगन्ध की जड़, अजमोदा अथवा अजवाइन, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियगु ( मालकांगनी ) कुटकी, नीलकमल कुमुदनी, लाख ( लाही ), काकोली, क्षीरकाकोली, लालचन्दन और श्वेत चन्दन को एक २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक कल्क कर एक प्रस्थ गोघृत के साथ मिलाकर पाक करे और इसमें शतावरी का रस ४ प्रस्थ, तथा गोदुग्ध ४ प्रस्थ को भी मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध कर ऐसे इस घृत को पान करके मनुष्य स्त्रियों को नित्य प्रसन्न कर सकता है। तथा इससे वीर-मेधावी तथा देखने में सुन्दर पुत्र उत्पन्न होते हैं। इससे जो स्त्री अस्थिर गर्भा हो अर्थात् जिस गर्भस्थिर नहीं रहता हो अथवा जिन्हें मरे हुए पुत्र उत्पन्न होते हों ( मृतवत्सा हो ) अथवा अल्पायु पुत्र होते हों अथवा जिसे केवल कन्या ही उत्पन्न होती हों उनके लिये तथा योनिरोग में, रजोदोष में, परिस्राव ( प्रदरादि ) में यह घृत उत्तम कहा गया है। इससे सन्तान की वृद्धि होती है, आयु बढ़ती है और सब प्रकार के ग्रहों का निवारण होता है इस घृत का नाम फल घृत है इसे अश्विनी कुमारों ने निर्मित किया है। इसमें लक्ष्मणा मूल मिलाना उत्तम है इस औषध में एक वर्ण की तथा जीवित वत्सा ( जिसका बछड़ा जीता हो ) ऐसी गौ का घृत प्रयोग में लाना चाहिये तथा वन के गोमय ( कण्डा ) के आँचे पर घृत सिद्ध करना चाहिये ॥ १-८ ॥

गर्भनिवारणम्—

पिप्पलिविडङ्गटङ्कणसमचूर्णं या पिबेत्पयसा। ऋतुसमये न हि तस्या गर्भः संजायते क्वापि ॥

पीपल, वायविडंग और शुद्ध सोहागा को समान भाग लेकर चूर्ण कर ऋतु के समय दूध के साथ पान करे तो उसे कभी गर्भ नहीं स्थिर होता है ॥ १ ॥

आरनालपरिपेषितं त्र्यहं या जपाकुसुममत्ति पुष्पिणी।
सपुराणगुडपलसेविनी सा दधाति नहि गर्भमङ्गना ॥ २ ॥

काँजी के साथ ओड़हुल के फूल को पीस कर जो स्त्री ऋतु के समय तीन दिन खाती है तथा पुराने गुड़ को एक पल प्रतिदिन खाती है वह गर्भ नहीं धारण करती है ॥ २ ॥

तैलाविलं सैन्धवलवणखण्डं निधाय रण्डा निजयोनिमध्ये।
नरेण सार्धं रतिमातनोति या न सा हि गर्भं लभते कदाचित् ॥ ३ ॥

जो स्त्री मैथुन के पूर्व सेंधानमक के खण्ड को तेल में भिगो कर अपनी योनि में रख लेती है और पश्चात् पुरुष के साथ मैथुन करती है उसे कभी गर्भ नहीं स्थिर होता है ॥ ३ ॥

तण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा। ऋत्वन्ते तु त्र्यहं पीत्वा वन्ध्याः कुर्वन्ति योषितः ॥

चौराई शाक की मूल को चावल के जल के साथ पीस कर ऋतु के अन्त में जो स्त्री तीन दिन पान कर लेती है उसका गर्भ स्थिर नहीं होता है ॥ ४ ॥

धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठेन युक्तितः। ऋत्वन्ते रमते या स्त्री न सा गर्भमवाप्नुयात् ॥

जो स्त्री ऋतु के अन्त में नीम की लकड़ी से योनि के छिद्र में युक्तिपूर्वक धूप देकर मैथुन कराती है उसे गर्भ स्थिर नहीं होता है ॥ ५ ॥

तालीसगैरिके पीते बिडालपदमात्रके। शीताम्बुना चतुर्थेऽह्नि वन्ध्या नारी प्रजायते ॥ ६ ॥

जो स्त्री तालीसपत्र और गेरू को समान भाग लेकर एक कर्ष की मात्रा में ऋतु के चौथे दिन शीतल जल के साथ पान करती है वह वन्ध्या हो जाती है ॥ ६ ॥

आदाय कृष्णचतुर्दश्यां धत्तूरस्य च मूलकम्। कटौ बद्ध्वा रमेत्कान्तं न गर्भः संभवेत्क्वचित् ॥
मुक्ते न लभते गर्भं पुरा नागार्जुनोदितम्। तन्मूलचूर्णे योनिस्थे न गर्भः संभवेत्क्वचित् ॥८॥

धतूरे की जड़ को कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को लेकर कमर में बाँधकर जो स्त्री पति के साथ मैथुन करती है उसे गर्भ नहीं धारण होता है और जब उसे खोल देगी तो गर्भ स्थिर हो जावेगा ऐसा नागार्जुन ने कहा है। यदि धतूरे की जड़ के चूर्ण को योनि में रख लेवे तो कभी गर्भ स्थिर नहीं होगा ॥ ८ ॥

गर्भपातनविधि—

गृञ्जनबीजं टङ्कत्रितयं तावच्च दाडिमीमूलम्। गुग्गुलटङ्कद्वितयं सिन्दूरं टङ्कयुगलं च ॥ १ ॥

समधं स्वस्वमध्ये तोयेनैतत्प्रिपीय गर्भवती । रण्डा योषिद्गर्भं वेश्या या पातयत्याशु ॥ २ ॥

गर्भपातन विधि—गाजर के बीज तीन टङ्क, अनार की जड़ ३ टङ्क, तुवरी ( राई या अरहर की दाल ) २ टङ्क और सिन्दूर २ टङ्क ( ८ मासा ) लेकर विधिपूर्वक पीसकर जल के साथ गर्भवती स्त्री पान करे तो गर्भ गिर जाता है। विधवा स्त्री अथवा वेश्या स्त्री इस योग से शीघ्र गर्भ गिरा सकती हैं ॥ १-२ ॥

निर्गुण्डीद्रवसंपिष्टं चित्रमूलं मधुप्लुतम् । कर्षं पीत्वा स्रवयत्याशु गर्भं रण्डा कुलोद्भवम् ॥३॥

चीते की जड़ को सम्भालू के स्वरस के साथ पीस कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर एक कर्ष के प्रमाण की मात्रा से पान करने से गर्भ शीघ्र गिर जाता है ॥ ३ ॥

काण्डमेरण्डपत्रस्य योनावष्टाङ्गुलं क्षिपेत् । चतुर्मासोद्भवो गर्भः स्रवत्येव हि तत्क्षणात् ॥४॥

एरण्ड के पत्तों की डंडी को आठ अङ्गुल तक योनि में प्रवेश कराने से चार मास का भी गर्भ हो तो वह उसी क्षण स्रवित हो जाता है ॥ ४ ॥

देवालये तु यच्चूर्णं कर्षकं तोयपेषितम् । पिबेद्गर्भवती नारी गर्भः स्रवति तत्क्षणात् ॥ ५ ॥

देव मन्दिर के चूने को एक कर्ष लेकर जल के साथ पीस कर गर्भवती स्त्री यदि पीवे तो उसी क्षण गर्भ स्राव हो जाता है ॥ ५ ॥

आलोड्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम् । ससिन्धुमासुरीतैलविषमागतगर्भनुत् ॥ ६ ॥

घोड़ी के पुरीष ( लीद ) को कांजी में घोलकर कपड़े में छानकर उसमें सेंधानमक, जवाखार, राई तेल और शुद्ध विष को मिलाकर पिलाने से स्थिर गर्भ नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

वातादिदुष्टयोनिव्यापद्रोगाणां चिकित्सा—

तासु योनिषु घाऽऽद्यासु स्नेहादिक्रम इष्यते । वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥१॥

वातज योनि की चिकित्सा—वातज योनिरोगों में स्नेहादि चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् बस्ति कर्म, अभ्यङ्ग ( तैल मर्दनादि ), परिषेक, प्रलेप और पिचुधारण ( फाहा आदि धारण करना ) लाभदायक है ॥ १ ॥

नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः । तिलतैलं पचेत्तस्मिन् पिचुं तस्य विधारयेत् ॥ २ ॥

विप्लुतायां सदा योनौ व्यथा तेन प्रशाम्यति । वातलां कर्कशां स्तब्धामल्पस्पर्शां तथैव च ॥

कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वेश्मनि संवृते । धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ॥ ४ ॥

तगर, बड़ी कटेरी, कूठ, सेंधानमक और देवदारु को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर तैल पाक की विधि से तिल के तेल में तैल सिद्ध कर उसका पिचु धारण करने से ( फाहा योनि में रखने से ) स्त्री की विप्लुता, योनि की व्यथा ( पीड़ा ) शान्त होती है। वातला, कर्कशा, स्तब्धा और अल्प स्पर्श योनि को कुम्भी स्वेद एक बन्द घर में रह कर देना चाहिये अथवा सदा तिल के तेल का पिचु ( फाहा ) योनि में धारण करना चाहिये ॥ २-४ ॥

रास्नाश्वगन्धावृषकैर्योनिशूलहरं पयः । गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ॥ ५ ॥

रास्ना, असगन्ध और अडूसा को समान भाग लेकर दुग्धपाक विधि से दूध में सिद्ध कर पान करने से योनिशूल नष्ट होता है। गुरुच, आमला, हरड़, बहेड़ा और दन्तीमूल के बने हुए क्वाथ से योनि का सिंचन करने से भी योनिशूल नष्ट होता है ॥ ५ ॥

बिल्वभाकवज बीजकल्कं मद्येन पाययेत् । तेन योनिगतं शूलमाशु शाम्यति योषिताम् ॥

बेल का गूदा और भांगरे के बीज को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर मदिरा के साथ स्त्रियों को पिलाने से योनिशूल शीघ्र ही शमन हो जाता है ॥ ६ ॥

उपकुञ्चिकां पिप्पलीं च मदिरां लाभतः पिबेत् । सौवर्चलेन संयुक्तां योनीशूलनिवारिणीम् ॥

कृष्णजीरा और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क बनाकर उसमें सौवर्चल नमक मिलाकर यथेष्ठ मात्रा में मदिरा के साथ पिलाने से योनिशूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पित्तलानां च योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रियाः । शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥

पित्तज योनि चिकित्सा—पित्तज योनियों में सिंचन, अभ्यङ्ग, तथा पिचु ( फाहा ) धारण करना चाहिये, शीतल तथा पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये और स्नेहन के लिये औषधि सिद्ध घृत का प्रयोग करना चाहिये ॥ ८ ॥

प्रस्रंसिनीं घृताभ्यक्तां क्षीरस्विन्नां प्रवेशयेत् । विधाय वेसवारेण ततो बन्ध समाचरेत् ॥ ९ ॥

प्रस्रंसिनी योनि को घृत से चिकनी करके दूध के वाष्प से स्वेदित कर अन्दर प्रवेश करा देना चाहिये और वेसवार सेवन कराकर लंगोट आदि से बँधवा देना चाहिये ॥ ९ ॥

वेसवार —

शुण्ठीमरीचकृष्णाभिर्धान्यकाजाजिदाडिमैः । पिप्पलीमूलसंयुक्तैर्वेसवारः स्मृतो बुधैः ॥१॥

वेसवार—सोंठ, मरिच, पीपल, धनियाँ, जीरा, अनारदाना तथा पिपरामूल को समान भाग लेकर चूर्ण कर एकत्र मिलाकर रख लेवे । इसे वैद्य वेसवार कहते हैं ॥ १ ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा । सूर्यकान्ताभवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना ॥२॥

योनिदाह में आंवले के स्वरस में श्वेत शर्करा मिलाकर पीना चाहिये अथवा तण्डुलोदक में सूर्यकान्ता ( सूर्यमुखी ) के मूल को पीसकर पीना चाहिये ॥ २ ॥

योन्यां तु पूयस्राविण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितैः । सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः सम्पूरणं हितम् ॥

जिस योनिसे पूय निकलता हो शोधन द्रव्यों से बना हुआ गोमूत्र तथा सेंधानमक से युक्त पिण्डों से पूरण करना चाहिये अर्थात् उपरोक्त विधि से पिण्ड बनाकर धारण कराना चाहिये ॥३॥

पिचवश्च घृताभ्यक्ताश्चन्दनाम्भःसमुत्थिताः । योनौ स्थाप्या स्त्रिया दाहकृच्छ्रपाकप्रशान्तये ॥

घिसे हुए चन्दन के जल में भिगोये हुए तथा घृत से स्निग्ध किये हुए पिचु ( रूई के फाहा ) को धारण करने से योनिदाह तथा योनिपाक शमन होता है ॥ ४ ॥

योन्यां श्लेष्मसमुद्भूतायां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् । तैलं सीधु यवान्नं च पथ्यारिष्टं च योजयेत् ॥

कफज योनि चिकित्सा—कफज योनि रोग में सब प्रकार के रूक्ष तथा उष्ण औषधि का प्रयोग करना चाहिये और तेल, सीधु, यव अन्न का पथ्य एवं अभयारिष्ट का प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

गुडूचीत्रिफलादन्ती क्वथितोदकधारया । योनिं प्रक्षालयेत्तेन ततः कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ६ ॥

योनि कण्डु में—गुरुच, आमला, हरड़, बहेड़ा और दन्तीमूल के विधिपूर्वक बने क्वाथ की धारा से योनि का प्रक्षालन करना चाहिये, इससे खुजली का शमन होता है ॥ ६ ॥

मुद्गपुष्पं सखदिरं पथ्या जातीफलं तथा । पूगीफलं च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपेद्भगे ॥
योनिर्भवति संकीर्णा न स्रवेच्च जलं ततः ॥ ७ ॥

स्राव चिकित्सा—मूँग के फूल, खैर ( सार ), हरड़, जायफल, पाठा ( पुरइनपाढी ) और पूगीफल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर वस्त्र में छानकर भग में छोड़ना चाहिये । इससे योनि संकीर्ण ( संकुचित ) हो जाती है और उससे जल का स्राव नहीं होता है ॥ ७ ॥

कपिकच्छूभवं मूलं क्वाथयेद्विधिनाऽम्भसा । योनिः संकीर्णतां याति क्वाथेनानेन धावनात् ॥

कपिकच्छू ( केवांच ) के मूल का क्वाथ बनाकर उससे धोने से योनि संकुचित हो जाती है ॥

पिप्पल्या मरिचैर्माषैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः । वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधनी ॥

योनि शोधन—पीपल मरिच, उड़द, सौंफ, कूठ और सेंधानमक को समान भाग लेकर पीसकर विधिपूर्वक प्रदेशिनी अङ्गुली के समान वर्ति बनाकर योनि में धारण करने से योनि का शोधन होता है ॥ ९ ॥

सुरामण्डेऽपि स्विन्नो धार्यः पिचुर्योनौ कफात्मनि । कण्डूपैच्छिल्यसंस्रावशैथिल्यविनिवृत्तये ॥

कफ योनि में सुरा के ऊपर के द्रव पदार्थ ( भाग ) में रूई भिगो कर उसका पिचु ( फाहा ) धारण करना चाहिये । इससे योनि की कण्डु, पिच्छिलता, स्राव और शिथिलता की निवृत्ति होती है ॥ १० ॥

सुगन्धानां पदार्थानां कल्कचूर्णैः शृतैः कृतः । योनौ दौर्गन्ध्यशमनः पूयपैच्छिल्यमार्जि च ॥

सुगन्धित पदार्थों के कल्क, चूर्ण तथा क्वाथ के व्यवहार से ( लेप, पूरण तथा धावन प्रयोग से ) योनि की दुर्गन्धि, पूय और पिच्छिलता नष्ट होती है ॥ ११ ॥

सन्निपातसमुत्थायां कार्या योन्यां सदा क्रियाः । साधारणा दशाह्वी श्रीमदाचार्यचिदुर्दिताः ॥

सन्निपातज योनि चिकित्सा—सन्निपातज योनि में सदा साधारणतः त्रिदोष नाशक

चिकित्सा करनी चाहिये और सन्निपातज योनि में दशमूल तथा सुण्ठी के क्वाथ का पिचु ( फाहा ) धारण करना हितकर होता है ॥ १२ ॥

जीरकद्वितय कृष्णा सुषवी सुरभिर्वचा । वासक सैन्धव चापि यवक्षारो यवानिका ॥ १३ ॥
एषां चूर्णं घृते किञ्चिद्भृष्टं खण्डेन मोदकम् । कृत्वा खादेद्यथावह्नि योनिरोगाद्विमुच्यते ॥

जीरकादि मोदक—श्वेत जीरा, कृष्ण जीरा, पीपल, सुषवी ( छोटी करेली या कृष्ण जीरक ) सुरभी ( राल अथवा जायफर ), वच, अरूसा, सेंधानमक, यवाखार तथा अजाइन को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण करके गोघृत के साथ थोड़ा भूनकर खाड मिलाकर मोदक प्रस्तुत कर अग्नि बल के अनुसार मात्रा से सेवन करने से योनि रोग से छुटकारा होता है अर्थात् इस जीरकादि मोदक से योनिरोग नष्ट होता है ॥ १३-१४ ॥

मूषकक्वाथसंसिद्धस्तिलतैलकृतः पिचुः । धारयेद्योनिरोगास्तास्ततो योनौ न संशय ॥१५॥

मूषक तैल—मूसक ( मूस ) के मांस के क्वाथ के साथ तैलपाक विधि से तिल के तेल को सिद्ध कर उसका पिचु ( फाहा ) योनि में धारण करने से योनिरोग निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १५ ॥

त्रिफलादिघृतम्—

त्रिफला द्वौ सहचरौ गुडूचीं सपुनर्नवाम् । शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नामेदाशतावरी ॥ १ ॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे । तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिरोगप्रशान्तये ॥ २ ॥

त्रिफलादिघृत—आँवला, हरड़, बहेड़ा, दोनों सहचर ( पीली और नीली पृथक् २ ) गुरुच, पुनर्नवा, कौआठोंठी हलदी, दारुहलदी, रासना, मेदा और शतावरी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर एक प्रस्थ ( चतुर्गुण ) मूर्च्छित गोघृत और घृत से चतुर्गुण गोदुग्ध में मिलाकर घृतपाक की विधि से घृत सिद्धकर स्त्री को पान कराने से योनिरोग नष्ट होते हैं ॥१-२॥

योनिकन्दस्य चिकित्सा—

गैरिकाम्रास्थिजठररजन्यञ्जनकट्फलैः । पूरयेद्योनिमेतेषां चूर्णैः क्षौद्रसमन्वितैः ॥ १ ॥

योनिकन्द चिकित्सा—गेरू, आम, की गुठली, पुरानी हलदी, सौवीराञ्जन अथवा रसवत और कायफल समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु मिलाकर योनि में पूरण करने से योनि कन्द नष्ट होता है ॥ १ ॥

त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेचयेत् । प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ २ ॥

आँवला, हरड़ और बहेड़ा के बने क्वाथ में मधु का प्रक्षेप देकर सिंचन करने से योनिकन्द नष्ट होता है ॥ २ ॥

आखोर्मांसं सपदि बहुधा सूक्ष्मखण्डीकृतं तत् तैले पाच्यं द्रवति नियतं पाचयेत्तेन सम्यक् । तत्तैलार्द्रं वसनमनिशं योनिभागे दधाना सर्वं व्रीडाजनकमचिरा योनिकन्दं निहन्ति ॥ ३ ॥

मूषकादि तैल—मूस को मारकर शीघ्र ही खड २ करके तेल में डालकर पकावे, भलीभाँति मांस पक जाने पर उतार कर छान लेवे । उस तेल में वस्त्र भिगोकर निरन्तर योनि में धारण किये रहने से लज्जाकारक योनिकन्द रोग नष्ट होता है ॥ ३ ॥

इति योनिरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ स्त्रीगर्भरोगनिदानम् ।

तत्र गर्भस्य स्रावपातयोर्निदानमाह—

भयाभिघाततीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात् । गर्भे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ १ ॥

गर्भस्राव निदान—भय से, अभिघातादि हो जाने से, तीक्ष्ण तथा उष्ण पदार्थों के खाने-पीने तथा सेवन करने से गर्भपात की संभावना होती है । गर्भपात के समय प्रथम शूल के सहित रक्त आने लगता है ॥ १ ॥

स्रावपातयोरवधिमाह—

आ चतुर्थात्ततो मासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः । ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ २ ॥

गर्भपात की अवधि—गर्भाधान से चार मास के अन्दर यदि गर्भ गिरता है तो उसे गर्भस्राव कहते हैं क्योंकि चारमास तक गर्भद्रव अवस्था में रहता है । उसके बाद पाचवें और छठवें मास में यदि गर्भ गिरता है तो उसको गर्भपात कहते हैं क्योंकि चार मास के पश्चात् गर्भ स्थिर शरीर वाला हो जाता है ॥ २ ॥

गर्भपातस्य दृष्टान्त दर्शयति—

**गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैः पक्वं द्रुमादिव फलं पतति क्षणेन ॥ १ ॥**

असमय में गर्भपात—जिस प्रकार वृक्ष में लगा हुआ पका फल किसी प्रकार के आघात से गिर पड़ता है उसी प्रकार गर्भ भी अभिघात, विषमाशन और पीड़न आदि से गिर जाता है ॥१॥

भावप्रकाशाद्गर्भपातस्योपद्रवानाह—

**प्रस्रसमाने गर्भे स्याद्दाहः शूलश्च पार्श्वयोः। पृष्ठे रुक्प्रदरानाहौ मूत्रसङ्गश्च जायते ॥ १ ॥**

गर्भपात के उपद्रव—गर्भस्राव होने के समय दाह, पार्श्वभाग में शूल, पीठ में पीड़ा, प्रदर, आनाह और मूत्रावरोध आदि उपद्रव होते हैं ॥ १ ॥

गर्भस्य स्थानान्तरगमने चोपद्रवानाह—

**स्थानात्स्थानान्तरं तस्मिन्प्रयात्यपि च जायते। आमपक्वाशयादौ तु क्षोभः पूर्वेऽप्युपद्रवाः ॥**

गर्भ के स्थानान्तर गमन में उपद्रव—जब गर्भ एक स्थान से दूसरे स्थान में जाता है तब भी आमाशय तथा पक्वाशय आदि में क्षोभ उत्पन्न होता है तथा पूर्व के दाहादि उपद्रव भी उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

**प्रसवोचिते काले यथा मूढो गर्भो भवति तदाह।**

तत्र मूढगर्भस्य निदानसंप्राप्तिपूर्वकं सामान्यं लक्षणमाह—

**मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम्।**
**भुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भस्संख्यामतीत्य बहुधा समुपैति योनिम् ॥ १ ॥**

मूढ गर्भ के लक्षण—अपने दूषित होनेवाले कारणों से दूषित हुआ मूढ (निश्चल) वायु गर्भाशय में अवरुद्ध होकर गर्भ को मूढ कर देता है अर्थात् गर्भ की गति को रोक देता है उसे मूढ गर्भ कहते हैं। उस मूढ गर्भ से योनि और जठरादिकों में शूल और मूत्रावरोध होता है। उस समय दूषित वायु से भुग्न (टेढ़ा अथवा उल्टा हुआ) गर्भ कही हुई संख्या का भी उल्लंघन करके (सख्याभेद आगे कहेंगे) अनेक प्रकार से योनि के मुख पर उपस्थित होता है ॥ १ ॥

तत्राष्टौ प्रकारानाह—

**द्वारं निरुद्धशिरसा जठरेण कश्चित्कश्चिच्छरीरपरिवर्तनकुब्जदेहः।**
**एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन तिर्यग्गतो भवति कश्चिदवाङ्मुखोऽन्यः ॥ १ ॥**
**पार्श्वापवृत्तगतिरेति तथैव कश्चिदित्यष्टधा भवति गर्भगतिः प्रसूतौ ॥ २ ॥**

मूढ गर्भ के भेद—कोई मूढ गर्भ योनिद्वार को (विपुल) शिर से अवरुद्ध करता है, कोई (आध्मात) उदर से योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई शरीर के परिवर्तित (उल्टा) हो जाने से कुबड़ेपन द्वारा योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई एक भुजा से योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई दोनों बाहुओं से योनिद्वार को अवरुद्ध करता है, कोई नीचे मुख किये योनिद्वार को अवरुद्ध करता है और कोई पार्श्वों के भंग होने से विगुण गति होकर योनिद्वार को अवरुद्ध करता है। इस प्रकार मूढ गर्भ की आठ गतियां होती हैं ॥ १-२ ॥

सुश्रुतस्त्वष्टौ प्रकारान्तराण्याह—

**कश्चिद्द्वाभ्यां सक्थिभ्यां योनिमुखं प्रपद्यते ॥ १ ॥**
**कश्चिदाभुग्नैकसक्थिरितरेण सक्थ्ना ॥ २ ॥**
**कश्चिदाभुग्नसक्थिशरीरः स्फिग्देशेन तिर्यग्गतः ॥ ३ ॥**
**कश्चिदुदरपार्श्वपृष्ठानामन्यतमेन योनिद्वारं पिधायावतिष्ठते ॥४॥**
**अन्तःपार्श्वापवृत्तशिराः कश्चिदेकेन बाहुना ॥ ५ ॥**
**कश्चिदाभुग्नशिरा बाहुद्वयेन ॥ ६ ॥**
**कश्चिदाभुग्नमध्यो हस्तपादशिरोभिः ॥ ७ ॥**
**कश्चिदेकेन सक्थ्ना योनिद्वारं प्रतिपद्यतेऽपरेण पायुमिति ॥ ८ ॥**

सुश्रुत के मत से मूढ गर्भ के भेद—कोई मूढ गर्भ दोनों सक्थियों (जांघों) से पहले योनि के मुख में प्राप्त होता है। कोई एक सक्थि मुड़ी हुई और एक सीधी इस अवस्था में योनि मुख पर उपस्थित होता है। कोई सक्थि तथा शरीर को समेट कर स्फिग् प्रदेश (चूतड़) से तिरछा

होकर योनिमुख पर उपस्थित होता है। कोई उदर, पार्श्व तथा पीठ इनमें से किसी एक अंग से योनि मुख पर उपस्थित होकर योनिमार्ग को अवरुद्ध कर स्थित होता है। कोई पार्श्व के अभ्यन्तर शिर को झुका कर अथवा उलट कर एक बाहु से ही योनि मुख पर उपस्थित होता है। कोई शिर को टेढ़ा कर दोनों बाहुओं से योनि मुख पर उपस्थित होता है कोई मध्य भाग से टेढ़ा होकर हाथ पैर तथा शिर सहित ( एक साथ ) योनि मुख पर उपस्थित होता है। और कोई एक जंघा से योनि मुख पर उपस्थित होता है और दूसरे जंघा से गुदा के द्वार पर उपस्थित होता है ॥ १-८ ॥

अपराश्चतस्रो गतीराह—

सकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणः शिरसा च योनौ ।
सङ्गी च यो भवति कीलकवत्स कीलो । दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसङ्गी ॥
गच्छेद्भुजद्वयशिराः स च बीजकाख्यो योनौ स्थितः स परिघः परिघेण तुल्यः ॥ १ ॥

मूढ़ गर्भ के और चार भेद—मूढ़ गर्भ के सकीलक, प्रतिखुर, परिघ और बीज ये चार गतियां और होती हैं। इनमें जिस मूढ़ गर्भ में बाहु, पैर तथा शिर ऊपर होकर कील की भाँति आकर योनि द्वार को अवरुद्ध कर लेता है उसे सकीलक मूढ़गर्भ कहते हैं और जिस मूढ़ गर्भ में प्रथम हाथ-पैर बाहर दिखाई देवे शेष शरीर योनिमुख पर रुक जावे उसे प्रतिखुर कहते हैं। तथा जिस मूढ़ गर्भ में दोनों भुजाओं के मध्य में शिर होकर योनिद्वार पर आकर अवरुद्ध हो जाता है उसे बीजक कहते हैं और जिस मूढ़ गर्भ में योनिमुख पर परिघ कपाट बन्द करने वाले कुण्डे डंडे की भांति तिरछा आकर अड़ जाता है उसे परिघ कहते हैं ॥ १ ॥

परिघमाह, परिघस्य लक्षणं भोजेऽपि पठ्यते तद्यथा—

योनिमावृत्य यस्तिष्ठेत्परिघो गोपुरं यथा । तथान्तर्गर्भमायान्तं विद्यात्परिघसंज्ञितम् ॥ १ ॥

भोज के मत से परिघ के लक्षण—जिस प्रकार द्वार के कपाट में डंडा अड़कर कपाट को अवरुद्ध कर देता है उसी प्रकार भीतर से गर्भ तिर्छा टेढ़ा योनिद्वार पर आकर अड़ जाता है और प्रसव अवरुद्ध कर देता है उस मूढ़गर्भ को परिघ कहते हैं ॥ १ ॥

असाध्यमूढगर्भगर्भिण्योर्लक्षणमाह—

अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा । नीलोद्गतसिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥१॥

असाध्य मूढ़ गर्भ और गर्भिणी—जो गर्भिणी स्त्री शिर धारण करने में असमर्थ हो गयी हो अर्थात् जिसका शिर झुक गया हो, अङ्ग शीतल हो गये हों, लज्जा शून्य हो गयी हो अर्थात् कष्ट से ज्ञानहीन हो गयी हो और जिसके कोख आदि पर नीली रेखायें ( शिरायें ) उभर आई हों वह स्त्री गर्भ को नष्ट कर देती है और ऐसी अवस्था वाली स्त्री का गर्भ उस स्त्री को मार देता है ॥

मृतस्य मूढगर्भस्य प्रतिपाद्यत्वात्कर्षणार्थं लक्षणमाह—

गर्भास्पन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता । भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शूलश्चान्तर्मृते शिशौ ॥

मृतगर्भ के लक्षण—गर्भ जब पेट के अन्दर ही मर जाता है तब गर्भ का हिलना चलना गर्भस्थ बालक का हृदय स्पन्दन आदि बन्द हो जाता है अर्थात् गर्भ निश्चल हो जाता है, आवी अर्थात् प्रसव काल के चिह्न मूत्रश्लेष्मा निःसरणादि प्रसव वेदना का अभाव हो जाता है, शरीर वर्ण श्याम या पाण्डु हो जाता है, उस स्त्री के श्वासोच्छ्वास में दुर्गन्धि होती है और शूल होता है ॥ १ ॥

गर्भस्य मरणहेतुमाह—

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः पृथग्विधैः । गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥१॥

गर्भ के मरने के कारण—अनेक प्रकार के मानसिक तथा आगन्तुक दुःखों से माता के दुःखी होने से तथा रोगों से आक्रान्त या पीड़ित होने से गर्भ गर्भाशय में ही मर जाता है ॥ १ ॥

अपरमसाध्यगर्भिणीलक्षणमाह—

योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल एव च । हन्युः स्त्रियं मूढगर्भां यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥१॥

गर्भिणी के असाध्य लक्षण—योनि संवरण, कुक्षिसङ्ग, मक्कल तथा अन्य श्वासादि रोग मूढ़ गर्भ वाली स्त्री को मार देते हैं ( योनि संवरण का लक्षण आगे कहेंगे। कुक्षिसङ्ग में गर्भ

कुक्षि में आसक्त हो कर बाहर नहीं निकलता है और मक्कल्ल रोग में प्रकुपित वायु प्रसूता के बढ़ते हुए रक्त आदि को रोककर हृदय शिर एवं वस्ति स्थान में शूल उत्पन्न कर देता है सुश्रुत के वचन से अप्रजाता स्त्री का शूल भी मक्कल ही कहलाता है ) ॥ १ ॥

घातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरम्। अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्या योनिमार्गगः ॥२॥
मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृतिम्। कुरुते रुद्धमार्गत्वात् पुनरन्तर्गतेऽनिल ॥ ३ ॥
निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन्गर्भसंस्थितिम्। निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाऽऽशु विपद्यते ॥
उच्छ्वासरुद्धहृदयां नाशयत्यथ गर्भिणीम्। योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते ॥
अन्तकप्रतिमं घोरं नाऽऽरमेत चिकित्सितुम् ॥ ५ ॥

योनि संवरण रोग के लक्षण—गर्भावस्था में वातकारक अन्नपान आदि का अधिक सेवन करने से, अधिक मैथुन करने से और अधिक रात्रि जागरण से गर्भिणी के योनिमार्ग मे विचरने वाला वायु कुपित होकर योनि द्वार को संवृत ( सकुचित ) या अवरुद्ध कर देता है और मार्ग के अवरुद्ध होने से पुन वह वायु भीतर जाकर गर्भाशय के द्वार को अवरुद्ध कर गर्भ स्थिति को पीड़ित करता है जिस कारण गर्भ का मुह और श्वास रुक जाता है और वह गर्भ शीघ्र मर जाता है तथा उस गर्भ के मर जाने से गर्भिणी का उच्छ्वास और हृदय अवरुद्ध हो जाता है और उससे गर्भिणी का भी नाश हो जाता है अर्थात् गर्भ मर कर फूलता है, अवरोध हो जाता है और वह भी मर जाती है। इस रोग को योनि संवरण नाम का रोग कहते हैं, यह यमराज के समान कठिनरोग है इसकी चिकित्सा नहीं करनी चाहिये ॥ २-५ ॥

विकृताकृतिगर्भकारणं लक्षणञ्चाह—

ऋतुस्नाता तु या नारी स्वप्ने मैथुनमावहेत्। आर्तवं वायुरादाय कुक्षौ गर्भं करोति हि ॥१॥
मासि मासि विवर्धेत गर्भिण्या गर्भलक्षणम्। कललं जायते तस्या वर्जितं पैतृकैर्गुणैः ॥ २ ॥

विकृताकृति गर्भ के लक्षण—ऋतुकाल के पश्चात् स्नान की हुई स्त्री यदि स्वप्न में मैथुन करती है तो उस समय योनि में विचरने वाली वायु उसके आर्तव को गर्भाशय में ले जाकर गर्भ स्थित कर देती है। वह गर्भ प्रतिमास बढ़ता जाता है और गर्भिणी को सब गर्भ के लक्षण प्रतीत होते हैं। उस गर्भ से पिता के गुणों से रहित कलल अर्थात् कीचड़ या मांसपिण्ड के समान गर्भ उत्पन्न होता है ॥ १-२ ॥

सर्पवृश्चिककूष्माण्डविकृताकृतयश्च ये। गर्भास्त्वेते प्रपत्तव्य ज्ञेया पापकृतो भृशम् ॥ ३ ॥

साँप, बिच्छू और कुष्माण्ड आदि के आकार के तथा अन्य विकृत ( कुब्जादि विकारों से युक्त भी ) आकृति के जो गर्भ उत्पन्न हो जाते हैं वे तीनों प्रकार के गर्भ अत्यन्त पाप कर्म से उत्पन्न हुआ जानना चाहिये ॥ ३ ॥

## अथ स्त्रीगर्भरोगचिकित्सा।

तत्र गर्भस्य स्रावपातयोश्चिकित्सामाह—

गुर्विण्या गर्भतो रक्तं स्रवेद्यदि मुहुर्मुहुः। तन्निरोधाय सा दुग्धमुत्पलादिश्रृतं पिबेत् ॥ १ ॥

गर्भस्राव चिकित्सा—गर्भिणी स्त्री के गर्भ से यदि बार बार रक्त का स्राव हो तो उसके अवरोध के लिये वह स्त्री उत्पलादि गण से सिद्ध किया हुआ दूध पीवे। इससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

उत्पलादिगणमाह—

उत्पलं नीलमारक्तं कह्लारं कुमुदं तथा। श्वेताम्भोजं च मधुकमुत्पलादिरयं गणः ॥ १ ॥

उत्पलादि गण—नील कमल रक्त कमल कुमुद, रक्तकुमुद श्वेतकमल और मुलहठी का समान मिलित योग उत्पलादि गण कहा जाता है ॥ १ ॥

सशीलितो हरत्येव दाहं तृष्णां हृदामयम्। रक्तं पित्तं च मूर्च्छां च तथा छर्दिमरोचकम् ॥२॥

उत्पलादि गण के सेवन करने से दाह, तृष्णा, हृद्रोग, रक्तपित्त, मूर्च्छा, वमन और अरुचि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

लज्जालुधातकीपुष्पमुत्पलं मधु लोध्रकम्। अक्षरयया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ॥ ३ ॥

गर्भपात निवारण योग—लज्जालु या लजौनी धायके पुष्प नील कमल, मधु और लोध को

समान भाग लेकर पीस कर अवस्था के अनुसार मात्रा से स्त्री को जल में बैठाकर पिलाने से गर्भपात रुक जाता है ॥ ३ ॥

पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका। मधुच्छागीपयः पीता किं वा श्वेताऽपराजिता ॥४॥

कुम्हार के बर्तन बनाने के समय की हाथ में लगी हुई मिट्टी गर्भवती स्त्री को घोलकर पिलाने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है अथवा श्वेतपुष्प की अपराजिता के चूर्ण को मधु तथा बकरी के दूध के अनुपान के साथ पान करने से गिरता हुआ गर्भ रुक जाता है ॥ ४ ॥

पारावतमलं पीतस्त्र्यहं ताम्बूलवारिणा। गर्भिणीगमसो रक्तं स्तम्भयेन्निरुपद्रवम् ॥ ५ ॥

कबूतर के मल को ताम्बूल के स्वरस के साथ तीन दिन तक पान कराने से गर्भिणी के गर्भ से बहते हुए रक्त को रोक देता है और इस योग के सेवन से कोई दूसरा उपद्रव भी नहीं होता है॥

शर्करापिसतिल समांशकं माक्षिकेण सह भक्ष्यते यदा।
नास्ति गर्भपतनोद्भवं भयं पापभीतिरिव तीर्थसेवया ॥ ६ ॥

शकर, मसीडा ( कमलतन्तु ) और तिल को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर मधु के अनुपान से सेवन करने से गर्भपात का भय इस प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार तीर्थ करने से पाप का भय नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

कङ्कतीमूलमाबद्ध कुमारीसूत्रकैः समैः। कटिदेशे नितम्बिन्या गर्भपातं निवारयेत् ॥ ७ ॥

*अतिबला के मूल को कुमारी कन्या के हाथ के बने हुए गर्भवती के शरीर के बराबर लम्बे सूत में बाँध कर कमर में बाँधने से गर्भपात नहीं होता है ॥ ७ ॥*

वेणुग्रन्थिकुलत्थानां हरिद्राजनितं शृतम्। देयं स्यूनदिने पाते गर्भिणीनां भिषग्वरैः ॥ ८ ॥

गर्भपात की पीड़ा निवृत्तिकारक योग—बाँस की ग्रन्थि ( गाँठ ), कुल्थी और हल्दी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके थोड़े दिनों का गर्भस्राव जिस स्त्री का हुआ हो उसे देना चाहिये इससे गर्भस्राव सम्बन्धी पीड़ा आदि तथा मल की निवृत्ति होती है ( इस योग में कहीं २ ग्रन्थि शब्द से पिपरामूल भी ग्रहण किया गया है ) ॥ ८ ॥

ह्रीबेरातिविषामुस्तामोचरसकैः शृतं जलम्। दद्याद्गर्भे प्रचलिते प्रदरे कुक्षिरुज्यपि ॥ ९ ॥

सुगन्धबाला, अतीस, नागरमोथा, मोचरस और इन्द्रजौ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर जो गर्भ अपने स्थान से चल चुका हो, च्युत हो चुका हो अथवा अधिक पचता हो, उसमें प्रदररोग में तथा गर्भाशय की पीड़ा में देना चाहिये। इससे लाभ होता है ॥ ९ ॥

अत परं मासानुमासिकं वक्ष्यामः—

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च। अश्मन्तका कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ १ ॥

मास क्रम से चिकित्सा—मुलहठी, शाकबीज, क्षीर काकोली और देवदारु को समान भाग लेकर क्षीरपाक विधि से सिद्धकर गर्भस्राव निवारण के लिये प्रथम मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये और पाषाणभेद, कृष्णतिल, मजीठ और शतावरी को उपरोक्त विधि से दूसरे मास में पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

वृक्षादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा। अनन्तासारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ २ ॥

बन्दा ( बाँदी ), क्षीरकाकोली मजीठ, नीलोफर और सारिवा को क्षीरपाक कर गर्भिणी को तीसरे मास में पिलाना चाहिये तथा अनन्तमूल, सारिवा, रास्ना, भारंगी और मुलहठी का क्षीरपाक चौथे मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशृङ्गत्वचा घृतम्। पृश्निपर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ३ ॥

छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गम्भार, क्षीरी वृक्ष ( बड़, पीपल, गूलर, पाकर, ) के अङ्कुर और छाल से सिद्ध घृत क्षीरपाक पाँचवें मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये तथा पृश्निपर्णी, बला ( बरियारा ), सहिजन, गोखरू और गम्भार से सिद्ध क्षीर छठवें मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ ३ ॥

शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षाकसेरुमधुकं सिता। सप्तैतान्पयसा योगानर्धश्लोकसमापितान् ॥ ४ ॥

सिंघाड़ा, मसीडा अर्थात् कमलतन्तु, द्राक्षा, कसेरू, मुलहठी और मिश्री से सिद्ध क्षीर सातवें मास में गर्भवती को पिलाना चाहिये ॥ ४ ॥

क्रमात्सप्तसु मासेसु गर्भे स्रवति योजयेत्। कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिजैः ॥ ५ ॥
मूलैः शृतं प्रयुञ्जीत क्षीरं मासे तथाऽष्टमे। नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् ॥ ६ ॥

इस प्रकार उपरोक्त आध २ श्लोकों में कहे हुए सात योगों द्वारा क्षीरपाक विधि से क्षीर सिद्ध कर क्रम से प्रथम मास से लेकर सप्तम मास पर्यन्त गर्भवती स्त्री को गर्भस्राव निवृत्ति के लिये पिलाना चाहिये इससे गर्भस्राव नहीं होता है। कैथ, बेल, बड़ी कटेरी, परवल, ईख और छोटी कटेरी के मूल को समान लेकर क्षीरपाक विधि से क्षीर सिद्ध करके आठवें मास में गर्भिणी स्त्री को गर्भपात निवृत्ति के लिये पिलाना चाहिये और नवें मास में मुलहठी, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और सारिवा से सिद्ध किया क्षीरपाक गर्भिणी को पिलाना चाहिये ॥ ५-६ ॥

क्षीरं शुण्ठीपयस्याभ्यां सिद्धं स्याद्दशमे हितम्। सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं सुरदारु च ॥

सोंठ और क्षीरकाकोली से सिद्ध किया क्षीरपाक दशम मास में गर्भिणी को पिलाना चाहिये अथवा सोंठ या मुलहठी या देवदारु को दूध के साथ पिलाना चाहिये ॥ ७ ॥

क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवाम्। पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये ॥ ८ ॥

खिरनी अथवा क्षीरकाकोली, नीलकमल, दूध, मजीठ लज्जावन्ती की जड़ और हरड़ को विधिपूर्वक ( क्षीरपाक विधि से ) सिद्धकर गर्भिणी को ग्यारहवें मास में पिलाना चाहिये इससे गर्भिणी का शूल शमन होता है ॥ ८ ॥

सिताविदारी काकोलीक्षीरिकाश्च मृणालिका। गर्भिणी द्वादशे मासि पिबेच्छूलघ्नमौषधम् ॥
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक्चोपशाम्यति ॥ ९ ॥

शर्करा, विदारीकन्द, काकोली, क्षीर काकोली और कमलतन्तु के द्वारा विधिपूर्वक क्षीरपाक करके गर्भिणी को बारहवें मास में यह शूलघ्न औषधि पिलाना चाहिये। इससे बारहवें मास में गर्भ का शूल नष्ट होता है और इससे गर्भ पुष्ट होता है तथा तीव्र पीड़ायें शान्त होती हैं ॥ ९ ॥

अन्यच्च-ग्रन्थान्तरे मासविशेषे गर्भवेदनाहरमौषधम्—

चलनं प्रथमे मासि गर्भस्य यदि जायते। औषधं च सदा देयं विचक्षणभिषग्वरैः ॥ १ ॥
मृद्वीका ज्येष्ठिका चैव चन्दनं रक्तचन्दनम्। गवां च पयसा पेयं स्थिरता जायते ध्रुवम् ॥२॥

प्रथम मास में यदि गर्भस्राव का भय हो अथवा गर्भ अपने स्थान से चले तो मुनक्का, जेठी मधु, श्वेत चन्दन और रक्तचन्दन को समान भाग लेकर क्षीरपाक की विधि से गोदुग्ध के साथ क्षीर सिद्धकर पिलावे तो निश्चित ही गर्भस्थिर हो जाता है ॥ १-२ ॥

नीलोत्पलं सवालं च शृङ्गाटं च कसेरुकम्। शीततोयेन पिष्ट्वा तु क्षीरेणाऽऽलोड्य तत्पिबेत् ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति।

नीलकमल ( निलोफर ), सुगन्धवाला, सिंघाड़ा और कसेरू को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर गौ के दूध में मिलाकर पीने से गर्भस्राव नहीं होता है और गर्भावस्था का शूल भी इस औषधि से शान्त हो जाता है ॥ ३ ॥

द्वितीये मासि गर्भस्य चलनं च भवेद्यदि ॥ ४ ॥

पयसा च सदा पेयं मृणालं नागकेशरम्। तगरं कमलं बिल्वं कर्पूरेण समन्वितम् ॥ ५ ॥
आजाक्षीरेण तत्पिष्ट्वा क्षीरेणाऽऽलोड्य पूर्ववत्।

यदि दूसरे मास में गर्भ का अपने स्थान से चलना ज्ञात हो ( गर्भस्राव होने की शंका हो ) तो मृणाल ( कमलनाल ) और नागकेसर को दूध में पीसकर पीना चाहिये अथवा तगर, कमल, बेल और कपूर को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर बकरी के ही दूध में मिला कर पहले कही हुई विधि से पीना चाहिये। इससे गर्भपात नहीं होता है और शूल भी शान्त हो जाता है ॥ ५ ॥

तृतीये मासि चलनं जायते गर्भजं यदि ॥ ६ ॥

पयसाऽऽलोडितं पेयं शर्करानागकेशरम्। पद्मकं चन्दनं चैव वालकं पद्मनालकम् ॥ ७ ॥
पिष्ट्वा शीतेन तोयेन क्षीरेणाऽऽलोड्य तत्पिबेत्। एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ॥

यदि तीसरे मास में गर्भस्राव होने की शंका हो तो शर्करा और नागकेसर को पीसकर दूध के साथ मिलाकर पीना चाहिये अथवा पद्मकाठ, लालचन्दन, सुगन्धवाला और कमलनाल को

समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर दूध में मिलाकर पीने से गर्भस्राव नहीं होता है और गर्भावस्था का शूल शमन होता है ॥ ६–८ ॥

यदि गर्भस्य चलनं चतुर्थे मासि जायते । तृष्णाशूलविदाहैश्च ज्वरेण च निपीडनम् ॥ ९ ॥
क्षीरं च कदलीमूलमुत्पलं घाटकं तथा । आलोड्य समभागेन पिबेद्रोगोपशान्तये ॥ १० ॥

यदि चौथे मास में गर्भपात की शङ्का हो और साथ ही गर्भवती को तृषा, शूल, दाह तथा ज्वर की भी पीड़ा हो तो दूध, कन्दली का मूल, नीलकमल या कमलमूल और सुगन्धबाला को समान भाग लेकर पीसकर पिलाने से उपरोक्त रोग नष्ट हो जाते हैं और स्राव भी नहीं होता है ॥

पञ्चमे मासि गर्भस्य चलनं कुत्रचिद्भवेत् । दध्ना च मधुना पेयं दाडिमीपत्रचन्दनम् ॥ ११ ॥
नीलोत्पलं मृणालं च कौन्तीक्षीरी तथैव च । केशरं पद्मकं चैव तोयेनाऽऽलोड्य संपिबेत् ॥
एवं न पतते गर्भः स च शूलः प्रशाम्यति ।

यदि पांचवें मास में गर्भपात की शङ्का हो तो दही में मधु, अनार के पत्ते और लालचन्दन को पीसकर पीना चाहिये अथवा नीलकमल, मृणाल रेणुका, खिरनी या क्षीरकाकोली, नागकेसर और पदुमकाठ को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर घोलकर पीना चाहिये । इससे गर्भपात नहीं होता है और तत्सम्बन्धी शूल भी शान्त हो जाता है ॥ १२ ॥

षष्ठे मासि तु गर्भस्य चलनं जायते यदा ॥ १३ ॥
गैरिका गोमयं भस्म कृष्णा मृत्स्ना तथैव च । एतेषां साधितं प्राशमिषजा चामृतं तदा ॥
पेयं शीतं परं साकं सितया चन्दनेन च ।

यदि छठवें मास में गर्भ का चलना ( गर्भपात होना ) ज्ञात हो तो गेरू, गोबर की राख और कृष्ण वर्ण की ( करैल ) मिट्टी को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ घोलकर शर्करा तथा चन्दन मिलाकर पीना चाहिये ॥ १३ ॥

सप्तमे मासि गर्भस्य चलनं जायते यदा ॥ १५ ॥
उशीरं गोक्षुरघनौ समङ्गा नागकेशरम् । सपद्मकं समधुना पाययेच्च विचक्षणः ॥ १६ ॥

यदि सातवें मास में गर्भ के पात होने की सम्भावना हो तो खश, गोखरू नागरमोथा, मजीठ, नागकेसर और पदुमकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु मिलाकर जल में घोलकर पिलाना चाहिये ॥ १५–१६ ॥

अष्टमे मासि चलनं गर्भजं यदि जायते । लोध्रमागधिकाचूर्णं मधुना पयसा पिबेत् ।

यदि आठवें मास में गर्भपात होने की सम्भावना हो तो लोध बड़ी पीपल का चूर्ण, मधु तथा दूध मिलाकर पिलाना चाहिये ॥

नवमे सुप्रसूतिः स्यादेव गर्भस्य पोषणम् ॥ १७ ॥

नवें मास में भलीभाँति प्रसव हो जाता है ( नवें मास के गर्भ के चलने में हानि नहीं है इसे गर्भस्राव नहीं कहा जाता है क्योंकि यह प्रसूति का समय है ) । इस प्रकार के प्रयोगों से गर्भ का पोषण ( रक्षण ) होता है ॥ १७ ॥

*गर्भपातस्योपद्रवाणां चिकित्सा—*

स्निग्धशीताः क्रियास्तेषु दाहादिषु समाचरेत् । कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ॥ १ ॥
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलहृत्परम् । श्वदंष्ट्रामधुकद्राक्षामलाभिः सिद्धं पयः पिबेत् ॥
शर्करामधुसंयुक्तं गुर्विणीवेदनापहम् ।

गर्भपात के उपद्रवों की चिकित्सा—गर्भ के दाहादि उपद्रवों के उत्पन्न होने पर स्निग्ध तथा शीतल उपचार करना चाहिये । कुश, काश, एरण्ड मूल तथा गोखरू के साथ विधिपूर्वक दूध सिद्ध कर उसमें शर्करा मिलाकर पिलाने से गर्भिणी का शूल नष्ट होता है । एवं गोखरू, मुलहठी, दाख और पियाबांसा को समान लेकर इनके द्वारा दूध सिद्ध कर पिलाने से गर्भिणी के शूल नष्ट होता है ॥ २–३ ॥

मूत्रकोष्ठगरिका गेहसम्भवा मयष्टिका ॥ ३ ॥
समङ्गा धातकीपुष्पं गैरिकं च रसाञ्जनम् । तथा सर्जरसश्चैतान्यथाप्लाभं विचूर्णयेत् ॥ ४ ॥
तच्चूर्णं मधुना लिह्यात्पारी प्रदरशान्तये । कसेरुशृङ्गाटककल्कं वा पयसा पिबेत् ॥ ५ ॥

प्रदर चिकित्सा—घरों में जो बिलनी अथवा अञ्जनहारी ( जो एक प्रकार की बड़ी मक्षिका है और मिट्टी का घोंसला अपने से बनाकर उसमें दूसरे कीड़े ( झींगुर आदि ) को मारकर रखती है जिससे पुनः उसमें उसके अनुकूल जीव उत्पन्न हो जाता है ) के घर की नवीन मिट्टी मजीठ, धाय के पुष्प गेरू रसवत तथा राल इनमें से जितनी भी ओषधियाँ प्राप्त हो सकें सब समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवे उस चूर्ण को मधु के अनुपान से स्त्री प्रदर की शान्ति के लिये चाटे तो प्रदर रोग शान्त होता है अथवा-कसेरू, नीलकमल और सिंघाड़ा का विधिवत् कल्क बनाकर दूध के साथ पीवे तो प्रदर रोग शमन होता है॥ ४-५॥

पक्वं वचारसोनाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलान्वितम्। आनाहेषु पिबेद् दुग्धं गुर्विणी सुखिनी भवेत्॥

गर्भिणी के आनाह चिकित्सा—वच, और लहसुन से दूध सिद्ध कर उसमें शुद्ध हींग और सोंचर नमक का प्रक्षेप देकर पान करने से गर्भिणी का आनाह नष्ट होता है॥ ६॥

तृणपञ्चकमूलानां कल्केन विपचेत्पयः। तत्पयो गुर्विणी पीत्वा मूत्रसङ्गाद्विमुच्यते॥ ७॥

गर्भिणी के मूत्रसंग चिकित्सा—तृणपञ्चमूल का विधिपूर्वक कल्क बनाकर दूध के साथ उसे पकाकर गर्भवती को पिलाने से उसका मूत्रावरोध नष्ट होता है॥ ७॥

शालीक्षुकुशकाशानां दर्भाख्येरेण तृणपञ्चकम्। पयो श्रृतं तृषादाहपित्तासृङ्मूत्रसङ्गनुत्॥ ८॥

तृणपञ्चमूल का नाम तथा गुण—शालिधान की जड़, ईख की जड़, कुश की जड़, काश की जड़ और शर ( नरकट ) की जड़ के मिलित योग को तृणपञ्चक वा तृणपञ्चमूल कहते हैं। इनका क्वाथ बनाकर पीने से तृष्णा, दाह, रक्तपित्त और मूत्रावरोध नष्ट होता है॥ ८॥

कसेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम्।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताऽबला पयोविमिश्रं पयसाऽन्नभुक्पिबेत्॥ ९॥

गर्भिणी के उपद्रवों की चिकित्सा—कसेरू, सिंघाड़ा, पदुमकाठ, नीलकमल, मुद्गपर्णी ( बन मूंग ) और मुलहठी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें दूध मिलाकर और शक्करा का प्रक्षेप देकर गर्भिणी स्त्री को पिलावे तथा दूध और अन्न ( दूध भात या दूध रोटी ) का पथ्य देवे तो गर्भिणी का शूल और गर्भ स्राव इन दोनों रोगों को यह नष्ट करता है॥ ९॥

गुर्विण्या रोगाणां चिकित्सा—

मधूकचन्दनोशीरसारिवायष्टिपद्मकैः। शर्करामधुसंयुक्तः कषायो गर्भिणीज्वरे॥ १॥

गर्भिणी के रोगों की चिकित्सा—महुआ, लालचन्दन, खस, सारिवा, जेठीमधु और पदुमकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ करके उसमें शर्करा तथा मधु का प्रक्षेप देकर गर्भिणी को ज्वर में पिलाना चाहिये इससे गर्भावस्था का ज्वर नष्ट होता है॥ १॥

चन्दनं सारिवालोध्रमृद्वीकाशर्करान्वितम्। क्वाथं कृत्वा प्रदद्याच्च गर्भिणीज्वरशान्तये॥ २॥

लालचन्दन, सारिवा, लोध और मुनक्का को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ कर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर गर्भिणी के ज्वर की शान्ति के लिये देना चाहिये॥ २॥

पयस्यासारिवापाठातोयतोयदनागरैः। श्रृतं शीतं पिबेद्वारि गर्भिणीज्वरवारणम्॥ ३॥

क्षीरकाकोली, सारिवा, पुरइनपाढ़ी, सुगन्धबाला, नागरमोथा और सोंठ के साथ सिद्धकर शीतल किया हुआ जल गर्भिणी को ज्वर की निवृत्ति के लिये पिलाना चाहिये॥ ३॥

मृद्वीकापद्मकोशीरक्षीर्पर्णीचन्दनं तथा। मधुकं च पयसा च सारिवामलकं तथा॥ ४॥
पित्तज्वरहरः क्वाथो गर्भिणीनां प्रशस्यते।

मुनक्का, पदुमकाठ, खस, गम्भारी लालचन्दन मुलहठी, क्षीरकाकोली, सारिवा और आँवला को समान भाग लेकर विधिपूर्वक काथ करके पिलाने से गर्भिणी स्त्रियों का पित्तज्वर नष्ट होता है॥

पीतं विश्वमजाक्षीरेर्नाशयेद्विषमज्वरम्॥ ५॥

सोंठ को बकरी के दूध में पीस कर पीने से गर्भिणी का विषम ज्वर नष्ट होता है है॥ ५॥

ह्रीबेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनी
मुस्तोशीरयवासपर्पटविषाक्वाथं पिबेद्गुर्विणी।
नानावर्णरुजातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः सूत्यामयेपूत्तमः॥ ६॥

ह्रीवेरादि क्वाथ—सुगन्धबाला, सोनापाठा की छाल, लालचन्दन, बरिआरा, धनियाँ, गुरुच, नागरमोथा, खस, जवासा, पित्तपापड़ा और अतीस समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके गर्भिणी स्त्री यदि पीवे, तो अनेक वर्णों के तथा अनेक पीड़ाओं के सहित अतीसार रोग में, रक्त के बहने में, ज्वर में तथा सूतिका रोग में लाभ करता है। पहले के मुनियों ने इस योग को उत्तम कहा है अर्थात् यह योग इन सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ ६ ॥

ज्वरातिसारे गर्भिण्या शस्तं सामे सशोणिते । समङ्गा मधुक लोध्र फाणित शर्करान्वितम् ॥

ज्वरातिसार में—ज्वरातिसार, आमातिसार और रक्तातिसार में मजीठ, मुलहठी, लोध और फाणित को समान भाग लेकर पीस कर उसमें शर्करा मिलाकर गर्भिणी स्त्री सेवन करे तो यह योग उपर्युक्त रोगों को नष्ट कर देता है ॥ ७ ॥

प्रवाहिकायां गर्भिण्या शस्तं सामे सशोणिते । आम्रजम्बूत्वच क्वाथैर्लेहयेल्लाजसक्तुकम् ॥८॥

अनेन लीढमात्रेण गर्भिणी ग्रहणीं जयेत् ।

प्रवाहिका रोग में—गर्भिणी स्त्री प्रवाहिका रोग में जिसमें आम और रक्त दोनों मिले हों ( प्रवाहिका साधारण हो अथवा आमातिसार तथा रक्तातिसार से युक्त हो ) उसमें आम और जामुन के विधिवत् बने क्वाथ में धान के खील के सत्तू को मिलाकर लेह बनाकर चाटे तो उसके रोग नष्ट हो जाते हैं और ग्रहणी रोग भी नष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

शुण्ठीबिल्वकषायं तु यवसक्तुसमन्वितम् ॥ ९ ॥

गर्भिणीं पाययेच्छर्द्यतीसारनाशनम् ।

वमन और अतीसार में—सोंठ और बेल के क्वाथ में यव का सत्तू मिलाकर गर्भिणी स्त्री को पिलावे तो उसका वमन और अतीसार दोनों नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

पृश्निपर्णीबलावासानिर्यूहो रक्तपित्तजित् ॥ १० ॥

गर्भिण्याः कामलाशोफश्वासकासज्वरापहः ।

रक्तपित्त में—पृश्निपर्णी ( पिठिवन ), बरियारा और अड़ूसे का क्वाथ ( गर्भिणी के ) रक्तपित्त को नष्ट करता है और गर्भिणी स्त्री के कामला-शोथ, श्वास, कास तथा ज्वर को नष्ट करता है ॥

कुस्तुम्बरीणां कल्कं तु तण्डुलोदकसंयुतम् ॥ ११ ॥

पिबेत्सशर्करं हृद्यं गर्भिणीच्छर्दिवारणम् ।

वमन में—धनिया का विधिपूर्वक कल्क बनाकर उसमें तण्डुलोदक और शर्करा मिलाकर गर्भिणी को पिलाना हृदय के लिये हितकारी है और गर्भिणी के वमन को नष्ट करता है ॥११॥

बिल्वमज्जा च लाजाम्बु पिबेच्छर्दिषु गर्भिणी ॥ १२ ॥

बेल की गुद्दी और धान के लावा का जल गर्भावस्था के वमन में पिलाना चाहिये ॥ १२ ॥

भार्गीशुण्ठीकणाचूर्णं गुडेन श्वासकासनुत् ।

श्वास कास में—भारंगी ( बभनेठी ), सोंठ और पीपल इसको समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण करके गुड़ के अनुपान से सेवन करने से गर्भिणी का श्वास-कास नष्ट होता है ॥

अजमोदा नागर च पिप्पली जीरकं समम् ॥ १३ ॥

तच्चूर्णं सगुडक्षौद्रं गर्भिण्या वह्निदीपनम् ।

मन्दाग्नि में—अजवाइन ( अजमोदा ), सोंठ पीपल और जीरा को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण करके मधु तथा पुराने गुड़ के अनुपान से सेवन कराने से गर्भिणी की अग्नि तीव्र हो जाती है ॥ १३ ॥

बिल्वाग्निमन्थपक्वं वा पाटल्या नागरेण वा ॥ १४ ॥

सिद्धमम्बु पिबेच्छीतं गर्भिणी वातरोगनुत् ।

वातरोग में—बेल तथा गनियार की छाल अथवा पाढ़र छाल और सोंठ से सिद्ध किया हुआ ( क्वाथ ) शीतल करके गर्भिणी को पिलाने से गर्भिणी का वातरोग नष्ट होता है ॥ १४ ॥

चन्दनं मधुकोशीरं नागपुष्पं तिलास्तथा ॥ १५ ॥

अजशृङ्गी च मञ्जिष्ठा रक्षिमूलं पुनर्नवा । श्रेष्ठः शोफहरो लेपो गर्भिणीनां विशेषतः ॥ १६ ॥

शोथहर लेप—लालचन्दन, मुलहठी, खस, नागकेसर, तिल, मेढ़शृंगी, मजीठ, मदार की

जड़ और पुनर्नवा को समान भाग लेकर विधिपूर्वक लेप बनाकर लेप करने से शोथ को नष्ट करता है विशेष कर गर्भिणी स्त्री के शोथ को नष्ट करने में यह अत्युत्तम है ॥ १५-१६ ॥

वातशुष्कस्य गर्भस्य चिकित्सा—

गर्भो वातेन संशुष्को नोदरं पूरयेद्यदि। सा बृंहणीयैः ससिद्धं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ॥ १ ॥

वातशुष्क गर्भ चिकित्सा—गर्भ यदि वात दोष से सूख गया हो और उदर भरता हुआ नहीं ज्ञात हो अर्थात् गर्भ के बढ़ने से जो उदर की वृद्धि होती है वह नहीं होवे तो बृंहण करनेवाली औषधियों के द्वारा विधिवत् दूध अथवा मांसरस को सिद्धकर पीना चाहिये ॥ १ ॥

शुक्रार्तवमजाताङ्गं प्रत्यङ्गं मारुतार्दितम्। त्यक्तं जीवेन सततमाकम्पितं चायतिष्ठते ॥ २ ॥

यदि शुक्र तथा आर्तव ही वायु से पीड़ित हुए हों तो गर्भ के अङ्ग प्रत्यङ्ग नहीं बनते हैं। वह गर्भ जीवात्मा से त्याज्य होता है अर्थात् जीवात्मा से उसका सम्बन्ध नहीं रहता है इस कारण वह कम्पित होता हुआ पकता हुआ उदर में पड़ा रहता है ॥ २ ॥

शुक्रार्तवाद्रको वायुरुदराध्मानमुद्धयेत्। कदाचिच्चेत्स्वाध्मानं स्वयमेवाऽऽपलीयते ॥ ३ ॥

नैगमेयेन गर्भोऽयं हृतो लोकध्वनिस्तदा। स चापि गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः ॥

धान्यकुट्टनमुख्या स्याच्चिकित्सा द्वयोरपि ॥ ४ ॥

कभी शुक्र तथा आर्तव से आर्द्र हुआ वायु उदर में आध्मान कर देता है (पेट को फुला देता है)। पुनः वही आध्मान स्वयं निकल जाता है। इसके लिये यह लोकापवाद है कि गर्भ को नैगमेय ने हर लिया। इसी गर्भ को लोक में नागोदर गर्भ भी कहा जाता है। उपरोक्त इन दोनों प्रकार के अवस्थाओं में धान कूटना मुख्य चिकित्सा है अर्थात् गर्भिणी से धान कूटने को कहना चाहिये इससे दोनों प्रकार के गर्भ निकल जाते हैं ॥ ३-४ ॥

प्रसवमासमाह—

नवमे दशमे मासि नारी गर्भं प्रसूयते। एकादशे द्वादशे वा ततोऽन्यत्र विकारतः ॥ १ ॥

प्रसवमास—साधारणतः नवें तथा दसवें मास में स्त्री गर्भ को प्रसव करती हैं (यह प्राकृतिक है)। कभी २ ग्यारहवें और बारहवें मास में भी प्रसव करती हैं अथवा इससे भी अधिक तेरहवें मास में भी प्रसव करती हैं किन्तु ऐसा विलम्ब रोगादि विकारों के कारण होता है ॥ १ ॥

प्रसवमासमतिक्रम्य स्थायिनि गर्भे चिकित्सामाह—

वातेन गर्भसङ्कोचात्प्रसूतिसमयेऽपि या। गर्भं न जनयेन्नारी तस्याः शृणु चिकित्सितम् ॥१॥

उदूखलेन्मुशलेनैवां कृत्वा धान्यमुलूखले। विषमं चाऽऽसनं यानं सेवेत प्रसवार्थिनी ॥ २ ॥

प्रसव मास के (अवधि के) व्यतीत होने पर भी गर्भ प्रसव नहीं होने की चिकित्सा—जो स्त्री वात के दोष से गर्भ का सङ्कोच हो जाने से प्रसव के समय हो जाने पर भी प्रसव नहीं करती है, उसकी चिकित्सा यह है कि वह स्त्री ओखल में धान रखकर मूसल से कूटे तथा विषम आसन का सेवन करे (टेढ़ा-मेढ़ा बैठे) तथा हिलने-डुलने वाले यान (सवारी) पर चढ़े। इस प्रकार करने से प्रसव हो जावेगा ॥ २ ॥

काले प्रसवविलम्बे चिकित्सामाह—

प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदभितो भगम्। कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ॥ १ ॥

प्रसव के विलम्ब होने पर योनि में धूप देना चाहिये। कृष्णवर्ण के सर्प की केंचुल और मैनफल का धूप देना उत्तम है ॥ १ ॥

तन्तुना लाङ्गलीमूलं बध्नीयाद्धस्तपादयोः। सुवर्चलां विशल्यां वा धारयेदाशु सूतये ॥ २ ॥

सूत में कलिहारी के मूल को बांधकर हाथ और पैरों में बाँधना चाहिये। अथवा हुरहुर को या विशल्या (गिलोय, विर्कृत लांगली, त्रिवृत्, पाटला, नागदन्ती वा हस्तिशुण्डी) की जड़ को बांधना चाहिये इससे शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ २ ॥

कृष्णा वचा चापि जलेन पिष्टा सैरण्डतैला खलु नाभिलेपात्।

सुखप्रसूतिं कुरुतेऽङ्गनानां निपीडितानां बहुभिः प्रमादैः ॥ ३ ॥

पीपल और वच को जल से पीसकर उसमें एरण्ड का तेल मिलाकर नाभिस्थान पर लेप करने से अनेक प्रकार के दुःखों से दुखित हुई स्त्रियों को भी सुखपूर्वक प्रसव शीघ्र हो हो जाता है ॥ ३ ॥

मातुलुङ्गस्य मूलं तु मधुकं सयुतं तथा । घृतेन सहितं पीत्वा सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४ ॥

बिजौरे नीबू की जड़ और मुलहठी को समान भाग लेकर चूर्ण कर घृत के अनुपान से पिलाने से स्त्री को सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ४ ॥

इक्षोरुत्तरमूलं निजतनुमानेन तन्तुना बद्ध्वा ।
कटिविषये गर्भवती सुखेन सूतेऽविलम्बितेनापि ॥ ५ ॥

ईख के उत्तर दिशा की ओर के मूल को गर्भवती अपने शरीर के प्रमाण की लम्बाई के बराबर के सूत में बाँधकर कमर में बाँधे तो शीघ्र ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ५ ॥

तालस्य चोत्तरं मूलं स्वप्रमाणेन तन्तुना । बद्ध्वा कट्यां तु नियतं सुखं नारी प्रसूयते ॥६॥

ताड़ के वृक्ष की उत्तर दिशा की जड़ को गर्भवती अपने शरीर के बराबर के प्रमाण के सूत में बाँधकर कमर में बाँधे तो निश्चित ही सुखपूर्वक प्रसव हो जाता है ॥ ६ ॥

प्रत्यक्पुष्प्याः पारिभद्रस्य यद्वा मूलं यद्वा काकजङ्घासमुत्थम् ।
कट्यां बद्धं योषितां सम्प्रसूतिं याते सुखया सहसा साधु कुर्यात् ॥ ७ ॥

अपामार्ग की जड़ अथवा पारिभद्र की जड़ अथवा काकजङ्घा की जड़ को लेकर ( उपरोक्त विधि से सूत में भलीभाँति बाँध कर ) आसन्न प्रसवा स्त्री के कटि में बाँध देने से सुखपूर्वक शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ ७ ॥

इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि । उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ ८ ॥

इदममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघु गर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्रि ।
तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ ९ ॥

मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः ।
मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एहि मा चिर मा चिरम् स्वाहा ॥ १० ॥

सुख प्रसव कारक मंत्र च्यावनार्थ—हे स्त्री ! यहां तेरे मन्दिर में अमृत, सोम, चित्रभानु और उच्चैःश्रवा तुरग ( घोड़ा ) निवास करें। यह जलों में से अमृत निकाला है। हे स्त्री ! तेरे इस छोटे से गर्भ को यह अमृत छुड़ा देवे अथवा निकाल देवे और अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र या विद्युत तथा लवणाम्बुधर तुझे शान्ति देवें। सब प्रकार के पाश ( बन्धन ) और अविपाश ( बन्धन विशेष ) छूट गये हैं, सूर्य देव ने अपनी रश्मि ( किरणें ) छोड़ दी है, सभी भयों से हे गर्भ तू छूट गया है, हे गर्भ अब विलम्ब न कर विलम्ब न कर बाहर आ, आ, यह जो कुछ कहा गया है सब ठीक है ॥ ८-१० ॥

अथ च्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् । पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥११॥

इस च्यावन मंत्र को सात बार पढ़कर अथवा जल को अभिमन्त्रित करके आसन्न प्रसवा को उसे पिलाकर उभय त्रिंशक ( दोनों ओर से बने तीस अङ्क के यन्त्र को दिखावे इससे स्त्री सुखपूर्वक प्रसव करती है ॥ ११ ॥

कलारसाष्टभिः पञ्चदिगष्टाद्यभिः क्रमात् । अर्केश्च भुवनैर्वेदैरुभयत्रिंशकं भवेत् ॥ १२ ॥

उभय त्रिंशक यंत्र—१६, ६, ८ एक पंक्ति में हो २ १०, १८ दूसरी १२, १४, ४ तीसरी पंक्ति में हो। इस प्रकार सब का क्रम एक जैसा हो तो दोनों ओर से जोड़ने से तीस संख्या आवेगी ॥ १२ ॥

हिमवद्दक्षिणे पार्श्वे सुरसा नाम यक्षिणी । तस्या नूपुरशब्देन विशल्या भव गर्भिणी ॥१३॥
इमं श्लोकं पठित्वा तु क्षिपेदक्षतपञ्चकम् । गर्भिण्युपरि सद्यः सा गर्भं मुञ्चति गर्भिणी ॥१४॥

अक्षतयोग—हिमालय के दक्षिण भाग में सुरसा नाम की यक्षिणी रहती है, उसके नूपुर के शब्द ( झनकार ) से हे गर्भवती ! तू गर्भ को निकाल कर सुखी हो, इस अर्थ वाले श्लोक ( मंत्र ) को पढ़कर पांच अक्षत ( बिना टूटे हुए चावल के पांच दानों ) को लेकर गर्भवती के ऊपर फेंके तो उसे शीघ्र प्रसव हो जाता है ॥ १३-१४ ॥

मूढगर्भस्य चिकित्साधार—

याभिः संकटकाले वैद्यैर्नार्यः प्रसाधिताः सम्यक् ।
तस्य यथा समभ्यस्ता एताः क्रियाः कुर्युः ॥ १ ॥

मूढगर्भ चिकित्सा—जो स्त्री वैद्य संकट के समय में ( मूढ गर्भ की अवस्था में अथवा प्रसव के समय ) भलीभाँति अनेक स्त्रियों का प्रसव कराया हो तथा सम्पूर्ण यश को प्राप्त किया हो वही स्त्री वैद्य इस ( प्रसव ) क्रिया को निरन्तर करावे ॥ १ ॥

गर्भे जीवति मूढ तु गर्भं यत्नेन निहरेत् । हस्तेन सर्पिषाक्तेन योनेरन्तर्गतेन सा ॥
मृते तु गर्भे गर्भिण्या योनौ शस्त्रं प्रवेशयेत् ॥ २ ॥

गर्भ यदि जीवित हो परन्तु मूढ हो गया हो तो उसे यत्नपूर्वक निकालना चाहिये अर्थात् हाथों में घी लगाकर योनि में प्रवेश कर के यत्नपूर्व मूढ गर्भ को पकड़ कर सीधा करके बाहर करे। यदि गर्भ अन्दर ही मर गया हो तो योनि में शस्त्र प्रवेश करके यत्नपूर्वक उसे काट कुट कर निकाले ॥ २ ॥

शस्त्रशास्त्रार्थविदुषी लघुहस्ता भयोज्झिता । सचेतनं तु शस्त्रेण न कथचन दारयेत् ॥ ३ ॥

गर्भ छेदन योग्य स्त्री वैद्य—जो स्त्री शस्त्र चलाने में कुशल हो और शास्त्र ज्ञान में और क्रिया में कुशल हो, जिसके हाथ में लघुता हो और जो निर्भीक हो ऐसी ( स्त्री वैद्य ) शस्त्र द्वारा मरे हुए गर्भ को काट कर बाहर निकाले। किन्तु यदि गर्भ में चेतना हो तो शस्त्र से कदापि छेदन न करे ॥ ३ ॥

सदार्यमाणो जननीमात्मानं चापि मारयेत् । नोपेक्षेत मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डित ॥
स चाऽऽशु जननीं हन्ति प्रभूतान्नं यथा पशुम् ॥ ४ ॥

यदि जीवित गर्भ शस्त्र से काटा जावेगा तो वह गर्भ गर्भवती को भी मार देगा और स्वयं भी मर जावेगा। अगर उदर में गर्भ मर गया हो तो उसे शीघ्र किसी भी यत्न से बाहर कर देना चाहिये क्योंकि वह मरा हुआ गर्भ गर्भिणी को शीघ्र इस प्रकार मार देता है जिस प्रकार प्रचुर प्रमाण में खाया हुआ अन्न पशु को मार देता है ॥ ४ ॥

गर्भछेदनप्रकार—

यद्यदङ्गं हि गर्भस्य योनौ सज्जति सन्निपक् । सम्यग्विनिर्हरेच्छित्वा रक्षेन्नारीं प्रयत्नत ॥ १ ॥

गर्भछेदन प्रकार—मृत गर्भ का जो २ अङ्ग योनि में फँसा हो वैद्य उसी २ अङ्ग को भलीभाँति काटकर गर्भ को बाहर निकाले तथा गर्भिणी की यत्नपूर्वक रक्षा करे ॥ १ ॥

एवं निर्हृतशल्यां तां सिञ्चेदुष्णेन वारिणा । ततोऽभ्यक्तशरीराया योनौ स्नेहं निधापयेत् ॥
एवं मृद्वी भवेद्योनिस्तच्छूलं चोपशाम्यति ॥ २ ॥

गर्भ को काटकर निकालने के पश्चात् उस स्त्री का उष्णोदक से सिंचन और तैल अथवा घी का अभ्यङ्ग करके योनि में स्नेह ( तैल या घृत ) लगा देना चाहिये। इससे योनि मृदु हो जाती है और उसकी पीड़ा भी शमन हो जाती है ॥ २ ॥

प्रसूताया योनौ क्षतादेस्तु चिकित्सितम्—

तुम्बीपत्रं तथा लोध्रं समभागं तु पेषयेत् । तेन लेपो भगे कार्यः शीघ्रं स्याद्योनिरव्रणा ॥ १ ॥

प्रसूता के योनिक्षत आदि की चिकित्सा—प्रसूता के योनि में क्षत हो जाने पर तुम्बी (लौकी) के पत्ते और लोध को समान भाग लेकर पीसकर लेप लगा देने से योनि का क्षत शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

पलाशोदुम्बरफलं तिलतैलसमन्वितम् । योनौ प्रलिप्तं मधुना गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २ ॥

योनि का गाढीकरण—पलास और गूलर के फलों को समान भाग लेकर पीस कर उसमें तिल का तैल और मधु मिलाकर योनि में लेप करने से योनि गाढी ( संकुचित ) हो जाती है ॥२॥

प्रसूता वनिता वृद्धकुक्षिह्रासाय सर्वदा । प्रातर्मथितसंमिश्रां त्रिसप्ताहात्कणाजटाम् ॥ ३ ॥

प्रसूता के बढ़े हुए पेट को घटाने का उपाय—प्रसव के दिन से तीन सप्ताह पश्चात् के प्रातः काल पिपरामूल को मथित अर्थात् मट्ठा के साथ पीस कर पीवे तो इससे प्रसूता का उदर छोटा हो जाता है ॥ ३ ॥

गर्भस्रावः—

आसुरीहिङ्गुसिन्धूत्थ काञ्जिकेनावलोडितम् । गर्भाशये मृतं गर्भं पातयेत्पानयोगतः ॥ १ ॥

मूढ़ गर्भ चिकित्सा—राई, शुद्ध हींग और सेंधानमक को समान भाग लेकर पीस कर कांजी में मिलाकर पिलाने से गर्भाशय में मरा हुआ गर्भ शीघ्र बाहर हो जाता है ॥ १ ॥

आलोड्य काञ्जिकैर्घोटीपुरीषं वस्त्रगालितम् । ससिन्धूग्रासुरीतैलं विषमागतगर्भनुत् ॥ २ ॥

घोड़ी के मल को कांजी में मिला कर कपड़े में छान कर उसमें सेंधानमक, वच अथवा अजवाइन, राई और तिल का तेल मिलाकर पिलाने से विषम मूढ़ गर्भ को निकाल देता है ॥ २ ॥

परूषकशिफालेपः स्थिरामूलकृतोऽथ वा । नाभिबस्तिभगाद्येषु मूढगर्भापकर्षणः ॥ ३ ॥

फालसा अथवा शालिपर्णी की जड़ को पीसकर लेप बनाकर नाभि, बस्ति तथा भग आदि में लेप कर देने से मूढ़ गर्भ बाहर हो जाता है ॥ ३ ॥

इति मूढगर्भरोगप्रकरणं समाप्तम् ।

---

## अथ प्रसूताया उदरस्थापरोपद्रवमाह ।

प्रसूताया न पतिता जठरादपरा यदि । तदा सा कुरुते शूलमाध्मानं वह्निमन्दताम् ॥ १ ॥

उदरस्थित अपरा से उपद्रव—प्रसूता स्त्री के उदर से यदि अपरा ( जेर आदि ) नहीं गिरे तो उससे शूल आध्मान और मन्दाग्नि आदि रोग हो जाते हैं ॥ १ ॥

तच्चिकित्सा—

केशवेष्टितयाऽङ्गुल्या तस्याः कण्ठं प्रघर्षयेत् । निर्मोककटुकालाम्बुकृतवेधनसर्षपैः ॥ १ ॥

लाङ्गलीमूलकल्केन पाणिपादतलानि हि । प्रलिम्पेत्सूतिका योषिदपरापातनाय वै ॥ २ ॥

अपरा की चिकित्सा—अङ्गुली पर केश को लपेट कर प्रसूता के कण्ठ पर घिसना चाहिये, इससे अपरा निकल जाती है अथवा साँप की केंचुल, कड़ुतुम्बी, तोरी तथा श्वेत सरसों को समान भाग लेकर चूर्ण कर सरसों के तेल में मिलाकर भलीभांति योनि को धूपित करने से अपरा गिर जाती है अथवा करियारी की जड़ के पिसकर बने कल्क को प्रसूता के हाथ और पांव के तलवों पर लेप करने से अपरा निश्चय ही गिर जाती है ॥ १-२ ॥

हस्तं छिन्ननखं स्निग्धं सूतीयोनौ शनैः क्षिपेत् । अपरां तेन हस्तेन जनयित्री विनिर्हरेत् ॥

अपरा निकालने की विधि—बच्चा पैदा कराने वाली को अपने हाथों के नखों को भलीभांति काट कर और हाथों को घृतादि से स्निग्ध कर प्रसूता के योनि में धीरे २ प्रवेश करके उन हाथों से अपरा को निकाल लेवे ॥ ३ ॥

## अथ सूतिकारोगाधिकारः ।

पृथिव्यां पतिते वत्से योनौ पिण्डनमिष्यते । अप्रवेशो यथा वायोस्तथा संरक्षणक्रिया ॥ १ ॥

प्रसव हो जाने पर शीघ्र ही योनि को दबाना चाहिये और सङ्कुचित करना चाहिये, तथा ऐसी क्रिया करनी चाहिये जिससे योनि में वायु प्रवेश करने न पावे ॥ १ ॥

वायुः प्रकुपितः कुर्यात्संरुध्य रुधिरं स्रुतम् । सूतायां हृच्छिरोबस्तिशूलं मक्कल्लसंज्ञितम् ॥

मक्कल रोग के लक्षण—प्रसव काल का प्रकुपित वायु गर्भाशय से बहते हुए रक्त को अवरुद्ध कर प्रसूता के हृदय शिर तथा बस्ति स्थान में शूल उत्पन्न कर देता है, इस शूल को मक्कल शूल कहते हैं ॥ २ ॥

मक्कल्लस्य चिकित्सा—

सचूर्णितं यवक्षारं पिबेत्कोष्णेन वारिणा । सर्पिषा वा पिबेन्नारी मक्कल्लस्य निवृत्तये ॥ १ ॥

मक्कल चिकित्सा—यवाखार का श्लक्ष्ण चूर्ण बनाकर उष्णजल के साथ प्रसूता को पीवे अथवा घृत के साथ पीवे तो मक्कलशूल की निवृत्ति होती है ॥ १ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं गजपिप्पली । नागरं चित्रकं चव्यं रेणुकैलाजमोदिकाः ॥ २ ॥

सर्षपो हिङ्गु भार्गी च पाठेन्द्रयवजीरकाः । महानिम्बश्च मूर्वा च विषा तिक्ता विडङ्गकम् ॥

पिप्पल्यादिगणो ह्येष कफमारुतनाशनः । गुल्मशूलज्वरहरो दीपनश्चाऽऽमपाचनः ॥ ४ ॥

पीपल, पिपरामूल, मरिच, गजपीपल, सोंठ, चित्रकमूल, चव्य, रेणुका, इलायची, अजमोदा, सरसों, शुद्ध हींग, बभनेठी, पुरइनपाढ़ी, इन्द्रजौ, जीरा, महानिम्ब ( बकायन ), मूर्वा, अतीस, कुटकी और वायविडंग, के समान मिलित योग को पिप्पल्यादि गण कहते हैं, इसके सेवन से

कफ, वायु, गुल्म, शूल और ज्वर का शमन होता है, अग्नि दीप्त होती है तथा आम का पाचन होता है ॥ १-४ ॥

क्वाथमेषां पिबेन्नारी लवणेन समन्वितम्। मक्कल्लशूलगुल्मघ्नं कफानिलहरं परम् ॥ ५ ॥

इस पिप्पल्यादि गण का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर उसमें सैंधानमक का प्रक्षेप देकर यदि प्रसूता स्त्री को पिलाया जाय तो मक्कल शूल और गुल्मरोग नष्ट होते हैं। यह कफ तथा वायु दोष को नष्ट करने में अति उत्तम है ॥ ५ ॥

त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बरुचूर्णसंयुतं नित्यम्। खादेद्गुडं पुराणं नारी मक्कल्लदलनाय ॥

त्रिकट्वादि चूर्ण—सोंठ मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेशर और धनियाँ को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर उसमें पुराना गुड़ मिलाकर खाने से मक्कलशूल नष्ट होता है ॥ ६ ॥

शोणं बोलं सघृतं सगुडं गुटिकीकृतं गिलितम्।
मक्कल्लाभिधशूलं हन्ति समूलं सशोणितातङ्कम् ॥ ७ ॥

शोणबोलादि—रक्तवर्ण के बोल को घृत तथा पुराने गुड़ के साथ वटी बनाकर खाने से मक्कल शूल तथा सभी प्रकार के रक्त के अन्यान्य उपद्रव समूल नष्ट हो जाते हैं ॥ ७ ॥

हिङ्गु शुद्धं ससर्पिष्कं भुक्तं मक्कल्लशूलनुत् ॥ ८ ॥

शुद्ध हींग को घृत के अनुपान से खाने से मक्कल्लशूल नष्ट होता है ॥ ८ ॥

प्रसूताया हितान्याह—

प्रसूता युक्तमाहारं विहारं च समाचरेत्। व्यायामं मैथुनं क्रोधं शीतसेवां च वर्जयेत् ॥ १ ॥

प्रसूता स्त्री के हितकर कार्य—प्रसूता स्त्री योग्य आहार विहार को करे। व्यायाम, मैथुन, क्रोध और शीतल पदार्थ का व्यवहार आदि त्याग देवे ॥ १ ॥

मिथ्याचारात्सूतिकाया यो व्याधिरुपजायते। स कृच्छ्रसाध्योऽसाध्यो वा भवेत्पथ्यं समाचरेत्॥

प्रसूता स्त्री को मिथ्याचार अर्थात् अनुचित आहार विहारादि के कारण जो रोग उत्पन्न होते हैं वे कष्ट साध्य अथवा असाध्य हो होते हैं। इसलिये प्रसूता को पूर्ण पथ्य करना चाहिये ॥ २ ॥

## अथ सूतिकारोगनिदानम्।

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात्। सूतिकायास्तु ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥

प्रसूता के अनुचित आहार विहार करने से, दोष जनक अन्न के सेवन से, विषम भोजन से तथा अजीर्ण में भोजन करने से जो रोग उत्पन्न होते हैं वे अत्यन्त कठिन होते हैं ॥ १ ॥

अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता। शोफः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥२॥

सूतिका रोग के लक्षण—अङ्गों का टूटना, ज्वर, कम्पन, पिपासा, शरीर में गुरुता, शोथ, शूल और अतीसार होना ये सब सूतिका रोग के लक्षण हैं जो उपरोक्त कारणों से हो जाते हैं ॥२॥

ज्वरादीनां रोगविशेषाणां निदानविशेषमाह—

ज्वरातीसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः। तन्द्रारुचिप्रसेकाद्या वातश्लेष्मसमुद्भवाः ॥ ३ ॥

ज्वरादि रोग—ज्वर, अतीसार, शोथ, शूल, आनाह, बल की क्षीणता, तन्द्रा, अरुचि तथा प्रसेक आदि ये सभी उपद्रव वात-कफ के दोष से उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥

कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाश्रिताः।
ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥

यदि प्रसूता का मांस तथा बल क्षीण हो गया हो तो ये सभी रोग कष्टसाध्य होते हैं तथा ये सभी रोग और उपद्रव सूतिका नाम के रोग कहे जाते हैं ॥ ४ ॥

## अथ सूतिकारोगचिकित्सामाह।

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम्। दशमूलकृतं क्वाथं कोष्णं दद्याद् घृतान्वितम् ॥

सूतिका चिकित्सा—सूतिका रोग की शान्ति के लिये वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। दशमूल के सभी ओषधियों को लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर उसमें घृत का प्रक्षेप देकर किञ्चित् उष्ण रहते २ पान कराने से सूतिका रोग शमन होता है ॥ १ ॥

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम् ।
शृतशीतं मधुयुक्तं शमयत्यचिरेण सूतिकातङ्कम् ॥ २ ॥

गुरुच, सोंठ, कटसरैया, भद्रमोथा, भरकाइन, लघु पञ्चमूल ( शालिपर्णी, पृश्नपर्णी, छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी गोखरू ), नागरमोथा और सुगन्धबाला, को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ कर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र ही सूतिका रोग शमन हो जाता है ॥ २ ॥

देवदार्वादि—

देवदारु वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् । भूनिम्बः कट्फलं मुस्तं तिक्ता धान्यं हरीतकी ॥
गजकृष्णा च दुःस्पर्शा गोक्षुरधन्वयासकः । बृहत्यतिविषा छिन्ना कर्कटं कृष्णजीरकम् ॥ २ ॥
समभागान्वितैरेतैः सिन्धुरामठसंयुतम् । क्वाथमष्टावशेषं तु प्रसूतां पाययेत्स्त्रियम् ॥ ३ ॥
शूलकासज्वरश्वासमूर्च्छाकम्पशिरोर्तिभिः । युक्तं प्रलापतृड्दाहतन्द्रातीसारवान्तिभिः ॥ ४ ॥
निहन्ति सूतिकारोगं वातपित्तकफोद्भवम् । कषायो देवदार्वादिः सूतायाः परमौषधम् ॥५॥

देवदार्वादि क्वाथ—देवदारु, वच कूठ, पीपल, सोंठ, चिरायता कायफर, नागरमोथा, कुटकी धनियां, हरड़, गजपीपल भटकैया गोखरू, जवासा, बड़ी कटेरी, अतीस, गुरुच, काकड़ासिंगी और कृष्ण जीरक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक अष्टमांशावशेष क्वाथ बनाकर शुद्ध हींग और सेंधानमक का प्रक्षेप देकर प्रसूता स्त्री को पिलाने से शूल, कास, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, कम्पन, शिरःशूल प्रलाप, तृषा, दाह तन्द्रा, अतीसार और वमन से युक्त सूतिका रोग जो वात-पित्त और कफ से उत्पन्न हुआ हो नष्ट होता है। यह देवदार्वादि क्वाथ सूतिका रोग की परम ओषधि है ॥ १–५ ॥

निर्गुण्ड्याद्यिक्वाथ —

सद्योजितो दलितया कणया कवोष्णो निर्गुण्डिकालशुननागरजः कषायः ।
पीतो निहन्ति कफमारुतकोपजातं सूत्यामयं सकलमेव सुदुस्तरं च ॥ १ ॥

निर्गुण्ड्यादि क्वाथ—निर्गुण्डी, लहसुन और सोंठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके किञ्चित उष्ण रहते उसमें पीपल के चूर्ण का प्रक्षेप देकर पान करने से कफ-वायु के दोष से उत्पन्न सूतिका रोग जो कठिन अवस्थाओं में भी हो नष्ट होता है ॥ १ ॥

सहचरादि—सहचरकुलत्थपुष्करदारुशिलादारुवेतसक्वाथः ।
पीतः सहिङ्गुलवणः शमयति शूलज्वरौ सूत्याः ॥ १ ॥

सहचरादि क्वाथ—कटसरैया, कुलथी, पोहकरमूल, दारुहल्दी, देवदारु और बेत को समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ करके उसमें शुद्ध हींग तथा सेंधानमक का प्रक्षेप देकर पान करने से शूल ज्वर सहित सूतिका रोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

पञ्चमूलादि—

पञ्चमूलस्य वा क्वाथं तप्तलोहेन संयुतम् । सूतिकारोगनाशाय पिबेद्वा सयुतां सुराम् ॥ १ ॥

पञ्चमूलादि क्वाथ—पञ्चमूल ( लघुपञ्चमूल ) का क्वाथ बनाकर उसमें लोहा को तपाकर बुझा कर सूतिका रोग को नष्ट करने के लिये पिलाना चाहिये अथवा पञ्चमूल से युक्त सुरा पिलाना चाहिये ॥ १ ॥

पञ्चजीरकपाक—

जीरकं स्थूलजीरञ्च शतपुष्पाह्वयं तथा । यवानी चाजमोदा च धान्यकं मेथिकाऽपि च ॥१॥
शुण्ठी कृष्णा कणामूलं चित्रकं हपुषाऽपि च । विदारीफलचूर्णं तु कुष्ठं कम्पिल्लकं तथा ॥ २ ॥
एतानि पलमात्राणि गुडं पलशतं मतम् । क्षीरं प्रस्थद्वयं दद्यात्सर्पिषः कुडवं तथा ॥ ३ ॥
पञ्चजीरकपाकोऽयं प्रसूतानां प्रशस्यते । प्रयुक्तः सूतिकारोगे योनिरोगे ज्वरे क्षये ॥
कासे श्वासे पाण्डुरोगे कार्श्ये वातामयेषु च ॥ ४ ॥

पञ्चजीरकपाक—जीरा, स्थूलजीरक ( कलौंजी ), सौंफ सोवा, अजवाइन, अजमोदा, धनियाँ, मेथी, सोंठ पीपल, पिपरामूल, चित्रकमूल, हाउबेर, विदारीकन्द के फल का चूर्ण, कूठ और कबीला प्रत्येक एक २ पल, पुराना गुड़ सौ पल दूध दो प्रस्थ और घी एक कुडव ( एक पाव ) लेकर पाक की विधि से पाक सिद्धकर लेवे। इसे सूतिका रोग योनिरोग, ज्वर, क्षय, कास, श्वास, पाण्डुरोग, कृशता तथा वातरोगों में प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १–४ ॥

सौभाग्यशुण्ठी—आज्यस्याञ्जलियुग्ममत्र पयसः प्रस्थद्वयं खण्डतः
पञ्चाशत्पलमत्र चूर्णितमथ प्रक्षिप्यते नागरम्।
प्रस्थार्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टिश्च धान्यका-
न्मिस्या पञ्चपलं पलं क्रिमिरिपोः साजाजिजीरावपि॥ १॥
व्योषाम्भोदद्लोरगेन्द्रसुमन सद्माविदीनां पलं
पक्वं नागरखण्डसञ्ज्ञकमिदं सौभाग्यदं योषिताम्।
तृट्छर्दिज्वरदाहशोषशमनं सश्वासकासापहं
प्लीहव्याधिविनाशनं क्रिमिहरं मन्दाग्निसंदीपनम्॥ २॥

सौभाग्य शुंठीपाक—गौ का घृत दो अञ्जली, गौ का दूध दो प्रस्थ (दो सेर), शक्कर ५० पल और सोंठ का चूर्ण आधा प्रस्थ लेकर गुडपाक की विधि से पाक कर उसमें धनियों का चूर्ण ? पल, सौंफ का चूर्ण ५ पल, वायविडंग का चूर्ण १ पल, जीरा का चूर्ण १ पल, कृष्णजीरा का चूर्ण १ पल, सोंठ, मरिच, पीपल नागरमोथा, तेजपात, इन्द्रजौ, जावित्री और छोटी इलायची के दाने का चूर्ण एक २ पल मिलाकर पाक प्रस्तुत कर लेवे। यह स्त्रियों को सौभाग्य देनेवाला है तथा पिपासा, वमन, ज्वर, दाह और शोष को शमन करता है और श्वास, कास और क्रिमि रोग को नष्ट करता है तथा मन्दाग्नि को प्रदीप्त करता है॥ १-२॥

अन्यच्च—

नागरं कणशः कृत्वा प्रस्थमात्रं भिषग्वरः। अजादुग्धाढकद्वन्द्वे विपचेन्मन्दवह्निना॥ १॥
घनीभूते तु पयसि तस्माच्छुण्ठीं समुद्धरेत्। अतिसूक्ष्मं विनिष्पिष्य शोषयेदातपे खरे॥२॥
घृतमानीं समावाप्य तद्दुग्धं तु पुनः पचेत्। यावत्पिण्डत्वमायाति ततस्तत्र विनिक्षिपेत्॥
चातुर्जातं तुगा चेल्लं धान्यकं जीरकद्वयम्। मिसिमाकल्लकं शुण्ठीं लवङ्गं च शतावरीम्॥
तालमूली त्रिकटुकं कपिकच्छू च षट्कटु। जातीफलं जातिपत्रीं शृङ्गाटं वृद्धदारकम्॥ ५॥
त्रिवृतां पद्मबीजं च त्रिफलां च बलाद्वयम्। बलं सेव्यं वाजिगन्धां चन्दनागरुकारवीः॥६॥
कङ्कोलमजगन्धां च द्राक्षामाक्षोटवातिजे। अजमोदं च बादामं नारीकेलगतं तथा॥ ७॥
कर्पूरमभ्रकं लोहं वङ्गं ताम्रं शिलाजतु। स्वर्णमाक्षिकमप्येतत्प्रत्येकं कर्षमात्रकम्॥ ८॥
चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तत्र पाणिभ्यां मर्दयेद्दृढम्। ततः खण्डतुलां पक्त्वा तथा तत्र क्रियां चरेत्॥
खण्डनागरकं नाम्ना भैषज्यमिदमुत्तमम्। यथाबलमिदं खादेत्प्रातः सायं च भेषजम्॥१०॥

सोंठ को खण्ड २ करके एक प्रस्थ लेवे और इसे दो आढक (८ प्रस्थ) बकरी के दूध में मन्द २ अग्नि पर पकावे जब दूध गाढ़ा हो जाय तब उससे सोंठ के खण्डों को निकाल कर अत्यन्त सूक्ष्म पीसकर तीक्ष्ण धूप में सुखावे तथा गोघृत एक मानी (आधा प्रस्थ) लेकर उक्त दूध (जिसमें से सोंठ निकाल ली गयी है) में मिलाकर पुनः इसे पकावे जब उसका पिण्ड होने लगे अर्थात् जब खोआ हो जावे तब उसमें उपरोक्त सोंठ मिला देवे तथा दालचीनी, इलायची तेज पात नागकेसर, वंशलोचन, वायविडंग, धनिया जीरा कृष्णजीरा सौंफ, अकरकरा, सोंठ, लवंग शतावरी, मूसली, सोंठ, मरिच, पीपल, केवांच के बीज, सोंठ मरिच, पीपल, पिपरामूल, चाव, चित्रकमूल, जायफर जावित्री, सिंघाड़ा विधारा, त्रिवृता कमल के बीज, आमला, हरड़, बहेड़ा, बरियारा, अतिबला (सहदेयी नागबला ककही) सुगन्धवाला, खस, असगन्ध, चन्दन, अगर, करजीरी कङ्कोल, अजगन्धा (मर्री) दाख, अखरोट, कमल अजमोदा, बादाम, नारियल, कपूर, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, वङ्गभस्म, ताम्रभस्म शुद्ध शिलाजीत और स्वर्णमाक्षिकभस्म के इलक्ष्ण चूर्ण तथा भस्म को पृथक् २ प्रत्येक एक २ कर्ष की मात्रा से लेकर उसमें मिलाकर हाथों से भलीभाँति मर्दन करे पश्चात् एक सौ पल शर्करा लेकर उसका पाक कर (चाशनी बना) उसमें मिला देवे इस प्रकार विधिवत् पाक प्रस्तुत कर लेवे। यह खण्डनागरक नाम की उत्तम औषधि है इस औषधि को बलानुसार प्रातः सायं खाना चाहिये॥ १-१०॥

स्त्रीणामतिहितं चात्र पथ्यापथ्यविचारणा। क्षये पाण्डौ ज्वरे कासे श्वासे मन्दानले तथा॥
समग्रहण्यां रक्तगुल्मे प्रदरे सोमरोगके। दुग्धक्षये मूत्रकृच्छ्रे कामलायां गलग्रहे॥ १२॥
पित्तरोगेषु सर्वेषु वातपित्तगदेषु च। सूतिकापवनव्याधौ शस्तमेतच्च सर्वदा॥ १३॥

अश्विभ्यां पूर्वमुदितः सेव्यो योगोऽयमुत्तमः। एषा सौभाग्यदा शुण्ठी स्त्रीणां पुत्रप्रदा शुभा॥

यह स्त्रियों के लिये अत्यन्त हितकर है, इसके सेवन में पथ्यापथ्य का विचार नहीं है। यह पाक क्षय, पाण्डु, ज्वर, कास, श्वास, मन्दाग्नि, संग्रहणी, रक्तगुल्म, प्रदर, सोमरोग, दुग्ध क्षय (दूध की न्यूनता), मूत्रकृच्छ्र, आमवात, गलग्रह, सभी प्रकार के पित्तरोग और वातपित्त रोग, सूतिका रोग तथा वातव्याधि अथवा सूतिका के वायु में हितकर है। इन सभी रोगों को यह पाक नष्ट करता है। इसे पहले अश्विनीकुमारों ने बनाया था। यह अत्यन्त उत्तम तथा सेवन के योग्य है। यह सौभाग्य शुण्ठी योग स्त्रियों को पुत्र देनेवाला है॥ ११-१४॥

अपरञ्च— नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम्।
क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्धतुलां पचेत्॥ १॥

शताह्वाजीरकव्योषत्रिसुगन्धियवानिकाः। कारवीमिसिचव्याग्निमुस्तानां च पलं पलम्॥२॥
लेहीभूतमिदं सिद्धं घृतभाण्डे निधापयेत्। तद्यथाग्निबलं खादेत्सूतिका तु विशेषतः॥ ३॥
बल्यं वर्ण्यं तथाऽऽयुष्यं वलीपलितनाशनम्। वयसः स्थापनं हृद्यं मन्दाग्नेर्दीपनं परम्॥४॥
आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम्। मक्कल्लशूलशमनं सूतिकारोगनाशनम्॥ ५॥

सोंठ ८ पल, गोघृत २० पल, गोदुग्ध एक आढक (चार प्रस्थ) शर्करा ५० पल, सबको एकत्र कर गुडपाक की विधि से पाक कर उसमें सौंफ, जीरा, सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, अजवाइन, कालाजीरा या मगरैला, सौंफ, चव्य, चित्रकमूल और नागरमोथा प्रत्येक का चूर्ण एक १ पल लेकर मिलाकर विधिपूर्वक लेह की भाँति सिद्धकर घृत भाण्ड (घृत से स्निग्ध पात्र) में रख देवे। सूतिका रोगी को इसे अग्निबल के अनुसार मात्रा से सेवन कराना चाहिये। यह बलदायक, वर्णप्रसादक, आयुवर्धक, वलीपलित नाशक, आयुस्थापक और हृदय को हितकर है। यह मन्दाग्नि को अत्यन्तदीप्त करता है, आमवात को शमन करता है, उत्तम सौभाग्यदायक है, मक्कलशूल को शमन करता है और सूतिकारोग को नष्ट करता है॥ ४-५॥

प्रतापलङ्केश्वरो रसः—

एकेन्दुपक्षानलवार्धिदन्तीकलैकभागं क्रमशो विमिश्रम्।
सूताभ्रगन्धोषणलोहशङ्खवन्योत्पलाभस्मविषं च पिष्टम्॥ १॥
प्रसूतिवातेऽनिलबद्धतन्त्रे सार्द्रांभसा वल्लमयुष्म लिह्यात्।
वातामये श्लेष्मगदेऽर्शसि स्यात्पुरामृतार्द्रात्रिफलायुतोऽयम्॥ २॥
समाद्रकेरस्व एष हन्ति ससंनिपातं ज्वरमुग्ररूपम्।
निजानुपानैर्निजपथ्ययुक्तः सर्वातिसारान् ग्रहणीविकारान्॥ ३॥
प्रतापलङ्केश्वरनामधेयः सूतः प्रयुक्तो गिरिराजपुत्र्या॥ ४॥

प्रतापलङ्केश्वर रस—शुद्धपारद, अभ्रकभस्म और शुद्धगन्धक १-१ भाग, मरिच का चूर्ण २ भाग, लौहभस्म ४ भाग, शङ्खभस्म ८ भाग, जंगली गोइठा का भस्म १६ भाग और शुद्ध विष १ भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर उसमें सब ओषधियों को मिलाकर भलीभाँति पीस कर रख लेवे। प्रसूतिवात में जब वायु से दाँत बैठ जावे तब इसे आर्द्रक के स्वरस के अनुपान से वल्ल प्रमाण (डेढ़ रत्ती से ३ रत्ती तक की मात्रा में अवस्था तथा बल के अनुसार) चटाना चाहिये। वात, कफ तथा अर्शरोग में इस रस को शुद्ध गुग्गुल, गुरुच, आदक तथा त्रिफला के चूर्ण अथवा क्वाथ के अनुपान से सेवन कराना चाहिये। केवल आर्द्रक के स्वरस के अनुपान से सेवन करने से सन्निपात सहित उग्र ज्वर को नष्ट करता है और अपने २ अनुपान से सेवन करने से और इसके अनुकूल पथ्य करने से सभी प्रकार के अतीसार और ग्रहणी को नष्ट करता है। प्रतापलङ्केश्वर नाम के इस रस को पार्वती जी ने प्रयोग किया था॥ १-४॥

प्रसूतायाः नियमसमयावधिमाह—

सर्वतः परिशुद्धा स्यात्स्निग्धपथ्याल्पभोजना। स्वेदाभ्यङ्गपरा नित्यं भवेन्मासमतन्द्रिता॥

प्रसूता के नियम—सब प्रकार से प्रसूता का शरीर-वस्त्र गृहादि स्वच्छ रखना चाहिये, तथा स्निग्ध एवं थोड़ा भोजन कराना चाहिये नित्य स्वेद और तैलाभ्यङ्ग आदि कराना चाहिये। इस प्रकार एक मास तक बिना आलस्य के इस नियम से रखना चाहिये॥ १॥

प्रसूता सार्धमासान्ते दृष्टे वा पुनरार्तवे। सूतिकानामहीना स्यादिति धन्वन्तरेर्मतम् ॥ २ ॥

प्रसूता स्त्री डेढ़ मास के पश्चात् अथवा पुन: ऋतुमती हो जाने पर प्रसूता नाम से हीन हो जाती है, ऐसा धन्वन्तरि का मत है ॥ २ ॥

उपद्रवैर्विशुद्धां च विज्ञाय वरवर्णिनीम्। ऊर्ध्वं चतुर्भ्यो मासेभ्यः परिहारं विसर्जयेत् ॥ ३ ॥

अब सब प्रकार के उपद्रवों से विशुद्ध (मुक्त) होकर प्रसूता स्त्री पूर्णस्वस्थ हो जावे तब चार मास के पश्चात् परिहारों को (सूतिका के पथ्यादिकों को) त्याग देवे ॥ ३ ॥

## अथ स्तनरोगस्य निदानपूर्विका चिकित्सामाह।

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषः प्राप्य स्तनौ स्त्रियाः।
रक्तं मांसं च संदूष्य स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥

स्तनरोग निदान—स्त्री के दूध सहित अथवा बिना दूध के ही स्तनों में कुपित वातादि दोष प्राप्त होकर रक्त और मांस को दूषित करके स्तनरोग कर देते हैं ॥ १ ॥

स्तनरोगाणामतिदेशेन लक्षणान्याह—

पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना। लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥

स्तनरोग का लक्षण—जिस प्रकार बाह्यविद्रधि होती है उसी प्रकार रक्तज विद्रधि के विना वात, पित्त, कफ, सन्निपात तथा आगन्तुक (अभिघातादि से उत्पन्न) भेद से पांच प्रकार के स्तनरोग बाह्यविद्रधि के लक्षणों के समान लक्षण वाले होते हैं ॥ २ ॥

स्तनरोगचिकित्सा—

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्याद्विद्रध्यावभिहितं यहुधा विधानम्।
आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं यस्याः स्तनौ सततमेव च निगृहीतौ ॥ १ ॥

पित्तघ्नानि सुशीतानि द्रव्याण्यत्र प्रयोजयेत्। जलौकाभिर्हरेद्रक्तं तत्स्तनावुपनाहयेत् ॥ २ ॥

स्तनरोग चिकित्सा—स्तन में उत्पन्न हुए शोथ को देख कर विद्रधिरोग में कहे हुए अनेक प्रकार की चिकित्साओं को करना चाहिये। आम अवस्था में, विदाही अवस्था में तथा पक जाने पर भी यथाक्रम से पित्तनाशक एवं सुशीतल द्रव्यों का प्रयोग (लेपादि लगाना) जलौका द्वारा रक्तमोक्षण कराना और उसके स्तनों में उपनाहादि (सेकादि) क्रिया करनी चाहिये ॥ १-२ ॥

लेपो विशालामूलेन हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्।
निशाकनककल्काभ्यां लेपः प्रोक्तः स्तनार्तिहा ॥ ३ ॥

इन्द्रायण (माहुरि) की जड़ को विधिपूर्वक पीसकर लेप लगाने से तथा हल्दी और धतूरे के पत्तों का कल्क बनाकर लेप करने से स्तन की पीड़ा नष्ट होती है ॥ ३ ॥

लेपाद्विहन्ति मूलं स्तनरोगं वन्ध्यकर्कोटया। निर्वाप्य तप्तलोहं सलिले तद्वा पिबत्तत्र ॥४॥

बांझककोड़े की जड़ का लेप बनाकर लगाने से तथा लोहे को अग्नि में तपाकर पानी में बुझाकर उस पानी को पिलाने से स्तनरोग शमन होते हैं ॥ ४ ॥

इति स्तनरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ क्षीरदोषचिकित्सा।

उक्तं सुश्रुते—

रसप्रसादो मधुरः पक्वाहारनिमित्तजः। कृत्स्नदेहात्स्तनौ प्राप्तः स्तन्यमित्यभिधीयते ॥ १ ॥

स्तन्य के लक्षण—भोजनपाक से उत्पन्न रस का मधुर प्रसाद भाग जो सम्पूर्ण शरीर से स्तनों में आ जाता है उसे स्तन्य (दूध) कहते हैं ॥ १ ॥

माधवेनाप्युक्तम्—

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम्। क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ॥ २ ॥

दूषित स्तन्य—गुरु अन्न के सेवन तथा और भी अनेक प्रकार के वातादिकों के दूषित करने वाले आहारादि के सेवन से वातादि दोष माता अथवा धाय के दूध को दूषित कर देते हैं, वह दूध अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला होता है ॥ २ ॥

कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ।
वात दोष से दूषित दूध—वात दोष से दूषित दूध स्वाद में कषाय तथा जल में गिराने पर ऊपर ही ऊपर तैरने वाला होता है ॥

कट्वम्ललवणं पीतराजिमत्पित्तसञ्ज्ञितम् ॥ २ ॥
पित्त दोष से दूषित दूध—पित्त दोष से दूषित दूध स्वाद में कटु, अम्ल तथा लवणरस वाला तथा पीली रेखाओं से युक्त होता है ॥ २ ॥

कफदुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम् ।
कफदोष से दूषित दूध—कफ दोष से दूषित दूध गाढ़ा, चिकना तथा जल में गिराने पर डूब जाता है ॥

द्विलिङ्गं द्वंद्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम् ॥ ४ ॥
द्वन्द्वज तथा सन्निपातज दोष से दूषित दूध—जिस में दोषों के मिलित लक्षण दिखाई दे उसे द्वन्द्वज और जिसमें तीनों दोषों के लक्षण दिखाई दे उसे त्रिदोषज दूध जानना चाहिये ॥ ४ ॥

अविकृतस्तन्यमाह—

अदुष्टं चाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवति पाण्डुरम् । मधुरं चाविवर्णं च तत्प्रसन्नं विनिर्दिशेत् ॥ १ ॥
शुद्ध दूध—जो दूध दूषित नहीं होता है वह जल में छोड़ने पर शीघ्र ही जल में मिल जाता है और वर्ण में पाण्डुर ( श्वेत ) तथा स्वाद में मधुर रस वाला होता है तथा वह वातादि दोषों के वर्ण से रहित अपने वर्ण में ही रहता है । ऐसे दूध को शुद्ध दूध कहते हैं ॥ १ ॥

तच्चिकित्सा—

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीं त्र्यहं पिबेत् । वातव्याधिहरं सर्पिः पीत्वा मृदु विरेचयेत् ॥
वातज दूध चिकित्सा—वात दोष से दूषित दूध में तीन दिन तक दशमूल का क्वाथ पीना चाहिये । तथा वातव्याधि नाशक सिद्ध घृत पिलाकर मृदु विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम् । धात्री कुमारश्च पिबेत्क्वाथयित्वा सशर्करम् ॥ २ ॥
पित्तज दूध चिकित्सा—पित्त दोष से दूषित दूध में गुरुच शतावरी पटोलपत्र नीम की छाल और रक्तचन्दन समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ बनाकर उसमें शर्करा का प्रक्षेप देकर माता अथवा धाय तथा बालक को भी पिलाना चाहिये ॥ २ ॥

कफदुष्टे घृतं पेयं यष्टीसैन्धवसंयुतम् । राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च वदनच्छदौ ॥ ३ ॥
सुखमेव वमेद्बालः कफकोपश्च शाम्यति ।
*कफज दूध चिकित्सा—कफ दोष से दूषित दूध में जेठी मधु तथा सेंधानमक का चूर्ण मिलाकर* गोघृत पिलाना चाहिये अथवा सेंधानमक और जेठी मधु के योग से घृत सिद्ध कर पिलाना चाहिये और मैनफल के फूलों को पीस कर कल्क बनाकर स्तनों पर तथा शिशु के ओठों पर भी लेप कर देना चाहिये । इससे बालक सुखपूर्वक वमन कर देता है तथा कफ का कोप भी शान्त हो जाता है ॥ ३ ॥

द्वन्द्वदुष्टं द्विदोषाभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां विशोधयेत् ॥ ४ ॥
द्विदोषज दूध चिकित्सा—दो दोषों के लक्षणों से दूषित दूध को पहले कहे हुए दो दोषों को शमन करने वाले योगों को देकर शुद्ध करना चाहिये ॥ ४ ॥

स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्टे बालकःशमं जलोपमम् । नानावर्णरुजं चापि विबद्धमुपवश्यते ॥ ५ ॥
त्रिदोष दूषित दूध के लक्षण और चिकित्सा—त्रिदोष दूषित दूध को पीने वाले बालक का मल आमयुक्त, जल के समान, अनेक वर्ण का तथा अनेक पीड़ाओं से युक्त, आधा बँधा हुआ ( आधा-गाढ़ा आधा पतला ) होता है ॥ ५ ॥

पाठा मूर्वा च भूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकाः । सारिवाघनविश्वाश्च सद्य स्तन्यविशोधनम् ॥
पुरइनपाढ़ी, मूर्वा, चिरायता, दारुहल्दी, सोंठ, इन्द्रजौ, सारिवा, नागरमोथा और कुरची को समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पिलाने से त्रिदोष से दूषित दूध का शोधन होता है ॥ ६ ॥

स्तन्यजननविधि —

भूमिकूष्माण्डमूलस्य क्षीरपिष्टस्य यो रसम् । पिबेत्सशर्करं तस्याः क्षीरं बहु विवर्धते ॥ १ ॥

दुग्ध वर्धक योग—विदारीकन्द को गौ के दूध के साथ पीसकर उसका रस निकाल कर उसमें शर्करा मिलाकर पान करने से प्रसूता स्त्री का दूध बहुत बढ़ता है ॥ १ ॥

शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्धनी । कवोष्ण कणया पीतं क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ॥ २ ॥

शतावरी को गौ के दूध के साथ पीसकर पान करने से तथा किञ्चित् उष्ण गौ के दूध में पीपल का चूर्ण मिलाकर पान करने प्रसूता का दूध बढ़ता है ॥ २ ॥

वनकार्पासकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा । विदारीकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥ ३ ॥

वनकपास तथा ईख की जड़ को सौवीर ( कांजी ) के साथ पीसकर पिलाने से अथवा विदारी कन्द के चूर्ण को सुरा के साथ पिलाने से प्रसूता का दूध बढ़ता है ॥ ३ ॥

वज्रकाञ्जिकम्—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यवानिका । जीरके द्वे हरिद्रे द्वे बिडं सौवर्चलं तथा ॥ १ ॥
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् । तद्यथाग्निबलं पीत्वा प्रसूता सुखमश्नुते ॥ २ ॥
आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वातमाशनम् । तद्वज्रकाञ्जिकं नाम्ना स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ॥
मक्कल्लशूलशमनं परं क्षीरविवर्धनम् ॥ ३ ॥

वज्रकाञ्जिक योग—पीपल, पिपरामूल, चाव सोंठ अजवाइन, जीरा, कृष्णजीरा, हल्दी, बिड लवण और सौवर्चल लवण को समान भाग लेकर कूट पीसकर ( कांजी ८ पल, जल ३२ पल, पीपल आदि प्रत्येक चार २ मासा एकत्र कर पाक करे ८ पल शेष रहने पर उतार छने ) इस सिद्ध कांजी को अग्निबल के अनुसार पीने से आमवात का नाश होता है। यह घृत कफ नाशक और वात नाशक है। यह वज्रकांजी नामक योग स्त्रियों की अग्नि को बढ़ाता है, मक्कलशूल को नष्ट करता है और दूध को अत्यन्त बढ़ाता है ॥ ३ ॥

पथ्यापथ्यम्—

यत्पथ्यं यदपथ्यं च रक्तपित्तेषु कीर्तितम् । प्रदरेऽपि यथादोषं तत्तु नारी हजि त्यजेत् ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—जो पथ्य और जो अपथ्य रक्तपित्तरोग में कहा गया है, प्रदर रोग में भी वही दोषानुसार स्त्री को त्यागना चाहिये ॥ १ ॥

वातव्याधिमतो पथ्यापथ्यं च यदुदीरितम् । योनिव्यापत्सु सर्वासु विद्ध्यात्तु यथामलम् ॥२॥

वातव्याधि में जैसा पथ्यापथ्य कहा गया है वैसा ही सभी योनि व्यापद रोगों में दोषानुसार जानना चाहिये ॥ २ ॥

शालयः षष्टिकाः मुद्गाः गोधूमाः लाजसक्तवः । नवनीतं घृतं क्षीरं रसाला मधु शर्करा ॥
पनसं कदलं धात्री द्राक्षाम्लं स्वादु शीतलम् ॥ ३ ॥
कस्तूरी चन्दनं माला कर्पूरमनुलेपनम् । चन्द्रिका स्नानमभ्यङ्गो मृदुशय्या हिमानिलः ॥४॥
सतर्पणं प्रियाश्लेषो विहाराश्च मनोरमाः । प्रियंकरं चान्नपानं गर्भिणीनां हितं सदा ॥ ५ ॥

गर्भिणी के लिये पथ्यापथ्य—शालिधान का चावल, साठी का चावल, मूंग गेहूं, धान के लावा का सत्तू, मक्खन, घृत, दूध, रसाला योग, मधु शर्करा, कटहल, केला, आँवला, दाख, अम्लरस, मधुररस शीतल पदार्थ, कस्तूरी, चन्दन माला धारण और कपूर का लेप, चन्द्रमा के किरण स्नान, अभ्यङ्ग, कोमल शय्या शीतल वायु, तृप्तिकर पदार्थ, प्रिय का आलिंगन, मन को भाने वाला विहार ( आमोद प्रमोद ) तथा प्रिय अन्न और पेय पदार्थ का सेवन ये सभी गर्भिणी के लिये पथ्य हैं ॥ ३–५ ॥

स्वेदनं वमनं क्षारं कटुकं विषमाशनम् । अपथ्यमिदमुद्दिष्टं गुर्विणीनां महर्षिभिः ॥ १ ॥

स्वेदकर्म वमन क्षार पदार्थ, दूषित अथवा रूक्षादि और विषम भोजन को महर्षियों ने गर्भवती स्त्री के अपथ्य कहा है ॥ १ ॥

सूतिकाख्येषु रोगेषु वातश्लेष्मोद्भवेषु च । तत्र रोगानुरूपेण पथ्यापथ्यं विनिर्दिशेत् ॥ २ ॥

सूतिका रोगों में तथा वात-कफ के दोष से उत्पन्न हुए रोगों में उन २ रोगों में कहे हुए पथ्यापथ्य के अनुसार पथ्यापथ्य करें ॥ २ ॥

इति स्त्रीरोगप्रकरणं समाप्तम्

## अथ बालरोगाधिकारः ।

तत्र बालरोगाणां निदानानि लक्षणानि चाऽऽह—

धात्र्यास्तु गुरुभिर्भोज्यैर्विषमैर्दोषलैस्तथा । दोषा देहे प्रकुप्यन्ति ततः स्तन्यं प्रदुष्यति ॥१॥

बाल रोगों के निदान—धाय अथवा माता के गुरु भोजन करने से, विषम भोजन करने से तथा दोषों को कुपित करनेवाले पदार्थ का भोजन करने से अथवा अन्य दोष वाले भोजन करने से वातादि दोष शरीर में कुपित हो जाते हैं और कुपित होकर दूध को दूषित कर देते हैं ॥ १ ॥

मिथ्याहारविहारिण्या दुष्टा वातादयः स्त्रियाः । दूषयन्ति पयस्तेन जायन्ते व्याधयः शिशोः ॥

मिथ्या ( अनुचित ) आहार विहार करनेवाली धाय अथवा माता के शरीर में वातादिक तीनों दोष दूषित हो जाते हैं और दूध को दूषित कर देते हैं जिससे दूध पीने वाले शिशु को रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २ ॥

वातादुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः । क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥

वात से दूषित दूध को पीनेवाला बालक वातरोग से पीड़ित होजाता है, उसका स्वर क्षीण हो जाता है, अङ्ग दुर्बल हो जाता है और उसका मल मूत्र तथा अधोवायु अवरुद्ध हो होकर जाता है ॥ ३ ॥

स्विन्नो भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् । तृष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पयः पिबन् ॥

पित्त से दूषित दूध को पीनेवाला बालक स्वेदयुक्त रहता है ( उसे निरन्तर पसीना हुआ करता है ), उसे विड्भेद रहता है, कामला तथा पित्तरोग से युक्त रहता है, तृषावाला होता है और उसका सम्पूर्ण अंग उष्ण रहता है ॥ ४ ॥

कफदुष्टं पिबन्क्षीरं लालालुः श्लेष्मरोगवान् । निद्रार्दितो जडः शूनवक्त्राक्षश्छर्दनः शिशुः ॥

कफ से दूषित दूध को पीनेवाला बालक लालास्रावी होता है ( उसे निरन्तर लार गिरता है ), कफरोग वाला होता है, निद्रालु होता है, शिथिलाङ्ग होता है, उसके मुख और नेत्र में शोथ रहता है और वमन वह किया करता है ॥ ५ ॥

शिशोर्वक्तुमशक्तस्यान्तर्गतवेदनाज्ञानोपायमाह—

शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनाल्लक्षयेद्रुजम् ॥ १ ॥

बालक के रोग परीक्षा—बालक की तीव्र पीड़ा अथवा मन्द पीड़ा उसके रोने से जानना चाहिये । तीव्र पीड़ा में अधिक रोता है, मन्द पीड़ा में कम रोता है ॥ १ ॥

कुकूणकमाह—

कुकूणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि । जायते तेन तन्नेत्रं कण्डूरं च स्रवेन्मुहुः ॥ १ ॥
शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् । शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥ २ ॥

कुकूणक रोग के लक्षण—कुकूणक रोग दूषित दूध के पीने से बालकों के नेत्र की पलकों में होता है जिससे नेत्र में कण्डु होता है तथा बार २ उससे स्राव होता है और बालक मस्तक, नेत्र, कण्ठ देश और नासिका को घिसा करता है, उसे सूर्य की प्रभा को देखने की शक्ति नहीं रहती है और न वह नेत्र के पलकों को खोलने में ही समर्थ होता है ॥ २ ॥

पारिगर्भिकमाह—मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ।
श्वासाग्निसादवमथुतन्द्राकासारुचिभ्रमैः ॥ १ ॥
युज्यते कोष्ठवृद्ध्या च तमाहुः पारिगर्भिकम् । रोगं परिभवाख्यं च तत्र युञ्जीत दीपनम् ॥

पारिगर्भिक रोग के लक्षण—बालक गर्भवती स्त्री का दूध पीता हुआ अथवा न पीता हुआ भी ( गर्भिणी का बालक ) प्रायः श्वास, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, कास, अरुचि और भ्रमरोगों से तथा कोष्ठ वृद्धि ( उदर का बढ़ जाना ) से युक्त हो जाता है उसे पारिगर्भिक या परिभव रोग कहते हैं । इस रोग में अग्निदीपन उपचार करना चाहिये ॥ १-२ ॥

तालुकण्टकमाह—

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् । तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १ ॥
तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्द्रवम् । तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥२॥

तालुकण्टक रोग के लक्षण—बालक के तालुमांस में कुपित हुआ कफ तालुकण्टक नामक रोग

उत्पन्न कर देता है जिससे शिर पर तालु प्रदेश की निम्नता हो जाती है अर्थात् तालु में गड्ढा पड़ जाता है। इसमें तालुका पात (तालु का नीचे की ओर आ जाना), स्तनद्वेष अर्थात् स्तन नहीं पीना, कष्ट से दूध पीना, मल का द्रव होना, तृषा, नेत्र-कण्ठ तथा मुख में पीड़ा, ग्रीवा नहीं उठा सकना और वमन होना ये सब लक्षण हो जाते हैं॥ १-२॥

महापद्ममाह—विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः।
पद्मवर्णो महापद्मरोगो दोषत्रयोद्भवः॥ १॥
शङ्खाभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा गुदं व्रजेत्।

महापद्मरोग के लक्षण—बालक के बस्तिस्थान तथा शिर में उत्पन्न हुआ विसर्प प्राणनाशक होता है उसका वर्णकमल के वर्ण का होता है, उसका नाम महापद्मरोग है और यह तीनों दोषों के कोप से उत्पन्न होता है यह शंख प्रदेश से शुरू होकर हृदय की ओर जाता है और (बस्तिज) हृदय से गुदा की ओर जाता है॥ १॥

क्षुद्ररोगे च कथिते अजगल्ल्यहिपूतने॥ २॥

अजगल्ली और अहिपूतना जो बालकों को होने वाले दो रोग हैं वे क्षुद्र रोग में कहे जा चुके हैं॥ २॥

अन्येऽपि विकारा बालाना भवन्ति तानतिदेशेनाऽऽह—

ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरेरिताः। बालदेहेऽपि ते तद्वज्ज्ञेयाः स्युः कुशलैरिह॥१॥

ज्वरादि रोग जो बड़ों के लिये पहले कहे गये हैं वे सभी बालकों के शरीर में भी होते हैं और उसी के अनुसार यहां भी वैद्य को जान लेना चाहिये॥ १॥

दन्तोद्भेदकान्रोगानाह—

दन्तोद्भेदः शिशोः सर्वरोगाणां कारणं स्मृतः। विशेषाज्ज्वरविड्भेदकासच्छर्दिशिरोरुजाः॥
अभिष्यन्दस्य पोथक्या विसर्पस्य च जायते॥ १॥

दन्तोद्भेदक रोग—दन्तनिष्क्रमण बालकों के लिये सभी रोगों का कारण कहा गया है। विशेष कर इसमें, ज्वर, विड्भेद (मल का द्रव होना), कास, वमन, शिर में पीड़ा, अभिष्यन्द, पोथकी तथा विसर्प रोग भी हो जाता है॥ १॥

ग्रहग्रस्तबालरोगलक्षणानि—

बालग्रहा अनाचारात्पीडयन्ति शिशुं यतः। तस्मात्तदुपसर्गेभ्यो रक्षेद्बालं प्रयत्नतः॥ १॥

ग्रहग्रस्त बाल रोग के लक्षण—आचार (पवित्रता) से नहीं रहने के कारण प्राय बालग्रह बालकों को पीड़ित करते हैं इसलिये उनके उपद्रवों से यत्नपूर्वक बालक की रक्षा करनी चाहिये॥

बालग्रहाणां नामान्याह—

स्कन्दग्रहस्तु प्रथमः स्कन्दापस्मार एव च। शकुनी रेवती चैव पूतना गन्धपूतना॥ १॥
पूतना शीतपूर्वा च तथैव मुखमण्डिका। नवमो नैगमेयश्च प्रोक्ता बालग्रहा अमी॥ २॥

बालग्रहों के नाम—स्कन्दग्रह, स्कन्दापस्मार, शकुनी, रेवती, पूतना, गन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेय नाम के नौ ग्रह बालग्रह कहे जाते हैं॥ १-२॥

सामान्यग्रहजुष्टाना बालानां लक्षणान्याह—

क्षणादुद्विजते बालः क्षणात्त्रस्यति रोदिति। नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च॥ १॥
ऊर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेत्कूजति जृम्भते। भ्रुवौ क्षिपति दन्तोष्ठं फेनं वमति चासकृत्॥
क्षामोऽति निशि जागर्ति शूनाङ्गो भिन्नविट्स्वरः।
मांसशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा॥ ३॥
दुर्बलो मलिनाङ्गश्च नष्टसंज्ञोऽपि जायते। सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम्॥ ४॥

ग्रहजुष्ट बालकों के सामान्य लक्षण—जो बालक क्षणभर में उद्विग्न (विकल) हो उठे, क्षण में भयातुर हो जाय, क्षण में रोने लगे, धाय अथवा माता को और अपने को भी नख तथा दांतों से काटे, ऊपर की ओर देखा करे, दांत खावे अर्थात् दांत को चबाया करे, अस्फुट आर्तनाद करे, अधिक जम्भाई लेवे, भ्रूभाग तथा दांत ओठ को इधर उधर चलावे तथा ओठों को काटे बार २ फेन का वमन करे, अत्यन्त दुर्बल हो जाय, रात में जागे उसके अङ्गों में शोथ हो जावे, उसे

मलभेद हो और उसका स्वर फटा हुआ ( स्वरभेद युक्त ) निकले, उसके शरीर से मांस और रक्त का गन्ध आवे, पूर्व की भाँति भोजन न करे दुर्बल हो जाय, अङ्ग की प्रभा मलिन हो जाय और चेतना भी क्रमी २ उसकी नष्ट हो जाय उसे सामान्य ग्रह जुष्ट जानना चाहिये ॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां लक्षणान्याह, तत्राऽऽदौ स्कन्दग्रहस्य लक्षणमाह—

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्यन्दनकम्पनम् । ऊर्ध्वदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः ॥
दन्तान्खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति । स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ॥

स्कन्दग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दग्रह से जुष्ट होता है तब उसके किसी एक नेत्र से स्राव होता है, गात्र से स्राव होता है अर्थात् स्वेदयुक्त शरीर रहता है, शरीर के अङ्ग फरकते और काँपते हैं, ऊर्ध्व दृष्टि से ( ऊपर की ओर ) देखता रहता है, मुख टेढ़ा हो जाता है, उसके शरीर से रक्त की गन्ध आती है, दाँतों को चबाता रहता है, भयभीत रहता है, दूध से उसे अरुचि रहती है और रोदन भी कम ही करता है ॥ १–२ ॥

स्कन्दापस्मारग्रहस्य लक्षणम्—

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति । पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ १ ॥

स्कन्दापस्मारग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दापस्मार ग्रह से जुष्ट होता है तब मूर्च्छित अवस्था में फेन का वमन करता है और रक्त की गन्ध आती है ॥ १ ॥

शकुन्या लक्षणमाह—

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः स्राविव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ १ ॥

शकुनी ग्रह के लक्षण—जब बालक शकुनीग्रह से जुष्ट होता है तब उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, भय से चकित रहता है, उसके शरीर से जलचर मांसाशी पक्षी के गन्ध के समान गन्ध आती है, स्रावयुक्त व्रणों से सब ओर से पीडित रहता है, तथा दाह-पाक युक्त स्फोटों से ( नवीन व्रण से ) उसका शरीर व्याप्त रहता है ॥ १ ॥

रेवतीग्रहलक्षणमाह—

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक् । भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ १ ॥

रेवतीग्रह के लक्षण—जब बालक रेवतीग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर व्रणों अर्थात् को बहने वाले होते हैं उन व्रणों तथा स्फोटों ( नवीन व्रणों ) से व्याप्त होता है और उसके शरीर से कीचड़ के गन्ध के समान दुर्गन्ध युक्त रक्त का स्राव होता है तथा उसे मलभेद, ज्वर और दाह होता है ॥ १ ॥

पूतनालक्षणमाह—

अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् । नष्टनिद्रस्ततोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ १ ॥

पूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक पूतनाग्रह से जुष्ट होता है तब उसे अतीसार, ज्वर और तृषा होती है, तिरछा देखता है, रोता है, उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है और निरन्तर उद्विग्न रहता है ॥ १ ॥

गन्धपूतनालक्षणमाह—छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूतनया भवेत् ॥ १ ॥

गन्धपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक गन्धपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, कास, ज्वर और तृषा होती है उसके शरीर से वसा ( चर्बी ) के समान गन्ध आती है, वह अत्यन्त रोता है, दूध नहीं पीता है और उसे अतीसार भी हो जाता है ॥ १ ॥

शीतपूतनालक्षणमाह—

वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विस्रगन्धिता । छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ १ ॥

शीतपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक शीतपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर काँपता है उसे कास होता है, उसका शरीर क्षीण हो जाता है, उसके शरीर से दुर्गन्धि आती है, वमन होता है और अतीसार से युक्त रहता है ॥ १ ॥

मुखमण्डिकालक्षणमाह—

प्रसन्नवर्णवदनः सिराभिरभिसंवृतः । मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डिकया ग्रहः ॥ १ ॥

मुखमण्डनिका ग्रह के लक्षण—जब बालक मुखमण्डिका ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका वर्ण प्रसन्न ( स्वच्छ ) होता है, मुख प्रसन्न रहता है, शरीर की शिरायें उभर आती हैं, उसके शरीर से मूत्र की गन्ध के समान गन्ध आती है और भोजन बहुत करता है ॥ १ ॥

नैगमेयग्रहलक्षणमाह—छर्दिः स्यन्दनकण्ठास्यशोषो मूर्च्छा विगन्धिता।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्तान्नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ १ ॥

नैगमेय ग्रह के लक्षण—जब बालक नैगमेय ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, लालास्राव अथवा स्वेद होता है, कण्ठ तथा मुख सूखा रहता है, मूर्च्छा होती है, शरीर से दुर्गन्धि आती है, ऊर्ध्वदृष्टि अर्थात् ऊपर देखने वाला होता है और दाँतों को चबाता है ॥ १ ॥

स्रस्ताक्षश्च स्तनद्वेषी मुह्यते चानिशं मुहुः। स बालमचिराद्धन्ति ग्रहः सम्पूर्णलक्षणः ॥ २ ॥

असाध्य लक्षण—जब ग्रहजुष्ट बालक का नेत्र स्तम्भित हो जाय, स्तन नहीं पीवे, बार २ निरन्तर मूर्च्छित होता रहे ऐसे बालक को सम्पूर्ण लक्षणों वाला प्रत्येक ग्रह शीघ्र ही मार देता है ॥

## अथ चिकित्सा।

तत्राऽऽदौ बालरोगाणां चिकित्सा—

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु। तदेव कार्यं बालानां किं तु दाहादिकं विना ॥ १ ॥

बालरोग चिकित्सा—बड़े मनुष्यों के ज्वरादिकों में जो औषधि पहले कही गयी है वही बालकों के लिये भी करनी चाहिये किन्तु दाहादि क्रिया जो बड़े मनुष्यों के लिये की जाती है वह नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

दाहादिकं विना अग्निदाहक्षारवमनविरेचनशिराव्यधादिकं विना।
महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकान्यपि दद्यात्।

दाहादि के बिना अर्थात् अग्निदाह, क्षारकर्म, वमनकर्म, विरेचन कर्म, तथा शिराव्यध आदि क्रिया के बिना वमन विरेचन आदि भी करना चाहिये ॥

यत आह सुश्रुतः—

विरेकबस्तिवमनान्यृते कुर्याच्च नात्ययात्। त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते ॥
अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी ॥ १ ॥

बालक को विरेचन, बस्तिकर्म, तथा वमन अत्यन्त कष्ट के बिना नहीं कराना चाहिये। बालकों को भी वही दोष और दूष्य तथा ज्वरादिक व्याधियाँ होती हैं जो बड़े मनुष्यों को होती हैं व्याधि के अनुसार बालकों को भी वही औषधि देनी चाहिये जो बड़ों को दी जाती है केवल बालकों के लिये मात्रा लघु होनी चाहिये ॥ १ ॥

कनीयसीं मात्रामाह विश्वामित्रः—

विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम्। अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धयेत् ॥ १ ॥

बालकों की औषधि मात्रा—जब शिशु की उत्पत्ति हुई हो उस अवस्था में काष्ठौषधियों की मात्रा विडङ्ग के फल के प्रमाण की देनी चाहिये तथा इसी प्रकार प्रत्येक मास में बढ़ाकर देनी चाहिये ( प्रथम मास में एक विडङ्ग दूसरे मास में दो विडङ्ग, तीसरे मास में तीन विडङ्ग के प्रमाण की मात्रा इस प्रकार बढ़ाकर देनी चाहिये ) ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे स्वल्पथाऽभिहितम्—

प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका। अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ १ ॥
एकैकां वर्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत्। तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावत्षोडशवत्सराः ॥ २ ॥
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः। ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ॥३॥

प्रथम मास में बालक को काष्ठौषधि एक रत्ती के प्रमाण की मात्रा में देनी चाहिये तथा मधु, दूध, शर्करा एवं घृत के अनुपान से लेहवत् करके चटाना चाहिये तथा प्रतिमास एक २ रत्ती बढ़ा कर मात्रा देनी चाहिये जबतक कि बालक एक वर्ष तक का होवे अर्थात् प्रतिमास के बालक को उसी अनुसार उतनी ही रत्ती की मात्रा देनी चाहिये एक वर्ष के हो जाने पर १२ रत्ती ( एक मासा ) के प्रमाण की मात्रा देनी चाहिये ॥ इससे ऊपर अर्थात् वर्ष पूरा हो जाने पर प्रत्येक वर्ष में एक २ मासा उसी नियम से सोलह वर्ष तक बढ़ाना चाहिये अर्थात् जितने वर्ष का बालक

मलभेद हो और उसका स्वर फटा हुआ ( स्वरभेद युक्त ) निकले, उसके शरीर से मांस और रक्त का गन्ध आवे, पूर्व की भाँति भोजन न करे, दुर्बल हो जाय, अङ्ग की प्रभा मलिन हो जाय और चेतना भी कभी २ उसकी नष्ट हो जाय उसे सामान्य ग्रह जुष्ट जानना चाहिये ॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां लक्षणमाह, तत्राऽऽदौ स्कन्दग्रहस्य लक्षणमाह—

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्यन्दनकम्पनम् । ऊर्ध्वदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः ॥
दन्तान्खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति । स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ॥

स्कन्दग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दग्रह से जुष्ट होता है तब उसके किसी एक नेत्र से स्राव होता है, गात्र से स्राव होता है अर्थात् स्वेदयुक्त शरीर रहता है, शरीर के अङ्ग फरकते और काँपते हैं, ऊर्ध्व दृष्टि से ( ऊपर की ओर ) देखता रहता है, मुख टेढ़ा हो जाता है, उसके शरीर से रक्त की गन्ध आती है, दाँतों को चबाता रहता है, भयभीत रहता है, दूध से उसे अरुचि रहती है और रोदन भी कम ही करता है ॥ १-२ ॥

स्कन्दापस्मारग्रहस्य लक्षणम्—

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति । पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ १ ॥

स्कन्दापस्मारग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दापस्मार ग्रह से जुष्ट होता है तब मूर्च्छित अवस्था में फेन का वमन करता है और रक्त की गन्ध आती है ॥ १ ॥

शकुन्या लक्षणमाह—

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः संस्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ १ ॥

शकुनी ग्रह के लक्षण—जब बालक शकुनीग्रह से जुष्ट होता है तब उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, भय से चकित रहता है, उसके शरीर से अम्बर मांसाशी पक्षी के गन्ध के समान गन्ध आती है, स्रावयुक्त व्रणों से सब ओर से पीडित रहता है, तथा दाह-पाक युक्त स्फोटों से ( नवीन व्रण से ) उसका शरीर व्याप्त रहता है ॥ १ ॥

रेवतीग्रहलक्षणमाह—

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक् । भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम् ॥ १ ॥

रेवतीग्रह के लक्षण—जब बालक रेवतीग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर व्रणों अर्थात् जो बहने वाले होते हैं उन व्रणों तथा स्फोटों ( नवीन व्रणों ) से व्याप्त होता है और उसके शरीर से कीचड़ के गन्ध के समान दुर्गन्ध युक्त रक्त का स्राव होता है तथा उसे मलभेद, ज्वर और दाह होता है ॥ १ ॥

पूतनालक्षणमाह—

अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् । नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः ॥१॥

पूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक पूतनाग्रह से जुष्ट होता है तब उसे अतीसार, ज्वर और तृषा होती है, तिरछा देखता है, रोता है, उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है और निरन्तर उद्विग्न रहता है ॥ १ ॥

गन्धपूतनालक्षणमाह—छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूतनया भवेत् ॥ १ ॥

गन्धपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक गन्धपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, कास, ज्वर और तृषा होती है उसके शरीर से वसा ( चर्बी ) के समान गन्ध आती है, वह अत्यन्त रोता है, दूध नहीं पीता है और उसे अतीसार भी हो जाता है ॥ १ ॥

शीतपूतनालक्षणमाह—

वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता । छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः ॥ १ ॥

शीतपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक शीतपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर काँपता है, उसे कास होता है, उसका शरीर क्षीण हो जाता है उसके शरीर से दुर्गन्ध आती है वमन होता है और अतीसार से युक्त रहता है ॥ १ ॥

मुखमण्डनिकालक्षणमाह—

म्लानपद्मवदनः सिरातिरमिलसद्‌वदनः । मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डनिकाग्रहे ॥ १ ॥

मुखमण्डनिका ग्रह के लक्षण—जब बालक मुखमण्डिका ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका वर्ण प्रसन्न ( स्वच्छ ) होता है, मुख प्रसन्न रहता है, शरीर की शिरायें उभर आती हैं, उसके शरीर से मूत्र की गन्ध के समान गन्ध आती है और भोजन बहुत करता है ॥ १ ॥

नैगमेयग्रहस्याह—छर्दिः स्यन्दनकण्ठास्यशोषो मूर्च्छा विगन्धिता।
ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्दन्ता नैगमेयग्रहं वदेत् ॥ १ ॥

नैगमेय ग्रह के लक्षण—जब बालक नैगमेय ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, लालास्राव अथवा स्वेद होता है, कण्ठ तथा मुख सूखा रहता है, मूर्च्छा होती है, शरीर से दुर्गन्धि आती है, ऊर्ध्वदृष्टि अर्थात् ऊपर देखने वाला होता है और दाँतों को चबाता है ॥ १ ॥

त्रस्ताक्षश्च स्तनद्वेषी मुह्यते चानिशं मुहुः। तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः सम्पूर्णलक्षणः ॥ २ ॥

असाध्य लक्षण—जब ग्रहजुष्ट बालक का नेत्र स्तम्भित हो जाय, स्तन नहीं पीवे, बार २ निरन्तर मूर्च्छित होता रहे ऐसे बालक को सम्पूर्ण लक्षणों वाला प्रत्येक ग्रह शीघ्र ही मार देता है ॥

## अथ चिकित्सा।

तत्राऽऽदौ बालरोगाणां चिकित्सा—

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु। तदेव कार्यं बालानां किन्तु दाहादिकं विना ॥ १ ॥

बालरोग चिकित्सा—बड़े मनुष्यों के ज्वरादिकों में जो ओषधि पहले कही गयी है वही बालकों के लिये भी करनी चाहिये किन्तु दाहादि क्रिया जो बड़े मनुष्यों के लिये की जाती है वह नहीं करनी चाहिये ॥ १ ॥

दाहादिकं विना अग्निदाहक्षारवमनविरेचनशिराव्यधादिकं विना।
महाकष्टे चोत्पन्ने वमनविरेकान्यपि दद्यात्।

दाहादि के बिना अर्थात् अग्निदाह, क्षारकर्म, वमनकर्म, विरेचन कर्म, तथा शिराव्यध आदि क्रिया के बिना वमन विरेचन आदि भी करना चाहिये ॥

यत आह सुश्रुत —

विरेकबस्तिवमनान्यन्ते कुर्याच्च नात्ययात्। त एव दोषा दूष्याश्च ज्वराद्या व्याधयश्च ते ॥
अतस्तदेव भैषज्यं मात्रा त्वस्य कनीयसी ॥ १ ॥

बालक को विरेचन बस्तिकर्म, तथा वमन अत्यन्त कष्ट के बिना नहीं कराना चाहिये। बालकों को भी वही दोष और दूष्य तथा ज्वरादिक व्याधियाँ होती हैं जो बड़े मनुष्यों को होती हैं व्याधि के अनुसार बालकों को भी वही ओषधि देनी चाहिये जो बड़ों को दी जाती है केवल बालकों के लिये मात्रा लघु होनी चाहिये ॥ १ ॥

कनीयसीं मात्रामाह विश्वामित्र —

विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम्। अनेनैव प्रमाणेन मासि मासि प्रवर्धयेत् ॥ १ ॥

बालकों की ओषधि मात्रा—जब शिशु की उत्पत्ति हुई हो उस अवस्था में काष्ठौषधियों की मात्रा विडङ्ग के फल के प्रमाण की देनी चाहिये तथा इसी प्रकार प्रत्येक मास में बढ़ाकर देनी चाहिये ( प्रथम मास में एक विडङ्ग दूसरे मास में दो विडङ्ग, तीसरे मास में तीन विडङ्ग के प्रमाण की मात्रा इस प्रकार बढ़ाकर देनी चाहिये ) ॥ १ ॥

तन्त्रान्तरे त्वन्यथाऽभिहितम्—

प्रथमे मासि बालाय देया भैषज्यरक्तिका। अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ १ ॥
एकैकां वर्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत्। तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावत्षोडशवत्सराः ॥ २ ॥
ततः स्थिरा भवेत्तावद्यावद्वर्षाणि सप्ततिः। ततो बालकवन्मात्रा ह्रासनीया शनैः शनैः ॥३॥

प्रथम मास में बालक को काष्ठौषधि एक रत्ती के प्रमाण की मात्रा में देनी चाहिये तथा मधु, दूध, शर्करा एवं घृत के अनुपान से लेहवत् करके चटाना चाहिये तथा प्रतिमास एक २ रत्ती बढ़ा कर मात्रा देनी चाहिये जबतक कि बालक एक वर्ष तक का होवे अर्थात् प्रतिमास के बालक को उसी अनुसार उतनी ही रत्ती की मात्रा देनी चाहिये एक वर्ष के हो जाने पर १२ रत्ती ( एक मासा ) के प्रमाण की मात्रा देनी चाहिये ॥ इससे ऊपर अर्थात् वर्ष पूरा हो जाने पर प्रत्येक वर्ष में एक २ मासा उसी नियम से सोलह वर्ष तक बढ़ाना चाहिये अर्थात् जितने वर्ष का बालक

मलभेद हो और उसका स्वर फटा हुआ (स्वरभेदयुक्त) निकले, उसके शरीर से मांस और रक्त का गन्ध आवे, पूर्व की भाँति भोजन न करे, दुर्बल हो जाय, अङ्ग की प्रभा मलिन हो जाय और चेतना भी कमी २ उसकी नष्ट हो जाय उसे सामान्य ग्रह जुष्ट जानना चाहिये॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां लक्षणान्याह, तत्राऽऽदौ स्कन्दग्रहस्य लक्षणमाह—

एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावः स्यन्दनकम्पनम्। उर्ध्वदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः॥
दन्तान्खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवाभिनन्दति। स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च॥

स्कन्दग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दग्रह से जुष्ट होता है तब उसके किसी एक नेत्र से स्राव होता है, गात्र से स्राव होता है अर्थात् स्वेदयुक्त शरीर रहता है, शरीर के अङ्ग फरकते और काँपते हैं, ऊर्ध्व दृष्टि से (ऊपर की ओर) देखता रहता है, मुख टेढा हो जाता है उसके शरीर से रक्त की गन्ध आती है, दाँतों को चबाता रहता है, भयभीत रहता है, दूध से उसे अरुचि रहती है और रोदन भी कम ही करता है॥ १-२॥

स्कन्दापस्मारग्रहस्य लक्षणम्—

नष्टसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति। पूयशोणितगन्धित्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम्॥ १॥

स्कन्दापस्मारग्रह के लक्षण—जब बालक स्कन्दापस्मार ग्रह से जुष्ट होता है तब मूर्च्छित अवस्था में फेन का वमन करता है और रक्त की गन्ध आती है॥ १॥

शकुन्या लक्षणमाह—

स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः स्रावार्यव्रणपरिपीडितः समन्तात्।
स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाकैर्विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या॥ १॥

शकुनी ग्रह के लक्षण—जब बालक शकुनीग्रह से जुष्ट होता है तब उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं, भय से चकित रहता है, उसके शरीर से जलचर मांसाशी पक्षी के गन्ध के समान गन्ध आती है, स्रावयुक्त व्रणों से सब ओर से पीडित रहता है, तथा दाह-पाक युक्त स्फोटों से (नवीन व्रण से) उसका शरीर व्याप्त रहता है॥ १॥

रेवतीग्रहलक्षणमाह—

व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं सवेदरुक्। भिन्नवर्चा ज्वरी दाही रेवतीग्रहलक्षणम्॥ १॥

रेवतीग्रह के लक्षण—जब बालक रेवतीग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर व्रणों अर्थात् को बहने वाले होते हैं उन व्रणों तथा स्फोटों (नवीन व्रणों) से व्याप्त होता है और उसके शरीर से कीचड़ के गन्ध के समान दुर्गन्ध युक्त रक्त का स्राव होता है तथा उसे मलभेद ज्वर और दाह होता है॥ १॥

पूतनालक्षणमाह—

अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम्। नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः॥१॥

पूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक पूतनाग्रह से जुष्ट होता है तब उसे अतीसार, ज्वर और तृषा होती है, तिरछा देखता है, रोता है, उसकी निद्रा नष्ट हो जाती है और निरन्तर उद्विग्न रहता है॥ १॥

गन्धपूतनालक्षणमाह—छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम्।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च गन्धपूतनया भवेत्॥ १॥

गन्धपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक गन्धपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसे वमन, कास, ज्वर और तृषा होती है उसके शरीर से वसा (चर्बी) के समान गन्ध आती है, वह अत्यन्त रोता है, दूध नहीं पीता है और उसे अतीसार भी हो जाता है॥ १॥

शीतपूतनालक्षणमाह—

वेपथुः कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता। छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया शिशुः॥ १॥

शीतपूतना ग्रह के लक्षण—जब बालक शीतपूतना ग्रह से जुष्ट होता है तब उसका शरीर काँपता है, उसे कास होता है उसका शरीर क्षीण हो जाता है उसके शरीर से दुर्गन्धि आती है, वमन होता है और अतीसार से युक्त रहता है॥ १॥

मुखमण्डिकालक्षणमाह—

प्रसन्नवर्णवदनः सिराभिरभिसंवृतः। मूत्रगन्धिश्च बह्वाशी मुखमण्डिकया ग्रहः॥ १॥

जिह्वायां लेप—बालो योऽचिरजातः स्तन्यं गृह्णाति नो यदा तस्य।
सैन्धवधात्रीमधुघृतपथ्याकल्केन घर्षयेज्जिह्वाम् ॥ १ ॥

जिह्वा का लेप—जो बालक नूतन उत्पन्न हुआ हो और दूध नहीं पीता हो उसकी जीभ सेंधानमक, आँवला, मधु, गोघृत तथा हरड़ के विधिपूर्वक बने हुए कल्क से घिसे इससे बालक के दूध पीने लगता है ॥ १ ॥

पर्लंकषादिधूप—

पलंकषा वचा कुष्ठं गजचर्माविचर्म च। निम्बस्य पत्रं क्षौद्रेण सार्धमुक्तं तु धूपनम् ॥
ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालकानां विशेषतः ॥ १ ॥

पर्लंकषादि धूप—गुग्गुल, बच, कूठ, हाथी का चमड़ा, भेंड़ी का चमड़ा और नीम के पत्ते को मधु के साथ मिलाकर अग्नि में धूप देवे इस धूप के गन्ध से बालकों के ज्वर का वेग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

मूर्वाद्युद्वर्तनम्—मूर्वानिशासर्षपरामसेनश्वेतासमङ्गाम्बुदकारवीणाम्।
छागीपयोभिः सह पेषितानामुद्वर्तनं स्याज्ज्वरजिच्छिशूनाम् ॥ १ ॥

मूर्वादि उद्वर्तन—मूर्वामूल, हल्दी, सरसों, हींग, श्वेत बच, मजीठ, नागरमोथा और कालाजीरा को समान भाग लेकर बकरी के दूध के साथ पीसकर उबटन करने से बालकों का ज्वर नष्ट होता है ॥ १ ॥

अतिसारग्रहण्योश्चिकित्सा—

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम्। शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं।कासं श्वासं वमिं हरेत् ॥ १ ॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, पीपल, मजीठ और काकड़ासिंगी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु मिलाकर बालकों को चटाने से उनका ज्वर, अतीसार अथवा ज्वरातिसार नष्ट होता है तथा कास-श्वास और वमन नष्ट होता है ॥ १ ॥

लोध्रेण पिप्पली बाला बालकातिसृतौ हितः।

लोध्रादि चूर्ण—लोध, पीपल और सुगन्धवाला चूर्ण बालकों के अतीसार में देने से लाभ होता है॥

क्षीरसो माक्षिकयुतो धातकीकुसुमैः समम् ॥

क्षीरसादि चूर्ण—राल और धाय के फूल के चूर्ण को मधु में मिलाकर चटाने से बालकों का अतीसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पली च।
क्वाथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ३ ॥

बिल्वादि योग—कच्चे बेल की गुदी धाय के फूल, सुगन्धवाला, लोध और गजपीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ अथवा अवलेह बनाकर उसमें मधु मिलाकर बालकों के अतीसार ( रोग में देना चाहिये ॥ ३ ॥

समङ्गाधातकीलोध्रसारिवाभिः श्रृतं जलम्। दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥४॥

समङ्गादि क्वाथ—मजीठ अथवा लज्जालू, धाय के फूल, लोध और शारिवा को समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ करके उसमें मधु का प्रक्षेप देकर बालकों के भयङ्कर अतीसार में भी देना चाहिये ॥ ४ ॥

विडङ्गान्यजमोदा च पिप्पलीतण्डुलानि च। एषामालिह्य चूर्णानि सुखोष्णेन वारिणा ॥५॥
आमे प्रवृत्तेऽतीसारे कुमारं पाययेद्भिषक्।

विडङ्गादि चूर्ण—बायविडंग, अजमोदा और पीपल के बीज के समान भाग चूर्ण को ( मधु के साथ ) चटाकर सुखोष्ण जल पिलाना चाहिये। इससे बालकों का आमातिसार नष्ट होता है ॥ ५ ॥

मोचारसं समङ्गा च धातकी पद्मकेसरम्। पिष्टैरेतैर्यवागूः स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ ६ ॥

मोचारसादि यवागू—मोचरस, मजीठ, धाय के फूल और पद्मकेसर को समान भाग लेकर पीसकर विधिवत् यवागू बनाकर देने से बालकों का रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ६ ॥

नागरातिविषामुस्तबालकेन्द्रयवैः श्रृतम्। कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ १ ॥

हो उतने ही मासा के प्रमाण क्वाथौषधि की मात्रा देनी चाहिये ( यदि बालक पांच वर्ष का हो तो ५ मासा १० वर्ष का हो तो १० मासा इस प्रकार करके १६ वर्ष तक का हो तब तक बढ़ाकर १६ मासा के प्रमाण की औषधि देनी चाहिये ) पश्चात् यह मात्रा तब तक स्थिर रखनी चाहिये जबतक कि ७० वर्ष की आयु होय अर्थात् सोलह वर्ष की अवस्था में मात्रा पूर्ण हो जाती है और यह पूर्ण मात्रा ७० वर्ष तक रखनी चाहिये, इसके पश्चात् मात्रा बालक की भाँति धीरे २ ( शरीर की शक्ति के ह्रास होते जाने के कारण घटानी चाहिये ॥ १-३ ॥

चूर्णकल्कावलेहानामियं मात्रा प्रकीर्तिता । कषायस्य पुनः सैव विज्ञातव्या चतुर्गुणा ॥ ४ ॥

ऊपर जो मात्रा कही गयी है वह चूर्ण-कल्क और अवलेह आदि औषधि के लिये कही गयी है, क्वाथ के लिये उसे चतुर्गुण जानना चाहिये । अर्थात् जिसे १ रत्ती औषधि देना कहा गया हो उसे ४ रत्ती और जिसे एक मासा कहा गया हो उसे ४ मासा के प्रमाण से क्वाथ देना चाहिये ॥

क्षीरपस्य शिशोर्दद्यादौषधं क्षीरसर्पिषा । धात्र्यास्तु केवलं देयं न क्षीरेणापि सर्पिषा ॥ ५ ॥

दूध पीनेवाले बालक को दूध तथा घी के साथ औषधि देनी चाहिये किन्तु यदि माता अथवा धाय को देना हो तो केवल औषधि देनी चाहिये, उसे दूध और घृत नहीं देना चाहिये ।५॥

ज्वरस्य चिकित्सा—

सर्वं निवार्यते बाले स्तन्यं नैव निवार्यते । मात्रया लङ्घयेद्धात्रीं शिशोरेतद्धि लङ्घनम् ॥ १ ॥

ज्वर चिकित्सा—बालक के लिये ( जो केवल दुग्धाशी हो ) अवश्य में सब कुछ त्याग कराया जा सकता है किन्तु दूध का त्याग नहीं कराया जा सकता । यदि शिशु को लङ्घन कराने की ही आवश्यकता आपड़े तो धाय को ही ( जिसका दूध वह पीता हो ) भोजनादि की मात्रा में ह्रास कराकर सहने योग्य लङ्घन ( जिससे धाय क्षीण न हो जाये ) करावे इसी से ही बालक का लङ्घन हो जाता है ॥ १ ॥

क्षीरादस्यौषधं धात्र्या क्षीराद्यादस्य चोभयोः ॥ २ ॥
अन्नादस्य तु बालस्य योजयेत्कुशलो भिषक् ॥

बालक यदि केवल दूध ही पीता हो तो उसके लिये धाय को ही ( जिसका दूध पीता हो उसे ही ) औषधि देनी चाहिये तथा यदि बालक दूध भी पीता हो और अन्न भी खाता हो तो धाय तथा बालक दोनों को औषधि देनी चाहिये, किन्तु यदि अन्न ही खानेवाला बालक हो तो केवल बालक को ही औषधि देनी चाहिये ॥ २ ॥

भद्रमुस्तादि क्वाथः सर्वज्वरेषु—

भद्रमुस्ताभयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः । क्वाथः कोष्णः शिशोरेव निःशेषज्वरनाशनः ॥ १ ॥

भद्रमुस्तादि क्वाथ—नागरमोथा, हरड़, नीम की छाल, परवल के पत्र और मुलहठी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर थोड़ा उष्ण रहते बालक को पिलाने से सभी प्रकार के ज्वर का नाश होता है ॥ १ ॥

एलाद्यास्थिकटुत्रिकत्रिफलिकावेल्लाब्दशक्राह्वया
लोध्रं धातकिबिल्वकाद्रहपुष्पाविडंगाजमोदाः समाः ।
सर्वांशा तुरगी जया मृगगन्धा सर्वैः समांशा सिता ।
बालानां ज्वरकार्श्यकासशमनश्चूर्णोऽतिसारं जयेत् ॥ २ ॥

एलादि चूर्ण—छोटी इलायची, आम के गुठली की गिरि, सोंठ, मरिच, पीपल, आंवला, हरड़, बहेड़ा, वायविडंग, नागरमोथा इन्द्रजव, अतीस, लोध, धाय के फूल, बेले की मज्जा, धनियाँ हाउबेर, कच्चे बेल की गुदी और अजमोदा को समान भाग लेवे और सब मिलकर जितना हो उसके आठवाँ भाग असगन्ध लेवे और सब के सोलहवाँ भाग मुद्द भांग लेवे तथा ये सब मिलकर जितना हो उसके समान भाग शर्करा लेकर विधिवत् चूर्ण बनाकर ( प्रथम इन औषधियों का लक्ष्ण चूर्ण बनाकर तब शर्करा मिलावे ) रख लेवे । इस चूर्ण को यथायोग्य ( उचित मात्रा में ) बालकों को देने से बालकों का ज्वर, कृशता ( सूखा रोग ), कास और अतीसार नष्ट होता है ॥ २ ॥

कर मधु के अनुपान से तीन रात अथवा पांच रात तक चटाने से बालकों का कास, श्वास रोग नष्ट होता है॥

शुगा च पौष्पसंलीढा कासश्वासौ शिशोर्जयेत्॥ १॥

शुगावलेह—वंशलोचन के चूर्ण को मधु के अनुपान से चटाने से बालको का कास श्वास रोग नष्ट होता है॥ १॥

हिक्कायां छर्द्यां च—

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत्। हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरोत्थिताम्॥

हिक्का और वमन चिकित्सा—कुटकी के चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर चटाने से वमन तथा हिक्का को शीघ्र शान्त करता है और बहुत दिनों के उत्पन्न (पुराने) वमन को भी शीघ्र शान्त करता है अथवा इससे पुरानी हिक्का और पुराना वमन भी शान्त हो जाता है॥ १॥

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुद्भवेत्।

आम्रास्थ्यादि चूर्ण—आम के गुठली की गिरि (कोयल), धान का लावा और सेंधानमक के समान चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से वमन नष्ट होता है॥

घनशृङ्गीविषाणां च चूर्णं हन्ति समाक्षिकम्। वान्ति ज्वरं तथा योगो मधुनाऽतिविषारजः॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, काकड़ासिंगी और अतीस के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से अथवा अतीस के चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से बालकों के वमन तथा ज्वर को नष्ट करता है॥ २॥

क्षीरच्छर्द्याम्—

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तं मधुसर्पिषा। द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत्॥ १॥

दूध वमन चिकित्सा—जो बालक दूध पी पीकर वमन कर देता हो उसे छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी दोनों के फलों के मिश्रित स्वरस में पञ्चकोल के समान मिलित चूर्ण को मिलाकर मधु अथवा गोघृत के अनुपान से चटाना चाहिये इससे दूध वमन करना नष्ट हो जाता है॥ १॥

पञ्चकोलं यथा—पिप्पलीपिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्॥

पंचकोल की परिभाषा—पीपल, पिपरामूल, चाब, चित्रक और सोंठ के मिलित योग को पंचकोल कहते हैं॥

तृष्णायाम्—ह्रीबेरशर्करासौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम्॥ १॥

तृषा रोग चिकित्सा—हाऊबेर (सुगन्धबाला) का चूर्ण, शर्करा और मधु को मिलाकर चटाने से बालकों की तृषा नष्ट होती है॥ १॥

आनाहे शूले च—

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्गीरजो लिहन्। आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः॥

आनाह और शूल चिकित्सा—सेंधानमक, सोंठ, छोटी इलायची, शुद्ध हींग और भार्ङ्गी (बमनेठी) के समान मिलित चूर्ण को गोघृत के अनुपान से चटाने से अथवा जल के अनुपान से देने से बालकों के वातिक आनाह और शूल नष्ट होते हैं॥ १॥

रेचनम्—

पिष्ट्वा गन्धर्वबीजानि स्वाखुविण्निम्बुवारिणा। नाभौ गुदे वा लेपेन शिशूनां रेचनं परम्॥१॥

रेचक योग—एरण्ड के बीज और मूसे के मल को नीबू के स्वरस में पीसकर नाभिस्थान अथवा गुदा पर लेप करने से बालकों का मल निस्सरण होता है॥ १॥

इन्दुलोचनमेभागं शिखिभागं हि योजयेत्। शुद्धिगन्धकमुर्दाशतपुष्पा विचूर्णिता॥ २॥

माषद्वयं गवां दुग्धैः सेवयेद्दिनपञ्चकम्। रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हितमौषधम्॥ ३॥

मृत्तिका विरेचन योग—बालक यदि मृत्तिका भक्षण कर लिया हो अथवा गर्भावस्था में माता के मृत्तिका भक्षण करने पर यह योग मृत्तिका का विरेचन द्वारा निस्सारण करता है। छोटी इलायची १ भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग मुर्दा शंख दो भाग और सौंफ तीन भाग लेकर विधि पूर्वक चूर्ण कर दो मासे के प्रमाण की मात्रा से अथवा यथाबल मात्रा से गोदुग्ध के अनुपान से

नागरादि काथ—सोंठ, अतीस, नागरमोथा, मुगपवाला और इन्द्रजौ का विधिवत् क्वाथ बनाकर प्रातःकाल पिलाने से बालकों के सभी प्रकार के अतीसार नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

लाजाः सयष्टिमधुका शर्करा क्षौद्रमेव च । तण्डुलोदकयोगेन क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥२॥

लाजादि चूर्ण—धान का लावा, जेठीमधु, शर्करा और मधु को लेकर प्रथम धान का लावा तथा जेठी मधु का चूर्ण कर उसमें शर्करा और मधु मिलाकर चावल के धुले हुए जल के अनुपान से बालक को पिलाने से शीघ्र प्रवाहिका नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

लोध्रेन्द्रयवधान्याकधात्रीह्रीबेरमुस्तकम् । मधुना लेहयेद्बालं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ १ ॥

लोध्रादि चूर्ण—लोध, इन्द्रजौ, धनियाँ, आँवला, हाऊबेर और नागरमोथा को समान लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु के साथ मिलाकर चटाने से बालकों का ज्वरातिसार नष्ट होता है ॥ १ ॥

रजनी सरलो दारुबृहती गजपिप्पली । पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढा माक्षिकसर्पिषा ॥ १ ॥
दीपनी ग्रहणीं हन्ति मारुतार्तिं सकामलाम् । ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वरोगनुत् ॥

रजन्यादि चूर्ण—हल्दी, सरलकाष्ठ अथवा राल, देवदारु, बड़ी कटेरी, गजपीपल, पिठिवन और सौंफ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर मधु और गोघृत के अनुपान से चटाने से यह चूर्ण अग्नि को दीप्त करता है, ग्रहणी रोग को नष्ट करता है, वायु की पीड़ा अथवा वात रोग, कामला रोग, ज्वर रोग, अतीसार रोग और पाण्डु रोग आदि बालकों के सभी रोगों को नष्ट करता है ॥ १ ॥

कासरोगचिकित्सा—

पौष्कराति विषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः । कृतं चूर्णं मधुसक्षौद्रं शिशूनां पञ्चकासजित् ॥१॥

पौष्करादि चूर्ण—पुहकर मूल, अतीस, काकड़ासिंगी, पीपल और धमासा ( जवासा ) को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर मधु मिलाकर बालकों को चटाने से पांचो प्रकार के कास नष्ट होते हैं ॥ १ ॥

मुस्तकादिरस —

मुस्तकातिविषावासाकणाशृङ्गीरसं लिहन् । मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्चभिरञ्जसा ॥१॥

मुस्तकादि रस—नागरमोथा, अतीस, अडूसा, पीपल और काकड़ासिंगी को समान भाग लेकर इनके रस अर्थात् घन क्वाथ को शीतल करके उसमें मधु का प्रक्षेप देकर चटाने से बालक पांचो प्रकार के कास से मुक्त हो जाता है ॥ १ ॥

व्याघ्रीकुसुमावलेहिका—

व्याघ्रीकुसुमसंजातकेसरैरवलेहिका । मधुनाचिरसंजातान्शिशोः कासान्व्यपोहति ॥ १ ॥

व्याघ्री कुसुमावलेहिका—छोटी कटेरी के पुष्प के केशरों को लेकर मधु से अवलेह बनाकर चटाने से बालकों के बहुत दिनों से उत्पन्न हुए कास रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

कासश्वासचिकित्सामाह—

धान्यं शर्करया युक्तं तण्डुलोदकसंयुतम् । पानमेतत्प्रदातव्यं कासश्वासापहं शिशोः ॥ १ ॥

धान्यादि पानक—धनियाँ को पीसकर अथवा चूर्ण कर उसमें शर्करा मिलाकर चावल के धोवन में घोलकर अथवा चावल के धोवन में ही धनियाँ और शर्करा पीसकर घोलकर पानक बनाकर बालकों को पिलाने से उनका कास, श्वास नष्ट होता है ॥ १ ॥

द्राक्षादि चूर्णम्—

द्राक्षावासाभयाकृष्णाचूर्णं क्षौद्रेण सर्पिषा । लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासं च तमकं तथा ॥१॥

द्राक्षादि चूर्ण—दाख, अडूसा, हरड़ और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर मधु तथा गोघृत के अनुपान से चटाने से बालकों के श्वास, कास तथा तमक श्वास को शीघ्र नष्ट करता है ॥ १ ॥

दुरालभादि लेह—

दुरालभाकणाद्राक्षापथ्याः क्षौद्रेण लेहयेत् । त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कासश्वासहरः शिशोः ॥

दुरालभादि लेह—जवासा, पीपल, दाख और हरड़ को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण

कर मधु के अनुपान से तीन रात अथवा पांच रात तक चटाने से बालकों का कास, श्वास रोग नष्ट होता है॥

तुगा च क्षौद्रसलीढा कासश्वासौ शिशोर्जयेत्॥ १॥

तुगावलेह—वंशलोचन के चूर्ण को मधु के अनुपान से चटाने से बालकों का कास श्वास रोग नष्ट होता है॥ १॥

हिक्कायां छर्द्यां च—

चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजयेत्। हिक्कां प्रशमयेत्क्षिप्रं छर्दिं चापि चिरोत्थिताम्॥

हिक्का और वमन चिकित्सा—कुटकी के चूर्ण को मधु के साथ मिलाकर चटाने से यह शीघ्र हिक्का को शीघ्र शान्त करता है और बहुत दिनों के उत्पन्न (पुराने) वमन को भी शीघ्र शान्त करता है अथवा इससे पुरानी हिक्का और पुराना वमन भी शान्त हो जाता है॥ १॥

आम्रास्थिलाजसिन्धूत्थं सक्षौद्रं छर्दिनुल्लिहेत्।

आम्रास्थ्यादि चूर्ण—आम के गुठली की गिरि (कोयल), धान का लावा और सेंधानमक के समान चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से वमन नष्ट होता है॥

घनशृङ्गीविषाणां च चूर्णं हन्ति समाक्षिकम्। वान्तिं ज्वरं तथा योगो मधुनाऽतिविषारजः॥

घनादि चूर्ण—नागरमोथा, काकड़ासिंगी और अतीस के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से अथवा अतीस के चूर्ण में मधु मिलाकर चटाने से बालकों के वमन तथा ज्वर को नष्ट करता है॥ २॥

क्षीरच्छर्द्याम्—

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तं मधुसर्पिषा। द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत्॥ १॥

दूध वमन चिकित्सा—जो बालक दूध पी पीकर वमन कर देता हो उसे छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी दोनों के फलों के मिलित स्वरस में पञ्चकोल के समान मिलित चूर्ण को मिलाकर मधु अथवा गोघृत के अनुपान से चटाना चाहिये इससे दूध वमन करना नष्ट हो जाता है॥ १॥

पञ्चकोलं यथा—पिप्पलीपिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरम्॥

पञ्चकोल की परिभाषा—पीपल, पिपरामूल, चाव, चित्रक और सोंठ के मिलित योग को पञ्चकोल कहते हैं॥

तृष्णायाम्—ह्रीवेरशर्करात्तौद्रं लीढं तृष्णाहरं परम्॥ १॥

तृषा रोग चिकित्सा—हाऊवेर (सुगन्धबाला) का चूर्ण, शर्करा और मधु को मिलाकर चटाने से बालकों की तृषा नष्ट होती है॥ १॥

आनाहे शूले च—

घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्गीरजो लिहन्। आनाहं वातिकं शूलं हन्यात्तोयेन वा शिशोः॥

आनाह और शूल चिकित्सा—सेंधानमक, सोंठ, छोटी इलायची, शुद्ध हींग और भारङ्गी (बभनेठी) के समान मिलित चूर्ण को गोघृत के अनुपान से चटाने से अथवा जल के अनुपान से देने से बालकों के वातिक आनाह और शूल नष्ट होते हैं॥ १॥

रेचनम्—

पिष्ट्वा गन्धर्वबीजानि स्वाखुविण्निम्बुवारिणा। नाभौ गुदे वा लेपेन शिशूनां रेचनं परम्॥१॥

रेचक योग—एरण्ड के बीज और मूसे के मल को नीबू के स्वरस में पीसकर नाभिस्थान अथवा गुदा पर लेप करने से बालकों का मल निस्सरण होता है॥ १॥

इन्दुलोचननेत्राणि सिसिभाग हि योजयेत्। सुटिगन्धकमुर्दाशङ्खशतपुष्पा विचूर्णिता॥ २॥
माषद्वयं गवां दुग्धे सेवयेद्दिनपञ्चकम्। रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धां शिशूनां हितमौषधम्॥ ३॥

मृत्तिका विरेचन योग—बालक यदि मृत्तिका भक्षण कर लिया हो अथवा गर्भावस्था में माता के मृत्तिका भक्षण करने पर यह योग मृत्तिका का विरेचन द्वारा निस्सारण करता है। छोटी इलायची १ भाग, शुद्ध गन्धक दो भाग मुर्दा शङ्ख दो भाग और सौंफ तीन भाग लेकर विधि पूर्वक चूर्ण कर दो मासे के प्रमाण की मात्रा से अथवा यथाबल मात्रा से गोदुग्ध के अनुपान से

पाँच दिन तक सेवन कराना चाहिये। इससे बालक के उदर से मृत्तिका का रेचन हो जाता बालक के लिये यह हितकर औषधि है॥ २-३॥

मूत्राघाते—

कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः। मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्यः शिशूनां लेह उत्तमः॥ १॥

मूत्राघात चिकित्सा—पीपल, मरिच, शर्करा, मधु, छोटी इलायची और सेंधानमक के मि पूर्वक बने लेह का प्रयोग करने से बालकों का मूत्राघात नष्ट होता है॥ १॥

कार्श्ये—

यस्तु दुर्बलो बालः खादन्नपि च वह्निमान्। विदारीकन्दगोधूमयवचूर्णं घृतप्लुतम्॥१॥
खादयेत्पाययेच्चानु क्षीरं शृतं समधुशर्करम्।

विदारीकन्दादि चूर्ण—यदि उचित पाचकाग्नि वाला बालक, उचित रीति से खाता हुआ भी दुर्बल होता जाय तो विदारीकन्द, गेहूँ और जौ को समान भाग लेकर चूर्ण कर उसमें गोघृ मिलाकर औटाये हुए दूध में शीतल होने पर मधु और शर्करा का प्रक्षेप देकर सेवन कराने बालकों की दुर्बलता नष्ट हो जाती है॥ १॥

सौवर्णं सुकृतं चूर्णं कुष्ठं मधु घृतं वचा॥ २॥
मत्स्याक्षकः शङ्खपुष्पी मधु सर्पिः सकाञ्चनम्। अर्कपुष्पी घृतं क्षौद्रं चूर्णितं कनकं वचा॥३॥
सहेमचूर्णं कैडर्यं श्वेतदूर्वा घृतं मधु। चत्वारोऽभिहिताः प्राश्याः अर्धश्लोकसमापनाः॥
कुमाराणां वपुर्मेधाबलपुष्टिकराः स्मृताः॥ ४॥

सुवर्ण योग—१-सुवर्ण भस्म, कूठ चूर्ण, गोघृत और बच का चूर्ण। २-मत्स्याक्षी, शङ्खपुष्पी, मधु, गोघृत और सुवर्णभस्म। ३-कुकरौंदा का चूर्ण, गोघृत मधु, सुवर्णभस्म और बच का चूर्ण। तथा ४-सुवर्णभस्म, कायफर श्वेत वर्ण की दूब, गोघृत और मधु। आधे २ श्लोकों में कहे हुए पृथक् २ ये चारो योगों में से किसी एक योग को चटाना चाहिये। इससे बालकों के शरीर, मेधा, बल, बुद्धि की वृद्धि होती है॥ १-४॥

लाक्षादितैलम्—

लाक्षारससमं तैलं मस्तुन्यथ चतुर्गुणे। रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुतैः॥ १॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः। संसिद्धं ज्वरशोषघ्नं बलवर्णकरं शिशोः॥ २॥

लाक्षादि तैल—लाख का रस अथवा क्वाथ एक भाग, मूर्च्छित तिल का तैल एक भाग दही का पानी चार भाग और रास्ना, रक्तचन्दन, कूट, नागरमोथा, असगन्ध, हल्दी, सौंफ, दारुहल्दी जेठीमधु, मूर्वा, कुटकी और रेणुका को समान मिलित तैल के चतुर्थांश लेकर कल्क कर तैलपाक की विधि से मन्दाग्नि पर तैल सिद्ध कर बालकों को लगाने से ज्वर तथा शोष के दोष का नाश करता है और बालकों का बल तथा वर्ण बढ़ता है॥ १-२॥

अश्वगन्धाघृतम्—

पादकल्केऽश्वगन्धायाः क्षीरेऽष्टगुणिते पचेत्। घृतं देयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्धनम्॥ १॥

अश्वगन्धा घृत—गोघृत एक भाग, असगन्ध का कल्क घृत के चतुर्थांश और गोदुग्ध घृत के आठ भाग लेकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर बालकों को खिलाना चाहिये, इससे बालकों के शरीर की पुष्टि होती है और बल बढ़ता है॥ १॥

सभल्लातार्कदलकपित्थमूलैः सुरम्यारिवधासमेतैः।
उत्सादिताङ्गः पशुमूत्रपिष्टैर्वचासुण्ठीसलिलाभिषिक्तः॥ १॥
दिने दिने याति शिशुः प्रवृद्धिं पतिः उडूनामिव शुक्लपक्षे॥ २॥

उबटन और अभिषेक—भिलावा के पत्ते मदार के पत्ते, बड़ी करञ्ज की जड़ और कमैर की जड़ को समभाग लेकर पशु ( गो ) के मूत्र के साथ पीस कर बालक के शरीर पर उबटन करने से तथा वच और सुण्ठी को जल में पकाकर सिंचन करने से बालक के दिन प्रतिदिन शरीर वृद्धि इस प्रकार होती है जिस प्रकार शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा की वृद्धि होती है॥ १-२॥

शोथे—

सुरदारुकुष्ठमांसीत्वगालि मधुरसकच्छिरिकाम्। पिष्ट्वा तोयेन संलिम्पेच्छेफेऽर्धं शोथहानिकृत्॥

शोथ चिकित्सा—नागरमोथा, श्वेतकूष्माण्ड के बीज, देवदारु और इन्द्रजौ को समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर लेप लगाने से बालकों का शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

नाभिशोथे—

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा। स्वेदयेदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥१॥

नाभिशोथ चिकित्सा—मिट्टी के ढेले को अग्नि में तपाकर उसे दूध से बुझावे और उसकी ऊष्मा ( भाफ ) से नाभि को स्वेदित करे तो बालकों के नाभिस्थान का शोथ नष्ट होता है ॥ १ ॥

नाभिपाके—

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवधूलनम् ॥ १ ॥

नाभिपाक चिकित्सा—हल्दी, लोध, प्रियंगु ( मालकांगनी ) और मुलहठी के कल्क से विधिपूर्वक तेल सिद्धकर अभ्यङ्ग करने से नाभिपाक नष्ट होता है, तथा इन्हीं औषधियों के चूर्ण को नाभिपाक पर ( घस्सा घस्सा ) लगाने से नाभिपाक में लाभ होता है ॥ १ ॥

दुग्धेन च्छागशकृता नाभिपाकेऽवचूर्णनम्। त्वक्चूर्णैः क्षीरिणां वाऽपि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥

छागशकृत योग—बकरी की विष्ठा दूध में मिलाकर सुखाकर चूर्ण कर लगाने से अथवा क्षीरी वृक्षों की त्वचा के चूर्ण को लगाने से अथवा चन्दन के चूर्ण को लगाने में नाभिपाक में लाभ होता है ॥ २ ॥

गुदपाके—गुदपाके तु बालानां पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम्।
रसाञ्जनं विशेषेण पानलेपनयोर्हितम् ॥
शङ्खयष्ट्यञ्जनैश्चूर्णं शिशूनां गुदपाकनुत् ॥ १ ॥

गुदपाक चिकित्सा—बालकों के गुदपाक में पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये। विशेष कर रसवत का पान और लेपन करना हितकर होता है। शङ्खभस्म, जेठीमधु और रसवत के चूर्ण को गुदपाक पर लगाने से गुदपाक नष्ट होता है ॥ १ ॥

अहिपूतने—शङ्खसौवीरयष्ट्याह्वैर्लेपो देयोऽहिपूतने ॥ १ ॥

अहिपूतन चिकित्सा—शङ्खभस्म, सौवीराञ्जन और जेठी मधु का लेप बनाकर अहिपूतन में लगाने से लाभ होता है ॥ १ ॥

पारिगर्भिके—पारिगर्भिकरोगे तु युज्यते वह्निदीपनम् ॥ १ ॥

पारिगर्भिक चिकित्सा—पारिगर्भिक रोग में अग्निदीपन क्रिया करनी चाहिये ॥ १ ॥

क्षतविसर्पविस्फोटज्वरेषु—

पटोलत्रिफलारिष्टहरिद्राक्वथितं पिबेत्। क्षतवीसर्पविस्फोटज्वराणां शान्तये शिशो ॥ १ ॥

क्षतविसर्प विस्फोट ज्वर चिकित्सा—परवल के पत्ते, आँवला, हरड़, बहेड़ा, नीम की छाल और हल्दी का विधिपूर्वक क्वाथ बनाकर बालकों के क्षत विसर्प विस्फोट ज्वर की शान्ति के लिये देना चाहिये ॥ १ ॥

सिध्मपामाविचर्चिकासु—

गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः ॥ १ ॥

सिध्मपामा विचर्चिका चिकित्सा—गृहधूम ( झोला ) हल्दी, कूट, राई और इन्द्रजौ को समान भाग लेकर तक्र के साथ पीसकर लेप करने से बालकों का सिध्म ( सेहुआ ), पामा, खुजली और विचर्चिकारोग शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ १ ॥

मुखस्राव चिकित्सा—सारिवा, तिल, लोध और मुलहठी का क्वाथ बनाकर जिन बालकों के मुख से निरन्तर स्राव होता हो उनके मुख को धोना चाहिये ॥ १ ॥

मुखस्रावे मुखपाके च—

सारिवातिललोध्राणां कषायो मधुकस्य च। संस्राविणि मुखे शस्तो धावनार्थं शिशोः सदा ॥
मुखपाके तु बालानामाम्रसारमयो रसः। गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ॥ २ ॥

बालकों के मुखपाक रोग में आमसार का चूर्ण, लोहभस्म, गेरू, मधु और रसवत एकत्र मिलाकर लगाना चाहिये ॥ २ ॥

दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तु धावनम् । अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम् ॥ १ ॥

दारुहल्दी, जेठीमधु, हरड़, चमेली के पत्ते के क्वाथ में मधु मिलाकर मुख को धोना चाहिये तथा पीपल वृक्ष की छाल और उसीके पत्ते का चूर्ण मधु मिलाकर मुखपाक में लेप करना चाहिये ॥

रोदने—

पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं घृतक्षौद्रपरिप्लुतम् । बालो रोदिति यस्तस्मै लेढुं दद्यात्सुखावहम् ॥ १ ॥

शिशुक्रन्दन चिकित्सा—बालक यदि अधिक रोता हो तो पीपल, हरड़, बहेड़ा और आँवले के समान मिलित चूर्ण को मधु तथा घी में मिलाकर चटाना चाहिये इससे बालक का रोना बन्द हो जाता है ॥ १ ॥

तालुकण्टके—

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् । पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ १ ॥

तालु कण्टक रोग चिकित्सा—हरड़, वच और कूट को समभाग लेकर विधिपूर्वक कल्क करके मधु मिलाकर माता के दूध के अनुपान से बालक को पिलाने से तालुकण्टकरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

तालुपाके—तालुपाके यवक्षारमधुभ्यां प्रतिसारणम् ।

तालुपाक चिकित्सा—तालुपाक रोगमें यवाक्षार तथा मधु मिलाकर प्रतिसारण करना चाहिये ।

कुकूणके—फलत्रिकं लोध्रपुनर्नवे च शृङ्गवेरं बृहतीद्वयं च ।
आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्यमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

कुकूणक चिकित्सा—हरड़, बहेड़ा, आँमला, लोध, पुनर्नवा, सोंठ, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी को समान भाग लेकर जल के साथ पीस कर किञ्चित् उष्ण लेप करने से श्लेष्मा तथा कुकूणक रोग नाश होता है ॥ १ ॥

नयने—त्र्यूषणं सभृङ्गं च मनःशिलालं करञ्जबीजं च सुपिष्टमेतत् ।
कण्डूपदेहाशमनं वर्त्मनां तु श्रेष्ठं शिशूनां नयने विदध्यात् ॥ १ ॥

नेत्ररोग चिकित्सा—सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, मैनसिल, हरिताल और करंज बीज की गिरि को समान भाग लेकर श्लक्ष्ण चूर्ण कर बालकों के पलकों में अंजन करने से कण्डुयुक्त वर्त्मरोग नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

दन्तोद्भेदरोगेषु—

दन्तपाल्यां तु मधुना चूर्णेन प्रतिसारयेत् । धातकीपुष्पपिप्पल्योर्धात्रीफलरसेन वा ॥ १ ॥

दन्तोद्भेदज रोग चिकित्सा—दन्तपाली रोग में (दाँत निकलने वाले मसूड़े के रोग में) धाय के फूल और पीपल के समान मिलित चूर्ण में मधु मिलाकर प्रतिसारण करने से अथवा आँवले के स्वरस से प्रतिसारण करने से बच्चों का दन्तपालीरोग नष्ट होता है ॥ १ ॥

दन्तोत्थानभवा रोगाः पीडयन्ति च बालकम् । जाते दन्ते हि शाम्यन्ति यतस्तद्धेतुका गदाः ॥

दाँत निकलने के समय उत्पन्न हुए रोग बालकों को पीड़ित करते हैं किन्तु वे रोग दाँत निकल जाने पर आप ही शान्त हो जाते हैं । ये दन्तोद्भवहेतुक रोग हैं जो बालकों को प्रायः हो जाते हैं ॥

प्राचीगतं पाण्डुरसिन्दुवारमूलं शिशूनां गलके निबद्धम् ।
हिनोति दन्तोद्भववेदनां च निःशेषमेकाण्डकुरण्ड एव ॥ १ ॥

श्वेत पुष्प के सिंधुवार (मेउड़ी या सम्भालू) के पूर्व दिशा की ओर का मूल लेकर बालक के गले में बाँधने से दाँत उत्पन्न होने के समय की पीड़ा नष्ट होती है और एक अण्डकोष में उत्पन्न हुआ कुरण्ड रोग भी नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

वस्त्राग्रचूडविहगोभयपार्श्वपक्षपुच्छैर्घृताप्लुतहितैः कृतधूपमाहुः ।
आरभ्य जन्मदिवसादिमसप्तकं हि बालस्य तस्य न कुतश्चन भीतिरस्ति ॥ १ ॥

धूप प्रयोग—कुक्कुट पक्षी के दोनों ओर के पंख और पूंछ को लेकर घी के साथ में मिलाकर बालक का जन्म हो उसी दिन से नित्य सात दिन तक उस बालक के पास धूप देने से उस बालक को किसी प्रकार का भय नहीं होता है ॥ १ ॥

ग्रहमातृबालरोगाणां चिकित्साभावे, तत्काले सामान्यग्रहाणां चिकित्सा—

सदामलकीनिम्बोदीप्यकजम्भस्मार्थं प्रहर्षदम् । सस्तक्षुद्राग्निशिलाचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ १ ॥

ग्रहजुष्टों की चिकित्सा—मुद्गपर्णी, मुण्डी और शुगन्धबाला के क्वाथ से स्नान कराने से बालकों की सामान्य ग्रहबाधा नष्ट होती है और छितिवन, हरड़, हलदी और चन्दन का लेप बनाकर लगाने से बालकों की सामान्यग्रह बाधा नष्ट होती है॥ १॥

धूप—

सर्पत्वग्लशुन मुर्वा सर्षपारिष्टपल्लवाः। विडालविट्छागलोममेषशृङ्गीवचा मधु॥
धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः॥ १॥

धूप—साँप की केंचुल, लहसुन, मूर्वा, सरसों, नीम के पल्लव, बिलार की विष्ठा, बकरी के रोम, मेषशृङ्गी, वच और मधु के योग से विधिवत् धूप बनाकर धूप देने से बालकों का ज्वर नष्ट होता है और समग्र ग्रहदोष नष्ट होते हैं॥ १॥

बालरोगे पर्पटीरस—

रसं गन्धं समं शुद्धं तयोः कृत्वा तु कज्जलीम्। लोहदर्व्यां घृताक्तायामाधाय कदलीदलैः॥
छादयेदुपरिन्यस्तगोमयैर्बदरीघनात्। शिखिन कोमलाद्वेप विधेया रसपर्पटी॥ २॥

बाल रोगों में पर्पटीरस—शुद्धपारद और शुद्ध गन्धक दोनों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कज्जली करके घृत स्निग्ध लोहे की कलछी में रखकर बेर के लकड़ी के अग्नि पर तपावे और भूमि को गोबर से लीप कर उसपर केले का पत्ता बिछाकर उसी पर उस कज्जली को बिछा देवे और ऊपर से केले के पत्ते से ढक कर दबा देवे। शीतल होने पर पपरी जैसी जमी हुई उस कज्जली द्वारा प्रस्तुत औषध को रस पर्पटी कहते हैं॥ १-२॥

पर्पट्या द्विगुणो जीरः सूर्यांशो रामठः स्मृतः। दीयते मधुना सेयं शिशोर्गुञ्जाचतुष्टयम्॥
श्लेष्मपित्तानिलश्वासो कासोपीनसपाण्डुताः।
प्लीहाग्निसादशूलानि हन्यादस्य ज्वर भवात्॥ ४॥

उपरोक्त पर्पटी एक भाग, जीरा दो भाग और शुद्ध हींग पर्पटी के बारहवाँ अंश ( $\frac{1}{12}$ भाग ) लेकर एकत्र खरल कर चार रत्ती प्रमाण की मात्रा से मधु के अनुपान से बालकों को देना चाहिये, इससे कफ पित्त और वायु के रोग, श्वास, कास, पीनसरोग, पाण्डुरोग, प्लीहा, मन्दाग्नि, शूल और ज्वर रोग शीघ्र नष्ट हो जाते हैं॥ ३-४॥

अष्टमङ्गलघृतम्—

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च। सारिवा सैन्धवं चैव पिप्पली घृतमष्टकम्॥१॥
सिद्ध घृतमिदं मेध्यं पिबेत्प्रातर्दिने दिने। दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत्॥२॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः। प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम्॥
बलिशान्तीष्टिकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये॥ ३॥

अष्टमङ्गल घृत—वच, कूट, ब्राह्मी, श्वेत सरसों, सारिवा, सेंधानमक और पीपल को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क करके जितना हो उसके चतुर्गुण गोघृत और घृत से चतुर्गुण जल मिलाकर घृत पाक की विधि से घृत सिद्ध कर प्रतिदिन प्रातःकाल बालकों को पिलाना चाहिये। इससे मेधा की वृद्धि होती है, स्मरण शक्ति दृढ़ होती है और बालक बुद्धिमान होता है। इस अष्टमङ्गल घृत के पीने वाले बालकों को पिशाच, राक्षस, भूत और मातृग्रह ( बालग्रह ) आदि का प्रभाव नहीं सताता है। ग्रहशान्ति के लिये बलि, शान्ति तथा ग्रह के इष्ट कर्म आदि भी करना चाहिये॥ १-३॥

विशिष्टग्रहजुष्टानां चिकित्सा, तत्र स्कन्दग्रहजुष्टस्य चिकित्सा—

स्कन्दग्रहोपसृष्टस्य कुमारस्य प्रशस्यते। वातघ्नद्रुमपत्राणां क्वाथेन परिषेचनम्॥ १॥

स्कन्द ग्रह जुष्ट चिकित्सा—स्कन्द ग्रह से पीड़ित बालक को वातनाशक वृक्षों के पत्तों के क्वाथ से सिंचन ( स्नान ) कराना चाहिये॥ १॥

देवदारुणि रास्नायां मधुरेषु गणेषु च। सिद्धं सर्पिश्च सक्षीरं पातुमस्मै प्रदापयेत्॥ २॥

देवदार्वादि घृत—देवदारु, रास्ना और मधुर गण की ओषधियों के कल्क से विधिपूर्वक घृत सिद्ध करके दूध के अनुपान से बालकों को पिलाना चाहिये॥ २॥

सर्षपाः सर्पनिर्मोको वचा काकादनी घृतम् । उष्ट्राजाविगवां चापि रोमभिर्धूपनं भवेत् ॥

सर्षपादि धूप—सरसों, साँप की केंचुल, वच, श्वेत वर्ण की रत्ती, घृत तथा ऊँट, बकरी, भेड़, और गौ के बाल को समान भाग लेकर अग्नि में बालक के समीप धूप देना चाहिये। इससे स्कन्दापस्मार नष्ट होता है ॥ ३ ॥

सोमवल्लीमिन्द्रवल्लीं बृहतीं बिल्वजे शमीम् । मृगादन्याश्च मूलानि ग्रथितानि विधारयेत् ॥

सोमवल्ल्यादि धारण—सोमवल्ली, श्वेतकुटज, बड़ी कटेरी, बिल्व वृक्ष पर उत्पन्न हुई शमी और इन्द्रायण के मूल को सूत्र में गूंथ कर बालक को धारण कराना चाहिये इससे स्कन्दग्रह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

रक्तानि माल्यानि तथा पताका रक्तांश्च गन्धान्विविधांश्च भक्ष्यान् ।
घण्टां च देवाय बलिं निवेद्य सकुक्कुटं स्कन्दमहाभिधाय ॥ ५ ॥

देवाराधन—रक्तवर्ण के फूलों की मालायें, रक्तवर्ण के पताका, रक्तवर्ण के गन्ध द्रव्य (रक्त-चन्दन आदि), अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ, और घण्टियां एवं कुक्कुट की बलि निवेदन करके देव को देना चाहिये। इससे स्कन्दग्रह शान्त होता है ॥ ५ ॥

स्नानं त्रिरात्रं निशि चत्वरेषु कुर्यात्परं शान्तिपदैर्निवेश्य ।
गायत्रिपूताभिरथाद्भिरग्निं प्रज्वालयेद्वाऽऽहुतिभिश्च धीमान् ॥ ६ ॥

रात्रि में तीन दिन चतुष्पथ (चौराहे) पर बालक को शान्ति पाठ का स्तवन करके गायत्री मंत्र से अभिमन्त्रित जल से स्नान करावे और आहुति देकर अग्नि को प्रज्वलित (हवन करे) ॥

रक्षामतः प्रवक्ष्यामि बालानां पापनाशिनीम् । अहन्यहनि कर्तव्या याभिरक्षिरतन्द्रितैः ॥

रक्षा विधि के लिये जिन २ मंत्रों को कहेंगे उन उनसे आलस्य रहित होकर प्रतिदिन बालकों की रक्षा करनी चाहिये ॥ ७ ॥

तपसां तेजसां चैव यशसां वपुषां तथा । निधानं योऽव्ययो देवः स ते स्कन्दः प्रसीदतु ॥

मन्त्रपाठ—मन्त्रपाठ का अर्थ—तप, तेज, यश और शरीर के भण्डार जो विनाश रहित देव हैं वह स्कन्द देव तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ८ ॥

ग्रहसेनापतिर्देवो देवसेनापतिर्विभुः । देवसेनारिपुहरः पातु त्वां भगवान्गुहः ॥ ९ ॥

ग्रहों के सेनापति देव, देवों के सेनापति विभु और देव सेना के शत्रुओं को नष्ट करनेवाले भगवान् गुह तुम्हारी रक्षा करें ॥ ९ ॥

देवदेवस्य महतः पावकस्य च यः सुतः । गङ्गोमाकृत्तिकानां च स ते शर्म प्रयच्छतु ॥ १० ॥

देवों के देव महान् अग्नि के पुत्र, गङ्गा के पुत्र, उमा के पुत्र एवं कृत्तिका के पुत्र तुम्हारी रक्षा करें ॥ १० ॥

रक्तमाल्याम्बरधरो रक्तचन्दनभूषितः । रक्तदिव्यवपुर्देवः पातु त्वां क्रौञ्चसूदनः ॥ ११ ॥

रक्तवर्ण की माला तथा रक्तवस्त्र को धारण करने वाले, रक्तचन्दन से भूषित रक्तवर्ण के दिव्य शरीर वाले देव जो क्रौञ्च को नष्ट करने वाले हैं वे तुम्हारी रक्षा करें ॥ ११ ॥

स्कन्दापस्मारग्रहजुष्टस्य चिकित्सा—

बिल्वः शिरीषो गोलोमी सुरसादिश्च यो गणः । परिषेके प्रयोक्तव्यः स्कन्दापस्मारशान्तये ॥

स्कन्दापस्मार ग्रह जुष्ट बालक की चिकित्सा—बेल का गूदा, सीरिस की छाल, श्वेत दूर्वा और सुरसादि गण के द्रव्य को परिषेक (सिंचन या स्नान) के लिये प्रयोग करना चाहिये। इन औषधियों के क्वाथ से स्नान कराने से स्कन्दापस्मार नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

सुरसादिगणो यथा—

सुरसा श्वेतसुरसा पाठा फञ्जी कटुत्रिका । सौगन्धिकं भूस्तृणकं राजिका भेण्डपर्णी ॥ २ ॥
कट्फलं खरपुष्पा च कासमर्दश्च दारुकी । विडङ्गश्च निर्गुण्डी कार्णिकारं उदुम्बरः ॥ ३ ॥
पत्रा च काकमाची च तथा च विषमुष्टिका ॥ ४ ॥
कफक्रिमिहरः प्रोक्तः सुरसादिर्गणः । अहमूले दितर्फं च ठेष्मानयत्नो हितम् ॥ ५ ॥

सुरसादि गण के औषधियों के नाम—तुलसी, श्वेत तुलसी, कुटकी, पाढ़, कमलगट्टा, खसखस,

मृदङ्गपत्रण, गन्धतृण, राई, श्वेत बाबुई तुलसी, कायफर, साधारण बाबुई तुलसी, कसौंदर, शिलाजीत, वायविडंग, सम्भालू, छोटा हालू, गूलर, करिश्यारा, मकोय और बकायन यह सुरसादिगण है। यह सुरसादिगण कफ तथा कृमि को नष्ट करने वाला है। इसके कल्क को अष्टमूत्र के योग से तेल में देकर तेल सिद्ध कर लगाने से बालकों को लाभ होता है॥ २-५॥

मूत्राष्टकमाह—

**गोजाविमहिषाश्वानां खरोष्ट्रकरिणां तथा। मूत्राष्टकमिति ख्यातं सर्वशास्त्रेषु सम्मतम्॥ १॥**

अष्ट मूत्र की गणना—गौ, बकरी, भेड़ी, महिषी, घोड़ी, गदही, ऊँटनी और हथिनी के सम्मिलित मूत्र को मूत्राष्टक कहते हैं। यह सर्व शास्त्र सम्मत है॥ १॥

**क्षीरिवृक्षकषायेण काकोल्यादिगणेन च। विपक्व्यं घृतं पथ्यादास्य पयसा सह॥ २॥**

काकोल्यादि घृत—क्षीरी वृक्षों के क्वाथ और काकोल्यादि गण के कल्क द्वारा घृत सिद्ध कर दूध के अनुपान से बालकों को सेवन कराने से स्कन्दापस्मार नष्ट होता है॥ २॥

काकोल्यादिर्गणो यथा—

**काकोली क्षीरकाकोली जीवको ऋषभस्तथा। ऋद्धिर्वृद्धिस्तथा मेदा महामेदा गुडूचिका॥**
**मुद्गपर्णी माषपर्णी पद्मकं वंशरोचना। शृङ्गी प्रपौण्डरीकं च जीवन्ती मधुयष्टिका॥ २॥**
**द्राक्षा चेति गणो नाम्ना काकोल्यादिरुदीरितः। स्तन्यकृद् बृंहणो वृष्यः पित्तरक्तानिलापहः॥**

काकोल्यादि गण के औषधियों के नाम—काकोली, क्षीर काकोली, जीवक, ऋषभक, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, गुरुच, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, पद्माख, वंशलोचन, काकड़ासिंगी, पुण्डरीक (पद्मकाठ), जीवन्ती, मुलेठीमधु और द्राक्षा ये काकोल्यादि गण कहे जाते हैं। यह काकोल्यादि गण दुग्धवर्धक, बृंहण, वृष्य और पित्तरक्त एवं वायु का नाश करने वाला है॥ १-३॥

**उत्सादनं वचाहिङ्गुयुक्तमत्र प्रकीर्तितम्। गृध्रोलूकपुरीषाणि केशा हस्तिनखो घृतम्॥ १॥**
**वृषभस्य च रोमाणि योज्यान्युद्धूपने सदा। अनन्ताकुक्कुटीबिम्बीमर्कटाश्चापि धारयेत्॥**

उत्सादनादि विधि—वच और हींग को पीस कर उबटन लगाने से स्कन्द ग्रह शान्त होता है। गिद्ध तथा उल्लू पक्षी की विष्ठा, केश, हाथी के नख, घृत और सांड के रोम को एकत्र कर बालक के पास धूप करे तो स्कन्दग्रह शमन होता है और अनन्तमूल, सेमर का मूल, बिम्बीफल और अपामार्ग को वह इनमें से किसी एक को सूत्र में बाँध कर बालक के गले में पहनावे तो स्कन्दग्रह शमन होता है॥ १-२॥

**पक्वान्यामानि मांसानि प्रसन्नं रुधिरं पयः। भूतौदनं निवेद्याय स्कन्दापस्मारिणं वटे॥ ३॥**
**चतुष्पथे कारयेच्च स्नानं तेन सतः पठेत्।**

निवेदन—पकाये हुए और कच्चे मांस, शुद्धरक्त और दूध, जो कि सभी प्राणियों के भोज्य पदार्थ हैं उसे वट वृक्ष के नीचे स्कन्दापस्मार ग्रह को निवेदन करे और इन्हीं द्रव्यों से बालक को चतुष्पथ पर स्नान करावे और नीचे लिखे श्लोक (स्तोत्र) का पाठ करे॥ ३॥

**स्कन्दापस्मारसंज्ञो यः स्कन्दस्य दयितः सखा। विशाख स शिशोरस्य शिवायास्तु शुभाननः॥**

पाठार्थ श्लोक का अर्थ—स्कन्दग्रह का प्रियमित्र जो स्कन्दापस्मार नामका है एवं जो विशाख (हस्तपाद रहित) है तथा शुभ मुख वाला है वह ग्रह इस बालक के लिये कल्याणकारी हो॥

शकुनिग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

**शकुनिग्रहजुष्टस्य कार्यं वैद्येन जानता। वेतसाम्रकपित्थानां क्वाथेन परिषेचनम्॥ १॥**

शकुनीग्रह जुष्ट बालक की चिकित्सा—शकुनीग्रह जुष्ट बालक को कुशलवैद्य बेत, आम, तथा कैथ के क्वाथ से स्नान करावे॥ १॥

**ह्रीवेरमधुकोशीरसारिवोत्पलपद्मकैः। लोध्रप्रियङ्गुमञ्जिष्ठागैरिकैः प्रदिहेच्छिशुम्॥ २॥**
**स्कन्दग्रहोक्तधूपाश्च हिता अत्र भवन्ति हि। स्कन्दापस्मारशमनं घृतमत्रापि पूजितम्॥३॥**

हाउबेर, मुलहठी, खस, सारिवा नीलोफर, पदुमकाठ, लोध प्रियङ्गु, मजीठ और गेरु को समान भाग लेकर पीसकर शकुनी ग्रह जुष्ट बालक के शरीर पर लेप करावे। स्कन्दग्रह में कहे हुए धूप यहां भी देना चाहिये तथा स्कन्दापस्मार को शमन करने वाला घृत भी इस रोग के लिये उत्तम है॥ २-३॥

शतावरीसृगेर्वारुनागदन्तीनिदिग्धिका । लक्ष्मणां सहदेवीं च बृहतीं चापि धारयेत् ॥ ४ ॥

धारण—सतावरी, बड़ी इन्द्रायण, नागदन्ती अथवा हस्तिशुण्डी, छोटी कटेरी, लक्ष्मणा, सहदेवी और बड़ी कटेरी इनमें से किसी एक के मूल को सूत में बाँध कर बालक के गले में बाँधना चाहिये ॥ ४ ॥

तिलतण्डुलक माला हरितालं मनःशिला । बलिरेषां करञ्जे तु निवेद्यो नियतात्मना ॥ ५ ॥
निकुम्भोक्तेन विधिना स्नापयच्च सतः पठेत् ।

निवेदन—तिल, चावल, माला, हरताल और मैनसिल को करञ्ज के पत्ते पर रख कर संयत मन से इन द्रव्यों की बलि देवे और निकुम्भोक्त विधि से बालक को स्नान करावे तथा निम्न 'अन्तरिक्षचरा' आदि श्लोक का पाठ करे ॥ ५ ॥

अन्तरिक्षचरा देवी सर्वालङ्कारभूषिता । अयोमुखी सूक्ष्मतुण्डा शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ६ ॥

श्लोकार्थ—आकाश में विचरने वाली, सब प्रकार के भूषणों से विभूषित, लोह के मुख वाली और सूक्ष्म मुखों वाली शकुनी नाम की देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवे ॥ ६ ॥

दुर्दर्शना महाकाया पिङ्गाक्षी भैरवस्वरा । लम्बोदरी शङ्कुकर्णी शकुनी ते प्रसीदतु ॥ ७ ॥

देखने में भयङ्कर, बड़े शरीर वाली, भूरी आँखों वाली, कर्कश शब्द वाली, बड़े पेट वाली और शङ्कु ( कील ) के समान कर्णवाली शकुनी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ७ ॥

रेवतीग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

अश्वगन्धाऽजशृङ्गी च सारिवाऽथ पुनर्नवा । सहा विदारी चैतासां क्वाथेन परिषेचनम् ॥ १ ॥

रेवती ग्रहजुष्ट बालक की चिकित्सा—असगन्ध, मेढासिंगी, सारिवा, पुनर्नवा, मुद्गपर्णी और विदारीकन्द को समान भाग लेकर विधिवत् क्वाथ करके रेवती ग्रहजुष्ट बालक को उस क्वाथ से स्नान कराना चाहिये ॥ १ ॥

तैलमभ्यञ्जने कार्यं कुष्ठे सर्जरसे तथा । पलङ्कषायां नलदे तथा गौरकदम्बके ॥ २ ॥

तैलाभ्यङ्ग—कूठ और राल के कल्क द्वारा तैल सिद्ध कर बालक को लगावे और गुग्गुल, नलद ( खस के समान वर्ण का जटामांसी ) और श्वेत कदम्ब के कल्क द्वारा तैल सिद्धकर बालक को लगाना चाहिये । इससे रेवतीग्रह शान्त होता है ॥ २ ॥

धवाश्वकर्णककुभधातकीतिन्दुकेषु च । काकोल्यादिगणे वाऽपि सिद्धं सर्पिः पिबेच्छिशुः ॥

घृत पान—धौ की छाल, साल की छाल, अर्जुन की छाल, धायफूल ( सफेद ) और तिन्दुक ( तेंदू ) की छाल के कल्क के योग से घृत सिद्ध करके बालक को पिलाना चाहिये अथवा काकोल्यादि गण के औषधियों के कल्क द्वारा घृत सिद्धकर बालक को पिलाना चाहिये । इससे बालक के रेवती ग्रह एवं अन्यरोग भी शान्त होते हैं ॥ ३ ॥

कुलित्थाः शङ्खचूर्णं च प्रदेहः सर्वगन्धिकः । गृध्रोलूकपुरीषाणि यवान्यवफलौ घृतम् ॥ ४ ॥
संध्ययोरुभयोः कार्यमेतदुद्धूपनं शिशोः ।

प्रदेह तथा धूप—कुलथी तथा शङ्ख के चूर्ण और सब के मूलों को शान्ति के लिये कहे हुए सुगन्धवाला आदि गन्धद्रव्यों को पीसकर विधिपूर्वक लेप बनाकर बालक के शरीर पर लेप करना चाहिये । इससे रेवती ग्रह की शान्ति होती है तथा गिद्ध पक्षी और उल्लू पक्षी की विष्ठा, अजवायन, जौ और घृत को एकत्र करके दोनों संध्या बालक के समीप धूप देना चाहिये । इससे भी रेवती ग्रह की शान्ति होती है ॥ ४ ॥

शुक्लाः सुमनसो लाजाः यवा शाल्योदनं दधि ॥ ५ ॥
बलिर्निवेद्यो गोशीर्षे रेवत्यैः प्रयतात्मना । स्नानं धात्रीकुमाराभ्यां संगमे कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥

बलि निवेदन—श्वेत पुष्प, धान की खील ( लावा ) जौ, शालिधान का भात और दही इन सब की बलि गोशीर्ष पर संयत मन से रेवती ग्रह के शान्ति के लिये देना चाहिये । तथा धाय ( माता ) और कुमार दोनों को संगमस्थान पर स्नान कराना चाहिये तथा 'नानावस्त्रधरा' इत्यादि निम्न श्लोक का पाठ स्नान के समय करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

पाठ—नानावस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना ।
चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीदतु ॥

श्लोक का अर्थ—अनेक प्रकार के शस्त्रों को धारण करनेवाली, विचित्र अथवा अनेक प्रकार के माला और अनुलेप से युक्त, हिलते हुए कुण्डल हैं जिनके ऐसे श्याम वर्ण की रेवती देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ७ ॥

उपासते या सततं देव्यो विविधभूषणा । लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका ॥
रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीदतु ॥ ८ ॥

जिस देवी को अनेक प्रकार के भूषणों वाली देवियाँ निरन्तर पूजती हैं, जो बहुत लम्बी हैं, अत्यन्त भयकर हैं, जो नम्र होकर रहती है, बहुत पुत्रोंवाली है तथा जिनकी नासिका सूखी रहती है ऐसी रेवती देवी तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होवें ॥ ८ ॥

पूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

कपोतवङ्का स्योनाको वरुणः पारिभद्रकः । आस्फोता चैव योज्या स्युर्बालानां परिषेचने ॥

पूतना ग्रह जुष्ट बालक की चिकित्सा—ब्राह्मी, अरलू की त्वचा, वरुण की त्वचा, नीम की त्वचा तथा अपराजिता के विधिपूर्वक बने क्वाथ से पूतना ग्रह जुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ १ ॥

नवा पयस्या गोलोमी हरितालं मनःशिला । कुष्ठं सर्जरसश्चैव तैलार्थं कल्क इष्यते ॥ २ ॥

तैल—नवीन क्षीरकाकोली, श्वेतदूर्वा, हरताल, मैनसिल, कूट और राल का विधिपूर्वक बना कल्क से तैलपाक की विधि से तैल सिद्धकर पूतना ग्रह जुष्ट बालक को लगाना चाहिये ॥ २ ॥

हितं घृतं तुगाक्षीर्या ससिद्धं मधुनाऽपि च ।

तुगाक्षीरी घृत—वंशलोचन के कल्क द्वारा घृत सिद्धकर मधु के अनुपान से बालक को पिलाना चाहिये । इससे पूतना ग्रह में लाभ होता है ॥

कुष्ठतालीसखदिराः स्यन्दनोऽर्जुन एव च ॥ ३ ॥

पनसः ककुभश्चापि मज्जानो बदरस्य च । कुक्कुटास्थि घृतं चापि धूपनं सह सर्षपैः ॥ ४ ॥

कुष्ठादि धूप—कूट, तालीसपत्र, खैर की त्वचा तिनिश ( तिरिच्छ ) अर्जुन की त्वचा कटहल के फल की मज्जा, अर्जुन के फल की मज्जा और बेर के फल की मज्जा, कुक्कुट पक्षी का अस्थि, घृत तथा सरसों को एकत्र मिलाकर बालक के समीप धूप देने से पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ३-४ ॥

काकादनीं चित्रफलां बिम्बीं गुञ्जां च धारयेत् ।

धारण—श्वेत रत्तियाँ, कटेरी के फल, बिम्बीफल और रक्तवर्ण की रत्तियाँ इनमें से किसी एक को सूत्र में गूथकर बालक को पहनावे । इससे पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥

मत्स्यौदनं बलिं दद्यात्कृशरां पललं तथा ॥ ५ ॥

शरावसम्पुटे कृत्वा तस्यै शून्ये गृहे भिषक् । उत्पन्नस्याभिषिक्तस्य शिशोः स्नपनमिष्यते ॥

बलि और स्नान—मछली, भात, कृशरा ( खिचड़ी ) और मांस की बली सकोरे में रखकर दूसरे सकोरे से ढककर शून्य गृह में रख देवे । तथा अन्नदान कराकर बालक का अभिषिञ्चन करके वक्ष्यमाण ( श्लो० ८ ) मन्त्र द्वारा बालक को स्नान करावे । इससे पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ५-६ ॥

कुष्ठतालीसखदिरं चन्दनं स्यन्दनं तथा ।

देवदारु वचा हिङ्गु कुष्ठं गिरिकदम्बकः । एला हरेणवश्चापि योज्या तद्धूपने सदा ॥ ७ ॥

पुनः धूपन योग—कूट, तालीसपत्र, खैर, चन्दन, तिनिश ( तिरिच्छ ) देवदारु, वच, हींग, कूट, पर्वतीय कदम्ब, इलायची और रेणुका को एकत्र कर पूतना ग्रह जुष्ट बालक के समीप धूप देवे तो पूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ७ ॥

मलिनाम्बरसंवीता मलिना रूक्षमूर्धजा । शून्यागाराश्रया देवी दारकं पातु पूतना ॥ ८ ॥

पाठार्थ श्लोक का अर्थ—मलिन वस्त्रों से युक्त एवं मलिन मुखवाली, रूक्ष शिरवाली अर्थात् जिसके शिर के बाल रूक्ष हैं ऐसी और शून्य गृह में रहनेवाली पूतना देवी इस बालक की रक्षा करें ॥ ८ ॥

गन्धपूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्सा—

तिक्तद्रुमाणां पत्रेषु क्वाथः कार्योऽभिषेचने ॥ १ ॥

गन्धपूतनाग्रह जुष्ट बालक की चिकित्सा—गन्धपूतना ग्रह से जुष्ट बालक को तिक्त द्रुम ( निम्बादि ) के पत्तों के क्वाथ से सिंचन करना चाहिये ॥ १ ॥

तिक्तद्रुमानाह—

बिल्वं पटोलः क्षुद्रा च गुडूची वासकस्तथा । विसर्पकुष्ठनुत्प्रायो गणोऽयं पञ्चतिक्तकः ॥१॥

तिक्तद्रुमों के नाम—बेल, परवल, छोटी कटेरी, गुरूच और वासा ( अडूसा ) को पञ्चतिक्त ( तिक्तद्रुम ) कहते हैं ये विसर्प रोग और कुष्ठ रोग को नष्ट करते हैं ॥ २ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं वर्गो मधुरकोऽपि च । शालिपर्णी बृहत्यौ च घृतार्थं सममाहरेत् ॥२॥

पिप्पल्यादि घृत—पीपल, पिपरामूल, मधुर वर्ग के द्रव्य, शालिपर्णी, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी के कल्क से विधिपक्व घृत सिद्धकर बालक को पिलाने से गन्धपूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ ८ ॥

सर्वगन्धैः प्रदेहश्च गात्रे चाक्ष्णोश्च शीतलैः ।

प्रदेह लेप—गन्धपूतना ग्रहजुष्ट बालक के शरीर पर सर्वगन्ध अर्थात् इलायची, तेजपात, नागकेसर, दालचीनी, कपूर, कंकोल, अगर, केसर, लवंग आदि को विधिपूर्वक पीसकर लेप करना चाहिये और नेत्रों पर शीतल पदार्थ ( चन्दन आदि ) का लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पुरीषं कौक्कुटं केशाश्चर्मसर्पत्वचं तथा ॥ ३ ॥

जीर्णं च पीच्याधोवासो धूपनायोपकल्पयेत् ।

धूपन योग—कुक्कुटपक्षी की विष्ठा, केश, सांप की केंचुल अथवा चर्म और पुराना फटा हुआ अधोवस्त्र एकत्र कर बालक के समीप धूप देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुक्कुटीं मर्कटीं बिम्बीमनन्तां चापि धारयेत् ॥ ४ ॥

धारण—सेमर वृक्ष का मूल, अपामार्ग अथवा वानरी का मूल बिम्बीफल और अनन्तमूल में से किसी एक को सूत्र में बाँधकर बालक के गले में पहनाना चाहिये ॥ ४ ॥

मांसमन्नं तथा पक्वं शोणितं च चतुष्पथे । निवेद्यमन्तश्च गृहे शिशोः स्नपनमिष्यते ॥ ५ ॥

निवेदन और स्नान—पकाया हुआ मांस और सिद्ध अन्न तथा रक्त चतुष्पथ पर निवेदन करके रख देवे और गृह के आभ्यन्तर ( जो घर भीतर की ओर हो उस घर में ) बालक को स्नान कराये तथा नीचे लिखे मंत्र का पाठ करे ॥ ५ ॥

कराला पिङ्गला मुण्डा काषायाम्बरसंवृता । देवी बालमिमं प्रीता रक्षतु गन्धपूतना ॥ ६ ॥

मन्त्रार्थ—भयङ्कर, पिङ्गल ( भूरे ) वर्ण की, सिर मुड़ाई हुई, कषायवर्ण के वस्त्र से युक्त गन्धपूतना देवी प्रसन्न होकर इस बालक की रक्षा करें ॥ ६ ॥

शीतपूतनाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—

गोमूत्रं बस्तमूत्रं च मुस्तामरदारु च । कुष्ठं च सर्वगन्धांश्च तैलार्थमवचारयेत् ॥ १ ॥

गोमूत्रादि तैल—गोमूत्र और बकरी का मूत्र, नागरमोथा, देवदारु, कूट और सर्वगन्ध के योग से तैल सिद्धकर अर्थात् गोमूत्र और बस्तमूत्र दोनों समान मिलित जितना हो उससे चतुर्थांश मूर्च्छित तिल का तैल और तैल के चतुर्थांश नागरमोथा, देवदारु, कूट, सर्वगन्ध ( इलायची, तेज पात, नागकेसर, दालचीनी, कपूर और कंकोल, अगर, केसर और लवंग अथवा केसर के स्थान पर शिलारस ) के समान मिलित कल्क को लेकर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध कर शीतपूतना ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये । इससे शीतपूतना ग्रह की शान्ति होती है ॥ १ ॥

रोहिणीनिम्बखदिरपलाशककुभत्वचः । निष्क्वाथ्य तस्मिन्क्वाथे सक्षीरं विपचेद् घृतम् ॥२॥

घृत—कुटकी, नीम की त्वचा, खैरा की त्वचा, पलाश की त्वचा और अर्जुन की त्वचा समान भाग लेकर विधिपूर्वक १६ गुने जल में क्वाथ कर चतुर्थांशशेष रहने पर उतार कर छान लेवे। यह मलयुक्त क्वाथ जितना हो उसके समान गोदुग्ध और क्वाथ के चतुर्थांश मूर्च्छित गोघृत मिलाकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्धकर शीतपूतना ग्रहयुक्त बालक को पिलाना चाहिये। इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥ २ ॥

गृध्रोलूकपुरीषाणि यस्तगन्धामहित्वचम्। निम्बपत्राणि च तथा धूपनार्थं समाहरेत् ॥ ३ ॥
धूपन योग—गिद्ध की विष्ठा, उल्लू की विष्ठा, अजमोदा, साँप की केंचुल अथवा चर्म और नीम के पत्ते को समान मिलित लेकर बालक के पास धूपन करे इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥ ३ ॥

धारयेदपि गुञ्जां च बलां काकादनीं तथा।
धारण—रक्तवर्ण की रत्ती, बलामूल और श्वेतवर्ण की रत्ती को सूत में गूंथ कर या बाँध कर बालक को धारण कराना ( पहनाना ) चाहिये। इससे शीतपूतनाग्रह की शान्ति होती है ॥

नद्यां मुद्गौदनश्चापि तर्पयेच्छीतपूतनाम् ॥ ४ ॥
तर्पण—नदी में मूंग की दाल और भात से शीतपूतना का तर्पण करना चाहिये। इससे शीतपूतना शान्त होती है ॥ ४ ॥

जलाशयान्ते बालस्य स्नपनं चोपदिश्यते। देव्यै देयश्चोपहारो वारुणी रुधिरं तथा ॥ ५ ॥
स्नान उपहार—शीतपूतना ग्रहजुष्ट बालक को जलाशय या तड़ागादि पर ले जाकर स्नान कराना चाहिये और शीतपूतना देवी को वारुणी ( मद्य ) और रक्त का उपहार ( निवेदन ) देना चाहिये। इससे शीतपूतना शमन होती है ॥ ५ ॥

मुद्गौदनाशिनी देवी सुराशोणितपायिनी। जलाशयरता नित्यं पातु त्वां शीतपूतना ॥ ६ ॥
पाठ—'मुद्गौदनाशिनी' आदि श्लोक को पढ़ना चाहिये जिसका अर्थ है मूंग की दाल और भात खाने वाली, मद्य और रक्त को पीने वाली तथा नित्य जलाशय में निमग्न रहने वाली शीत पूतना देवी तुम्हारी नित्य रक्षा करें ॥ ६ ॥

मुखमण्डिकाग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—
कपित्थबिल्वतर्कारीवासागन्धर्वहस्तकाः। कुबेराक्षी च योज्या तु बालानां परिषेचने ॥ १ ॥
मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक की चिकित्सा—कैथ की त्वचा, बेल की त्वचा, गनियार की त्वचा, अडूसा, एरण्डमूल और पाढ़र की त्वचा के क्वाथ से मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये। इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ १ ॥

स्वरसैर्भृङ्गवृक्षाणां तथैव हयगन्धया। तैलं वचां च संयोज्य पचेदभ्यञ्जने शिशोः ॥ २ ॥
तैल—भांगरे के स्वरस और असगन्ध के स्वरस या क्वाथ तथा वच के कल्क के योग से विधिपूर्वक तैल सिद्ध कर मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये। इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ २ ॥

वचा सर्जरसं कुष्ठं सर्पिश्चोद्धूपने हितम्।
वचादि धूप—वच, राल, कूठ और घृत को एकत्र कर मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक के समीप धूप देना चाहिये। इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥

वर्णकं चूर्णकं माल्यमञ्जनं पारदं तथा ॥ ३ ॥
मनःशिलां चोपहरेद्गोष्ठमध्ये बलिं सतः। पायसं सपुरोडाशं तद्वयस्यर्यमुपाहरेत् ॥
मन्त्रपूताभिरद्भिश्च तत्रैव स्नपनं हितम् ॥ ४ ॥
उपहार—हरताल, चूना, माला, सौवीराञ्जन, पारद और मैनसिल उपहार ( निवेदन ) देना चाहिये और गोशाला के मध्य में पायस तथा घृत की बलि देनी चाहिये। एवं अभिमन्त्रित किये हुए जल से उसी गोशाला में बालक को स्नान कराना चाहिये ॥ ३-४ ॥

जलाभिमन्त्रणमन्त्रमाह—
अलङ्कृता कामवती सुभगा कामरूपिणी। गोष्ठमध्यालयरता पातु त्वां मुखमण्डिका ॥ १ ॥
अभिमन्त्रित करने का मन्त्रार्थ—अलङ्कारों से युक्त, कामनायुक्त, सौभाग्यवती कामरूपवाली ( सुन्दर ) अथवा यथेष्टरूप धारण करने वाली, गोशाला के मध्य गृह में निवास करने वाली मुखमण्डिका देवी इस मंत्र से जल को अभिमन्त्रित कर उल्लिखित विधि से मुखमण्डिका ग्रहजुष्ट बालक को स्नान कराना चाहिये। इससे इस ग्रह की शान्ति होती है ॥ १ ॥

नैगमेयग्रहजुष्टस्य चिकित्सामाह—
बिल्वाग्निमन्थपूतीकैः कार्यं स्यात्परिषेचनम्।

नैगमेय ग्रहजुष्ट चिकित्सा—बिल्ववृक्ष की त्वचा, तथा पूतिकरंज की त्वचा के क्वाथ से नैगमेयग्रहजुष्ट बालक का सिंचन करना चाहिये। इससे इस ग्रह की शान्ति होती है॥

प्रियङ्गुसरलानन्ताशतपुष्पाकुटन्नटैः॥ १॥
पचेत्तैलं सगोमूत्रं दधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः।

प्रियंग्वादि तैल—प्रियगु, सरल काष्ठ, अनन्तमूल, सौंफ और नागरमोथा के कल्क तथा गोमूत्र, दही का पानी और अम्लकांजी के योग से तैल पाक की विधि से तैल सिद्धकर चतुर्गुण गोमूत्र, दही का पानी और अम्लकांजी तीनों तैल के चौगुना लेकर तैलपाक की विधि से मन्दाग्नि पर तैल सिद्धकर नैगमेय ग्रहजुष्ट बालक को लगाना चाहिये। इससे नैगमेय ग्रह की शान्ति होती है॥ १॥

वचां वयस्थां जटिलां गोलोमीं चापि धारयेत्॥ २॥

धारण—वच, हरड़, जटामांसी और श्वेत दूर्वा इनमें से किसी को धागे में बाधकर नैगमेय ग्रह जुष्ट बालक को पहनाना चाहिये॥ २॥

उत्सादनं हितं चात्र स्कन्दापस्मारनाशनम्।

उत्सादन—नैगमेय को स्कन्दापस्मार नाशक जो उत्सादन ( उबटन ) कहा गया है वह लगाना चाहिये॥

कमठोलूकगृध्राणां पुरीषाणि पितृग्रहे॥ ३॥
धूपं सुप्ते जने कार्यो बालस्य हितमिच्छता।

धूपन—कछुआ की विष्ठा, उल्लूक की विष्ठा और गिद्ध की विष्ठा एकत्र मिलाकर पितृगृह में जब सब लोग सो गये हों उस समय बालक की हित की इच्छा करनेवाले को धूप देना चाहिये॥

तिलतण्डुलकं माल्यं भक्ष्यांश्च विविधानपि॥ ४॥
कौमारभृत्यमेषाय प्लक्षमूले निवेदयेत्।

निवेदन—तिल, चावल अथवा तिल का दाना, माला तथा अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ कुमार के भृत्य अथवा रक्षक के रूप मेष ( भेड़े ) के लिये प्लक्ष ( पिलखन ) वृक्ष की जड़ में निवेदन करना चाहिये॥ ४॥

अधस्तात्क्षीरवृक्षस्य स्नपनं चोपदिश्यते॥ ५॥

स्नान—क्षीरीवृक्ष ( अश्वत्थादि ) के नीचे बालक को स्नान कराना चाहिये॥ ५॥

अजाननश्चलन्भ्रूः कामरूपी महायशाः। बालं पालयिता देवो नैगमेयोऽभिरक्षतु॥ ६॥

पाठ—'अजाननश्चलन्भ्रू' इत्यादि श्लोक का पाठ करना चाहिये जिसका अर्थ यह है कि जो बकरे के मुंह के समान मुंह वाला है, जिसका भ्रूभाग निरन्तर चलता ही रहता है, कामरूपी ( इच्छित रूप धारण करने वाला ) है, महायश वाला है और पालन करने वाला है ऐसा नैगमेय देव इस बालक की रक्षा करें॥ ६॥

ग्रन्थान्तरे उत्फुल्लिकालक्षणमाह—

आध्मानपार्श्वसम्फुल्लौ वृक्कुक्षी शिरोर्भवेत्। उत्फुल्लिका सा विख्याता श्वासमर्मप्रसङ्कुला॥

उत्फुल्लिका रोग के लक्षण—बालक के दाहिने कुक्षि में आध्मान होकर वायु से संफुल्ल ( फूला अथवा शोथ ) हो जाता है तथा श्वास हो जाता है और श्वास नली में भी शोथ हो जाता है उसे उत्फुल्लिका रोग कहते हैं॥ १॥

एतस्य चिकित्सामाह—

नि सारयेज्जलौकाभी रक्तं च जठरात्तदा।

चिकित्सा—इस रोग में बालक के उदर से जोंक लगाकर रक्तमोक्षण कराना चाहिये॥

कर्कोटनागरामेघकट्फलातिविषाभवम्॥ १॥
चूर्णं दुग्धेन सम्मिश्र पाययेन्मातरं भिषक्। धात्रीं वा पाययेत्सद्यः क्षीरदोषनिवारणम्॥२॥

कर्कोटादि चूर्ण—बांझ ककोड़ा, सोंठ, नागरमोथा, कट्फल और अतीस को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर दूध के अनुपान से माता को पिलाना चाहिये अथवा यदि माता के स्थान पर धाय हो तो उसे पिलाना चाहिये, इससे शीघ्र ही दूध सम्बन्धी दोष निवृत्त हो जाते हैं॥ १॥

अग्निना स्वेदयेच्चाऽपि दाहयेच्च शलाकया । जठरे बिन्दुकाकारं पृष्ठभागे यथा ध्रुवम् ॥ ३ ॥

अग्नि स्वेद—बालक का उदर अग्नि से स्वेदित करना चाहिये अथवा उदर पर लोहे के सलाका को अग्नि पर तपाकर बिन्दु के आकार का दाह कर देना चाहिये और पीठ पर भी बिन्दु के आकार दाह कर देना चाहिये ॥ ३ ॥

बिल्वमूलक नीरदो पृक्की प्रैफलं तथा सिंहिकाद्वयम् ।
गौदमिश्रितं क्वथितं सम पाययेच्छिशु फुल्लिकापहम् ॥ ४ ॥

बिल्वमूलकादि क्वाथ—बिल्व का मूल, नागरमोथा, पाठा हरड़, बहेड़ा, आमला, छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके जितना क्वाथ हो उसके समान भाग गुड़ का मद्य मिलाकर बालक को यथा मात्रा पिलाने से फुल्लिका रोग नष्ट होता है ॥ ४ ॥

पिप्पली ग्रन्थिकं विश्वा त्रायमाणा च दार्विका । पथ्येभपिप्पली भार्ङ्गी लवङ्ग टङ्कणस्तथा ॥
कुमारीबालपथ्ये च सैन्धवस्याजवारिणा । चर्वितं पाययेत्प्रातर्द्विटङ्क फुल्लिकापहम् ॥ ६ ॥

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपल, पिपरामूल, सोंठ, त्रायमाणा, दारुहल्दी, हरड़, गजपीपल, भारंगी, लौंग, शुद्ध टङ्कण, घिकुआर का गूदा, छोटी हरड़ और सेंधानमक को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर बकरी के मूत्र में मर्दन कर दो टङ्क के प्रमाण की मात्रा से बालक को पिलाना चाहिये इससे फुल्लिका रोग नष्ट होता है ॥ ५-६ ॥

पथ्यापथ्यम्—

यत्पथ्यं यदपथ्यं च नृणामुक्तं ज्वरादिषु । तत्तद्विधेयमौचित्याद्बालानां तेषु जानता ॥ १ ॥

पथ्यापथ्य—जो पथ्य अथवा अपथ्य ज्वरादि रोगों में कह गये हैं उन्हीं पथ्यापथ्यों को विद्वान् वैद्य को यथा उचित बालकों के लिये भी विचार कर देना चाहिये ॥ १ ॥

पूर्वं पथ्यमपथ्यं च मन्दाग्नौ यत्प्रकीर्तितम् । औचित्याद्योजयेज्जाते बालानां पारिगर्भिके ॥

जो पथ्यापथ्य पहले मन्दाग्नि रोग में कहे गये हैं—वही पथ्यापथ्य विचार कर बालकों के पारिगर्भिक रोग में भी देना चाहिये ॥ २ ॥

आगन्तून्मादवातानां पथ्यापथ्यं यदीरितम् । औचित्याद्योजयेत्तत्र बालेषु ग्रहरोगिषु ॥ ३ ॥

आगन्तुक उन्माद और वात रोग में जो पथ्यापथ्य कहे गये हैं वही यथा उचित विचार कर बालकों के ग्रहरोगों में देना चाहिये ॥ ३ ॥

इति बालरोगप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ विषाधिकारः ।

तत्र विषस्य द्वैविध्यमाह—

स्थावरं जङ्गमं चैव द्विविधं विषमुच्यते । दशाधिष्ठानमाद्यं तु द्वितीयं षोडशाश्रयम् ॥ १ ॥

विष के द्विविध प्रकार—स्थावर और जङ्गम भेद से विष दो प्रकार का होता है। उस स्थावर का अधिष्ठान दस है और जङ्गम का अधिष्ठान सोलह है ॥ १ ॥

स्थावरविषस्य दशाश्रयानाह—

मूलं पत्रं फलं पुष्पं त्वक्क्षीरं सारं एव च । निर्यासो धातवः कन्दः स्थावरस्याश्रया दश ॥१॥

स्थावर ( वनस्पति सम्बन्धी ) विष—मूल, पत्र, फल, पुष्प, त्वचा, क्षीर सार, निर्यास, धातु, एवं कन्द इस प्रकार स्थावर विष दस में रहते हैं। अर्थात् स्थावर विष इन दस स्थानों से उत्पन्न होते हैं ॥ १ ॥

तद्यथा—मूलविषं करवीरादि । पत्रविषं विषपत्रिकादि । फलविषं कर्कोटकादि । पुष्पविषं वेत्रादि । त्वक्सारनिर्यासविषाणि करम्भादीनि । क्षीरविषं स्नुह्यादि । धातुविषं हरितालादि । कन्दविषं वत्सनाभसक्तुकादि ॥

मूल विष कनेर आदि के मूल में होता है। पत्र विष-विषपत्रिका ( देवदारु ) आदि के पत्र में होता है। फल विष-बांझ ककोड़े आदि के फल में होता है। पुष्पविष-वेत आदि के पुष्प में होता है। त्वक्सार और निर्यास विष-करम्भ आदि के त्वचा, सार और निर्यास आदि में होता

है और विष—स्नुही आदि के दूध में, धातु विष—हरताल आदि धातुओं में होता है। कन्दविष—मरसनाम सक्तुकादि के कन्द में होता है॥

जङ्गमविषस्य षोडशाऽऽश्रयानाह—

दृष्टिनिःश्वासदंष्ट्राश्च नखमूत्रमलानि च। शुक्रं लाला मुखस्पर्शो सन्दंशाश्च विशर्धितम्॥
गुदास्थिपित्तशूकादि दश षड् जङ्गमाश्रयाः॥ १॥

जङ्गम विष—दृष्टि, निश्वास, दंष्ट्र ( दाढ़ ) नख, मूत्र, मल, शुक्र, लाला, मुख, स्पर्श, दंश विशर्धित, अधोवायु, गुदा, अस्थि, पित्त और शूक इन सोलह स्थानों में रहते हैं॥ १॥

तथा हि—दृष्टिनिश्वासविषा दिव्याः सर्पास्तक्षकादयः। दंष्ट्राविषा भौमाः सर्पाः। नखविषा मार्जारमकरव्याघ्रादयः, ते दंष्ट्राविषा अपि। मूत्रपुरीष विषा गृह-गोधिकादयः। शुक्रविषाः सर्पलालनादयो मूषिकाः। लालाविषा वरटवृश्चिकादयः। स्पर्श-विषा लूतादयः। मुखदंशविषा मक्षिकादयः। विशर्धितगुदमासविषाश्चित्रशीर्षादयः। विशर्धितं नाम पायुकुलकुक्षिसशब्दः। अस्थिविषा सर्पादयः। पित्तविषा नकुलमत्स्यादय। शूकविषा वृश्चिकभ्रमरादयः। एतेषां च सुश्रुते कल्पस्थाने विस्तारो द्रष्टव्यः।

दृष्टि निश्वास विष—दिव्य सर्प, तक्षक आदि के दृष्टि एवं निश्वास में होता है। दंष्ट्र विष—भूमिस्थ सर्पादि के दाढ़ में होता है। नख विष—मार्जार (बिल्ली), मकर और व्याघ्रादि के नखों में तथा इनके दाढ़ों में भी होता है। मूत्र पुरीष विष—गृहगोधिका ( छिपकिली ) आदि के मूत्र एवं पुरीष में होता है। शुक्र विष—सर्प तथा लालन (जाति विशेष मूषक) आदि के शुक्र में होता है। लाला विष—बर्रे तथा वृश्चिक ( कीट विशेष ) आदि के लार में होता है। स्पर्शविष—लूता ( मकड़ी ) आदि के स्पर्श में होता है। मुखसन्दंश विष—मक्षिका आदि के मुख संदंश अर्थात् इनके काटने से होता है। विशर्धित विष—गुदवात (अपान वायु या अधोवायु चित्रशीर्ष, शवदारुक आदि कीट विशेषों से उत्पन्न होता है अर्थात् इनके अधोवायु में होता है। विशर्धित—गुदा द्वारा जो अपशब्द होता है उसे कहते हैं। अस्थिविष—सर्प एवं मत्स्यादि के अस्थि में होता है। पित्तविष—नकुल (नेवला) और मत्स्य आदि के पित्त में होता है। शूकविष—वृश्चिक और भ्रमर आदि के शूकतुण्ड में होता है। इसका विस्तार पूर्वक वर्णन सुश्रुत के कल्पस्थान में देखना चाहिये।

स्थावरजङ्गमविषाणां सामान्यलक्षणान्याह—

स्थावरं तु ज्वरं हिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम्। फेनवम्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते विषम्॥ १॥

स्थावर विष के लक्षण—स्थावर विष से ज्वर, हिक्का, दन्त हर्ष, गलग्रह, मुँह से फेन निकलना एवं वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा उत्पन्न होते हैं॥ १॥

निद्रां तन्द्रां क्लमं दाहं सपाकं रोमहर्षणम्। शोफं चैवातिसारं च कुरुते जङ्गमं विषम्॥२॥

जङ्गम विष के लक्षण—जङ्गम विष से निद्रा, तन्द्रा क्लम (क्लान्ति), दाह, कम्पन, रोम हर्षण, शोथ और अतीसार उत्पन्न होते हैं। राजा अथवा अन्य लोगों के परिचारक (निश्वास पात्र भृत्यादि) अन्नादि में विष मिलाकर दे देते हैं॥ २॥

अथावनिपतेरन्यस्य वान्नादौ निपुणाः परिकर्मिणो विषमवचारयन्ति।

तेषां विषदातॄणां लक्षणान्याह—

इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः। जानीयाद्विषदातारमेतैर्लिङ्गैश्च बुद्धिमान्॥ १॥

विषदाता को जानने का उपाय—मनुष्यों की चेष्टाओं का ज्ञाता बुद्धिमान् वैद्य अथवा अन्यान्य राजपुरुष एवं विज्ञ मनुष्य वाणी, चेष्टा (आकृति) और मुख के विकृत भाव आदि लक्षणों से विषदाता को जाने॥ १॥

न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च। अपार्थं बहु सङ्कीर्णं भाषते मूढवत्तथा॥ २॥
अङ्गुलीः स्फोटयेदुर्व्यां विलिखेत्प्रहसेदपि। वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते॥ ३॥
विवर्णवक्त्रो ध्यामश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्त्यपि। वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः॥४॥
आलभेतासकृद्दीनः करेण च शिरोरुहान्। निर्यियासुरपद्वारैर्वीक्षते च पुनः पुनः॥ ५॥

विषदाता का स्वरूप—जो मनुष्य कुछ पूछने पर उत्तर नहीं देता है, कुछ कहने की इच्छा

करने पर मोह अर्थात् मूर्च्छित हो जाता है अथवा विस्मृत हो जाता है अथवा बोल नहीं सकता है, मूर्ख की भाँति निरर्थक बहुत अथवा अत्यन्त सूक्ष्म बोलता है, अंगुलियों को फोड़ता है, भूमि को अंगुलियों के नखों से खोदता है, अकारण हँसता है, काँपता है, भयभीत होकर इतस्ततः दूसरे को देखता है, मुँह का वर्ण विवर्ण हो जाता है, अग्नि से दग्ध हुए के समान प्रभाहीन हो जाता है, नख से कुछ ( तृणादि ) काटता है, अपनी प्रकृति के प्रतिकूल आचरण करता है और चेतनारहित भी हो जाता है, दीन होकर कई बार हाथों से शिर को पकड़ता है अथवा शिर नोचता है, गृह के गौण मार्गों से निकलना चाहता है और बार बार उन मार्गों को देखता है उसे विषदाता जानना चाहिये ॥ २-५ ॥

स्थावरविषस्य दशाश्रयाणां प्रत्येकं लक्षणान्याह—

उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ।

मूलविष के लक्षण—कनेर आदि के मूल के सेवन से उद्वेष्टन ( दण्डाघात की भाँति पीड़ा ), प्रलाप और मोह ( संज्ञाहीनता ) होता है ।

जृम्भणं वेपनं श्वासो ज्ञेयं पत्रविषेण च ॥ १ ॥

पत्रविष के लक्षण—पत्रविषों से जम्हाई, कम्पन और श्वास बढ़ा हुआ होता है ॥ १ ॥

मुष्कशोथः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च ।

फलविष के लक्षण—फलविष से मुष्कदेश में शोथ, दाह और अन्नद्वेष (अरुचि) हो जाता है।

भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ॥ २ ॥

पुष्पविष के लक्षण—पुष्प विष से वमन, आध्मान और श्वास की वृद्धि होती है ॥ २ ॥

त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि । आस्यदौर्गन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥ ३ ॥

त्वक्-सार एवं निर्यास विष के लक्षण—त्वचा विष, सार विष तथा निर्यास विष के उपयोग करने से मुख में दुर्गन्धि होना, शरीर में रूक्षता, शिर में पीड़ा तथा कफ का स्राव होना ये लक्षण होते हैं ॥ ३ ॥

फेनागमः क्षीरविषैर्विड्भेदो गुरुजिह्वता ।

क्षीरविष के लक्षण—क्षीरविष के सेवन करने से मुँह से फेन निकलना, विड्भेद अर्थात् अतीसारवत् मलनिर्गम और जिह्वा की गुरुता आदि लक्षण हो जाते हैं ।

हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ।

धातु विष के लक्षण—धातु विष के सेवन से हृदय में पीड़ा, मूर्च्छा और तालु प्रदेश में दाह होता है ।

प्रायेण कालघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ ४ ॥

प्रायः करके इन विषों को कालघाती ( कालान्तर में मारनेवाला ) जानना चाहिये ( कभी २ ये शीघ्र भी मारते हैं किन्तु इनकी गणना कालान्तर में मारक ही है ) ॥ ४ ॥

कन्दविषस्य कार्यमाह—

कन्दजान्युग्रवीर्याणि यान्युक्तानि त्रयोदश । सर्वाण्येतानि कुशलैर्ज्ञेयानि दशभिर्गुणैः ॥ १ ॥

कन्दविष के कार्य—कन्द से उत्पन्न होनेवाले उग्र वीर्य विष जो तेरह प्रकार के कह आये हैं वे सभी वक्ष्यमाण दस गुणों से युक्त होते हैं ॥ १ ॥

स्थावरं जङ्गमं चापि कृत्रिमं चापि यद्विषम् । सद्यो निहन्ति तत्सर्वं गुणैश्च दशभिर्युतम् ॥ २ ॥

स्थावर विष, जङ्गमविष तथा कृत्रिम विष जो भी विष हो वह प्राणियों को शीघ्र नष्ट कर देते हैं । सभी विष दसगुणों से युक्त होते हैं ॥ २ ॥

तान्दश गुणानाह—

रूक्षमुष्णं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्ममाशु व्यवायि च । विकाशि विशदं चापि लघ्वपाकि च ते दश ॥

दसगुणों के नाम—रूक्ष, उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, आशु, व्यवायी, विकाशी, विशद, लघु और अपाकी । अर्थात् ये दस गुण सभी में होते हैं ॥ १ ॥

तैर्गुणैर्विषस्य कार्यमाह—तद्रौक्ष्यात्कोपयेद्वायुमौष्ण्यात्पित्तं सशोणितम् ।

तैक्ष्ण्यान्मतिं मोहयति मर्मबन्धांश्छिनत्ति हि ॥ २ ॥

विष का कार्य—रूक्ष गुण होने से वायु को कुपित करता है। उष्ण गुण होने से पित्त को रक्त के साथ अथवा पित्त और रक्त को कुपित करता है। तीक्ष्ण गुण होने से बुद्धि को मोह लेता है और मर्मस्थान के बन्धनों को काटता है ॥ २ ॥

शरीरावयवान्सौक्ष्म्यात्प्रविशेद्विकरोति च। आशुत्वादाशु तद्धन्ति व्यवायात्प्रकृतिं हरेत् ॥३॥

सूक्ष्म गुण होने से शरीर के अवयवों में प्रवेश कर विकार उत्पन्न कर देता है। आशु गुण होने से शीघ्र ही प्राण का नाश करता है। व्यवायी गुण होने से प्रकृति (स्वभाव) को विकृत कर देता है ॥ ३ ॥

विकाशित्वात्क्षपयति दोषान्धातून्मलानपि। अतिरिच्येत वैशद्याद्दुश्चिकित्स्यं च लाघवात्।
दुर्जरं चाविपाकित्वात्तस्मात्क्लेशयते चिरम् ॥ ४ ॥

विकाशी गुण होने से वातादि दोषों, धातुओं और मलों को नष्ट करता है। विशद गुण होने से सब मार्गों को पृथक् २ कर देता है। लघु गुण होने से दुश्चिकित्स्य होता है और अपाकी गुण होने से दुःख से पचने वाला होता है इसीलिये चिरकाल तक क्लेश करता है ॥ ४ ॥

विषलिप्तशस्त्रहतस्य लक्षणमाह—

सद्यः पाकं याति यस्य क्षतं तत्स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यभीक्ष्णम्।
कृष्णीभूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य चापि ॥ १ ॥

विष लिप्त शस्त्रहत के लक्षण—जिस मनुष्य का क्षत शीघ्र ही पक जावे, उस क्षत से रक्त का स्राव होता रहे, बार बार पके तथा उससे कृष्णवर्ण का, आर्द्र, अत्यन्त दुर्गन्ध युक्त सड़ा हुआ मांस गिरे अथवा क्षत का वर्ण कृष्ण हो, निरन्तर आर्द्र रहे, दुर्गन्ध युक्त हो और उससे मांस सड़ २ कर गिरे और तृष्णा, मूर्च्छा, ज्वर और दाह हो तो उसे विष से लिप्त शस्त्र से विद्ध (क्षत अथवा आहत) जानना चाहिये ॥

तृष्णा मूर्च्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाविद्धं तं मनुष्यं व्यवस्येत्।
लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादमित्रैर्दत्तः यवेडो वा व्रणे यस्य चापि ॥ २ ॥

विष लिप्त व्रण के लक्षण—शत्रुओं के द्वारा किसी प्रकार जब व्रण में विष दे दिया जाता है तब भी विषलिप्त शस्त्र से क्षत होने पर जो लक्षण होते हैं वे ही सब इसमें भी होते हैं ॥ २ ॥

जङ्गमविषाणां कार्याण्याह, तत्र जङ्गमेषु तीक्ष्णतरत्वेन सर्पानाह—

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः। यथाक्रमं समाख्याता द्व्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥

सर्पविष—वात-पित्त और कफ दोष वाले भोगी, मण्डली और राजिल ये तीन प्रकार के सर्प क्रम से होते हैं अर्थात् भोगी (फणा वाले सर्प) विष में वातदोष की बहुलता होती है, मण्डली (चलने वाले) सर्प के विष में पित्तदोष की बहुलता होती है और राजिल (चित्रित एवं दीर्घ रेखाओं वाले) सर्प के विष में कफ दोष की बहुलता होती है तथा इनके मध्य वाले अथवा दो दो जातियों के मिश्रित लक्षणों वाले सर्प दोषात्मक होते हैं, अर्थात् भोगी और मण्डली के मध्य की जाति वाले सर्पविष में वातपित्त दोनों दोषों के मिश्रित लक्षण होते हैं, मण्डली तथा राजिल के मध्य की जाति वाले सर्प के विष में पित्त-कफ दोनों दोषों के मिश्रित लक्षण होते हैं और भोगी और राजिल के मध्य की जाति वाले सर्प के विष में वात-कफ दोनों दोषों के मिश्रित लक्षण होते हैं अथवा दो जाति के सर्पों के संकर से जो सर्प उत्पन्न होते हैं वे जाति के अनुसार दोष से युक्त द्वन्द्व दोषों वाले होते हैं ॥ १ ॥

भोगिप्रभृतिभिः कृतदंशेषु वातादीनां लिङ्गमाह—

दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत्। पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥

भोगी आदि सर्पविष—भोगी सर्प का दंशस्थान कृष्ण वर्ण का होता है और सभी वातिक विकारों को करने वाला होता है। मण्डली सर्प का दंश स्थान पीतवर्ण का होता है तथा उसमें शोथ होता है और मृदु होता है एवं पैत्तिक विकारों वाला होता है ॥ १ ॥

राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरशोथश्च पिच्छिलः।
पाण्डुः स्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सवर्श्लेष्मविकारकृत् ॥ २ ॥

राजिल सर्प का दंश स्थान स्थिर शोथ वाला, पिच्छिल, पाण्डुवर्ण का, स्निग्ध, अत्यन्त गाढ़ रक्त युक्त तथा सभी प्रकार के कफज विकारों को करने वाला होता है॥ २॥

देशविशेषे कालविशेषे च दष्टस्यासाध्यत्वमाह—

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसन्ध्यासु चतुष्पथेषु।
याम्ये च पित्र्ये परिवर्जनीया ऋक्षे नरा मर्मसु ये च दष्टाः॥ १॥

साध्यासाध्यता—अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष के नीचे, देवालय, श्मशान, वल्मीक, सन्ध्याकाल, चतुष्पथ, भरणी नक्षत्र और चकार से आर्द्रा-अश्लेषा, मघा, मूल और कृत्तिका नक्षत्रों में एवं पञ्चमी तिथि में, पितृपक्ष में तथा मर्मस्थान में यदि सर्प दंश किया हो तो ऐसे मनुष्य को त्याग देना चाहिये। वह असाध्य है॥ १॥

दर्वीकराणां विषमाशु हन्ति सर्वाणि चोष्णे द्विगुणीभवन्ति॥ २॥

दर्वीकर विष की असाध्यता—दर्वीकर (भोगी अर्थात् फणा वाले) सर्प का विष शीघ्र मारक होता है तथा सभी सर्पों का विष (अथवा अन्य विष भी) उष्णकाल में तथा उष्ण के संयोग से द्विगुण हो जाते हैं॥ २॥

दर्वीकरलक्षणमाह—

रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः। ज्ञेया दर्वीकराः सर्पाः फणिनः शीघ्रगामिनः॥ १॥

दर्वीकर के लक्षण—रथाङ्ग अर्थात् चक्र अथवा चक्रवाक पक्षी हल, छत्र, स्वस्तिक चिह्न तथा अङ्कुश के चिह्नों को फणा पर धारण करने वाले और शीघ्रगामी सर्प को दर्वीकर सर्प कहते हैं॥

तथाऽपरेषु विषमाशु मारकं भवति तानाह—

अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु।
क्षीणे क्षते मेहिनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि॥ १॥
शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमस्ति राज्यो लताभिश्च न सम्भवन्ति।
शीताभिरद्भिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम्॥ २॥

मारक विष—अजीर्ण से पीड़ित, पित्तदोष से पीड़ित आतप (घर्म) से पीड़ित, तथा बालक, वृद्ध, क्षुधार्त, क्षीण, क्षती, मेही, कुष्ठी, रूक्ष शरीर वाला, निर्बल और गर्भवती को यदि सर्प काटे तो वह विष शीघ्र मारक होता है तथा (सर्पदष्ट मनुष्य को) शस्त्र से काटने पर जिसके शरीर से रक्त नहीं दिखाई दे, लता (बेन्त्रादि) से ताड़न करने या बन्धन करने से रेखायें नहीं होती हो और शीतल जल से स्नान कराने से जिसे रोमाञ्च नहीं होता हो ऐसे विष से युक्त (सर्पदंश वाले) को त्याग देना चाहिये॥

जिह्मं मुखं यस्य च केशशातो नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः।
कृष्णश्च रक्तः श्वयथुश्च दंशे हन्वोः स्थिरत्वं च स वर्जनीयः॥ ३॥

जिस मनुष्य का मुख वक्र हो गया हो, सिरके केश गिरने लगे अथवा हाथ लगाने से उखड़ जावें, नासिका अवसन्न हो जावे, कण्ठ भग्न हो जावे, दंशस्थान कृष्णवर्ण का अथवा रक्तवर्ण का हो जावे तथा उसमें शोथ हो तथा हनुस्तम्भ हो उसे त्याग देना चाहिये। ये लक्षण असाध्य हैं॥

अपरं च—वर्तिर्घना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य।
दंष्ट्रानिपाताश्चतुरश्च यस्य यस्येह तस्यापि वैद्य परिवर्जयेत्तम्॥ ४॥

जिसके मुख से गाढ़ श्लेष्मा बत्ती के समान निकले तथा ऊर्ध्वमार्ग (मुख नासादि) अथवा अधोमार्ग (गुदादि) से रक्त का स्राव हो, जिसके चारों दाँत (दाढ़) बैठ गये हों ऐसे असाध्य लक्षण देखकर उसकी चिकित्सा नहीं करे॥ ४॥

उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं चाऽप्यथवा विवर्णम्।
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च त्यजेन्नरं तत्र न कर्म कुर्यात्॥ ५॥

जो सर्प विष से उन्मत्त, अत्यन्त उपद्रवों से युक्त तथा क्षीण स्वर वाला हो गया हो अथवा जिसके शरीर का वर्ण विकृत हो गया हो, जिसको नियत मरण व्यापक लक्षण उपस्थित हो गये हों तथा मलमूत्रादि के वेगरहित हो गया हो ऐसे विषयुक्त मनुष्य की चिकित्सा नहीं करनी चाहिये॥ ५॥

स्थावरजङ्गमविषमेव जीर्णत्वादिभिः कारणैर्दूषीविषसंज्ञां लभते तदाह—

जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ।
स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ॥ १ ॥

मनुष्य के शरीर में प्राप्त स्थावर, जङ्गम अथवा कृत्रिम विष भी जीर्णता को प्राप्त होने पर अथवा विषनाशक ओषधियों द्वारा अभिहत होने पर अथवा दावाग्नि ( वनाग्नि ) वात तथा आतप आदि से शोषित होने पर अथवा स्वभावत हीनगुण होने पर दूषी विष में परिणत हो जाता है ॥ १ ॥

दूषीविषस्य कार्यमाह—

वीर्याल्पभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्षगणानुबन्धि ।
तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धवैरस्ययुतः पिपासी ॥ १ ॥
मूर्च्छन् भ्रमन् गद्गदवाग्वमिश्च विचेष्टमानो रतिमाप्नुयान्न ॥ २ ॥

दूषी विष के कार्य—दूषी विष अल्प वीर्य ( सामर्थ्य हीन अथवा व्यवायी आदि दस गुणों से हीन ) होने से मृत्युप्रद नहीं होता किन्तु कफ से आच्छादित होकर वर्षों पर्यन्त शरीर में स्थित रहता है । इस विष से पीड़ित मनुष्य भिन्न पुरीष ( मलभेद वाला ) और भिन्न वर्ण हो जाता है, उसके शरीर अथवा मुख से दुर्गन्धि आती है, मुख विरस हो जाता है, तथा उसे तृष्णा, मूर्च्छा भ्रम और वाणी गद्गद हो जाती है, वमन होता है तथा विरुद्ध चेष्टाओं को करता हुआ कष्ट को प्राप्त होता है ॥ १-२ ॥

स्थानविशेषस्थिते दूषीविषे लिङ्गविशेषमाह—

आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ १ ॥

दूषी विष के विशेष लक्षण—दूषी विष के आमाशय में स्थित होने से मनुष्य कफ-वात रोग वाला और पक्वाशय में स्थित होने से वात-पित्त रोग वाला हो जाता है तथा उसके शिर के केश एवं शरीर के रोम इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जिस प्रकार पंख विहीन पक्षी हो जाता है ॥

तस्य रसादिधातुगतस्य लिङ्गमाह—

स्थितं रसादिष्वथवा यथोक्तान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् ।
कोपं च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ १ ॥

रसादि धातुओं में दूषी विष—रसादि धातुओं में स्थित हुआ दूषी विष उन धातुओं से उत्पन्न होने वाले विकारों को करता है, अर्थात् रसधातु में रहने से अरुचि, अजीर्णादि विकार, रक्त में रहने से कुष्ठ-विसर्पादि विकार, मांस में रहने से मांसार्बुदादि विकार, मेद में रहने से ग्रन्थि वृद्धि आदि विकार, अस्थि में रहने से अधिदन्तादि विकार, मज्जा में रहने से तमोदर्शन-मूर्च्छा आदि विकार और शुक्र में रहने से क्लैब्य शुक्राश्मरी आदि विकारों को करता है, तथा शीत के समय वायु के समय और दुर्दिन ( मेघाच्छन्न ) के समय शीघ्र ही दूषीविष कोप को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

पूर्वरूपमाह—निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथ वाऽङ्गमर्दः ।
ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म ।
मांसक्षयं पाणिपदास्यशोथं मूर्च्छां तथा छर्दिमथातिसारम् ॥ १ ॥
दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ २ ॥

दूषी विष के पूर्वरूप—दूषी विष के कोप होने के पूर्व निद्रा, शरीर में गुरुता, जृम्भा, शरीर में शिथिलता, रोमाञ्च और अङ्गमर्द होता है और इसके बाद अन्नमद ( रसाजीर्ण ) अविपाक ( अन्न का नहीं पकना ) अरुचि, मण्डलों एवं कोठों की उत्पत्ति, मांस क्षय, हाथ, पैर और नेत्रों में शोथ, मूर्च्छा, वमन, अतीसार तथा श्वास, तृषा, ज्वर और उदर की वृद्धि ( दूष्योदर ) भी करता है ॥ १-२ ॥

दूषीभेदेन विकारभेदमाह—

उन्मादमन्यज्जनयेत्तथाऽन्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् ।
गाद्गद्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ १ ॥

गरविष का कार्य—उक्त रज मलादि मिश्रित अन्न के भक्षण से पुरुष को पाण्डु, कृशता, मन्दाग्नि तथा शरीर के अन्दर गर विष उत्पन्न हो जाता है, मर्मस्थानों में पीड़ा होती है, आध्मान होता है, हाथों में शोथ होता है तथा उदररोग, ग्रहणीरोग, यक्ष्मा, गुल्म, क्षय तथा ज्वर हो जाता है तथा इसी प्रकार के अन्यान्य विस्फोटादि व्याधियों के लक्षण भी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं ॥१॥

दूषीविषस्य निरुक्तिमाह—

दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः । यस्माद्दूषयते धातून् तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥१॥

दूषी विष की निरुक्ति—शरीरस्थ विष देश काल, अन्न तथा दिवास्वापादि से बारबार दूषित होकर धातुओं को दूषित करता है, इसीसे उसे दूषी-विष कहते हैं ॥ १ ॥

दूषीविषस्य साध्यत्वादिकमाह—

साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोत्थितम् । दूषीविषमसाध्यं स्यात्क्षीणस्याहितसेविनः ॥

साध्यासाध्यता—पथ्यसेवी एवं बलवान् रोगी का शीघ्र उत्पन्न हुआ नवीन दूषी विष साध्य होता है । इसी प्रकार ( पथ्यसेवी ) मनुष्य का एक वर्ष का हुआ दूषी विष याप्य होता है और क्षीण मनुष्य का तथा कुपथ्य करनेवाले का दूषी विष असाध्य होता है ॥ १ ॥

कृत्रिम विषं द्विविधम्—एकं सविषं दूषीविषसंज्ञम् । अपरमविषं तदेव गरसंज्ञम् ।

कृत्रिम विष के भेद—कृत्रिम विष दो प्रकार का होता है एक विष से युक्त जिसे दूषी विष कहते हैं और दूसरा विष से रहित जिसे गर कहते हैं ॥

तथा च काश्यपसंहितायाम्—

संयोगजं च द्विविधं द्वितीयं विषमुच्यते । दूषीविषं तु सविषमविषं गर उच्यते ॥ १ ॥

काश्यप संहिता में भी कहा गया है कि दूसरा संयोगज विष दो भेद का होता है एक दूषी विष जो विष से युक्त होता है और दूसरा गर जो विष से रहित होता है ॥ १ ॥

तत्र दूषीविषमभिधाय गरं दर्शयितुमाह—

सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥

गर विष के लक्षण—अपने सौभाग्य ( पति आदि को वश में करने ) के लिये स्त्रियां स्वेद, रज तथा नाना अङ्गों के मल को तथा शत्रुओं द्वारा प्रस्तुत किये हुए गर विष को अन्न में मिश्रित कर दे देती हैं ॥ १ ॥

गरकार्यमाह—तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्गरश्चास्योपजायते ।
मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथसम्भवः ॥ १ ॥

गर विष का कार्य—उन स्वेद, रजादि मिश्रित अन्न के भक्षण से पुरुष को पाण्डु, कृशता, मन्दाग्नि तथा शरीर के अन्दर गरविष उत्पन्न हो जाता है, मर्मस्थानों में पीड़ा, आध्मान, हाथों में शोथ हो जाता है ॥ १ ॥

जठरं ग्रहणीरोगो यक्ष्मा गुल्मः क्षयो ज्वरः । एवं विधस्य चान्यस्य व्याधेर्लिङ्गं च जायते ॥

दूषी विष से और भी उदर रोग, ग्रहणी रोग, यक्ष्मा, गुल्म क्षय तथा ज्वर हो जाता है और इसी प्रकार के अन्यान्य व्याधियों के लक्षण भी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १ ॥

लूतानां जन्तुविशेषाणामुत्पत्तिनिरुक्तिसंख्यादि चाह—

यस्माल्लून तृणे प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः । तेभ्यो जातास्ततो लूता इति ख्यातास्तु षोडश ॥

लूता की उत्पत्ति—वशिष्ठ मुनि के प्रस्वेद बुँद लून तृण ( धेन्वर्थ कटे घास ) पर गिरने से एक प्रकार के कीट विशेष की उत्पत्ति हुई इसलिये उसे लूता कहा गया, वह लूता सोलह प्रकार की होती हैं ॥ १ ॥

अत्र श्रुतः—विश्वामित्रो नृपवरः कदाचिदृषिसत्तम ।
वसिष्ठं कोपयामास गत्वाऽऽश्रमपदं किल ॥ २ ॥

कुपितस्य मुनेस्तस्य ललाटात्स्वेदबिन्दवः । अपतन्दर्शनादेव क्षयस्तात्तीव्रवर्चसः ॥ ३ ॥

लूने तृणे महर्षेस्तु धन्वर्थे सम्भृतेऽपि च । ततो जातास्त्विमा घोरा नानारूपा महाविषाः ॥

तासामष्टौ कष्टसाध्या वर्ज्यास्तावन्त एव हि ॥ ५ ॥

इस पर सुश्रुत का वचन यह है कि कभी नृप श्रेष्ठ राजर्षि विश्वामित्र जी मुनिवर वशिष्ठ जी

के आश्रम पर जाकर ( बलपूर्वक उनकी कामधेनु को लेने का प्रयत्न कर ) उन्हें कुपित कर दिये उन क्रुद्ध हुए मुनि के ललाट से बड़े वेग से स्वेद की बिन्दुयें नीचे गिरकर महर्षि वसिष्ठ जी जो तृण उस कामधेनु के लिये काटकर रक्खे थे उसी पर पड़ी और उन्हीं स्वेद बिन्दुओं से अनेक प्रकार के भयंकर महाविष युक्त लूता कीट विशेष आदि उत्पन्न हुये उनमें से आठ प्रकार की लूता कष्टसाध्य होती है और शेष आठ प्रकार की असाध्य होती है॥ २–५॥

तत्र त्रिमण्डलाप्रभृतयः कष्टसाध्याः। सौवर्णिकाप्रभृतयोऽष्टावसाध्याः॥

यहां पर त्रिमण्डला आदि ( आठ प्रकार की ) लूता कष्टसाध्य होती हैं और सौवर्णिका आदि आठ असाध्य होती हैं॥

तासां सामान्यानां दंशलक्षणमाह—

ताभिर्दष्टे दंशकोथः प्रवृत्तिः क्षतजस्य च। ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः॥

लूता दंश के सामान्य लक्षण—लूताओं के दंश से दंशस्थान पर कोथ ( पूतिभाव अर्थात् सड़ने के समान ) होता है तथा क्षतज प्रवृत्ति रक्तादि का स्राव होता है और ज्वर, दाह, अतीसार एवं त्रिदोषज रोग उत्पन्न हो जाते हैं॥ १॥

पिडिका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च।
शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्यावाश्चलास्तथा।
सामान्यं सर्वलूतानामेतद्दंशस्य लक्षणम्॥ २॥

अनेक प्रकार की पिडिकायें होती हैं, बहुत बड़े २ मण्डल होते हैं, महान शोथ जो कोमल, रक्त एवं कृष्ण वर्ण के तथा चल अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान पर चलने वाले होते हैं॥ २॥

त्रिमण्डलादयोऽष्टौ दूषीविषास्तासां लक्षणमाह—

दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यावं वा जालकावृतम्। दग्धाकृति भृशं पाकक्लेदशोथज्वरान्वितम्॥
दूषीविषाभिर्लूताभिस्तद्दष्टमिति निर्दिशेत्॥ १॥

दूषी विष के लक्षण—जिस लूता दंश में दंश स्थान का मध्य भाग, कृष्ण अथवा श्याम वर्ण का हो अथवा जालियों से घिरा हुआ सा हो, अग्नि से जलने के समान हो उस व्रण में अधिक क्लेद तथा शोथ हो और शरीर में ज्वर हो तो उसे दूषी विषवाली त्रिमण्डलादि लूताओं का दंश जानना चाहिये॥ १॥

सौवर्णिकादयोऽष्टावसाध्या प्राणहरास्तासां लक्षणमाह—

शोथाः श्वेताः सिता रक्ताः पीता वा पिडिका ज्वरः।
प्राणान्तिको भवेद्दाहः श्वासो हिक्का शिरोग्रहः॥ १॥

असाध्य दूषी विष—जिस लूता दंश स्थान में शोथ हो, श्वेत अथवा श्वेतरक्त मिश्रित वर्ण की ( गुलाबी ) अथवा श्वेत तथा अतिश्वेत वर्ण की, रक्तवर्ण की अथवा पीतवर्ण की पिडिकायें हों, ज्वर हो, दाह हो, श्वास हो, हिक्का हो और शिरोग्रह हो उसे प्राणनाशक लूताओं का दंश जानना चाहिये॥ १॥

आखुदूषीविषलक्षणमाह—

आ दंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः। लोमहर्षश्च दाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते॥

आखु विष के लक्षण—जिस मूस के काटते ही दंश स्थान से रक्त का स्राव होने लगे वर्ण पाण्डु हो जावे, पाण्डुवर्ण के मण्डल उत्पन्न हो जावें, ज्वर हो, अरुचि हो, रोमाञ्च हो और दाह हो उसे आखु दूषी विष जानना चाहिये॥ १॥

प्राणहरमूषकविषकार्यमाह—

मूर्च्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः। शिरोगुरुत्वं लालाऽसृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकात्॥

प्राणहर मूषक विष—जिस मूस के दंश से मूर्च्छा, अङ्गों में शोथ वर्ण वैकृति (वर्ण विवर्णता), क्लेद ( वमनेच्छा ) अथवा दंश स्थान पर क्लेद ( आर्द्रता ) बधिरता, ज्वर, शिर में गुरुता, लालास्राव, रक्तस्राव, वमन अथवा रक्त वमन हो उसे असाध्य मूषक विष जानना चाहिये॥ १॥

कृकलासदष्टस्य लक्षणमाह—

कार्ष्ण्यं श्यावत्वमथवा नानावर्णत्वमेव च। मोहोऽथ वर्चसो भेदो दष्टस्य कृकलासकैः॥१॥

कृकलास ( गिरगिट ) दंष्ट के लक्षण—जब गिरगिट काटता है तो वर्ण कृष्ण, श्याम अथवा अनेक वर्ण का हो जाता है, मोह होता है और मलभेद होता है ॥ १ ॥

वृश्चिकविषस्य लक्षणमाह—

दहत्यग्निरिवाऽऽदौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च । वृश्चिकस्य विषं याति पश्चाद्दंशेऽवतिष्ठति ॥१॥

वृश्चिक विष के लक्षण—बिच्छू जब डंक मारता है तो प्रथम अग्नि से जलने के समान दाह होता है पुनः शीघ्र ही भेदन करता हुआ वा छेदने के समान पीड़ा करता हुआ विष ऊपर को जाता है, पश्चात् दंश स्थान पर ही पीड़ा स्थित हो जाती है ॥ १ ॥

असाध्यवृश्चिकदष्टस्य लक्षणमाह—

दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः । मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनार्तो जहात्यसून् ॥ २ ॥

वृश्चिक विष के असाध्य लक्षण—जिस बिच्छू के डंक मारे हुए मनुष्य के हृदय, घ्राण और जिह्वा उपहत हो जावें । ( वे अपना कार्य सम्पादन करने योग्य न रहें अथवा इन पर आघात हुआ हो ) तो ऐसा दंश असाध्य समझना चाहिये तथा जिसका मांस अत्यन्त गिरने लगे एवं वह मनुष्य वेदना से अत्यन्त पीड़ित हो जावे तो वह भी प्राण को त्याग देता है अर्थात् यह और असाध्य है ॥ २ ॥

कणभदष्टस्य लक्षणमाह—

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिरथापि वा । लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैवावदीर्यते ॥ १ ॥

कणभ ( कीट विशेष ) के दंश का लक्षण—कणभ नामक कीट विशेष के दंश से विसर्प, शोथ, शूल, ज्वर तथा वमन होते हैं और दंशस्थान विदीर्ण हो जाता है ॥ १ ॥

उच्चिटिङ्गदष्टस्य लक्षणमाह—

हृष्टरोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशार्तिमान् । दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥१॥

उच्चिटिङ्ग दंश के लक्षण—उच्चिटिङ्ग नामक कीट विशेष ( जिसे वृश्चिक का भेद भी माना जाता है ) के दंश से रोमाञ्च हो जाता है लिंगेन्द्रिय स्तब्ध हो जाती है, अत्यन्त पीड़ा होती है तथा ज्ञात होता है कि शरीर शीतल जल से सिञ्चित किया गया है ॥ १ ॥

सविषमण्डूकदष्टस्य लक्षणमाह—

एकदंष्ट्रार्दितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् । सनिद्रश्छर्दिमान्दष्टो मण्डूकैः सविषैर्भवेत् ॥१॥

मण्डूक विष के लक्षण—विषवाले मेंढक के काटने से मनुष्य एक दाढ़ पीड़ित होता है, शरीर में शोथ, पीड़ा तथा शरीर का वर्ण पीत हो जाता है और उसे तृषा, नीन्द तथा वमन होता है ॥ १ ॥

मत्स्यविषस्य कार्यमाह—

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं ज्वरं तथा ॥ १ ॥

मत्स्य विष के लक्षण—विषयुक्त मछलियों के दंश से दाह, शोथ और ज्वर होते हैं ॥ १ ॥

जलौकाविषकार्यमाह—

कण्डूं शोथं ज्वरं कुर्युः सविषास्तु जलौकसः ॥ १ ॥

जलौका विष के लक्षण—विषयुक्त जलौका ( जोंक ) के शरीर में लगने से कण्डू, शोथ और ज्वर होते हैं ॥ १ ॥

गृहगोधिकाविषकार्यमाह—

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ॥ १ ॥

गृहगोधिका विष के लक्षण—छिपकिली के दंश से दाह, शोथ, तोद और स्वेद ( पसीना ) होता है ॥ १ ॥

शतपदीविषलक्षणमाह—

दंशे स्वेदं रुजां दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ १ ॥

शतपदी विष के लक्षण—शतपदी ( कान खजूर ) के काटने से दंश स्थान में स्वेद पीड़ा और जलन होती है ॥ १ ॥

मशकविषलक्षणमाह—कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ॥ १ ॥

मशक विष के लक्षण—मशक दंश से कण्डू, किञ्चित् शोथ और मन्द पीड़ा होती है ॥ १ ॥

दंशोपरि नियच्छीयात्तत्क्षणाच्चतुरङ्गुलम् । क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धैर्मन्त्रैश्च मन्त्रयेत् ॥६॥
अम्बुवत्सेतुबन्धेन स्तम्यते विषमं विषम् ।

बन्धन—दंश स्थान से चार अङ्गुल ऊपर शीघ्र ही रेशम आदि के सूत्रों ( जिस किसी ) से दृढ़ बन्धन कर देना चाहिये तथा सिद्ध मन्त्रों का प्रयोग करना चाहिये । बन्धन से जिस प्रकार बाँध बाँधने से जल अवरुद्ध हो जाता है उसी प्रकार विष भी अवरुद्ध हो जाता है ॥ ६ ॥

नक्तमालफलव्योषबिल्वमूलनिशाद्वयम् ॥ ७ ॥
सौरसं पुष्पमाजं वा मूत्रं बोधनमञ्जनम् ।

नक्तमालादि अञ्जन—बड़े करञ्ज के फल, सोंठ, मरिच, पीपल, बिल्ववृक्ष की मूल, हल्दी और दारुहल्दी को समान भाग लेकर शिरीष के पुष्प ( अथवा तुलसी की मञ्जरी ) के स्वरस के साथ पीसकर अथवा बकरी के मूत्र के साथ पीसकर अथवा इनके चूर्ण को इस स्वरस या मूत्र के साथ घोटकर विधिपूर्वक अञ्जन बनाकर लगाने से सर्पदंश से मूर्च्छित को चेतना होती है ॥ ७ ॥

वन्ध्याकर्कोटकीमूलं छागमूत्रेण भावितम् ॥ ८ ॥
नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं विषोपहतचेतसः ।

वन्ध्याकर्कोट की नस्य—बाँझककोड़े की जड़ को बकरी के मूत्र में भावित कर काँजी के साथ पीसकर नस्य देने से विष से मूर्च्छित व्यक्ति चैतन्य को प्राप्त होता है ॥ ८ ॥

श्वेतामूलं शमीमूलमीश्वरीमूलमेव च ॥ ९ ॥
आखुलिका तथा पाठा पृथग्दष्टकथा घवा ।

श्वेतादि नस्य—श्वेता (श्वेत पुनर्नवा) अथवा कण्टक शिरीष या शमी वृक्ष, सर्पगन्धा, देवदाली अथवा बाँझककोड़े की जड़ तथा पाठा ( पुरइनपाढ़ी ) की जड़ में पृथक् २ किसी एक का विधिपूर्वक नस्य ( चूर्ण ) बनाकर देना सर्पदंश वाले के लिये हितकर होता है ॥ ९ ॥

कुलीकमूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ १० ॥

कुलीक ( कण्टकपाली अथवा पटोल ) की जड़ के चूर्ण का नस्य बनाकर देने से यदि काल के समान भी सर्प डँसा हो तो वह जीवित हो जाता है ॥ १० ॥

जलेन लाङ्गलीकन्दं नस्यं सर्पविषापहम् ।

लाङ्गलीनस्य—कलिहारी के मूल को जल के साथ पीसकर नस्य देने से सर्पविष नष्ट होता है ।

वारिणा टङ्कणं पीतमथवार्कस्य मूलकम् ॥ ११ ॥

टंकणार्क मूलयोग—शुद्ध सोहागे को अथवा आक की जड़ को जल के साथ पीसकर पान करने से सर्प विष नष्ट होता है ॥ ११ ॥

धूप—कपोतविण्मनुष्यशिरोरुहाणि सगोविषाणं शिखिपिच्छकाग्रम् ।
यवस्य धान्यस्य तुषाश्च बीजं कार्पासजं चाऽम्बुसिताश्च माला ॥ १ ॥
इत्यौषधीभिः परिकल्पितोऽसमो धूपोऽगदः स्याद्भुजगैरमुक्तैः ।
गृहे विधेयः कुशलैरनेन नश्यन्ति सर्पाश्च सपाऽऽखवश्च ॥ २ ॥

धूप प्रयोग—कपोत की विष्ठा, मनुष्य के शिर के बाल, गौ की सींग, मोरपंख का अग्रभाग जौ तथा धान की भूसी, कपास के बीज, श्वेतपुष्प ( चाँदी ) माला इन सब के योग से निर्मित यह उत्तम अगद धूप सर्पों से मुक्त कर देता है अर्थात् इस धूप के देने से सर्प नहीं रहते । बुद्धिमान् इस धूप को घर में देवे तो इससे सर्प तथा मूषक दोनों नष्ट हो जाते हैं ॥ १-२ ॥

सातलाफलफेनेनाञ्जनं कृत्वा सर्पविषं नश्यति ।

सातला फेनाञ्जन—पीतदुग्ध वाली थूहर के फल के फेन का अञ्जन करने से सर्प विष नष्ट होता है ॥

अथ मन्त्र—ॐ क्ष्ः सर्पकुलाय स्वाहा, अनेन मन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्रितां मृत्तिकां गृह मध्ये क्षिपेत्सर्पाः पलायन्ते ॥ ३ ॥

मन्त्र—'ॐ क्ष्ः सर्पकुलाय स्वाहा' इस मन्त्र से, मिट्टी के ढेले को सात बार अभिमंत्रित कर घर में डाल देने से सर्प भाग जाते हैं ॥ ३ ॥

कालवज्राशनिरस—

पारदं गन्धकं तुत्थं टङ्कणं रजनीसमम्। देवदाल्या द्रवैर्मर्द्य दिनं शुष्कं तु भक्षयेत्॥ १॥
कालवज्राशनिर्नाम रसः सर्वविषापहः। नरमूत्रं पिबेच्चानु कालदष्टोऽपि जीवति॥ २॥

कालवज्राशनि रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, शुद्ध तूतिया, शुद्ध टङ्कण तथा हल्दी को समभाग लेकर देवदाली के स्वरस में एक दिन भर मर्दन कर सुखाकर भक्षण करावे (प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य औषधियों को मिलाकर घोटकर तब देवदाली स्वरस में मर्दन करना चाहिये) यह कालवज्राशनि नामका रस सभी प्रकार के विषों को नष्ट करता है। यदि मनुष्य के मूत्र के अनुपान से दिया जावे तो कालरूप सर्प भी डँसा हो तो भी मनुष्य जीवित हो जाता है॥ १-२॥

दूषीविषचिकित्सा—

दूषीविषार्तं सुस्निग्धमूर्ध्वं चाऽधश्च शोधितम्। पाययेदगदं मुख्यमिदं दूषीविषापहम्॥१॥

दूषी विष चिकित्सा—दूषी विष से पीड़ित रोगी को भलीभाँति स्नेहन औषधि देकर वमन विरेचन करावे पश्चात् आगे कहे हुए दूषीविषनाशक मुख्य अगद को पिलावे॥ १॥

पिप्पली धान्यकं मांसी लोध्रमेला सुवर्चिका। मरिचं वालकं चैला तथा कनकगैरिकम्॥
क्षौद्रयुक्तः कषायोऽयं दूषीविषमपोहति॥ २॥

पिप्पल्यादि गण—पीपल, धनियाँ, जटामांसी, लोध, इलायची, सज्जीखार, मरिच, सुगन्धवाला, इलायची और सुनहरी गेरू को समान भाग लेकर क्वाथ करके मधु का प्रक्षेप देकर पान कराने से दूषीविष को नष्ट करता है॥ २॥

कृत्रिमविषचिकित्सा—

कृत्रिमं तु विषं दद्यात् पक्षान्मासाद्विबाधते। आलस्यं कुरुते जाड्यं कासश्वासौ बलक्षयम्॥
रक्तस्रावो ज्वरः शोफः पीतचक्षुश्च लक्षयेत्।

कृत्रिम विष—कृत्रिम विष का प्रयोग एक पक्ष अथवा एक मास के पश्चात् पीड़ित करता है। इससे शरीर में आलस्य, जड़ता, कास, श्वास, बल का नाश, रक्तस्राव, शोथ तथा नेत्र पीतवर्ण के दिखाई देते हैं॥ १॥

शर्कराचूर्णसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः॥ २॥
लेहः प्रशमयत्युग्रं नानायोगकृतं विषम्।

शर्करा सुवर्णादि लेह—सुवर्ण माक्षिक भस्म तथा सुवर्ण भस्म के शर्करा (चीनी अथवा मिश्री) के चूर्ण के साथ लेह बनाकर सेवन करने से अत्यन्त उग्र तथा अनेक योगों द्वारा निर्मित कृत्रिम विष भी शमन हो जाता है (मात्रा अग्निबलानुसार देनी चाहिये)॥ २॥

पुत्रजीवस्य मज्जा च निष्कमात्रो गवां पयः॥ ३॥
पिष्ट्वा पीतं गरं हन्यान्नानायोगकृतं विषम्।

पुत्र जीवमज्जा योग—पुत्रजीवक (जियापोता) के फल की मज्जा एक निष्क के प्रमाण से लेकर गोदुग्ध के साथ पीसकर पान कराने से अनेक योगों द्वारा निर्मित उग्र कृत्रिम विष भी नष्ट हो जाता है॥ ३॥

गृहधूमं जले पिष्ट्वा तण्डुलीमूलतुल्यकम्॥ ४॥
एकाच्चतुर्गुणं चाऽऽज्यं घृतात्क्षीरं चतुर्गुणम्। घृतशेषं पचेत्सर्पिः पिबेत्सर्वगरापहम्॥ ५॥

गृह धूमादि घृत—गृहधूम (रसोई घर का झाला) लेकर जल के साथ पीसकर जितना हो उसके समान चौराई (शाक) की जड़ लेकर विधिपूर्वक कल्क करके कल्क के चतुर्गुण गोघृत तथा घृत के चतुर्गुण गोदुग्ध लेकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्ध करके घृत मात्र शेष रहने पर उस घृत को पान करावे तो इससे सब प्रकार के गर (कृत्रिम विष) नष्ट होते हैं॥ ४-५॥

पारावतामिषसटीपुष्कराह्वैर्कृतं हिमम्। गरतृष्णारुजाकासश्वासहिध्माज्वरापहम्॥ ६॥

पारावतादि हिम—कपोत का मांस, कचूर और पुष्करमूल को समान भाग लेकर मोटाकर विधिपूर्वक हिम बनाकर पिलाने से गर (कृत्रिम विष) एवं तत्सम्बन्धी तृष्णा, पीड़ा, कास, श्वास हिक्का तथा ज्वर नष्ट होते हैं॥ ६॥

गरनाशनरस —

शुद्धसूतं मृतं स्वर्णं सशुद्धं हेम माक्षिकम् । त्रयाणां गन्धकं तुल्यं मर्द्यं कन्यारसैर्दिनम् ॥१॥
तच्छुष्कंससितक्षौद्रं माषैकं लेहयेत्सदा । वह्निमूलं शृतं क्षीरैस्तु स्याद्गरनाशनम् ॥ २ ॥

गर नाशन रस—शुद्ध पारद, स्वर्णभस्म तथा शुद्ध स्वर्ण माक्षिक या भस्म को समान भाग लेवे तथा तीनों मिलकर जितना हो उसके समान शुद्ध गन्धक लेकर प्रथम पारद-गन्धक की कज्जली कर अन्य भस्मों को मिलाकर मर्दन कर घृत कुमारी के स्वरस में दिन भर ( चार पहर ) मर्दन करे। जब सूख जावें तब उसमें से एक माशा के प्रमाण से लेकर शर्करा तथा मधु मिलाकर चाटकर चित्रकमूल को दूध में पकाकर उस दूध का अनुपान करावे तो कृत्रिम विष नष्ट होता है ॥ १–२ ॥

नखदन्तविषचिकित्सा—

पिचुमन्दशमीवटकल्कयुतं क्वथितं जलमाशु विलोडनतः ।
नखदन्तविषाणि निहन्ति नृणां विषमाण्यखिलान्यपि सत्यमिदम् ॥ १ ॥

नखदन्त विष चिकित्सा—नीम, शमी, तथा वट की त्वचा को समान भाग लेकर कल्क कर उस कल्क से क्वाथ बनाकर उस क्वाथ को नखदन्त से क्षत स्थान पर गिराने ( धोने ) से शीघ्र ही सभी प्रकार के नखदन्त के विष निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं ॥ १ ॥

आखुविषचिकित्सा—

अगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः । लेपो जयत्याखुविषं कोशातक्यथ वा सिता ॥ १ ॥

गृहधूमादि योग—गृहधूम, मजीठ, हल्दी तथा सेंधानमक को समान भाग लेकर पीसकर लेप लगाने से मूसे के विष को नष्ट करता है अथवा कड़ुई तरोई को पीसकर लेप लगाने से या श्वेत शर्करा का लेप लगाने से मूसे का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

उरगेण विनिर्मुक्तनिर्मोकधूमसेवनात् । पथ्याशी त्रिदिनं धूमो भवेदाखुविषापहः ॥ २ ॥

सर्पनिर्मोक धूम—सर्प के शरीर से निकला हुआ केंचुल लेकर अग्नि पर देकर उसका धूम सेवन करने से तथा पथ्य भोजन कराने से तीन दिन में आखुविष नष्ट हो जाता है ॥ २ ॥

कुष्ठ वचामदनकोशातकीफलैस्तु संयोजितं सदिति चूर्णमिदं चतुर्णाम् ।
गोमूत्रपीतमखिलाखुविषं निहन्ति कोशातकीकथनमापिबतोऽथ वारि ॥ ३ ॥

कुष्ठादि चूर्ण—कूठ, वच, मैनफल तथा देवताली के फल को समान भाग लेकर चूर्ण गोमूत्र के अनुपान से पान करने से सब प्रकार के आखु विष नष्ट होता है, अथवा कड़ुई तरोई के क्वाथ को पान करने से सभी प्रकार के आखु विष नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

तुलसीरसेन गोदन्तशिलाभ्यां क्षुरेण प्रच्छिद्य लेपः कार्यो विषं नश्यति ॥ ४ ॥

तुलसी रस प्रयोग—तुलसी के रस के साथ गौ का दाँत तथा मैनशिल पीसकर मूसे के दंश स्थान को छुरे से छीलकर उस पर इसका लेप लगा देना चाहिये। इससे आखु विष नष्ट होता है ॥ ४ ॥

अथवा चित्रकमूलचूर्णं तैले विपाच्य मस्तके क्षुरेण प्रच्छिद्य शिरसि ब्रह्मरन्ध्रे मर्दं कुर्याद् आखुविषं नश्यति ॥ ५ ॥

चित्रक तैल—चित्रकमूल के चूर्ण द्वारा विधिपूर्वक तैल सिद्धकर मस्तक में छुरे से छीलकर शिर पर के ब्रह्मरन्ध्र पर इस तैल का मर्दन करने से आखुविष नष्ट होता है ॥ ५ ॥

चिञ्चाफलसमायुक्तं गृहधूमं पलार्धकम् । पुराणाज्येन सप्ताहं लिहेदाखुविषं हरेत् ॥ ६ ॥

चिञ्चाफलादि योग—इमली के फल का चूर्ण तथा गृहधूम दोनों आधा पल लेकर पुराने घृत के अनुपान से एक सप्ताह तक चाटने से आखुविष नष्ट होता है ॥ ६ ॥

रसा—

रसं गन्धं विषं चैव त्र्यूषणं टङ्कणं रोहिणी । पुनर्नवारसैर्मर्द्यं गोमूत्रे च दिनत्रयम् ॥ १ ॥
पिबेदाखुविषार्तानां सर्वं हरति तद्विषम् । विषदष्टोऽस्य पानं स्यादस्याद्याखुविषान्तकः ॥ २ ॥

आखुविषान्तक रस—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक शुद्ध मीठा विष, सोंठ, मरिच, पीपल शुद्ध टङ्कण और कुटकी को समान भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को

मिलाकर मर्दन कर गोमूत्र के अनुपान से दो गुञ्जा प्रमाण की मात्रा से पान करने से आखुविष पीड़ितों के सब प्रकार का विष नष्ट होता है तथा विषदंश से उत्पन्न हुए अन्यान्य विकारों को भी यह नष्ट करता है ॥ १-२ ॥

रसगन्धनिशाव्योषगृहधूमशिरीषजम्। बीजं दिनकरक्षीरैर्मर्दयित्वा विलेपयेत्।
विशेषान्मूषकविषं हन्यादन्यान्विषोद्भवान् ॥ ३ ॥

अन्य योग—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, हल्दी, त्रिकटु, गृहधूम और शिरीष का बीज प्रत्येक समान भाग लेकर पारद गन्धक की कज्जली कर फिर अन्य द्रव्यों को मिलाकर आक के दूध में मर्दन कर लेप करने से विशेष कर मूसे के विष तथा अन्यान्य विष जनित दोषों को भी नष्ट करता है ॥ ३ ॥

वृश्चिकविषचिकित्सा—

जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुतः। सुखोष्णो मधुना लेपो वृश्चिकस्य विषं हरेत् ॥१॥

जीरकादि लेप—जीरे का कल्क बनाकर उसमें घृत तथा सेंधानमक मिलाकर तथा मधु [मि]लाकर किञ्चित् उष्णकर लेप करने से वृश्चिक का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

[घ्र]माघ्राय मर्दितं सूर्यावर्तदलस्य तु। वृश्चिकेन नरो विद्धः क्षणाद्भवति निर्विषः ॥ २ ॥

सूर्यावर्त पत्र गन्ध—सूर्यावर्त ( सूर्यमुखी ) के पत्तों को मर्दन कर उसके गन्ध को सूंघने से [बि]च्छू के डंक से पीड़ित मनुष्य क्षण भर में निर्विष हो जाता है ॥ २ ॥

यः कासमर्दपत्रं वदने निक्षिप्य कर्णफूत्कारम्।
मनुजो ददाति शीघ्रं जयति हि विषमाशु वृश्चिकानां स ॥ १ ॥

कास मर्द पत्र प्रयोग—कसौंजर के पत्तों को मुख में चबाकर बिच्छू काटे हुए मनुष्य के कान फूंक देने से बिच्छू का विष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

[अज]ाक्षीरेण सपिष्टा शिरीषफलपिप्पली। उपकुर्वन्ति विषं हन्ति वृश्चिकस्य प्रलेपतः ॥ १ ॥

अजाक्षीरादि योग—शिरीष फल तथा पीपल समान भाग लेकर बकरी के दूध में पीसकर [ले]प करने से बिच्छू का विष नष्ट होता है ॥ १ ॥

[का]र्पासपत्रैः संपिष्टैराज्यलेपो विषापहः। वृश्चिकस्याथ वा वत्सनागलेपः प्रशस्यते ॥ २ ॥

कार्पास पत्रादि योग—कपास के पत्तों को घृत के साथ पीसकर लेप करने से बिच्छू का विष [न]ष्ट होता है अथवा वत्सनाभ विष को जल के साथ पीसकर लेप करने से बिच्छू के विष में [ला]भ होता है ॥ २ ॥

मनःशिलाकुष्ठकरञ्जबीजशिरीषकाश्मीरभवैः समांशैः।
विनिर्मिताऽऽस्ये विधृता च लिप्ता सद्यो हारिणी वृश्चिकवैकृतस्य ॥ ३ ॥

मन शिलादि गुटिका—शुद्ध मैनशिल कूठ, करञ्ज के बीज, शिरीष के बीज और गम्भार के [बी]ज को समान भाग लेकर कूट पीसकर विधिपूर्वक बटी बनाकर मुख में धारण करने से तथा [दं]श स्थान पर लेप करने से बिच्छू का विष नष्ट होता है ॥ ३ ॥

[मा]तुलुङ्गस्य मूलं तु रविवारे समुद्धरेत्। उत्तराभिमुखेनैव ह्रीमुच्चारयन्स्पृशेत् ॥ ४ ॥
[वा]माङ्गे दक्षिणे दष्टे वामदष्टे च दक्षिणे। सप्तधा मार्जनेनैव विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ५ ॥

मातुलुङ्ग मूल प्रयोग—बिजौरे नींबू के मूल को रविवार को उखाड़ लेवे तथा उत्तर दिशा में [मु]ख करके वृश्चिक दंश वाले मनुष्य को 'ओं ह्रीं' इस मन्त्र को उच्चारण करता हुआ स्पर्श करे। [य]दि दाहिने अंग में बिच्छू मारा हो तो बायां अंग स्पर्श करे तथा यदि बायें अंग में बिच्छू मारा [हो] तो दाहिने अंग का स्पर्श करे। इस प्रकार सात बार स्पर्श करने से ही बिच्छू का विष नष्ट [हो] जाता है ॥ ५ ॥

[श्व]ेतं पुनर्नवामूलं रविवारे समुद्धरेत्। कार्पासमूलं चर्वित्वा विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ६ ॥

श्वेत पुनर्नवा योग—रविवार को कपास के मूल को चबाकर श्वेत पुनर्नवा के मूल को उखाड़े [त]ो बिच्छू का विष नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

[ग्र]ाह्यं हंसपदीमूलं प्रातरादित्यवासरे। मुखैरतन्निष्फूतिः कर्णे विषं वृश्चिकजं हरेत् ॥ ७ ॥

हंसपदी मूल योग—रविवार को प्रातःकाल हंसपदी ( हंसराज ) के मूल को लेकर मुख में

चबाकर इसके रस को विच्छू मारे हुए मनुष्य के कान में डाले तो विच्छू का विष नष्ट हो जाता है॥
मन्त्रविधि —ओं हः फट् स्वाहा। अनेन मन्त्रेणापो मार्जयेत्।
'ओं ह्रः फट् स्वाहा' इस मंत्र से जल को छिड़कने से विच्छू का विष नष्ट होता है।

मन्त्र —

आदित्यरथवेगेन विष्णुबाणबलेन च। गरुडपक्षनिपातेन भूम्यां गच्छ महाविष॥ १॥
'आदित्यादि' इस मंत्र को पढ़कर जल का छींटा देने से अथवा इससे अभिमन्त्रित जल का छींटा देने से विच्छू का विष नष्ट होता है। मन्त्रार्थ—सूर्य के रथ के वेग के समान वेग से, विष्णु के बाण के बल से तथा गरुड के पंख की शीघ्रता के समान शीघ्रता से हे महाविष! तू भूमि में चला जा॥ १॥

पानीयपिष्टजेपालकल्कलेपेन सर्वथा। विषं वृश्चिकविद्धस्य भस्मीभवति तत्क्षणात्॥ २॥
जेपाल प्रयोग—जमालगोटे के बीज को जल के साथ पीसकर कल्क बनाकर लेप करने से विच्छू के डंक का विष उसी समय नष्ट हो जाता है॥ २॥

नवसागरहरिताले पिष्टे तोयेन लेपनाद्दंशे।
तत्क्षणमेव हि नश्यति वृश्चिकविद्धस्य दुर्धरक्लेशम्॥ ३॥

नवसागरादि लेप—नौसादर तथा हरताल को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर लेप करने से उसी क्षण विच्छू के दंश की भयंकर पीड़ा नष्ट हो जाती है॥ ३॥

उल्लीपाषाणमादायनिम्बुनीरेण संयुतम्। दंशस्थाने लेपनं स्याद्विषं वृश्चिकजं हरेत्॥ ४॥
उल्लीपाषाण लेप—संखिया विष को नीबू के स्वरस के साथ पीसकर लेप करने से विच्छू से उत्पन्न विष नष्ट होता है॥ ४॥

कीटजलौकादिविषचिकित्सा—

कटभ्यर्जुनशैरीषशेलुक्षीरिद्रुमत्वचाम्। कषायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः॥ १॥
कीट जलौकादि विष चिकित्सा—मालकांगनी, अर्जुन, शिरीस, लसोढ़ा और क्षीरी वृक्षों की त्वचा प्रत्येक समान भाग लेकर इनका विधिपूर्वक क्वाथ अथवा कल्क कर अथवा चूर्ण करके प्रयोग करने से कीट एवं लूता आदि से उत्पन्न व्रणों को नष्ट करता है॥ १॥

वचाहिङ्गुविडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली। पाठा प्रतिविषा व्योषं कश्यपेन विनिर्मितम्॥२॥
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत्।

दशाङ्ग अगद—वच, हींग शुद्ध, वायविडंग, सेंधानमक, गजपीपल, पुरइनपाढ़ी, अतीस, सोंठ, मरिच और पीपल को समान लेकर पीसकर पीने से सब प्रकार के कीट विष नष्ट होता है। यह योग कश्यप जी का बनाया हुआ है॥ २॥

कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम्॥ ३॥

जलौका विष चिकित्सा—कीट दंश की चिकित्सा के समान ही जलौका दंश की चिकित्सा करनी चाहिये॥ ३॥

वरटीविषचिकित्सा—

मरीचं नागरोपेतं सिन्धुसौवर्चलान्वितम्। फणिवल्लीरसैर्लेपाद्धन्ति सद्वरटीविषम्॥ १॥
वरटी विष चिकित्सा—मरिच, सोंठ, सेंधानमक और सोवर्चल नमक को समान भाग लेकर पान के स्वरस के साथ पीसकर अथवा इनका चूर्ण कर पान के स्वरस के साथ घोटकर लेप करने से वरटी के विष नष्ट होता है॥ १॥

लूताविषचिकित्सा—

रजनीद्वयमञ्जिष्ठापद्मकनागकेसरैः। शीताम्बुपिष्टैर्लेपः सद्यो लूताविषापहः॥ १॥
लूताविष चिकित्सा—हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, पदुमकाठ और नागकेसर को समान भाग लेकर शीतल जल के साथ पीसकर लेप करने से शीघ्र लूताविष नष्ट हो जाता है॥ १॥

गिरिकर्णीद्वयं शेलुः पाटला द्वे पुनर्नवे। कपित्थश्च शिरीषश्च लेपो लूताविषापहः॥ २॥
गिरिकर्णी आदि लेप—श्वेत, कृष्ण दोनों अपराजिता (पृथक् २) लसोढ़ा पाढ़र की छाल, रक्त श्वेत दोनों पुनर्नवा (पृथक् २) कैथ तथा शिरीष की त्वचा को लेकर जल के साथ पीसकर लेप करने से लूताविष नष्ट होता है॥ २॥

मण्डूकविषचिकित्सा—

शिरीषबीजैः कुलिशद्रुमस्य क्षीरेण पिष्टैः कृतलेपनानाम्।
विषं विनाशं भजति क्षणेन मण्डूकदष्टप्रभवं नराणाम्॥ १॥

मण्डूक विष चिकित्सा—शिरीष के बीज को थूहर के दूध के साथ पीसकर लेप करने से मण्डूक के दंश से उत्पन्न विष शीघ्र ही नष्ट हो जाता है॥ १॥

भृङ्गीमत्स्यविषचिकित्सा—

कृष्णश्वेतस्य निष्क्वाथे कल्को घृतविमिश्रितः। भृङ्गीमत्स्यविषं हन्ति धूमो वा बर्हिपक्षजः॥

भृङ्गी मत्स्य विष चिकित्सा—कृष्ण श्वेत के क्वाथ अथवा कल्क को घृत का प्रक्षेप देकर पान करने से भृङ्गी मत्स्य का विष नष्ट होता है। अथवा मोर के पंख का धूम देने से भी भृङ्गी मत्स्य का विष नष्ट होता है॥ २॥

शतपदीविषचिकित्सा—

लेपः प्रदीपतैलस्य खर्जूरविषनाशनः। हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनःशिलः॥ १॥

शतपदी विष चिकित्सा—जो दीपक कड़वे तेल से नित्य जलता है उसमें से कुछ जल कर बचे हुए तेल का लेप करने से खजूरे (बिच्छू एवं कानखजूरे) का विष नष्ट होता है अथवा हल्दी, दारुहल्दी, गेरू और मैनशिल को समान भाग लेकर जल से पीसकर लेप करने से भी खजूरे का विष नष्ट होता है॥ १॥

भ्रमरविषचिकित्सा—

नागर गृहकपोतपुरीषं बीजपूरकरसो हरितालम्।
सैन्धवं च विनिहन्ति विलेपाद्दाशु भृङ्गजनितं विषमेतत्॥ १॥

भ्रमर विष चिकित्सा—सोंठ, कपोत की विष्ठा, बिजौरे नीबू का रस, हरताल और सेंधानमक को समान भाग लेकर लेप बनाकर लेप करने से भौंरे के काटने से उत्पन्न विष को शीघ्र नष्ट करता है॥ १॥

पिपीलिकादिविषचिकित्सा—

पिपीलिकाभिर्दष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा। गोमूत्रेण वरालेपः कृष्णवल्मीकमृत्कृताः॥ १॥

पिपीलिकादि विष चिकित्सा—चींटी मक्षिका तथा मशक आदि के दंश होने पर आमला, हरड़, बहेड़ा तथा कृष्णवर्ण के वल्मीक की मिट्टी को समान भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर लेप करने से इन सबों के विष को नष्ट करता है॥ १॥

मक्षिकापिटिकाविषचिकित्सा—

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपद्यपि। रजन्यौ गैरिकं लेपो मक्षिकापिटकापहः॥ १॥

मक्षिका पिटिका विष चिकित्सा—श्वेत खदिर, राल, गोजिह्वा, हंसराज, हल्दी, दारुहल्दी, तथा गेरू को समान भाग लेकर जल के साथ पीसकर लेप लगाने से मक्खियों के काटने से उत्पन्न हुई पिडिकायें नष्ट होती हैं॥ १॥

श्वानविषचिकित्सा—

काकोदुम्बरिकामूलं धत्तूरफलसंयुतम्। पीतं तण्डुलतोयेन सारमेयविषापहम्॥ १॥

श्वान विष चिकित्सा—कठगूलर की जड़ तथा धतूरे के फल को चावल के धोवन के साथ पीसकर पान करने से कुक्कुर का विष नष्ट होता है॥ १॥

पारस्करफलं सेव्यं क्रमवृद्ध दिने दिने। सारमेयविषं हन्ति मासेन नहि संशयः॥ २॥

पारस्कर फल लेप—कुचला के फल को शुद्ध करके वृद्धिक्रम से (प्रतिदिन मात्रा बढ़ाकर) सेवन करने से एक मास में कुक्कुर का विष अवश्य नष्ट हो जाता है॥ २॥

पिष्ट्वाऽपामार्गमूलं तु कर्षकं मधुना लिहेत्। श्वदंष्ट्राजं विषं हन्यात्कुमारीदलसैन्धवम्॥३॥
दंशस्थाने बन्धयेत्तु त्रिदिनान्ते सुखावहम्॥ ४॥

अपामार्गमूल एवं कुमारी पत्रयोग—अपामार्ग की जड़ को पीसकर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से, मधु के साथ मिलाकर चाटने से कुक्कुर दंश से उत्पन्न विष नष्ट होता है तथा कुमारी के पत्ते में सेंधानमक का चूर्ण भर कर दंश स्थान पर बाँधने से विष नष्ट हो जाता है॥ ३-४॥

कस्तूरीवम्बुलपत्ररसो गोघृतेन पाने देयः शमो विषं नश्यति॥

कस्तूरी आदि योग—कस्तूरी तथा धतूरे के पत्ते का स्वरस घृत में मिलाकर पान करने से कुक्कुर का विष नष्ट होता है ॥

अथवा शतावरीमूलरसो गोदुग्धेन सह पाने श्वेयः शुनो विष नाशयति ॥

शतावर्यादि रस—अथवा शतावरी के मूल का रस गोदुग्ध के साथ पान करने से कुक्कुर का विष नष्ट होता है ॥

श्वानदष्टाविषं हन्ति लेपात्कुक्कुटविट्या ।

कुक्कुट विष्ठादि लेप—कुक्कुर के विष्ठा का लेप करने से श्वानदंश विष नष्ट होता है ।

गुडतैलार्कदुग्धं वा लेपाच्छ्वानविषं हरेत् ॥ ५ ॥

गुड़ तैलादि योग—पुराना गुड़, तेल तथा आक के दूध को समान लेकर मिलाकर लेप करने से श्वान का विष नष्ट होता है ॥ ५ ॥

रोगोन्मादितश्वानविषचिकित्सा—

तैलं तिलानां पललं गुडं च क्षीरं तथाऽऽर्कं सममेव पीतम् ।

आलर्कमुग्रं विषमाशु हन्ति सद्योमघं वायुरिवाभ्रवृन्दम् ॥ १ ॥

रोगोन्मादित श्वान विष चिकित्सा—तिल का तेल, तिल का कल्क, पुराना गुड़ तथा आक के दूध को समान भाग लेकर पान करने से कुक्कुर का सद्योजात उग्र विष शीघ्र इस प्रकार नष्ट होता है जिस प्रकार वायु के वेग से मेघ समूह नष्ट हो जाता है ॥ १ ॥

## अथ सामान्यविषचिकित्सा ।

सैन्धवं मरिचं तुल्यं निम्बबीजं समीकृतम् । मधुसर्पिर्युतं हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ १ ॥

सैन्धवादि योग—सेंधानमक तथा मरिच समान भाग और इसके समान नीम का बीज लेकर सबको एकत्र पीसकर मधु तथा गोघृत के अनुपान से सेवन करने से स्थावर तथा जंगम दोनों विष को नष्ट करता है ॥ १ ॥

आगारधूमो महिषाक्षयुक्तः सवाजिगन्धानततण्डुलीयः ।

गोमूत्रपिष्टोऽप्यगदो निहन्ति विषाणि च स्थावरजङ्गमानि ॥ २ ॥

आगार धूमादि योग—गृहधूम, महिषाक्षगुग्गुलु, असगन्ध, तगर और चौराई (शाक) को समान भाग लेकर गोमूत्र के साथ पीसकर सेवन करने से स्थावर तथा जङ्गम विष नष्ट होता है ॥

मयूरपिच्छेन च तण्डुलीयकं काकाण्डयुक्तं प्रपिबेज्जलेन ।

विषाणि च स्थावरजङ्गमानि सोपद्रवाण्यप्यचिरेण हन्ति ॥ ३ ॥

मयूरपिच्छादि योग—मोर के पंख, चौराई शाक और महानीम्ब (बकायन) के फल को समान लेकर पीसकर जल के साथ प्रचुर मात्रा में पान करने से उपद्रव सहित भी स्थावर तथा जङ्गम विष शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं ॥ ३ ॥

प्राचेतसं चूर्णम्—सप्तपर्णीकुटजारुसनिम्बादक्दामयोशीरनतानि ताप्यम् ।

रोध्रं विदुष्याश्मभवं नवाङ्गं प्राचेतसं चूर्णमुदाहरन्ति ॥ १ ॥

लोहेऽथ हैमे रजते वा स्थितं सदा सद्मनि भूपतीनाम् ।

क्षौद्रेण लीढं सचराचराणि विषाणि हन्याद्भुवि सामवानाम् ॥ २ ॥

प्राचेतस चूर्ण—छितवन कुरैया तथा नीम की त्वचा, नागरमोथा, कूट, खस, तगर, स्वर्णमाक्षिक भस्म, तथा लोध को समान लेकर विधिवत् चूर्ण करें। इन नौ औषधियों के योग से प्रस्तुत नवाङ्ग चूर्ण प्राचेतस चूर्ण कहा जाता है। इस चूर्ण को लोहा, सोना अथवा चाँदी के पात्र में भूपति लोग सदा अपने भवनों में रखते हैं। इस चूर्ण को मधु के साथ चाटने से संसार के स्थावर तथा जंगम समस्त विष को नष्ट करता है ॥ २ ॥

श्लेष्मातकत्वक्कटभी शुकूची सुगन्धमलम्बृहतीद्वयं च ।

धूपोऽगदः सर्वविषाणि हन्याद्वाल्मीकिनाम्ना मुनिना प्रदिष्टः ॥ ३ ॥

श्लेष्मातकाद्यगद—लिसोढ़े की त्वचा मकोयकी अथवा अपामार्ग मूल, गुरुच, अमलतास वृक्ष की त्वचा छोटी कटेरी और बड़ी कटेरी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण बनाकर सेवन करने से यह अगद सम्पूर्ण (स्थावर तथा जंगम) विष को नष्ट करता है। इस योग को वाल्मीकि मुनि ने निर्मित किया था ॥ ३ ॥

कृकलासपदं यस्तु सितवस्त्रेण वेष्टयेत्। बाहौ बद्ध्वा विषं हन्ति विषं भुक्तवा न बाधते॥

कृकलासपद बन्धन—गिरगिट के पैर को श्वेत वस्त्र में लपेट कर बाहों में बाँधने से सब प्रकार के विष नष्ट होते हैं तथा इसके प्रभाव से खाया हुआ विष भी बाधा नहीं पहुंचा सकता है॥

यः पिबति पुष्यदिवसे जलपिष्टं सितपुनर्नवामूलम्।
तत्समिधौ न वर्षं वृश्चिकभुजगाः प्रसर्पन्ति॥ ५॥

वृश्चिकापसारण—पुष्य नक्षत्र में श्वेत पुनर्नवा के मूल को जल के साथ पीसकर पीने से एक वर्ष तक बिच्छू तथा सर्प निकट में नहीं आते हैं॥ ५॥

मसूरं निम्बपत्राभ्यां पिबेन्मेषगते रवौ। अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषार्तस्य न संशयः॥ ६॥

मसूरादि योग—विषार्त मनुष्य मेष के सूर्य होने पर मसूर को नीम के दो पत्तों के साथ पीस कर पीवे तो निःसंशय एक वर्ष तक उसे विष का भय नहीं रहता है॥ ६॥

गरुडाञ्जनम्—

सूतं चूर्णमगारधूममभलं प्रत्येकगद्याणकं धत्तूरस्य रसेन मर्दितमतः पश्चाच्छतं भागुरम्।
जैपालं मरिचं चतुःशतयुतं बातारिबीजं लसद्दक्षं पष्टि सुखाश्रियं दृढतरैर्जम्बीरनीरैर्वरैः॥१॥

कुर्यान्मापवदाकृतिं च वटिकां छायासु शुष्कीकृतां
रात्र्यन्धं ग्रहसर्पसंधिसकलं शीतज्वरं दुर्धरम्।
सन्नेत्राञ्जनमात्रकं च भुवने चाजीर्णदोषापहं
नश्यन्ति प्रबलं महागुणयुतं श्रीपूज्यपादोदितम्॥ २॥

गरुडाञ्जन—शुद्ध पारद, चूना, गृहधूम और कपूर प्रत्येक ओषधियों को छे २ माशा लेकर एकत्र कर धतूरे के रस के साथ मर्दन कर उसमें ५० तोला कूट का चूर्ण तथा शुद्ध जैपाल बीज तथा मरिच के दाने ४०० एवं एरण्डबीज ६० लेकर भलीभाँति जम्बीरी नीबू के स्वरस में खरल कर उड़द के आकृति की (प्रमाण की) वटी बनाकर छाया में सुखाकर नेत्रों में अञ्जन करने से रात्र्यन्ध (रतौंधी), ग्रहरोग, सर्पविष, सम्पूर्ण संधिरोग, शीतज्वर जो भयङ्कर हो उसे नष्ट करता है तथा नेत्र में लगाने से ही अजीर्ण दोष को भी नष्ट करता है। यह अञ्जन बड़ा प्रबल है, महान् गुणों से युक्त है तथा पूज्यपाद महात्मा का कहा हुआ है॥ १-२॥

मृत्युञ्जयादिघृतम्—

अभयां रोचनां कुष्ठमर्कपुष्पं तमोत्पलम्। नलवेतसमूलानि सरलं सुरसां तथा॥ १॥
सकलिङ्गां समञ्जिष्ठामनन्तां च शतावरीम्। शृङ्गाटकं समङ्गां च पद्मकेसरमित्यपि॥ २॥
कल्कीकृत्य पचेत्सर्पिः पयो दद्याच्चतुर्गुणम्। सम्यक्पक्वेऽवतीर्णे च शीते तस्मिन्विनिक्षिपेत्॥
सर्पिस्तुल्यं भिषक्क्षौद्रं कृतरक्षं निधापयेत्। विषाणि हन्ति दुर्गाणि गरदोषकृतानि च॥४॥
स्पर्शाद्धन्ति विषं सर्वं गरैरुपहतत्वचम्। संयोगजं तमः कण्डूं मांससादं विसंज्ञताम्॥ ५॥
नाशयेदञ्जनाभ्यङ्गपानबस्तिषु योजितम्। सर्पकीटाखुलूतादिदष्टानां विषहृत्परम्॥ ६॥

मृत्युञ्जयादि घृत—हरड़, वंशलोचन, कूट, आक के पुष्प, नीलकमल, नल (नरकट) की जड़, बेत की जड़, सरलकाष्ठ का धूप, तुलसी, इन्द्रजौ, मजीठ, अनन्तमूल, शतावरी, सिंघाड़ा, मजीठ और पद्मकेसर को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर जितना ही उसके चतुर्गुण गोघृत तथा घृत से चतुर्गुण गोदुग्ध देकर घृतपाक की विधि से मन्दाग्नि पर घृत सिद्धकर उतार लेवे तथा शीतल हो जाने पर जितना घृत हो उसके समान प्रमाण से मधु मिलाकर यत्नपूर्वक रख देवे। इस घृत के सेवन से अत्यन्त कठिन विष तथा कृत्रिम विष भी नष्ट होते हैं। इसके स्पर्श से (शरीर पर मर्दन करने से) सभी प्रकार के गरदोष से आहत (विकृत) त्वचा पुनः उचित रूप में हो जाती है। इससे संयोगज विष नष्ट होता है तथा तमदोष (अंधकार दिखाई देना), कण्डूरोग, मांससाद (मांस की अवसन्नता विसंज्ञता चेतना हीनता या मोह) इन सभी रोगों को यह घृत अञ्जन, मर्दन, पान तथा बस्ति में प्रयोग करने से (यथायोग्य प्रयोग से) नष्ट करता है यह सर्प, कीट, आखु एवं लूतादि दंशकों के विष को नष्ट करने में अत्युत्तम है॥ १-६॥

पथ्यापथ्यम्—

शालयः षष्टिकाश्चैव कोरदूष्यप्रियङ्गवः। मुद्गा हरेणवस्तैलं सर्पिश्चापि भवं क्वचित्॥ १॥

वार्ताकं कुलकं धात्री जीवन्ती तण्डुलीयकम् । भोजनार्थे विषार्तानां हितं पटुषु सैन्धवम् ॥२॥

पथ्य—शाली धान का चावल, साठी का चावल, कोदो, प्रियङ्गु ( पुष्प ), मूंग, नये तिल का तैल, ( कहीं २ नवीन घृत भी लाभकर है ) एवं बैंगन, परवल, आमला, जीवन्ती शाक, चौराई शाक तथा सेंधानमक ये सब विषार्तों के लिये पथ्य हैं ॥ २ ॥

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुद्भयायासमैथुनम् । वर्जयेद्विषमुक्तोऽपि दिवास्वप्नं विशेषतः ॥ ३ ॥

अपथ्य—विष से मुक्त हो जाने पर भी विषार्त प्राणी को विरुद्ध भोजन, अध्यशन क्रोध, परिश्रम करना, मैथुन करना तथा विशेष करके दिन में शयन करना ये सब त्याग देना चाहिये ॥

इति विषप्रकरणं समाप्तम् ।

इति पूर्वखण्डः ।

---

# अथोत्तरखण्डः ।

अथ वाजीकराणि, वाजीकरणद्रव्यस्य लक्षणमाह—

यद्द्रव्यं पुरुषं कुर्याद्वाजीवत्सुरतक्षमम् । तद्वाजीकरणमाख्यातं मुनिभिर्भिषजां वरैः ॥ १ ॥

वाजीकरण द्रव्य के लक्षण—जिस द्रव्य के सेवन से घोड़े के समान मैथुन करने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है उसे मुनियों ने तथा श्रेष्ठ वैद्यों ने वाजीकरण नाम से कहा है ॥ १ ॥

प्रसङ्गात्क्लैब्यलक्षणं संख्या निदानं चाऽऽह—

क्लीबः स्यात्सुरताशक्तस्तद्भावः क्लैब्यमुच्यते । तच्च सप्तविधं प्रोक्तं निदानं तस्य कथ्यते ॥

क्लैब्य लक्षण—मैथुन में अशक्त को क्लीब ( नपुंसक ) कहते हैं, उसी क्लीब के भाव को क्लैब्य ( नपुंसकता ) कहते हैं। वह नपुंसकता सात प्रकार की कही गयी है, उसका निदान निम्न है ॥ १ ॥

तैस्तैर्भावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते । ध्वजः पतत्यतो नृणां क्लैब्यं समुपजायते ॥ २ ॥

द्वेष्यस्त्रीसम्प्रयोगाच्च क्लैब्यं तन्मानसं स्मृतम् ।

क्लैब्य का निदान—स्त्रीगमन करने की इच्छा वाले पुरुष के मन में मैथुनेच्छा होने पर अनेक कारणों से मैथुन नहीं करने से क्षोभ हो जाता है जिससे ध्वज ( लिङ्ग ) शिथिल हो जाता है। इसीसे मनुष्यों को नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है अथवा जिस स्त्री से द्वेष हो अथवा प्रीति नहीं हो ऐसी स्त्री से मैथुन करने से नपुंसकता हो जाती है। ऐसी नपुंसकता को मानस नपुंसकता कहते हैं ॥ २ ॥

कटुकाम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ॥ ३ ॥

पित्ताच्छुक्रक्षयो दृष्टः क्लैब्यं तस्मात्प्रजायते ।

अत्यन्त कटुरस युक्त एवं अम्लरस युक्त तथा अत्यन्त लवणरस युक्त पदार्थ के अतिसेवन से पित्त कुपित होकर शुक्र का नाश कर देता है जिससे नपुंसकता उत्पन्न हो जाती है ॥ ३ ॥

अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ॥ ४ ॥

ध्वजभङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ।

जो मनुष्य अत्यन्त मैथुन करता है तथा वाजीकरण ( वीर्य वर्द्धक ) औषधि नहीं खाता है उसे वीर्य के क्षय होने के कारण नपुंसकता हो जाती है ॥ ४ ॥

महता मेढ्ररोगेण चतुर्थी क्लीबता भवेत् ॥ ५ ॥

महान लिङ्ग के रोग ( उपदंशादि ) हो जाने पर क्लीबता हो जाती है ॥ ५ ॥

वीर्यवाहिशिराच्छेदान्मेहनानुन्नतिर्भवेत् ।

वीर्यवाही शिराओं के कटने से लिङ्ग का उत्थान नहीं होने पर नपुंसकता हो जाती है ॥

बलिनः क्षुब्धमनसो निरोधाद्ब्रह्मचर्यतः ॥ ६ ॥

षष्ठं क्लैब्यं स्मृतं तत्तु शुक्रस्तम्भनिमित्तकम् ।

बलवान् मनुष्य का मन मैथुनेच्छा से क्षुब्ध हो और वह ब्रह्मचर्य से ( ब्रह्मचर्य भंग होने के भय से ) मैथुनेच्छा का अवरोधकर मैथुन नहीं करे तो उससे वीर्यावरोधक कारण छठी नपुंसकता हो जाती है ॥ ६ ॥

जन्मप्रभृति यत्क्लैब्यं सहजं तद्धि सप्तमम् ॥ ७ ॥

जन्मप्रभृति ( आसेक्यादि ) नपुंसकता स्वाभाविक है उसे सातवीं सहज नपुंसकता कहते हैं ॥

असाध्यं क्लैब्यमाह—

असाध्यं सहजं क्लैब्यं मर्मच्छेदाच्च यद्भवेत् । साध्यानामवशिष्टानां कार्यो वाजीकरो विधिः ॥

साध्य तथा असाध्य नपुंसकता—जो जन्म से उत्पन्न आसेक्यादि नपुंसकता है वह असाध्य है तथा मर्मस्थानों के छेदन हो जाने से ( वीर्यवाही शिरा आदि के कट जाने से ) जो नपुंसकता होती है वह भी असाध्य है। शेष पांच प्रकार की जो नपुंसकता है वह साध्य है तथा उसमें वाजीकरण चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

क्लैब्यस्य चिकित्सा—

क्लैब्यानामिह साध्यानां कार्यो हेतुविपर्ययः । मुख्यं चिकित्सितं यस्मान्निदानपरिवर्जनम् ॥

नपुंसकता चिकित्सा—साध्य नपुंसकता में कारण के विपरीत कार्य करना चाहिये अर्थात् जिन २ कारणों से नपुंसकता उत्पन्न हुई हो उन २ कारणों को दूर कर देना चाहिये यही उसकी मुख्य चिकित्सा है। इससे स्वयं नपुंसकता नष्ट हो जावेगी तथा पुरुषार्थ हो जावेगा ॥ १ ॥

क्लैब्यस्य चिकित्सायां वाजीकरणविधिमाह—

नरो वाजीकरान्योगान्सम्यक्शुद्धो निरामयः । सप्तत्यन्तं प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥१॥

नपुंसक मनुष्य वाजीकरण योग से भलीभाँति शरीर को वमन विरेचन द्वारा शुद्ध कर तथा रोग रहित कर ( जो अन्यान्य रोग हों उन्हें भी नष्ट कर ) सोलहवर्ष से ऊपर तथा सत्तर वर्ष पर्यन्त तक की आयु तक करे ॥ १ ॥

न चैव षोडशाद्वर्षात्सप्तत्याः परतो न च । आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥२॥

आयुष्य की कामना करनेवाला पुरुष सोलह वर्ष के पूर्व तथा सत्तर वर्ष के पश्चात् स्त्रियों से संयोग ( मैथुन ) नहीं करे ॥ २ ॥

क्षयवृद्ध्युपदंशाद्या रोगाश्चातीव दुर्जयाः । अकालमरणं च स्याद्भजतः स्त्रियमन्यथा ॥ ३ ॥

बाल्यावस्था तथा वृद्धावस्था में स्त्री सेवन से हानि—सोलह वर्ष के पूर्व तथा सत्तर वर्ष के पश्चात् जो मनुष्य मैथुन करता है उसे क्षय, वृद्धि तथा उपदंशादि अत्यन्त भयकर रोग हो जाते हैं तथा अकाल मृत्यु भी होती है ॥ ३ ॥

स्त्रीभजनविधिर्विस्तरतो रात्रिचर्यायां लिखितोऽस्ति तत्र द्रष्टव्यः ।

स्त्री संभोग की विधि विस्तार पूर्वक रात्रिचर्या में लिखा गया है अतः वहीं देखना चाहिये ॥

विलासिनामर्थवतां रूपयौवनशालिनाम् । नराणां बहुभार्याणां विधिर्वाजीकरो हितः ॥ ४ ॥

स्थविराणां रिरंसूनां स्त्रीणां वाल्लभ्यमिच्छताम् ।

योषित्प्रसङ्गात्क्षीणानां क्लीबानामल्परेतसाम् ॥ ५ ॥

हिता वाजीकरा योगाः प्रीत्यपत्यबलप्रदाः । एतेऽपि पुष्टदेहानां सेव्याः कालाद्यपेक्षया ॥६॥

वाजीकरण—जो पुरुष विलासी हों ( अधिक स्त्री संभोग की इच्छा करनेवाले हों ), धनवान् हों, रूप-यौवन से सम्पन्न हों तथा जिन्हें बहुत सी स्त्रियां हों अथवा जो वृद्ध हो रहे हों किन्तु मैथुन की इच्छा करते हों तथा जो स्त्रियों के प्रिय होने की इच्छा रखते हों, जो स्त्री प्रसंग करने के कारण क्षीण हो गये हों तथा जो वीर्याल्पता के कारण नपुंसक हों उनके लिये वाजीकरण योग हितकर है। वाजीकरण योग से स्त्रियों से प्रीति बढ़ती है सन्तान होती है तथा बल बढ़ता है। इस वाजीकरण योग को समयानुसार पुष्ट शरीर वाले को भी सेवन करना चाहिये ॥ ४-६ ॥

वाजीकराण्याह—भोजनानि विचित्राणि पानानि विविधानि च ।

वाचः श्रोत्राभिरामाश्च त्वचः स्पर्शसुखास्तथा ॥ १ ॥

यामिनी सेन्दुतिलका कामिनी नवयौवना । गीतं श्रोत्रमनोहारि ताम्बूलं मदिरा स्रजः ॥२॥

गन्धा मनोज्ञा रूपाणि चित्राण्युपवनानि च । मनसश्चाप्रतीघातो वाजीकुर्वन्ति मानवम् ॥

विचित्र प्रकार के ( अनेक पौष्टिक पदार्थों से सिद्ध ) भोजन, अनेक विधि से प्रस्तुत पेय, कानों को प्रिय लगनेवाली बातों को करनेवाली तथा जिनके स्पर्श से त्वचा को सुख प्राप्त हो ऐसी सुन्दर स्त्रियां, चांदनी रात, नवयौवना स्त्री कर्ण को मनोहर लगने वाली, गीत अथवा

ताम्बूल भक्षण, मदिरा पान, पुष्पमाला धारण, मन मोहक सुगन्धित द्रव्य, अनेक प्रकार के सुन्दर रूप, वाटिका भ्रमण, मन में किसी प्रकार आघात नहीं होना ( प्रसन्न रहना ) ये सभी वाजीकरण हैं । अर्थात् इन सभी के प्रयोग से वाजीकरण होता है ॥ १-२ ॥

पायसम्—

गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् । तथा गोधूमचूर्णं च सिताम‍धुघृतान्वितम् ॥
भुक्त्वा हृष्यति जीर्णोऽपि दशदारान्व्रजत्यपि ॥ १ ॥

जिस गाय के बछड़े बड़े हो गये हों ( बकेना गाय ) उनके दूध में सिद्ध पायस तथा इसी प्रकार के दूध में पकाया हुआ एवं शर्करा, मधु तथा घृत से युक्त गेहूं का चूर्ण ( आटा ) भोजन करके जीर्ण ( वृद्ध ) पुरुष भी मैथुन शक्ति को प्राप्त होता है तथा दस स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है ॥ १ ॥

रसाला—दध्नोऽर्धाढकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः
प्रस्थं चौद्रपलं पलं च हविषः शुण्ठ्याश्चतुर्माषकान् ।
तद्वन्माषचतुष्टयं मरिचतः कर्षं लवङ्गं तथा
एत्वा शुक्लपटे शनैः करतलेनोन्मथ्य विस्रावयेत् ॥ १ ॥
मृद्भाण्डे मृगनाभिचन्दनरसप्रलेपेऽगुरुधूपिते
कर्पूरेण सुगन्धितं तदखिलं संलोड्य संस्थापयेत् ।
स्वस्यार्थे मधुरेश्वरेण रचिता प्रिया रसाला स्वयं
भोक्तुं मन्मथदीपनी सुखकरी कान्तेव नित्यं प्रिया ॥ २ ॥

रसाला योग—दही आधा आढक ( दो प्रस्थ ) जो किंचित् अम्ल हो तथा मधुर हो, शर्करा श्वेत एक प्रस्थ, मधु एक पल, घृत एक पल, सोंठ का चूर्ण चार माशा, मरिच का चूर्ण चार माशा और लौंग का चूर्ण एक कर्ष लेकर सबको एकत्र कर श्वेत वस्त्र में रखकर शनैः २ हाथों से मलकर छान लेवे पश्चात् एक मिट्टी के पात्र में कस्तूरी तथा चन्दन का रस लेकर लेप कर मर्दन कर तथा उस पात्र को अगर से धूपित कर पुनः उपरोक्त दही में कपूर मिलाकर मथकर सुगन्धित कर उस पात्र में रख देवे । इसे रसाला कहते हैं । इस रसाला को मथुरा के राजा ने अपने लिये स्वयं बनाया था । इस रसाला के सेवन करने से कामोद्दीपन होता है, सुख होता है तथा यह स्त्री की भाँति नित्य प्रिय लगती है । अर्थात् इससे मन प्रसन्न रहता है ॥ १-२ ॥

शतावर्यादिचूर्णम्—शतावरीनागबलाविदारीविकण्टकैरामलकीफलान्वितैः ।
विचूर्णितैः पञ्चभिरेकशः पृथक्पृथक्प्रलिप्तैर्वा घृतमाक्षिकप्लुतैः ॥ १ ॥
इति प्रयोगाः षडिमे भिषग्वरैरुदीरिताः शर्करया समन्विताः ।
नृणां मदान्धप्रमदोपसर्पिणां प्रधानधातोरतिरेककारणम् ॥ २ ॥

शतावर्यादि चूर्ण—शतावरी, नागबला ( ककही ), विदारीकन्द, गोखरू, आँवले का फल इन पांचों को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर पांचों एकत्र पृथक् २ घृत तथा मधु मिलाकर प्रयोग किया जावे तथा इसमें शर्करा मिलाकर प्रयोग किया जावे तो ये प्रयोग मदोन्मत्त स्त्रियों के भोगने की इच्छा करनेवाले पुरुषों के प्रधान धातु ( वीर्य ) को बढ़ाते हैं ॥ १-२ ॥

मुसल्यादिचूर्णम्—मुसलिकोकिलगोक्षुरचूर्णकं त्रिद्विविशोधनशममितं पचेत् ।
पयसि प्रातरिदं यदि कोष्णके सितया टङ्कणषट्कया तु तत् ॥ १ ॥
त्रिगुणसप्तदिनं परिमन्त्र्यमवत्सरवर्या अपि काङ्क्षति कामिनीम् ।
किमिह चित्रमुदितयौवनः शशिमुखीं शयनात्र जिहासति ॥ २ ॥

मुसल्यादि चूर्ण—श्वेत मुसली १ भाग, तथा मखाना दो भाग और गोखरू तीन भाग लेकर चूर्णकर या यवकुट कर दूध के साथ पकाकर तथा इसमें छै टङ्क श्वेत शर्करा भी मिलाकर तीन सप्ताह तक प्रातःकाल कुछ उष्ण रहते सेवन करने से छौ वर्ष की आयुवाला वृद्ध पुरुष भी कामिनी की इच्छा करता है । यदि इसका सेवन करनेवाला युवा पुरुष शय्या पर से चन्द्रमुखी स्त्री को नहीं छोड़े तो इसमें विचित्रता ही क्या है ॥ १-२ ॥

वानरीगुटिका—बीजानि हि कपिकच्छ्वाः कुडवमितानि स्वेदयेच्छनकैः ।
प्रस्थे गोसवदुग्धे दुग्धं यावद्भवेद्गाढम् ॥ १ ॥
त्वग्रहितानि च कृत्वा सूक्ष्मं सम्पेषयेत्तानि । पिष्टिकाया गुडिकाः कृत्वा गव्ये पचेदाज्ये ॥
द्विगुणितशर्करया ता वटिका सम्यक्तया लेप्याः ।
वटिका माक्षिकमध्ये मज्जनयोग्येऽस्थिताः स्थाप्याः ॥ २ ॥
पञ्चटङ्कमितास्तास्तु प्रातः सायं च भक्षयेत् । अनेन शीघ्रद्रावी यो यस्य स्यात्पतितध्वजः ॥
सोऽपि प्राप्नोति सुरते सामर्थ्यमति वाजिवत् । नानेन सदृशं किंचिद्द्रव्यं वाजीकरं परम् ॥

वानरी गुटिका—कपिकच्छू (केवांच) के बीजों को एक कुडव लेकर एक प्रस्थ गोदुग्ध में मिलाकर धीरे २ तब तक पाक करे जब तक दूध गाढ़ा (खोया) न हो जावे, पश्चात् उतार कर शीतल होने पर उसमें से बीजों को निकाल कर उनकी त्वचा (छिल्का) को पृथक् करके भली भाँति सूक्ष्म पीस लेवे तथा गाढ़ दूध (खोया) को भी उसमें मिलाकर उस पिसे हुए की वटिका बनाकर गोघृत में पकावे। पश्चात् जितनी वटिका हो उसके दुगुना श्वेत शर्करा का पाक करके (चाशनी गाढ़ी करके) वटिका में उसे लपेट देवे, पुनः इन वटिकाओं को उनके पूर्णरूप से डूबने योग्य प्रमाण मधु में रख देवे। इसमें से पाँच टङ्क के प्रमाण की मात्रा से प्रातः और सायं भक्षण करे। इसके सेवन से जो शीघ्र द्रावी है (जिन्हें शीघ्रपात का रोग है) तथा जिनका लिंग नहीं उठता है (नपुंसक हैं) वे भी मैथुन कार्य में घोड़े के समान सामर्थ्य को प्राप्त करते हैं। इसके समान अत्यन्त वाजीकर कोई द्रव्य नहीं है ॥ १-५ ॥

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् । यः खादेत्स पुमान्गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ १ ॥

बस्ताण्डादि प्रयोग—बकरे के अण्डकोषों को दूध में पकाकर उसी दूध में तिल को अनेक बार भावित कर खाने से सौ स्त्रियों को भोगने की शक्ति प्राप्त होती है तथा प्रत्येक संभोग में अपूर्वता प्राप्त होती है ॥ १ ॥

पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते । कर्कटस्याथ वा खादेत्तत्तु वाजीकरं भृशम् ॥ २ ॥

पिप्पल्यादि योग—बकरे के अण्डकोष को घृत में सिद्ध कर उसमें पीपल का चूर्ण तथा सैंधानमक खाने से, अथवा कछुए के अण्डकोष अथवा मांस को घृत में सिद्ध कर उसमें पीपल का चूर्ण तथा सैंधानमक मिलाकर खाने से अत्यन्त वाजीकर होता है ॥ २ ॥

शतावरीगोक्षुरकाश्वगन्धापुनर्नवानागबला मुसल्या ।
घृतेन खण्डेन तु भक्षणीयाः क्षीणा नरा नागबला भवन्ति ॥ ३ ॥

शतावर्यादि योग—शतावरी, गोखरू, असगन्ध, पुनर्नवा, नागबला तथा मुसली (श्वेत) को समान लेकर चूर्ण कर गोघृत तथा शर्करा के अनुपान से भक्षण करने से, क्षीण मनुष्य भी हाथी के समान बलवान हो जाता है ॥ ३ ॥

विदारीकन्दचूर्णं तु घृतेन पयसा नरः । उदुम्बरसमं खादेद्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ४ ॥

विदारी कन्दचूर्ण—विदारीकन्द के चूर्ण को एक उदुम्बर फल के प्रमाण की मात्रा लेकर घृत मिलाकर दूध के अनुपान से खाने से वृद्ध भी तरुण के समान सामर्थ्यवान् हो जाता है ॥ ४ ॥

सिता मधु घृतं क्षीरं पलाण्डुरससंयुतम् । पिबेन्नरो भवेत्कामी वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ५ ॥

सितापलाण्डु रस—श्वेत शर्करा, मधु, घृत तथा पलाण्डु स्वरस को दूध में मिलाकर पान करने से मनुष्य कामी हो जाता है तथा वृद्ध सेवन करे तो वह युवा के समान हो जाता है। अर्थात् वृद्ध पुरुष इसके सेवन से युवावस्था को अनुभव करने लगता है तथा कामी हो जाता है ॥

गोक्षुरचूर्णम्—शमयति गोक्षुरचूर्णं छागक्षीरेण साधितं समधु ।
शुक्रक्षयपतितं षाण्ढ्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥ १ ॥

गोक्षुर चूर्ण—गोखरू के चूर्ण को बकरी के दूध में पकाकर शीतल होने पर उसमें मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से कुप्रयोगों से (अतिमैथुन या द्वेषी के साथ मैथुन या अप्राकृतिक मैथुन आदि से) उत्पन्न नपुंसकता नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

अमृतभल्लातक—

भल्लातकानां पवनोपितानां सदम्बुतानां च यदाढकं स्यात् ।

सुपक्वबृन्तच्युतमाढकं च भल्लातकानां वरमम्बरेण ।
घृष्टेष्टिकाचूर्णकणैर्जलैश्च प्रक्षाल्य संशोष्य च मारुतेन ॥ १ ॥
शुष्काणि तानि द्विदलीकृतानि विपाचयेदप्सु चतुर्गुणासु ।
तत्पादशेषं पुनरेव शीतं क्षीरेण तुल्येन विपाचयेत्तत् ॥ २ ॥
तदर्धया शर्करया विमिश्रं पश्चात्तरङ्गेनोन्मथनं विधाय ।
सञ्चूर्ण्य त्रैफलचन्द्रमांसी त्रिवृच्च चाक्षीलखदिराम्रत च ॥ ३ ॥
सचन्दनाकल्लकणाकषायं सदेवपुष्पं मुसलीद्वयं च ।
कङ्कोलमोचाह्वयदीप्यपुष्पं नतं समातङ्गकणा विदारी ॥ ४ ॥
जातीफलं मुस्तकजातिपत्री कुबेरजीरागरुसाब्धिशोषम् ।
मेदाह्वयं लोहरसेन्द्रवङ्गमभ्रं तथा कुङ्कुमकं च कर्षम् ॥ ५ ॥
तत्सप्तरात्रादतिजातवीर्यं सुधारसादप्यधिकं वदन्ति ।
प्रातः प्रबुद्धः कृतदेवकार्यो मात्रां भजेत्सात्म्यशरीरयोग्याम् ॥ ६ ॥
न चानुपाने परिहार्यमस्ति न चाऽऽतपे माध्वनि मैथुने च ।
यथेष्टचेष्टो विचरेत्प्रयोगवरो भवेत्काञ्चनराशिगौरः ॥ ७ ॥
अनेन मेधानरसिंहवीर्यो दृढेन्द्रियो व्याधिगतः सुबुद्धिः ।
दन्ता विशीर्णाः पुनरेव स्निग्धाः केशाश्च शुभ्राः पुनरेव कृष्णाः ॥ ८ ॥
नीलाञ्जनालिप्रतिमा भवन्ति त्वचो विशीर्णाः पुनरेव भव्याः ।
विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि कृम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि कुष्ठी ॥ ९ ॥
शुष्कः पुनः स्याद्ववृक्षशाखस्तत्क्ष्मेया भाति नवाम्बुसिक्तः ।
बृहस्पतेरप्यधिको हि बुद्ध्या ग्रन्थं विशालं च नवं करोति ॥ १० ॥
गृह्णाति सद्यो न च विस्मृतिं च करोति कल्पायुरनल्पवीर्यम् ।
कुर्वन्निमं कल्पमनल्पबुद्धिर्जीवत्यरो वर्षशतं सुखी स्यात् ॥ ११ ॥

अमृत भल्लातक—भल्लातक ( भिलावे ) का फल जो वायु के लगने से वृक्ष से गिरा हुआ हो ऐसा ( पूर्ण पका हुआ ) एक आढक ( चार प्रस्थ ) लेकर ईंट के चूर्ण ( रोड़े ) के कणों से भली भाँति घिस कर जल से धोकर वायु में सुखा लेवे। सूख जाने पर उनको दो २ खण्ड करके चतुर्गुण जल में डालकर क्वाथ की विधि से पाक करे जब चतुर्थांश शेष रह जावे तब उतार-छानकर रख लेवे, जब शीतल हो जाय तब पुन जल के समान दूध में अवलेह पाक की विधि से पाक करे तथा उस क्वाथ के आधा श्वेत शर्करा मिलाकर काठ की कलछी से मर्दन कर आसन्न पाक होने पर सोंठ, मरिच, पीपल, आँवला, हरड़, बहेड़ा, कपूर, जटामांसी, निशोथ, वंशलोचन, खैर, शुद्ध मीठा विष, चन्दन, अकरकरा, पीपल, कबाब चीनी, लवंग, श्वेतमूसली, श्याममूसली, कङ्कोल, मोचरस, अजवाइन, भनमोरा, तगर, गजपीपल, विदारीकन्द, जायफर, नागरमोथा, जावित्री, तून की त्वचा, श्वेत जीरा, अगर, समुद्रशोष, मेदा, महामेदा, लोहभस्म, पारदभस्म या रससिन्दूर, वङ्गभस्म, अभ्रकभस्म तथा कुङ्कुम ( काश्मीरी केशर ) प्रत्येक द्रव्य का एक २ कर्ष चूर्ण लेकर उसमें भलीभाँति मर्दन कर सात दिन तक पड़ा रहने दे, इस सात दिन में उसमें अत्यन्त वीर्य ( पौरुष ) हो जाता है। इसको सुधा रस से भी अधिक गुणकारी कहा गया है। इसे प्रातः काल उठकर नैत्यिक कृत्य के पश्चात् देवकार्य ( ईश्वर चिन्तनादि ) करके शरीर के योग्य सात्म्य मात्रा से सेवन करना चाहिये। इसके लिये कोई अनुपान नहीं है इसके सेवन के समय आतप, मार्गगमन, मैथुन आदि का अवरोध नहीं है। मनुष्य इच्छा के अनुकूल कार्य करता हुआ इसका प्रयोग करे। इसके सेवन से मनुष्य सोने की राशि के समान गौरवर्ण का हो जाता है, इससे मेधा बढ़ती है, नरसिंह के समान पराक्रम होता है, इन्द्रियां दृढ़ होती हैं, व्याधियां नष्ट हो जाती हैं, बुद्धि अच्छी होती है, शीर्ण दाँत ( जो जीर्ण हो गये हों ) भी स्निग्ध हो जाते हैं, श्वेत हुए केश पुनः कृष्ण हो जाते हैं, तथा नीलाञ्जन अथवा भ्रमर के समान कृष्ण ( केश ) हो जाते हैं, जीर्ण त्वचा पुनः भव्य ( सुन्दर ) हो जाती है, जिसके कान, अङ्गुली, और नासिका, विशीर्ण ( गलित ) हो गये हों एवं उनमें कृमि उत्पन्न हो गये हों तथा गला फट

गया हो (स्वर भेद हो गया हो) ऐसे कुष्ठी तथा अत्यन्त शरीर जिसका सड़ गया हो ऐसा रोगी पुनः इस प्रकार हरा-भरा स्वस्थ हो जाता है जिस प्रकार झुलसे हुए मूल एवं शाखा वाला वृक्ष नवीन जल के सिंचन से हराभरा हो जाता है और बृहस्पति से भी अधिक बुद्धि वाला होकर विशाल एवं नवीन ग्रन्थ की रचना कर सकता है। बड़े २ ग्रन्थों को शीघ्र स्मरण कर सकता है तथा उसे विस्मृत नहीं होता, उसकी आयु कल्प के समान होती है तथा वह अधिक वीर्यवान होता है। इस अमृत भल्लातक कल्प का सेवन करता हुआ पुरुष अत्यन्त बुद्धिमान एवं सुखपूर्वक सौ वर्षों तक जीवित रहता है॥ ९-११॥

केशरपाक —त्र्योषं चातुर्जातफलत्रिकं च लवङ्गकृष्णागुरुचन्दनं च।
इक्षुरबीजं करहाटकं च जातीफलं मर्कटिकाफलं च॥ १॥
शाल्मल्यनिर्यासबलाश्वगन्धागोक्षुरबीजं मुसली कृमिघ्नम्।
समुद्रशोषं विषपञ्जरं च पुष्पं सुजात्युद्भयकट्वबीजम्॥ २॥
सर्वं समं योज्य सुकुङ्कुमं च सुचूर्णितं विंशतिभागयुक्तम्।
कस्तूरिकाषोडशभागचूर्णं खण्डं चतुर्भागयुतं विपक्वम्॥ ३॥
वङ्गं रसेन्द्रं गगनं सुलोहं कान्तं हि ताम्रं रविभागयुक्तम्।
दलानि हेम्नो द्विशतानि तस्या तथैव देयानि च राजतानि।
एकत्र सर्वं विनिधाय वैद्यो जयाष्टभागं विदधीत लेहम्॥ ४॥

जातीफलप्रमाणेन भक्षयेत्प्रातरुत्थितः। वीर्यवृद्धिं करोत्येव सर्वव्याधिविनाशनः॥ ५॥
शतं च रमते स्त्रीणां कामतुल्यो भवेन्नरः। सर्वान्वातामयान्हन्ति प्रवृद्धं वातशोणितम्॥६॥
अस्थिरोगं शिरोरोगं सन्धिरोगं च नाशयेत्। अस्य सेवनमात्रेण वृद्धोऽपि तरुणायते॥ ७॥
धन्यं यशस्करं सम्यगायुरारोग्यवर्धनम्। काश्मीरकावलेहोऽयं बलकान्तिविवर्धनः॥ ८॥

केशर पाक—सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी, इलायची, तेजपात, नागकेसर, हरड़, बहेड़ा, आँमला, लवंग, पीपल, अगर, लालचन्दन, तालमखाना के बीज, मैनफल अथवा अकरकरा, जायफर, कपिकच्छू के फल (बीज) मोचरस, खरिआरा, असगन्ध, गोखरू के बीज, मूसली, वायविडंग, समुद्रशोष, विषपञ्जर, नागकेसर, चमेली और आम की गुठली के चूर्ण प्रत्येक समान भाग लेकर उसमें काश्मीरी केशर का चूर्ण बीस भाग, कस्तूरी सोलह भाग, श्वेत शर्करा (की चासनी) चार भाग, वंगभस्म, पारदभस्म वा रससिन्दूर, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, कान्तभस्म और ताम्रभस्म प्रत्येक एक २ भाग, स्वर्णदल (सोने के वर्क पत्र) दो सौ, रजतदल (चाँदी के वर्क) दो सौ लेकर एकत्र कर उसमें आठ भाग शुद्ध भांग का चूर्ण मिलाकर विधिपूर्वक अवलेह सिद्धकर जायफर के समान प्रमाण की मात्रा से प्रातःकाल भक्षण करने से यह अवलेह वीर्य की वृद्धि करता है तथा सब रोगों को नष्ट करता है। इससे सौ स्त्रियों से रमण करने की शक्ति होती है एवं वह मनुष्य कामदेव के समान हो जाता है। यह पाक सभी प्रकार के वात रोगों को नष्ट करता है, बढ़े हुए वातरक्त को नष्ट करता है, अस्थि सम्बन्धी रोग, शिरोरोग एवं सन्धिगत रोगों को नष्ट करता है। इसके सेवन मात्र से ही वृद्ध भी तरुण के समान हो जाता है। यह धन देने वाला, यश करने वाला, आयु तथा आरोग्यता को भलीभाँति बढ़ाने वाला तथा यह काश्मीरी (केशर) का अवलेह (केशर पाक) बल एवं कान्ति को बढ़ाने वाला है॥ १-८॥

रतिवृद्धिकरो मोदकः—

गोक्षुरेक्षुरबीजानि वाजिगन्धा शतावरी। मुसली वानरीबीजं यष्टी नागबला बला॥ १॥
एषां चूर्णं दुग्धसिद्धं गव्येनाऽऽज्येन भर्जितम्। सितया मोदकं कृत्वा भक्ष्यं वाजीकरं परम्॥
चूर्णादष्टगुणं क्षीरं घृतं चूर्णसमं स्मृतम्। सर्वतो द्विगुणं खण्डं खादेदग्निबलं यथा॥ ३॥
वाजीकराणि भूरीणि संगृह्य रचितो यतः। तस्माद्बहुषु योगेषु योगोऽयं प्रवरो मतः॥ ४॥

रति वृद्धि कर मोदक—गोखरू बीज, तालमखाना बीज, असगन्ध, शतावरी, मुसली, केवाँच के बीज, जेठीमधु ककही और खरिआरा को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर सब औषधियों का चूर्ण जितना हो उसके अठगुना दुग्ध तथा चूर्ण के समान घृत तथा सब मिलकर जितना हो उसके दुगुना शर्करा मिलाकर मोदक प्रस्तुत कर अग्निबल के अनुसार मात्रा से खाना चाहिये।

यह योग बहुत सी बाजीकरण औषधियों को एकत्र संग्रह करके निर्मित किया गया है, इसलिये यह योग बहुत से अन्य योगों से श्रेष्ठ है ॥ १-४ ॥

रतिवल्लभाख्यपूगपाकः—

पूगं दक्षिणदेशजं दशपलोन्मानं भृशं कर्त्तयेत्
तत्स्विन्नं जलयोगतो मृदुतरं सङ्कुट्य चूर्णीकृतम् ।
तच्चूर्णं पटशोधितं वसुगुणे गोदुग्धदुग्धे पचेद्
गव्याज्याञ्जलिसंयुतेऽतिनिबिडे दद्यात्तुलार्धं सिताम् ॥ १ ॥
पक्वे तज्ज्वलमात्रिपर्शिं प्रति मयेत्तस्मिन्पुनः प्रक्षिपेद्
द्रव्याणां तदुदीरयामि बहुला दृष्ट्वाऽऽदृतास्संहिताः ।
एला नागबला बला सचपला जातीफलं लिङ्गिका
जातीपत्रकपत्रपत्रकयुगं सार्ध त्वचा संयुतम् ॥ २ ॥
विश्वावीरणवारिवारिदवरा धात्री घरी चाजरी
शृङ्गा सेहुरगोक्षुराश्च महती खर्जूरिका चीरिका ।
धान्याकं सकसेरुकं समधुकं शृङ्गाटकं जीरकं
पृथ्वीकाश्च यवानिका वरटिका मांसी मिसी मेथिका ॥ ३ ॥
कन्देषु विदारिकाश्च मुसली गन्धर्वगन्धा तथा
कर्पूरं करिकेसरं समरिचं चारस्य बीजं नवम् ।
बीजं शाल्मलिसम्भवं करिकणाबीजं च राजीवजं
श्वेतं चन्दनमत्र रक्तमपि च श्रीसंज्ञपुष्पं समम् ॥ ४ ॥
सर्वं चेति पृथक्पृथक्पलमितं सञ्चूर्ण्य तत्र क्षिपेत्
सूतं वङ्गभुजङ्गलोहगगनं सम्मारितं स्वेच्छया ।
कस्तूरीघनसारचूर्णमपि च प्राप्तं तथा प्रक्षिपेत्
पश्चादस्य तु मोदकान्विरचयेद् बिल्वप्रमाणानयम् ॥ ५ ॥
तान्भुञ्जीत सदा यथाऽनलबलं भुञ्जीत मांसं रसं
पूर्वस्मिन्नशिते गते परिणतिं भाग्भोजनान्तरयेत् ।
नित्यं श्रीरतिवल्लभाख्यकमिमं यः पूगपाकं भजेत्
स स्याद्वीर्यविशुद्धिवृद्धमदनो वाजीव वाको रती ॥ ६ ॥
स्त्रीशासनिधिबलवान्यश्ची विहरते हृष्टः सुपुष्टः सदा ।
वृद्धो योऽपि युवेव सोऽपि रुचिरः पूर्णेन्दुवत्सुन्दरः ॥ ७ ॥

रतिवल्लभपूगपाक—दक्षिणी सुपारी दस पल लेकर भलीभाँति कतर कर उसे जल के साथ स्वेदित करके चूर्णकर वस्त्र में छान ले तथा जितना चूर्ण हो उसके अठगुना शुद्ध गोदुग्ध एक अंजलि ( आधापाव ) देकर पकावे जब पाक पूर्ण हो जावे तब उसमें आधा तुला ( ५० पल ) शर्करा मिलाकर पाक की विधि से अग्नि पर पकाकर आसन्न पाक होने पर उसमें अनेक संहिताओं का निरीक्षण कर उनसे आदर पूर्वक संग्रह किये हुए बहुत से द्रव्यों के चूर्ण जिन्हें कह रहा हूँ उनको उसमें प्रक्षेप देवे—इलायची, ककही, बरियारा, पीपल, जायफल शिवलिङ्गी, जावित्री, तेजपात, तालीसपत्र दालचीनी, सोंठ, खस, सुगन्धबाला, नागरमोथा, हरड़, बहेड़ा, आँवला, वंशलोचन, शतावरी, केवांच के बीज, दाख, तालमखाना गोखरू, बड़ी कटेरी, खजूर के फल अथवा छुहाड़ा, खिरनी, धनिया, कसेरू, मुलहठी, सिंघाड़ा, जीरा, बड़ी इलायची अथवा कृष्णजीरा, अजवाइन, कुसुम्भ के बीज, जटामांसी, सौंफ, मेथी, विदारीकन्द, मुसली, असगन्ध, कपूर, नागकेसर मरिच, चिरौंजी, सेमर के बीज, गजपीपल, कमल के बीज, श्वेत चन्दन, रक्त चन्दन और लवंग के इनका चूर्ण को पृथक् २ एक २ पल लेकर मिलावे, तथा उसमें इन उपरोक्त चूर्णों के साथ ही पारद भस्म वा रससिन्दूर, बंगभस्म, नागभस्म लोहभस्म, अभ्रक भस्म उत्तम विधि से बने हुए लेकर इच्छानुकूल प्रमाण से अथवा उपरोक्त औषधियों की भाँति एक २ पल ही लेकर मिलावे एवं कस्तूरी तथा कपूर का चूर्ण भी जितना हो सके अथवा एक २

पल ही मिलाकर एक २ पल ( बिल्व ) प्रमाण का मोदक बना लेवे। इस मोदक को अग्निबल के अनुसार मात्रा से सेवन करने पर भोजन करना चाहिये तथा इसके सेवन करते समय अम्ल रस द्रव्य नहीं भक्षण करना चाहिये। पहले का भोजन किया हुआ पदार्थ जब पच जावे तब भोजन के प्रथम ही इसे भक्षण करना चाहिये। जो मनुष्य नित्य इस रतिवल्लभ नामक पुग पाक का सेवन करता है उसके वीर्य की वृद्धि होती है काम की वृद्धि होती है तथा मैथुन कर्म में घोड़े के समान शक्ति होती है। वृद्ध पुरुष भी इस पाक का सेवन करता है तो वह भी युवा के समान दीप्त अग्नि वाला, बलवान, बली पलित रहित तथा हृष्ट पुष्ट अङ्गोंवाला होकर विचरण करता है तथा मनोहर पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान सुन्दर हो जाता है ॥ १-७ ॥

एतस्मिन् रतिवल्लभे यदि पुनः सम्यक्खुरासानिका
धत्तूरस्य च बीजमर्ककरभः पाथोधिशोषस्तथा।
सम्माजूफलकं तथा खसफलत्वक्चापि निक्षिप्यते।
चूर्णार्धा विजया तथा स हि भवेत्कामेश्वरो मोदकः ॥ १ ॥

कामेश्वर मोदक—इसी उपरोक्त रतिवल्लभ नामक पाक में यदि चूर्ण वाली ओषधियों को मिलाने के समय खुरासानी अजवाइन, धतूरे का शुद्ध बीज, अकरकरा, समुद्रशोष, माजूफल, खसखस और दालचीनी का चूर्ण भी एक २ पल मिलाया जाय तथा सम्पूर्ण चूर्णों के आधा शुद्ध भांग का चूर्ण मिला दिया जाय तो वही रतिवल्लभपाक कामेश्वर मोदक हो जावेगा यहां इसके गुण भी प्राय वही हैं जो रतिवल्लभ पाक के हैं ॥ १ ॥

आम्रपाकः—

पक्काम्रस्य रसद्रोणे सितामाढकसंमिताम्। घृत प्रस्थमिदं दद्याच्छ्रागरस्य पलाष्टकम् ॥ १ ॥
मरिच कुडवोन्मान पिप्पली द्विपलोन्मिताम्। सलिलस्याऽऽढक दत्वा सर्वमेकत्र कारयेत् ॥
पचेत्सन्मृन्मये पात्रे दारुदर्व्या प्रचालयेत्। चूर्णान्येषां क्षिपेत्तत्र घनीभूतेऽवतारिते ॥ ३ ॥
धान्याक जीरकं चित्र पत्रक मुस्तकं त्वचम्। वृहज्जीरकमप्यत्र ग्रन्थिकं नागकेशरम् ॥ ४ ॥
एलां पत्रीं लवङ्ग च पृथग्जातीफल पलम्। सिद्धशीते प्रदद्याच्च मधुनः कुडवद्वयम् ॥ ५ ॥
भक्षयेद्भोजनादर्वाक्पलमात्रमिदं नरः। अथवा नियता नाम मात्रा खादेद्यथानलम् ॥ ६ ॥
मानवः सेवनादस्य वाजिवत्सुरते भवेत्। समर्थो बल्यान्पुष्टो हृष्टो नित्यं निरामयः ॥ ७ ॥
ग्रहणीं नाशयेदेव क्षयं श्वासमरोचकम्। अम्लपित्तं च पित्तं तु कुष्ठं वै पाण्डुतामपि ॥ ८ ॥

आम्रपाक—पके हुए आमों का स्वरस एक द्रोण, श्वेत शर्करा एक आढ़क, गोघृत एक प्रस्थ, सोंठ का चूर्ण आठ पल, मरिच का चूर्ण एक कुडव, पीपल का चूर्ण दो पल और जल एक आढ़क, लेकर सबको एकत्र कर एक मिट्टी के पात्र में रखकर पाक की विधि से पकावे तथा काठ की करछुल से चलावे एवं इसमें आगे लिखे हुए द्रव्यों के चूर्णों को प्रक्षिप्त कर गाढ़ा होने पर उतार लेवे। यथा धनियाँ, जीरा, चित्रकमूल, तेजपात, नागरमोथा, दालचीनी, स्थूल जीरक, पिपरा मूल, नागकेशर, इलायची, जावित्री, लौंग तथा जायफर प्रत्येक का चूर्ण एक २ पल लेकर उसमें प्रक्षेप देवे, पाक सिद्ध हो जाने पर उतार कर शीतल होने पर उसमें दो कुडव मधु मिला देवे। इसे रात को भोजन के पूर्व ही एक पल प्रमाण की मात्रा से खाना चाहिये अथवा इसकी मात्रा की कोई निश्चिति नहीं है अग्निबल के अनुसार खाना चाहिये। इसके सेवन से मनुष्य मैथुन कर्म में घोड़े के समान समर्थ होता है तथा सामर्थ्य युक्त, बलवान्, हृष्ट पुष्ट एवं नित्य नीरोग रहता है। इससे ग्रहणी का नाश होता है तथा क्षय, श्वास, अरुचि, अम्लपित्त, पित्त, कुष्ठ तथा पाण्डुरोग भी नष्ट होते हैं ॥ १-८ ॥

कामाग्निसंदीपनो मोदकः—

कर्पो रसो गन्धकमभ्रकं च द्विक्षारचित्रं लवणानि पञ्च।
शटी यवानीद्वयकीटहारी सालीसपत्राणि परं विषं च ॥ १ ॥
जीरं चतुर्जातलवङ्गजातीफलं च कर्षत्रयमेवमन्यत्।
सुशुद्धसर्वं कटुत्रयं च तथा चतुष्कर्षमिदं निबोध ॥ २ ॥
धान्याकयष्टीमधुकं कसेरु फलं पुष्करपद्मरक्तं विदारी।

दन्ती कणा चातिबलाऽमृताबीजं तथा गोक्षुरकस्य बीजम् ॥ ३ ॥
सबीजपूरेन्द्ररजः समानं समा सिता क्षौद्रयुतं च सुपथ्यम् ।
कर्षैकमिन्दोरथ मोदकं च कामाग्निसन्दीपनमेतमाहुः ॥ ४ ॥
वृष्यं तथा परतरं सततं सदीप्यमानं निषेव्य मनुजः प्रमदासहस्रम् ।
गच्छेच्च लिङ्गशिथिलत्वमुपैति नित्यं नागाधिपं विजयते बलतः प्रमत्तः ॥ ५ ॥
वातानशीतिमथ पित्तभवांश्च रोगान्श्लेष्मोत्थविंशतिरुजः परमग्निमान्द्यम् ।
दुर्नामकामलभगन्दरपाण्डुरोगान्मेहातिसारकृमिहृद्ग्रहणीविकारान् ॥ ६ ॥
कासज्वरश्वसनयक्ष्मकफप्रतिश्यायशूलामवातसहिताश्च रुजः समस्ताः ।
हत्वा गदान्बहुविधांस्तदपत्यकारी सर्वत्र पथ्यमथ सर्वसुखप्रदायी ॥
बल्यं वलीपलितहारि रसायनं स्यान्मूलं तदेव कथितं परमं पवित्रम् ॥ ७ ॥

कामाग्नि सन्दीपन मोदक—शुद्ध पारद, शुद्ध गन्धक, अभ्रकभस्म, सज्जीखार, चित्रकमूल, पांचो नमक (पृथक् २) कचूर, जवाखार, अजमोदा, वायविडंग, तालीसपत्र प्रत्येक एक २ कर्ष और नागकेशर, दालचीनी, तेजपात, लवंग तथा जायफल प्रत्येक दो २ कर्ष तथा विधारा, सोंठ, मरिच और पीपल, प्रत्येक तीन २ कर्ष, धनियाँ, जेठीमधु, कसेरू तथा हरड़, बहेड़ा, आँवला प्रत्येक चार २ कर्ष तथा शतावरी, विदारीकन्द, बरियारा, हस्तिकर्ण, पलाश, नागबला, केवांच के बीज और गोखरू के बीज प्रत्येक पांच २ कर्ष लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर ले और बीज पत्रसहित शुद्ध भांग का चूर्ण सब चूर्ण के समान भाग ले और उसमें समान ही शर्करा, मधु, घृत को मिलावे तथा एक कर्ष कपूर का चूर्ण लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अभ्रक मिलावे तब अन्य २ चूर्णों को मिलाकर विधिपूर्वक मोदक बनावे। इस मोदक को कामाग्निसन्दीपन मोदक कहते हैं। इसे वृष्यों में परमवृष्य कहा गया है। इसके सेवन करने से मनुष्य सहस्र स्त्रियों के साथ संभोग कर सकता है। नित्य मैथुन करने पर भी लिंग में शिथिलता नहीं आती है और बल इतना बढ़ता है कि मत्त गजराज को भी जीत सकता है तथा इसके सेवन से ८० प्रकार के वातरोग, ४० प्रकार के पित्तरोग, २० प्रकार के कफरोग अत्यन्त बढ़ी हुई मन्दाग्नि, कठिन कामला, भगन्दर, पाण्डु, प्रमेह, अतीसार, कृमि हृद्रोग, ग्रहणीरोग, कास, ज्वर, श्वास, यक्ष्मा, कफ, प्रतिश्याय, शूल तथा आमवात के सहित समस्त पीड़ायें नष्ट होती हैं तथा यह मोदक बहुत प्रकार के रोगों को नष्ट करके सन्तान देने वाला है। सर्वत्र सभी अवस्थाओं में यह पथ्य है, सभी सुखों को देने वाला है, बलकारक है, वलीपलितरोग को नष्ट करने वाला है तथा सभी रसायनों में मूलरसायनरूप परम पवित्र है ॥ १-७ ॥

शतावरीघृतम्—

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत् । शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुतं तद्वृष्यमुच्यते ॥ १ ॥

शतावरी घृत—शतावरी का कल्क एक भाग, मूर्च्छित गोघृत चार भाग और गाय का दूध चालीस भाग लेकर एकत्र कर घृतपाक की विधि से पाक सिद्धकर शक्करा, पीपल चूर्ण तथा मधु मिलाकर सेवन करने से यह घृत अत्यन्त वृष्य (वीर्यवर्धक) होता है ॥ १ ॥

लघुवाजिगन्धासर्पि—

कल्केन वाजिगन्धाया विपचेद्घृतमुत्तमम् । चतुर्गुणमथाक्षीरं दत्त्वोद्धृत्याथ शीतले ॥
सितां समां प्रदद्याच्चाद्बलपुष्टिविवृद्धये ॥ २ ॥

लघु वाजिगन्धाघृत—असगन्ध का कल्क एक भाग, मूर्च्छित गोघृत चारभाग और गोदुग्ध सोलह भाग लेकर एकत्र कर घृतपाक की विधि से घृत सिद्धकर शीतल होने पर उसमें समानभाग शर्करा मिलाकर सेवन करने से बल, पुष्टि की वृद्धि होती है ॥ २ ॥

चन्दनादितैलम्—

द्रव्याणि चन्दनादेस्तु चन्दनं रक्तचन्दनम् । पतङ्गमथ कालीयागरुकृष्णागुरूणि च ॥ १ ॥
देवदारुः सरलश्च पद्मकं मधुकोऽपि च । कर्पूरो मृगनाभिश्च लताकस्तूरिकापि च ॥ २ ॥
सिह्लकः कुङ्कुमं गन्धं जातीपत्रफलमेव च । जातीपत्री लवङ्गं च सूक्ष्मैला महती तथा ॥ ३ ॥

कङ्कोलफलकं त्वचं पत्रकं नागकेसरम्। बालकं च समोशीरं मांसी दारु सितापि च ॥ ४ ॥
मुरा कर्पूरकश्चापि शैलेयं भद्रमुस्तकम्। रेणुकाश्च प्रियङ्गुश्च श्रीवासो गुग्गुलुस्तथा ॥ ५ ॥
लाक्षा नखश्च शालश्च धातकीकुसुमं तथा। ग्रन्थिपर्णं च मञ्जिष्ठा तगरं सिक्थकं तथा ॥ ६ ॥
एतानि शाणमानानि कल्कीकृत्य शनैः पचेत्। तैलं प्रस्थमितं सम्यगेतत्पात्रे शुभे क्षिपेत् ॥
अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धोऽशीतिसमोऽपि यः। सुखी भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥
वन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि तरुणायते। अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥९॥
चन्दनादि महातैलं रक्तपित्तं क्षयं ज्वरम्। दाहं प्रस्वेददौर्गन्ध्यं कुष्ठं कण्डूं विनाशयेत् ॥१०॥

चन्दनादि तैल—श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन, पतङ्गकाठ, कृष्ण अगर ( यह दो बार लिखा गया है अतः दो भाग लेना चाहिये ) देवदारु, सरलकाठ, पदुमकाठ, पूगीफल, कपूर, कस्तूरी, लता कस्तूरी, शिलाजीत, काश्मीरीकेसर, गोरोचन, जायफर, जावित्री, लवंग, छोटी इलायची, बड़ी इलायची, कंकोलमरिच, दारुचीनी, पत्रज, नागकेसर, सुगन्धबाला, खस, जटामांसी, दारुचीनी, मुरामांसी, कपूर, शिलाजीत, भद्रमोथा ( नागरमोथा ), रेणुका, प्रियङ्गुपुष्प, कमल या राल, शुद्ध गुग्गुल, लाख, नखी, राल, धाय के पुष्प, बच, मजीठ, तगर और मोम प्रत्येक एक २ शाण ( चार २ माशा ) लेकर विधिपूर्वक कल्क कर तिल के मूर्च्छित तैल एक प्रस्थ में देकर तथा तैल के चतुर्गुण जल मिलाकर मन्द अग्नि पर तैलपाक की विधि से तैल सिद्ध करे, तैल मात्रशेष रहने पर उतार छानकर रख लेवे। इस तैल के शरीर में मर्दन करने से ८० वर्ष का वृद्ध भी सुखी एवं वीर्य से परिपूर्ण हो कर स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय हो जाता है। वन्ध्या स्त्री भी इसके सेवन से गर्भधारण कर लेती है, नपुंसक पुरुष भी युवा की भाँति मैथुन करने की शक्ति वाला हो जाता है, पुत्ररहित भी पुत्र प्राप्त करता है तथा सौ वर्ष की आयु तक जीवित रहता है। यह *महाचन्दनादि* तैल रक्तपित्त, क्षय, ज्वर, दाह, स्वेद की दुर्गन्धि, कुष्ठरोग तथा कण्डूरोग को भी नष्ट करता है ॥ १-१० ॥

महासुगन्धितैलम्—

कर्पूरागुरुचोचपत्रनलिकालाक्षाशटीधातकीपुष्पैः सत्वदलैकवालुसरलैः शैलेयमांसीप्लवैः।
एलाकुङ्कुमरोचनादमनकैः श्रीवासजातीफलैः कङ्कोलकमुकोद्दामवमुराकान्ताळवङ्गामयैः ॥१॥
वालोशीरहरेणुकामलयजस्थौणेयचण्डानखैः
र्जांसीकोलकुलीरपद्मकनतैः स्पृक्कान्वितैः पालिकैः।
लाक्षारोजमवल्लिलोध्रसलिलैस्तैलं विपाच्याऽऽढकं
तैलाभ्यक्ततनुर्जरन्नपि भवेत्स्त्रीणां परं वल्लभः ॥ २ ॥
शुक्राढ्यो द्युतिमाननल्पतनयः षण्ढोऽपि रत्युत्सुको
वन्ध्या गर्भवती भवेदपि तथा वृद्धाऽपि सूते सुतम्।
कण्डूस्वेदविचर्चिकामलहरं दौर्गन्ध्यकुष्ठापहं
भिषिग्भिः परिकीर्तितं बहुगुणं तैलं सुगन्धं महत् ॥ ३ ॥

महासुगन्धित तैल—कपूर, अगर, दालचीनी, तेजपात, सुगन्धबाला, लाख, कचूर, धाय के पुष्प, छितवन की छाल, मुसब्बर, सरल काठ, शिलाजीत, जटामांसी, नागरमोथा, इलायची, काश्मीरीकेशर, गोरोचन दौना, कमलपुष्प या राल आयफर, कंकोलमरिच, पूगीफल, शुद्ध आँवला या नागरमोथा, कस्तूरी, मुरामांसी, बड़ी, इलायची, लौंग, कूट, सुगन्धबाला, खस, रेणुका, श्वेतचन्दन, स्थौणेयक या थुनेरा, चौरा, नख, जावित्री, काकडासिंगी, पदुमकाठ, तगर तथा स्पृक्का या पिडिशाक नामक सुगन्धित द्रव्य प्रत्येक एक २ पल लेकर कल्क करेले और लाख, मजीठ तथा लोध प्रत्येक का क्वाथ तैल के चतुर्गुण तथा तिल का तेल एक आढक ( चार प्रस्थ ) लेकर उपर्युक्त कल्क सहित इन क्वाथों को तेल में डालकर तैलपाक करे, तैल मात्र शेष रहने पर उतारछान कर रख ले। इस तेल के मर्दन करने से जिसका शरीर जर्जर हो गया हो यह वृद्ध भी स्त्रियों का अत्यन्त प्रिय हो जाता है तथा वीर्य से परिपूर्ण, तेज युक्त तथा बहुत पुत्रों वाला होता है, नपुंसक भी मैथुन करने के लिये उत्सुक रहता है, वन्ध्या स्त्री गर्भवती हो जाती है, तथा वृद्धा भी पुत्र को उत्पन्न करती है। इस तैल से कण्डूरोग, स्वेदरोग, विचर्चिकारोग, कामला

रोग, दुर्गन्धि तथा कुष्ठरोग नष्ट होता है। इस महागुणकारी महासुगन्धित तैल को अश्विनीकुमारों ने निर्मित किया था ॥ १-३ ॥

पञ्चबाणरस —सूताभ्रलोहोरगवङ्गशङ्खकपर्दिकारचैव समं विधाय ।
सूतार्धभागं कनकस्य दद्याद्वारत्रयं क्षीरयिभावितं तत् ॥ १ ॥
पौरस्तैस्तथा भावितमेकविंशद्वार तथा यष्टिसुवर्णकाभाम् ।
लवङ्गकाकरकरविश्वजातीफलत्रिक कोष्ठकचन्दनानाम् ॥ २ ॥
पृथक् भावयेत् सप्तवार पृथक्चैकं मृगनाभिकाया ।
रसोऽयमुक्तः परमेश्वरेण श्रीपञ्चबाणो रतिशक्तिदो नृणाम् ॥ ३ ॥
एतस्मादधिकं च नास्ति भुवने वीर्याधिकं बौषधं
आयुष्कान्तिकरं हितं वसुमतां नृणामुदारात्मनाम् ।
आशासिद्धमिदं रसायनवरं पथ्यं ययास्यादन
मेहप्लीहजलोदराश्मरिकापस्मारविध्वंसनम् ॥ ४ ॥

पञ्चबाण रस—पारदभस्म, अभ्रकभस्म, लोहभस्म, नागभस्म, वंगभस्म, शंखभस्म और कौड़ी भस्म, प्रत्येक एक २ भाग लेकर उसमें पारद के आधा स्वर्णभस्म मिलाकर सबको एकत्र खरल कर ( पारदभस्म के स्थानपर रससिन्दूर भी लिया जाता है ) दूध से तीन बार भावित करे पुन पौरस के क्वाथ से २१ बार भावित करे, पश्चात् जेठीमधु और धतूरे के क्वाथ या स्वरस से पृथक् पृथक् २१ बार भावित करे, पुन लवंग, अकरकरा, सोंठ, चमेली, आँमला, हरड़, बहेड़ा, कङ्कोल तथा चन्दन के क्वाथ अथवा स्वरस से पृथक् २ सात बार भावित करे तथा एक बार कस्तूरी के रस में भावित कर रख लेवे। इस रसको पञ्चबाण रस कहते हैं, इसे परमेश्वर ने मनुष्यों को रतिशक्ति देने के लिये बनाया है। इससे बढ़कर संसार में अधिक वीर्यवर्धक बुद्धिवर्धक, आयु तथा कान्ति वर्धक धनी तथा उदार मनुष्यों के लिये हितकर अन्य औषधि नहीं है। यह आशा सिद्ध औषधि है वैद्य की आज्ञानुसार सेवन करने से यह रस पूर्ण फल देने वाला है, रसायनों में श्रेष्ठ है, बल दायक है, आयुस्थापक है तथा इसके सेवन से प्रमेह, प्लीहा, जलोदर, अश्मरी तथा अपस्मार रोग नष्ट होते हैं ॥ १-४ ॥

चन्द्रोदयरसः—पलं मृदु स्वर्णदलं रसेन्द्रात्पलाष्टकं षोडश गन्धकस्य ।
शोणैस्तु कार्पासभवैः प्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ॥ १ ॥
तत्काचकुम्भे निहितं सुगाढे मृत्कर्पटैस्तद्दिवसत्रयं च ।
पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे ततो रसः पल्लवरागरम्यः ॥ २ ॥
सौवर्णमेतस्तत्कलामयघ्नं सर्वेषु योगेषु च योजनीयम् ।
निगृह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव ॥ ३ ॥
जातीफलं चोपणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकायाः इह शाण एकः ।
चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य मात्रो भुक्तोऽहिवल्लीदलमध्यवर्ती ॥ ४ ॥
मदोद्धतानां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यपरम् ।
अत घनीभूतमतीव दुग्धं मृदूनि मांसानि समण्डकानि ।
माषाद्यमिष्टानि रसेऽत्र पथ्यमालम्बदादीन्यपरानि चात्र ॥ ५ ॥
वलीपलितनाशनस्तनुमृतां ययस्तम्भनः समस्तगदखण्डनः प्रचुररोगपञ्चाननः ।
गृहे च रसराडयं भवति यस्य चन्द्रोदयः स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवत्युल्लभः ॥ ६ ॥

चन्द्रोदय रस—कोमल शुद्ध स्वर्णदल एक पल, शुद्ध पारद आठ पल और शुद्धगन्धक सोलह पल लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर उसमें स्वर्णदल मिलाकर लाल कपास के पुष्प के साथ खरल कर पुनः कुमारी के पत्तों के स्वरस में खरल कर रस आने पर काँच के पात्र में रख कर उस पात्र पर गाढ़ी कपरमिट्टी भलीभाँति करके सुखाकर बालुका यन्त्र में रख कर तीन दिन तक क्रम से मन्द, मध्य एवं तीक्ष्ण अग्नि से पाक करे। इसके पश्चात् स्वांगशीत होने पर उसमें से नये पत्तों के वर्ण के समान लाल वर्ण का रस निकलेगा। यह सौवर्ण ( सौवर्ण मकरध्वज ) सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करने वाला है, इसे सभी योगों में देना चाहिये। इस

रस को एक पल लेकर इसमें चार पल कपूर का चूर्ण तथा जायफर का चूर्ण, मरिच का चूर्ण, लौंग का चूर्ण तथा कस्तूरी को एक २ शाण (चार २ माशा) पृथक् २ लेकर मिलाकर सबको एकत्र कर भलीभाँति खरलकर रख लेव। इसको एक माशा के प्रमाण की मात्रा स पान के पत्ते में रख कर खाने से पुरुष मदोन्मत्त सैकड़ो स्त्रियों के बढ़े हुए गर्व को अवश्य शिथिल कर देता है। इसके सेवन करते समय औटाकर अत्यन्त गाढ़ा किया हुआ दूध, कोमल मांस, बकरे के अण्डकोश, उड़द के बने पदार्थ तथा मिठाइयां पथ्य में लेना चाहिये एवं अन्यान्य आनन्ददायक रुचिकर एवं पौष्टिक पथ्य सेवन करना चाहिये। इस रस के सेवन से बली-पलित रोग नष्ट होते है, आयुस्थापन होता है, सम्पूर्ण रोगों का नाश होता है। यह रोग समूह के लिये सिंह के समान है, जिस मनुष्य के पास यह रसों का राजा चन्द्रोदय रस रहता है वह काम से उन्मत्त रहता है तथा स्त्रियों का प्रिय होता है ॥ १-६ ॥

वृद्धपुष्पधन्वा रसः—

कनकहरजकान्तं ताप्यकं वृद्धिभाव द्विजकुवलययष्टीशाल्मलीनागवल्लया।
घृतमधुपयखण्डं पुष्पधन्वा द्विपदष्टो रमयति बहुकान्ता दीर्घमायुर्बली स्यात् ॥ १ ॥

वृद्ध पुष्पधन्वारस—स्वर्णभस्म एक भाग, पारद भस्म दो भाग, कान्तलोहभस्म तीन भाग और स्वर्णमाक्षिक भस्म चार भाग लेकर एकत्र खरल कर तेजबल के पत्तों के क्वाथ, कमल के स्वरस, जेठीमधु के क्वाथ, सेमर की त्वचा के स्वरस वा क्वाथ तथा पान के स्वरस में पृथक् २ भावित कर रख ले। इस पुष्पधन्वा नामक रस को दो वल्ल प्रमाण की मात्रा से गोघृत, मधु, दूध तथा शर्करा के अनुपान से सेवन करने से बहुत सी स्त्रियों को भोगने का सामर्थ्य होता है, दीर्घ आयु होती है तथा मनुष्य बलवान होता है ॥ १ ॥

लघुपुष्पधन्वा रस —

हरजभुजगलोहाभ्यभ्रकं च त्रिभागं कनकविजययष्टीताप्यमलीनागवल्लयः।
सितमधुघृतदुग्धैः सेवितो पीयवृद्धिं रमयति बहुकान्तां पुष्पधन्वा रसः स्यात् ॥ १ ॥

लघुपुष्पधन्वा रस—पारदभस्म वा रससिन्दूर, नागभस्म और लोहभस्म प्रत्येक एक २ भाग तथा अभ्रक तीन भाग लेकर एकत्र खरलकर धतूरे के स्वरस, भांग के स्वरस, जेठीमधु के रस वा क्वाथ, सेमर की त्वचा के स्वरस वा क्वाथ तथा पान के स्वरस के साथ पृथक् २ खरल में मर्दन कर रख ले। इस रस को शर्करा मधु, घृत तथा दूध के अनुपान से सेवन करने से यह पुष्पधन्वा रस बहुत सी स्त्रियों के साथ रमण करने की शक्ति देता है ॥ १ ॥

मदनकामदेवो रसः—

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रसूतकगन्धकम्। लोहं क्रमविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥ १ ॥
विमर्द्य कन्यकाद्रावैः र्यसेत्काचमये घटे। विशुद्धपिठरीमध्ये धारयेत्सैन्धवैर्भृते ॥ २ ॥
वह्निं यामे शनैः कुर्याद्दिनैकं तु तदुद्धरेत्। स्वाङ्गशीतं च सञ्चूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ॥ ३ ॥
अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली तथा। त्रिवारं च रसैर्भाव्यं सतावर्याश्च भावयेत् ॥४॥
कस्तूरीव्योषकर्पूरं कङ्कोलैलालवङ्गकम्। पूर्वचूर्णाष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥ ५ ॥
सर्वैः समां शर्करां च दत्वा शाणोन्मितं पिबेत्। गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥६॥
अस्य प्रभावात्सौन्दर्यं बलं तेजो विवर्धते। तरुणीं रमयेद्वृद्धो न च हानिः प्रजायते ॥ ७ ॥

मदन कामदेव रस—रौप्यभस्म १ भाग, हीरकभस्म २ भाग, सुवर्णभस्म ३ भाग, ताम्रभस्म ४ भाग, शुद्ध पारद ५ भाग, शुद्ध गन्धक ६ भाग तथा लोहभस्म ७ भाग लेकर प्रथम पारद गन्धक की कज्जली कर अन्य द्रव्यों को मिलाकर खरलकर कुमारी के पत्तों के स्वरस में विधि पूर्वक खरल में मर्दन कर कांच के पात्र में रखकर मुखमुद्रा करके एक हांडी में रखकर सेंधानमक के चूर्ण से भर देवे मन्दाग्नि से पाक करे अर्थात् चार पहर तक अविराम मन्द २ अग्नि देता रहे स्वाङ्गशीत होने पर निकाल कर शीशी के औषधि को चूर्ण कर आक के दूध, असगन्ध के स्वरस, काकोली के स्वरस, केवाच के बीज के क्वाथ, मूसली के स्वरस तथा गोखरू के क्वाथ वा स्वरस से पृथक् २ तीन २ बार भावित कर पुनः शतावरी के रस से तीन बार भावित करे। पश्चात् कस्तूरी,

सोंठ, मरिच, पीपल, कपूर, कंकोल मरिच, इलायची और लौंग ये समान मिलित चूर्ण लेकर उपरोक्त शीशी के चूर्ण अष्टमांश भाग मिलाकर खरल करे तथा सब मिलकर जितना हो उसके समान भाग श्वेतशर्करा मिलाकर रख लेवे । इसको एक शाण ( चार माशा ) प्रमाण की मात्रा से दो पल गौ के दूध के अनुपान से पान करे तथा मधुर रस युक्त भोजन करे तो इसके प्रभाव से सुन्दरता बल तथा तेज बढ़ता है, वृद्ध पुरुष भी तरुणी स्त्री के साथ रमण करता है तो उसके शरीर की हानि नहीं होती है ॥ १-७ ॥

महाराजवटीरस—बीजं ब्रह्मतरोर्विधाय बहुधा खण्डं त्रियामोषितं
छागे दुग्धवरेऽथ शुष्कमथ तद्भागेन विष्वंशिना ।
युक्तं काचघटीयुतं हुतभुजो योगेन च स्थान्ततः
सारं तस्य निगृह्य काचघटिते भाण्डे सुखं स्थापयेत् ॥ १ ॥
तत्तैलं वल्लमात्रं तु ताम्बूलीपत्रगं चरेत् । द्विपदा तत्र रसं वल्लमङ्गुल्यग्रेण मर्दयेत् ॥ २ ॥
युक्त्या तां कज्जलीं भुक्त्वा ताम्बूलं पीडयेदनु । शाकाम्लं माषपट्कादिवर्जितं पथ्यमाचरेत् ॥३॥
अनेन योगराजेन षण्ढोऽपि पुरुषायते । अपूर्वं वर्धयन् शक्तेर्हन्ति तासां मदाङ्गणान् ॥ ४ ॥
वलीपलितविध्वंसी योगोऽयं क्षयकुष्ठजित् । वातपित्तकफातङ्कहस्तिपञ्चाननः परम् ॥
नास्त्यनेन समं लोके किंचिदन्यद्रसायनम् ॥ ५ ॥

महाराजवटी—पलास के बीजों को लेकर टुकड़े २ करके तीन पहर तक बकरी के दूध में भिगावे पश्चात् निकालकर सुखा कर इसमें पन्द्रहवां भाग शुद्ध गन्धक मिलाकर कांच के पात्र में रखकर विधिवत् कपरमिट्टी आदि करके अग्नि पर रख कर उसका तेल या सत्व निकालकर कांच की शीशी में रख लेवे । उस सत्त्वरूपी तेल को एक वल्ल प्रमाण लेकर पान के पत्ते पर रख कर उसमें एक वल्ल प्रमाण शुद्ध पारद मिलाकर अङ्गुली से मर्दन कर जब कज्जली हो जावे तब उसे पान सहित खाकर पुनः पान खावे । इसके सेवन के समय पत्रशाक, अम्लद्रव्य, मापके बड़े आदि त्याग कर पथ्य का सेवन करे । इस योगराज के सेवन से नपुंसक पुरुष भी पुरुषत्व को प्राप्त होता है तथा मदमत्त सौ स्त्रियों के साथ सम्भोग करने पर भी शक्ति का ह्रास नहीं होता है तथा इसके सेवन से वली पलित रोग, क्षय रोग तथा कुष्ठ रोग को नष्ट करता है, वात-पित्त एवं कफ सम्बन्धी रोग को नष्ट करने के लिये तो यह इस प्रकार है जिस प्रकार हाथियों के लिये सिंह । इसके समान संसार में कोई दूसरा रसायन नहीं है ॥ १-५ ॥

पूर्णेन्दुनामा रसः—

शाल्मलयुत्थैर्द्रवैर्मर्द्यं पक्षैकं शुद्धसूतकम् । यामद्वयं पचेच्चापि तद्वद्बद्ध्वाऽथ मर्दयेत् ॥ १ ॥
दिनैकं शाल्मलीद्रावैर्मर्दयित्वा वटीकृतम् । वेष्टयेन्नागवल्ल्याऽथ निक्षिपेत्काचभाजने ॥ २ ॥
भाजनं शाल्मलीद्रावैः पूर्णं यामद्वयं पचेत् । वालुकायन्त्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् ॥३॥
द्विगुञ्जं भक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलान्तरे । मुसलीं ससितां क्षीरं पलैकं पाययेदनु ॥ ४ ॥
रसः पूर्णेन्दुनामाऽयं सम्यग्वीर्यकरो भवेत् । कामिनीनां सहस्रैकं नरः कामयते ध्रुवम् ॥५॥

पूर्णेन्दुरस—शुद्ध पारद को सेमर की त्वचा के स्वरस में पन्द्रह दिन तक मर्दन कर उसे वस्त्र में बाँध कर सेमर के रस में दो पहर तक अग्नि पर पाक करे पुनः मर्दन कर सेमल के रस में दिन भर ( चार पहर ) खरल कर वटी बना लेवे पुनः उस वटी को पान के पत्तों में लपेट कर कांच के पात्र में रख देवे पुनः उस पात्र को सेमर के स्वरस से पूर्ण कर उसे बालुका यन्त्र में रखकर दो पहर तक अग्नि पाक करे जब उसमें का द्रव पदार्थ पच जावे ( सूख जावे ) तब उतारकर उससे औषधियों को निकाल कर धारण कर रख लेवे । इस औषधि को दो रत्ती के प्रमाण पान के पत्ते में रखकर प्रातःकाल खावे तथा मूसली का चूर्ण और शर्करा को एक पल दूध में मिलाकर अनुपान करे । यह पूर्णेन्दु नामक रस वीर्य को भलीभाँति उत्पन्न करता है । इसके सेवन से मनुष्य एक सहस्र स्त्रियों के साथ भोग की शक्ति प्राप्त करता है ॥ १-५ ॥

रसभस्मयोग—

खर्परे धारयेद्रम्य तैलवह्निना घनम् । ततस्तस्मिन्क्षिपेत्सूतं तालमात्रं ततः परम् ॥ १ ॥

घर्षयेल्लोहदर्व्याऽथ यावज्ज्वलति वह्निना । खर्परस्यान्तरे वह्निर्यदा ज्वलति केवलम् ॥२॥
अथो वह्निं तदा मन्दं विधाय घट्टयेत्पुनः । लोहदर्व्या भवेद्यावद्भस्म सत्स्फटिकोपमम् ॥ ३ ॥
तदादाय प्रयोक्तव्यं रोगेषु सकलेष्वपि । अग्निमान्द्यं च षाण्ढ्यं च कासश्वासभगंदराः ॥४॥
व्रणाश्च विविधाः सर्वे वलयः पलितानि च । नश्यन्त्यनेन योगेन सत्यं शिववचोदितम् ॥५॥

रसभस्म योग—एक मिट्टी के खप्पर में शुद्ध गन्धक ( आँवलासार ) रखकर अग्नि पर रक्खे, क्षणभर में जब गन्धक गल कर तेल के समान हो जावे तब उसमें उसी के समान भाग शुद्ध पारद मिलाकर लोहे की कलछी से घोटता रहे तथा आँच देता रहे, जब खप्पर में ( पारद गन्धक के स्थान पर ) केवल अग्नि जलता हुआ दिखाई दे तब अग्नि मन्द करके उसे घोटता रहे जब उसमें स्फटिक के समान श्वेत भस्म हो जावे तब उसे उतार कर भस्म को लेकर इसका प्रयोग सभी रोगों में करे। इसके सेवन से मन्दाग्नि, नपुंसकता, कास, श्वास, भगन्दर, अनेक प्रकार के व्रण, वली एवं पलित रोग सभी नष्ट हो जाते हैं, यह सत्य है तथा शिव जी की कही हुई बात है ॥ २-५ ॥

स्तनवृद्धिकरणम्—

क्षौद्रं क्षुद्रातगरमरिचैः पिप्पलीसैन्धवाभ्यां श्वेतापुष्पीयवतिलगुडश्वेतसिद्धार्थमाषैः ।
श्लक्ष्णीभूतैर्भवति मिलितं वाजिगन्धासनाथैः श्रोणीश्रोत्रभुजकुचशिरःशेफसां वृद्धिकारी ॥

स्तनवृद्धिकर योग—मधु, छोटी कटेरी, तगर, मरिच, पीपल, सैंधानमक, अपामार्ग मूल, जौ, तिल, गुड़, श्वेत सरसों, उड़द तथा असगन्ध को समान भाग लेकर विधिपूर्वक श्लक्ष्ण चूर्ण करके लेप करने से, नितम्ब, कान, भुजा, कुच, शिर तथा लिङ्ग की वृद्धि होती है ॥ १ ॥

सकुष्ठनागबलाबलानां वचाश्वगन्धागजपिप्पलीनाम् ।
तुरङ्गमारेर्नवनीतयोगाद्विलेपनेन लिङ्गं मुसलत्वमेति ॥ २ ॥

कुष्ठादि लेप—कूठ, नागबला, बला, वच, असगन्ध, गजपीपल और कनेर के मूल को समान भाग लेकर विधिवत् श्लक्ष्ण चूर्ण कर मिलाकर लेप करने से लिङ्ग मूसल के समान ( स्थूल ) हो जाता है ॥ २ ॥

अष्टमैथुनम्—

स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् । सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥ १ ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिणः । विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणम् ॥ २ ॥

अष्टांग मैथुन—स्मरण ( स्त्री का स्मरण, एवं विषय वासना सम्बन्धी बातों का स्मरण ), वासना सहित नृत्यादि में प्रवृत्त होना अथवा विषय सम्बन्धी गीतादि में प्रवृत्त रहना, स्त्री से विषय सम्बन्धी बात करना, कामयुक्त दृष्टि से स्त्री को देखना, स्त्री से गोप्य सम्भाषण करना, स्त्री सम्बन्धी अनेक बातों पर विचार एवं निश्चित करना, कामवासना की तृप्ति का यत्न करना तथा मैथुन करना। ये मैथुन के आठ भेद मुनियों ने कहा है। इन आठों प्रकार के लक्षणों से निवृत्त रहना ब्रह्मचर्य कहा जाता है ॥ १-२ ॥

कामेश्वर—

जातीफलं च सौराष्ट्री कृष्णधत्तूरबीजकम् । जातीपुष्पमफेनं च नागं हिङ्गुलमेव च ॥ १ ॥
एतानि समभागानि खसक्वाथेन मर्दयेत् । गुञ्जामात्रां च वटिकां सितया सह भक्षयेत् ॥१॥
नाम्ना कामेश्वरः प्रोक्तो रमते कामिनीशतम् ॥ २ ॥

कामेश्वर रस—जायफल, फिटकिरी अथवा गोपी चन्दन, कृष्ण धतूरे के शुद्ध बीज, जावित्री शुद्ध अफीम, नागभस्म और शुद्ध हिंगुल को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्णकर खस के क्वाथ के साथ मर्दन कर एक गुञ्जा के प्रमाण की वटी बनाकर शर्करा के अनुपान से भक्षण करने से यह कामेश्वर रस सौ स्त्रियों को भोगने की शक्ति देता है ॥ १-२ ॥

वङ्गेश्वर —

रसं वङ्गसमं कृत्वा चतुर्भागं च गन्धकम् । कुमारीरससंयुक्तं दिनमेकं तु मर्दयेत् ॥ १ ॥
मन्दमध्यमतीव्राग्निवालुकायन्त्रगं पचेत् । अश्वगन्धामूसलीसारमोचारसशतावरीः ॥ २ ॥

गोक्षुरधात्री कूष्माण्डी वाराही पद्ममागधी। त्रिफला कर्कटी मुस्ता यष्टीमधुसमन्वितम् ॥३॥
सर्वसाम्यं सितायुक्तं चूर्णं कर्षार्धसंयुतम्। गुञ्जाचतुष्टयं मात्रा गोक्षीरमनुपानतः ॥ ४ ॥
प्रातरुत्थाय सेवेत लवणाम्लं च वर्जयेत्। बहुमूत्रं मूत्रकृच्छ्रं रक्तमूत्रप्रमेहकम् ॥ ५ ॥
मधुमेहं नष्टशुक्रं नष्टलिङ्गं च नाशयेत्। सर्वमेहप्रशमनो वङ्गेश्वर इति स्मृतः ॥ ६ ॥

वङ्गेश्वर रस—शुद्ध पारद एक भाग, शुद्ध वंग एक भाग लेकर वंग को अग्नि पर पिघलाकर पारद मिलाकर मर्दन कर उसमें शुद्ध गन्धक चार भाग मिलाकर मर्दन कर पुनः कुमारी पत्र स्वरस में एक दिन (चार प्रहर) मर्दन करे पश्चात् कांच की शीशी में कपर मिट्टी करे बालु का यन्त्र में विधिपूर्वक रख कर क्रम से मन्द, मध्य एवं तीक्ष्णाग्नि से चार पहर तक पकावे, स्वांगशीत होने पर उससे औषधियों को निकाल कर रख लेवे तथा असगन्ध, गुरुच का सत्व, मोचरस, शतावरी, गोखरू, आँवला, पेठा, वाराहीकन्द, तेजपात, पीपल, आमला, हरड़, बहेड़ा, ककड़ी के बीज, नागरमोथा और जेठीमधु प्रत्येक समान भाग लेकर उत्तम चूर्णकर जितना हो उसके समान भाग शर्करा मिलाकर इस मिश्रित चूर्ण में से आधा कर्ष लेकर उसमें उपरोक्त प्रस्तुत रस में चार रत्ती मिलाकर गोदुग्ध के अनुपान से सेवन करे। इसका प्रातःकाल ही सेवन करना चाहिये तथा इसके सेवन के समय लवण तथा अम्ल रस को त्याग दे। इसके सेवन से बहुमूत्र, मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रमेह, मधुमेह, नष्ट शुक्र तथा नष्ट लिंग रोग नाश होता है तथा यह सभी प्रमेहों को नष्ट करनेवाला है ॥ १–६ ॥

शतावर्यश्वगन्धा च वानरी मुशली तथा। गोकण्टो शर्कराक्षीरं पिबेन्नष्टेन्द्रियो नरः ॥ १ ॥

शतावर्यादि चूर्ण—शतावरी, असगन्ध, केवांच के बीज, मुसली और गोखरू को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर शर्करा युक्त दूध के अनुपान से नष्टेन्द्रिय मनुष्य को पीना चाहिये। इससे नपुंसकता नष्ट हो जाती है ॥ १ ॥

तिलगोक्षुरचूर्णेन साधितं छागलं पयः। पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं शीघ्रं गच्छति षण्ढता ॥ २ ॥

( तिलगोक्षुरादि चूर्ण—तिल तथा गोखरू समान भाग लेकर चूर्ण कर बकरी के दूध में पका कर उसमें शर्करा तथा मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र नपुंसकता नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

सेवेत गोक्षुर चूर्णं छागक्षीरेण साधितम्। शर्करामधुसंयुक्तं शीघ्रं गच्छति षण्ढता ॥ ३ ॥

गोक्षुर पय—गोखरू का चूर्ण बकरी के दूध में पकाकर शीतल होने पर शर्करा तथा मधु का प्रक्षेप देकर पान करने से नपुंसकता शीघ्र नष्ट हो जाती है ॥ ३ ॥

सिन्दूरं कनकं बीजं विजया क्षुरबीजके। जातीफलं जातिपत्री कटुभिमुमपेनकम् ॥ ४ ॥
समुद्रशोषसंयुक्तं लवणं च समं च। विजयारससंमर्धं यामनेकं प्रदापयेत् ॥ ५ ॥
बदरीबीजमात्रं तु स्त्रीशतं रमते सुखः।

सिन्दूरादि योग—शुद्ध सिन्दूर, शुद्ध धतूरे के बीज, शुद्ध भांग, गोखरू के बीज, जायफल, जावित्री, अकरकरा, सहिजन, शुद्ध अफीम, समुद्रशोष तथा लवण को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्णकर एकत्र खरल में मर्दन कर शुद्ध भांग के स्वरस के साथ एक पहर तक मर्दन कर एक बेर के बीज के प्रमाण से लेकर भांग के रस में मिलाकर बद्रिम पर मर्दन करने से मनुष्य आनन्द पूर्वक सौ स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है ॥ ४–५ ॥

अश्विशोषं च सिद्धार्थमनुपस्थमितान् प्रथक् ॥ ६ ॥
क्षयशिष्टं च सद्दुग्धं सायंकाले पिबेन्नरः। बिन्दुपातं न कुरुते वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ७ ॥

अश्विशोषादि योग—समुद्र शोष तथा श्वेत सरसों दोनों पृथक् २ चार २ मासा (बारह २ रत्ती) लेकर चूर्ण कर गाढ़े दूध के साथ सायंकाल पान करने से मैथुन के समय मनुष्य का एक बुन्द भी वीर्य नहीं गिरता है। यह उत्तम वाजीकरण है ॥ ६–७ ॥

रसमरमयोग—

शुद्ध सूतं द्विधा गन्धं लोहपात्रेऽग्निसंस्थिते। आर्द्रकमोचवृन्तेन चालयन्सततं मर्देत् ॥
रक्तिमात्रमिदं मुक्तं रेता वृद्धिकरं परम् ॥ १ ॥

रसमरम योग—शुद्ध पारद एक भाग तथा शुद्ध गन्धक दो भाग लेकर एक लोहे के पात्र को अग्नि पर रखकर उसमें एक हरा अदरक के डण्ठल से चलाते रहें जब चलाते चलाते

अग्नि पर वह पारद गन्धक भस्म के रूप में हो जावे तब उतार कर रख लेवे। इसे दो रत्ती प्रमाण की मात्रा से खाने से वीर्य अत्यन्त पुष्ट होता है ॥ १ ॥

वीर्यस्तम्भवटी—

जातीफलं लवङ्गं च जातीपत्रं सकुङ्कुमम्। सूक्ष्मैला चाहिफेनं च स्वाकारकरभं तथा ॥ १ ॥
प्रत्येकं कर्षमात्राणि कर्पूरं शाणमात्रकम्। नागवल्लीदलरसैर्वटी चणकसन्निभा ॥
वीर्यस्तम्भनी ज्ञेया बलवर्णाग्निदीपनी ॥ २ ॥

वीर्यस्तम्भ वटी—जायफर, लौंग, जावित्री, काश्मीरी केसर, छोटी इलायची, शुद्ध अफीम, अकरकरा प्रत्येक एक २ कर्ष और शुद्ध कपूर, एक शाण ( चार माशा ) लेकर विधिपूर्वक चूर्ण कर पान के पत्ते के स्वरस में मर्दन कर चने के समान वटी बनाकर सेवन करने से वीर्य का स्तम्भन होता है तथा बल, वर्ण एवं अग्नि दीप्त होती है ॥ १-२ ॥

कपिकच्छूपाक —

निस्तुषं वानरीबीजं कृत्वा विंशत्पलानि च। विंशत्पलां सितां दत्वा घृतं दत्वा पलाष्टकम् ॥
दुग्धाढकसमायुक्तं मृदुना वह्निना पचेत्। यावद्दर्वीप्रलेपः स्यात्तन्मध्ये चूर्णितं क्षिपेत् ॥ २ ॥
जातीफलं त्रिकटुकं त्रिगन्धं देवपुष्पकम्। अक्करकं जातिपत्री कोकिलाबीजकेसरम् ॥ ३ ॥
पुनर्नवा पले द्वे च मुसली साहिफेनकम्। पारदं लोहचूर्णं च स्वभ्रकं च पलार्धकम् ॥ ४ ॥
चन्दनागरुकस्तूरीकर्पूरं शाणमात्रकम्। पलार्धं भक्षयेत्तत्तु क्रमाद्वीर्यबलप्रदम् ॥ ५ ॥

कपिकच्छू पाक—केवाच के बीज का छिलका निकाल कर २० पल, चीनी १० पल तथा दूध १ आढ़क लेकर सबको एकत्र कर मन्द अग्नि पर पाक की विधि से पाक करे जब दूध गाढ़ा होकर करछुल में लगने लगे तब आगे लिखे हुए ओषधियों के चूर्ण को उसमें मिलावे जायफर, सोंठ, मरिच, पीपल, दालचीनी इलायची, तेजपात, लौंग, अकरकरा, जावित्री, तालमखाना, नागकेसर तथा पुनर्नवा प्रत्येक दो दो पल तथा मूसली, शुद्ध अफीम, पारदभस्म वा रससिन्दूर, लोहभस्म, अभ्रकभस्म प्रत्येक आधा २ पल और रक्तचन्दन, अगर, कस्तूरी तथा शुद्ध कपूर प्रत्येक एक २ शाण लेकर विधिवत् श्लक्ष्ण चूर्ण करके उपरोक्त पाक में मिलाकर रख लेवे। आधा पल प्रमाण की मात्रा के क्रम से ( बढ़ाकर ) भक्षण करने से वीर्य तथा बल की वृद्धि होती है।

## अथ रसवैकृतियोगाऽभिलिख्यते।

जनितविविधदाहे शीततोयाभिषेको मलयजघनसारो लेपनं मन्दवातः।
तरुणदधि सिताक्तं नारिकेलीफलाम्भो मधुरशिशिरपानं शीतमन्यच्च शस्तम् ॥ १ ॥

रस वैकृति योग—पारदादि रसों के भक्षण से जो अनेक प्रकार के दाहादि विकार उत्पन्न होते हैं उसमें शीतल जल का अभिषेक ( सिंचन ) करना चाहिये, मलयागिरि चन्दन तथा कपूर का लेप करना चाहिये, मन्द २ वायु का सेवन करना चाहिये, तरुण ( मधुर ) दहीचीनी मिलाकर खाना चाहिये, नारियल का जल पीना चाहिये, मधुर रस युक्त तथा शीतल पेय पीना चाहिये। इसी प्रकार अन्य शीतल उपचार एवं पदार्थ का सेवन करना उत्तम है ॥ १ ॥

सौभाग्यमेघनादाख्यसितामधुकचन्दनम्। तुषोदकेन पातव्यं सर्वस्मिन् रसवैकृते ॥ २ ॥

सौभाग्यादि योग—शुद्ध सोहागा, चौराई शाक का मूल, चीनी, मुलहठी तथा चन्दन को समान भाग लेकर विधिवत् चूर्ण कर तुषोदक ( भूसी के धोये हुए जल ) से सभी प्रकार के रस विकार में पिलाना चाहिये। इससे सभी प्रकार के रस दोष ( पारद वैकृति आदि ) नष्ट होते हैं ॥

छर्द्यां चेक्षुरसो देयः कपित्थं वा सितान्वितम्। कुमारीगिललेपश्च सर्वाङ्गेण प्रशस्यते ॥ ३ ॥
क्षीरं मधुसितोपेतं क्वाथो धाऽमृतचिन्दुकः। उपचारा अमी सर्वे प्रशस्ता रसतापिनाम् ॥
रसदाहे भवेत्सर्वे पित्तज्वरभिषग्जितम् ॥ ४ ॥

पारा के सेवन से ( रस के विकार से ) यदि वमन होने लगे तो ईख का रस पीना चाहिये अथवा चीनी के साथ मिलाकर कैथ का चूर्ण सेवन करना चाहिये, कुमारी के पत्तों का स्वरस तथा जमीरी नीबू का स्वरस सर्वाङ्ग में लेप करना चाहिये। मधु तथा चीनी मिलाकर दूध पिलाना चाहिये अथवा गुरुच एवं जलपिप्पली का क्वाथ पिलाना चाहिये। ये सभी उपचार पारा

सेवन से सन्तप्त मनुष्यों के लिये लाभप्रद है। रस के कारण उत्पन्न हुए दाह (विकार) में पित्त ज्वर नाशक सभी क्रिया करनी चाहिये ॥ १-४ ॥

रससार—मुक्ताविद्रुमवङ्गभूतिसहितं वल्लं पृथक् स्वर्णकं
छिन्नासत्त्वतुगासितानवनितं चाऽऽलोड्य सम्मर्दयेत्।
संजाते तृषि नारिकेलसलिलं सत् कालिकं प्राशयेत्
सर्वस्मिन् रसवैकृते च गदितं ह्येतच्च योगामृतम् ॥ १ ॥

रससार—मुक्ताभस्म, मूंगाभस्म और बंगभस्म प्रत्येक एक २ वल्ल (१-१ रत्ती) लेकर उसमें स्वर्णभस्म एक वल्ल मिलाकर भलीभाँति खरल कर गुरुच के सत्त, वंशलोचन, चीनी तथा दूध के मक्खन यथा प्रमाण सबको मिलाकर रख लेवे। रस औषधि के खाने के पश्चात् जब तृषा हो तब नारियल का सद्य निस्सारित जलपान करे। सभी प्रकार के रस के विकार में ये योग अमृत के समान गुणकारी कहे गये हैं ॥ १ ॥

सर्वस्मिन् रसवैकृते हि शिशिरं स्वेच्छाम्बुपानादिकं
पेयं तापशमाय दाडिमतरोरग्राणि दूर्वाशिफाः।
सपेष्यामलक्या दधीत च तथा स्वेच्छावशेन त्यजेद्
यावत्पूर्वयवात् भवेत्प्रभृतरं तावत्स्त्रियं न स्पृशेत् ॥ २ ॥

सभी प्रकार के रस (पारद) के विकार में शीतल जल का इच्छापूर्वक पान करना चाहिये, शीतल पेय तापशमन होने के लिये देना चाहिये, अनार के कोमल पल्लव, दूब की जड़ तथा आँवले के फल को पीसकर पीना चाहिये तथा इच्छापूर्वक जब तक शरीर में पूर्व बल से भी अधिक बल न हो जावे तबतक स्त्री का स्पर्श तक नहीं करना चाहिये ॥ २ ॥

यष्टीपटोलनिष्क्वाथो मधुना मधुरीकृतः। तीव्रपित्तज्वरोन्मादनाशनो रसदाहजित् ॥ ३ ॥

यष्ट्यादि योग—जेठीमधु तथा परवल के विधिपूर्वक बने क्वाथ को मधु के प्रक्षेप से मधुर (मीठा) कर पान करने से तीव्र पित्तज्वर के कारण उत्पन्न उन्माद तथा पारद के विकार से उत्पन्न दाह भी नष्ट होता है ॥ ३ ॥

छिन्नायष्टीघनोशीरधान्यपर्पटचन्दनैः। रसदाहं जयेत्क्वाथो खण्डक्षीरीकसंयुतः ॥ ४ ॥

छिन्नादि क्वाथ—गुरुच, जेठीमधु, नागरमोथा, खस, धनियाँ, पित्तपापड़ा और चन्दन को समान भाग लेकर विधिपूर्वक क्वाथ करके चीनी तथा वंशलोचन का प्रक्षेप देकर पान करने से रस के विकार से उत्पन्न दाह नष्ट होता है ॥ ४ ॥

चन्दनोदीच्यदर्भासैः क्वाथः खण्डोपलान्वितः। रसदाहं जयत्याशु पित्तज्वरहरः परः ॥ ५ ॥

चन्दनादि क्वाथ—रक्तचन्दन, सुगन्धबाला तथा पित्तपापड़ा के विधिवत् बने क्वाथ में मिश्री का प्रक्षेप देकर पान करने से शीघ्र ही रस के विकार से उत्पन्न दाह नष्ट होता है। यह क्वाथ परम पित्तज्वर नाशक है ॥ ५ ॥

दूर्वासोत्पलकिञ्जल्कमञ्जिष्ठारोध्रबालुकम्। सितासितमुशीरं च मुस्तं चन्दनपद्मकम् ॥ ६ ॥
तत्समं च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत्। जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च ॥ ७ ॥
काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा। मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् ॥८॥
शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विप्लावयेद् घृतम्। रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तादिषु च ॥ ९ ॥
क्षीणशुक्रे प्रदातव्यं वाजीकरणमुत्तमम्। अङ्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् ॥ १० ॥

दूर्वादि घृत—दूब, नीलकमल का केशर, मजीठ, लोध, बालक, सफेद तथा काली खस, नागरमोथा, रक्तचन्दन और पद्मकाठ को समान भाग लेकर विधिपूर्वक कल्क कर उससे चतुर्गुण एक प्रस्थ घृत लेकर उसमें समान भाग (एक प्रस्थ) गोदुग्ध देकर घृतपाक की विधि से मन्द अग्नि पर पका सिद्धकर उसमें जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मुनक्का, मुलहठी मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द और रक्तचन्दन का समान मिश्रित चूर्ण, शक्कर तथा मधु मिलाकर रख देवे। इस घृत का रक्तपित्त के विकार में वातरक्त रोग में तथा वीर्य की क्षीणता में देना चाहिये। यह उत्तम वाजीकरण है। अङ्ग के दाह, शिर के दाह तथा पित्तज्वर को भी यह घृत नष्ट करता है ॥ ६-१० ॥

विकारो यदि जायेत पारदान्मलसंयुतात् । गन्धकं सेवयेत्तत्र शोधितं विधिपूर्वकम् ॥ ११ ॥

अशुद्ध पारद दोष की शान्ति—पारद के मलयुक्त रह जाने से यदि सेवन करनेवाले को विकार उत्पन्न हो जावे तो विधिपूर्वक शुद्ध किया हुआ गन्धक का सेवन कराना चाहिये ॥ ११ ॥

गन्धकं माषयुग्मं च नागवल्लीदलैः सह । खादेद्येत्पारदग्रस्तो दोषशान्तिस्तदा भवेत् ॥१२॥

शुद्ध गन्धक दो माशा लेकर पान के पत्ते के रस के साथ खाने से पारद के कारण उत्पन्न दोष की शान्ति हो जाती है ॥ १२ ॥

अन्यच्च—

लाक्षाकूष्माण्डखण्डांश्च तुलसीं शतपुष्पिकाम् । लवङ्गं वत्सनागं च गन्धकेन समायुतम् ॥१॥
कर्षमात्रं पयो भुक्तं सर्वं तत्र पृथक् पृथक् । सर्वयोगोत्तरासाध्यः सूतदोषविकारनुत ॥ २ ॥

लाख, श्वेत कुष्माण्ड ( पेठा ), शर्करा, तुलसी, सौंफ, लवंग और शुद्ध वत्सनाभ विष के यथा साध्य स्वरस एवं चूर्ण के साथ मात्रा के अनुसार एक कर्ष प्रमाण तक पृथक् २ शुद्ध गन्धक को खाकर दूध का अनुपान करने से असाध्य पारद दोष भी नष्ट होता है ॥ १-२ ॥

अन्यच्च—

नागवल्लीरसप्रस्थं भृङ्गराजरसं तथा । तुलस्याश्च रसं प्रस्थं छागदुग्धं समांशकम् ॥ १ ॥
मर्दनं सर्वगात्रेषु यामयुग्मं दिनत्रयम् । स्नानं शीतलतोयेन सूतदोषप्रशान्तये ॥ २ ॥

पान का रस एक प्रस्थ, भागर का रस एक प्रस्थ, तुलसी का रस एक प्रस्थ तथा बकरी का दूध सबके समान ( १ प्रस्थ ) मिलाकर दोपहर तक सम्पूर्ण शरीर में तीन दिन मर्दन करे तथा शीतल जल से स्नान करे तो इससे पारद विकार ( ताप-दाहादि ) नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

## अथ रसायनाधिकारः ।

तत्र रसायनस्य लक्षणमाह—

यज्जराव्याधिविध्वंसि वयसः स्तम्भकं तथा । चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं भेषजं तद्रसायनम् ॥१॥

रसायन के लक्षण—जो औषधि बुढापा तथा व्याधियों का नाश करे, आयु की स्थापना करे, नेत्र को बल देवे, धातुओं को बढावे तथा वीर्य में शक्ति प्रदान करे उसे रसायन कहते हैं ॥१॥

रसायनस्य फलमाह—

दीर्घमायुः स्मृतिं मेधामारोग्यं तरुणं वयः । देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्देद्रसायनात् ॥१॥

रसायन के फल—रसायन औषधि के सेवन करने से मनुष्य को आयु की दीर्घता, स्मृति शक्ति, बुद्धि, आरोग्यता, युवावस्था, शरीर तथा इन्द्रियों में बल और शरीर की कान्ति प्राप्त होती है ॥ १ ॥

तद्विधिमाह—

पूर्वे वयसि मध्ये वा मनुष्यस्य रसायनम् । प्रयुञ्जीत भिषक्प्राज्ञः स्निग्धशुद्धतनोः सदा ॥

रसायन विधि—वैद्य सदा मनुष्य की आयु के पूर्व अथवा मध्य भाग में ( १६ वर्ष से ७० वर्ष तक की अवस्था में ) प्रथम स्नेहन देकर पश्चात् वमन विरेचन से शरीर शुद्ध कर तब रसायन औषधि का प्रयोग करावे ॥ १ ॥

नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः । आभाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवाऽऽहितः ॥

रसायन का दोष—जिसका शरीर स्नेहन, वमन, विरेचन से शुद्ध नहीं किया गया हो उसको रसायन औषधि नहीं देनी चाहिये । जिस प्रकार मलिन वस्त्र पर पूर्ण रूपेण रंग नहीं आता है उसी प्रकार अशुद्ध शरीर पर रसायन का गुण पूर्ण रूप से नहीं प्रकट होता है अथवा अहित भी करता है ॥ २ ॥

तदुदाहरणानि—

शीतोदकं पयः क्षौद्रं घृतमेकैकशो द्विशः । त्रिशः समस्तमथ वा प्राक् पीतं स्थापयेद्वयः ॥१॥

शीतल जल दूध, मधु तथा घृत को पृथक् २ अथवा दो को एकत्र मिलाकर अथवा तीन को एकत्र मिलाकर अथवा सबको एकत्र मिलाकर नित्य प्रातःकाल सेवन करने से आयु की स्थिरता होती है ॥

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥ २ ॥

आयुः प्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शङ्खपुष्पी ॥ ३ ॥

मण्डूकपर्ण्यादि योग—प्रातःकाल नित्य मण्डूकपर्णी के स्वरस का सेवन, जेठीमधु के चूर्ण का सेवन, गुरूच के रस का सेवन तथा मूल पुष्पसहित शङ्खपुष्पी के कल्क का सेवन आयुवर्धक है, रोगनाशक है, बल, अग्नि, वर्ण, तथा स्वर को बढ़ानेवाला है, मेधाशक्ति को बढ़ानेवाला है तथा रसायन है। विशेष कर शङ्खपुष्पी अधिक मेधावर्धक है ॥ २–३ ॥

त्रिफला रसायन—विशेषेण तुगाक्षीर्या पिप्पल्या लवणेन च। त्रिफला सितया वाऽपि युक्ता सिद्धं रसायनम् ॥

त्रिफला रसायन—हरड़, बहेड़ा और आँवला का समान मिश्रित चूर्ण रसायन है, विशेष वंशलोचन के चूर्ण के साथ अथवा पीपल के चूर्ण के साथ अथवा सेंधानमक के साथ अथवा चीनी के साथ इसका सेवन करना रसायन है, यह रसायन का सिद्ध प्रयोग है ॥ ४ ॥

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात्। वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ५ ॥

ऋतु हरीतकी—सेंधानमक, शर्करा, सोंठ, पीपल, मधु तथा गुड़ के साथ वर्षा आदि छै ऋतुओं में यथाक्रम से हरीतकी का सेवन करना रसायन का गुण करने वाला है ॥ ५ ॥

ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैन्धवयुतां मेघावनद्धाम्बरे
सार्धं शर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषारागमे।
पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितां
राजन्प्राप्य हरीतकीमिव गदा नश्यन्तु ते शत्रवः ॥ १ ॥

ग्रीष्म ऋतु में हरीतकी को समान गुड़ से, वर्षाऋतु में सेंधानमक से, शरदऋतु में शर्करा से, हेमन्त में सोंठ के चूर्ण से, शिशिरऋतु में पीपल के चूर्ण से तथा वसन्त ऋतु में मधु से हरीतकी के चूर्ण को सेवन करे। इस प्रकार के हरीतकी के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसार्धमासम्।
मासद्वयं तत्त्रिगुणं समां वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ २ ॥

पुनर्नवायोग—नवीन पुनर्नवा आधापल पीसकर दूध के साथ जो मनुष्य आधामास, दो मास, छै मास अथवा एक वर्ष तक पान करता है वह यदि जीर्ण शरीर वाला हो तो भी पुनः नवीन शरीर वाला हो जाता है। अर्थात् इसके सेवन से वृद्ध भी युवा की भाँति हो जाता है ॥२॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम्।
क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमाप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

भृंगराजरस—जो मनुष्य एक मास पर्यन्त नित्य भांगरे के स्वरस का पान करता है तथा केवल दूध का पथ्य करता है वह बलवीर्य से युक्त होकर एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है ॥३॥

शतावरी मुण्डितिका गुडूची सहस्तिकर्णी सहसा[illegible]मूली।
एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ ४ ॥
जरारुजामृत्युवियुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यबलादियुक्तः।
विभाति देववतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरिविशुद्धबुद्धिः ॥ ५ ॥

शतावर्यादि चूर्ण—शतावरी मुण्डी, गुरुच, हस्तिकर्ण पलाश और मूसली को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर गोघृत अथवा मधु के अनुपान से चाटने से बुढ़ापा रोग, मृत्यु (अपमृत्यु) आदि से रहित होकर मनुष्य वीर्य तथा बल से युक्त होता है तथा वह मनुष्य नित्य प्रतिभायुक्त (तेजस्वी) महाबुद्धिमान् होकर देवता के समान शोभित होता है ॥ ४–५ ॥

पीताऽश्वगन्धा पयसार्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ६ ॥

अश्वगन्धा योग—असगन्ध के चूर्ण को १५ दिन दूध, घृत, तैल अथवा सुखोष्ण जल के अनुपान से पान करने से कृश (दुबल) मनुष्य के शरीर को इस प्रकार पुष्ट करता है जिस प्रकार बल की वृष्टि धान को पुष्ट करती है ॥ ६ ॥

शिशिरे चाश्वगन्धायाः कल्कचूर्णं पयोन्वितम्।
मासमात्रं समश्नाति स वृद्धोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥–

शिशिरऋतु में अश्वगन्धा प्रयोग—शिशिर ऋतु में असगन्ध के मूल का चूर्ण दूध में मिलाकर अथवा दूध में पकाकर मधु तथा घृत का प्रक्षेप देकर जो एक मास पर्यन्त पीता है वह वृद्ध भी हो तो युवा के समान हो जाता है ॥ ७ ॥

घृतामलकशर्करातिलपलाशबीजानि यः समानि शयनस्थितो मधुयुतानि खादेन्निशि ।
वलीपलितवर्जितस्तरुणनागतुल्यो बली बृहस्पतिसमः पुमान्भवति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥८॥

आमलक्यादि—गोघृत, आँवला का चूर्ण, शर्करा, तिल का चूर्ण और पलाश बीज के चूर्ण को समान लेकर मधु मिलाकर जो मनुष्य रात को सोने के समय खाता है वह शीघ्र ही वलीपलित रोग से मुक्त हो जाता है, युवा हो जाता है, हाथी के समान बलवान हो जाता है तथा बृहस्पति के समान बुद्धिमान हो जाता है। यह ध्रुव है ॥ ८ ॥

असिततिलविमिश्रान्पल्लवान्भक्षयेद्यः सततमिह पयोशी भृङ्गराजस्य मासम् ।
भवति च चिरजीवी व्याधिनिर्मुक्तदेहो भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः ॥ १ ॥

कृष्णतिलादि योग—कृष्ण तिल तथा भांगरे के कोमल पत्ते को जो मनुष्य निरन्तर एक मास तक खाता है तथा दूध का पथ्य करता है वह व्याधिरहित शरीर वाला चिरजीवी होता है। उसके केश भ्रमर के वर्ण के समान कृष्ण हो जाते हैं तथा वह मनुष्य काम चारी हो जाता है ॥ १ ॥

ससितया वचयाऽऽमलकैरथ त्रिफलया त्वथवा घृतमिश्रया ।
कनकलोहरजः सदलं कृत परमिदं हि रसायनमिष्यते ॥ २ ॥

सितादि योग—शर्करा के साथ वच का चूर्ण अथवा आँवले का चूर्ण मिलाकर अथवा त्रिफला के साथ घृत मिलाकर उसमें इन योगों में से किसी योग के साथ स्वर्णभस्म, लोहभस्म तथा शुद्ध गन्धक समान मिलाकर सेवन करने से यह परम रसायन कहा गया है ॥ २ ॥

धात्रीतिला भृङ्गरजोविमिश्रान्ये भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण ।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयोऽप्यामरणाद्भवेयुः ॥ १ ॥

धात्रीतिलादि योग—आँवला, तिल तथा भांगरे को समान लेकर चूर्णकर मिलाकर जो मनुष्य नित्य भक्षण करता है उसके केश कृष्ण हो जाते हैं, इन्द्रियां निर्मल हो जाती हैं तथा मृत्यु पर्यन्त जीवन भर रोग से रहित हो जाता है ॥ १ ॥

पञ्च भल्लातकांश्छित्त्वा शोधयेद्विधिवज्जले । कषाय च पिबेच्छीतं घृतेनाक्तोष्ठतालुकम् ॥
पञ्चवृद्धया पिबेच्चावत्सप्तति ह्रासयेत्ततः। जीर्णेऽद्यादोदनं शीतं घृतक्षीरोपसंहितम् ॥ ३ ॥
एतद्रसायनं मेध्यं वलीपलितनाशनम् । कुष्ठार्शःक्रिमिदोषघ्नं दुष्टशुक्रविशोधनम् ॥ ४ ॥

वर्धमान भल्लातक योग—पांच भिलावों को काटकर शुद्ध कर जल के साथ विधिपूर्वक क्वाथ कर जब शीतल हो जावे तब घृत से ओठ तथा तालु को युक्त करके उस क्वाथ का पान करे तथा इसी भाँति पांच २ भिलावे को नित्य बढ़ा २ कर क्वाथ करता हुआ पान करे तथा नित्य पांच भिलावे तब तक बढ़ाता जावे जब तक सत्तर भिलावे न हो जावें, सत्तर हो जाने पर पांच २ भिलावे को प्रतिदिन न्यून करता जावे तथा अंत में पांच भिलावे जब हो जावे तब समाप्त कर देवे। तथा प्रतिदिन जब क्वाथ पच जावे तब चावल का भात शीतल कर उसमें घृत तथा दूध मिलाकर खावे। इससे मेधावृद्धि होती है, वलीपलित का नाश होता है, कुष्ठ, अर्श तथा कृमिदोष नष्ट होते हैं तथा दूषित वीर्य शुद्ध हो जाता है ॥ २–४ ॥

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनीवचाभयाशुण्ठिशतावरीः समाः ।
घृतेन लीढ्वा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ १ ॥

गुडूच्यादि योग—गुरुच, अपामार्ग, वायविडङ्ग, शङ्खपुष्पी, वच, हरड़, सोंठ और शतावरी प्रत्येक समान लेकर चूर्णकर घृत में मिलाकर चाटने से यह योग मनुष्य को तीन दिन में ही सहस्र श्लोक स्मरण करने की शक्ति उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

ब्राह्मीवचामयावासापिप्पल्यो मधुसैन्धवम् । अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः सह गीयते ॥ २ ॥

ब्राह्म्यादि योग—ब्राह्मी, वच, हरड़, अरूसा, पीपल, मधु तथा सेंधानमक को समान भाग लेकर चूर्णकर सात दिन ही सेवन करने से मनुष्य किन्नरों के साथ गाने लगता है वा किन्नरों के समान गाने योग्य स्वर हो जाता है ॥ २ ॥

आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि मेध्या विशेषेण च शङ्खपुष्पी ॥ ३ ॥

मण्डूकपर्ण्यादि योग—प्रातःकाल नित्य मण्डूकपर्णी के स्वरस का सेवन, जेठीमधु के चूर्ण का सेवन, गुरुच के रस का सेवन तथा मूल पुष्पसहित शङ्खपुष्पी के कल्क का सेवन आयुवर्धक है, रोगनाशक है, बल, अग्नि, वर्ण, तथा स्वर को बढ़ानेवाला है, मेधाशक्ति को बढ़ानेवाला है तथा रसायन है। विशेष कर शंखपुष्पी अधिक मेधावर्धक है ॥ १-३ ॥

विशेषेण तुगाक्षीर्या पिप्पल्या लवणेन च । त्रिफला सितया वाऽपि युक्ता सिद्ध रसायनम् ॥

त्रिफला रसायन—हरड़, बहेड़ा और आँवला का समान मिलित चूर्ण रसायन है, विशेष वंशलोचन के चूर्ण के साथ अथवा पीपल के चूर्ण के साथ अथवा सेंधानमक के साथ अथवा चीनी के साथ इसका सेवन करना रसायन है, यह रसायन का सिद्ध प्रयोग है ॥ ४ ॥

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया प्राश्या रसायनगुणैषिणा ॥ ५ ॥

ऋतु हरीतकी—सेंधानमक, शर्करा, सोंठ पीपल, मधु तथा गुड़ के साथ वर्षा आदि छः ऋतुओं में यथाक्रम से हरीतकी का सेवन करना रसायन का गुण करने वाला है ॥ ५ ॥

ग्रीष्मे तुल्यगुडां सुसैन्धवयुतां मेघावनद्धाम्बरे
सार्धं शर्करया शरद्यमलया शुण्ठ्या तुषारागमे ।
पिप्पल्या शिशिरे वसन्तसमये क्षौद्रेण संयोजितां
राजन्प्राप्य हरीतकीमिव गदा नश्यन्तु ते शत्रवः ॥ १ ॥

ग्रीष्म ऋतु में हरीतकी को समान गुड़ से, वर्षाऋतु में सेंधानमक से, शरदऋतु में शर्करा से, हेमन्त में सोंठ के चूर्ण से, शिशिरऋतु में पीपल के चूर्ण से तथा बसन्त ऋतु में मधु से हरीतकी के चूर्ण को सेवन करे। इस प्रकार के हरीतकी के सेवन से सभी रोग नष्ट हो जाते हैं ॥

पुनर्नवस्यार्धपलं नवस्य पिष्टं पिबेद्यः पयसाऽर्धमासम् ।
मासद्वयं तत्त्रिगुणं समां वा जीर्णोऽपि भूयः स पुनर्नवः स्यात् ॥ २ ॥

पुनर्नवायोग—नवीन पुनर्नवा आधापल पीसकर दूध के साथ जो मनुष्य आधामास, दो मास, छे मास अथवा एक वर्ष तक पान करता है वह यदि जीर्ण शरीर वाला हो तो भी पुनः नवीन शरीर वाला हो जाता है। अर्थात् इसके सेवन से वृद्ध भी युवा की भांति हो जाता है ॥२॥

ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम् ।
क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवनमाप्नुवन्ति ॥ ३ ॥

भृंगराजरस—जो मनुष्य एक मास पर्यन्त नित्य भांगरे के स्वरस का पान करता है तथा केवल दूध का पथ्य करता है वह बलवीर्य से युक्त होकर एक सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है ॥३॥

शतावरी मुण्डितिका गुडूची सहस्तिकर्णी सह यष्टिमुष्टी ।
एतानि कृत्वा समभागयुक्तान्याज्येन किं वा मधुनाऽवलिह्यात् ॥ ४ ॥
जराव्याधिमृत्युविमुक्तदेहो भवेन्नरो वीर्यबलादियुक्तः ।
बिभाति देवप्रतिमः स नित्यं प्रभामयो भूरिविशुद्धबुद्धिः ॥ ५ ॥

शतावर्यादि चूर्ण—शतावरी, मुण्डी, गुरुच, हस्तिकर्ण पलाश और मुलहटी को समान भाग लेकर विधिपूर्वक चूर्णकर गोघृत अथवा मधु के अनुपान से चाटने से वृद्धता रोग, मृत्यु (अपमृत्यु) आदि से रहित होकर मनुष्य वीर्य तथा बल से युक्त होता है तथा वह मनुष्य नित्य प्रतिभायुक्त (तेजस्वी) महाबुद्धिमान् होकर देवता के समान शोभित होता है ॥ ४-५ ॥

पीताऽश्वगन्धा पयसाऽर्धमासं घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते बालस्य सस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ ६ ॥

अश्वगन्धा योग—अश्वगन्ध के चूर्ण को १५ दिन दूध, घृत, तैल अथवा सुखोष्ण जल के अनुपान से पान करने से कृश (दुबले) मनुष्य के शरीर को इस प्रकार पुष्ट करता है जिस प्रकार जल की वृष्टि धान को पुष्ट करती है ॥ ६ ॥

शिशिरे चाश्वगन्धाया कल्कचूर्णं पयोन्वितम् ।
मासमात्रं समश्नाति स वृद्धोऽपि युवा भवेत् ॥ ७ ॥

शिशिरऋतु में असगन्धा प्रयोग—शिशिर ऋतु में असगन्ध के मूल का चूर्ण दूध में मिलाकर अथवा दूध में पकाकर मधु तथा घृत का प्रक्षेप देकर जो एक मास पर्यन्त पीता है वह वृद्ध भी हो तो युवा के समान हो जाता है ॥ ७ ॥

घृतामलकशर्करातिलपलाशबीजानि यः समानि शयनस्थितो मधुयुतानि खादेन्निशि । वलीपलितवर्जितस्तरुणनाग तुल्यो बली बृहस्पतिसमः पुमान्भवति सोऽचिरेण ध्रुवम् ॥८॥

आमलक्यादि—गोघृत, आँवला का चूर्ण शर्करा, तिल का चूर्ण और पलाश बीज के चूर्ण को समान लेकर मधु मिलाकर जो मनुष्य रात को सोने के समय खाता है वह शीघ्र ही वलीपलित रोग से मुक्त हो जाता है, युवा हो जाता है, हाथी के समान बलवान हो जाता है तथा बृहस्पति के समान बुद्धिमान हो जाता है। यह ध्रुव है ॥ ८ ॥

असिततिलविमिश्रान्पल्लवान्भक्षयेद्यः सततमिह पयोशी भृङ्गराजस्य मासम् ।
भवति च चिरजीवी व्याधिनिर्मुक्तदेहो भ्रमरसदृशकेशः कामचारी मनुष्यः ॥ १ ॥

कृष्णतिलादि योग—कृष्ण तिल तथा भांगरे के कोमल पत्ते को जो मनुष्य निरन्तर एक मास तक खाता है तथा दूध का पथ्य करता है वह व्याधिरहित शरीर वाला चिरजीवी होता है। उसके केश भ्रमर के वर्ण के समान कृष्ण हो जाते हैं तथा वह मनुष्य काम चारी हो जाता है ॥ १ ॥

ससितया वचयाऽऽमलकैरथ त्रिफलया त्वथवा घृतमिश्रया ।
कनकलोहरजः सदृशं कृत परमिदं हि रसायनमिष्यते ॥ २ ॥

सितादि योग—शर्करा के साथ वच का चूर्ण अथवा आँवले का चूर्ण मिलाकर अथवा त्रिफला के साथ घृत मिलाकर उसमें इन योगों में से किसी योग के साथ स्वर्णभस्म, लोहभस्म तथा शुद्ध गन्धक समान मिलाकर सेवन करने से यह परम रसायन कहा गया है ॥ २ ॥

धात्रीतिला भृङ्गरजोविमिश्रान्ये भक्षयेयुर्मनुजाः क्रमेण ।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याधयोऽप्यामरणाद्भवेयुः ॥ १ ॥

धात्रीतिलादि योग—आँवला, तिल तथा भांगरे को समान लेकर चूर्णकर मिलाकर जो मनुष्य नित्य भक्षण करता है उसके केश कृष्ण हो जाते हैं, इन्द्रियां निर्मल हो जाती हैं तथा मृत्यु पर्यन्त जीवन भर रोग से रहित हो जाता है ॥ १ ॥

पञ्च भल्लातकांश्छित्त्वा शोधयेद्विधिवज्जले । कषायं च पिबेच्छीतं घृतेनाक्तोष्ठतालुकम् ॥
पञ्चवृद्ध्या पिबेच्चानुसप्ततिं ह्रासयेत्ततः । जीर्णेऽद्यादोदनं शीतं घृतक्षीरोपसंहितम् ॥ ३ ॥
एतद्रसायनं मेध्यं वलीपलितनाशनम् । कुष्ठार्शः क्रिमिदोषघ्नं दुष्टशुक्रविशोधनम् ॥ ४ ॥

*वर्धमान भल्लातक योग*—पांच भिलावों को काटकर शुद्ध कर जल के साथ विधिपूर्वक क्वाथ कर जब शीतल हो जावे तब घृत से ओठ तथा तालु को युक्त करके उस क्वाथ का पान करे तथा इसी भाँति पांच २ भिलावे को नित्य बढ़ा २ कर क्वाथ करता हुआ पान करे तथा नित्य पांच भिलावे तब तक बढ़ाता जावे जब तक सत्तर भिलावे न हो जावें, सत्तर हो जाने पर पांच २ भिलावे को प्रतिदिन न्यून करता जावे तथा अंत में पांच भिलावे जब हो जावे तब समाप्त कर देवे। तथा प्रतिदिन जब क्वाथ पच जावे तब चावल का भात शीतल कर उसमें घृत तथा दूध मिलाकर खावे। इससे मेधावृद्धि होती है, वलीपलित का नाश होता है, कुष्ठ, अर्श तथा कृमिदोष नष्ट होते हैं तथा दूषित वीर्य शुद्ध हो जाता है ॥ २-४ ॥

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनीवचाभयाशुण्ठिशतावरीः समाः ।
घृतेन लीढ्वा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनैः श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ १ ॥

गुडूच्यादि योग—गुरुच, अपामार्ग, वायविडंग शङ्खपुष्पी, वच, हरड़, सोंठ और शतावरी प्रत्येक समान लेकर चूर्णकर घृत में मिलाकर चाटने से यह योग मनुष्य को तीन दिन में ही सहस्र श्लोक स्मरण करने की शक्ति उत्पन्न कर देता है ॥ १ ॥

ब्राह्मीवचामयावासापिप्पल्यो मधुसैन्धवम् । अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किन्नरैः सह गीयते ॥ २ ॥

ब्राह्म्यादि योग—ब्राह्मी, वच, हरड़, अडूसा, पीपल मधु तथा सेंधानमक को समान भाग लेकर चूर्णकर सात दिन ही सेवन करने से मनुष्य किन्नरों के साथ गाने लगता है या किन्नरों के समान गाने योग्य स्वर हो जाता है ॥ २ ॥

इन्त्यम्लपित्तवमनारुचिदाहमोहशूलक्षयमेहतिमिरार्मसशुक्रदोषान् ।
भुक्त्वा नरः सततमामलकीरसेन वृद्धोऽपि तेन च भवेत्तरुणीरिरंसुः ॥ १ ॥

आमलकी रस—निरन्तर आँवले के रस को सेवन करने से अम्लपित्त, वमन, अरुचि, दाह, मोह, शूल, क्षयरोग, प्रमेह, तिमिर, अर्म तथा शुक्रदोष ये सभी नष्ट हो जाते हैं। तथा वृद्ध मनुष्य भी इसके सेवन से तरुणी को भोगने की इच्छा करता है ॥ १ ॥

लोहगुग्गुलुः—अयः पलं गुग्गुलुरत्र योज्यः पलत्रयं व्योषपलानि पञ्च ।
पलानि चाष्टौ त्रिफलारजश्च कर्षं लिहन्स्यादमरत्वमेव ॥ १ ॥

लौह गुग्गुल—लौहभस्म एक पल, शुद्ध गुग्गुल ३ पल, सोंठ, मरिच और पीपल समान मिश्रित चूर्ण पांच पल और हरड़, बहेड़ा, आँवला का समान मिश्रित चूर्ण आठ पल, लेकर एकत्र मर्दन कर एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से मनुष्य अमरत्व को प्राप्त होता है ॥ १ ॥

गन्धकरसायनम्—

शुद्धो बलिर्गोपयसा विभाव्य सचतुर्जातगुडूचिकाभिः ।
पथ्याक्षधात्रीचर्मभृङ्गराजैर्भाव्योऽष्टवारं पृथगार्द्रकेण ॥ १ ॥
शुद्धे सितां योजय तुल्यभागां रसायनं गन्धकराजमग्र्यम् ।
कर्षोन्मितं सेवितमेति मर्त्यो वीर्यं च पुष्टिं बलदेहवह्निम् ॥ २ ॥
कण्डूं च कुष्ठं विषदोषमुग्रं मासद्वयेनेह जयेत्प्रयोगः ।
घोरातिसारं ग्रहणीमदं च हरेच्च रक्तं स्रवदुग्रशूलम् ॥ ३ ॥
जीर्णज्वरे मेहगणे प्रवृद्धे वातामयानां दमने समर्थम् ।
प्रज्ञाकरं केशमतीव कृष्णं करोति चेद्भक्षति चार्धवर्षम् ॥ ४ ॥

गन्धक रसायन—शुद्ध गन्धक लेकर गाय के दूध से (आठ बार) भावित करे पश्चात् दालचीनी, इलायची, तेजपात और नागकेसर के समान मिश्रित क्वाथ से भावित करे, पुनः गुरच के स्वरस से, हरड़, बहेड़ा, आँवला के क्वाथ से, सोंठ के क्वाथ से, भांगरे के स्वरस से तथा अदरक के स्वरस से प्रत्येक से आठ २ बार भावित करे। इस प्रकार शुद्ध किये हुए गन्धक में समान भाग श्वेत शर्करा मिलाकर रख लेवे, इसे एक कर्ष प्रमाण की मात्रा से सेवन करने से मनुष्य का वीर्य बढ़ता है, पुष्टि होती है तथा शरीर एवं अग्नि दृढ़ होती है। इसके सेवन से कण्डूरोग, कुष्ठ, अत्यन्त उग्र विषदोष ये सभी दो मास में ही नष्ट हो जाते हैं और कठिन अतिसार, ग्रहणी तथा कठिन शूल युक्त रक्तस्राव को भी यह नष्ट कर देता है एवं जीर्णज्वर, प्रमेह तथा अत्यन्त कठिन वात रोगों को भी नष्ट करता है। यह रसायन मस्तिष्कशक्तिवर्धक है, केश को अत्यन्त कृष्ण करता है। इसे छै मास तक लगातार सेवन करना चाहिये ॥ १-४ ॥

रसायने वर्जयेत्क्षारमम्लं तैलादिकं तथा विदाहि च सर्वम् ।
सलोमरोगं सहगुल्मवृद्धिं हरेच्च वै गन्धकराजयोगः ॥ ५ ॥
हरति सकलरोगान्गन्धकाख्यः प्रयोगो मृतसदृशनराणां मानवो दीर्घमायुः ।
तदनु विहितयोगो भस्मसूतं सहेमं रमयति विबुधानां देहशोभिं सुरूपाम् ॥ ६ ॥

इस गन्धक रसायन के सेवन के समय क्षार, अम्ल, तैल आदि तथा कदाहक (करेला आदि) तथा दाहकारक को त्याग कर देना चाहिये। लोमरोग तथा अण्डकोष वृद्धि रोग इस गन्धकराज से अवश्य नष्ट होते हैं। यह गन्धकराज प्रयोग सम्पूर्ण रोगों को नष्ट करता है। मृतक सदृश मनुष्यों को शक्ति प्रदान करता है तथा दीर्घायु करता है। यदि इसके साथ पारद भस्म (रस सिन्दूर) तथा स्वर्णभस्म भी मिलाकर सेवन किया जावे तो देवताओं के समान रमणीय, तेजयुक्त तथा सुन्दर रूप कर देता है ॥ ५-६ ॥

वीर्यस्य वृद्धिं बलदेहवह्निमतीतियाजानिविहन्ति कुष्ठम् ।
प्रमेहदुष्टोदररोगमार्द्रं विशेषतो हन्ति तु सन्निपातम् ॥ ७ ॥
शोफज्वरं राजयक्ष्मं प्रमेहं पाण्डुश्वयथुश्वासगुदाङ्कुरादीन् ।
एतानि रोगाणिनिहन्ति शीघ्रं रसायनं भक्षितमीक्षितेन ॥ ८ ॥

यह गन्धक रसायन वीर्य की वृद्धि करता है, शरीर तथा अग्नि को पुष्ट करता है, ८० प्रकार के वातरोग को नष्ट करता है तथा कुष्ठ, प्रमेह, दुष्ट उदर रोग तथा अन्य रोग समूहों को तथा विशेष कर सन्निपात को नष्ट करता है तथा दोष ज्वर (वातादि से उत्पन्न ज्वर), राजरोग (यक्ष्मा), प्रमेह, पाण्डु, क्षय, श्वास तथा अश इन सभी रोगों को शीघ्र नष्ट करता है। यह रसायन महादेव जी का कहा हुआ है ॥ ७-८ ॥

एरण्डतैलमथ निम्बफलास्थितैलमेतद्रसायनमनामयकामकारि।
ज्योतिष्मतीफलपलाशफलोद्भवं वा तैलं वलीपलितहारि भिषक्प्रदिष्टम् ॥ १ ॥

तैल प्रयोग—एरण्ड का तेल अथवा नीम के बीजों का तेल रसायन तथा रोगनाशक है। मालकांगनी का तेल अथवा पलास के फल का तेल वली पलित को नष्ट करनेवाले हैं ऐसा भिषगाचार्यों ने कहा है ॥ १ ॥

न केवलं दीर्घमिहाऽऽयुरश्नुते रसायनं यो विविधं निषेवते।
गतिं स देवर्षिनिषेवितां शुभां प्रपद्यते ब्रह्म तथैव चाव्ययम् ॥ २ ॥

रसायन सेवन का फल—जो मनुष्य विविध प्रकार के रसायनों का सेवन करता है वह केवल दीर्घायु ही नहीं प्राप्त करता अपि तु देवता तथा ऋषियों की शुभ गति को प्राप्त होता है तथा अक्षय ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ २ ॥

इति रसायनाधिकारप्रकरणं समाप्तम्

---

## अथ रोगानुसारेणौषधस्यानुपानानि।

भैरातामुदपर्पटं ज्वरगदे तक्रं ग्रहण्यामथा
तीसारे कुटजः कृमौ कृमिरिपुर्दुर्नामकेऽरुष्करम्।
पाण्डौ किट्टमथ क्षये गिरिजतु श्वासे तु भार्गीौषधं
मेहे त्वामलरात्रिके तृषि जलं सतप्तहेमान्वितम् ॥ १ ॥
शूले हिङ्गुकरञ्जमामपवने तैलं द्वयोर्मूत्रयुक्
प्लीह्नि प्लीह्नि कणा विषे शुकतरुः कासे तु कण्टकारिका।
वातव्याधिषु गुग्गुलुश्च लशुनः स्याद्रक्तपित्ते वृषोऽ-
पस्मारे तु वचा सवाह्मय गरे हेमोदरे रेचनम् ॥ २ ॥

रोगानुसार औषधि का अनुपान—ज्वर रोग में—चिरायता, नागरमोथा तथा पित्तपापड़ा का अनुपान, ग्रहणी रोग में—तक्र का अनुपान, अतीसार रोग में—कोरैया के छाल का अनुपान, कृमिरोग में—वायविडंग का अनुपान, अर्श में—भिलावा का अनुपान पाण्डुरोग में—मण्डूर का अनुपान, क्षय रोग में—शिलाजीत का अनुपान, श्वास में—भारङ्गी (बमनेठी) तथा सोंठ का अनुपान, प्रमेह में—आँवला तथा हल्दी का अनुपान, तृषा में—सोने को तपाकर बुझाया हुआ जल का अनुपान, शूलरोग में—शुद्ध हींग तथा करञ्ज का अनुपान, आमवात में—गोमूत्र सहित एरण्ड के तेलका अनुपान, प्लीहारोग में—पीपल का अनुपान, विष रोग में—सिरिस का अनुपान, कास रोग में—छोटी कटेरी का अनुपान, वातव्याधि में—शुद्ध गुग्गुल तथा लहसुन का अनुपान, रक्त पित्त में—अरूसा का अनुपान, अपस्मार रोग मे—वच तथा ब्राह्मी का अनुपान, विष दोष में—सुवर्ण भस्म का अनुपान और उदर रोग में—रेचन वस्तु का अनुपान देना चाहिये ॥ १-२ ॥

वातास्रे तु गुडूचिकाऽर्दितगदे माषेण्डरी मेदसि
क्षौद्राम्भः प्रदरे तिरीटमरुचौ लुङ्गो व्रणेऽन्यः पुरः।
शोके मद्यमथाम्लपित्तरुजि तु द्राक्षाऽथ कृच्छ्रे मरी
कूष्माण्डाम्बु हृदामये तु त्रिफलोन्मादे पुराणं घृतम् ॥ ३ ॥

वातरक्त में—गुरुच का अनुपान, अर्दित वात में—उड़द की बनी पिट्ठी के वटक का अनुपान, मेद रोग में—मधु तथा जल का अनुपान, प्रदर रोग में—लोध का अनुपान, अरुचि में—बिजौरे

नीबू का अनुपान, व्रण में—नवीन गुग्गुल का अनुपान, शोक में—मद्य ( मदिरा ) का अनुपान, अम्लपित्त में—द्राक्षा का अनुपान, मूत्रकृच्छ्र रोग में—शतावरी तथा श्वेत कुष्माण्ड का जल, नेत्र रोग में—त्रिफला का अनुपान और उन्माद में पुराने घृत का अनुपान देना चाहिये ॥ ३ ॥

कुष्ठे खादिरसारवारि च पयो निद्राक्षये माहिषं
श्वित्रे वाकुचिकाफलं त्वजीर्णरुजि तु स्वापो मदे तोषणम् ।
छर्द्यां लाजमधूर्ध्वजत्रुविकृतौ नस्यं सतीक्ष्णौषधं
शूले पार्श्वभवे तु पुष्करजटा मूर्च्छासु शीतो विधिः ॥ ४ ॥

कुष्ठरोग में—खैरसार ( खदिर ) के जल का अनुपान, निद्राक्षय ( अनिद्रा ) रोग में—भैंस के दूध का अनुपान, । श्वेतकुष्ठ में—बाकुची के फल का अनुपान, अजीर्ण रोग में—निद्रा, मद में—सन्तोष, वमन में—धान का लावा तथा मधु का अनुपान, ऊर्ध्वजत्रुगतरोग में—तीक्ष्ण औषधियों का नस्य, पार्श्वशूल में—पुष्करमूल का अनुपान और मूर्च्छा में—शीतल विधि ( सिंचन आदि ) करनी चाहिये ॥ ४ ॥

कार्ये मांसरसोऽश्मरीषु गिरिभिद्गुल्मेषु शिग्रुत्वचा
मोक्षोऽसृजस्तु विद्रधौ जतुरसैर्हिक्कासु नस्यं हितम् ।
दाहे शीतविधिर्भगन्दरगदे दुर्वाश्वलालास्थिनी
घृष्टे रासभशोणितैः स्वरगदे मध्वन्वितं पौष्करम् ॥ ५ ॥

कृशरोग में मांसरस का अनुपान, अश्मरी रोग में—पाषाण भेद ( पथर चूर ) का अनुपान, गुल्म में—सहिजन की त्वचा का अनुपान, विद्रधि में—रक्तमोक्षण, हिक्का ( हिचकी ) में—लाख के रस का नस्य, दाह में—शीतल क्रिया, भगन्दर रोग में—केंचुये तथा श्वान की अस्थि को गदहे के रक्त से घिस कर और स्वर के रोग ( स्वरभेदादि ) में—मधु सहित पुष्करमूल देना चाहिये ॥

अनुपानगुणमाह—

यत्किञ्चिदौषधं वैद्यैर्देयं रोगानुपानतः । तत्तद्गुणकरं ज्ञेयमनुपानबलादिह ॥ १ ॥

अनुपान के गुण—जो औषधि रोगी को अनुपान के अनुसार वैद्य देता है वह औषधि उसी अनुपान के बल से उस रोग को नाश करने वाले गुण को करती है ॥ १ ॥

ग्रन्थसंग्रहकारस्याशिष —

यावद्व्योमनि बिम्बमम्बरमणेरिन्दोश्च विद्योतते
यावत्सप्त पयोधयः सगिरयस्तिष्ठन्ति पृष्ठे भुवः ।
यावच्चावनिमण्डलं फणिपतेरास्ते फणामण्डले
तावत्सद्भिषजः पठन्तु परितः श्रीयोगरत्नाकरम् ॥ १ ॥
इति श्रीयोगरत्नाकरः समाप्तः ।

ग्रन्थ संग्रहकार का आशिष—जब तक इस संसार में आकाश पर सूर्य तथा चन्द्रमा अपनी ज्योति से प्रकाशित हैं, जब तक सातों समुद्र पर्वतों सहित इस भूमि ( पृष्ठ ) पर स्थित हैं, जब तक भगवान् शेषनाग के फण पर पृथ्वीमण्डल स्थित है तब तक सर्वत्र ही उत्तम वैद्य इस योगरत्नाकर नामक ग्रन्थ को पढ़ते रहें ॥ १ ॥

इस प्रकार पण्डित श्री लक्ष्मीपति शास्त्री आयुर्वेदाचार्य विरचित विद्योतिनी हिन्दी टीका में
योगरत्नाकर ग्रन्थ समाप्त हुआ ।

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

# प्रमुखविषयाणामकारादिक्रमसूची

प्राप्तिस्थानम्—

चौखम्बा संस्कृत पुस्तकालय,

बनारस-१